हरिभद्र सूरि विरचित

समराइच्चकहा

उत्तरार्ध

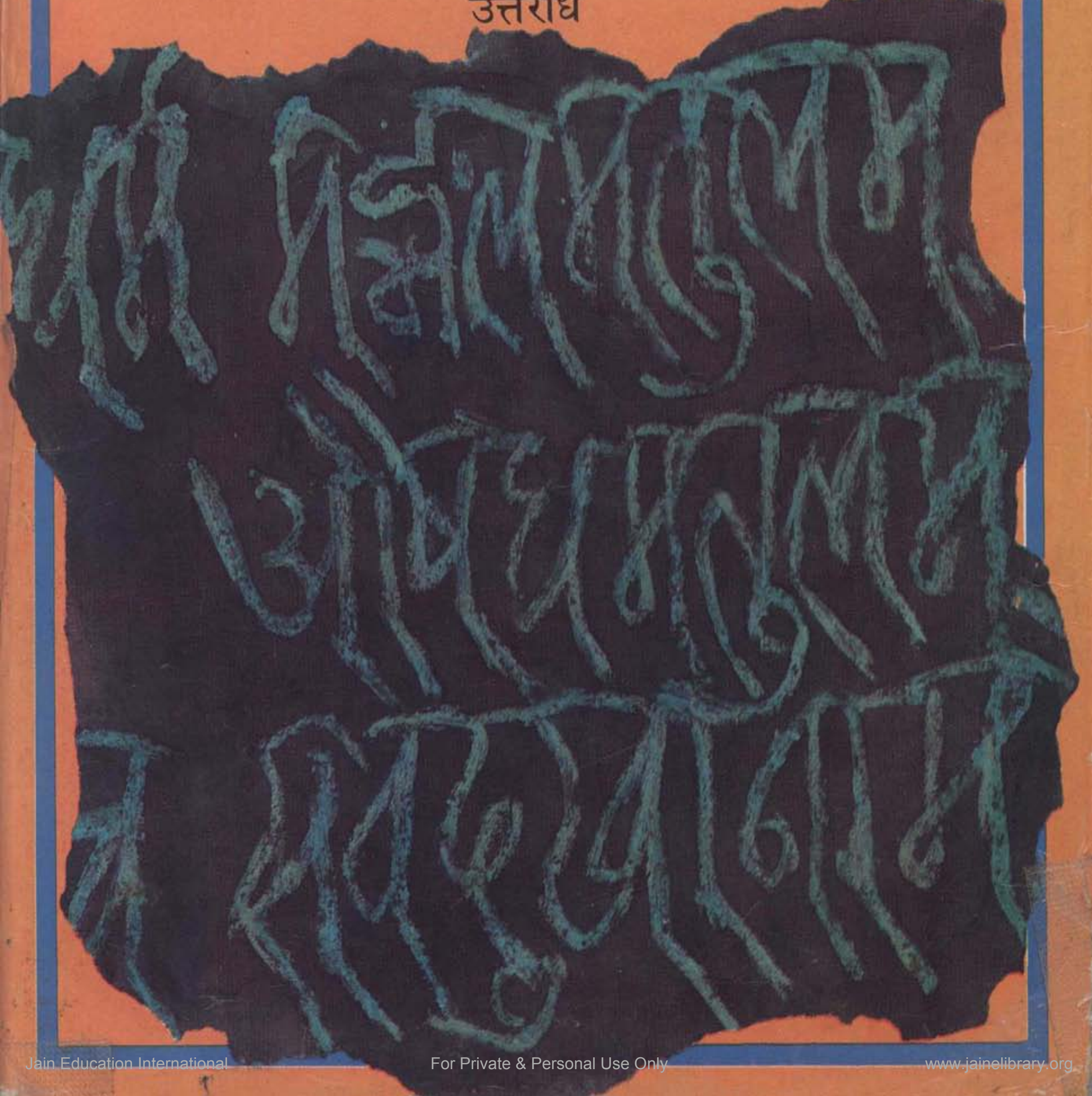

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समराइच्चकहा

आचार्य हरिभद्र सूरि की, प्राकृत गद्य भाषा में निबद्ध एक ऐसी आख्यानात्मक कृति, जिसकी तुलना महाकवि बाणभट्ट की 'कादम्बरी', जैन काव्य 'यशस्तिलकचम्पू' और 'वसुदेवहिण्डी' से की जाती है । प्रचलित भाषा में इसे नायक और प्रतिनायक के बीच जन्म-जन्मान्तरों के जीवन-संघर्षों की कथा का वर्णन करनेवाला प्राकृत का एक महान् उपन्यास कहा जा सकता है ।

मूल कथा के रूप में इसमें उज्जयिन्नी के राजा समरादित्य और प्रतिनायक अग्निशर्मा के नौ जन्मों (भवों) का वर्णन है । एक-एक जन्म की कथा एक-एक परिच्छेद में समाप्त होने से इसमें नौ भव या परिच्छेद हैं ।

आज से पचास वर्ष पूर्व यह ग्रन्थ अहमदाबाद से संस्कृत छायानुवाद के साथ प्रकाशित हुआ था । पहली बार इस ग्रन्थ का सुन्दर एवं प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद प्राकृत एवं संस्कृत के विद्वान् डॉ. रमेशचन्द्र जैन, बिजनौर ने किया है । इस प्रकार प्राकृत मूल, संस्कृत छाया के साथ इसके हिन्दी अनुवाद का प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ की एक और महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है ।

ग्रन्थ के बृहद् आकार में होने से इसके पाँच भव 'पूर्वार्ध' के रूप में और अन्तिम चार भव 'उत्तरार्ध' के रूप में, इस तरह यह पूरा ग्रन्थ दो जिल्दों में नियोजित है ।

आशा है, प्राकृत के अध्येताओं, शोध-छात्रों एवं प्राचीन भारतीय साहित्य के समीक्षकों के लिए यह कृति बहुत उपयोगी सिद्ध होगी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य हरिभद्र सूरि विरचित

समराइच्चकहा

(समरादित्य-कथा)

उत्तरार्ध

[प्राकृत मूल, संस्कृत छाया एवं हिन्दी अनुवाद सहित]

सम्पादन-अनुवाद

डॉ. रमेशचन्द्र जैन

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग,

वर्धमान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिजनौर

ACHARYA SRI KAILASSAGARSURI GYANMANDIR
SHREE MAHAVIR JAIN ARADHANA KENDRA
Koba, Gandhinagar - 382 007.
Ph.: (079) 23276252, 23276204-05
Fax : (079) 23276249

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रथम संस्करण १९९९ □ मूल्य : १४०.०० रुपये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय ज्ञानपीठ

(स्थापना : फाल्गुन कृष्ण ९, वीर नि. सं. २४७० : विक्रम सं. २००० : १८ फरवरी १९४४)

स्व. पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवी की पवित्र स्मृति में

स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन द्वारा संस्थापित

एवं

उनकी धर्मपत्नी स्वर्गीय श्रीमती रमा जैन द्वारा सम्पोषित

मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड़, तमिल आदि प्राचीन भाषाओं में उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्य का अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदि के साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन-भण्डारों की सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, कला एवं स्थापत्य, विशिष्ट विद्वानों के अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन साहित्य-ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमाला में प्रकाशित हो रहे हैं।

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

१८, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११०००३

मुद्रक : विकास ऑफसेट नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

सर्वाधिकार सुरक्षित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

JÑĀNAPĪTH MOORTIDEVĪ JAIN GRANTHAMĀLĀ : Prakrit Grantha No.22

SAMARĀICHCHAKAHĀ

of

ACHĀRYA HARIBHADRA SŪRI

VOL. II

[Prakrit Text with Sanskrit Chhāyā and Hindī Translation]

Edited and Translated

by

Dr. Ramesh Chandra Jain

Head, Deptt. of Sanskrit,

Vardhman Post-graduate College, Bijnor

BHARATIYA JNANPITH PUBLICATION

First Edition 1996 □ Price Rs. 140.00

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

BHARATIYA JNANPITH

(Founded on Phalguna Krishna 9 : Vira Sam. 2470, Vikrama Sam. 2000 ; 18th Feb., 1944)

MOORTIDEVI JAINA GRANTHAMALA

FOUNDED BY

LATE SAHU SHANTI PRASAD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE MOTHER SHRIMATI MOORTIDEVI

AND

PROMOTED BY HIS BENEVOLENT WIFE

LATE SHRIMATI RAMA JAIN

IN THIS GRATHMALA CRITICALLY EDITED JAINA AGAMIC, PHILOSOPHICAL, PAURANIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS AVAILABLE IN PRAKRIT, SANSKRIT, APABHRMSHA, HINDI, KANNADA, TAMIL ETC., ARE BEING PUBLISHED IN THE RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES. ALSO BEING PUBLISHED ARE CATALOGUES OF JAINA-BHANDARAS, INSCRIPTIONS, STUDIES ON ART ARCHITECTURE BY COMPETENT SCHOLARS AND ALSO POPULAR JAINA LITERATURE.

Published by

Bharatiya Jnanpith

18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110003

Printed at : Vikas Offset, Naveen Shahdara, Delhi-110032

All Rights Reserved

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ छट्ठो भवो ॥

जयविजया य सहोयर जं भणियमिहासि तं गयमियाणिं ।
वोच्छामि पुव्वविहियं धरणो लच्छी य पइभज्जा ॥४८०॥

अत्थि इहेव जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे परिहरिया अहम्मेणं वज्जिया कालदोसेण रहिया उवद्दवेण निवासो नयसिरीए मायन्दी नाम नयरी ।

जीए महुमत्तकामिणिलीलाचंकमणणेउररवेण ।
भवणवणदीहिओयररया वि हंसा नडिज्जंति ॥४८१॥
जीए सरलसहावो पियंवओ धम्मनिहियनियचित्तो ।
पढमाभासी नेहालुओ य पुरिसाण वग्गो त्ति ॥४८२॥

तत्थ दरियारिमद्दणो सुकयधम्माधम्मववत्थो [कालो[1] व्व रिवूणं] कालमेहो नाम नरवई ।

जयविजयौ च सहोदरौ, यद् भणितं तं गतमिदानीम् ।
वक्ष्ये पूर्वविहितं धरणो लक्ष्मीश्च प्रतिभार्ये ॥४८०॥

अस्तीहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे परिहृताऽधर्मेण, वर्जिता कालदोषेण, रहिता उपद्रवेण, निवासो नयश्रियो माकन्दी नाम नगरी ।

यस्यां मधुमत्तकामिनीलीलाचंक्रमणनूपुररवेण ।
भवनवनदीर्धिकोदररता अपि हंसा गुप्यन्ते (व्याकुलीक्रियन्ते) ॥ ४८१॥
यस्यां सरलस्वभावः प्रियंवदो धर्मनिहितनिजचित्तः ।
प्रथमाभाषी स्नेहालुकश्च पुरुषाणां वर्ग इति ॥४८२॥

तत्र दृप्तारिमर्दनः सुकृतधर्माधर्मव्यवस्थः काल इव रिपूणां कालमेघो नामः नरपतिः।

जय और विजय (नामक) दोनों भाइयों के विषय में जो कहना था वह कह दिया, अब शास्त्रोक्त धरण और लक्ष्मी नामवाले पति और पत्नी के विषय में कहूँगा ।।४८०॥

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में अधर्म को जिसने छोड़ दिया है, काल के दोष तथा उपद्रव से रहित, नीतिरूपी लक्ष्मी का जिसमें निवास है, ऐसी माकन्दी नामक नगरी है ।

जिस नगरी में मधु (मादक पदार्थ) से मतवाली कामिनी स्त्रियों के लीलापूर्वक संचारित नूपुरों की ध्वनि से भवन-वन की बावड़ी के अन्दर रहनेवाले हंस भी व्याकुलित किये जाते हैं । जिस नगरी में सरल स्वभावी, प्रिय बोलने वाला अथवा धर्म में अपने चित्त को लगाये हुए, उत्तम वचन बोलनेवाला तथा स्नेहालु पुरुषों का वर्ग है, ॥४८१-४८२॥

वहाँ पर अभिमानी शत्रुओं का मर्दन करने वाला, धर्म तथा अधर्म की भलीभाँति व्यवस्था करने वाला,

---

१. नास्ति ख—पुस्तके ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्स अईव बहुमओ सयलनयरिसेट्ठिचूडामणीभूओ बंधुदत्तो नाम सेट्ठि त्ति। सो य परम्मुहो परकलत्ते न अब्भत्थणाए, अलुद्धो परविभवे न धम्मोवज्जणे, असंतुट्ठो परोवयारे न धणागमे, अहिगओ पीईए न मच्छरेणं, दरिद्दो दोसेहिं न विहवेणं। तेण सा नयरी मलयवणं पिव पारिजाएण वसंतो विय कुसुमुग्गमेण पाउससिरी विय मेहावलीए सरयकालो विय चंदमंडलेणं अहियं विभूसिय त्ति। तस्स कमलायरस्स विय विलुप्पइ कोसो मित्तमंडलेण, कप्पतरुवरस्स विय खंधे पायं काऊण गहियाइं फलाइं अत्थिनिवहेण। तस्स समाणकुलरूवविहवसहावा हारप्पहा नाम भारिया। स इमीए सह धम्मत्थअभग्गपसरं विसयसुहमणुहविसु[1] त्ति॥ इओ य सो आणयकप्पवासी देवो तम्मि देवलोए अहाउयं[2] पालिऊण चुओ समाणो समुप्पन्नो हारप्पहाए कुच्छिसि। दिट्ठा य णाए तीए चेव रयणीए चरिमजामम्मि सुमिणए दिव्वपउमासणोवविट्ठा धवलदुगुल्लनिवसणा विविहरयणखचियरसणाकलावा

तस्यातीव बहुमतः सकलनगरीश्रेष्ठिचूडामणीभूतो बन्धुदत्तो नाम श्रेष्ठीति। स च पराङ्मुखः परकलत्रे नाभ्यर्थनायाम्, अलुब्धः परविभवे न धर्मोपार्जने, असन्तुष्टः परोपकारे न धनागमे, अधिगतः प्रीत्या न मत्सरेण, दरिद्रो दोषैर्न विभवेन। तेन सा नगरी मलयवनमिव पारिजातेन वसन्त इव कुसुमोद्गमेन प्रावृट्श्रीरिव मेघावल्या शरत्काल इव चन्द्रमण्डलेनाधिकं विभूषितेति। तस्य कमलाकरस्येव विलुप्यते कोशो मित्रमण्डलेन, कल्पतरुवरस्येव स्कन्धे पादं कृत्वा गृहीतानि फलान्यर्थिनिवहेन। तस्य समानकुल-रूप-विभव-स्वभावा हारप्रभा नाम भार्या। सोऽनया सह धर्मार्थाभग्नप्रसरं विषयसुखमन्वभवत्। इतश्च स आनतकल्पवासी देवो तस्मिन् देवलोके यथायुष्कं पालयित्वा च्युतः सन् समुत्पन्नो हारप्रभायाः कुक्षौ। दृष्टा चानया तस्यामेव रजन्यां चरमयामे स्वप्ने दिव्यपद्मासनोपविष्टा धवलदुकूलनिवसना विविधरत्नखचितरसनाकलापा सुकुमारमृदुस्पर्शेणोत्त-

शत्रुओं के लिए काल के तुल्य कालमेघ नामक राजा था। उसके (यहाँ) अत्यन्त लोकप्रिय, समस्त नगरियों के सेठों में चूडामणि बन्धुदत्त नामक सेठ था। वह परस्त्रियों से विमुख रहता था, किन्तु याचकों की याचना से विमुख नहीं रहता था। दूसरे की सम्पत्ति का लोभी नहीं था, किन्तु धर्मोपार्जन का लोभी न हो, ऐसी बात नहीं थी। परोपकार करते हुए वह सन्तुष्ट नहीं होता था, अर्थात् उसकी परोपकार करने की इच्छा बढ़ती ही रहती थी। किन्तु धन के आगमन के प्रति वह असन्तुष्ट हो, ऐसा नहीं था। वह प्रीति से युक्त था, मत्सर से युक्त नहीं था। दोषों से वह दरिद्र था अर्थात् उसमें दोष नहीं थे, किन्तु वैभव से दरिद्र नहीं था। इन कारणों से उस सेठ से वह नगरी उसी तरह अधिकाधिक रूप से विभूषित हुई जिस प्रकार पारिजात से मलयवन, फूलों के उद्गम से वसन्तमास, मेघों की पंक्ति से वर्षाकाल और चन्द्रमण्डल से शरत्काल अत्यधिक विभूषित होता है। कमलों के समूह के समान उसका कोश मित्रमण्डल द्वारा ही कृश किया जाता था। कल्पवृक्ष के तने पर पैर रखकर जिस प्रकार चाहने वाले लोग फलों को ग्रहण कर लेते हैं उसी प्रकार याचक लोगों ने उससे फल ग्रहण किये थे। उसके समान कुल, समान रूप, समान वैभव तथा समान स्वभाव वाली हारप्रभा नामक स्त्री थी। वह इसके साथ धर्म और अर्थ का निरन्तर सेवन करता हुआ विषयसुख का अनुभव करता था। इधर वह आनत कल्पवासी देव उस स्वर्ग की आयु का उपभोग करने के अनन्तर च्युत होकर हारप्रभा के गर्भ में आया। हारप्रभा ने उसी रात्रि के अन्तिमप्रहर में स्वप्न में दिव्य कमलासन पर बैठी हुई, सफेद वस्त्र पहने हुई, अनेक प्रकार के रत्नों से युक्त करधनी को धारण किये हुए, सुकुमार और मृदु स्पर्शवाले उत्तरीय से स्तनों को आच्छादित किये हुए, मोतियों

१. मणुभविसु—क, २. अहाउयमणु—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुकुमालमिउफंसेण उत्तरीएण पच्छाइयपओहरा मुत्तावलीविहूसियाए सिरोहराए रुंटंतमहुय[1]-रुप्फुल्लगहियकमला धवलकरिवरेहिं दिव्वकंचणकलसेहि अहिसिच्चमाणा सिरीवयणेणमुयरं पविसमाणि त्ति। तओ तं दट्ठूण विउद्धा एसा। साहिओ तीए हरिस[2]निब्भराए दइयस्स। भणिया य णेण[3]–सुंदरि, सिरिनिवासो ते पुत्तो भविस्सइ। पडिस्सुयमिमीए। तओ विसेसेण तिवग्गसंपायणरयाए अइक्कंतो कोइ कालो। पत्तो पसूइसमओ। पसूया य एसा, जाओ से दारओ, निवेइओ परितोसनामाए चेडियाए बंधुदत्तस्स। परितुट्ठो एसो। दिन्नं तीए पारिओसियं। कयं उचियं करणिज्जं। अइक्कंतो मासो दारयस्स। पइट्ठावियं च से नामं पियामहस्स[4] सतियं धरणो त्ति। पत्तो कुमारभावं, गाहिओ कलाकलावं। निम्माओ य तत्थ पयाणुसारी संवुत्तो।

एत्थंतरम्मि सो विजयजीवनारओ तओ नरयाओ उव्वट्टिऊण पुणो संसारमाहिंडिय अणंतरभवे तहाविहमणुट्ठाणं काऊण तीए चेव नयरीए कत्तियस्स सेट्ठिस्स जयाए भारियाए कुच्छिंसि इत्थियत्ताए उववन्नो त्ति। जाया कालक्कमेण। पइट्ठावियं च से नामं लच्छि त्ति। पत्ता य जोव्वणं।

रीयेण प्रच्छादितपयोधरा मुक्तावलिविभूषितशिरोधरया [विभ्राजमाना] रणन्मधुकरोत्फुल्लगृहीतकमला धवलकरिवराभ्यां दिव्यकाञ्चनकलशाभ्यामभिषिच्यमाना श्रीर्वदनेनोदरं प्रविशन्तीति। ततस्तां दृष्ट्वा विबुद्धैषा। कथितस्तया हर्षनिर्भरया दयिताय। भणिता च तेन–सुन्दरि! श्रीनिवासस्ते पुत्रो भविष्यति। प्रतिश्रुतमनया। ततो विशेषेण त्रिवर्गसम्पादनरताया अतिक्रान्तः कोऽपि कालः। प्राप्तः प्रसूतिसमयः। प्रसूता चैषा, जातस्तस्य दारकः, निवेदितः परितोषानाम्न्या चेटिकया बन्धुदत्ताय। परितुष्ट एषः। दत्तं तस्यै पारितोषिकम्। कृतमुचितं करणीयम्। अतिक्रान्तो मासो दारकस्य। प्रतिष्ठापितं च तस्य नाम पितामहस्य सत्कं धरण इति। प्राप्तः कुमारभावम्, ग्राहितः कलाकलापम्। निर्मायश्च तत्र पदानुसारी संवृत्तः।

अत्रान्तरे स विजयजीवनारकः ततो नरकादुद्वृत्य पुनः संसारमहिण्डय अनन्तरभवे तथाविधमनुष्ठानं कृत्वा तस्यामेव नगर्यां कार्तिकस्य श्रेष्ठिनो जयाया भार्यायाः कुक्षौ स्त्रीतयोपपन्न इति। जाता कालक्रमेण। प्रतिष्ठापितं च तस्या नाम लक्ष्मीरिति। प्राप्ता च यौवनम्। अचिन्त-

---

की माला से विभूषित ग्रीवा से शोभायमान होती हुई, गुंजायमान भौंरों से युक्त, विकसित कमल को ग्रहण किये हुए, सफेद दो श्रेष्ठ हाथियों के द्वारा दिव्य स्वर्णकलशों से अभिषिक्त होती हुई लक्ष्मी को मुख से उदर में प्रवेश करते हुए देखा। अनन्तर उसको देखकर यह जाग उठी। अति हर्ष से युक्त होकर उसने पति से कहा। पति ने कहा—'सुन्दरी! लक्ष्मी का जिसमें निवास है, ऐसा तुम्हारा पुत्र होगा।' इसने सुना। इसके बाद विशेष रूप से धर्म, अर्थ और कामरूप त्रिवर्ग में रत रहते हुए कुछ समय व्यतीत हुआ। प्रसव का समय उपस्थित हुआ। प्रसव के फलस्वरूप उसके बालक उत्पन्न हुआ। परितोषा नामक दासी ने बन्धुदत्त से जाकर निवेदन किया। वह सन्तुष्ट हुआ और उस (दासी) के लिए पारितोषिक दिया। उचित कृत्यों को किया। बालक का मास व्यतीत हुआ। पितामह के समान उसका नाम 'धरण' रखा गया। (वह) कुमारावस्था को प्राप्त हुआ (तथा उसने) कलाओं के समूह को ग्रहण किया। वहाँ पर मायारहित अपने स्थान पर रहता हुआ सदाचारी हुआ (युवराज हुआ)।

इसी बीच वह विजय का जीव नारकी उस नरक से निकल कर पुनः संसार में भ्रमण कर बाद के भव में उसी प्रकार का अनुष्ठान करके उसी नगरी में कार्तिक श्रेष्ठी की जया नामक भार्या के गर्भ में स्त्री के रूप में आया। कालक्रम से उसका जन्म हुआ। उसका नाम लक्ष्मी रखा गया। वह यौवन को प्राप्त हुई। कर्म का

---

1. महुयरफुल्ल—ख, 2. परिहरिस—क, 3. तेण—क, 4. पियामहसतियं—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अचिंणीयाए कम्मपरिणामस्स भवियव्वयाए निओएण महाविभूईए परिणीया य णेणं। अत्थि पीई धरणस्स लच्छीए, न उण तीए धरणम्मि। चिंतेइ एसा—अलं मे जीवलोएण, जत्थ धरणो पइदिणं दीसइ त्ति। एवं च विडम्बणापायं विसयसुहमणुहवंताणं अइक्कंतो कोइ कालो।

अन्नया य पयत्ते मयणमहूसवे कीलानिमित्तं पयट्टो रहवरेण धरणो मलयसुंदरं उज्जाणं। पत्तो नयरिदुवारदेसं। एत्थंतरम्मि तओ चेव उज्जाणाओ कीलिऊणागओ रहवरेण नयरिदुवारदेसभायं पंचनंदिसेट्ठिपुत्तो देवनंदि त्ति। मिलिया रहवरा दुवारदेसभाए। वित्थिण्णयाए रहवराणं न दोण्हं पि निग्गमणपवेसभूमी। भणियं च देवनंदिणा—भो भो धरण, ओसारेहि ताव रहवरं, जाव मे पविसइ रहो त्ति। धरणेण भणियं—अइगओ मे रहो, न तीरए वालेउं। ता तुमं चेव ओसारेहि, जाव मे नीसरइ त्ति। देवनंदिणा भणियं—भो भो धरण, अह केण उण अहं भवओ ऊणओ, जेण रहवरं ओसारेमि। धरणेण भणियं—भो भो देवनंदि, तुल्लमेवेयं। एवं च विरुद्धा दुवे वि सेट्ठिपुत्ता। रुद्धो निग्गमपवेसमग्गो नायरयाणं। पवित्थिण्णो जणवाओ। विन्नाओ एस वुत्तंतो

नीयतया कर्मपरिणामस्य भवितव्यताया नियोगेन महाविभूत्या परिणीता च तेन। अस्ति प्रीतिर्धरणस्य लक्ष्म्यां न पुनस्तस्या धरणे। चिन्तयत्येषा—अलं मे जीवलोकेन, यत्र धरणः प्रतिदिनं दृश्यते इति। एवं च विडम्बनाप्रायं विषयसुखमनुभवतोरतिक्रान्तः कोऽपि कालः।

अन्यदा च प्रवृत्ते मदनमहोत्सवे क्रीडानिमित्तं प्रवृत्तो रथवरेण धरणो मलयसुन्दरमुद्यानम्। प्राप्तो नगरीद्वारदेशम्। अत्रान्तरे तत एवोद्यानात् क्रीडित्वा गतो रथवरेण नगरीद्वारदेशभागं पञ्चनन्दिश्रेष्ठिपुत्रो देवनन्दीति। मिलितौ रथवरौ द्वारदेशभागे। विस्तीर्णतया रथवरयोर्न द्वयोरपि निर्गमनप्रवेशभूमिः। भणितं च देवनन्दिना—भो भो धरण! अपसारय तावद् रथवरम्, यावन्मे प्रविशति रथ इति। धरणेन भणितम्—अतिगतो मे रथः, न शक्यते वालयितुम्। ततस्त्वमेवापसारय, यावन्मे निःसरतीति। देवनन्दिना भणितम्—भो भो धरण! अथ केन पुनरहं भवत ऊनः, येन रथवरमपसारयामि। धरणेन भणितम्—भो भो देवनन्दिन्! तुल्यमेवैतत्। एवं च विरोधितौ द्वावपि श्रेष्ठिपुत्रौ। रुद्धो निर्गमप्रवेशमार्गो नागरिकानाम्। प्रविस्तीर्णो जनवादः। विज्ञात एष वृत्तान्तो

परिणाम अचिन्तनीय होने से दैवयोग से बड़े ठाठ-बाट से उसके द्वारा (धरण के द्वारा) विवाही गयी। धरण की लक्ष्मी में प्रीति थी, किन्तु लक्ष्मी की धरण के प्रति प्रीति नहीं थी। यह सोचा करती थी—'मेरे लिए संसार व्यर्थ है जो कि धरण (मुझे) प्रतिदिन दिखाई देता है'—इस प्रकार छल से विषयसुख का अनुभव करते हुए कुछ काल व्यतीत हो गया।

एक बार मदनमहोत्सव आने पर क्रीड़ा के निमित्त धरण श्रेष्ठ रथ से मलयसुन्दर उद्यान में गया। नगर के द्वार पर पहुँचा। इसी समय उद्यान से क्रीड़ा करके पञ्चनन्दी सेठ का पुत्र देवनन्दी नगर के द्वार पर श्रेष्ठ रथ पर सवार होकर आया। नगर के द्वार पर दोनों रथ मिल गये। दोनों रथों की विशालता के कारण दोनों को (एक साथ) निकलने का स्थान न था। देवनन्दी ने कहा—"हे हे धरण! रथ को पीछे लौटाओ ताकि मेरा रथ प्रवेश करे।" धरण ने कहा—"मेरा रथ आगे आ गया है, अतः पीछे नहीं हटाया जा सकता अतः आप ही पीछे हटाइए, ताकि मेरा रथ निकल जाय।" देवनन्दी ने कहा—"हे हे धरण! मैं आपसे किस बात में कम हूँ जो कि रथ को हटाऊँ?" धरण ने कहा—"हे हे देवनन्दी! यह बात तो दोनों के लिए समान है।" इस प्रकार दोनों श्रेष्ठिपुत्र झगड़ पड़े। नागरिकों के आने-जाने का मार्ग रुक गया। अफवाह सब जगह फैल गयी। इस वृत्तान्त को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नयरिमहंतएहिं। आलोचियं च णेहिं। दुवे वि खु महापुरिसपुत्ता, न खलु एत्थ एगस्स वि निरागरणं जुज्जइ त्ति। ता इमं एत्थ पत्तयालं; निब्भच्छिज्जंति एए। जहा 'कीस तुब्भे पुव्वपुरिसज्जिएणं विहवेणं गव्वमुव्वहह। केण तुम्हाण नियभुओवज्जिएणं दविणजाएणं दिन्नं महादाणं। केण वा काराविओ धम्माहिगारो। केण वा अब्भुद्धरिओ विहलवग्गो। केण वा परिओसिया जणणिजणया। ता किमेइणा निरत्थएण बुहजणोवहसणिज्जेण अहोपुरिसियापाएण चेट्ठिएणं। अओ उवसंहरह एयं, ओसारेह नियनियथामाओ चेव पिट्ठओ रहवरे' किमन्नेणं ति। एवमालोचिऊण 'इणमेव तुब्भेहिं ते वत्तव्व' त्ति भणिऊण विसज्जिया वयणविन्नासकुसला धम्मत्थविसारया परिणया वओयत्थाए निवासो उवसमस्स[1] इहपरलोयावायदंसगा सुट्ठिया धम्मपक्खे सयलनयरिजणबहुमया चत्तारि चारिया। गया ते तेसिं समीवं। अब्भुट्ठिया य णेहिं; अणुसासिया चारिएहिं। साहिओ पउराहिप्पाओ। 'अहो सोहणं ति' परितुट्ठो देवनंदी। असोहणं ति लज्जिओ धरणो। भणियं च

नगरीमहद्भिः। आलोचितं च तैः। द्वावपि खलु महापुरुषपुत्रौ, न खल्वत्र एकस्यापि निराकरणं युज्यते इति। तत इदमत्र प्राप्तकालम्, निर्भत्स्येते एतौ, यथा कस्माद् युवां पूर्वपुरुषार्जितेन विभवेन गर्वमुद्वहथः। केन युवयोर्निजभुजोपार्जितेन द्रविणजातेन दत्तं महादानम्, केन वा कारितो धर्माधिकारः, केन वाऽभ्युद्धृतो विह्वलवर्गः, केन वा परितोषितौ जननीजनकौ। ततः किमेतेन निरर्थकेन बुधजनोपहसनीयेनाहोपुरुषिकाप्रायेण चेष्टितेन। अत उपसंहरतैतद्, अपसारयतं निजनिजस्थानादेव पृष्ठतो रथवरौ, किमन्येनेति। एवमालोच्य 'इदमेव युष्माभिस्तौ वक्तव्यौ' इति भणित्वा विसर्जिता वचनविन्यासकुशला धर्मार्थविशारदाः परिणता वयोऽवस्थया निवास उपशमस्य इहपरलोकापायदर्शकाः सुस्थिताः धर्मपक्षे सकलनगरीजनबहुमताश्चत्वारश्चारिकाः (प्रधानपुरुषाः) गतास्ते तयो समीपम्। अभ्युत्थिताश्च ताभ्याम्। अनुशासितौ च चारिकैः। कथितः पौराभिप्रायः। अहो शोभनमिति परितुष्टो देवनन्दो। अशोभनमिति लज्जितो धरणः। भणितं च तेन—भो भो

नगर के बड़े लोगों ने जाना। उन्होंने (इसकी) आलोचना की। दोनों ही महापुरुष के पुत्र थे, अतः किसी एक का निराकरण भी युक्त नहीं है। समय आया, इन दोनों की निन्दा हुई—'किस कारण आप दोनों पूर्वजों द्वारा अर्जित किये हुए धन पर गर्व धारण करते हो ? आप दोनों में से किसने अपने आप अर्जित किये हुए धन का महादान दिया है ? धार्मिक कार्यों की व्यवस्था किसने करायी है ? किसने व्याकुल वर्ग का उद्धार किया है ? किसने माता-पिता को सन्तुष्ट किया है ? अतः विद्वानों द्वारा उपहास के योग्य इस निरर्थक अहंकार-चेष्टा से क्या ? अतः इसकी समाप्ति कीजिए। अपने-अपने स्थान से रथ को पीछे हटाइए, और अधिक क्या ?' इस प्रकार आलोचना कर 'यही आप लोग उनसे कहना'—ऐसा कहकर वचन के प्रयोग में कुशल, धर्म और अर्थ के ज्ञाता, उम्र में बड़े, शान्ति के निवासस्थान, इस लोक और परलोक की हानि को देखकर धर्मपक्ष में भलीभाँति स्थिर, नगर के समस्त लोगों द्वारा बहुत माने हुए प्रधानपुरुषों ने ऐसा कहकर उनको (नागरिकों को) भेजा। वे उन दोनों के समीप गये। वे दोनों के सामने खड़े हुए। प्रमुख लोगों ने उन दोनों को उपदेश दिया। नगर-निवासियों का अभिप्राय कहा। 'अरे यह ठीक है'—इस प्रकार देवनन्दी सन्तुष्ट हुआ। 'अरे यह (हमने) ठीक नहीं किया—इस प्रकार धरण लज्जित हुआ। उसने कहा—"हे हे महानुभावो ! जो आप लोगों ने आज्ञा दी, वह मुझे

1. धम्मस्स—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेण—भो भो महंतया, जं तुब्भे आणवेह, तमवस्सं मए[1] कायव्वं। किं तु पडिबोहिओ अहं तुब्भेहिं, लज्जिओ य अत्तणो चेट्ठिएणं, महई मे ओहावणा, आमगब्भपायं च मन्नेमि अत्ताणयं। ता एवं मे अणुग्गहं करेह। ओसारिज्जंतु एए रहवरा। गच्छामो य अम्हे इओ अज्जेव देसन्तरं। तओ संवच्छरेण जो चेव णे पहूयं[2] दविणजायं विढविऊण इहागच्छिय अहियं सप्पुरिसचेट्ठियं करेस्सइ तस्सेव संतिओ रहो इमीए चेव तेरसीए पविसिस्सइ वा निक्खमिस्सइ वा। चारिएहिं भणियं। अलमेइणा अभिनिवेसेण। धरणेण भणियं—न अन्नहा मे निव्वुई होइ। चारिएहिं भणियं—पउरामेत्थ[3] पमाणं। धरणेण भणियं—निवेएह पउराणं। देवनंदिणा भणियं—जुत्तमेयं, को एत्थ दोसो। तओ निवेइयं पउराणं। बहुमयं च तेसिं। सद्दाविया य तेसिं जणणिजणया। साहिओ वुत्तंतो। बहुमओ य तेसिं पि। तओ काराविया सवहं 'न तुब्भेहिं एएसिं संवाहणा कायव्वा'। सद्दाविया धरणदेवनंदी। समप्पियं[4] पत्तेयं तेसिं पंचदीणारलक्खपमाणं भंडमोल्लं। कयं ववत्थापत्तयं 'जो चेव एएसिं संवच्छरब्भंतरे अहिययरदविणजाएण पोरुसं पयडइस्सइ, तस्सेव संतिएण रहवरेण गंतव्वं, न इयरस्स'। दिन्ना य

महान्तः! यद् यूयमाज्ञापयत तदवश्यं मया कर्तव्यम्। किंतु प्रतिबोधितोऽहं युष्माभिः, लज्जितश्चात्मश्चेष्टितेन, महती मेऽपभावना, आमगर्भप्रायं च मन्ये आत्मानम्। तत एवं मेऽनुग्रहं कुरुत। अपसार्येतामेतौ रथवरौ। गच्छावश्चावामितोऽद्यैव देशान्तरम्। ततः संवत्सरेण य एवावयोः प्रभूतं द्रविणजातमुपार्ज्य इहागत्याधिकं सत्पुरुषचेष्टितं करिष्यति तस्यैव सत्को रथोऽस्यामेव त्रयोदश्यां प्रवेक्ष्यति वा निष्क्रमिष्यते वा। चारिकैर्भणितम्—अलमेतेनाभिनिवेशेन। धरणेन भणितम्—नान्यथा मे निर्वृतिर्भवति। चारिकैर्भणितम्—पौरा अत्र प्रमाणम्। धरणेन भणितम्—निवेदयत पौरेभ्यः। देवनन्दिना भणितम्—युक्तमेतत्, कोऽत्र दोषः। ततो निवेदितं पौरेभ्यः। बहुमतं च तेषाम्। शब्दायितौ च तयोर्जननीजनकौ। कथितो वृत्तान्तः, बहुमतश्च तयोरपि। ततः कारितौ शपथं 'न युष्माभिरेतयोः संवाहना (सहायता) कर्तव्या'। शब्दायितौ धरणदेवनन्दिनौ। समर्पितं प्रत्येकं तयोः पञ्चदीनारलक्षप्रमाणं भाण्डमौल्यम्। कृतं व्यवस्थापत्रम् 'य एवैतयोः संवत्सराभ्यन्तरेऽधिकतरद्रविणजातेन पौरुषं प्रकटयिष्यते तस्यैव सत्केन रथवरेण गन्तव्यम्, नेतरस्य'। दत्तौ

अवश्य पालन करना चाहिए। मैं आप लोगों के द्वारा जगाया गया हूँ तथा मुझे अपने कार्य पर लज्जा उत्पन्न हो रही है, मेरा बड़ा अनादर हुआ। मैं अपने आपको अपरिपक्व मानता हूँ। अतः मुझ पर अनुग्रह कीजिए। इन दोनों रथों को पीछे हटा दीजिए। हम दोनों यहाँ से परदेस को जाते हैं। एक वर्ष में हम दोनों में जो प्रचुर धन का उपार्जन कर यहाँ आकर सत्पुरुषों के योग्य अधिक कार्य करेगा, उसी का ही रथ इसी त्रयोदशी को प्रवेश करेगा, या निकाला जायगा।" मुखियों ने कहा—इस प्रकार की हठ मत करो।" धरण ने कहा—"अन्य प्रकार से मुझे शान्ति नहीं मिल सकती।" मुखियों ने कहा—"इस विषय में नगरनिवासी जन ही प्रमाण हैं।" धरण ने कहा—"नगरनिवासियों से निवेदन करिए।" देवनन्दी ने कहा—"यह उचित है, इसमें क्या हानि है?" इसके बाद पुरवासियों से निवेदन किया। उन्होंने मान लिया। उन दोनों के माता-पिता को बुलाया गया। वृत्तान्त कहा गया। उन्होंने भी बात मान ली। अनन्तर प्रतिज्ञा करायी गयी—आप लोग इन दोनों की सहायता न करें। धरण तथा देवनन्दी को बुलाया गया। उन दोनों में से प्रत्येक को पाँच लाख दीनार प्रमाण का माल दिया गया। व्यवस्थापत्र बनाया गया कि इन दोनों में से जो एक वर्ष के अन्दर अधिक धनोपार्जन कर, पुरुषार्थ प्रकट करेगा, सम्मानपूर्वक उसी का रथ जायगा, दूसरे का नहीं। दोनों के हाथ में पत्र दिया गया।

---

१. मे—क, २. बहुयं—क, ३. पउरमेत्थ—क, ४; आमंतुण उवविट्ठा पणामपुव्वयं इत्यधिकः पाठः क—पुस्तके।

जेहिं सहत्था। मुद्दियं पत्तयं। छूढं पउरभंडारे। निग्गया नियपरिवारपरियरिया महया चडयरेण धरणदेवनंदी; गेण्हिऊण जहोचियं भंडं पयट्टा देसंतरं, एगो उत्तरावहं, अवरो पुव्वदेसं।

एत्थंतरम्मि चिंतियं लच्छीए। दीहाणि देसंतराणि, सुहेण विओओ, दुक्खेण समागमो; ता न याणामो, अंतराले किमहं[1] पाविस्सं ति। अवावाइओ चेव विउत्तो खु एसो। गया य सत्थवाहपुत्ता एगं पयाणयं। पेसियाओ य एएसिं बंधुदत्तपंचनंदीहिं सरीरट्ठिइनिमित्तमालोचिय[2] आउच्छिऊण नयरिमहंतए सपरिवाराओ बहूओ, मिलियाओ य एएसिं। पइदिणपयाणएहिं च गच्छमाणाणं अइक्कंता कइवि दियहा।

अन्नया य परिवहंते सत्थे दिट्ठो धरणेण एगम्मि वणनिउंजे अच्चंतसोमरूवो उप्पायनिवाए करेमाणो विज्जाहरकुमारओ। गओ तस्स समीवं। पुच्छिओ य एसो। भो किंनिमित्तं पुण तुमं असंजायपक्खो विय गरुडपोयओ मुहवियारोवलक्खिज्जमाणनहंगणगमणूसुओ विय उप्पायनिवाए करेसि। आचिक्ख, जइ अकहणिज्जं न होइ। तओ अहो से भावन्नुयया, अहो आगई, अहो वयण-

---

चाभ्यां स्वहस्तौ। मुद्रितं पत्रम्। क्षिप्तं पौरभाण्डागारे। निर्गतौ निजपरिवारपरिवृतौ महताऽऽडम्बरेण धरणदेवनन्दिनौ, गृहीत्वा यथोचितं भाण्डं प्रवृत्तौ देशान्तरम्। एक उत्तरापथम्, अपरः पूर्वदेशम्।

अत्रान्तरे चिन्तितं लक्ष्म्या—दीर्घाणि देशान्तराणि, सुखेन वियोगः, दुःखेन समागमः, ततो न जानामि, अन्तराले किमहं प्राप्स्यामि इति। अव्यापादित एव वियुक्तः खल्वेषः। गतौ च सार्थवाहपुत्रौ एकं प्रयाणकम्। प्रेषिते चैतयोर्बन्धुदत्तपञ्चनन्दिभ्यां शरीरस्थितिनिमित्तमालोच्य आपृच्छ्य नगरीमहतः सपरिवारे वध्वौ, मिलिते चैतयोः। प्रतिदिनप्रयाणकैश्च गच्छतोरतिक्रान्ताः कत्यपि दिवसाः।

अन्यदा च परिवहति सार्थे दृष्टो धरणेन एकस्मिन् वननिकुञ्जेऽत्यन्तसौम्यरूप उत्पातनिपातान् कुर्वन् विद्याधरकुमारः। गतस्तस्य समीपम्। पृष्टश्चैषः। भोः किंनिमित्तं पुनस्त्वमसंजातपक्ष इव गरुडपोतको मुखविकारोपलक्ष्यमाणनभोङ्गणगमनोत्सुक इव उत्पातनिपातान् करोसि। आचक्ष्व यद्यकथनीयं न भवति। 'ततोऽहो तस्य भावज्ञता, अहो आकृतिः, अहो वचन-

---

पत्र को मुद्रित किया गया। (इसे) नगर के भाण्डागार (भण्डार) में डाला गया। अपने परिवार से घिरे हुए धरण और देवनन्दी बड़े ठाठ-बाट से निकले, यथोचित माल लेकर दूसरे देश को जाने को प्रवृत्त हुए। एक उत्तरापथ की ओर गया, दूसरा पूर्वदेश की ओर गया।

इसी बीच लक्ष्मी ने सोचा—देशान्तर बड़े-बड़े होते हैं, सुख से वियोग होता है, दुःख से समागम होता है अतः नहीं जानती हूँ, बीच में मैं क्या पाऊँगी? यह बिना मारे ही वियुक्त हो गया। व्यापारियों के दोनों पुत्र एक यात्रा पर गये। बन्धुदत्त और पंचनन्दी ने इन दोनों की औरतों को, शरीर की रक्षा के निमित्त सोच-विचार कर तथा नागरिक महापुरुषों से पूछकर परिवार सहित भेज दिया और वे जाकर उनसे मिलीं।

काफिले को ले जाते हुए धरण ने वनकुंज में उछलते गिरते हुए एक अत्यन्त सौम्यरूपवाले विद्याधर कुमार को देखा। (वह) उसके समीप में गया और उससे पूछा—"आप किस कारण से जिसके पंख उत्पन्न नहीं हुए हैं ऐसे गरुड़ के बच्चे के समान, जिसके कि मुख से आकाश में उड़ने की उत्सुकता प्रकट हो रही है, उछल-कूद रहे हैं, यदि अकथनीय न हो तो कहो।" अनन्तर 'अहो इसके भावों की जानकारी, अहो आकृति, अहो वचनों

---

1. किमेत्थं पाविस्सई त्ति —ङ, २. मालोचिऊण पुच्छिऊण —क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विन्नासो' त्ति चिंतिऊण भणियं विज्जाहरेण—भो, सुण ! अहं खु वेयड्ढपव्वए अमरपुरनिवासी हेमकुंडलो नाम विज्जाहरकुमारो अणब्भत्थविज्जो सयनिओयपरो तत्थेव चिट्ठामि, जाव समागओ तायस्स परममित्तो विज्जुमाली नाम विज्जाहरो। भणिओ य ताएण—कुओ तुमं, कीस वा विमण-दुम्मणो दीससि[1]। तेण भणियं—विंझाओ अहं। विमणदुम्मणत्त पुण इमं कारणं। दिट्ठं मए विंझाओ इहागच्छमाणेण उज्जेणीए निव्वेयकारणं[2]। ताएण भणियं—कीइसं निव्वेयकारणं। विज्जुमालिणा भणियं—सुण !

अत्थि उज्जेणीए सिरिप्पहो नाम राया। तस्स रूविणि[3] व्व कुसुमाउहवेजयंती जयसिरी नाम धूया। सा य पत्थेमाणस्स वि न दिन्ना कोंकणरायपुत्तस्स सिसुवालस्स[4], दिन्ना य इमेण[5] वच्छेसर-सुयस्स परोवयारकरणेक्कलालसस्स सिरिविजयस्स। कुविओ सिसुवालो। आगओ जयसिरिविवाह-निमित्तं सिरिविजओ। तओ पारद्धे महाविभूईए विवाहमहूसवे निग्गया मयणवंदणनिमित्तं[6] समालोचिय विहाएणमवक्खंदं दाऊणं अवहरिया सिसुवालेण जयसिरी। उट्ठाइओ[7] कलयलो।

विन्यासः' इति चिन्तयित्वा भणितं विद्याधरेण—भोः ! शृणु। अहं खलु वैताढ्यपर्वतेऽमरपुर-निवासी हेमकुण्डलो नाम विद्याधरकुमारोऽनभ्यस्तविद्यः स्वनियोगपरस्तत्रैव तिष्ठामि, यावत् समागतस्तातस्य परममित्रं विद्युन्माली नाम विद्याधरः। भणितश्च तातेन—कुतस्त्वम्, कस्माद् वा विमनस्कदुर्मनस्को दृश्यसे। तेन भणितम्—विन्ध्यादहम्, विमनोदुर्मनस्त्वे पुनरिदं कारणम्। दृष्टं मया विन्ध्यादिहागच्छता उज्जयिन्यां निर्वेदकारणम्। तातेन भणितम्—कीदृशं निर्वेदकारणम्। विद्युन्मालिना भणितम्—शृणु !

अस्त्युज्जयिन्यां श्रीप्रभो नाम राजा। तस्य रूपिणीव कुसुमायुधवैजयन्ती जयश्रीर्नाम दुहिता। सा च प्रार्थयमानस्यापि न दत्ता कोङ्कणराजपुत्रस्य शिशुपालस्य, दत्ताऽनेन वत्सेश्वरसुतस्य परोप-कारकरणैकलालसस्य श्रीविजयस्य। कुपितः शिशुपालः। आगतो जयश्रीविवाहनिमित्तं श्रीविजयः। ततः प्रारब्धे महाविभूत्या विवाहमहोत्सवे निर्गता मदनवन्दननिमित्तं समालोच्य विहायसाऽवस्कन्दं दत्त्वाऽपहृता शिशुपालेन जयश्रीः। उत्थितः कलकलः। ज्ञातो वृत्तान्तः श्रीविजयेन। लग्नो मार्गतः।

का विन्यास !'—ऐसा सोचकर विद्याधर ने कहा—"आप सुनिए, मैं वैताढ्य पर्वत पर स्थित अमरपुर का निवासी हेमकुण्डल नामक विद्याधर कुमार, जिसने विद्या का अभ्यास नहीं किया है, अपने कार्य में लगा हुआ तब तक ठहरूँगा जब तक पिता जी के परममित्र विद्युन्माली विद्याधर आते हैं।" पिताजी ने कहा—तुम कहाँ से आये हो खिन्न और उदास क्यों दिखाई दे रहे हो ?" उसने कहा—"मैं विन्ध्य से आया हूँ, खिन्न और उदास होने का यह कारण है—मैंने विन्ध्य से यहाँ आते हुए उज्जयिनी में वैराग्य का कारण देखा।" पिताजी ने कहा—"कैसा वैराग्य का कारण ?" विद्युन्माली ने कहा—"सुनिए !

उज्जयिनी में 'श्रीप्रभ' नामका राजा है। उसकी 'जयश्री' नाम की पुत्री है जो रूप में मानो कामदेव की पताका है। वह प्रार्थना किये जाने पर भी 'कोङ्कणराज' के पुत्र 'शिशुपाल' को नहीं दी गई, उसे वत्सेश्वर के पुत्र 'श्रीविजय' को दिया गया, जो कि परोपकार करने की एकमात्र लालसा वाला है। शिशुपाल कुपित हो गया। जयश्री के विवाह के निमित्त श्रीविजय आया। पश्चात् भाग्य से महान् विभूति से युक्त होकर विवाह महोत्सव में काम की वन्दना के निमित्त निकली हुई जयश्री को देखकर आकाशमार्ग से आक्रमणकर शिशुपाल ने जयश्री का हरण कर लिया। कोलाहल हो गया। श्रीविजय ने वृत्तान्त जाना। (उसने) शीघ्र ही (उसे) खोज

१. संवुत्तो—क, २. महानिव्वेय—ख; ३. रूविव्व—क, ख। ४. सिसुपालस्स—ख, ५. इमेणसिरिप्पहनरवइणा—क, ६. मयणपूया निमित्तं, ७. उद्धाइओ—ख।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुणिओ वुत्तंतो सिरविजएणं। लग्गो मग्गओ। समासाइओ सिसुवालो। आवडियमाओहणं। गाढपहारीकएणं च जेऊण सिसुवालं नियत्तिया जयसिरी। पहारगरुययाए य सो महाणुभावो पाणसंसए वट्टए। सा वि रायधूया 'न अहमेयम्मि[1] अकयपाणभोयणे पाणवित्तिं करेमि' त्ति वामकरयलपणामियवयणपंकया अणाचिक्खणीयं अवत्थंतरमणुहवंती दुक्खेण चिट्ठइ॥ एयं मे एत्थ कारणं। ताएण भणियं। ईइसो एस संसारो। खेल्लणयभूया[2] खु एत्थ कम्मपरिणईए पाणिणो। ता अलं निव्वेएण। तओ मए चिंतियं—साहियं मे कल्लं चेव हिमवंतपव्वयगयस्स दरिहरुग्गयं महोसहिमवलोइऊण गंधव्वरइनामेण गंधव्वकुमारेण मम वयंसएण। जहा भो हेमकुंडल, सच्चो खु एस लोयवाओ, जं अचिंतो हि मणिमंतोसहीणं पभावो त्ति, जओ एयाए ओसहीए एसो पहावो, जेण विदारियट्ठी वि खग्गाइपहारो[3] इमीए पक्खालणोयएणं पि पणट्ठवेयणं तक्खणा चेव रुज्झइ त्ति। दिट्ठपच्चया य मए[4] सा। ता गच्छामि अहयं हिमवंतं गेण्हिऊण तयं ओसहिं उवणेमि सिरिविजयस्स। तओ सुमरिऊण कहंचि गयणगामिणिं विज्जं गओ हिमवंतपव्वयं। गहिया ओसही। ओइण्णो

समासादितः शिशुपालः। आपतितमायोधनम्। गाढप्रहारीकृतेन च जित्वा शिशुपालं निर्वर्तिता जयश्रीः। प्रहारगुरुकतया च स महानुभावः प्राणसंशये वर्तते। साऽपि राजदुहिता 'नाहमेतस्मिन्नकृतपानभोजने प्राणवृत्तिं करोमि' इति वामकरतलार्पितवदनपङ्कजाऽनाख्यानीयमवस्थान्तरमनुभवन्ती दुःखेन तिष्ठति। एतन्मेऽत्र कारणम्। तातेन भणितम्—ईदृश एष संसारः। खेलनकभूताः खल्वत्र कर्मपरिणत्याः प्राणिनः। ततोऽलं निर्वेदेन। ततो मया चिन्तितम्—कथितं मे कल्ये एव हिमवत्पर्वतगतस्य दरीगृहोद्गतां महौषधिमवलोक्य गान्धर्वरतिनाम्ना गान्धर्वकुमारेण मम वयस्येन। यथा भो हेमकुण्डल! सत्यः खल्वेष लोकवादः, यदचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधीनां प्रभाव इति। यत एतस्या ओषध्या एष प्रभावः, येन विदारितास्थिरपि खड्गादिप्रहारोऽस्याः प्रक्षालनोदकेनापि प्रनष्टवेदनं तत्क्षणादेव रुह्यते इति। दृष्टप्रत्यया च मया सा। ततो गच्छाम्यहं हिमवन्तं गृहीत्वा तामोषधिमुपनयामि श्रीविजयाय। ततः स्मृत्वा कथञ्चिद् गगनगामिनीं विद्यां

लिया। शिशुपाल प्राप्त हुआ। (वह) योद्धा (भी) आया। (उसने) गाढ़ प्रहार से युक्त होकर शिशुपाल को जीतकर जयश्री को मुक्त करा लिया। गाढ़ प्रहार के कारण उस महानुभाव के प्राण संशय में हैं। वह राजपुत्री भी—'यह जब तक भोजन-पान नहीं करेंगे, तब तक मैं अन्नपान ग्रहण नहीं करूँगी'—इस प्रकार बायीं हथेली पर मुखकमल रखे हुए अनिर्वचनीय अवस्था का अनुभव करती हुई दुःख से बैठी है—यही मेरे वैराग्य का कारण है।" पिताजी ने कहा—"यह संसार ऐसा ही है। प्राणियों की कर्मपरिणति खिलौने के समान है, अतः दुःखी मत होओ।" तब मैंने सोचा—"गन्धर्वरति नामक मेरे प्रिय मित्र गान्धर्वकुमार से हिमालय पर्वत की गुफा से निकली हुई औषधि को देखकर कल ही कहा था—अरे हेममण्डल! यह लोककथन बिलकुल सत्य है कि मणि, मन्त्र और औषधियों का प्रभाव अचिन्त्य होता है। इस औषधि का यह प्रभाव है कि तलवार आदि के प्रहार से टूटी हुई भी हड्डी इसके धोने से बचे हुए जल से उसी क्षण जुड़ जाती है और वेदना भी नष्ट हो जाती है। मैंने इस विश्वास को देखा है। अतः मैं हिमालय को जाता हूँ और इस औषधि को लेकर श्रीविजय के लिए लाता हूँ। अनन्तर कोई आकाशचारिणी विद्या का स्मरण कर हिमालय पर्वत पर गया। औषधि ग्रहण की। हिमालय पर्वत से उतरा। 'श्रीविजय

१. नाहमेयम्मि—क, २. खेलणय—क, ३. खग्गाइपहारेण—क, ४. मम एसा—ख।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिमवंताओ। 'मा सिरिविजयस्स अच्चाहियं भविस्सइ' त्ति पडिनियत्तो वेएण। पत्तो एयं निउज्जं, खीणयाए वेयागमणेण वीसमणनिमित्तं ओइण्णो इहइं, कयं चलणसोयं उवविट्ठो कुरवयपायवसमीवे, ठिओ मुहुत्तमेत्तं, उच्चलिओ य उज्जेणिं। सुमरिया गयणगामिणी विज्जा जाव अहिणवगहीयत्तणेण[1] गमणसंभमेण य विसुमरियं मे पयं। तओ सा न वहइ त्ति उप्पायनिवाए करेमि। धरणेण भणियं—भो एवं ववत्थिए को इह उवाओ। हेमकुंडलेण भणियं—नत्थि उवाओ। अओ चेव रायउत्तविणास संकाए उत्तम्मइ मे हिययं, पणस्सइ मे मई। सव्वहा न अप्पपुण्णाणं समीहियं संपज्जइ त्ति दढं विसण्णो म्हि। धरणेण भणियं—भो अत्थि एस कप्पो, जं सा अन्नस्स[2] समक्खं पढिज्जइ। हेमकुंडलेण भणियं—'अत्थि'। धरणेण भणियं—जइ एवं, ता पढ; कयाइ अहं ते पयं लहामि। तओ हेमकुंडलेण 'नत्थि अविसओ पुरिससामत्थस्स' त्ति चिंतिऊण सामन्नसिद्धिं काऊण पढिया विज्जा। पयाणुसारित्तणेण लद्धं पयं धरणेण। साहियं हेमकुंडलस्स। परितुट्ठो एसो। भणियं च णेण—भो भो महापुरिस, दिन्नं तए जीवियं मम समीहियसंपायणेण रायउत्तस्स, ता किं ते करेमि। धरणेण

गतो हिमवत्पर्वतम्। गृहीतौषधिः। अवतीर्णो हिमवतः। 'मा श्रीविजयस्यात्याहितं भविष्यति' इति प्रतिनिवृत्तो वेगेन। प्राप्त एतद् निकुञ्जम्। क्षीणतया वेगागमनेन विश्रमणनिमित्तमवतीर्ण इह। कृतं चरणशौचम्, उपविष्टः कुरवकपादपसमीपे, स्थितः मुहूर्तमात्रम्, उच्चलितश्चोज्जयिनीम्। स्मृता गगनगामिनी विद्या, यावदभिनवगृहीतत्वेन गगनसम्भ्रमेण च विस्मृतं मया पदं। ततः सा न वहतीति उत्पातनिपातान् करोमि। धरणेन भणितम्—भो एवं व्यवस्थिते क इहोपायः। हेमकुण्डलेन भणितम्—नास्त्युपायः। अत एव राजपुत्रविनाशशङ्कया उत्ताम्यति मे हृदयम्, प्रणश्यति मे मतिः। सर्वथा नाल्पपुण्यानां समीहितं सम्पद्यते इति दृढं विषण्णोऽस्मि। धरणेन भणितम्—भो अस्त्येष कल्पः, यत्साऽन्यस्य समक्षं पठ्यते। हेमकुण्डलेन भणितम्—'अस्ति'। धरणेन भणितम्—यद्येवं ततः पठ, कदाचिदहं तव पदं लभे। ततो हेमकुण्डलेन 'नास्त्यविषयः पुरुषसामर्थ्यस्य' इति चिन्तयित्वा सामान्यसिद्धिं कृत्वा पठिता विद्या। पदानुसारित्वेन लब्धं पदं धरणेन। कथितं हेमकुण्डलाय। परितुष्ट एषः। भणितं च तेन—भो भो महापुरुष! दत्तं त्वया जीवितं मम समीहित-

---

का कोई अनिष्ट न हो' अतः वेग से लौटा। इस निकुंज में आया। शीघ्र आने के कारण थक जाने से यहाँ उतर पड़ा। पैरों को धोया। कुरबक वृक्ष के समीप बैठ गया। क्षणभर बैठा रहा। (बाद में) उज्जयिनी के लिए चल पड़ा। आकाशगामिनी विद्या का स्मरण किया। नये रूप में ग्रहण करने तथा आकाश में चलने की घबराहट के कारण मैं एक पद भूल गया। अतः वह चल नहीं रही है, इस कारण ऊपर जाता हूँ और नीचे आता हूँ। धरण ने कहा—"अरे, ऐसी स्थिति में अब क्या उपाय है?" हेमकुण्डल ने कहा—"उपाय नहीं है अतः राजपुत्र के विनाश की आशंका से मेरा हृदय आकुल-व्याकुल हो रहा है, मेरी बुद्धि नष्ट हो रही है। अल्प पुण्य वालों का इष्ट कार्य सब प्रकार से सम्पन्न नहीं होता है—ऐसा सोचकर मैं बहुत अधिक दुःखी हूँ।" धरण ने कहा—उपाय है। क्या वह दूसरे के सामने पढ़ा जाता है?" हेमकुण्डल ने कहा—"पढ़ा जाता है।" धरण ने कहा—"यदि ऐसा है तो पढ़ो, कदाचित् मैं तुम्हारे पद को ढूँढ निकालूँ।" तब हेमकुण्डल ने 'पुरुष की सामर्थ्य के बाहर की कोई बात नहीं है'—ऐसा सोचकर सामान्य सिद्धिकर विद्या को पढ़ा। पद के अनुसार धरण को पद मिल गया। (उसने) हेमकुण्डल से कहा। वह (हेमकुण्डल) सन्तुष्ट हुआ। उसने कहा—"हे हे महापुरुष! मेरे योग्य कार्य का

---

१. गहीयत्तणेण—क, २. अन्नाणं पि—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भणियं—कयं ते करणिज्जं; गच्छ समीहियं संपाडेहि। तओ हेमकुंडलेण 'अहो से महाणुभावय' त्ति चिंतिय परत्थं करेज्जासि त्ति भणिऊण दिन्नं ओसहिवलयखंडं। पणयभंगभीरुत्तणेण गहियं च णेण। गओ विज्जाहरो, आगओ च धरणो नियसत्थं। अइक्कंता कइवि दियहा॥

अन्नया य गिरिनईतीरम्मि समावासिए सत्थे गवलजलयवण्णा वेल्लिनिबद्धुद्धकेसहारा वक्कलद्धनिवसणा कणियकोडंडवावडग्गहत्था सुणयवंद्रसंगया सदुक्खं रुयमाणा दिट्ठा धरणेण नाइदूरगामिणा सबरजुवाण त्ति। सद्दाविया णेण पुच्छिया य। भो किंनिमित्तं रुयह त्ति। तेहिं भणियं—अज्ज, अत्थि अम्हाणं कालसेणो नाम पल्लीवई।

जस्स इह विम्हियाओ सत्तिनियाणाणि चिंतयंतीओ।
न समल्लियंति दुग्गं परचक्कभए वि वाहीओ॥४८३॥
एक्कसरघायलद्धा जस्स य करिकुंभदारणेक्करसा।
न वि विहलंतसरीरा गच्छंति पयं पि केसरिणो॥४८४॥

सम्पादनेन राजपुत्राय, ततः किं ते करोमि। धरणेन भणितम्—कृतं त्वया करणीयम्, गच्छ समीहितं सम्पादय। ततो हेमकुण्डलेन 'अहो तस्य महानुभावता' इति चिन्तयित्वा 'परार्थं कुर्याः' इति भणित्वा दत्तमोषधिवलयखण्डम्। प्रणयभङ्गभीरुत्वेन गृहीतं च तेन। गतो विद्याधरः, आगतश्च धरणो निजसार्थम्। अतिक्रान्ताः कत्यपि दिवसाः।

अन्यदा च गिरिनदीतीरे समावासिते सार्थे गवलजलदवर्णा वल्लीनिबद्धोर्ध्वकेशहारा वल्कलार्धनिवसनाः कणिङ्ककोदण्डव्यापृताग्रहस्ताः शुनकवन्द्रसङ्गताः सदुःखं रुदन्तो दृष्टा धरणेन नातिदूरगामिना शवरयुवान इति। शब्दायितास्तेन पृष्टाश्च। भोः किंनिमित्तं रुदितेति। तैर्भणितम्—आर्य! अस्त्यस्माकं कालसेनो नाम पल्लिपतिः।

यस्येह विस्मिता शक्तिनिदानानि चिन्तयन्त्यः।
न समालीयन्ते समाश्रयन्ति) दुर्गं परचक्रभयेऽपि व्याध्यः (व्याधपत्न्यः)॥४८३॥
एकशरघातलब्धा (प्राप्ता) यस्य च करिकुम्भदारणैकरसाः।
नापि विह्वलच्छरीरा गच्छन्ति पदमपि केसरिणः॥४८४॥

सम्पादन कर तुमने राजपुत्र को जीवित कर दिया, अतः तुम्हारा क्या (उपकार) करूँ!" धरण ने कहा—आपने करने योग्य कार्य को कर दिया, जाओ, इष्ट कार्य को पूरा करो।" तब हेमकुण्डल ने 'अहो इसकी महानुभावता'—ऐसा सोचकर 'परोपकार करना चाहिए'—ऐसा कहकर औषधि का टुकड़ा दे दिया। प्रार्थना के भङ्ग होने के डर से उसने ग्रहण कर लिया। विद्याधर गया, धरण अपने डेरे पर आया। कुछ दिन बीत गये।

दूसरी बार पर्वतीय नदी के किनारे काफिले के पहुँचने पर नीले मेघ के समान वर्णवाली, लता से ऊँचा जूड़ा बाँधे हुए, पेड़ की छाल का आधा वस्त्र पहिने हुए, धनुष की प्रत्यंचा में हथेली को लगाये हुए, कुत्तों के झुण्ड से युक्त, दुःखसहित रोते हुए शबर युवकों को धरण ने देखा। उसने (धरण ने) उन्हें बुलाया और पूछा—किस कारण से रो रहे हो?" उन्होंने कहा—"आर्य! मेरा कालसेन नामक भीलों का स्वामी था।

जिसकी शक्ति और श्रम का विचार करते हुए व्याध की पत्नियाँ शत्रुओं का भय उपस्थित होने पर भी दुर्ग का आश्रय नहीं लेती हैं। एक बाण के मारने से हाथी का गण्डस्थल प्राप्त करना ही जिसका एक रस है और विह्वलशरीर वाले सिंह भी (जिसके भय के कारण) थोड़े से भी आगे नहीं बढ़ते हैं॥४८३-४८४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सो खु केसरी आगओ त्ति आयण्णिय घेत्तूण कोदंडं[1] कण्णियसरं च एगागी चेव निग्गओ पल्लीओ। न दिट्ठो य णेण नग्गोहपायवंतरिओ केसरी। गओ तस्स समीवं। गहिओ य णेण पट्ठिदेसे। वावाइओ तेण वलिऊण कट्टारएण[2] केसरी। तेण वि य से तोडियं उत्तिमंगखंडं। तओ सो 'नत्थि मे जीवियं'[3] ति मन्नमाणो जलणपवेसं काउमारद्धो। मुणिओ से एस वुत्तंतो गेहिणीए। तओ सा वि आवन्नसत्ता तं चेव काउं ववसिया, वारिया वि पल्लीवइणा[4] न विरमइ त्ति। तओ तेण पेसिया अम्हे तीए संधारणत्थं पिउणो से आणयणनिमित्तं। वीररसपहाणो खु सो सयणवच्छलो य। ता न याणामो, किं पडिवज्जिस्सइ त्ति। महादुक्खपीडिया असमत्था य धरिउं इमं सोयाइरेयं अविज्जमाणो-वाया य पडिवज्जिऊण इत्थियाभावं केवलं रुयम्ह। धरणेण भणियं—भद्दा, अलं सोएण। दंसेहि मे तं पल्लीवइं। कयाइ जीवावेमि अहयं। तओ चलणेसु निवडिऊण हरिसवसुप्फुल्लोय[5]णेहिं जंपियं सवरेहिं—अज्ज, एवं तुमं देवावयारो विय आगईए। ता तुमं चेव समत्थो सि देवं समासासेउं। अन्नं च। जइ अम्हेसु अणुग्गहबुद्धी अज्जस्स, ता तुरियं गच्छउ अज्जो; मा तस्स महाणुभावस्स अच्चाहियं

स खलु केसरी आगत इत्याकर्ण्य गृहीत्वा कोदण्डं कर्णिकशरं च एकाक्येव निर्गतः पल्लितः। न दृष्टश्चानेन न्यग्रोधपादपान्तरितः केसरी। गतस्तस्य समीपम्। गृहीतश्च तेन पृष्ठदेशे। व्यापादितस्तेन वलित्वा कट्टारकेन केसरी। तेनापि च तस्य तोडितमुत्तमाङ्गखण्डम्। ततः स 'नास्ति मे जीवितम्' इति मन्यमानो ज्वलनप्रवेशं कर्तुमारब्धः। ज्ञातस्तस्यैष वृत्तान्तो गेहिन्या। ततः साऽपि आपन्नसत्त्वा तमेव कर्तुं व्यवसिता, वारिताऽपि पल्लिपतिना न विरमतीति। ततस्तेन प्रेषिता वयं तस्याः संधारणार्थं पितुस्तस्या आनयननिमित्तम्। वीररसप्रधानः खलु स स्वजनवत्सलश्च। ततो न जानीमः किं प्रतिपत्स्यत इति। महादुःखपीडिता असमर्थाश्च धर्तुमिमं शोकातिरेकम्, अविद्य-मानोपायाश्च प्रतिपद्य स्त्रीभावं केवलं रुदिमः। धरणेन भणितम्— भद्रा ! अलं शोकेन। दर्शय मे तं पल्लीपतिम्, कदाचिज्जीवयाम्यहम्। ततश्चरणयोर्निपत्य हर्षवशोत्फुल्ललोचनैर्जल्पितं शबरैः— आर्य ! एवं त्वं देवावतार इवाकृत्या। ततस्त्वमेव समर्थोऽसि देवं समाश्वासितुम्। अन्यच्च, यद्यस्मास्वनुग्रहबुद्धिरार्यस्य ततस्त्वरितं गच्छत्वार्यः, मा तस्य महानुभावस्यात्याहितं भवेत्। ततो-

'वह सिंह आ गया'—ऐसा सुनकर कर्णिकशर और धनुष को हाथ में लेकर अकेला ही भीलों की बस्ती से निकल पड़ा। उसने वटवृक्ष के पीछे छिपे हुए सिंह को नहीं देखा। वह उसके समीप गया। उसने पीछे से उसे पकड़ लिया। उसने घूमकर कटार से सिंह को मार डाला। उस सिंह ने भी उसके शिर के एक भाग को तोड़ दिया। इसके बाद उसने 'मेरी आयु शेष नहीं है' ऐसा मानकर अग्निप्रवेश करने की तैयारी की। उसके इस वृत्तान्त को उसकी पत्नी ने भी जाना। तब उसने गर्भिणी होते हुए भी वही करने का निश्चय किया। भीलों के स्वामी द्वारा रोके जाने पर भी वह नहीं रुक रही थी। तब उसको ढाढस बँधाने के लिए उसने हमें उसके पिता को लाने के निमित्त भेजा है। वह वीररस प्रधान तथा अपने लोगों के प्रति स्नेहयुक्त है। अतः नहीं जानते हैं वह किस अवस्था को प्राप्त हुआ होगा। अत्यधिक दुःख से पीड़ित और असमर्थ होकर शोक के इस आधिक्य को धारण करने में असमर्थ होकर और कोई उपाय न होने से स्त्री स्वभाव के अनुसार केवल रो पड़े। धरण ने कहा—"शोक मत करो। उस भीलों के स्वामी को मुझे दिखाओ, कदाचित् मैं उसे जीवित कर दूँ।" अनन्तर चरणों में पड़ हर्ष के वश विकसित नेत्रों वाले शबरों ने कहा—"आर्य ! इस प्रकार आकृति से (आप) देवताओं के अवतार हो अतः मेरे स्वामी को जिलाने में आप ही समर्थ हो। आर्य तुरन्त चलिए, उन महानुभाव का कोई अनिष्ट न हो।"

१. कोडंडं २. छुरियाए—क, ३. जीयं—क, ४. पल्लि—क, ५. —लोयणं पयंपियं—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवे। तओ घेत्तूण विज्जाहरविइण्णं ओसहिवलयं आरुहिय वेसरं कइवयनियपुरिसपरिवारिओ तुरियतुरियं गओ सत्थवाहपुत्तो। दिट्ठो य तेणं नग्गोहपायवतलम्मि चियगासन्नसंठिओ रुहिरधारापरिसित्तगत्तो सिणेहसारमसद्दं च रोवमाणीए[1] जायाए संगओ कालसेणो। निवेइओ से वुत्तंतो सवरजुवाणएण। अब्भुट्ठमाणो य मुच्छानिमीलियलोयणो निवडिओ धरणिवट्ठे। धरणेण भणियं। उदयमुदयं ति। तओ आणीयमुदयं नलिणिपत्तेणं[2]। छूढमोसहिवलयं[3] दाऊणमुत्तिमंगखंडं। सित्तो य णेण[4], जाव अचिंतयाए ओसहिपहावस्स पुव्वरूवाओ वि अहिययरं दंसणीओ अलक्खिज्जमाणवणविभाओ उट्ठिओ कालसेणो। तुट्ठा य से धरिणी सह परियणेण। चलणेसु निवडिऊण भणियं च णेण—अज्ज, पिययमाजीयरक्खणेणं संपाडियमहापओयणा तुह संतिया पाणा; किमेत्थ अवरं भणीयइ। धरणेण भणियं—सव्वसाहारणा चेव महापुरिस, पाणा हवंति। किमेत्थ अहियं। कालसेणेण भणियं—ता आइसउ अज्जो, जं मए कायव्वं ति। धरणेण भणियं—महापुरिसो खु तुमं; ता किं अवरं

गृहीत्वा विद्याधरवितीर्णमोषधिवलयमारुह्य वेसरं कतिपयनिजपुरुषपरिवृतस्त्वरितत्वरितं गतः सार्थवाहपुत्रः। दृष्टस्तेन न्यग्रोधपादपतले चितासन्नसंस्थितो रुधिरधारापरिषिक्तगात्रः स्नेहसारमशब्दं च रुदत्या जायया सङ्गतः कालसेनः। निविदितस्तस्य वृत्तान्तः शबरयूना। अभ्युत्तिष्ठंश्च मूर्च्छानिमीलितलोचनो निपतितो धरणीपृष्ठे। धरणेन भणितत्—'उदकमुदकमिति'। तत आनीतमुदकं नलिनीपत्रेण। क्षिप्तमोषधिवलयं दत्त्वोत्तमाङ्गखण्डम्। सिक्तस्तेन, यावदचिन्त्यतया ओषधिप्रभावस्य पूर्वरूपादप्यधिकतरं दर्शनीयोऽलक्ष्यमाणव्रणविभाग उत्थितः कालसेनः। तुष्टा च तस्य गृहिणी सह परिजनेन। चरणयोर्निपत्य भणितं च तेन—आर्य! प्रियतमाजीवितरक्षणेन सम्पादितमहाप्रयोजनास्तव सत्काः प्राणाः, किमत्रापरं भण्यते। धरणेन भणितम्—सर्वसाधारणा एव महापुरुष! प्राणा भवन्ति, किमत्राधिकम्। कालसेनेन भणितम्—तत आदिशत्वार्यः, यन्मया कर्तव्यमिति। धरणेन भणितम्—महापुरुषः खलु त्वम्, ततः किमपरं भण्यते, तथापि सत्त्वेषु दया।

अनन्तर विद्याधर के द्वारा दी गयी औषधिसमूह को लेकर खच्चर पर चढ़कर कतिपय निजपुरुषों से घिरा हुआ सार्थवाह-पुत्र शीघ्रातिशीघ्र गया। उसने वटवृक्ष के नीचे चिता के समीप स्थित कालसेन को देखा, जिसके कि शरीर से खून की धारा बह रही थी तथा स्नेह से भरी हुई, बिना शब्द के रोती हुई पत्नी जिसके साथ थी। शबर युवक ने उसका वृत्तान्त निवेदन किया। मूर्च्छा के कारण नेत्र ब द किये हुए वह उठा और पृथ्वी पर गिर पड़ा। धरण ने कहा 'पानी (लाओ) पानी'। अनन्तर कमलिनी के पत्ते (दोना) में पानी लाया गया। दोना में औषधिसमूह को डालकर सिरपर लगाया गया। उससे (औषधि के पानी से) सींचा। औषधि के अचिन्तनीय प्रभाव से पहले से भी अधिक दर्शनीय होकर, जिसके घाव का भाग दिखाई नहीं पड़ रहा है, ऐसा कालसेन उठ खड़ा हुआ। उसकी पत्नी परिजनों के साथ सन्तुष्ट हुई। चरणों में गिरकर उसने (कालसेन ने) कहा—"आर्य! प्रियतमा के जीवन की रक्षा करने से जिसने महान् प्रयोजन की सिद्धि की है ऐसे आपके सत्कार में मेरे प्राण (उपस्थित) हैं और क्या कहा जाय।" धरण ने कहा—"हे महापुरुष! प्राण तो सभी को आवश्यक होते हैं और अधिक क्या कहूँ?" कालसेन ने कहा—"तो आर्य! मेरे योग्य कर्त्तव्य का आदेश दें।" धरण ने कहा—"तुम पुरुष हो अतः क्या कहें? तथापि प्राणियों पर दया करनी चाहिए।" कालसेन ने कहा—"आर्य के वचनों के अनुसार

---

१. रोयमाणीए—क, २. पोइणिपत्तेहिं—क, ३. छोढूणमो—क, ४. णेणमोसहिधोवउदएणं—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भणोयइ; तहा वि सत्तेसु दया। कालसेणेण भणियं—परिवज्जिया जावज्जीवमेव मए अज्जवयणेण पारद्धी। धरणेण भणियं—कयं मे करणिज्जं। तओ गओ सत्थवाहपुत्तो नियसत्थं।

अइक्कंता कइवि दियहा अणवरयपयाणएणं[1]। दिट्ठो य णेण पक्खसंधीए उववासट्ठिएणं आयामुहीसन्निवेसम्मि आवासिए सत्थे जरचीरनिवसणो गेरुतविलित्तसव्वगत्तो खंधदेसारोवियतिक्खसूलिओ अचोरो चेव चोरो त्ति करिए गहिओ वज्जंतविरसडिंडिमं वज्झत्थामं नीयमाणो चंडालजुवाणओ त्ति। तेण वि य महंतं सत्थमवलोइय सुद्धयाए आसयस्स वल्लहयाए जीवियस्स तस्स समीवम्मि चेव महया सद्देण जंपियं। भो भो सत्थिया, सुणेह तुब्भे। महासरनिवासी मोरिओ नाम चंडालो अहं, कारणेण य कुसत्थलं पयट्टो, विप्पलद्धबुद्धीहि य दंडवासिएहिं अपेच्छिऊण चोरे अदोसयारी चेव मंदभागो गिहीओ म्हि। ता मोयावेह, भो मोयावेह; सरणागओ अहं अज्जाणं। अन्नं च, मरणदुक्खाओ वि मे इयमब्भहियं, जं तहाविहनिक्कलंकपुव्वपुरिसज्जियस्स जसस्स[2] विणा वि दोसेणं मइलण त्ति। ता मोयावेह, भो मोयावेह! तओ सुद्धचित्तयाए चिंतियं धरणेण। न खलु दोसयारी एवं

कालसेनेन भणितम्—परिवर्जिता यावज्जीवमेव मयाऽऽर्यवचनेन पापर्द्धिः। धरणेन भणितम्—कृतं मे करणीयम्। ततो गतः सार्थवाहपुत्रो निजसार्थम्।

अतिक्रान्ता कत्यपि दिवसा अनवरतप्रयाणकेन। दृष्टस्तेन पक्षसन्धौ उपवासस्थितेन आयामुखीसन्निवेशे आवासिते सार्थे जरच्चीरनिवसनो गेरुकविलिप्तसर्वगात्रः स्कन्धदेशारोपिततीक्ष्णशूलिकोऽचोर एव चोर इति कृत्वा गृहीतो वाद्यमानविरसडिण्डिमं वध्यस्थानं नीयमानश्चण्डालयुवेति। तेनापि च महान्तं सार्थमवलोक्य शुद्धतयाऽऽशयस्य वल्लभतया जीवितस्य तस्य समीप एव महता शब्देन जल्पितम्—भो भोः सार्थिकाः! श्रृणुत यूयम्, महाशरनिवासी मौर्यो नाम चण्डालोऽहम्, कारणेन च कुशस्थलं प्रवृत्तः, विप्रलब्धबुद्धिभिश्च दण्डपाशिकैरप्रेक्ष्य चौरान् अदोषकार्येव मन्दभाग्यो गृहीतोऽस्मि। ततो मोचयत भो मोचयत, शरणागतोऽहमार्याणाम्। अन्यच्च मरणदुःखादपि मे इदमभ्यधिकम्, यत्तथाविधनिष्कलङ्कपूर्वपुरुषार्जितस्य यशसो विनापि दोषेण मलिनतेति। ततो मोचयत भो मोचयत। ततः शुद्धचित्ततया चिन्तितं धरणेन। न खलु दोषकारी

पाप को बढ़ाने वाली हिंसा का जीवन भर के लिए त्याग कर दिया।" धरण ने कहा—"जो मेरे योग्य कार्य था, उसे मैंने कर दिया।" अनन्तर सार्थवाहपुत्र अपने पड़ाव की ओर चला गया।

निरन्तर गमन करते हुए कुछ दिन बीत गये। उपवास में स्थित उसने पास में वर्तमान आयामुखी सन्निवेश में अपने सार्थ को आवासित कर देने के बाद जीर्णशीर्ण कपड़ों को पहने हुए, गेरू से जिसका सारा शरीर लिप्त था, कन्धे पर जिसके तीक्ष्ण शूल रखी थी, चोर न होने पर भी जो चोर मानकर पकड़ा गया था; नीरस डिण्डिमनाद जहाँ हो रहा था ऐसे वध्यस्थान को ले जाये जाते हुए चाण्डाल युवक को देखा। उसने भी बड़े व्यापारियों के समूह को देखकर आशय की शुद्धता तथा प्राणों के प्रति प्रेम के कारण उसके समीप ही जोर से कहा—हे हे व्यापारियो, आप सब सुनें! 'महाशर' का निवासी 'मौर्य' नामक चाण्डाल हूँ। किसी कारणवश कुशस्थल गया। ठगने की बुद्धि रखनेवाले सिपाहियों के द्वारा चोरों के न दिखाई पड़ने पर बिना दोष किये ही भाग्यहीन मैं पकड़ लिया गया हूँ। अतः 'छुड़ाओ, छुड़ाओ', मैं आर्यलोगों की शरण में हूँ। दूसरी बात जो कि मरण के दुःख से भी अधिक बढ़कर है, वह यह कि दोष के बिना भी पूर्वपुरुषों द्वारा उपार्जित उस प्रकार के

---

१. पयाणएहिं वच्चमाणेण—क, २. कुलजसस्स—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जंपइ। करुणापवन्नेण भणिया णेण आरक्खिया—भो भो कुलउत्तया, मम कएण विहीरह मुहुत्तयं, जाव एयमंतरेण विन्नविऊण नरवइं दविणपयाणेणावि मोयावेमि एयं। तेहिं भणियं—जइ एवं, ता लहुं होहि[1]। तओ घेत्तूण नरिंददरिसणनिमित्तं दीणारसयसहस्समुल्लं मुत्ताहलमालं गओ नरवइसमीवं। दिट्ठो य णेण राया। साहिऊण वुत्तंतं विन्नत्तो चंडालमंतरेण नरवई। कओ से पसाओ। दूयसहिओ य तस्स मोक्खणनिमित्तं आगओ तमुद्देसं। मोयाविओ एसो। 'तुब्भे इमस्स जीवियदायग' त्ति भणिऊण पूइया आरक्खिया। देवाविऊण[2] पाहेयं भणिओ य चंडालो। भद्द, संपाडेहि समीहियं। 'अज्ज, मा तुह सा अवत्था हवउ, जीए मए चिय पओयणं' ति भणिऊण [[3]कयंजलिउडो खिइनिमियजाणुकरयलमुत्तिमंगो पणमिऊण सत्थवाहपुत्तं[4]] गओ चंडालो।

धरणो वि य कइवयपयाणएहिं पत्तो उत्तरावहतिलयभूयं अयलउरं नाम पट्टणं। दिट्ठो य राया। बहुमन्निओ तेणं। विभागसंपत्तीए य विक्किणियमणेण भंडं। समासाइओ अट्ठगुणो लाभो[5]। ठिओ तत्थेव कयविक्कयनिमित्तं चत्तारि मासे। पुण्णोयएणं च विढत्तं पभूयं दविणजायं। संखावियं

एवं जल्पति। करुणाप्रपन्नेन भणितास्तेन आरक्षकाः—भो भोः कुलपुत्रा ! मम कृतेन प्रतीक्षध्वं मुहूर्तम्, यावदेतदन्तरेण (एतत्सम्बन्धेन) विज्ञप्त नरपतिं द्रविणप्रदानेनापि मोचयाम्येतम्। तैर्भणितम्—यद्येवं ततो लघु भव। ततो गृहीत्वा नरेन्द्रदर्शननिमित्तं दीनारशतसहस्रमूल्यां मुक्ताफलमालां गतो नरपतिसमीपम्। दृष्टश्च तेन राजा। कथयित्वा वृत्तान्तं विज्ञप्तश्चण्डालान्तरेण (चण्डालसंबन्धेन) नरपतिः। कृतस्तस्य प्रसादः। दूतसहितश्च तस्य मोक्षणनिमित्तमागतस्तमुद्देशम्। मोचित एषः। 'यूयमस्य जीवितदायकाः' इति भणित्वा पूजिता आरक्षकाः। दापयित्वा पाथेयं भणितश्च चण्डालः। भद्र ! सम्पादय समीहितम्। 'आर्य ! मा तव साऽवस्था भवतु यस्यां ममैव प्रयोजनम्' इति भणित्वा [कृताञ्जलिपुटः क्षितिन्यस्तजानुकरतलोत्तमाङ्गः प्रणम्य सार्थवाहपुत्रं गतश्चण्डालः।

धरणोऽपि च कतिपयप्रयाणकैः प्राप्त उत्तरापथतिलकभूतमचलपुरं नाम पत्तनम्। दृष्टश्च राजा। बहु मानितस्तेन। विभागसम्पत्त्या च विक्रीतमनेन भाण्डम्। समासादितोऽष्टगुणो लाभः। स्थितस्तत्रैव क्रयविक्रयनिमित्तं चतुरो मासान्। पुण्योदयेन चार्जितं प्रभूतं द्रविणजातम्। संख्यापितं

यश में मलिनता आ रही है, अतः आप छुड़ाइए, छुड़ाइए। शुद्धचित्तवाला होने के कारण धरण ने विचार किया—'दोष करनेवाला इस प्रकार नहीं बोलता है।' करुणा से युक्त होकर उसने सिपाहियों से कहा—"हे हे कुलपुत्र ! मेरे कहने से थोड़ी देर प्रतीक्षा करो। जब तक मैं इसके विषय में राजा से निवेदन कर धन देकर इसे छुड़ाये लेता हूँ।" उन्होंने कहा—'यदि ऐसा है तो जल्दी करो।" इसके बाद एक लाख दीनार वाली मुक्ताफल की माला को लेकर राजा के पास गया। उसने राजा के दर्शन किये। वृत्तान्त कहकर चाण्डाल के विषय में राजा को जानकारी दी। उसे प्रसन्न किया। दूत सहित उसको छुड़ाने के लिए उस स्थान पर आया। इसे छोड़ दिया गया। 'आप इसे जीवन देनेवाले हैं'—ऐसा कहकर सैनिकों ने पूजा की। नाश्ता दिलाकर चाण्डाल से कहा—"भद्र ! इच्छित कार्य पूरा कीजिए।" 'आर्य ! आपकी वह अवस्था न हो, जिसमें मेरा ही प्रयोजन है'—ऐसा कहकर हाथ जोड़कर पृथ्वी पर घुटने टेककर, हथेली रखकर मस्तक से सार्थवाहपुत्र को प्रणाम कर चाण्डाल चला गया।

धरण ने भी कुछ यात्रा कर उत्तरापथ के तिलकभूत अचलपुर नामक नगर को प्राप्त किया। राजा ने देखा। उसने (उसका) बहुत सत्कार किया। माल का विभाग कर इसने उसे बेचा। अठगुना लाभ प्राप्त हुआ। वहीं पर क्रय-विक्रय के लिए चार माह ठहरा। पुण्योदय से प्रभूत धनोपार्जन किया। उसने धन का हिसाब कराया—

१. एहि—क, २. 'परिहाविऊण जुयलं' इत्यधिकः क—पुस्तके, ३. अयं पाठः ख—पुस्तके नास्ति, ४. 'तस्स समीवाओ कएण न वुण चित्तेन' इत्यधिकः पाठः क—पुस्तके, ५. दहुलाहो—क।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

च णेण, जाव अत्थि कोडिमेत्तं ति । तओ गहियं मायंदिसंववहारोचियं भंडं । भराविओ सत्थो । पयट्टो नियदेसागमणनिमित्तं महया चडयरेण ।

पइदियहपयाणेण य सबरवहूगेयसु(मु)द्धियमयजूहं ।
थेवदियहेहि सत्थो पत्तो कायंबरि अडविं ॥४८५॥
वसहमयमहिससद्दूयकोलसयसंकुलं महाभीमं ।
माइंदविंदचंदणनिरुद्धससिसूरकरपसरं ॥४८६॥
फलपुट्ठतरुवरट्ठियपरपुट्ठविमुक्कविसमहलबोलं ।
तरुकणइकयंदोलणवाणरवुक्काररमणिज्जं ॥४८७॥
मयणाहदरियरुंजियसद्दसमुत्तत्थफिडियगयजूहं ।
वणदवजालावेढियचलमयरायंतगिरिनियरं ॥४८८॥
निद्दयवराहघोणाहिघायजज्जरियपल्ललोयंतं ।
दप्पुद्धुरकरिनिउरुंबदलियहिंतालसंघायं ॥४८९॥

च तेन, यावदस्ति कोटिमात्रमिति । ततो गृहीतं माकन्दसंव्यवहारोचितं भाण्डम् । भरितः सार्थः । प्रवृत्तो निजदेशागमननिमित्तं महताऽऽडम्बरेण ।

प्रतिदिवसप्रयाणेन च शबरवधूगेयमुग्धमृगयथाम् ।
स्तोकदिवसैः सार्थः प्राप्तः कादम्बरीमटवीम् ॥४८५॥
वृषभ-मृग-महिष-शार्दूल-कोलशतसंकुलां महाभीमाम् ।
माकन्दवृन्द-चन्दननिरुद्धशशि-सूरकरप्रसराम् ॥४८६॥
फलपुष्टतरुवरस्थितपरपुष्टविमुक्तविषमकोलाहलाम् ।
तरुलताकृतान्दोलनवानरवुत्काररमणीयाम् ॥४८७॥
मृगनाथदृप्तरुञ्जितशब्दसमुत्त्रस्तस्फेटितगयथूथाम् ।
वनदवज्वालावेष्टितचलन्मृगराजद्गिरिनिकराम् ॥४८८॥
निर्दयवराहघोणाभिघातजर्जरितपल्लवलोपान्ताम् ।
दर्पोद्धुरकरिनिकुरम्बदलितहिन्तालसंघाताम् ॥४८९॥

(वह) एक करोड़ प्रमाण था । अनन्तर माकन्दी में बेचने योग्य माल को लिया । सौदागरों की टोली के साथ माल को लेकर बड़े ठाठ-बाट के साथ अपने देश को आने के निमित्त प्रवृत्त हुआ ।

प्रतिदिन प्रयाण करता हुआ व्यापारी-संघ थोड़े ही दिनों में अत्यन्त भयङ्कर कादम्बरी नामक अटवी में पहुँचा । इस अटवी में शबरवधुएँ सुन्दर मृगसमूह के विषय में गीत गा रही थीं । बैलों, हरिणों, भैंसों, चीतों तथा सैकड़ों बड़े सूकरों से व्याप्त थी, आमों के वृक्ष तथा चन्दनवृक्षों से सूर्य और चन्द्र की किरणों का प्रसार जहाँ अवरुद्ध था, फलों से पुष्ट उत्तम वृक्षों पर बैठी कोयलों द्वारा जहाँ विषम कोलाहल हो रहा था, वृक्षों और लताओं पर हलचल करनेवाले वानरों के शब्द से जो रमणीय थी, सिंह की गर्वीली दहाड़ों से भयभीत (आतंकित) तथा चिंघाड़ते हुए गज समूह से जो युक्त थी, दावाग्नि की ज्वालाओं से वेष्टित चलते हुए मृगों से जहाँ के पर्वत समूह क्षोभित हो रहे थे, निर्दय शूकरों की नाक के प्रहारों से जहाँ तालाब के किनारे जर्जरित हो रहे थे और दर्पयुक्त हाथियों का समूह जहाँ हिन्ताल (एक प्रकार के जंगली खजूर) के पेड़ों को तोड़ रहा था । ४८५-४८९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीए वहिऊण सत्थो तिण्णि पयाणाइ पल्ललसमीवे ।
आवासिओ य पल्ललजलयरसंजणियसंखोहं ॥४६० ।
आवासिऊण तीरे सरस्स मज्झम्मि कीलिऊण सुहं ।[1]
तो रयणीए सत्थो सुत्तो दाऊण थाणाइं ॥ ४६१॥
[2]रयणीए चरिमजामम्मि भीसण (य) सिंगसद्दगड्डभा ।
अह सवरभिल्लसेणा पडिया सत्थम्मि वीसत्थे ॥४६२॥
हण हण हण त्ति गड्डभसद्दसंजणियजुवइसंतासा ।
अन्नोन्नसंभमालग्गदीहको दंडसंघाया ॥४६३॥
तीसे ससद्दबोहियसत्थियपुरिसेहि सह महाभीमं ।
जुज्झमह संपलग्गं सरोहविच्छिन्नसरनियरं ॥४६४॥
सत्थियपुरिसेहि दढं सेणा दप्पुद्धुरेक्कवीरेहिं ।
आवाए च्चिय खित्ता दिसो दिसं हरिणजूह व्व । ४६५॥

तस्यामूढ्वा (वहनं कृत्वा) सार्थस्त्रीणि प्रयाणानि पल्वलसमीपे ।
आवासितश्च पल्वलजलचरसञ्जनितसंक्षोभम् ॥४६०॥
आवास्य तीरे सरसो मध्ये क्रीडित्वा सुखम् ।
ततो रजन्यां सार्थः सुप्तो दत्त्वा (थाणाइं दे.) रक्षाः ॥ ४६१॥
रजन्याश्चरमयामे भीषणशृङ्गशब्द(गड्डभा दे.) कठोरा ।
अथ शबरभिल्लसेना पतिता सार्थे विश्वस्ते ॥४६२॥
जहि जहि जहीति कठोरशब्दसञ्जनितयुवतिसन्त्रासा ।
अन्योन्यसम्भ्रमाद् लग्नदीर्घकोदण्डसंघाता ॥४६३॥
तस्याः स्वशब्दबोधितसार्थिकपुरुषैः सह महाभीमम् ।
युद्धमथ सम्प्रलग्नं शरौघविच्छिन्नशरनिकरम् ॥४६४॥
सार्थिकपुरुषैर्दृढं सेना दर्पोद्धुरैकवीरैः ।
आपाते एव क्षिप्ता दिशि दिशि हरिणयूथवत् ॥४६५॥

व्यापारी-संघ तीन पड़ाव (प्रयाण) करके उस अटवी में तालाब के किनारे, तालाब के जलचरों को क्षोभ उत्पन्न करता हुआ बस गया। तट के किनारे आवास बनाकर तालाब के मध्य क्रीड़ा करके रात्रि में पहरा लगाकर व्यापारी संघ सो गया। अनन्तर रात्रि के अन्तिम प्रहर में सिंगों का भयंकर शब्द करने वाली शबर और भीलों की सेना विश्वासपूर्वक सोये हुए व्यापारियों के समूह पर टूट पड़ी। मारो—मारो—मारो—इस प्रकार के कठोर शब्दों से युवतिजन में वह भय (सन्त्रास) पैदा कर रही थी, परस्पर आवेगयुक्त होने से (यह सेना) बड़े बड़े धनुषों का शब्द करने में संलग्न थी। उस शबर-सैन्य का स्वशब्द से बोधित व्यापारी पुरुषों के साथ महाभयंकर युद्ध होने लगा। बाणों के समूह से बाण टूटने लगे। दर्पयुक्त वीर व्यापारी पुरुषों ने सुदृढ़ शबर सैन्य को अकस्मात् प्राप्त संकट की दशा में हरिणों के झुण्ड की भाँति दिशाओं-दिशाओं में गिरा दिया अर्थात् तितर-बितर (छिन्न भिन्न) कर दिया। ४६०-४६५॥

१. चिरं—क । २. एत्थंतरम्मि—इत्यधिकः पाठः क—पुस्तके ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो वीरसेणपमुहा सबरा सव्वे पुणो वि मिलिऊण ।
अन्नोन्नतज्जणाजणियरोसपसरा समल्लीणा ॥४६६॥
अह निज्जिओ स सत्थो थेवत्तणओ य सबरसेणाए ।
पयरो पिवीलियाणं भीमं पि भुयंगमं डसइ ॥४६७॥
निज्जिणिऊण[1] य सत्थं रित्थं घेत्तूण निरवसेसं पि ।
बंदं पि किंपि सबरा उवट्ठिया कालसेणस्स ॥४६८॥

भणियं च णेहिं—एयं रित्थं सत्थाओ देव आणीयं बंदं च किंपि थेवं। संपइ देवो पमाणं ति। तओ कालसेणेण पुच्छिया बंदयपुरिसा—भो कुओ एस सत्थो कस्स वा संतिओ त्ति। एत्थंतरम्मि सीहकयपहारसंरोहणनिमित्तं सत्थवाहपुत्तेण [2]सहागओ उवलद्धो पच्चभिन्नाओ णेण संगमो नाम सत्थवाहपुत्तपुरिसो। भणियं च णेण—भद्द, कहिं तुमं मए दिट्ठो त्ति। तेण भणियं—न याणामो, तुमं चेव जाणसि त्ति। कालसेणेण भणियं—अवि आसि तुमं इओ उत्तरावहपयट्टस्स मम पाणपयाणहेउणो अविन्नायनामधेयस्स सत्थवाहपुत्तस्स समीवे। संगमेण भणियं—को कहं वा तुह पाणपयाण-

ततो वीरसेनप्रमुखाः शबराः सर्वे पुनरपि मिलित्वा ।
अन्योन्यतर्जनार्जनितरोषप्रसराः समालीनाः ॥४६६॥
अथ निर्जितः स सार्थः स्तोकत्वाच्च शबरसेनया ।
प्रकरः पिपीलिकानां भीममपि भुजङ्गमं दशति ॥४६७॥
निर्जित्य च सार्थं रिक्थं गृहीत्वा निरवशेषमपि ।
बन्दिनमपि कमपि शबरा उपस्थिताः कालसेनस्य ॥४६८॥

भणितं च तैः—एतद् रिक्थं सार्थाद्, देव! आनीतं बन्दी च कोऽपि स्तोकः। सम्प्रति देवः प्रमाणमिति। ततः कालसेनेन पृष्टा बन्दिपुरुषाः। भोः कुत एष सार्थः कस्य वा सत्क इति। अत्रान्तरे सिंहकृत-प्रहारसंरोहणनिमित्तं सार्थवाहपुत्रेण सहागत उपलब्धः प्रत्यभिज्ञातस्तेन सङ्गमो नाम सार्थवाहपुत्रपुरुषः। भणितं तेन—भद्र ! कुत्र त्वं मया दृष्ट इति। तेन भणितं—न जानामि, त्वमेव जानासीति। कालसेनेन भणितम्—अपि आसीस्त्वमित उत्तरापथप्रवृत्तस्य मम प्राणप्रदानहेतोरविज्ञातनामधेयस्य सार्थवाहपुत्रस्य समीपे। सङ्गमेन भणितम्—कः कथं वा तव प्राणप्रदानहेतुः। कालसेनेन भणितं,

तदनन्तर वीरसेन जिसमें प्रमुख था। ऐसे सभी शबर मिलकर एक-दूसरे को धमकाने से अत्यधिक रोषयुक्त होकर फिर से संगठित हो गये। थोड़े होने के कारण वह व्यापारियों का समूह शबर-सेना के द्वारा जीत लिया गया। चींटियों का समूह भयंकर सर्प को भी डँस लेता है। सार्थ को जीतकर, उनके सम्पूर्ण धन को और कुछ बन्दियों को भी लेकर शबर कालसेन के सामने उपस्थित हुए। ४६६-४६८॥

उन्होंने (शबरों ने) कहा—"देव ! व्यापारियों के समुदाय से यह धन लाये हैं, कुछ बन्दी भी लाये हैं। इस समय जो करने योग्य हो उसे कीजिए।" तब कालसेन ने बन्दिपुरुषों से पूछा—"अरे ! यह सार्थ कहाँ से आया और यह किसके साथ है ?" इसी बीच सिंह के द्वारा किये हुए प्रहार को ठीक करने के निमित्त सार्थवाह पुत्र के साथ आये हुए संगम नामक सार्थवाहपुत्र को उसने पहिचान लिया। उसने कहा—"भद्र ! तुम मुझे कहाँ दिखाई दिये थे ?" उसने कहा—"मैं नहीं जानता हूँ, तुम ही जानते हो।" कालसेन ने कहा—"यहाँ उत्तरापथ को जाते हुए मेरे प्राणदान के हेतु अज्ञात नाम सार्थवाहपुत्र के समीप क्या तुम भी थे ?" संगम ने कहा—"कौन ? अथव

१. अह निज्जिऊण सत्थं—क। २. सहसमागओवलद्धो—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हेऊ। कालसेणेण भणियं—अत्थि इओ अईयवरिसम्मि कयंतेणेव केसरिणा कहंचि कंठगयपाणो अहं कओ आसि। तओ इओ उत्तरावहं वच्चमाणेण केणावि सत्थवाहपुत्तेण न याणामो कहिंचि जीवा-विओ म्हि। ता एवं मज्झ सो पाणपयाणहेउ त्ति। तओ सुमरिऊण वुत्तंतं पच्चभियाणिऊण[1] कालसेणं भणियं संगमेण—जइ एवं, ता आसि दिट्ठो तुमए। कालसेणेण सबहुमाणमवरुंडिऊण पुच्छिओ संगमओ[2]—भद्द, कहिं सो सत्थवाहपुत्तो। तओ बाहजलभरियलोयणेण भणियं संगमएण[3]—भो महापुरिस[4], देव्वो वियाणइ त्ति। कालसेणेण भणियं—कहं विय। संगमएण भणियं—सुण, एसो ख तस्स संतिओ चेव सत्थो। आवडिए य सत्थघाए कोदंडसरसहाओ दिट्ठो मए सबरसम्मुहं धावमाणो। तओ[5] न संपयं वियाणामि। तओ एयमायण्णिऊण दीहं च नीससिय 'हा कयमकज्जं' ति भणिऊण मोहमुवगओ कालसेणो, वक्कलाणिलेण वीइओ सबरेहि, लद्धा चेयणा। भणियं च णेण—हरे, न एत्थ कोइ वावाइओ त्ति। सबरेहिं भणियं—न वावाइओ, केवलं पहारीकओ त्ति। तओ निरूविया पडिबद्धपुरिसा, न दिट्ठो य धरणो। तओ एगत्थ रित्थं करेऊण समासासिऊण सत्थं पडिबद्धपुरिसाण

अस्तीतोऽतीतवर्षे कृतान्तेनेव केसरिणा कथञ्चित् कण्ठगतप्राणोऽहं कृत आसम्। तत इत उत्तरापथं व्रजता केनापि सार्थवाहपुत्रेण न जानीमः कथञ्चिज्जीवितोऽस्मि। तत एवं मम स प्राणप्रदानहेतु-रिति। ततः स्मृत्वा वृत्तान्तं प्रत्यभिज्ञाय कालसेनं भणितं सङ्गमेन—यद्येवं तत आसं दृष्टस्त्वया। कालसेनेन सबहुमानमालिङ्ग्य पृष्टः संगमकः—भद्र! कुत्र स सार्थवाहपुत्रः? ततो वाष्पजलभृत-लोचनेन भणितं सङ्गमकेन—भो महापुरुष! दैवं विजानातीति। कालसेनेन भणितम्—कथमिव। सङ्गमकेन भणितम्—शृणु, एष खलु तस्य सत्क एव सार्थः। आपतिते च सार्थघाते कोदण्डशरसहायो दृष्टो मया शबरसमुखं धावन्। ततो न साम्प्रतं विजानामि। तत एतदाकर्ण्य दीर्घं च निःश्वस्य 'हा कृतमकार्यम्' इति भणित्वा मोहमुपगतः कालसेनः, वल्कलानिलेन वीजितः शबरैः, लब्धा चेतना। भणितं च तेन—अरे नात्र कोऽपि व्यापादित इति। शबरैर्भणितम्—न व्यापादितः, केवलं प्रहारीकृत इति। ततो निरूपिताः प्रतिबद्धपुरुषाः। न दृष्टश्च धरणः। तत एकत्र रिक्थं कृत्वा

तुम्हारे प्राणदान का कारण कैसा?" कालसेन ने कहा—"पिछले वर्ष यमराज जैसे सिंह के द्वारा जब मेरे प्राण कण्ठ-गत हो गये थे, तब इधर से उत्तरापथ की ओर जाते हुए किसी व्यापारी के पुत्र के द्वारा न मालूम कैसे जीवित कर दिया गया हूँ। इस प्रकार वह मेरे प्राणदान का कारण है।" इसके बाद वृत्तान्त का स्मरण कर कालसेन को पहिचान कर संगम ने कहा—"यदि ऐसा है तो तुमने ठीक देखा।" कालसेन ने बहुत सत्कार के साथ आलिंगन कर संगम से पूछा—"भद्र! वह सार्थवाहपुत्र कहाँ है?" तब आँसुओं से भरे हुए नेत्रों वाले संगम ने कहा—"हे महापुरुष! भाग्य जानता है।" कालसेन ने कहा—"कैसे?" संगम ने कहा—"सुनो, ये उसके ही साथ का व्यापारियों का काफिला है। अनायास ही सार्थ के मारे जाने पर धनुष-बाण जिसका सहायक है, ऐसे उसे मैंने शबरों के सम्मुख दौड़ते हुए देखा। अतः इस समय (उसके विषय में) नहीं जानता हूँ।" तब इस बात को सुनकर दीर्घ निःश्वास लेकर 'हाय! मैंने अकार्य किया'—ऐसा कहकर, कालसेन मूर्च्छित हो गया। वल्कल की वायु से शबरों द्वारा पंखा किये जाने पर चेतना प्राप्त हुई। उसने कहा—"अरे किसी को मारा तो नहीं?" शबरों ने कहा—"मारा नहीं, केवल प्रहार किया है।" इसके बाद बन्दीपुरुष देखे गये। धरण दिखाई नहीं पड़ा। तब धन को एकत्र कर, सार्थ को

1. पच्चहियाणिऊण—क। २. संगमो—क। ३. संगमेण—क। ४.—पुरिस—क। ५. न पुण—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

य वणकम्ममाइसिय धरणगवेसणनिमित्तं पयट्टाविया दिसो दिसं सबरपुरिसा। अप्पणा वि [1]य 'हा दुट्ठु कयं' ति चिंतयमाणो[2] गओ तं गवेसिउं[3]। न दिट्ठो य तेण धरणो। समागओ सत्थं। मिलिया सव्वसबरा। निवेइयं च णेहिं। देव, न दिट्ठो त्ति। तओ परं सोगमुवगओ कालसेणो। भणियं च णेण—

दुज्जणजणम्मि सुकयं असुहफलं होइ सज्जणजणस्स।
जह भुयगस्स विदिन्नं[4] खीरं पि विसत्तणमुवेइ ॥४६६॥
दिन्ना य णेण पाणा मज्झं जायाए तह य पुत्तस्स।
एयस्स मए पुण सव्वमेव विवरीयमायरियं ॥५००॥

ता किं एइणा अयालकुसुमनिग्गमेण विय निप्फलेणं वायावित्थरेणं। भो भो सत्थिया, भो भो सबरा, एसा महं पइन्ना।

जइ तं न घडेमि अहं इमिणा विहवेण पंचहि दिणेहिं।
पइसामि सुहुयहुयवहजालानिवहम्मि किं बहुणा ॥५०१॥

समाश्वास्य सार्थं प्रतिबद्धपुरुषाणां च व्रणकर्मादिश्य धरणगवेषणनिमित्तं प्रवर्तिता दिशि-दिशि शबर-पुरुषाः। आत्मनाऽपि च 'हा दुष्ठु कृतम्' इति चिन्तयन् गतस्तं गवेषयितुम्। न दृष्टश्च तेन धरणः। समागतः सार्थम्। मिलिताः सर्वशबराः। निवेदितं च तैः—देव ! न दृष्ट इति। ततः परं शोकमुपगतः कालसेनः। भणितं च तेन—

दुर्जनजने सुकृतमशुभफलं भवति सज्जनजनस्य।
यथा भुजगाय वितीर्णं क्षीरमपि विषत्वमुपैति ॥४६६॥
दत्ताश्च तेन प्राणा मम जायायास्तथा च पुत्रस्य।
एतस्य मया पुनः सर्वमेव विपरीतमाचरितम् ॥५००॥

ततः किमेतेनाकालकुसुमनिर्गमेनेव निष्फलेन वाग् विस्तरेण। भो भो सार्थिकाः ! भो भो शबराः ! एषा मम प्रतिज्ञा—

यदि तं न घटयाम्यहमनेन विभवेन पञ्चभिर्दिनैः।
प्रविशामि सुहुतहुतवहज्वालानिवहे किं बहुना ॥५०१॥

आश्वासन देकर तथा बन्दीपुरुषों की महरमपट्टी का आदेश देकर धरण की खोज के लिए दिशाओं-दिशाओं में शबरपुरुषों को भेजा। स्वयं भी 'हाय बुरा किया'—इस प्रकार विचार करता हुआ उसे ढूँढ़ने गया। उसे धरण दिखाई नहीं पड़ा। सार्थ के पास आ गया। सभी शबर मिल गये। उन्होंने निवेदन किया—"देव ! (धरण) दिखाई नहीं दिया।" तब कालसेन बहुत अधिक दुःखी हुआ। उसने कहा—

सज्जन मनुष्य का दुर्जन की भलाई करना अशुभफल देने वाला होता है। जैसे—साँप के लिए दिया गया दूध भी विष हो जाता है। उसने मेरी स्त्री और पुत्र को जीवन दिया और इसके प्रति मैंने सब विपरीत आचरण किया ॥४६६-५००॥

अतः असमय में उत्पन्न हुए फूल के समान निष्फल वचनों के विस्तार से क्या लाभ, हे हे साथियो ! हे हे शबरपुरुषो ! मेरी यह प्रतिज्ञा है—

यदि मैं इससे पाँच दिनों में नहीं मिलता हूँ तो भली प्रकार जलायी गयी अग्नि की ज्वाला के समूह में प्रवेश कर जाऊँगा, अधिक कहने से क्या ! ॥५०१॥

१. य— ग। २. चिंतेमाणो —क। ३. आरण्णभूमिं इत्यधिकः पाठः क—पुस्तके। ४. वदिन्न —ख।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं च पइन्नं काऊण कयं कुलदेवयाए कायंबरिनिवासिणीए ओवाइयं ।

जइ तं महाणुभावं जीवंतं एत्थ कहवि पेच्छिस्सं[1] ।
दसहि पुरिसेहि भयवइ तो तुज्झ बलिं करिस्सामि ।।५०२।।

एवं च ओवाइयं[2] काऊण गहियाणेयदिवसपाहेया पट्ठविया धरणगवेसणनिमित्तं दिसो दिसं सवरा । अप्पणा वि य अच्चंतविमणदुम्मणो गओ तं गवेसिउं ।

सो पुण धरणो विणिज्जिए सत्थे 'न एत्थ अन्नो उवाओ' त्ति चिंतिऊण ओसहिवलयमेत्तरित्थो घेत्तूण लच्छि पलाणो पिट्ठओमुहो[3] । जायाए भएणं च मूढदिसामंडलं तुरियतुरियं गच्छमाणो पत्तो मुहुत्तमेत्तसेसे वासरे—

बहुविहरुक्खसाहासंघट्टसंभवंतवणदवं,
वणदवपलित्तकंदरविणिंतसीहं ।।५०३।।
सीहहयपडियहत्थिकडेवरकयारविसमं,
विसमखलणदुक्खहिंडंतभीयमुद्धमयं ।।५०३।।

एवं च प्रतिज्ञां कृत्वा कृतं कुलदेवतायाः कादम्बरीनिवासिन्या औपयाचितम् ।

यदि तं महानुभावं जीवन्तमत्र कथमपि प्रेक्षिष्ये ।
दशभिः पुरुषैर्भगवति ! ततस्तव बलिं करिष्यामि ।।५०२।।

एवं चौपयाचितं कृत्वा गृहीतानेकदिवसपाथेयाः प्रस्थापिता धरणगवेषणनिमित्तं दिशि दिशि शबराः । आत्मनापि च अत्यन्तविमनोदुर्मना गतस्तं गवेषयितुम् ।

स पुनर्धरणो विनिर्जिते सार्थे 'नात्रान्य उपायः' इति चिन्तयित्वा ओषधिवलयमात्ररिक्थो गृहीत्वा लक्ष्मीं पलायितः पृष्ठतोमुखः । जायाया भयेन च मूढदिग्मण्डलं त्वरितत्वरितं गच्छन् प्राप्तो मुहूर्तमात्रशेषे वासरे—

बहुविधवृक्षशाखासंघट्टसम्भवद्वनदवं,
वनदवप्रदीप्तकन्दराविनिर्यत्सिंहम् ।।५०३।।
सिंहहतप्रतिहतहस्तिकलेवरकचवरविषमं,
विषमस्खलनदुःखहिण्डमानभीतमुग्धमृगम ।।५०४।।

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके कादम्बरी नामक वन में निवास करने वाली कुलदेवी की अर्चना की ।

यदि उस पुरुष को किसी भी प्रकार जीवित देख लूँगा तो हे भगवती ! दस पुरुषों से तुम्हारी पूजा करूँगा ।।५०२।।

इस प्रकार पूजा करके अनेक दिनों का नाश्ता लेकर धरण को खोजने के लिए दिशाओं-दिशाओं में शबरों को भेजा । स्वयं भी अत्यन्त दुःखी होता हुआ उसे खोजने के लिए गया ।

वह धरण सार्थ के जीत लिये जाने पर—'यहाँ अन्य उपाय नहीं है' ऐसा सोचकर औषधिसमूह मात्र ही जिसका धन है—ऐसा, लक्ष्मी को लेकर उल्टे मुख भाग गया । दिशाओं के विषय में मूढ़ हो पत्नी के भय से जल्दी-जल्दी चलता हुआ (धरण) एक मुहूर्तमात्र दिन शेष रह जाने पर—

वह धरण ऐसे शिलिन्धनिलय नामक पर्वत को प्राप्त हुआ जो अनेक प्रकार के वृक्षों की शाखाओं के रगड़ने से उत्पन्न हुई दावाग्नि वाला था, दावाग्नि के प्रज्वलित होने से जहाँ सिंह गुफाओं से बाहर निकल रहे थे, सिंहों द्वारा मारे गये हाथियों के शरीरों से और घायल हुए हाथियों की चिल्लाहट से जो (पर्वत) अत्यन्त विषम (भयंकर) था । स्थानों में गिरते, दुःखपूर्वक भ्रमण करने वाले डरे हुए भोले मृगों से युक्त था ।।५०३-५०४।।

---

१. पेक्खिस्सं—क । २. उवाइयं—क । ३. मुहं—क । मुहओ—ख ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

मयरुहिरपाणमुइयघोरंतसुत्तवग्घं,
वग्घभयपलायंतमहिसउलं ॥५०५॥

महिसउलचलणग्गलग्गगरुयअयगरं[1],
अयगरविमुत्तनीसाससद्दभीमं ॥५०६॥

भीमबहुविहभमंतकव्वायलुत्तसत्तं।
सत्तखयकालसच्छहं सिलिंधनिलयं[3] नाम पव्वयं ति ॥५०७॥

तत्थ य अणुचियचलणपरिसक्कणेण खीणगमणसत्ति सेयजललवालिद्धवयणकमलं च पेच्छिऊण लच्छि चिंतियं धरणेण—अहो मे कम्मपरिणई, जेण पिययमाए वि ईइसी अवत्थ त्ति। लच्छीए चिंतियं—किलेसो वि मे बहुमओ चेव एयस्स आवईए। गविट्ठं धरणेण लच्छीए पाणसंधारणनिमित्तं फलोययं, न उण लद्धं ति। अइक्कंतो वासरो। पसुत्ताइं पल्लवसत्थरे। अइक्कंता रयणी। [उग्गओ अंसुमाली। तओ] बिइयदियहे य जाममेत्तसेसे वासरे खुहापिवासाहिभूया नग्गोहपाय-

मृगरुधिरपानमुदितघुरत्सुप्तव्याघ्रं,
व्याघ्रभयपलायमानमहिषकुलम् ॥५०५॥

महिषकुलचलनाग्रलग्नगुरुकाजगरं,
अजगरविमुक्तनिःश्वासशब्दभीमम् ॥५०६॥

भीमबहुविधभ्रमत्क्रव्यादलुप्तसत्त्वं,
सत्त्वक्षयकालसच्छायं शिलिन्ध्रनिलयं नाम पर्वतमिति ॥५०७॥

तत्र चानुचित-चरणपरिष्वष्कनेन (परिचंक्रमणेन) क्षीणगमनशक्ति स्वेदजललवाश्लिष्टवदन-कमलां च प्रेक्ष्य लक्ष्मीं चिन्तितं धरणेन—अहो मे कर्मपरिणतिः, येन प्रियतमाया अपीदृशी अवस्थेति। लक्ष्म्या चिन्तितम्—क्लेशोऽपि मे बहुमत एव एतस्यापदा। गवेषितं धरणेन लक्ष्म्याः प्राणसन्धारणनिमित्तं फलोदकं न पुनर्लब्धमिति। अतिक्रान्तो वासरः। प्रसुप्तौ पल्लवस्रस्तरे। अतिक्रान्ता रजनी। उद्गतोऽशुमाली। ततो द्वितीयदिवसे च याममात्रशेषे वासरे क्षुत्पिपासाभि-

मृगों के रुधिर का पान करने से प्रसन्न होकर घुरघुर शब्द करते हुए व्याघ्र जहाँ सो रहे थे, व्याघ्र के भय से जहाँ भैंसों का समूह भाग रहा था, भैंसों के समूह के अगले पैरों में जहाँ भारी अजगर लग रहे थे, अजगरों द्वारा छोड़े हुए निःश्वास के शब्द से जो भयंकर था, भयंकर एवं अनेक प्रकार से भ्रमण करते हुए चीतों ने जहाँ प्राणियों को ही लुप्त कर दिया था, प्राणियों का क्षय (विनाश) करने से जो काल के आकार का लग रहा था ॥५०५-५०७॥

वहाँ पर अनुचित स्थान में भ्रमण करने से जिसकी गमन करने की शक्ति क्षीण हो गयी थी, ऐसे धरण ने, पसीने की जलबिन्दुओं से जिसका मुखकमल व्याप्त था, ऐसी लक्ष्मी को देखकर विचार किया—'अहो मेरी कर्म की परिणति, जिससे प्रियतमा की भी ऐसी अवस्था हुई। लक्ष्मी ने सोचा—इनकी विपत्ति में मुझे यह क्लेश भी अच्छा है। धरण ने लक्ष्मी के प्राणधारण हेतु फल और जल खोजा, किन्तु प्राप्त नहीं हुआ। दिन व्यतीत हुआ। दोनों पत्तों के बिस्तर पर सोये। रात्रि व्यतीत हुई। सूर्य निकला। तब दूसरे दिन, जबकि दिन

१. चलणग्गग्गगरुयअयगरं—ख। २. पसुत—क, ख। ३. सिंणिध—ख, पिलिंध—ग।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वच्छायाए निवडिया लच्छी। सम्मिल्लियमिमीए लोयणजुयं, विमूढा से चेयणा, निवडियं तालुयं, मिलाणं वयणकमलं। तओ धरणेण चिंतियं—अहो दारुणो जीवलोगो, अचिंता कम्मपरिणई, न मे जीविएणावि एत्थ साहारो त्ति। तहावि बाहजलभरियलोयणेणं संवाहियं से अंगं। समागया चेयणा। तओ अव्वत्तसद्दं जंपियमिमीए—अज्जउत्त, दढं तिसाभिभूय म्हि। तओ सो 'सुंदरि, धीरा होहि, आणेमि उदयं, तए ताव इहेव चिट्ठियव्वं' ति भणिऊण आरूढो तरुवरं। पलोइयं उदयं, न उण उवलद्धं। तओ 'उदयमंतरेणं न एसा जीवइ' त्ति तुवरिट्ठियं पेच्छिऊण तीए[1] य किर रसेण संगयं सिलीभूयमवि सोणियं उदयसारिच्छं हवइ' त्ति ता एएण सुमरियपओएणं 'देमि से तुवरिट्ठियारसेणं[2] संपाडिओदयभावं बाहुसिरामोक्खणेण नियमेव रुहिरं, इमिणा य वणदवग्गिणा पइऊण छुहावणोयण-निमित्तं उरुमंसं ति; अन्नहा निस्संसयं न होइ एसा, विवन्नाए य इमीए किं मह जीविएणं; अत्थि य मे वणसंरोहणं ओसहिवलयं, तेण रुहिरसंगएणेव अवणीयवणवेयणो इमीए वि न दुक्खकारणं भविस्सइ' त्ति चिंतिऊण नियच्छुरियाए पलासपत्तपुडयम्मि संपाडियं समोहियं ति। गओ य तोसे

भूता न्यग्रोधपादपच्छायायां निपतिता लक्ष्मीः। सम्मिलितमनया लोचनयुगम्, विमूढा तस्याश्चेतना, निपतितं तालु, म्लानं वदनकमलम्। ततो धरणेन चिन्तितम्—अहो दारुणो जीवलोकः, अचिन्त्या कर्मपरिणतिः, न मे जीवितेनाप्यत्र साधारः (उपकारः) इति। तथापि बाष्पजलभृतलोचनेन संवाहितं तस्या अङ्गम्। समागता चेतना। ततोऽव्यक्तशब्दं जल्पितमनया—आर्यपुत्र! दृढं तृषाऽभिभूताऽस्मि। ततः स 'सुन्दरि! धीरा भव, आनयाम्युदकम्, त्वया तावदिहैव स्थातव्यम्' इति भणित्वा आरूढस्तरुवरम्। प्रलोकितमुदकं न पुनरुपलब्धम्। तत 'उदकमन्तरेण नैषा जीवति' इति तुवर्यस्थिकां प्रेक्ष्य 'तस्याश्च किल रसेन सङ्गतं शिलीभूतमपि शोणितमुदकसदृशं भवति' इति तत एतेन स्मृतप्रयोगेण 'ददामि तस्यै तुवर्यस्थिकारसेन सम्पादितोदकभावं बाहुशिरामोक्षणेन निजमेव रुधिरम्, अनेन च वनदवाग्निना पक्त्वा क्षुदपनोदनिमित्तमूरुमांसमिति, अन्यथा निःसंशयं न भवत्येषा, विपन्नायां चास्यां किं मम जीवितेन, अस्ति च मे व्रणसंरोहणमोषधिवलयम्, तेन रुधिरसङ्गतेनैवापनीतव्रणवेदनोऽस्या अपि न दुःखकारणं भविष्यति' इति चिन्तयित्वा निजच्छुरिकया

का प्रहरमात्र शेष था, भूख-प्यास से अभिभूत होकर वटवृक्ष की छाया में लक्ष्मी गिर पड़ी। उसके दोनों नेत्र बन्द हो गये। उसकी (लक्ष्मी की) चेतना विलुप्त हो गयी, तालु गिर पड़ा, मुखकमल म्लान हो गया। तब धरण ने सोचा—ओह, संसार दिल दहलाने वाला है। कर्म का फल सोचा नहीं जा सकता, मेरे जीवित रहते हुए भी उपकार का कोई आधार नहीं है। फिर भी आँखों में आँसू भरकर उसके अंगों को दबाया। उसे चेतना आयी। तब उसने अव्यक्त शब्दों में कहा—"आर्यपुत्र! मैं बहुत अधिक प्यासी हूँ।" तब उसने कहा—"सुन्दरि! धैर्य धारण करो, जल लाता हूँ, तुम यहीं ठहरो" —ऐसा कहकर एक बड़े वृक्ष पर चढ़ गया। जल को देखा किन्तु प्राप्त नहीं हुआ। 'पानी के बिना यह जियेगी नहीं'—इस प्रकार तोरई की लता को देखकर 'उसके रस को मिलाने से दानेदार भी रक्त जल के सदृश हो जाता है'—इस प्रकार स्मरण किये गये प्रयोग से उसके लिए तोरई की लता के रस से अपनी बाहुओं के खून को निकालकर, जल के रूप में बदलकर; भूख को मिटाने के लिए उसी जंगल की आग के द्वारा अपनी जाँघ के मांस को पकाकर अन्यथा यह निःसंशय नहीं होगी अर्थात् मर जाएगी और इसके मर जाने पर मेरे जीने से क्या लाभ। मेरे पास घाव भरने की औषधि है अतः उस दवा को रुधिर के साथ मिला देने पर जिसका घाव भर गया है, ऐसा मैं हो जाऊँगा और इसे भी दुःख नहीं होगा, ऐसा विचार-

१, जीए य—क। २.—रट्ठि—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समीवं। भणिया य एसा – सुन्दरि, संपन्नमुदयं, ता पियउ सुन्दरी। पियं च णाए। समासत्था एसा। उवणीयं च से मंसं। भणियं णेणं – सुन्दरि, एयं खु वणदवविवन्नससयमंसं, भुक्खिया य तुमं, ता आहारसु त्ति। आहारियमिमीए।

तओ कंचि वेलं गमेऊण पयट्टाणि दिणयराणुसारेण उत्तरामुहं। पत्ताणि य महासरं नाम नयरं। अत्थमिओ सूरिओ त्ति न पइट्ठाणि नयरं। ठियाणि जक्खालए। तओ अइक्कंते जाममेत्ते जंपियं लच्छीए—अज्जउत्त, तिसाभिभूय म्हि। धरणेण भणियं—सुन्दरि, चिट्ठ तुमं, आणेमि उदयं नईओ। गहिओ तत्थ वारओ, आणीयमुदयं। पीयं च णाए। पसुत्तो धरणो। चरिमजामम्मि य विउद्धा लच्छी। चिंतियं च णाए—अणुकूलो मे विही, जेण एसो ईइसं अवत्थं पाविओ त्ति। ता केण उवाएण इओ वि अहिययरं से हवेज्ज त्ति। एत्थंतरम्मि य आरक्खियपुरिसपेल्लिओ गहियरयणभंडो खीणगमणसत्ती पविट्ठो चंडरुद्दाभिहाणो तक्करो। रुद्धं च से वारं। भणियं चारक्खियनरेहिं—अरे, अप्पमत्ता हवेज्जह। गहिओ खु एसो, कहिं वच्चइ त्ति। सुयं च एयं लच्छीए,

---

पलाशपत्रपुटे सम्पादितं समीहितमिति। गतश्च तस्याः समीपम्। भणिता चैषा—सुन्दरि! सम्पन्नमुदकम्, ततः पिबतु सुन्दरी। पीतं चानया। समाश्वस्तैषा। उपनीतं च तस्य मांसम्। भणितं च तेन—सुन्दरि! एतत्खलु वनदवविपन्नशशकमांसम्, बुभुक्षिता च त्वम्, तत आहरेति। आहृतमनया।

ततः काञ्चिद् वेलां गमयित्वा प्रवृत्तौ दिनकरानुसारेणोत्तरामुखम्। प्राप्तौ च महाशरं नाम नगरम्। अस्तमितः सूर्य इति न प्रविष्टौ नगरम्। स्थितौ यक्षालये। ततोऽतिक्रान्ते याममात्रे जल्पितं लक्ष्म्या—आर्यपुत्र! तृषाऽभिभूताऽस्मि। धरणेन भणितम्—सुन्दरि! तिष्ठ त्वम्, 'आनयाम्युदकं नद्याः, गृहीतस्तत्र वारकः (पात्रम्), आनीतमुदकम्। पीतं चानया। प्रसुप्तो धरणः। चरमयामे च विबुद्धा लक्ष्मीः। चिन्तितं चानया—अनुकूलो मे विधिः, येन एष ईदृशीमवस्थां प्रापित इति। तत केनोपायेन इतोऽप्यधिकतरं तस्य भवेदिति। अत्रान्तरे चारक्षकपुरुषपीडितो गृहीतरत्नभाण्डः क्षीणगमनशक्तिः प्रविष्टश्चण्डरुद्राभिधानस्तस्करः। रुद्धं च तस्य द्वारम्। भणितं चारक्षकनरैः—अरे अप्रमत्ता भवत। गृहीतः खल्वेषः, कुत्र व्रजतीति। श्रुतं चैतद् लक्ष्म्या, आकर्णितश्चण्ड-

---

कर अपनी छुरी से पलाश के दोनों में इष्ट कार्य कर डाला। उसके समीप गया। उससे कहा—"हे सुन्दरी! यह पानी मिल गया, अतः तुम पिओ।" इसने पिया। यह शान्त हुई, उसे मांस भी दिया और उसने (धरण ने) कहा—"हे सुन्दरी! वनाग्नि से मरे हुए खरगोश का यह मांस है और तुम भूखी हो, अतः ले लो।" इसने ले लिया।

इसके बाद कुछ समय बिताकर सूर्य के अनुसार उत्तर की ओर प्रवृत्त हुए और दोनों महाशर नामक नगर को प्राप्त हुए। चूँकि सूर्य अस्त हो गया था, अतः नगर में प्रविष्ट नहीं हुए। दोनों यक्षालय में ठहर गये। प्रहर मात्र बीत जाने पर लक्ष्मी ने कहा—"आर्यपुत्र! मैं प्यास से व्याकुल हूँ।" धरण ने कहा सुन्दरी! तुम ठहरो, मैं नदी से जल लाता हूँ।" बर्तन (वारक) ले लिया, पानी लाया। इसने पी लिया। धरण सो गया। अन्तिम प्रहर में लक्ष्मी जाग उठी। इसने सोचा – विधाता मेरे अनुकूल है जिसके द्वारा यह इस अवस्था को पहुँचाया गया। ऐसा कौन-सा उपाय है, जिससे इससे भी अधिक हो। इसी बीच सिपाहियों से पीड़ित, रत्नपात्र को लिये हुए, जिसकी चलने की शक्ति क्षीण हो गयी थी, ऐसा चण्डरुद्र नामक चोर प्रविष्ट हुआ। उसका द्वार रोक लिया गया। सिपाहियों ने कहा—"अरे अप्रमत्त होओ। इसे पकड़ लिया गया, कहाँ जाएगा!" लक्ष्मी ने यह सुना और चण्डरुद्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयण्णिओ चंडरुद्दपयसद्दो । चिंतियं च णाए—भवियव्वं एत्थ कारणेण। ता पुच्छामि एयं, किं पुण इमं ति। कयाइ पुज्जंति मे मणोरहा। तओ दीहसुंकारपिसुणियं गया चंडरुद्दसमीवं। पुच्छिओ एसो—भद्द, को तुमं, किं वा एए दुवारदेसंमि इमं वाहरंति। तेण भणियं—सुन्दरि, अलं मए। किंतु पुच्छामि सुन्दरिं 'अवि अत्थि कहिंचि थेवमुदयं' ति। तीए भणियं—अत्थि जई मे पओयणं साहेसि। तओ चिंतियमणेणं। अहो धीरया इत्थियाए, अहो साहसं, अहो वयणविन्नासो; ता भवियव्वमिमीए पत्तभूयाए त्ति। चिंतिऊण जंपियं चंडरुद्देण—सुन्दरि, महंतो खु एसा कहा, न संखेवओ कहिउं पारीयइ। तहावि सुण। संपयं ताव तक्करो अहं, नरिंदगेहाओ गहेऊण रयणभंडं नीसरन्तो नयराओ उवलद्धो दंडवासिएहिं। लग्गा मे मग्गओ बहुया दंडवासिया, एगो य अहयं। खीणगमणसत्तो य एत्थ पविट्ठो त्ति। एए य अंधारयाए रयणीए सावेक्खयाए जीवियस्स साहारणयाए पओयणस्स 'संपन्नं च णे अहिलसियं' ति मन्नमाणा दुवारदेसभायं निरुम्भिऊण दंडवासिया एवं वाहरंति। तओ 'संपन्नं मे समीहियं, जइ विही अणुवत्तिस्सइ' त्ति चिंतिऊणं जंपियं लच्छीए—भद्द, जइ एवं, ता अलं ते उव्वएणं; अहं तुमं जीवावेमि, जइ मे वयणं सुणेसि। चंडरुद्देण भणियं—

रुद्रपदशब्दः। चिन्तितं चानया-भवितव्यमत्र कारणेन। ततः पृच्छाम्येतम्, किं पुनरिदमिति। कदाचित् पूर्यन्ते मे मनोरथाः। ततो दीर्घसुत्कारपिशुनितं गता चण्डरुद्रसमीपम्। पृष्ट एषः—भद्र! कस्त्वम्, किंवा एते द्वारदेशे इदं व्याहरन्ति। तेन भणितम्—सुन्दरि! अलं मया (मे प्रश्नेन); किन्तु पृच्छामि सुन्दरीम्, 'अप्यस्ति अत्र कथंचित् स्तोकमुदकम्' इति। तया भणितम्—अस्ति, यदि मे प्रयोजनं कथयसि। ततश्चिन्तितमनेन—अहो धीरता स्त्रियाः, अहो साहसम्, अहो वचनविन्यासः, ततो भवितव्यमनया पात्रभूतयेति चिन्तयित्वा जल्पितं चण्डरुद्रेण—सुन्दरि! महती खल्वेषा कथा, न संक्षेपतः कथयितुं पार्यते, तथापि शृणु। साम्प्रतं तावत्तस्करोऽहम्, नरेन्द्रगृहाद् गृहीत्वा रत्नभाण्डं निःसरन् नगरादुपलब्धो दण्डपाशिकैः। लग्ना मे मार्गतो (पृष्ठतः) बहवः दण्डपाशिकाः, एकश्चाहम्, क्षीणगमनशक्तिश्चात्र प्रविष्ट इति। एते चान्धकारतया रजन्याः सापेक्षतया जीवितस्य साधारणतया प्रयोजनस्य 'संपन्नं नोऽभिलषितम्' इति मन्यमाना द्वारदेशभागं निरुध्य दण्डपाशिका एवं व्याहरन्ति। ततः 'संपन्नं मे समीहितं यदि विधिरनुवर्तिष्यते' इति चिन्तयित्वा जल्पितं लक्ष्म्या—भद्र! यद्येवं ततोऽलं ते उद्वेगेन, अहं त्वां जीवयामि, यदि मे वचनं शृणोसि। चण्डरुद्रेण भणितम्—

के पैरों की आवाज को भी सुना। इसने सोचा—कुछ कारण होना चाहिए, अतः इससे पूछती हूँ—यह क्या है? कदाचित् मेरा मनोरथ पूरा हो जाय। तब लम्बी श्वास की सूचना पाकर चण्डरुद्र के समीप गयी। इससे पूछा—भद्र! तुम कौन हो? और इस द्वार पर ये क्या बोल रहे हैं? उसने कहा—सुन्दरी! मेरे विषय में प्रश्न मत करो, किन्तु सुन्दरी! मैं पूछता हूँ, क्या यहाँ थोड़ा जल है? उसने कहा—है, यदि मुझे प्रयोजन बतलाओगे तो। तब इसने सोचा—अहो स्त्रियों की धीरता, अहो साहस, अहो वचनों का विन्यास, इसे (सुनने का) पात्र होना चाहिए—ऐसा सोचकर चण्डरुद्र ने कहा—सुन्दरी! यह कथा बहुत बड़ी है, संक्षेप करना आसान नहीं है, फिर भी सुनो। इस समय मैं चोर हूँ। राजा के घर से रत्नपात्र लेकर नगर से निकलते हुए सिपाहियों ने मुझे देख लिया। मेरे पीछे-पीछे बहुत से सिपाही लग गये, मैं अकेला हूँ, गमन करने की शक्ति क्षीण हो जाने के कारण यहाँ प्रविष्ट हो गया हूँ। ये सिपाही—रात्रि के अन्धकारयुक्त होने, प्राणों के सापेक्ष होने तथा प्रयोजन सामान्य होने के कारण 'मेरा अभिलषित कार्य सम्पन्न हो गया'—ऐसा मानते हुए द्वार के स्थान को रोककर इस प्रकार कह रहे हैं—'यदि दैव अनुकूल हुआ तो मेरा इच्छित कार्य पूरा हो गया'। लक्ष्मी ने कहा—यदि ऐसा है तो मत घबड़ाओ, मैं तुम्हें जिलाती हूँ, यदि मेरे वचनों को सुनते हो तो!' चण्डरुद्र ने कहा—हे सुन्दरी! आज्ञा दो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आणवेउ सुंदरी। लच्छीए भणियं—सुण। अहं खु मायंदीनिवासिणो कत्तियसेट्ठिस्स धूया लच्छिमई नाम पुव्ववेरिएण वि य परिणीया धरणेण। अणिट्ठो मे भत्तारो, पसुत्तो य एसो एत्थ देवउले। ता अंगीकरेहि मं, परिच्चयसु मोसं, पावेउ एसो[1] सकम्मसरिसं गति। पहायाए रयणीए गिहीएहिं तुब्भेहिं नरवइसमक्खं पि भणिस्सामि अहयं 'एसो मह भत्तारो, न उण एसो' त्ति। तओ सो चेव[2] भयवओ कयंतस्स पाहुडं भविस्सइ। चंडरुद्दण भणियं—सुन्दरि, अत्थि एयं, किं तु अहमेत्थ वत्थव्वओ चउचरणपडिबद्धो। अओ वियाणइ मे तं अगिहीयनामं सव्वलोओ चेव एत्थ महिलियं त्ति। लच्छीए भणियं—जइ एवं, ता को पुण इह उवाओ। चंडरुद्देण भणियं—अत्थि एत्थ उवाओ, जइ थेवमुदयं हवइ। तीए भणियं 'कहं विय'। चंडरुद्देण भणियं—सुण। अत्थि मे चिंतामणिरयण-भूया भयवया खंदरुद्देण विइण्णा दिट्ठपच्चया परदिट्ठिमोहणी नाम चोरगुलिया। तीए य उदय-संजोएण अंजिएहिं नयणेहिं सहस्सलोयणो देवाहिवो वि न पेच्छइ पाणिणं, किमंग पुण मच्चलोय-वासी जणो। लच्छीए भणियं—जइ एवं, ता कहिं गुलिया। चंडरुद्देण भणियं—'उट्टियाए'। लच्छीए

आज्ञापयतु सुन्दरी। लक्ष्म्या भणितम्—शृणु। अहं खलु माकन्दीनिवासिनः कार्तिकश्रेष्ठिनो दुहिता लक्ष्मीवती नाम पूर्ववैरिकेनापि च परिणीता धरणेन। अनिष्टो मे भर्ता, प्रसुप्तश्च एषोऽत्र देवकुले। ततोऽङ्गीकुरु माम्, परित्यज मोषं (मुषितम्), प्राप्नोत्वेष स्वकर्मसदृशीं गतिम्। प्रभातायां रजन्यां गृहीतयोर्युवयोर्नरपतिसमक्षमपि भणिष्याम्यहम् 'एष मम भर्ता, न पुनरेष' इति। ततः स एव भगवतः कृतान्तस्य प्राभृतं भविष्यति। चण्डरुद्रेण भणितम्—सुन्दरि! अस्त्येतत्, किन्तु अहमत्र वास्तव्य-श्चतुश्चरणप्रतिबद्धः (भार्यायुक्तः), अतो विजानाति मे तामगृहीतनाम्नीं सर्वलोक एवात्र महिला-मिति। लक्ष्म्या भणितम्—यद्येवं ततः कः पुनरिहोपायः। चण्डरुद्रेण भणितम्—अस्त्यत्र उपायः, यदि स्तोकमुदकं भवति। तया भणितम्—'कथमिव'। चण्डरुद्रेण भणितम्—शृणु। अस्ति मे चिन्तामणिरत्नभूता भगवता स्कन्दरुद्रेण वितीर्णा दृष्टप्रत्यया परदृष्टिमोहनी नाम चौरगुटिका। तया चोदकसंयोगेन अञ्जितयोर्नयनयोः सहस्रलोचनो देवाधिपोऽपि न प्रेक्षते प्राणिनम्, किमङ्ग पुनर्मर्त्यलोकवासी जनः। लक्ष्म्या भणितम्—यद्येवं ततः कुत्र गुटिका? चण्डरुद्रेण भणितम्—

लक्ष्मी ने कहा—सुनो! मैं माकन्दी के निवासी कार्तिक सेठ की पुत्री लक्ष्मीवती हूँ। पूर्वजन्म के वैरी धरण के साथ मेरा विवाह हुआ है। मेरा पति मुझे इष्ट नहीं है। यह मन्दिर में सो रहा है। अतः मुझे अङ्गीकार करो, चोरी छोड़ दो, यह (धरण) अपने कर्मों के अनुसार गति प्राप्त करे। रात्रि के बाद प्रभात होने पर आप दोनों के पकड़े जाने पर भी राजा के सामने नहीं कहूँगी—'यह मेरा पति है, यह नहीं।' अतएव वही भगवान् यम का अतिथि होगा। चण्डरुद्र ने कहा—सुन्दरी, यह ठीक है, किन्तु यहाँ का निवासी मैं भार्यायुक्त हूँ। अतः सभी लोग जानते हैं कि यह मेरी पत्नी है। लक्ष्मी ने कहा—यदि ऐसा है तो फिर यहाँ क्या उपाय है? चण्डरुद्र ने कहा—यदि थोड़ा जल हो तो उपाय है। उसने कहा—कैसे? चण्डरुद्र ने कहा—सुनो! मेरे पास चिन्तामणिरत्न के समान भगवान् स्कन्दरुद्र द्वारा दी गयी विश्वस्त परदृष्टिमोहिनी नाम की चोरगोली है। उसे जल के साथ नेत्रों में आँजनेवाले मनुष्य को हजार नेत्रवाला इन्द्र भी नहीं देख सकता है, मर्त्यलोक के वासी मनुष्य की तो बात ही क्या है! लक्ष्मी ने कहा—यदि ऐसा है तो गोली कहाँ है? चण्डरुद्र ने कहा—उट्टिका (पात्र विशेष) में। लक्ष्मी ने कहा—यदि ऐसा है तो क्यों नहीं आँज लेते? चण्डरुद्र ने कहा—जल नहीं है। लक्ष्मी ने कहा—

१. सो संपयमसरिसं—क। २. चेव नरवई—क। ३. पट्टविस्सइ—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भणियं—जइ एवं, ता किं न अंजेसि। चंडरुद्देण भणियं—'नत्थि उदयं' ति। लच्छीए भणियं—'अहं देमि'। चंडरुद्देण भणियं—'जीवाविओ भोईए'। दिन्नमुदयं'। दुवेहिं पि[1] अंजियाइं लोयणाइं। भणिया य एसा—सुन्दरि, अणोणिए सत्थवाहपुत्तंमि न तए गंतव्वं ति। पडिस्सुयमिमीए। मुक्कं रयणभंडं धरणसमीवे। ठियाइं एगदेसे।

पहाया रयणी। उट्ठिओ धरणो। गहिओ आरक्खिएहिं। निहालियं रयणभंडं, उवलद्धं च तस्स समीवे। तओ नीणिओ देवउलाओ। बद्धो खु एसो। चिंतियं च णेण। हंत किमेयं ति। अहवा न किंचि अन्नं; अवि य पडिकूलस्स विहिणो वियम्भियं ति। पडिकूले य एयंमि अमयं पि हु विसं, रज्जू वि य किण्हसप्पो, गोप्पयं पि सायरो, अणू वि य गिरी, मूसयविवरं पि रसायलं, सुयणो वि दुज्जणो, सुओ वि वइरी, [3]जाया वि भुजंगी, पयासो वि अंधयारं, खंती वि कोहो, मद्दवं पि माणो, अज्जवं पि माया, संतोसो वि लोहो, सच्चं पि अलियं, पियं पि फरुसं, कलत्तं पि (मित्तं पि) वेरिओ त्ति। ता किं इमिणा वि चिंतिएणं। एयस्स वसवत्तिणा न तीरए अन्नहा वट्टिउं। इमाओ

'उष्ट्रिकायां' (पात्रविशेषे)। लक्ष्म्या भणितम्—यद्येवं ततः किं नाञ्जयसि ? चण्डरुद्रेण भणितम्—नास्त्युदकमिति। लक्ष्म्या भणितम्—'अहं ददामि'। चण्डरुद्रेण भणितम्—जीवितो भवत्या'। दत्तमुदकम्। द्वाभ्यामपि अञ्जिते लोचने। भणिता चैषा। सुन्दरि ! अनीते सार्थवाहपुत्रे न त्वया गन्तव्यमिति। प्रतिश्रुतमनया। मुक्तं रत्नभाण्डं धरणसमीपे। स्थितावेकदेशे।

प्रभाता रजनी। उत्थितो धरणः। गृहीत आरक्षकैः। निभालितं रत्नभाण्डम्, उपलब्धं च तस्य समीपे। ततो नीतो देवकुलाद्, बद्धः खल्वेषः। चिन्तितं च तेन—हन्त किमेतदिति। अथवा न किञ्चिदन्यत्, अपि च प्रतिकूलस्य विधेर्विजृम्भितमिति। प्रतिकूले चैतस्मिन् अमृतमपि खलु विषम्, रज्जुरपि च कृष्णसर्पः, गोष्पदमपि सागरः, अणुरपि च गिरिः, मूषकविवरमपि रसातलम्, सुजनोऽपि दुर्जनः, सुतोऽपि वैरी, जायाऽपि [माताऽपि] भुजङ्गी (व्यभिचारिणी), प्रकाशोऽपि अन्धकारम्, क्षान्तिरपि क्रोधः, मार्दवमपि मानः, आर्जवमपि माया, संतोषोऽपि लोभः, सत्यमपि अलीकम्, प्रियमपि परुषम्, कलत्रमपि (मित्रमपि) वैरिकमिति। ततः किमनेनापि चिन्तितेन।

मैं देती हूँ। चण्डरुद्र ने कहा—अपने जिला लिया। पानी दिया। दोनों ने नेत्रों को आँज लिया। इसने कहा—सुन्दरी ! सार्थवाहपुत्र के रत्नपात्र को न लेने पर (तक) तुम्हें नहीं जाना चाहिए। इसने स्वीकार किया। रत्नपात्र को धरण के समीप छोड़ दिया। ये दोनों एक स्थान पर ठहर गये (खड़े हो गये)।

प्रातः काल हुआ। धरण उठा। सिपाहियों ने पकड़ लिया। रत्नपात्र को देखा, उसके पास में प्राप्त हुआ। तब मन्दिर से ले जाकर इसे बाँध दिया। उसने सोचा—हाय ! यह क्या है ! अथवा अन्य कुछ भी नहीं है, भाग्य की विपरीत परिणति है। भाग्य के विपरीत हो जाने पर अमृत भी विष हो जाता है, रस्सी भी काला साँप हो जाती है, गोष्पद (छोटा-सा गड्ढा) भी सागर हो जाता है, अणु भी पर्वत हो जाता है, चूहे का बिल भी रसातल हो जाता है, अच्छा व्यक्ति भी बुरा हो जाता है, पुत्र भी वैरी हो जाता है, पत्नी भी व्यभिचारिणी हो जाती है, प्रकाश भी अन्धकार हो जाता है, क्षमा भी क्रोध हो जाता है, मृदुता भी मान हो जाती है, सरलता भी माया हो जाती है, संतोष भी लोभ हो जाता है, सत्य भी झूठ हो जाता है। प्रिय भी कठोर हो जाता हैं। बन्धु-बान्धव भी बैरी बन जाते हैं। अतः इस विचार से क्या लाभ ? इसके वशवर्ती

१. दिन्नं से उदयं लच्छीए—क। २. पि संजोइऊण गुणिय—क। ३. माया—ख।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

वि य कयत्थणाओ इमं मे अहियं बाहइ, जं सा तवस्सिणी अदिट्ठबन्धुविरहा न दीसइ। [1]अहवा वरं न दिट्ठा चेव। मा सा वि मे संसग्गिकलंकदूसिया इमं चेव पाविस्सइ त्ति। चिंतयंतो नीओ रायउलं। अप्पत्थावो र्नारदस्स त्ति धरिओ रायमग्गे। अइक्कंतो वासरो। अवसरो त्ति कलिय निवेइओ नरिन्दस्स। [2]देव, सलोत्तओ चेव मायापओयकुसलो वाणिययवेसधारी गहिओ महाभुयंगो। संपयं देवो पमाणं ति। तओ राइणा भणियं—किं तेण, वावाएह त्ति। नीओ णेहिं पाणवाडयं। समप्पिओ रायउलकमागयाणं वहनिओगकारीणं पच्चइयपाणाणं। भणिया य एए—हरे, देवो समाइसइ 'एस तक्करो वावाइयव्वो' त्ति। तेहिं भणियं—जं देवो आणवेइ त्ति। समप्पिऊण तेसिं गया डंडवासिया। भणियं चंडालमयहरेण। हरे, कस्स वावायणमासवारओ। चंडालेहिं भणियं 'मोरियस्स'। तेण भणियं—लहुं सद्दावेह मोरियं। सद्दाविओ मोरियो, आगओ य। भणिओ मयहरेण। हरे मोरिय, एस तक्करो देवेण पेसिओ वावाइयव्वो त्ति। ता नेऊण मसाणभूमिं लहुं वावाएहि। जाममेत्तावसेसो य

एतस्य वशवर्तिना न शक्यतेऽन्यथा वर्तितुम्। अस्या अपि च कदर्थनाया इदं मेऽधिकं बाधते, यत्सा तपस्विनी अदृष्टबन्धुविरहा न दृश्यते। अथवा वरं न दृष्टैव। मा साऽपि मे संसर्गकलङ्कदूषिता इमां (कदर्थनां) एव प्राप्स्यतीति। चिन्तयन् नीतो राजकुलम्। अप्रस्तावो नरेन्द्रस्येति धृतो राजमार्गे। अतिक्रान्तो वासरः। अवसर इति कलित्वा निवेदितो नरेन्द्रस्य। देव ! सलोप्त्रक एव मायाप्रयोग-कुशलो वाणिजकवेषधारी गृहीतो महाभुजङ्गः। साम्प्रतं देवः प्रमाणमिति। ततो राज्ञा भणितम्—किं तेन, व्यापादयतेति। नीतस्तैः प्राणवाटकम् (चण्डालवाटकम्)। समर्पितो राजकुलक्रमागतानां प्रत्ययितविश्वस्तप्राणानाम्। भणिता चैते। अरे देवः समादिशति 'एष तस्करो व्यापादयितव्यः' इति। तैर्भणितं—यद् देव आज्ञापयति इति। समर्प्य तेभ्यो गता दण्डपाशिकाः। भणितं—चण्डालमुख्येन—अरे कस्य व्यापादनमासवारकः ? चण्डालैर्भणितं—'मौर्यस्य'। तेन भणितम्—लघु शब्दायत मौर्यम्। शब्दायितो मौर्य आगतश्च। भणितो मुख्यचण्डालेन—अरे मौर्य ! एष तस्करो देवेन प्रेषितो व्यापादयितव्य इति। ततो नीत्वा श्मशानभूमिं लघु व्यापादय। याममात्रावशेषश्च वासरः,

होने पर अन्य प्रकार का आचरण नहीं किया जा सकता। इससे भी यह अत्याचार मुझे अधिक दुःख देता है कि वह बेचारी, जिसने बन्धुविरह को नहीं देखा है, यहाँ नहीं दिखाई देती है। अथवा उसका न दिखाई देना ही उत्तम है। मेरे संसर्ग के कलङ्क से दूषित वह भी इस अत्याचार को प्राप्त न करे। इस प्रकार विचार करता हुआ वह राजकुल (राजदरबार) की ओर ले जाया गया। राजा को समय नहीं था अतः सड़क पर रखा गया। दिन व्यतीत हो गया। समय आने पर राजा से निवेदन किया गया—देव ! चोरी के माल के साथ ही माया के प्रयोग में कुशल वणिक् वेषधारी बहुत बड़ा चोर पकड़ा गया। इस समय देव ही प्रमाण हैं अर्थात् अब जो करना हो, आप कीजिए। तब राजा ने कहा—उससे क्या (प्रयोजन) ? मार डालो। चाण्डाल (प्राणवाटक) के घर ले जाया गया। राजा के कुलक्रम से चले आये विश्वस्त पुरुषों को समर्पित किया गया। इनसे कहा गया—रे ! महाराज आज्ञा देते हैं—इस चोर को मार डालो। उन्होंने कहा—जो महाराज की आज्ञा। उनको समर्पित कर सिपाही चले गये। मुख्य चाण्डाल ने कहा—अरे ! किसके मारने की बारी है ? चाण्डालों ने कहा—मौर्य की। उसने कहा—शीघ्र ही मौर्य को बुलाओ। मौर्य को बुलाया गया, (वह) आया। मुख्य चाण्डाल ने कहा—रे मौर्य ! इस चोर का वध करने के लिए महाराज ने भेजा है, अतः श्मशानभूमि में ले जाकर शीघ्र मार दो। दिन का एक प्रहरमात्र ही शेष है,

---

१. अत्र 'पिया वि मियारी, अहवा विग्घा' इत्यधिकः पाठः—क। २. 'मणियमारविखएहिं' इत्यधिकः पाठः—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वासरो, एण्हिं अवावाइए मा रयणीए पमाओ भविस्सइ। मोरियएण भणियं—जं तुमं भणसि त्ति समप्पिओ मोरियस्स पच्चभिन्नाओ[1] य णेणं। 'कहं सो चेव एसो जीवियदायओ मे सत्थवाहपुत्तो; अहो कट्ठं, इमस्स वि ईइसी अवत्थ' त्ति चिंतिऊण विसण्णो मोरियओ। चिंतियं च णेणं। अहवा पावेंति चंददिवायरा वि मुहुत्तमेत्तं गहकल्लोलाओ आवइं। बहुमओ य मे सामिसालसमाएसो एयस्स दंसणेणं। ता नेमि ताव एयं मसाणभूमिं। जाणामि य इमाओ जहट्ठियं वुत्तंतं। नीओ मसाणभूमिं, छोडिया बंधा, चलणेसु निवडिऊणं पुच्छिओ य णेणं। अज्ज, अवि सुमरेसि मं आयामुहीए विमोइयं। धरणेण भणियं—भद्द, न सुट्ठु सुमरेमि। मोरियएण भणियं—कहं न सुमरेसि, जो भवं विय अचोरो चेव 'चोरो'त्ति कलियगहिओ अहं महया दविणजाएण पेच्छिऊण नरवइं तए विमोइओ त्ति। धरणेण भणियं—भद्द, थेवमेयं मोरिएण। भणियं, ता साहेउ अज्जो, कहं पुण अज्जस्स ईइसी अवत्थ त्ति। धरणेण भणियं—भद्द, देव्वं एत्थ पुच्छसु त्ति। मोरिएण चिन्तियं, न एत्थ कालक्खेवेण पओयणं, अहिमाणी य एसो कहं कहइस्सइ। किं वा कहिएणं। विचित्ताणि

इदानीमव्यापादिते मा रजन्यां प्रमादो भविष्यति। मौर्येण भणितम्—यत्त्वं भणसीति। समर्पितो मौर्यस्य प्रत्यभिज्ञातश्च तेन। कथं स एवैष जीवितदायको मे सार्थवाहपुत्रः, अहो कष्टम्, अस्यापीदृशी अवस्थेति चिन्तयित्वा विषण्णो मौर्यः। चिन्तितं च तेन—अथवा प्राप्नुतश्चन्द्रदिवाकरावपि मुहूर्तमात्रं ग्रहकल्लोलाद् (राहोः) आपदम्। बहुमतश्च मे स्वामिसमादेश एतस्य दर्शनेन। ततो नयामि तावदेतं श्मशानभूमिम्। जानामि चास्माद् यथास्थितं वृत्तान्तम्। नीतो श्मशानभूमिम्, छोटिता बन्धाः, चरणयोर्निपत्य पृष्टश्चानेन—आर्य! स्मरसि मामायामुख्यां विमोचितम्? धरणेन भणितम्—न सुष्ठु स्मरामि। मौर्येण भणितम्—कथं न स्मरसि, यो भवानिव अचोर एव 'चोर' इति कलयित्वा गृहीतोऽहं महता द्रविणजातेन प्रेक्ष्य नरपतिं त्वया विमोचित इति। धरणेन भणितम्—भद्र! स्तोकमेतद्। मौर्येण भणितम्—ततः कथयत्वार्यः, कथं पुनरार्यस्य ईदृशी अवस्थेति। धरणेन भणितम्—भद्र! दैवमत्र पृच्छेति। मौर्येण चिन्तितम्—नात्र कालक्षेपेन प्रयोजनम्, अभिमानी चैष कथं

इस समय न मारे जाने पर रात्रि में प्रमाद न हो। मौर्य ने कहा—जो आप कहें। मौर्य को समर्पित किया गया, उसने पहिचान लिया। क्या मुझे प्राण दिलानेवाला यह वही सार्थवाहपुत्र है? ओह कष्ट है, इसकी भी ऐसी अवस्था हुई!—ऐसा सोचकर मौर्य दुःखी हुआ। उसने सोचा—अथवा चन्द्र सूर्य भी मुहूर्तमात्र के लिए राहु द्वारा ग्रसे जाकर आपदा को प्राप्त होते हैं। इसका दर्शन (प्राप्त) होने से राजा का आदेश मुझे अधिक मान्य (सिद्ध हुआ) है। अतः इसे श्मशानभूमि में ले जाता हूँ। इससे सही वृत्तान्त ज्ञात करूँगा। श्मशानभूमि में ले गया, बन्धनों को छोड़ा, पैरों में पड़कर इससे पूछा—आर्य! आयामुखी में जो मुझे आपने छुड़ाया था, उसकी याद है? धरण ने कहा—ठीक से याद नहीं है। मौर्य ने कहा—कैसे याद नहीं है जो कि आपके ही समान अचोर को चोर—ऐसा मानकर ग्रहण किए गए मुझे आपके ही द्वारा राजा को बहुत धन दिए जाने पर राजा से छुड़वा दिया गया था। धरण ने कहा—यह थोड़ा है (छोटी-सी बात है)। मौर्य ने कहा—आर्य कहें—आर्य की ऐसी अवस्था कैसे हुई? धरण ने कहा—भद्र! यहाँ पर भाग्य से पूछो। मौर्य ने विचार किया—यहाँ पर काल के व्यवधान से क्या प्रयोजन? अभिमानी यह कैसे कहेगा? अथवा कहने से क्या? विधाता का विलास

---

1. पच्चहिन्नाओ—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहिणो विलसियाणि। ता किं ममेइणा निब्बंधेण। अहवा कहियं चेवाणेण परमत्थओ 'देव्वं पुच्छसु' त्ति भणमाणेण। ता इमं ताव एत्थ पत्तयालं, जं एसो इओ लहुं विसज्जीयइ त्ति। चिंतिऊण भणिओ खु एसो। अज्ज, किं बहुणा जंपिएण; मोत्तूण विसायं लहुं अवक्कमसु। धरणेण भणियं – भद्द, न खलु अहं परपाणेहिं अत्तणो पाणे रक्खेमि। ता वावाएहि मं निद्देसकारी खु तुमं ति। मोरिएण भणियं—अज्ज, अलं मज्झ पाणविणाससंकाए। सप्पुरिसो खु एस राया, न अम्हाणं अवराहसए वि य पाणवावत्तिं करेइ। अगच्छमाणे य अज्जे अवस्समहप्पाणं वावाएमि। ता गच्छउ अज्जो। तओ 'नत्थि अविसओ सज्जणसिणेहस्स' त्ति चिंतिऊण जंपियं धरणेण—भद्द, जइ एवं, ता अवक्कमामि। मोरिएण भणियं—अणुग्गहीओ म्हि। दंसिओ से पंथो। पणमिऊण य नियत्तो मोरिओ। मित्तोवरोहेण पलाणो धरणो। चिंतियं च णेण। अह कहिं पुण सा मुद्धमयलोयणा भविस्सइ। नूणमुवरोहसीलयाए मं अणुट्ठविय पासवणनिमित्तमुट्ठिया केणावि तक्करेणं समासाइया भवे, नीया य णेणं, मम विणासासंकिणीए न जंपियमिमीए; अन्नहा कहं न दिट्ठ त्ति। अदंसणेणं च तीसे विहलमेव पाणलाहं

कथयिष्यति, किं वा कथितेन। विचित्राणि विधेर्विलसितानि। ततः किं ममैतेन निर्बन्धेन। अथवा कथितमेवानेन परमार्थतो 'दैवं पृच्छ' इति भणता। तत इदं तावदत्र प्राप्तकालम्, यदेष इतो लघु विसर्ज्यते इति। चिन्तयित्वा भणितः खल्वेषः। आर्य! किं बहुना जल्पितेन, मुक्त्वा विषादं लघु अपक्राम। धरणेन भणितम्—भद्र! न खल्वहं परप्राणैरात्मनः प्राणान् रक्षामि। ततो व्यापादय माम्, निर्देशकारी खलु त्वमिति। मौर्येण भणितम्– आर्य! अलं मम प्राणविनाशशङ्कया। सत्पुरुषः खल्वेष राजा, नास्माकमपराधशतेऽपि च प्राणव्यापत्तिं करोति। अगच्छति चार्ये अवश्यमहमात्मानं व्यापादयामि। ततो गच्छत्वार्यः। ततो 'नास्त्यविषयः सज्जनस्नेहस्य' इति चिन्तयित्वा जल्पितं धरणेन। भद्र! यद्येवं ततोऽपक्रामामि। मौर्येण भणितम्—अनुगृहीतोऽस्मि। दर्शितस्तस्य पन्थाः। प्रणम्य च निवृत्तो मौर्यः। मित्रोपरोधेन पलायितो धरणः। चिन्तितं च तेन—अथ कुत्र पुनः सा मुग्धमृगलोचना भविष्यति, नूनमुपरोधशीलतया मामनुत्थाप्य प्रस्रवणनिमित्तमुत्थिता केनापि तस्करेण समासादिता भवेत्, नीता च तेन, मम विनाशाशङ्किन्या न जल्पितमनया, अन्यथा कथं न दृष्टेति। अदर्शनेन च तस्या विफलमेव प्राणलाभं मन्ये इति।

विचित्र है, अतः मुझे इस से क्या लाभ? अथवा इसने सत्य ही कह दिया कि भाग्य से पूछो। अतः अब समय आ गया है कि इसे जल्दी छोड़ा जाय। विचारकर इसने कहा – आर्य! अधिक कहने से क्या, विषाद को छोड़कर जल्दी भाग जाओ। धरण ने कहा— मैं दूसरों के प्राणों से अपने प्राणों की रक्षा नहीं करता। अतः मुझे मार डालो। तुम तो आज्ञा-पालन करनेवाले हो। मौर्य ने कहा – मेरे प्राणों के विनाश की शङ्का मत करो। यह राजा सत्पुरुष है, मेरे हजार अपराध करने पर भी मुझे नहीं मारेगा। आर्य नहीं जाएँगे तो अवश्य ही अपने आपको मार डालूंगा। अतः आर्य जाएँ। तब (कोई भी पदार्थ) सज्जनों के स्नेह का अविषय नहीं है—ऐसा सोचकर धरण ने कहा –भद्र! यदि ऐसा है तो भागता हूँ। मौर्य ने कहा – मैं अनुगृहीत हूँ। उसे रास्ता दिखाया। प्रणाम करके मौर्य लौट आया। मित्र के अनुग्रह से धरण भाग गया। उसने सोचा – वह मुग्ध नेत्रोंवाली कहाँ होगी? निश्चित ही अन्तःपुर की शीलता के कारण मुझे उठाए बिना ही पेशाब के लिए उठी हुई उसे किसी चोर ने पकड़ लिया, उसके द्वारा वह ले जाई गयी। मेरे विनाश की आशङ्का से वह चिल्लाई नहीं, अन्यथा वह कैसे दिखाई नहीं देती? उसके न दिखाई पड़ने पर मेरा प्राण-लाभ करना व्यर्थ है—ऐसा मैं मानता हूँ। ऐसा विचार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन्नामि त्ति । चिंतयंतो पयट्टो गवेसिउं । ण्हाओ उज्जुवालियाए ।।

इओ य सो चंडरुद्दो तओ देवउलाओ अवक्कमिऊण गओ उज्जुवालियं नइं। चिंतियं च णेणं अहो दारुणया इत्थिवग्गस्स, जमेसा एगपए चेव महावसणपायालंमि पक्खिविय भत्तारं अणवेक्खिऊण नियकुलं सिविणयंमि वि अदिट्ठपुव्वेण मए सह पयट्ट त्ति ।

हा किह दूरेण जियं विसवग्घभुयंगसिंघसरहाणं ।
कलिकालवण्हिरक्खसिकयंतचरियं महिलियाहिं ।।५०८।।
असलिलपंकग्गाही होइ खणेणं अकंदरा वग्घी ।
अणियत्ता जमभिउडी अणब्भवज्जासणी महिला ।।५०९।।
महिला आलकुलघरं महिला लोयंमि दुच्चरियखेत्तं ।
महिला दुग्गइदारं महिला जोणी अणत्थाणं ।।५१०।।
विज्जु व्व चंचलाओ महिलाउ विसं व पमुहमहुराओ ।
मच्चु व्व निग्घिणाओ पावं पिव वज्जणिज्जाओ ।।५११।।

चिन्तयन् प्रवृत्तो गवेषयितुम् । स्नात ऋजुवालिकायाम् ।

इतश्च स चण्डरुद्रस्ततो देवकुलादपक्रम्य गत ऋजुवालिकां नदीम् । चिन्तितं च तेन—अहो दारुणता स्त्रीवर्गस्य, यदेषा एकपदे एव महाव्यसनपाताले प्रक्षिप्य भर्तारमनपेक्ष्य निजकुलं स्वप्नेऽपि अदृष्टपूर्वेण मया सह प्रवृत्तेति ।

हा कथं दूरेण जितं विष-व्याघ्र-भुजङ्ग-सिंह-शरभानाम् ।
कलिकालवह्निराक्षसीकृतान्तचरितं महिलाभिः ।।५०८।।
असलिलपंकग्राही भवति क्षणेनाकन्दरा व्याघ्री ।
अनिवृत्ता यमभृकुटिरनभ्रवज्राशनिर्महिला ।।५०९।।
महिला आल (असद्दोषारोप) कुलगृहं महिला लोके दुश्चरितक्षेत्रम् ।
महिला दुर्गतिद्वारं महिला योनिरनर्थानाम् ।।५१०।।
विद्युदिव चंचला महिला विषमिव प्रमुखमधुराः ।
मृत्युरिव निर्घृणाः पापमिव वर्जनीयाः ।।५११।।

करता हुआ वह उसे खोजने लग गया । ऋजुवालिका (नदी) में स्नान किया ।

इधर वह चण्डरुद्र मन्दिर से निकलकर ऋजुवालिका नदी को गया । उसने सोचा—अहो! स्त्रीवर्ग की कठोरता, जो यह एक ही स्थान पर महान् संकटरूप पाताल में पति को पटककर अपने कुल की कुछ भी अपेक्षा न कर, जिसे पहले स्वप्न में भी नहीं देखा, ऐसे मेरे साथ प्रविष्ट हुई है !

हाय ! कलियुग की अग्नि, राक्षसी और यमराज के समान आचरण करनेवाली महिलाओं ने किस प्रकार दूर से ही विष, व्याघ्र, भुजङ्ग, सिंह और चीते को जीत लिया है। महिला (वस्तुतः) बिना पानी और कीचड़ की ग्राही (मगर की स्त्री), बिना गुफा के व्याघ्री, यम की न लौटनेवाली भौंह, बिन बादल के वज्र अथवा बिजली होती है । महिला असद्दोषों के आरोप का कुलगृह है, महिला इस लोक में दुश्चरित्र का क्षेत्र है, महिला दुर्गति का द्वार है, महिला अनर्थों की योनि (उत्पत्ति-स्थान) है । महिला विद्युत के समान चंचल, विष के समान प्रारम्भ में मधुर लगनेवाली, मृत्यु के समान निर्दयी और पाप के समान छोड़ने योग्य है ।।५०८-५११।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता अलं मे एयाए; मा मज्झं पि इणमेव संपाडइस्सइ त्ति चिंतिऊण घेत्तूणमंगलग्गं सुवण्णयं परिचत्ता खु एसा।

चिंतियं च तीए। तहावि सोहणं चेव एयं, जं सो वावाइओ त्ति। ता गच्छामि अन्नत्थ। पयट्टा नईतीराए। दिट्ठा धरणेण हरिसवसुप्फुल्ललोयणेणं पुच्छिया एसा—सुन्दरि, कुओ तुम ति। तओ सा रोविउं पयत्ता भणिया य णेणं। सुन्दरि, मा रोव, ईइसो एस संसारो। आवयाभायणं खु एत्थ पाणिणो। ता अलं विसाएण। धन्नो य अहयं, जेण तुमं संपत्त त्ति। तओ तीए भणियं—अज्जउत्त, पासवणनिमित्तमुट्ठिया गहिया तक्करेण, इत्थीसहावाओ अज्जउत्तसिणेहाइसएण य न किंपि वाहरियं। 'अणिच्छमाणी य इत्थिया न घेप्पइ' त्ति करिय मुसिऊण उज्झिया इहइं। अन्नं च। तक्करकयत्थणाओ वि मे एयं अहिययरं बाहइ, जं तुमं ईइसिं अवत्थमुवगओ दिट्ठो त्ति। तओ 'न अन्नहा मे वियप्पियं' ति चिंतिऊण भणियं धरणेणं—सुन्दरि, थेवमियं कारणं। न मे उव्वेवकारिणी इयमवत्था तुह दंसणेणं। ता किं एइणा। एहि, गच्छम्ह। चिंतियं च णाए। अहो मे पावपरिणई, जं कयंतमुहाओ वि एस आगओ त्ति।

ततोऽलं मे एतया, मा ममापीदमेव संपादयिष्यति इति' चिन्तयित्वा गृहीत्वाङ्गलग्नं सुवर्णं परित्यक्ता खल्वेषा।

चिन्तितं च तया—तथापि शोभनमेवैतत्, यत्स व्यापादित इति। ततो गच्छाम्यन्यत्र। प्रवृत्ता नदीतीरे। दृष्टा धरणेन हर्षवशोत्फुल्ललोचनेन। पृष्टैषा—सुन्दरि! कुतस्त्वमिति। ततः सा रोदितुं प्रवृत्ता भणिता च तेन। सुन्दरि! मा रुदिहि, ईदृश एष संसारः। आपद्भाजनं खल्वत्र प्राणिनः। ततोऽलं विषादेन। धन्यश्चाहं येन त्वं संप्राप्तेति। ततस्तया भणितम्—आर्यपुत्र! प्रस्रवणनिमित्तमुत्थिता गृहीता तस्करेण, स्त्रीस्वभावाद् आर्यपुत्रस्नेहातिशयेन च न किमपि व्याहृतम्। 'अनिच्छन्ती च स्त्री न गृह्यते' इति कृत्वा मुषित्वा उज्झितेह। अन्यच्च तस्करकदर्थनाया अपि मे एतदधिकतरं बाधते, यत्त्वमीदृशीमवस्थामुपगतो दृष्ट इति। ततो 'नान्यथा मे विकल्पितम्' इति चिन्तयित्वा भणितं धरणेन। सुन्दरि! स्तोकमिदं कारणम्। न मे उद्वेगकारिणीयमवस्था तव दर्शनेन। ततः किमेतेन। एहि गच्छावः। चिन्तितं चानया—अहो मे

अतः मुझे इससे क्या प्रयोजन? यह मेरा भी ऐसा ही करेगी—ऐसा सोचकर अंगों में धारण किए हुए स्वर्ण को ग्रहणकर इसका उसने परित्याग कर दिया।

उसने (लक्ष्मी ने) सोचा—फिर भी यह ठीक हुआ कि उसे (धरण को) मार डाला गया। अब मैं दूसरी जगह जाऊँगी। नदी के किनारे की ओर गयी। धरण ने हर्ष के वश विकसित नेत्रों से देखा। इससे पूछा—तुम कहाँ से? तब वह रोने लगी। उसने कहा—हे सुन्दरी! मत रोओ। यह संसार ऐसा ही है। यहाँ प्राणियों पर आपत्तियाँ आती ही हैं। अतः विषाद मत करो। मैं धन्य हूँ जो कि तुम मिल गई। तब उसने कहा—आर्यपुत्र! पेशाब के लिए उठी हुई मुझे चोर ने पकड़ लिया। स्त्रीस्वभाव के कारण आर्यपुत्र के प्रति स्नेह की अधिकता से कुछ नहीं कहा। 'न चाहनेवाली स्त्री ग्रहण नहीं की जाती है' ऐसा मानकर (गहने) चुराकर (चोर ने) यहाँ छोड़ दिया। चोर के अत्याचार से भी अधिक पीड़ा मुझे इस बात की है कि तुम इस अवस्था को प्राप्त दिखाई पड़ रहे हो। 'दूसरा विकल्प नहीं है'—ऐसा सोचकर धरण ने कहा—सुन्दरी! यह छोटा-सा कारण है। तुम्हारे दर्शन (प्राप्त हो जाने) के कारण मेरी यह अवस्था उद्वेगजनक नहीं है। अतः इससे क्या, आओ चलें। इसने सोचा—अरे मेरे पाप का फल जो कि यह मृत्यु के मुख से भी छूटकर आ गया है। यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पयट्टा एसा। समागयाइं वियारउरं नाम सन्निवेसं। कया पाणवित्ती। अत्थमिओ सूरिओ। अइवाहिया रयणी। चिंतियं धरणेणं—एवं कयंताभिभूयस्स न जुत्तमिह चिट्ठिउं। ता पराणेमि ताव एयं दंतउरनिवासिणो खंददेवमाउलस्स[1] समीवं; पच्छा जहाजुत्तं करेस्सामि त्ति। साहियं लच्छीए। बहुमयं च तीए। पयट्टाणि दंतउरं।

इओ य न लद्धो सत्थवाहपुत्तो ति संजायसोएण पच्चइयनिययपुरिसाण समप्पिओ सत्थो कालसेणेण। भणिया य एए—हरे, पावियव्वो तुम्हेहिं एस महाणुभावस्स गुरूणं ति। चिंतियं च णेण। जइ वि न संपन्नमोवाइयं, तहावि कायम्बरीए जहा भणियमेव बलिविहाणं काऊण पइन्नं पि ताव सफलं करेमि त्ति। पेसिया बलिपुरिसनिमित्तं सबरपुरिसा। कराविया कायम्बरीए पूया, मज्जिओ गिरिनईए, परिहियाइं वक्कलाइं, कया कणवीरमुंडमाला, रयाविया महामहल्लकट्ठेहिं चिया, पयट्टो चंडियाययणं।

इओ य दंतउरपत्थिओ बिइयदियहंमि अरुणुग्गमे चेव कायम्बरिं परिब्भमन्तेहिं समासाइओ

पापपरिणतिः, यत्कृतान्तमुखादपि एष आगत इति। प्रवृत्तैषा। समागतौ विचारपुरं नाम सन्निवेशम्। कृता प्राणवृत्तिः। अस्तमितः सूर्यः। अतिवाहिता रजनी। चिन्तितं धरणेन-- एवं कृतान्ताभिभूतस्य न युक्तमिह स्थातुम्। ततः परानयामि तावदेतां दन्तपुरनिवासिनः स्कन्ददेवमातुलस्य समीपम्, पश्चाद् यथायुक्तं करिष्यामीति। कथितं लक्ष्म्यै बहुमतं च तया। प्रवृत्तौ दन्तपुरम्।

इतश्च न लब्धः सार्थवाहपुत्र इति संजातशोकेन प्रत्ययितनिजपुरुषेभ्यः समर्पितः सार्थः कालसेनेन। भणिताश्चैते--अरे प्रापयितव्यो युष्माभिरेष महानुभावस्य गुरूणामिति। चिन्तितं च तेन—यद्यपि न संपन्नमौपयाचितं तथापि कादम्बर्या यथाभणितमेव बलिविधानं कृत्वा प्रतिज्ञामपि तावत्सफलां करोमीति। प्रेषिता बलिपुरुषनिमित्तं शबरपुरुषाः। कारिता कादम्बर्याः पूजा, मज्जितो गिरिनद्याम्, परिहितानि वल्कलानि, कृता करवीरमुण्डमाला, रचिता महामहाकाष्ठैश्चिता, प्रवृत्तश्चण्डिकाऽऽयतनम्।

इतश्च दन्तपुरप्रस्थितो द्वितीयदिवसेऽरुणोद्गमे एव कादम्बरीं परिभ्रमद्भिः समासादितः

चल पड़ी। दोनों विचारपुर नामक स्थान पर आये। भोजन किया। सूर्य अस्त हुआ। रात्रि फैल गयी। धरण ने सोचा—यम से अभिभूत मुझे यहाँ ठहरना उचित नहीं, अतः इसे दन्तपुर के निवासी मामा के पास ले जाता हूँ, बाद में जो उचित होगा सो करूँगा। लक्ष्मी से कहा, उसने माना। दन्तपुर की ओर चल पड़े।

इधर सार्थवाहपुत्र नहीं मिला—इस कारण जिसे शोक उत्पन्न हो गया है ऐसे कालसेन ने अपने विश्वस्त पुरुषों के द्वारा सार्थ को समर्पित कर दिया। इन्होंने कहा---अरे आप लोग इस समाचार को इनके पूज्य पुरुषों के पास पहुँचाओ। इसने सोचा—यद्यपि इच्छित कार्य सम्पन्न नहीं हुआ तथापि कादम्बरी देवी के प्रति जैसा कहा था वैसी पूजा करके प्रतिज्ञा भी सफल करूँगा। उसने बलिपुरुष की खोज के लिए शबरों को भेजा, कादम्बरी की पूजा करायी, पर्वतीय नदी में स्नान किया। वल्कल-वस्त्रों को त्याग दिया, कनेर की माला धारण कर ली, बड़ी-बड़ी लकड़ियों से चिता बना ली, (अनन्तर सब) चण्डी के मन्दिर की ओर चल पड़े।

इधर दन्तपुर की ओर प्रस्थान करते हुए दूसरे दिन सूर्य निकलते ही कादम्बरी में भ्रमण करते हुए

---

१. ०मामयस्स—क।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

सत्थवाहपुत्तो कालसेणसबरेहिं। बद्धो वल्लिरज्जूए। पयट्टाविओ समहिलिओ चेव चंडियाययणं। गओ थेवं भूमिभागं। दिट्ठं च णेण चंडियाययणपासमंडलं। कीइसं। परिसडियजिण्णरुक्खगुद्देहियखइयकट्ठसंघायसंकुलं भुयंगमिहुणसणाहवियडवम्मीयं पररत्तमुहलसउणगणकयबमालं वियडतरुखंधबहलरुहिरायड्ढियतिसूलसंघायं पायवसाहावबद्धमहिसमेसमुहपुच्छखुरसिंगसिरोहराचीरनिवहं ति। अवि य —

वायससउंतसंवलियगिद्धवंद्रेहिं विप्फुरंतेहिं।
पडिबद्धसूरकिरणं करंककलियं मसाणं व ॥५१२॥
गहभूयजक्खरक्खसपिसायसंजणियहिययपरिओसं।
रुहिरबलिखित्तपसमियनिस्सेसधरारउग्घायं ॥५१३॥

तं च एव गुणाहिरामं चंडियाययणपासमंडलं सभयं वोलिऊण आययणं पेच्छिउं पयत्तो।

धवलवरनरकलेवरविस्थिण्णुत्तुंगघडियपायारं।
उब्भडकबंधविरइयतोरणपडिबद्धसिरमालं ॥५१४॥

सार्थवाहपुत्रः कालसेनशबरैः। बद्धो वल्लिरज्ज्वा। प्रवर्तितः समहिलिक एव चण्डिकायतनम्। गतः स्तोकं भूमिभागम्। दृष्टं च तेन चण्डिकायतनपार्श्वमण्डलम्। कीदृशम्। परिशटितजीर्णवृक्षगोद्देहिकाखादितकाष्ठसंघातसंकुलं भुजगमिथुनसनाथविकटवल्मीकं प्ररवतमुखरशकुनगणकृत (वमाल)-कोलाहलं विकटतरुस्कन्धबहलरुधिराकृष्टशूलसंघातं पादपशाखावबद्धमहिषमेषमुखपुच्छखुरशृङ्गशिरोधराचीरनिवहमिति। अपि च—

वायसशकुन्तसंवलितगृध्रवन्द्रैर्विस्फुरद्भिः।
प्रतिबद्धसूर्यकिरणं करङ्ककलितं श्मशानमिव ॥५१२॥
ग्रहभूतयक्षराक्षसपिशाचसंजनितहृदयपरितोषम्।
रुधिरबलिक्षिप्तप्रशमितनिःशेषधरारजउद्घातम् (समूहम्) ॥५१३॥

तं चैवंगुणाभिरामं चण्डिकायतनपार्श्वमण्डलं सभयं व्यतिक्रम्यायतनं प्रेक्षितुं प्रवृत्तः।

धवलवरनरकलेवरविस्तीर्णोत्तुङ्गघटितप्राकारम्।
उद्भटकबन्धविरचिततोरणप्रतिबद्धशिरोमालम् ॥५१४॥

कालसेन के शबरों ने सार्थवाहपुत्र को पकड़ लिया। (उसे) लताओं की रस्सी से बाँधा। पत्नी के साथ ही चण्डीदेवी के मन्दिर की ओर चल पड़े। थोड़ी दूर गये। उसने चण्डिका-मन्दिर की समीपवर्ती भूमि देखी। (वह भूमि) कैसी थी? जिसे गोह ने खाया है ऐसे सुगन्धित जीर्ण वृक्ष की लकड़ियों के समूह से व्याप्त, सर्पयुगल से युक्त, जहाँ भयंकर बाँबी लगी हुई थी, मनोहर शब्द करनेवाले पक्षियों द्वारा जहाँ कोलाहल किया जा रहा था, बड़े-बड़े वृक्षों के तनों से जो व्याप्त था, जहाँ त्रिशूलों द्वारा रुधिर निकाला जा रहा था, वृक्षों की शाखाओं में जहाँ भैंसे और बकरों के मुख, पूंछ, सींग, गर्दन लटके हुए थे। और भी—

शब्द करते हुए कौओं से युक्त गृद्धसमूह से जहाँ सूर्य की किरणें अवरुद्ध हो रही थीं तथा हड्डी की ठठरियों से जो युक्त था ऐसे श्मशान के समान ग्रह, भूत, यक्ष, राक्षस और पिशाचों से जहाँ हृदय में संतोष उत्पन्न हो रहा था, रुधिर की बलि के फेंके जाने से जहाँ पृथ्वी के समस्त रजःकण शान्त, स्थिर व प्रतिबद्ध हो गये थे—इस प्रकार के गुणों से सुन्दर चण्डिकामन्दिर की समीपवर्ती भूमि को भयपूर्वक पार कर मन्दिर को देखने के लिए प्रवृत्त हुआ। अच्छे लक्षणोंवाले मनुष्यों के शरीर से जहाँ दीवार के किनारे ऊँचे-ऊँचे ढेर लग गये थे, प्रचण्ड धड़ों से निर्मित तोरण में जहाँ शिरोमालाएँ पहनाई गई थीं; ॥५१२-५१४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मयणाहवयणभोसणविरइयपायारसिहरसंघायं ।
उत्तुंगवेणुलंबियदीहरपोंडरियकत्तिझयं ।।५१५।।

दीणमुहपासपिंडियबंदयबीभच्छरुद्धओवासं ।
निसियकरवालवावडकरसबरजुवाणपरियरियं ।।५१६।।

विसमसमाहयपडुपडहसद्दवित्तत्थसउणसंघायं ।
अच्चंतरुयंतसदुक्खसबरिविलयाजणाइण्णं ।।५१७।।

वियडगयदंतनिम्मियभित्तिसमुक्किन्नसूलसंघायं ।
तक्खणमेत्तुक्कत्तियचम्मसमोच्छइयगब्भहरं ।।५१८।।

पुरिसवसापरिपूरियकवालपज्जलियमंगलपईवं ।
डज्झंतबिल्लगुग्गुलुपवियंभियधूमसंघायं ।।५१९।।

सबरवहूरुहिरक्खयगयमोत्तियरइयसत्थियसणाहं ।
चंदकरधवलदीहरपरिलंबियचमरसंघायं ।।५२०।।

मृगनाथवदनभीषणविरचितप्राकारशिखरसंघातम् ।
उत्तुङ्गवेणुलम्बितदीर्घपौण्डरीककृत्तिध्वजम् ।।५१५।।

दीनमुखपाशपिण्डितबन्दिकबीभत्सरुद्धावकाशम् ।
निशितकरवालव्यापृतकरशबरयुवपरिकरितम् ।।५१६।।

विषमसमाहतपटुपटहशब्दवित्रस्तशकुनसंघातम् ।
अत्यन्तरुदत्सदुःखशबरीवनिताजनाकीर्णम् ।।५१७।।

विकटगजदन्तनिर्मितभित्तिसमुत्कीर्णशूलसंघातम् ।
तत्क्षणमात्रोत्कर्तितचर्मसमाच्छादितगर्भगृहम् ।।८१८।।

पुरुषवसापरिपूरितकपालप्रज्वलितमङ्गलप्रदीपम् ।
दह्यमानबिल्वगुग्गुलुप्रविजृम्भितधूमसंघातम् ।।५१९।।

शबरवधूरुधिराक्षतगजमौक्तिकरचितस्वस्तिकसनाथम् ।
चन्द्रकरधवलदीर्घपरिलम्बितचामरसंघातम् ।।५२०।।

सिंह के मुखों से जहाँ के भवनों के शिखर का समूह निर्मित कर दिया गया था, ऊँचे-ऊँचे बाँसों पर शुभ्र कमलवत् चमड़े की ध्वजाएँ लटकी हुई थीं। पाश से लपेटे गये दीनमुख बन्दियों द्वारा जहाँ का भयानक स्थान रोका गया था, जिनके हाथ में तीक्ष्ण तलवारें थीं ऐसे शबरयुवक जिनको घेरे हुए थे, बड़े हाथी-दाँतों से निर्मित त्रिशूलों का समूह जहाँ की दीवारों पर उत्कीर्ण कर दिया गया था, उसी क्षण काटे गए चमड़े से जहाँ का गर्भगृह (भीतरी भाग) आच्छादित था, मनुष्यों की चर्बी से भरी हुई खोपड़ियों में जहाँ मंगलदीप जल रहे थे। जलाई गयी बेल की गुग्गुल से जहाँ धुआँ उठ रहा था, जहाँ की भूमि शबरस्त्रियों द्वारा रुधिराक्षत तथा गज-मोतियों से बनाये गये स्वस्तिक चिह्नों से युक्त थी, चन्द्रमा की किरणों के समान सफेद तथा लम्बे चामरों का समूह जहाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रुहिरकसव्वालंबियदीहरवणकोलवब्भनिउरुंबं ।
कंकेल्लिपल्लवुप्पंकनिमियरेहंतधरणितलं ॥५२१॥
कोदंडखग्गघंटयमहिसासुरपुच्छवावडकराए ।
कच्चाइणिपडिमाए विहूसियं घोररूवाए ॥५२२॥

तओ तं दट्ठूण चिंतियं धरणेणं—

सक्का सीहस्स वणे पलाइउं वारणस्स य तहेव ।
सुकयस्स दुक्कयस्स य भण कत्थ पलाइउं सक्का ॥५२३॥
एवं च चिंतयंतो छूढो सबरेहिं वंद्रमज्झंमि ।
अह बंधिऊण गाढं पुव्वविरुद्धेहिं व खलेहिं ॥५२४॥

एत्थंतरंमि समागओ चंडियाययणं कालसेणो, पडिओ चंडियाए चलणेसु, भणियं च सगग्गयक्खरं—भयवइ, जइ वि न कओ तए महं पसाओ,तहावि जम्मंतरे वि जहा न एवं दुक्खभायणं हवामि, तहा तए कायव्वं ति । 'सत्थवाहपुत्तावयारकरणेण जं महं दुक्खं, तं तुमं चेव जाणसि' त्ति भणिऊण

रुधिर (कसब्व) व्याप्तालम्बितदीर्घवनकोलवभ्रनिकुरम्बम् ।
कंकेल्लि(अशोक)पल्लवोत्पंक(राशि)न्यस्तराजद्धरणीतलम् ॥५२१॥
कोदण्डखड्गघण्टामहिषासुरपुच्छव्यापृतकरया ।
कात्यायनीप्रतिमया विभूषितं घोररूपया ॥ ५२२॥

ततस्तं दृष्ट्वा चिन्तितं धरणेन—

शक्ताः सिंहाद् वने पलायितुं वारणात्तथैव ।
सुकृताद् दुष्कृताच्च भण कुत्र पलायितुं शक्ताः ॥५२३॥
एवं च चिन्तयन् क्षिप्तः शबरैर्वन्द्रमध्ये ।
अथ बद्ध्वा गाढं पूर्वविरुद्धैरिव खलैः ॥५२४॥

अत्रान्तरे समागतश्चण्डिकायतनं कालसेनः । पतितश्चण्डिकायाश्चरणयोः । भणितं च सगद्गदाक्षरम् । भगवति ! यद्यपि न कृतस्त्वया मम प्रसादः, तथापि जन्मान्तरेऽपि यथा नैवं दुःखभाजनं भवामि तथा त्वया कर्तव्यमिति । 'सार्थवाहपुत्रापकारकरणेन यन्महद् दुःखं तत्त्वमेव

लटक रहा था, लटके हुए बड़े-बड़े जंगली सूकरों के रुधिर से जो व्याप्त था, अशोक वृक्ष के पत्तों की राशि को रखने से जहाँ का धरातल सुशोभित हो रहा था; धनुष, तलवार, घण्टा तथा महिषासुर की पूँछ से युक्त हाथोंवाली तथा भयंकर रूपवाली कात्यायनी की प्रतिमा से विभूषित (चण्डीदेवी का वह मन्दिर) था ॥५१५-५२२॥

तदनन्तर उसे देखकर धरण ने विचार किया—सिंह और हाथी (के भय) से वन में भाग जाना सम्भव है, किन्तु पुण्य और पाप से बचकर कहाँ भागा जा सकता है ? जब वह ऐसा सोच ही रहा था तभी शबरों के द्वारा उसे समूह के बीच फेंक दिया गया और मानो पहले से ही विरोधी हों ऐसे दुष्टों द्वारा दृढ़तापूर्वक बाँध दिया गया ॥५२३-५२४॥

इसी बीच कालसेन चण्डिका मन्दिर में आया । चण्डी के पैरों में गिर पड़ा । गद्गद अक्षरों में बोला—भगवति ! यद्यपि तुमने मुझ पर कृपा नहीं की तथापि दूसरे जन्म में भी इस प्रकार के दुःख का पात्र न बनूँ, वैसा करें । 'सार्थवाह पुत्र के प्रति मैंने जो अपकार किया, उससे उत्पन्न दुःख को तुम जानती हो'—ऐसा कहकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भणिओ कुरंगओ – हरे, निवेएहि भयवईए बलिं । तेण 'जं देवो आणावेइ' त्ति भणिऊण खित्तो णेण केसेसु कड्ढिऊण भयपरायत्तसव्वगत्तो दुग्गिलओ नाम लेहवाहओ । ढोइयं रत्तचंदणसणाहं भायणं । विगयपाणो विव चच्चिओ दुग्गिलओ । कालसेणेण कड्ढियं विज्जुच्छडाडोवभासुरं मंडलग्गं, वाहियं ईसि नियभुयासिहरे । भणिओ य दुग्गिलओ—भद्द, सुदिट्ठं जीवलोयं करेहि । सग्गं तए गंतव्वं, जीवियं मोत्तूण किं वा ते संपाडियउ त्ति । तओ भयाभिभूएण न जंपियं दुग्गिलएणं । पुणो वि भणिओ, पुणो वि न जंपियं ति । अणावूरियमणोरहो य न वावाइज्जइ त्ति विसण्णो कालसेणो । तं च दट्ठूण चिंतियं धरणेणं—हंत मए वि एवं मरियव्वं ति । ता वरं अपेच्छिऊण दीणसत्तघायं काऊण खणमेत्त-पाणपरिरक्खणेण इमस्स उवयारं पढमं विवन्नो म्हि । वावडो य मे विणिवायकरणेसु कयंतो, एसो वि निव्वुओ हवउ त्ति चिंतिऊण भणिओ कुरंगओ—भद्द, निवेएहि एयस्स महापुरिसस्स, जहा 'भयवि-सण्णो खु एसो तवस्सी, ता किं एइणा; अणभिन्नो अहं पत्थणाए; तहावि भवओ पओयणं पसाहणीयं चेव पत्थेमि एगं पत्थणं' ति । निवेइयं कालसेणस्स । भणियं च णेण, जीवियं मोत्तूण पत्थेउ भद्दो त्ति । धरणेण भणियं—मोत्तूण एयं मं वावाएसु त्ति । तओ बाहजलभरियलोयणेण अह को उण एसो

जानासि' इति भणित्वा भणितः कुरङ्गकः—अरे निवेदय भगवत्यै बलिम् । तेन 'यद्देव आज्ञापयति' इति भणित्वा क्षिप्तोऽनेन केशेषु कर्षित्वा भयपरावृत्तसर्वगात्रो दुर्गिलको नाम लेखवाहकः । ढौकितं रक्तचन्दनसनाथं भाजनम् । विगतप्राण इव चर्चितो दुर्गिलकः । कालसेनेन कृष्टं विद्युच्छटाटोपं भासुरं मण्डलाग्रम्, वाहितमीषद् निजभुजाशिखरे । भणितश्च दुर्गिलकः—भद्र ! सुदृष्टं जीवलोकं कुरु । स्वर्गे त्वया गन्तव्यं, जीवितं मुक्त्वा किं वा ते संपाद्यतामिति । ततो भयाभिभूतेन न जल्पितं दुर्गिलकेन । पुनरपि भणितः पुनरपि न जल्पितमिति । अनापूरितमनोरथश्च न व्यापाद्यते इति विषण्णः कालसेनः । तं च दृष्ट्वा चिन्तितं धरणेन । हन्त मयाऽप्येवं मर्तव्यमिति । ततो वरमप्रेक्ष्य दीनसत्त्वघातं कृत्वा क्षणमात्रप्राणपरिरक्षणेनास्योपकारं प्रथमं विपन्नोऽस्मि । व्यापृतश्च मे विनिपातकरणेषु कृतान्तः एषोऽपि निर्वृतो भवत्विति चिन्तयित्वा भणितः कुरङ्गकः—भद्र ! निवेदय एतस्मै महापुरुषाय, यथा 'भयविषण्णः खल्वेष तपस्वी, ततः किमेतेन, अनभिज्ञोऽहं प्रार्थनायाम्, तथापि भवतः प्रयोजनं प्रसाधनीयमेव प्रार्थये एकां प्रार्थनामिति । निवेदितं कालसेनाय । भणितं च तेन—जीवितं मुक्त्वा प्रार्थयतां भद्र इति । धरणेन भणितम्—मुक्त्वा एतं मां व्यापादयेति । ततो

कुरंगक से कहा—अरे, भगवती के लिए बलि चढ़ाओ। उसने 'जो देव आज्ञा दें' ऐसा कहकर भय से जिसका सारा शरीर काँप रहा था ऐसे दुर्गिलक नामक लेखवाहक के बाल खींचकर (उसे) पटक दिया। लाल चन्दन से युक्त पात्र सामने रख दिया। प्राणरहित-से दुर्गिलक को अलंकृत किया। कालसेन ने विद्युत् की आभा के समान चम-कीली तलवार खींची, तनिक अपने कन्धे तक ले गया। दुर्गिलक से कहा – भद्र ! संसार को अच्छी तरह देख लो, तुम्हें स्वर्ग जाना है। प्राणरक्षा के अतिरिक्त तुम्हारा क्या इष्ट कार्य करें। तब भय से अभिभूत होकर दुर्गिलक नहीं बोला। फिर से कहा—फिर भी नहीं बोला। 'जिसका मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ है ऐसा मनुष्य मारा नहीं जाता है' – ऐसा सोचकर कालसेन दुःखी हुआ। उसे देखकर धरण ने विचार किया—हाय ! मुझे भी इसी प्रकार मरना पड़ेगा। तब दीन प्राणियों का घात देखना अच्छा नहीं है अतः क्षणमात्र के लिए अपने प्राणों की रक्षा न कर इसका उपकार करने के लिए पहले मरना चाहिए। मेरा अनिष्ट करने में यम (दैव) लगा हुआ है, 'यह भी सुखी हो' – ऐसा सोचकर कुरङ्गक से कहा—भद्र ! इन महापुरुष से निवेदन करो कि यह बेचारा भय से दुःखी है, अतः इससे क्या, मैं प्रार्थना नहीं करना चाहता तथापि आपका प्रयोजन सिद्ध हो—इस प्रकार की एक प्रार्थना करता हूँ। कालसेन से निवेदन किया गया। उसने कहा—भद्र ! प्राणदान को छोड़कर अन्य जो प्रार्थना हो उसे

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

परोवयारतल्लिच्छयाए अप्पाणयं वावायणे समप्पेइ; सुमरावेइ मे सत्थवाहपुत्तं' ति भणिऊण मुच्छिओ कालसेणो, निवडिओ धरणिवट्ठे। वीजिओ किसोरएण। लद्धा चेयणा। भणियं णेण—भद्द किसोरय, निरूवेहि एयं, को उण एसो महाणुभावो सत्थवाहपुत्तस्स चेट्ठियं अणुकरेइ। निरूविऊण भणियं किसोरएण—भो इमाए अणन्नसरिसीए आगिईए सो चेव मे पडिहायइ त्ति। ता सयमेव निरूवेउ पल्लीवई। तओ हरिसविसायगब्भिणं निरूविओ णेण पच्चभिन्नाओ य। छोडिया से बंधा। खग्गं मोत्तूण निवडिओ चलणेसु। भणियं च णेण—सत्थवाहपुत्त, खमियव्वो मह एस अवराहो। धरणेण भणियं—भो महापुरिस, अहिप्पेयफलसाहणेण गुणो खु एसो, कहमवराहो त्ति। कालसेणेण चिंतियं, नूणं न एस मं पच्चभिजाणइ त्ति, तेण एवं मंतेइ; ता पयासेमि से अत्ताणयं। भणियं च णेण—सत्थवाहपुत्त, किं ते अहिप्पेयं फलं साहियं ति। धरणेण भणियं—भद्द, पत्थुए वावायणे एयं उज्झिऊण ममेव मरणमणोरहाबूरणं ति। कालसेणेण भणियं—सत्थवाहपुत्त, किं ते इमस्स निव्वेयाइसयस्स मरणववसायस्स कारणं। धरणेण भणियं—भो महापुरिस, अलमियाणि एयाए कहाए। संपाडेउ भवं

बाष्पजलभृतलोचनेन 'अथ कः पुनरेष परोपकारतत्परतया आत्मानं व्यापादने समर्पयति, स्मरयति मे सार्थवाहपुत्रम्' इति भणित्वा मूर्च्छितः कालसेनः, निपतितो धरणीपृष्ठे। वीजितः किशोरकेन। लब्धा चेतना। भणितं च तेन—भद्र किशोरक ! निरूपयैतम्, कः पुनरेष महानुभावः सार्थवाहपुत्रस्य चेष्टितमनुकरोति। निरूप्य भणितं किशोरकेन—भो अनयाऽनन्यसदृश्याऽऽकृत्या स एव मे प्रतिभातीति। ततः स्वयमेव निरूपयतु पल्लीपतिः। ततो हर्षविषादगर्भितं निरूपितस्तेन प्रत्यभिज्ञातश्च। छोटितास्तस्य बन्धाः। खड्गं मुक्त्वा निपतितश्चरणयोः। भणितं च तेन—सार्थवाहपुत्र ! क्षन्तव्यो ममैषोऽपराधः। धरणेन भणितम्—भो महापुरुष ! अभिप्रेतफलसाधनेन गुणः खल्वेषः, कथमपराध इति। कालसेनेन चिन्तितम्—नूनं नैष मां प्रत्यभिजानातीति तेनैवं मन्त्रयति, ततः प्रकाशयामि तस्मै आत्मानम्। भणितं च तेन—सार्थवाहपुत्र ! किं तेऽभिप्रेतं फलं साधितमिति ! धरणेन भणितम्—भद्र ! प्रस्तुते व्यापादने एतमुज्झित्वा ममैव मरणमनोरथापूरणमिति। कालसेनेन भणितम्—सार्थवाहपत्र ! किं तेऽस्य निर्वेदातिशयस्य मरणव्यवसायस्य कारणम्। धरणेन भणितम्—भो महापुरुष! अलमिदानी-

---

कहो। धरण ने कहा—इसे छोड़कर मुझे मार दो। तब आँखों में आँसू भरकर 'यह कौन है जो कि परोपकार में तत्पर होने के कारण अपने आपको मारने के लिए समर्पण करता है ? (यह) मुझे सार्थवाहपुत्र का स्मरण दिलाता है'—ऐसा कहकर कालसेन मूच्छित हो गया, जमीन पर गिर पड़ा। किशोरक ने पंखे से हवा की। (उसे) होश आया। उसने कहा—भद्र किशोरक ! इसे भली प्रकार देखो, यह कौन महानुभाव हैं जो सार्थवाहपुत्र की चेष्टाओं का अनुसरण कर रहे हैं। देखकर किशोरक ने कहा—महाशय ! इसकी अभिन्न इस आकृति से मालूम होता है कि वही है। अतः स्वामी (पल्लीपति) आप स्वयं ही देखें। अनन्तर हर्ष और विषाद से युक्त होकर उसने देखा और पहिचान लिया। उसके बन्धनों को छुड़ाया। तलवार फेंककर चरणों में गिर पड़ा। उसने कहा—सार्थवाहपुत्र ! मेरा यह अपराध क्षमा करो। धरण ने कहा—हे महापुरुष ! इष्टफल का साधन करना गुण ही है, अपराध कैसे है ? कालसेन ने सोचा—निश्चित ही यह मुझे पहिचानता है, अतः ऐसा कहता है। अतः इसके सामने अपने को प्रकट करता हूँ। उसने कहा—सार्थवाहपुत्र ! तुमने कौन से इष्टकार्य की सिद्धि की ? धरण ने कहा—भद्र ! मारने के लिए प्रस्तुत इसे छुड़ाकर मेरा ही मनोरथ पूरा हुआ। कालसेन ने कहा—सार्थवाहपुत्र ! इसके प्रति अतिशय दुःखानुभूति के कारण मरण का निश्चय करने का क्या कारण है ? धरण ने कहा—हे महापुरुष,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्तणो समीहियं ति । तओ 'अहो से महाणुभावय' त्ति चिंतिऊण भणियं कालसेणेण—सत्थवाहपुत्त, न सुमरेसि मं सीहविणिवाइयं नागपोययं पिव अत्तणो विणासनिमित्तं अत्तणा चेव जीवाविऊण कयग्घसेहरयभूयं कालसेणं। जीवाविओ अहं तए। मए पुण कओ तुज्झ पच्चुवयारो; विओइओ तुमं सत्थाओ, पाविओ य अप्पत्तपुव्वं इमं ईइसिं अवत्थं ति। तओ सुमरिऊण पुव्ववुत्तंतं पच्चहियाणिऊण य कालसेणं लज्जावणयवयणं जंपियं धरणेण—भो महापुरिस, को अहं जीवावियव्वस्स, तुह चेव पुण्णपरिणई एस त्ति। कहं च तुमं कयग्घो, जो दिट्ठमेत्त वि जणे अन्नाणओ किंपि काऊण एवं खिज्जसि त्ति। ता अलमेइणा। अह किं पुण इमं पत्थयं ति। तओ लज्जापराहीणेण न जंपियं कालसेणेण। साहियं च निरवसेसमेव संगमदंसणाइयं निययपाणपरिच्चायववसायावसाणं चेट्ठियं ति किसोरएणं। तओ 'अहो से कयन्नुया, अहो थिरसिणेहया, अहो महाणुभावय' त्ति चिंतिऊण जंपियं धरणेण—भो महापुरिस, जुत्तमेव गुरुदेवपूयणं पुप्फबलिगंधचंदणेहिं, न उण पाणिघाएणं। अवि य—

होज्जा जले वि जलणो होज्जा खीरं पि गोविसाणाओ।
अमयरसो वि विसाओ न य हिंसाओ हवइ धम्मो ॥५२५॥

मेतया कथया। संपादयतु भवानात्मनः समीहितमिति। ततः 'अहो तस्य महानुभावता' इति चिन्तयित्वा भणितं कालसेनेन—सार्थवाहपुत्र! न स्मरसि मां सिंहविनिपातितं नागपोतकमिवात्मनो विनाशनिमित्तमात्मनैव जीवयित्वा कृतघ्नशेखरभूतं कालसेनम्। जीवितोऽहं त्वया। मया पुनः कृतस्तव प्रत्युपकारः, वियोजितस्त्वं सार्थात्, प्रापितश्चाप्राप्तपूर्वामिमामीदृशीमवस्थामिति। ततः स्मृत्वा पूर्ववृत्तान्तं प्रत्यभिज्ञाय च कालसेनं लज्जावनतवदनं जल्पितं धरणेन—भो महापुरुष! कोऽहं जीवयितव्यस्य, तवैव पुण्यपरिणतिरेषेति। कथं च त्वं कृतघ्नः, यो दृष्टमात्रेऽपि जने अज्ञानतः किमपि कृत्वा एवं खिद्यसे इति। ततोऽलमेतेन। अथ किं पुनरिदं प्रस्तुतमिति। ततो लज्जापराधीनेन न जल्पितं कालसेनेन। कथितं च निरवशेषमेव संगमदर्शनादिकं निजप्राणपरित्यागव्यवसायावसानं चेष्टितमिति किशोरकेन। ततः 'अहो तस्य कृतज्ञता, अहो स्थिरस्नेहता, अहो महानुभावता' इति चिन्तयित्वा जल्पितं धरणेन—भो महापुरुष! युक्तमेव गुरुदेवपूजनं पुष्पबलिगन्धचन्दनैः; न पुनः प्राणिघातेन। अपि च—

भवेज्जलेऽपि ज्वलनो भवेत् क्षीरमपि गोविषाणात्।
अमृतरसोऽपि विषाद् न च हिंसाया भवति धर्मः ॥५२५॥

इस कथा को मत पूछिए। आप अपने इष्टकार्य की पूर्ति कीजिए। तब 'अहो इसकी महानुभावता!'—ऐसा सोच कर कालसेन ने कहा—सार्थवाहपुत्र! सिंह द्वारा मारे गए हाथी के बच्चे के समान अपने विनाश के निमित्त को स्वयं जिलाकर कृतघ्नता-शिरोमणि मुझ कालसेन की याद नहीं है क्या? तुमने ही मुझे जीवित किया था। मैंने तुम्हारा प्रत्युपकार किया कि तुम्हें सार्थ से अलग कर दिया और इस अपूर्व अवस्था को प्राप्त करा दिया है। तब पूर्व वृत्तान्त को स्मरण कर कालसेन को पहिचान कर लज्जा से सिर झुकाकर धरण ने कहा, हे महापुरुष! मैं जीवित करने वाला कौन हूँ? यह तुम्हारे पुण्य का ही फल है और तुम कृतघ्न कैसे हो जो कि एक बार देखे गए व्यक्ति के प्रति अज्ञान से कुछ करके इस प्रकार खिन्न हो रहे हो! अतः इससे बस करो अर्थात् पश्चात्ताप मत करो। पुनः यह क्या प्रस्तुत किया? तब लज्जा से पराधीन हुए कालसेन ने कुछ भी नहीं कहा। संगम का दर्शन, अपने प्राणपरित्यागरूप कार्य का अवसान आदि समस्त क्रियाओं के विषय में किशोरक ने कहा। तब 'अहो उसकी कृतज्ञता, अहो स्थिर प्रेम, अहो महानुभावता! ऐसा सोचकर धरण ने कहा—हे महापुरुष! गुरुदेव का पूजन पुष्पोपहार, गन्ध, चन्दनादिक से करना उचित है। प्राणिघात के द्वारा पूजा करना उचित नहीं है। कहा भी है—

अग्नि से जल, गाय के सींग से दूध और विष से अमृत की उत्पत्ति भले ही हो, किन्तु हिंसा से धर्म (कदापि) नहीं होता है ॥५२५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दाऊण य अहिओयं देवयजन्नाण जे खलु अभव्वा।
घायंति जियसयाइं पावेंति दुहाइ ते नरए ॥५२६॥

ता विरम एयाओ ववसायाओ त्ति। कालसेणेण भणियं—जं तुमं आणवेसि त्ति। तओ गाम-देसलूडणे अन्नाभावे य भक्खणनिमित्तं च मोत्तूण कओ अणेण कायम्बरिअडविपविट्ठस्स सत्थस्स पाणि-घायणस्स जावज्जीविओ नियमो। फुल्लबलिगंधचंदणेहिं पूइया देवया। नीओ णेण सयलबंदसंगओ नियगेहमेव धरणो। कओ उचिओ उवयारो।

भुत्तुत्तरकालंमि य उवणीयं से समत्थरित्थं ति।
सबराहिवेण तुरियं गहियं जं सत्थभंगंमि ॥५२७॥
करिकुंभसमुत्थाणि य महल्लमुत्ताहलाइ पवराइं।
दंता य गयवराणं चमराणि य जच्चचमरीणं ॥५२८॥
घेत्तूण य तं रित्थं दाऊण य किंचि बंदयाणं पि।
विहरह जहासुहेणं भणिऊण विसज्जिया तेणं ॥५२९॥

दत्त्वा चाभियोगं देवतायज्ञेभ्यो ये खल्वभव्याः।
घातयन्ति जीवशतानि प्राप्नुवन्ति दुःखानि ते नरके ॥५२६॥

ततो विरम एतस्माद् व्यवसायादिति। कालसेनेन भणितम्—यत्त्वमाज्ञापयसीति। ततो ग्राम-देशलुण्टने अन्नाभावे च भक्षणनिमित्तं च मुक्त्वा कृताऽनेन कादम्बर्यटवीप्रविष्टस्य सार्थस्य प्राणि-घातनस्य यावज्जीविको नियमः। पुष्पबलिगन्धचन्दनैः पूजिता देवता। नीतस्तेन सकलबन्दिसंगतो निजगेहमेव धरणः। कृत उचित उपकारः।

भुक्तोत्तरकाले चोपनीतं तस्मै समस्तरिक्थमिति।
शबराधिपेन त्वरितं गृहीतं यत्सार्थभङ्गे ॥५२७॥
करिकुम्भसमुत्थानि च महामुक्ताफलानि प्रवराणि।
दन्ताश्च गजवराणां चामराणि च जात्यचमरीणाम् ॥ ५२८॥
गृहीत्वा च तद् रिक्थं दत्त्वा च किंचिद् बन्दिनामपि।
विहरत यथासुखं भणित्वा विसर्जितास्तेन (धरणेन) ॥५२९॥

जो अभव्य देवताओं के यज्ञ में पूजा के निमित्त सैकड़ों जीवों का घात करते हैं वे निश्चय से नरक में दुःखों को प्राप्त करते हैं ॥५२६॥

अतः इस व्यवसाय से विराम लो। कालसेन ने कहा—जो आप आज्ञा दें। तब अन्न के अभाव में खाने के लिए ग्राम और देश का लूटना छोड़कर वन में प्रविष्ट सार्थ के न लूटने तथा प्राणिघात न करने का इसने जीवन भर के लिए नियम कर लिया। पुष्पोपहार, गन्ध और चन्दन से देवी की पूजा की। समस्त बन्दियों के साथ धरण को अपने घर ले गया। उचित सत्कार किया।

भोजन करने के पश्चात् शबरपति वह सब धन तुरन्त लाया जो कि काफिले के छिन्न-भिन्न हो जाने पर ग्रहण किया था। (इनमें) हाथी के गण्डस्थल से निकले हुए श्रेष्ठ मुक्ताफल, श्रेष्ठ हाथियों के दाँत और उत्तम जाति वाले चमरीमृगों के चामर थे। उस धन को ग्रहण कर तथा कुछ बन्दियों को भी देकर धरण ने बन्दियों से कहा—सुखपूर्वक विहार करो। इस प्रकार उन सबको विदा कर दिया ॥५२७-५२९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धरणो वि कालसेणपीईए तत्थेव कंचि कालं गमेऊण विसज्जिओ कालसेणेण, पयट्टो नियपुरिं, पत्तो य कालक्कमेणं। [विन्नाओ अम्मापिईहिं नायरेहि य] परितुट्ठो से गुरुयणो। निग्गया नयरिमहंतया। पच्चुवेक्खियं भंडं संखियं च मोल्लेणं जाव सवाया कोडि त्ति। इओ अइक्कंते अद्धमासे आगओ देवनंदी। तस्स वि य निग्गया नयरिमहंतया। पच्चुवेक्खियं भंडं संखियं च मोल्लेणं जाव अद्धकोडि त्ति। तओ विलिओ देवनंदी। समप्पियं पउरभंडमोल्लं। सेसेण य परमणोरहसंपायणेण सफलं पुरिसभावमणुहवंतस्स आगया मयणतेरसी। भणिओ य एसो नयरिमहंतएहिं 'नीसरेहि रहवरं'। धरणेण भणियं—अलं बालकीडाए। पसंसिओ नयरिमहंतएहिं।

अइक्कंतो य से कोइ कालो परत्थसंपायणसुहमणुहवंतस्स। निओइयपायं च णेण नियभुओवज्जियं दविणजायं। समुप्पन्ना य से चिंता। अवस्समेव पुरिसेण उत्तमकुलपसूएण तिवग्गो सेवियव्वो। तं जहा, धम्मो अत्थो कामो य। तत्थ अपरिचत्तसव्वसंगेण अत्थप्पहाणेण होयव्वं ति। तओ चेव तस्स दुवे संपज्जंति। तं जहा, धम्मो य कामो य। अन्नं च, एस अत्थो नाम महंतं देवयारूवं। एसो खु

धरणोऽपि च कालसेनप्रीत्या तत्रैव कञ्चित्कालं गमयित्वा विसर्जितः कालसेनेन प्रवृत्तो निजपुरीम्, प्राप्तश्च कालक्रमेण। [विज्ञातो मातापितृभ्यां नागरकैश्च]। परितुष्टस्तस्य गुरुजनः। निर्गता नगरीमहान्तः। प्रत्यवेक्षितं भाण्डम्, संख्यातं च मूल्येन यावत् सपादा कोटिरिति। इतोऽतिक्रान्तेऽर्धमासे आगतो देवनन्दी। तस्यापि च निर्गता नगरीमहान्तः। प्रत्यवेक्षितं भाण्डम्, संख्यातं च मूल्येन यावदर्धकोटिरिति। ततो व्यलीको (लज्जितो) देवनन्दी। समर्पितं पौरभाण्डमूल्यम्। शेषेण च परमनोरथसम्पादनेन सफलं पुरुषभावमनुभवत आगता मदनत्रयोदशी। भणितश्चैष नगरीमहद्भिः 'निःसारय रथवरम्'। धरणेन भणितम्—अलं बालक्रीडया। प्रशंसितो नगरीमहद्भिः।

अतिक्रान्तश्च तस्य कोऽपि कालः परार्थसम्पादनसुखमनुभवतः। नियोजितप्रायं च तेन निजभुजोपार्जितं द्रविणजातम्। समुत्पन्ना च तस्य चिन्ता। अवश्यमेव पुरुषेणोत्तमकुलप्रसूतेन त्रिवर्गः सेवितव्यः। तद् यथा—धर्मोऽर्थः कामश्च। तत्रापरित्यक्तसर्वसङ्गेन अर्थप्रधानेन भवितव्यमिति तत एव तस्य द्वौ संपद्येते। तद् यथा, धर्मश्च कामश्च। अन्यच्च—एषोऽर्थो नाम महद् देवता-

---

धरण भी कालसेन की प्रीति से कुछ समय वहीं बिताकर, कालसेन से विदाई लेकर अपने नगर की ओर चल पड़ा। कालक्रम से वह वहाँ पहुँच भी गया। माता, पिता और नागरिकों ने जाना। गुरुजन सन्तुष्ट हुए। नगर के बड़े-बड़े लोग निकले। माल को देखा, मूल्य से गणना की—सवा करोड़ का था। इधर आधा माह व्यतीत होने पर देवनन्दी भी आया। नगर के बड़े-बड़े लोगों ने उसके भी माल को निकाला। माल को देखा, मूल्य से गणना की—आधे करोड़ का था। तब देवनन्दी लज्जित हुआ। नगर के माल का मूल्य समर्पित किया। बचे हुए धन से दूसरे के मनोरथ को पूरा करते हुए अपना नरभव सफल माना। मदनत्रयोदशी आयी। नगर के बड़े लोगों ने इससे (धरण से) कहा—रथ को निकालो। धरण ने कहा—बालक्रीड़ा से बस अर्थात् बालक्रीड़ा रहने दो। नगर के बड़े लोगों ने प्रशंसा की।

दूसरे के प्रयोजन को पूरा करने के सुख का अनुभव करते हुए उसका कुछ समय व्यतीत हुआ। अपनी भुजाओं से उपार्जित द्रव्य को उसने नियोजित किया। उसे चिन्ता उत्पन्न हुई। उत्तमकुल में उत्पन्न हुए पुरुष को अवश्य ही त्रिवर्ग का सेवन करना चाहिए—धर्म, अर्थ और काम तीनों का। समस्त आसक्तियों को न छोड़ते हुए अर्थप्रधान होना चाहिए, उसीसे धर्म और काम का सम्पादन होता है। दूसरी बात यह है कि 'यह धन बड़ा देवता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरिसस्स बहुमाणं वड्ढावेइ, गोरवं जणेइ, महग्घयं उप्पाएइ, सोहग्गं करेइ, छायामावहइ, कुलं पयासेइ, रूवं पयासेइ, बुद्धिं पयासेइ। अत्थवंतो हि पुरिसा अदेंता वि लोयाणं सलाहणिज्जा हवंति। जं चेव करेंति, तं चेव तेसिं असोहणं पि सोहणं वण्णिज्जए। अभग्गपणइपत्थणं च अणुहवंति परत्थसंपायणसुहं। ता जइ वि एस मह पुव्वपुरिसोवज्जिओ अइपभूओ अत्थि, तहावि अलं तेण गुरुपणइणिसमाणेण। ता अन्नं उवज्जिणेमि, गच्छामि दिसावणिज्जेणं ति। चिंतिऊण विन्नत्ता जणणिजणया। अणुमन्निओ य णेहिं गओ महया सत्थेणं समहिलिओ पुव्वसमुद्दतडनिविट्ठं वेजयंतिं नाम नयरिं। दिट्ठो नरवई। बहुमन्निओ य णेणं। निओइयं भंडं, न समासाइओ इट्ठलाभो। चिंतियं च णेण—समागओ चेव जलनिहितडं। ता गच्छामि ताव परतीरं। तत्थ मे गयस्स कयाइ अहिलसियपओयणसिद्धी भविस्सइ त्ति। गहियं परतीरगामियं भंडं। संजत्तियं पवहणं। पसत्थतिहिकरणजोगेण निग्गओ नयरीओ, गओ समुद्दतीरं, पूइओ अत्थिजणो, अग्घिओ जलनिही। तओ वंदिऊण गुरुदेवए उवारूढो जाणवत्तं। आगड्ढियाओ वेगहारिणीओ सिलाओ, पूरिओ सियवडो, विमुक्कं जाणवत्तं, गम्मए चीणदीवं ति।

रूपम्। एष खलु पुरुषस्य बहुमानं वर्धयति, गौरवं जनयति, महार्घ्यतामुत्पादयति, सौभाग्यं करोति, छायामावहति, कुलं प्रकाशयति, रूपं प्रकाशयति, बुद्धिं प्रकाशयति। अर्थवन्तो हि पुरुषा अददतोऽपि लोकानां श्लाघनीया भवन्ति। यदेव कुर्वन्ति तदेव तेषामशोभनमपि शोभनं वर्ण्यते, अभग्नप्रणयिप्रार्थनं चानुभवन्ति परार्थसम्पादनसुखमिति। ततो यद्यपि एष मम पूर्वपुरुषोपार्जितोऽतिप्रभूतोऽस्ति, तथापि अलं तेन गुरुप्रणयिनीसमानेन। ततोऽन्यमुपार्जयामि, गच्छामि दिग्वाणिज्येनेति चिन्तयित्वा विज्ञप्तौ जननीजनकौ। अनुमतश्च ताभ्यां गतो महता सार्थेन समहिलः पूर्वसमुद्रतटनिविष्टां वैजयन्तीं नाम नगरीम्। दृष्टो नरपतिः। बहुमानितश्च तेन। नियोजितं (विक्रीतं) भाण्डम्, न समासादित इष्टलाभः। चिन्तितं च तेन—समागत एव जलनिधितटम्, ततो गच्छामि तावत्परतीरम्। तत्र मे गतस्य कदाचिदभिलषितप्रयोजनसिद्धिर्भविष्यतीति। गृहीतं परतीरगामिकं भाण्डम्। संयात्रितं प्रवहणम्। प्रशस्ततिथिकरणयोगेन निर्गतो नगर्याः, गतः समुद्रतीरम्, पूजितोऽर्थिजनः, अर्घितो जलनिधिः। ततो वन्दित्वा गुरुदेवतान् उपारूढो यानपात्रम्। आकृष्टा वेगहारिण्यः शिलाः, पूरितः सितपटः, विमुक्तं यानपात्रम्, गम्यते चीनद्वीपमिति।

रूप है, यह पुरुष के सम्मान को बढ़ाता है, गौरव उत्पन्न करता है, अत्यधिक महत्त्व को उत्पन्न करता है। सौभाग्य को करता है, कान्ति को लाता है, कुल को प्रकाशित करता है, रूप को प्रकाशित करता है, (और) बुद्धि को (भी) प्रकाशित करता है। धनवान् व्यक्ति न देते हुए भी लोक में प्रशंसनीय होते हैं। जो कुछ करते हैं वह अशोभन होते हुए भी शोभन के रूप में वर्णित किया जाता है। याचकजनों की प्रार्थना को न तोड़ते हुए परार्थसाधन रूप सुख का अनुभव करते हैं। अतः यद्यपि मेरे पूर्वजों के द्वारा उपार्जित धन बहुत अधिक है, किन्तु गुरु के प्रति की गयी याचना के समान इससे बस करना चाहिए। अतः दूसरा धन उपार्जन करूँगा—ऐसा सोचकर माता-पिता से निवेदन किया। उन दोनों ने अनुमति दे दी। बहुत बड़े व्यापारियों के झुण्ड तथा पत्नी के साथ पूर्व समुद्र के किनारे स्थित वैजयन्ती नामक नगरी को गया। राजा ने देखा। उसने बहुत सम्मान दिया। माल को बेचा, किन्तु अभीप्सित लाभ नहीं प्राप्त हुआ। उसने सोचा—समुद्र के तट पर आ गया हूँ, अतः दूसरे किनारे पर जाऊँगा। वहाँ पर जाने पर कदाचित् अभिलषित प्रयोजन की सिद्धि हो जाएगी। दूसरे किनारे पर ले जाये जानेवाले माल को ले लिया। गाड़ी (यान) को तैयार किया। पुण्य तिथि और करण के योग में नगरी से निकला। समुद्र के किनारे गया। याचकों की पूजा की, समुद्र को अर्घ्य दिया। गुरु-देवताओं को नमस्कार कर जहाज पर सवार हो गया। वेग को रोकनेवाली शिला खींची। सफेद वस्त्र (पाल) को लगाया, यान-पात्र को छोड़ा, चीन द्वीप की ओर गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्नया य अइक्कंतेसु कइवयदिणेसु कुसलपुरिसविमुक्के विय नाराए वहंते जाणवत्ते गयणयल-मज्झसंट्ठिए दिणयरंमि आगंपयंतो विय मेइणिं धुणंतो विय समुद्दं उम्मूलंतो विय कुलसेलजालाणि पयट्टो मारुओ। तओ एरावणो विय गुलुगुलेन्तो पडिसोत्तवाहियसरियामुहं खुहिओ महण्णवो, विसण्णा निज्जामगा। तओ समं गमणारंभेण ओसारिओ सियवडो, जीवियासा विय विमुक्का नंगर-सिला निज्जामएहिं। तहावि य तत्थ कंचि वेलं गमेऊण विवन्नं जाणवत्तं। जीवियसेसयाए समा-साइयं फलगं, अहोरत्तेण लंघिऊण जलनिहिं सुवण्णदीवंमि लग्गो सत्थवाहपुत्तो। चिंतिअं च णेणं, अहो परिणई दइव्वस्स। न याणामि अवत्थं पिययमाए परियणस्स य। अहवा किं विसाएणं। एसो चेव एत्थ पमाणं ति। तओ कयलफलेहिं संपाइया पाणवित्ती। अत्थमिओ सूरिओ। कओ णेण पल्लव-सत्थरो, सीयावणयणत्थं च अरणीपओएण पाडिओ जलणो। तप्पिऊण कंचि कालं पणमिऊण गुरु-देवए य पसुत्तो एसो। अइक्कंता रयणी, विउद्धो य। उग्गओ अंसुमाली। दिट्ठं च णेण तं जलणच्छिवक्कं सव्वमेव सुवण्णीहूयं धरणिखंडं। चिंतियं च णेण। अहो एयं खु धाउखेत्तं; ता पाडेमि एत्थ सुवण्णयं

अन्यदा चातिक्रान्तेषु कतिपयदिनेषु कुशलपुरुषविमुक्ते इव नाराचे वहति यानपात्रे गगनतल-मध्यसंस्थिते दिनकरे आकम्पयन्निव मेदिनीं धूनयन्निव समुद्रम् उन्मूलयन्निव कुलशैलजालानि प्रवृत्तो मारुतः। तत ऐरावण इव गुलुगुलायमानः प्रतिस्रोतोवाहितसरिन्मुखं क्षुब्धो महार्णवः, विषण्णा निर्यामिकाः। ततः समं गमनारम्भेणापसारितः सितपटः, जीविताशेव विमुक्ता नाङ्गर-शिला निर्यामकैः।

तथापि च तत्र काञ्चिद् वेलां गमयित्वा विपन्नं यानपात्रम्। जीवितशेषतया समासादितं फलकम् अहोरात्रेण लङ्घित्वा जलनिधिं सुवर्णद्वीपे लग्नः सार्थवाहपुत्रः। चिन्तितं च तेन—अहो परिणतिर्दैवस्य, न जानाम्यवस्थां प्रियतमायाः परिजनस्य च। अथवा किं विषादेन। एष एवात्र प्रमाणमिति। ततः कदलफलैः संपादिता प्राणवृत्तिः। अस्तमितः सूर्यः। कृतस्तेन पल्लवस्रस्तरः, शीतापनयनार्थं चारणिप्रयोगेण पातितो ज्वलनः। तप्त्वा कञ्चित्कालं प्रणम्य गुरुदेवतांश्च प्रसुप्त एषः। अतिक्रान्ता रजनी, विबुद्धश्च। उद्गतोंऽशुमाली। दृष्टं च तेन तद् ज्वलनस्पृष्टं सर्वमेव सुवर्णी-भूतं धरणीखण्डम्। चिन्तितं च तेन—अहो एतत्खलु धातुक्षेत्रम्, ततः पातयाम्यत्र सुवर्णकमिति।

दूसरी बार कुछ दिन बीत जाने पर कुशल पुरुषों के द्वारा छोड़े गये बाण के समान जहाज के चलने पर जबकि सूर्य आकाश के मध्य में स्थित था (तब), पृथ्वी को मानो कँपाती हुई, समुद्र को मानो उड़ाती हुई और कुलपर्वतों के समूह को उखाड़ती हुई वायु चल पड़ी। तब इन्द्र के हाथी के समान गुलगुल शब्द करता हुआ, उल्टी धार बहता हुआ महासागर क्षुब्ध हो गया। नाविक खिन्न हो गये। तब वायु के चलने के आरम्भ में ही सफेद वस्त्र (पाल) को हटाया, नाविकों ने जीवन की आशा के तुल्य लंगर को छोड़ा।

तो भी कुछ समय बाद जहाज नष्ट हो गया। प्राण शेष होने के कारण एक काष्ठ-खण्ड मिल गया। दिन-रात समुद्र को पार कर सार्थवाहपुत्र सुवर्णद्वीप के किनारे आ लगा। उसने सोचा—अहो, भाग्य का फल, प्रियतमा और सेवकों की हालत को नहीं जानता हूँ। अथवा विषाद के क्या ? अब यही प्रमाण है। तब केलों का आहार किया। सूर्य अस्त हो गया। उसने पत्तों का बिस्तर बनाया, ठण्ड को दूर करने के लिए लकड़ियों को रगड़कर आग जलायी। कुछ समय तापकर गुरु-देवताओं को प्रणाम कर वह सो गया। रात्रि व्यतीत हुई, (वह) उठ गया। सूर्य निकला। उसने सारी धरती को जलती हुई अग्नि के समान स्वर्णमयी देखा। उसने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ति। कयाओ इट्टयाओ, अंकियाओ धरणनामएण, उल्लयाणं चेव संपाइया संपुडा, पक्का य सुवण्णमया जाया। एवं च कया णेण दस इट्टयसपुडसहस्सा। निबद्धो भिन्नपोयद्धओ।

इओ य चीणाओ चेव सुवयणसत्थवाहपुत्तसंतियं असारभंडभरियं अन्नदीवलग्गसंपावियलच्छिसहियं देवउरगामियं समागयं तमुद्देसं जाणवत्तं। दिट्ठो य भिन्नपोयद्धओ सत्थवाहेणं। लम्बिया य नंगरा सुवयणाएसेण। समागया निज्जामगा। दिट्ठो य णेहिं धरणो भणिओ य—भो भो महापुरिस, एसो चीणवत्थव्वगो देवउरगामी जाणवत्तसंठिओ सुवयणो नाम सत्थवाहपुत्तो भणइ, जहा एहि; कूलं गच्छम्ह। धरणेण भणियं—भद्द, किंभंडभरियं खु तं जाणवत्तं। निज्जामएहिं भणियं—अज्ज, विहिवसेण परिवडिओ खु एसो सत्थवाहपुत्तो विहवेण, न उण पोरुसेणं। ता न सुट्ठु सारभंडभरियं ति। धरणेण भणियं—जइ एवं, ता अणुवरोहेणं आगच्छउ एत्तियं भूमिं सत्थवाहपुत्तो। निवेइयं सुवयणस्स। आगओ य एसो, भणिओ धरणेण—सत्थवाहपुत्त, न तए कुप्पियव्वं, पओयणं उद्दिसिऊण किंचि पुच्छामि त्ति। सुवयणेण भणियं—भणाउ अज्जो। धरणेण भणियं—केत्तियस्स ते दविण-

---

कृता इष्टकाः, अङ्किता धरणनामकेन आर्द्रकाणामेव सम्पादिताः सम्पुटाः, पक्वाश्च सुवर्णमया जाताः। एवं च कृतानि तेन दश इष्टकासम्पुटसहस्राणि। निबद्धो भिन्नपोतध्वजः।

इतश्च चीनादेव सुवदनसार्थवाहपुत्रसत्कमसारभाण्डभृतमन्यद्वीपलग्नसंप्राप्तलक्ष्मीसहितं देवपुरगामिकं समागतं तमुद्देशं यानपात्रम्। दृष्टश्च भिन्नपोतध्वजः सार्थवाहेन। लम्बिताश्च नाङ्कराः सुवदनादेशेन। समागता निर्यामकाः। दृष्टश्च तैर्धरणो भणितश्च—भो भो महापुरुष! एष चीनवास्तव्यो देवपुरगामी यानपात्रसंस्थितः सुवदनो नाम सार्थवाहपुत्रो भणति, यथा एहि, कूलं गच्छामः। धरणेन भणितम्—भद्र! किंभाण्डभृतं खलु तद् यानपात्रम्। निर्यामकैर्भणितम्—आर्य! विधिवशेन परिपतितः खल्वेष सार्थवाहपुत्रो विभवेन, न पुनः पौरुषेण। ततो न सुष्ठु सारभाण्डभृतमिति। धरणेन भणितम्—यद्येवं ततोऽनुपरोधेनागच्छतु एतावतीं भूमिं सार्थवाहपुत्रः। निवेदितं सुवदनस्य। आगतश्चैषः, भणितो धरणेन—सार्थवाहपुत्र! न त्वया कुपितव्यम्, प्रयोजनमुद्दिश्य किंचित् पृच्छामीति। सुवदनेन भणितम्—भणत्वार्यः। धरणेन भणितम्—कियतस्ते द्रविजातस्य यान-

---

सोचा—'अरे यह धातु का क्षेत्र है, अतः यहाँ पर सोना पकाता हूँ।' ईंटें बनायीं, धरण नाम से अंकित कीं। मिट्टी के गोले बनाये, पकाने पर स्वर्णमयी हो गये। इस प्रकार दश हजार ईंटें बनायीं। जहाज की ध्वजा फट गयी थी, उसे बाँधा।

इधर चीन से ही सुवदन सार्थवाहपुत्र के साथ सामान्य मूल्यवाले माल से भरा हुआ दूसरे द्वीप से प्राप्त लक्ष्मीसहित देवपुर को जानेवाला उसी स्थान पर एक जहाज आ गया। सार्थवाह ने जहाज की फटी हुई ध्वजा देखी। सुवदन के आदेश से लंगर डाले गये। नाविक आये, उन्होंने धरण को देखा और कहा—हे महापुरुष! यह चीन देश का वासी देवपुर को जानेवाले जहाज में स्थित सुवदन नाम का सार्थवाहपुत्र कहता है—आओ, तट की ओर चलें। धरण ने कहा—भद्र! क्या उस जहाज में माल भरा है? नाविकों ने कहा—आर्य! दैववश इस सार्थवाहपुत्र के पास धन नहीं है, किन्तु पुरुषार्थ विहीन नहीं, अतः भली प्रकार अच्छा माल नहीं भरा है। धरण ने कहा—यदि ऐसा है तो सार्थवाहपुत्र! बेरोकटोक इस भूमि पर आ जाएँ। सुवदन से निवेदन किया गया। वह आ गया। धरण ने कहा—सार्थवाहपुत्र! आप कुपित न हों। किसी विशेष प्रयोजन से कुछ पूछता हूँ। सुवदन ने कहा—आर्य! पूछिए। धरण ने कहा—तुम्हारे जहाज में कितना धन है? सुवदन ने कहा—आर्य! दैव की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जायस्स जाणवत्तंमि रित्थं। सुवयणेण भणियं—अज्ज, देव्वस्स पडिकूलयाए विणट्ठो खु अहयं। तहावि 'परिसयारो न मोत्तव्वो' त्ति उच्छाहमेत्तभंडमोल्लो सुवण्णसहस्समेत्तस्स घेत्तूण किंपि भंडं देवउरं पयट्टो म्हि। धरणेण भणियं—जइ एवं, ता परिच्चय तं भंडं, भरेहि मे संतियस्स सुवण्णस्स जाणवत्तं; कूलपत्तस्स य भवओ पयच्छिस्सं सुवण्णलक्खं ति। सुवयणेण भणियं—किं सुवण्णलक्खेण, तुमं चेव बहुओ त्ति। उज्झियं पुव्वभंडं। भरियं सुवण्णस्स। ठाविया संखा। उवारूढो धरणो। दिट्ठा य णेण लच्छी। परितुट्ठो एस हियएणं दूमिया य एसा। 'जाया महं एस' त्ति साहियं सुवयणस्स धरणेणं। आणंदिओ एसो। पयट्टं जाणवत्तं। गयं पंचजोयणमेत्तं भूमिभागं।

एत्थंतरंमि गयणयलचारिणी वेगागमणेणागंपयंती समुद्दं अयालविज्जू विय असुहया लोयणाणं 'अरे रे दुट्ठसत्थवाहपुत्त, अकओवयारो अणणुजाणियं मए कहिं इमं मईयं दविणजायं गेण्हिऊण गच्छसि' त्ति भणमाणी सुवण्णदीवसामिणी समागया सुवण्णनामा वाणमंतरी। धरियं जाणवत्तं, भणियं च णाए—भो भो निज्जामया, अदाऊण पुरिसबलिं न एत्थ अत्थो घेप्पइ; ता पुरिसबलिं वा

पात्रे रिक्थम्। सुवदनेन भणितम्—आर्य ! दैवस्य प्रतिकूलतया विनष्टः खल्वहम्। तथापि 'पुरुषकारो न मोक्तव्यः' इति उत्साहमात्रभाण्डमूल्यः सुवर्णसहस्रमात्रस्य गृहीत्वा किमपि भाण्डं देवपुरं प्रवृत्तोऽस्मि। धरणेन भणितम्—यद्येवं ततः परित्यज भाण्डम्, विभृहि मे सत्कस्य सुवर्णस्य यानपात्रम्, कूलप्राप्तस्य च भवतो प्रदास्ये सुवर्णलक्षमिति। सुवदनेन भणितम्—किं सुवर्णलक्षेण, त्वमेव बहुक इति। उज्झितं पूर्वभाण्डम्। भृतं सुवर्णेन। स्थापिता संख्या। उपारूढो धरणः। दृष्टा च तेन लक्ष्मीः। परितुष्ट एष हृदयेन। दूना चैषा। 'जाया मम एषा' इति कथितं सुवदनस्य धरणेन। आनन्दित एषः। प्रवृत्तं यानपात्रम्। गतं पञ्चयोजनमात्रं भूमिभागम्।

अत्रान्तरे गगनतलचारिणी वेगागमनेनाकम्पयन्ती समुद्रम्, अकालविद्युदिव असुखदा लोचनयोः 'अरे रे दुष्टसार्थवाहपुत्र! अकृतोपचारोऽननुज्ञातं मया कुत्रेदं मदीयं द्रविणजातं गृहीत्वा गच्छसि' इति भणन्ती सुवर्णद्वीपस्वामिनी समागता सुवर्णनाम्नी वानव्यन्तरी। धृतं यानपात्रम्, भणितं चानया—भो भो निर्यामका ! अदत्त्वा पुरुषबलिं नात्र अर्थो गृह्यते, ततः पुरुषबलिं वा दत्त अर्थं वा

प्रतिकूलता के कारण मैं नष्ट हो गया, तथापि पुरुषार्थ नहीं छोड़ना चाहिए अतः उत्साहमात्र का माल, जिसका मूल्य एक हजार दीनार है, लेकर देवपुर की ओर प्रवृत्त हुआ हूँ। धरण ने कहा—यदि ऐसा है तो माल का परित्याग कर दो। मेरे पास जो स्वर्ण है, उससे जहाज को भरिए। किनारा आने पर, आपको एक लाख स्वर्ण दे दूँगा। सुवदन ने कहा—एक लाख सोने से क्या ? आप ही बहुत हैं। पहले के माल को छोड़ दिया। सोने को भरा। संख्या गिनी। धरण सवार हुआ। उसने लक्ष्मी को देखा। वह हृदय से सन्तुष्ट हुआ। वह दुःखी हुई। धरण ने सुवदन से कहा—यह मेरी स्त्री है। वह आनन्दित हुआ। जहाज चल पड़ा। पाँच योजन आगे चला।

इसी बीच आकाशगामिनी, वेगपूर्वक आने से समुद्र को कँपाती हुई, असमय में उत्पन्न हुई बिजली के समान दोनों नेत्रों को दुःख प्रदान करनेवाली 'अरे रे दुष्ट सार्थवाहपुत्र ! तू बिना मेरी आज्ञा और सेवा के मेरा धन लेकर कहाँ जाता है ?' ऐसा कहती हुई स्वर्णद्वीप की स्वामिनी 'सुवर्णा' नामक वानव्यन्तरी आयी। जहाज को रोका गया। इसने कहा—रे रे नाविको ! पुरुष की बलि दिये बिना यहाँ का धन ग्रहण नहीं किया जाता है,

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

देह, अत्थं वा मुयह, वावाएमि वा अहयं ति। धरणेण चिंतियं—अहो णु खलु मुयाविओ निययरित्थं सुवयणो, उवयारो य एसो लच्छीसंपायणेण, एसा य एवं भणाइ। ता इमं एत्थ पत्तयालं, अहमेव पुरिसबली हवामि त्ति। चिंतिऊण भणिया वाणमंतरी—भयवइ, अयाणमाणेण मए एवं ववसियं। ता पसीय। अहमेव एत्थ बलिपुरिसो; मं पडिच्छसु त्ति। तीए भणियं- जइ एवं, ता घत्तेहि अप्पाणयं समुद्दे, जेण ते वावाएमि त्ति। लच्छीए चिंतियं—अणुग्गिहीया भयवईए। तओ धरणेण भणियं—वयस्स सुवयण, पावियव्वा तए लच्छी मह गुरूणं ति। भणिऊण पवाहिओ अप्पा। विद्धो य णाए सूलेण, नीओ सुवण्णदीवं। उवसंता वाणमंतरी। पयट्टं जाणवत्तं देवउराहिमुहं।

एत्थंतरम्मि दिट्ठो य एसो कंठगयपाणो सुवेलाओ रयणदीवं पत्थिएणं हेमकुंडलेणं, पच्चभिन्नाओ य णेण। पुव्वपरिचिया य सा हेमकुंडलस्स वाणमंतरी। तओ 'हा किमेयमकज्जमणुचिट्ठियं' ति भणिऊण मोयाविओ वाणमंतरीओ। पुव्वभणिओसहिवलयवइयरेण कयं से वणकम्मं। जीवियसेसेण य पन्नत्तो एसो पच्चभिन्नाओ य णेण हेमकुंडलो। पुच्छिओ धरणेणं सिरिविजयवुत्तंतो।

मुञ्चत, व्यापादयामि वा अहमिति। [यद्येतेषामेकमपि न दत्त, ततोऽनर्थः, कृते च न तव भिनद्मि प्रवहणम्] धरणेन चिन्तितम्-अहो नु खलु मोचितो निजरिक्थं सुवदनः, उपकारी चैष लक्ष्मीसम्पादनेन, एषा चैवं भणति। तत इदमत्र प्राप्तकालम्, अहमेव पुरुषबलिर्भवामि इति। चिन्तयित्वा भणिता वानव्यन्तरी—भगवति! अजानता मयैवं व्यवसितम्। ततः प्रसीद। अहमेवात्र बलिपुरुषः, मां प्रतीच्छेति। तया भणितम्—यद्येवं ततः क्षिप आत्मानं समुद्रे, येन त्वां व्यापादयामीति। लक्ष्म्या चिन्तितम्—अनुगृहीता भगवत्या। ततो धरणेन भणितम्—वयस्य सुवदन! प्रापयितव्या त्वया लक्ष्मीर्मम गुरूणामिति। भणित्वा प्रवाहित आत्मा। विद्धश्चानया शूलेन। नीतः सुवर्ण-द्वीपम्। उपशान्ता वानव्यन्तरी। प्रवृत्तं यानपात्रं देवपुराभिमुखम्।

अत्रान्तरे दृष्टश्चैष कण्ठगतप्राणः सुवेलाद् रत्नद्वीपं प्रस्थितेन हेमकुण्डलेन, प्रत्यभिज्ञातश्च तेन। पूर्वपरिचिता च सा हेमकुण्डलस्य वानव्यन्तरी। ततो 'हा किमेतदकार्यमनुष्ठितम्' इति भणित्वा मोचितो वानव्यन्तर्याः। पूर्वभणितौषधिवलयव्यतिकरेण कृतं तस्य व्रणकर्म। जीवितशेषेण च

अतः या तो पुरुष की बलि दो या धन छोड़ो, नहीं तो मैं मारती हूँ। यदि इनमें से एक भी वचन पूरा नहीं होता तो अनर्थ हो जायेगा। यदि पूरा किया जाता है तो मैं तुम्हारा जहाज नष्ट नहीं करूँगी। धरण ने सोचा—अहो, सुवदन अपने धन को नहीं छोड़ेगा, लक्ष्मी को लाने के लिए यह उपकारी है और यह ऐसा कहती है अतः अब समय आ गया है, मैं ही नरबलि होऊँ। सोचकर वाणव्यन्तरी से कहा—भगवती! अज्ञान के कारण मैंने ऐसा किया है। अतः प्रसन्न होइए। मैं ही बलिपुरुष हूँ, मुझे स्वीकार करो। उसने कहा—यदि ऐसा है तो अपने आपको समुद्र में फेंक दो, जिससे तुम्हें मार डालूँ। लक्ष्मी ने सोचा—देवी ने अनुग्रह किया। तब धरण ने कहा—मित्र सुवदन! मेरे पूज्य पुरुषों के पास लक्ष्मी को पहुँचा देना—ऐसा कहकर अपने आपको गिरा दिया। इसने शूल से वेध किया और स्वर्णद्वीप ले गयी। वानव्यन्तरी सन्तुष्ट हुई। जहाज देवपुर की ओर चल दिया।

इसी बीच सुवेल से रत्नद्वीप जाते हुए हेमकुण्डल ने इसे कण्ठगत प्राण देखा और पहिचान लिया। वह वानव्यन्तरी हेमकुण्डल की पूर्व परिचित थी। अतः 'हाय, यह क्या अकार्य कर डाला—' ऐसा कहकर वानव्यन्तरी ने छोड़ दिया। पहले कही गयी औषधिवलय के संसर्ग से उसकी मरहमपट्टी की। जीवन शेष रहने के कारण इसे होश आया और इसने हेमकुण्डल को पहिचान लिया। धरण ने श्रीविजय का वृत्तान्त पूछा। हेमकुण्डल ने कहा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहिओ हेमकुंडलेण, जहा जीविओ सो महाणुभावो त्ति। परितुट्ठो धरणो। हेमकुंडलो य घेत्तूण धरणं पयट्टो रयणदीवं। पत्तो य भुयंगगंधव्वसुंदरोजणारद्धमहुरगेयरवायड्ढियदिन्नावहाणनिच्चलट्ठियमयजूहं दरियवणकोलघोणाहिघायजज्जरियमहियलुच्छलियमुत्थाकसायसुरहिगंधवासियदिसायक्कं तीरतरुखुडियकुसुममयरंदवासियासेसविमलजलदुल्ललियरायहंसाउलसरसहस्सकलिअं महल्लतरुसिहरावडियकुसुमनियरच्चियवित्थिण्णभूमिभागं उद्दामनागवल्लीनिवहसमालिंगियासेसपूगफलीसंडं वियडघणसुरहिमंदारमंदिरारद्धविज्जाहरमिहुणरइसुहं दरियवणहत्थिपीवरकरायड्ढणभग्गसमुत्तुंगगलंतचंदणवणं तीरासन्नट्ठियघणतमालतरुवीहिओहसियजलहिजलं तरुणतरुवियडमणहरालवालयजलसुहियविविहविहंगनियररवापूरिउद्देसं सिद्धविज्जाहरालयमुत्तुंगरयणगिरिसणाहं दीवं नामेण रयणसारं ति। अवि य—

रयणायरेण धणियं वियडतरंगुच्छलंतबाहाहिं।
सव्वत्तो पियकामिणिरुइरसरीरं व उवगूढं॥५३०॥

प्रज्ञप्त एष प्रत्यभिज्ञातश्च तेन हेमकुण्डल। पृष्टो धरणेन श्रीविजयवृत्तान्तः। कथितो हेमकुण्डलेन, यथा जीवितः स महानुभाव इति। परितुष्टो धरणः। हेमकुण्डलश्च गृहीत्वा धरणं प्रवृत्तो रत्नद्वीपम्। प्राप्तश्च भुजङ्गगान्धर्वसुन्दरीजनारब्धमधुरगेयरवाकृष्टदत्तावधाननिश्चलस्थितमृगयूथं दृप्तवनकोलघोणाभिघातजर्जरितमहीतलोच्छलितमुस्ताकषायसुरभिगन्धवासितदिक्चक्रं तीरतरुखण्डितकुसुममकरन्दवासिताशेषविमलजलदुर्ललितराजहंसाकुलसरःसहस्रकलितं महातरुशिखरापतितकुसुमनिकरार्चितविस्तीर्णभूमिभागम् उद्दामनागवल्लीनिवहसमालिङ्गिताशेषपूगफलीषण्डं विकटघनसुरभिमन्दारमन्दिरारब्धविद्याधरमिथुनरतिसुखं दृप्तवनहस्तिपीवरकराकर्षणभग्नसमुत्तुङ्गगलच्चन्दनवनं तीरासन्नस्थितघनतमालतरुवीथ्युपहसितजलधिजलं तरुणतरुविकटमनोहरालवालजलसुहितविविधविहङ्गनिकररवापूरितोद्देशं सिद्धविद्याधरालयोत्तुङ्गरत्नगिरिसनाथं द्वीपं नाम्ना रत्नसारमिति। अपि च—

रत्नाकरेण गाढं विकटतरङ्गोच्छलद्बाहुभिः।
सर्वतः प्रियकामिनीरुचिरशरीरमिव उपगूढम्॥५३०॥

कि वह महानुभाव जीवित है। धरण सन्तुष्ट हुआ। धरण को लेकर हेमकुण्डल रत्नद्वीप गया। विट, विदूषक, और गन्धर्वसुन्दरियों के द्वारा आरम्भ किये हुए मधुर गीतों की ध्वनि से आकृष्ट, ध्यान लगाने के कारण जहाँ मृगों के झुण्ड निश्चल थे, गर्वीले वनसूकरों की नाक के आधात से जर्जरित पृथ्वीतल से ऊपर उछलते हुए नागरमोथा की कसैली सुगन्ध से जहाँ की दिशाएँ सुगन्धित थीं, किनारे के वृक्षों से टूटे हुए फूलों की पराग से सुगन्धित सारे निर्मल जल में लाड़-प्यार से बिगड़े हुए (नटखट) राजहंसों से आकुल हजारों तालाबों से युक्त, विशाल वृक्षों की चोटियों से गिरे हुए फूलों का समूह जहाँ की भूमि पर फैला हुआ था, ऊँचे-ऊँचे चन्दन का वन जहाँ टूटकर गिरा हुआ था, तट पर स्थित घने तमालवृक्ष की पंक्ति के द्वारा जहाँ समुद्र के जल की हँसी की जा रही थी, तरुण पौधों की बड़ी-बड़ी मनोहर क्यारियों के जल को भलीभाँति ग्रहण करते हुए अनेक प्रकार के पक्षियों के समूह की आवाज से जिसकी भूमि परिपूर्ण थी ऐसे सिद्ध और विद्याधरों के निवासभूत ऊँचे रत्नगिरि पर्वत से युक्त रत्नसार नामक द्वीप को प्राप्त किया। और भी—

समुद्र में भारी तरंगें उठ कर द्वीप के तटों से टकरा रही थीं। ऐसा प्रतीत होता था, मानो रत्नाकर अपनी तरंगरूप भुजाओं को फैलाकर द्वीपरूप प्रियकामिनी के मनोहर शरीर का गाढ़ आलिंगन कर रहा हो।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

संपाविऊण फलहरनमियमहीरुहनमिज्जमाणो व्व ।
परिणयखुडंतबहुविहतरुकुसुमोवणियपूओ व्व ॥५३१॥
कमलमहुपाणसेवणजणियकलालावमुहलभमरेहिं ।
कयसागयसम्माणो व्व अइगओ चूयतरुसंडं ॥५३२॥

उवविट्ठो दीहियातीरंमि, वीसमिओ मुहुत्तयं, गहियाइं सहयारफलाइं, मज्जियं दीहियाए, कया पाणवित्ती। पुच्छिओ हेमकुंडलेण धरणो —कहं तुमं इमीए पाविओ त्ति। साहिओ णेण जहट्ठिओ सयलवुत्तंतो। हेमकुंडलेण भणियं—अहो से कूरहिययत्तणं; ता किं एइणा, भण किं ते करीयउ त्ति। धरणेण भणियं—कयं सयलकरणिज्जं; किं तु दुत्थिया मे जाया, ता तीए संजोयं मे करेहि। तओ 'रयणगिरीओ पहाणरयणसंजुयं संजोएमि'त्ति चिंतिऊण भणियं हेमकुंडलेणं—करेमि संजोयं, किं तु अत्थि इहेव दीवंमि रयणगिरी नाम पव्वओ। तत्थ सुलोयणो नाम किन्नरकुमारओ मे मित्तो परिवसइ। ता तं पेच्छिऊण नेमि तं देवउरमेव। तहिं गयस्स नियमेणेव तीए सह संजोगो

सम्प्राप्य फलभरनतमहीरुहनम्यमान इव ।
परिणतत्रुटद्बहुविधतरुकुसुमोपनीतपूज इव ॥ ५३१॥
कमलमधुपानसेवनजनितकलालापमुखरभ्रमरैः ।
कृतस्वागतसन्मान इव अतिगतश्चूततरुषण्डम् ॥५३२॥

उपविष्टो दीर्घिकातीरे, विश्रान्तो मुहूर्तकम्, गृहीतानि सहकारफलानि, मज्जितं दीर्घिकायाम्, कृता प्राणवृत्तिः। पृष्टो हेमकुण्डलेन धरणः—कथं त्वमनया प्राप्त इति। कथितस्तेन यथास्थितः सकलवृत्तान्तः। हेमकुण्डलेन भणितम्—अहो तस्याः क्रूरहृदयत्वम्, ततः किमेतेन, भण किं ते क्रियतामिति। धरणेन भणितम्—कृतं सकलकरणीयम्, किन्तु दुःस्थिता मे जाया, ततस्तया संयोगं मे कुरु। ततो 'रत्नगिरेः प्रधानरत्नसंयुतं संयोजयामि' इति चिन्तयित्वा भणितं हेमकुण्डलेन—करोमि संयोगम्, किन्तु अस्तीहैव द्वीपे रत्नगिरिर्नाम पर्वतः। तत्र सुलोचनो नाम किन्नरकुमारो मे मित्रं परिवसति। ततस्तं प्रेक्ष्य नयामि त्वां देवपरमेव। तत्र गतस्य नियमेनैव तया सह संयोगो भविष्य-

---

फलों के भार से झुके हुए वृक्षों के द्वारा मानो नमस्कार किए जाते हुए, भली प्रकार फूलकर टूटे हुए अनेक प्रकार के वृक्षों के फलों के द्वारा मानों जहाँ पूजा की जा रही थी, कमलों के पराग का सेवन कर गुंजार करते हुए मुखर भौरों द्वारा ही जहाँ स्वागत और सम्मान किया जा रहा था तथा आम्रवृक्षों के वन जहाँ उत्कृष्टता को प्राप्त कर रहे थे (ऐसे द्वीप को वे प्राप्त हुए) ॥५३१-५३२॥

बावड़ी के किनारे बैठ गया, थोड़ी देर विश्राम किया, आम के फलों को ग्रहण किया, बावड़ी में स्नान किया, भोजन किया। हेमकुण्डल ने धरण से पूछा—तुम इस अवस्था को कैसे प्राप्त हुए? उसने यथास्थित समस्त वृत्तान्त को कहा। हेमकुण्डल ने कहा—अहो उसकी क्रूरहृदयता, अतः इससे क्या? कहो आपका क्या (कार्य) करें! धरण ने कहा—आपको जो करना उचित था, वह कर दिया, किन्तु मेरी पत्नी ठीक स्थान पर नहीं है। अतः उससे मिलाप कराइए। तब 'रत्नगिरि के प्रधान रत्न से युक्त करूँगा'—ऐसा सोचकर हेमकुण्डल ने कहा—मिलाता हूँ, किन्तु इसी द्वीप में रत्नगिरि नाम का पर्वत है। वहाँ पर मेरा मित्र सुलोचन नामक किन्नरकुमार रहता है, अतः उसे देखकर मैं तुम्हें देवपुर लिये जाता हूँ। वहाँ पर जाकर नियम से उसके साथ मिलना होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भविस्सइ त्ति। पडिस्सुयं धरणेण। तओ घेत्तूण धरणं पयट्टो रयणपव्वयं।

पत्तो य महुरमारुयमंदंदोलंतकयलिसंघायं।
संघायमिलियकिंपुरिसजक्खपरिहुत्तवणसंडं ॥५३३॥
वणसंडविविहफलरससंतुट्ठविहंगसद्दगंभीरं।
गंभीरजलहिगज्जियहित्थपिओसत्तसिद्धयणं ॥५३४॥
सिद्धयणमिलियचारणसिहरवणारद्धमहुरसंगीयं।
संगीयमुरयघोसाणंदियनच्चंतसिहिनियरं ॥५३५॥
सिहिनियररवुक्कंठियपसन्नवरसिद्धकिन्नरिनिहायं।
किन्नरिनिहायसेवियलवंगलवलीहरच्छायं ॥५३६॥
छायावंतमणोहरमणियडविलसंतरयणनिउरंबं।
निउरंबटिउव्वेहडसिहरुप्पेयं च रयणगिरिं ॥५३७॥

तीति। प्रतिश्रुतं धरणेन। ततो गृहीत्वा धरणं प्रवृत्तो रत्नपर्वतम्।

प्राप्तश्च मधुरमारुतमन्दान्दोलयत्कदलीसंघातम्।
संघातमिलितकिम्पुरुषयक्षपरिभुक्तवनषण्डम् ॥५३३॥
वनषण्डविविधफलरससंतुष्टविहङ्गशब्दगम्भीरम्।
गभीरजलधिगर्जितत्रस्तप्रियावसक्तसिद्धजनम् ॥५३४॥
सिद्धजनमिलितचारणशिखरवनारब्धमधुरसंगीतम्।
संगीतमुरजघोषानन्दितनृत्यच्छिखिनिकरम् ॥५३५॥
शिखिनिकररवोत्कण्ठितप्रसन्नवरसिद्धकिन्नरीसमूहम्।
किन्नरीसमूहसेवितलवङ्गलवलीगृहच्छायम् ॥५३६॥
छायावद्मनोहरमणितटविलसद्रत्ननिकुरम्बम्।
निकुरम्बस्थितोन्नतशिखरोपेतं च रत्नगिरिम् ॥५३७॥

धरण ने स्वीकार किया। तब धरण को लेकर रत्नपर्वत की ओर प्रवृत्त हुआ।

जहाँ मधुर वायु के चलने से केलों का समूह हिल रहा था, किम्पुरुष तथा यक्षों का समूह मिलकर जहाँ के वनसमूह का भोग कर रहा था, वनसमूहों के अनेक प्रकार के फलों के रस से सन्तुष्ट पक्षियों के शब्द से जो गम्भीर था, जहाँ प्रिया का आलिंगन किए हुए सिद्धजन गम्भीर बादलों के गर्जन से त्रस्त थे, सिद्धजनों से मिले हुए चारण पर्वतशिखर के वनों में जहाँ मधुर संगीत का आरम्भ कर रहे थे, मृदंग के संगीत की आवाज से आनन्दित होकर जहाँ मोरों के समूह नाच रहे थे, मोरों के समूह के शब्द से उत्कण्ठित एवं अत्यधिक प्रसन्न होता हुआ जहाँ सिद्धों और किन्नरियों का समूह था। किन्नरियों के समूह जहाँ लौंग और लवली (पीले रंग की एक लता) के गृहों की छाया का सेवन कर रहे थे, छायावाले मनोहर मणितटों से शोभायमान जहाँ का रत्नसमूह था, (रत्नों के) समूह पर स्थित उन्नत शिखरों से जो युक्त था उन्होंने (ऐसे) रत्नगिरि को प्राप्त किया ॥५३३-५३७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तओ य तं पाविऊण महामहल्लुत्तुंगरयणसिहरुप्पंकनिरुद्धरविरहमग्गं विविहवरसिद्धविज्जाहरंगणाललियगमणचलणालत्तयरसरंजियवित्थिण्णमुत्तासिलायलं दरिविवरविणिग्गयनिज्झरझरंतझंकाररवायड्ढियदरियवणहत्थिनियरसमाइण्णवियडकडउद्देसं उद्दाममाहवीलयाहरुच्छंगनिद्दयरयायासखिन्नसुहपसुत्तविज्जाहरमिहुणं अइकोउहल्लेण आरुहिउं पयत्तो। किह—

चालियलवंगलवलीचंदणगंधुक्कडेण सिसिरेण।
अवणिज्जंतपरिस्समसंतावो महुरपवणेण॥५३८॥

पेच्छंतो य रुइरदरिमंदिरामलमणिभित्तिसंकंतपडिमावलोयणपणयकुवियपसायणूसुयदइयदंसणाहियकुवियवियड्ढसहियणोहसियमुद्धसिद्धंगणासणाहं, कत्थइ य पयारचलियवरचमरिनियरनीहारामलचंदमऊहनिम्मलुद्दामचमरचवलविक्खेववीइज्जमाणं, कत्थइ य नियंबोवइयवियडघणगज्जियायण्णणुब्भंतधुयसडाजालनहयलुच्छंगनिमियकमदरियमयणाहरुंजियरवावूरिउद्देसं, अन्नत्थ

ततश्च तं प्राप्य महामहोत्तुङ्गरत्नशिखरसमूहनिरुद्धरविरथमार्गं विविधवरसिद्धविद्याधराङ्गनाललितगमनचरणालक्तरसरञ्जितविस्तीर्णमुक्ताशिलातलं दरीविवरविनिर्गतनिर्झरझरज्झङ्काररवाकृष्टदप्तवनहस्तिनिकरसमाकीर्णविकटकटोद्देशम् उद्दाममाधवीलतागृहोत्संगनिर्दयरतायासखिन्नसुखप्रसुप्तविद्याधरमिथुनम् अतिकुतूहलेनारोढुं प्रवृत्तः। कथम्—

चालितलवङ्गलवलीचन्दनगन्धोत्कटेन शिशिरेण।
अपनीयमानपरिश्रमसंतापो मधुरपवनेन॥५३८॥

प्रेक्षमाणश्च रुचिरदरीमन्दिरामलमणिभित्तिसंक्रान्तप्रतिमावलोकनप्रणयकुपितप्रसादनोत्सुकदयितदर्शनाधिककुपितविदग्धसखीजनोपहसितमुग्धसिद्धाङ्गनासनाथम् कुत्रचिच्च प्रचारचलितवरचमरीनिकरनीहारामलचन्द्रमयूखनिर्मलोद्दामचामरचपलविक्षेपवीज्यमानम् नितम्बोपचितविकटघनगर्जिताकर्णनोद्भ्रान्तधुतसटाजालनभस्तलोत्संगन्यस्तक्रमदप्तमृगनाथरुञ्जितरवापूरितोद्देशम्,

---

अनन्तर रत्नों की बहुत ऊँची चोटियों के समूह द्वारा जहाँ सूर्य के रथ का मार्ग रोका गया था, अनेक सिद्ध विद्याधरों की श्रेष्ठ अंगनाओं के सुन्दर गमन करनेवाले पैरों में लगे हुए महावर से रँगी हुई बड़ी मुक्ता शिलाओं से युक्त, गुफाओं की खोल से निकलकर बहते हुए झरनों की झङ्कार के शब्द से मतवाले हाथियों के समूह से जिसका भयंकर प्रदेश व्याप्त था, उत्कट माधवी लतागृह की गोद में कठोर रति करने के कारण थककर सुख से सोये हुए विद्याधरों के जोड़े जहाँ पर थे, ऐसे उस पर्वत को पाकर अत्यन्त कुतूहल से उस पर चढ़ने लगे। कैसे —

जिसने लौंग, लवलीलता और चन्दन की उत्कट गन्ध को प्रवाहित किया है ऐसी ठण्डी मधुर वायु के द्वारा परिश्रम की थकान को मिटाते हुए (उस पर्वत पर चढ़ने लगे)॥५३८॥

सुन्दर गुफा-मन्दिर की निर्मल मणिरचित दीवार में प्रतिबिम्बित प्रतिमाओं के अवलोकन के कारण प्रणय से कुपित मुग्ध सिद्धाङ्गनाओं को प्रसन्न करने के लिए जिनके पति उत्सुक हैं तथा (पतियों द्वारा मनाये जाने पर) और अधिक कुपित हुई सिद्धाङ्गनाओं की जहाँ पर चतुर सखियाँ हँसी कर रही थीं ऐसी उन (सिद्धाङ्गनाओं) से वह युक्त था। कहीं-कहीं पर मार्ग में चलती हुई श्रेष्ठ चमरी गायों के समूह द्वारा तुषार के समान धवल और चन्द्रमा की किरणों जैसे निर्मल, चमकीले तथा चंचल चामरों के हिलने से जहाँ हवा की जाती थी; कमर के पिछले भाग पर बढ़े हुए जिसके जटासमूह भयंकर बादल की गर्जना के सुनने से भ्रमित होने पर उड़ते थे तथा आकाश की गोद में चरण रखते हुए गर्वीले सिंह की गर्जना के शब्द से जो स्थान व्याप्त था, दूसरी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरसघणचंदणवणुच्छंगविविहपरिहासकीलाणंदियभुयंगमिहुणरमणिज्जं ति । तओ आरुहिऊण रयणसिहरं रयणगिरितिलयभूयं तत्थ य बालकयलीपरिवेढियवियडपीढं सोहाविणिज्जियसुरिंदभवणं उत्तुंगतोरणखंभनिमियवरसालिभंजियासणाहं मणहरालेक्खविचित्तवियडभित्ति रुइरगवक्खवेइ-ओवसोहिअं निम्मलमणिकोट्टिमं सुरहिकुसुमसंपाइयपूओवयारं च गओ सुलोयणसंतियं मंदिरं ति। दिट्ठो य णेण गंधव्वदत्ताए सह वीणं वायंतो सुलोयणो। अब्भुट्ठिओ सुलोयणेणं। संपाइओ से उचि-ओवयारो। पुच्छिओ सुलोयणेणं हेमकुंडलो—कुओ भवं कुओ वा एस महापुरिसो किंनिमित्तं वा भवओ आगमणपओयणं ति। तओ सुवेलाओ नियं धरणस्स सुवण्णभूमिमुवलब्भाइयं चिंतियरयणप्प-दाणपज्जवसाणं साहियमागमणपओयणं। तेण वि उप्फुल्ललोयणेण पडिस्सुयं। तओ चिट्ठिऊण कइवयदियहे गहियाइं पहाणरयणाइं। नीओ य णेण धरणो देवउरं। मुक्को नयरबाहिरियाए, समप्पियाणि से रयणाणि। भणिओ य एसो। इहट्ठिओ चेव जायं पडिवालसु त्ति। पडिस्सुयं धरणेण। गओ हेमकुंडलो।

अन्यत्र सरसघनचन्दनवनोत्संगविविधपरिहासक्रीडानन्दितभुजङ्गमिथुनरमणीयमिति। तत आरुह्य रत्नशिखरं रत्नगिरितिलकभूतं तत्र च बालकदलीपरिवेष्टितविकटपीठं शोभाविनिर्जितसुरेन्द्रभवनम् उत्तुंगतोरणस्तम्भन्यस्तवरशालभञ्जिकासनाथं मनोहरालेख्यविचित्रविकटभित्ति रुचिरगवाक्षवेदि-कोपशोभितं निर्मलमणिकुट्टिमं सुरभिकुसुमसम्पादितपूजोपचारं च गतः सुलोचनसत्कं मन्दिरमिति। दृष्टश्च तेन गन्धर्वदत्तया सह वीणां वादयन् सुलोचनः। अभ्युत्थितः सुलोचनेन। सम्पादितस्तस्योचि-तोपचारः। पृष्टः सुलोचनेन हेमकुण्डलः—कुतो भवान् कुतो वा एष महापुरुषः, किंनिमित्तं वा भवत आगमनप्रयोजनमिति। ततः सुवेलाद् निजं धरणस्य सुवर्णभूमिमुपलभ्यादिकं चिन्तितरत्न-प्रदानपर्यवसानं कथितमागमनप्रयोजनम्। तेनापि उत्फुल्ललोचनेन प्रतिश्रुतम्। ततः स्थित्वा कतिपयदिवसान् गृहीतानि प्रधानरत्नानि। नीतश्च तेन धरणो देवपुरम्। मुक्तो नगरबाह्यायाम्। समर्पितानि तस्मै रत्नानि। भणितश्चैषः—इहस्थित एव जायां प्रतिपालयेति। प्रतिश्रुतं धरणेन। गतो हेमकुण्डलः।

और सरस और चन्दन-वन की गोद में विविध प्रकार परिहास क्रीड़ा से आनन्दित होते हुए सर्पयुगलों से जो रमणीय लग रहा था (ऐसे उस रत्नगिरि पर्वत पर चढ़े)। उस रत्नगिरि के तिलकभूत रत्नशिखर पर चढ़कर जिसका विस्तीर्ण पृष्ठ भाग नये केलों के वृक्षों से परिवेष्टित है, शोभा में जिसने इन्द्र के भवन को जीत लिया है, ऊँचे द्वार-स्तम्भ पर रखी हुई सुन्दर शालभञ्जिका से जो युक्त है, जिसकी बड़ी-बड़ी दीवारों पर मनोहर चित्र बने हैं, जो सुन्दर झरोखों और वेदिका से सुशोभित है, जहाँ का फर्श निर्मल मणियों से बना है, सुगन्धित फूलों से जहाँ पूजा की जा रही है, ऐसे सुलोचन के मन्दिर में गया। वहाँ पर गन्धर्वदत्ता के साथ वीणा बजाते हुए सुलोचन को देखा। सुलोचन उठा। उसका उचित सत्कार किया। हेमकुण्डल से सुलोचन ने पूछा—आप कहाँ से आये हैं और यह महापुरुष कहाँ से आये हैं ? आपके आने का क्या प्रयोजन है ? आदि। तब चित्रकूटाचल से अपना और धरण का स्वर्णभूमि की प्राप्ति से लेकर चिन्ता-रत्नप्रदान तक का आने का प्रयोजन कहा। उसने भी विकसित नेत्रों से ग्रहण किया। तब कुछ दिन रहकर प्रधान रत्नों को ग्रहण किया। वह धरण को देवपुर लाया। नगर के बाहरी भाग में छोड़ दिया। उसे रत्न समर्पित कर दिये। इससे कहा—यहाँ रहकर ही पत्नी की प्रतीक्षा करो। धरण ने अङ्गीकार किया। हेमकुण्डल चला गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धरणो पुण बाहिरियाए चेव कंचि वेलं गमेऊण पविट्ठो नयरं। दिट्ठो य टोप्पसेट्ठिणा। 'अहो कल्लाणागिई अदिट्ठपुव्वो एगागी य दीसइ, ता भवियव्वं एत्थ कारणेणं' ति चितिऊण अहिमयसंभासणपुरस्सरं नीओ णेण गेहं। कओ उवयारो। पुच्छिओ य सेट्ठिणा -'कुओ तुमं' ति। साहिओ णेण मायंदिनिवासनिग्गमणाइओ देवउरसंपत्तिपज्जवसाणो निययवुत्तंतो। समप्पियाइं रयणाइं। भणिओ य णेण सेट्ठी। एयाइं संगोवावसु त्ति। संगोवावियाणि सेट्ठिणा।

इओ य धरणसमुद्दपडणसमणंतरमेव समासासिया सुवयणेण लच्छी। भणिया य णेण—सुंदरि, ईइसो एस संसारो, विओगावसाणाइं एत्थ संगयाइं; ता न तए संतप्पियव्वं। न विवन्नो य एस तुज्झ; अवि य मज्झं ति। तओ नियडिप्पहाणाए बाहजलभरियलोयणं जंपियं लच्छीए। तए जीवमाणंमि को महं संतावो त्ति। तओ अइक्कंतेसु कइवयदिणेसु जाणवत्तसंठियं पभूयं सुवण्णमवलोइऊण चितियं सुवयणेणं। विवन्नो खु सो तवस्सी, पभूयं च एयं दविणजायं, तरुणी य से भारिया रूववई य, संगया य मे चित्तेण; ता किं एत्थ जुत्तं ति। अहवा इयमेव जुत्तं, जं इमीए गहणं ति। को नाम

धरणः पुनः बाह्यायामेव काञ्चिद्वेलां गमयित्वा प्रविष्टो नगरम्। दृष्टश्च टोप्पश्रेष्ठिना। 'अहो कल्याणाकृतिरदृष्टपूर्व एकाकी च दृश्यते, ततो भवितव्यमत्र कारणेन' इति चिन्तयित्वा अभिमतसम्भाषणपुरस्सरं नीतस्तेन गेहम्। कृत उपचारः। पृष्टश्च श्रेष्ठिना 'कुतस्त्वम्' इति। कथितस्तेन माकन्दीनिवासनिर्गमनादिको देवपुरसम्प्राप्तिपर्यवसानो निजवृत्तान्तः। समर्पितानि रत्नानि। भणितश्च तेन श्रेष्ठी—एतानि संगोपयेति। संगोपायितानि श्रेष्ठिना।

इतश्च धरणसमुद्रपतनसमनन्तरमेव समाश्वासिता सुवदनेन लक्ष्मीः। भणिता च तेन—सुन्दरि! ईदृश एव संसारः, वियोगावसानान्यत्र सङ्गतानि, ततो न त्वया संतप्तव्यम्। न विपन्नश्चैष तव, अपि च ममेति। ततो निकृतिप्रधानया बाष्पजलभृतलोचनं जल्पितं लक्ष्म्या—त्वयि जीवति को मम संताप इति। ततोऽतिक्रान्तेषु कतिपयदिनेषु यानपात्रसंस्थितं प्रभूतं सुवर्णमवलोक्य चिन्तितं सुवदनेन। विपन्नः खलु स तपस्वी, प्रभूतं चैतद् द्रविणजातम्, तरुणी च तस्य भार्या रूपवती च, संगता च मे चित्तेन, ततः किमत्र युक्तमिति। अथवा इदमेव युक्तम्, यदस्या ग्रहणमिति। को

धरण बाहर ही कुछ समय बिताकर नगर में प्रविष्ट हुआ। टोप्प श्रेष्ठी ने देखा। 'अहो, कल्याणकारक जिसकी आकृति है, पहले कभी नहीं देखा—ऐसा यह अकेला दिखाई देता है अतः कोई कारण होना चाहिए' ऐसा सोचकर इष्ट वार्तालाप के साथ उसे घर ले गया। सेवा की। सेठ ने पूछा—तुम कहाँ से आये? उसने माकन्दी में निवास, वहाँ से निकलना, देवपुर प्राप्ति तक के समस्त वृत्तान्त को कहा। रत्नों को समर्पित किया। उसने सेठ से कहा—इन्हें सुरक्षित रख लीजिए। सेठ ने रख लिये।

इधर धरण के समुद्र में गिरने के पश्चात् सुवदन ने लक्ष्मी को समझाया। उसने कहा—सुन्दरी! यह संसार ऐसा ही है, यहाँ संयोग का अन्त वियोग के रूप में होता है, अतः तुम्हें दुःखी नहीं होना चाहिए। यह तुम्हारी विपत्ति नहीं, अपितु मेरी विपत्ति है। तब कष्टपूर्वक आँखों में आँसू भरकर लक्ष्मी ने कहा—आपके जीते रहने पर मुझे कौन-सा दुःख है! तब कुछ दिन बीत जाने पर जहाज पर, स्थित प्रभूत स्वर्ण को देखकर सुवदन ने सोचा—वह बेचारा मर गया, यह धन प्रभूत है, उसकी पत्नी तरुणी और रूपवती है और मेरे चित्त के अनुकूल है; अतएव यहाँ पर क्या उचित है? अथवा यही उचित है कि उसका ग्रहण किया जाय। कौन मूर्ख है जोस्वयं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अबालिसो सयमेवागयं लच्छि परिच्चयइ। ता गेण्हामि एयं। तओ 'परिहाससज्झा इत्थिय' त्ति वियड्ढनायगाणुरूवा कया परिहासा, आवज्जियं से हियय। निविट्ठो घरिणिसद्दो। अत्तट्ठियं सुवण्णयं। अइक्कंता कइवि दियहा। समागयं कूलं जाणवत्तं। महया दरिसणिज्जेण दिट्ठो सुवयणेण नरवई। परितुट्ठो एसो। 'उस्सुंकमेव तुह जाणवत्तं' ति कओ से पसाओ। गओ जाणवत्तं।

एत्थंतरंमि 'चीणदीवाओ आगयं जाणवत्तं' ति मुणिऊण निग्गओ धरणो। दिट्ठो य णेण सुवयणो लच्छी य। परितुट्ठो हियएणं, दूमिया लच्छी सुवयणो य। दिन्नं से आसणं, पुच्छिओ वुत्तंतं, साहिओ णेण। तओ सुवयणेण चिंतियं—अहो मे कम्मपरिणई, अहो पडिकूलया देव्वस्स। केवलं कयमकज्जं, न संपन्नं समोहियं ति। चिंतिऊण भणियं—अज्ज, सोहणं संजायं, जं तुमं जीविओ। ता गेण्हाहि एयं निययरित्थं ति। धरणेण भणियं—सत्थवाहपुत्त, पाणा वि एए तुह संतिया, जेण लच्छीए सह समागमो कओ, किमंग पुण रित्थं ति। अइक्कंता काइ वेला। भणिया य लच्छी णेण—एहि, नयरं पविसम्ह। लच्छीए भणियं—अज्जउत्त, कल्लं पविसिस्सामो, अज्ज उण अज्जउत्तेणावि इहेव वसियव्वं ति। पडिस्सुयमणेण। अब्भंगिओ एसो। आलोचियं च लच्छीए सुवयणेण

नामाबालिशः स्वयमेवागतां लक्ष्मीं परित्यजति। ततो गृह्णाम्येताम्। ततः 'परिहाससाध्या स्त्री' इति विदग्धनायकानुरूपाः कृताः परिहासाः, आवर्जितं तस्या हृदयम्, निविष्टो गृहिणीशब्दः। आत्मस्थितं सुवर्णम्॥ अतिक्रान्ताः कत्यपि दिवसाः। समागतं कूलं यानपात्रम्। महता दर्शनीयेन दृष्टः सुवदनेन नरपतिः। परितुष्ट एषः। 'उच्छुल्कमेव तव यानपात्रम्' इति कृतस्तस्य प्रसादः। गतो यानपात्रम्।

अत्रान्तरे 'चीनद्वीपादागतं यानपात्रम्' इति ज्ञात्वा निर्गतो धरणः। दृष्टश्च तेन सुवदनो लक्ष्मीश्च। परितुष्टो हृदयेन, दूना लक्ष्मीः सुवदनश्च। दत्तं तस्यासनम्, पृष्टो वृत्तान्तम्, कथितस्तेन। ततः सुवदनेन चिन्तितम्—अहो मे कर्मपरिणतिः, अहो प्रतिकूलता दैवस्य। केवलं कृतमकार्यं न संपन्नं समीहितमिति चिन्तयित्वा भणितम्। आर्य! शोभनं संजातम्, यत्त्वं जीवितः। ततो गृहाणैतद् निजरिक्थमिति। धरणेन भणितम्—सार्थवाहपुत्र! प्राणा अप्येते तव सत्काः, येन लक्ष्म्या सह समागमः कृतः, किमङ्ग पुना रिक्थमिति। अतिक्रान्ता काचिद्वेला। भणिता च लक्ष्मीस्तेन—एहि नगरं प्रविशावः। लक्ष्म्या भणितम्—आर्यपुत्र! कल्ये प्रवेक्ष्यावः, अद्य पुनरार्यपुत्रेणापि इहैव वसितव्यमिति। प्रतिश्रुतमनेन। अभ्यङ्गित एषः। आलोचितं च लक्ष्म्या सुवदनेन च। यथा अद्यैतं

आयी हुई लक्ष्मी का परित्याग करे। अतः इसे स्वीकार करता हूँ। अनन्तर 'स्त्री परिहास-साध्य है' अतः चतुर नायक के अनुरूप हँसी की, उसके हृदय को पलटा (वशीभूत किया)। गृहिणी शब्द का प्रयोग किया। सोना हमारा हो गया। कुछ दिन बीते। जहाज किनारे पर आगा। सुवदन ने राजा को बड़ी दर्शनीय वस्तु दिखायी। वह सन्तुष्ट हुआ। तुम्हारे जहाज पर कोई शुल्क नहीं है, ऐसा कहकर उस पर अनुग्रह किया। जहाज चला गया।

इसी बीच 'चीन द्वीप से एक जहाज आया है'—यह जानकर धरण निकला। उसने लक्ष्मी और सुवदन को देखा। हृदय से सन्तुष्ट हुआ, लक्ष्मी और सुवदन दुःखी हुए। उसे आसन दिया, वृत्तान्त पूछा। तब सुवदन ने सोचा—'अहो मेरे कर्मों का फल, अहो भाग्य की प्रतिकूलता! केवल अकार्य ही किया, इष्ट कार्य नहीं किया, इस प्रकार सोचकर कहा—आर्य! अच्छा हुआ जो आप जीवित हैं। अतः अपनी सम्पत्ति ले लें। धरण ने कहा—सार्थवाहपुत्र! ये प्राण भी तुम्हारे हैं जो लक्ष्मी के साथ मिलन कराया, सम्पत्ति की तो बात ही क्या! कुछ समय बीत गया। लक्ष्मी से उसनेकहा—आओ, नगर में प्रवेश करें। लक्ष्मी ने कहा—आर्यपुत्र! कल प्रवेश करेंगे। आज आर्यपुत्र के साथ यहीं रहेंगे। इसने स्वीकार किया। इसकी मालिश हुई। लक्ष्मी और सुवदन ने विचार-विमर्श

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

य। जहा, अज्जेव एयं कयपाणभोयणं केणइ उवाएण रयणीए वावाइस्सामो त्ति। मज्जिओ एसो, पाइओ महुं काराविओ पाणवित्ति। अइक्कंतो वासरो, समागया रयणी, अत्थुयं सयणिज्जं। निवण्णो एसो लच्छी य। तओ मयपराहीणस्स सिमिणए विय अव्वत्तं चेट्ठमणुहवंतस्स दिन्नो इमीए गले पासओ, वलिओ य एसो। परिओसवियसियच्छीए लच्छीए सुवयणेण य विमूढो धरणो मओ त्ति काऊण उज्झिओ जलनिहितडे। गयाइं जाणवत्तं। जलनिहिपवणसंगमेण य समासत्थो एसो। चिंतियं च णेणं हंत किमेयं ति। किं ताव सुविणओ आओ इंदजालं आओ मइविब्भमो आओ सच्चयं चेव त्ति। उवलद्धं जलनिहितडं। सच्चं चेव त्ति जाओ से विनिच्छओ। उट्ठिऊण चिंतियमणेण। अहो लच्छीए चरियं, अहो सुवयणस्स पोरुसं। अहवा दुट्ठगुंठो विय उम्मग्गपत्थिया, किंपागफलभोगो विय मंगुलावसाणा, दुस्साहियकिच्च व्व दोसुप्पायणी, कालरत्ती विय तमोवलित्ता, ईइसा चेव महिलिया होइ। अवि य—

जलणो वि घेप्पइ सुहं पवणो भुयगो य केणइ नएण।
महिलामणो न घेप्पइ बहुएहिं वि नयसहस्सेहिं ॥५३९॥

कृतपानभोजनं केनचिदुपायेन रजन्यां व्यापादयिष्याव इति। मज्जित एषः, पायितो मधु, कारितः प्राणवृत्तिम्। अतिक्रान्तो वासरः, समागता रजनी, आस्तृतं शयनीयम्। निपन्न एष लक्ष्मीश्च। ततो मदपराधीनस्य स्वप्ने इवाव्यक्तां चेष्टामनुभवतो दत्तोऽनया गले पाशकः, वलितश्चैषः। परितोषविकसिताक्ष्या लक्ष्म्या सुवदनेन च विमूढो धरणो मृत इति कृत्वा उज्झितो जलनिधितटे। गतो यानपात्रम्। जलनिधिपवनसंगमेन च समाश्वस्त एषः। चिन्तितं च तेन—हन्त किमेतदिति। किं तावत्स्वप्नः, अथवा इन्द्रजालम्, अथवा मतिविभ्रमः, अथवा सत्यमेवेति। उपलब्धं जलनिधितटम्। सत्यमेवेति जातस्तस्य विनिश्चयः। उत्थाय चिन्तितमनेन—अहो लक्ष्म्याश्चरितम्, अहो सुवदनस्य पौरुषम्! अथवा दुष्टाश्व इव उन्मार्गप्रस्थिता, किंपाकफलभोग इव अमङ्गलावसाना दुःसाधितकृत्येव दोषोत्पादनी, कालरात्रिरिव तमोऽवलिप्ता ईदृश्येव महिला भवति। अपि च—

ज्वलनोऽपि गृह्यते सुखं पवनो भजगश्च केनचिन्नयेन।
महिलामनो न गृह्यते बहुभिरपि नयसहस्रैः ॥३५९॥

किया कि आज ही इसे भोजनपान आदि कराकर किसी उपाय से रात्रि में मार डालेंगे। इसने स्नान किया, मधु-पान कराया, भोजन कराया। दिन व्यतीत हुआ, रात्रि आयी, बिस्तर बिछाया। यह और लक्ष्मी सोये। अनन्तर मद से पराधीन हुए, स्वप्न में अव्यक्त चेष्टा-सी अनुभव करते हुए इस (धरण) के गले में इस (लक्ष्मी) ने फाँसी लगा दी और इसे ढँक दिया। सन्तोष के कारण विकसित नेत्रोंवाले लक्ष्मी और सुवदन ने मूच्छित धरण को मरा हुआ जानकर समुद्र के तट पर छोड़ दिया और दोनों जहाज पर चले गये। समुद्र की वायु के स्पर्श से इसे कुछ चेतना आयी। इसने सोचा—हाय! यह क्या? क्या (यह) स्वप्न है अथवा इन्द्रजाल अथवा बुद्धि का भ्रम है अथवा सत्य ही है! समुद्र के तट को प्राप्त कर उसका निश्चय सत्य हो गया। उठकर इसने सोचा—अहो लक्ष्मी का चरित्र, अहो सुवदन का साहस! अथवा दुष्ट घोड़ों के समान उन्मार्ग पर से जानेवाले किंपाक के फल-भक्षण के समान अमङ्गलपूर्वक समाप्त होने वाली, कठिनता से साधी हुई कृत्या के समान अथवा कठिनता से साधे हुए कार्य के समान, दोषों को उत्पन्न करनेवाली कालरात्रि के समान, अन्धकार से अवलिप्त महिला ऐसी ही होती है। और भी—

अग्नि, वायु और सर्प किसी नीति से सुखपूर्वक ग्रहण किए जा सकते हैं, किन्तु महिलाओं का मन हजार-हजार नयों से भी ग्रहण नहीं किया जा सकता ॥५३९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता किं इमीए। सुवयणस्स न जुत्तमेयं ति। अहवा मइरा विय मयरायवड्ढणी चेव इत्थिया हवइ त्ति। विसयविसमोहियमणेणं तेणावि एयं ववसियं ति।

एवं च चिंतयंतो सेट्ठिनिउत्तेहि कहवि पुरिसेहिं।
सूरुग्गमवेलाए　　दिट्ठो　　बाहोल्लनयणेहिं ॥५४०॥

भणिओ य णेहिं—सत्थवाहपुत्त, रयणीए न आगओ तुमं ति संजायासंकेण रयणीए चेव तुज्झ अन्नेसणनिमित्तं पेसिया अम्हे टोप्पसेट्ठिणा त्ति। कहकहवि दिट्ठो सि संपयं। ता एहि, गच्छम्ह, निव्ववेहि अणेयचिंताणलपलित्तं सेट्ठिहिययं। तओ 'अहो पुरिसाणमंतरं' ति चिंतिऊण पयट्टो धरणो, पविट्ठो नयरिं, दिट्ठो य णेण सेट्ठी। पइरिक्कंमि भणिओ सेट्ठिणा। वच्छ, कुओ तुमं किं वा विमणदुम्मणो दीससि त्ति। तओ 'लज्जावणिज्जयं अणाचिक्खणीयमेयं' ति चिंतिऊण बाहोल्ललोयणेण न जंपियं धरणेण। सेट्ठिणा भणियं—वच्छ, सुयं मए, जहा आगयं जाणवत्तं चीणाओ, ता तं तुमए उवलद्धं न व त्ति। तओ सगग्गयक्खरं जंपियं धरणेणं—अज्ज, उवलद्धं ति। सोगाइरेगेण य पवत्तं से

ततः किमनया। सुवदनस्य न युक्तमेतदिति। अथवा मदिरेव मदरागवर्धन्येव स्त्री भवतीति। विषयविषमोहितमनसा तेनाप्येतद् व्यवसितमिति।

एवं च चिन्तयन् श्रेष्ठिनियुक्तैः कथमपि पुरुषैः।
सूर्योद्गमवेलायां　　दृष्टो　　बाष्पार्द्रनयनैः ॥५४०॥

भणितश्च तैः—सार्थवाहपुत्र ! रजन्यां नागतस्त्वमिति संजाताशङ्केन रजन्यामेव तवान्वेषणनिमित्तं प्रेषिता वयं टोप्पश्रेष्ठिनेति। कथंकथमपि दृष्टोऽसि साम्प्रतम्। तत एहि, गच्छामः, निर्वापय अनेकचिन्तानलप्रदीप्तं श्रेष्ठिहृदयम्। ततः 'अहो पुरुषाणामन्तरम्' इति चिन्तयित्वा प्रवृत्तो धरणः, प्रविष्टो नगरीम्, दृष्टश्च तेन श्रेष्ठी। प्रतिरिक्ते भणितः श्रेष्ठिना—वत्स ! कुतस्त्वम्, किंवा विमनोदुर्मना दृश्यसे इति। ततो 'लज्जनीयमनाख्यानीयमेतद्' इति चिन्तयित्वा बाष्पार्द्रलोचनेन न जल्पितं धरणेन। श्रेष्ठिना भणितम्—वत्स ! श्रुतं मया, यथाऽऽगतं यानपात्रं चीनाद्, ततस्तत् त्वयोपलब्धं नवेति। ततः सगद्गदाक्षरं जल्पितं धरणेन। आर्य ! उपलब्धमिति। शोका-

---

अतः इससे क्या? सुवदन के लिए यह उचित नहीं था। अथवा मदिरा के समान मदराग को बढ़ाने वाली ही स्त्री होती है। विषय-विष से मोहित मन से उसने ही यह निश्चय किया।

जब वह यह सोच ही रहा था कि सूर्योदय के समय सेठ के द्वारा नियुक्त कुछ पुरुषों ने किसी प्रकार आँसू भरे नेत्रों से इसे देखा ॥५४०॥

उन्होंने कहा—सार्थवाहपुत्र ! तुम रात्रि में आये ही नहीं, अतः आशङ्का उत्पन्न हो जाने के कारण टोप्पश्रेष्ठी ने आपकी खोज के लिए रात्रि में ही हम लोगों को भेजा। जिस किसी प्रकार अब दिखाई पड़े हो। अतः आओ, चलें। अनेक चिन्ता रूप अग्नि से ज्वलित सेठ के हृदय को शान्ति दें। तब 'अहो ! पुरुषों का भेद'—ऐसा सोचकर धरण चला। नगरी में प्रविष्ट हुआ। उसने सेठ को देखा। एकान्त में सेठ ने पूछा—वत्स ! तुम कहाँ थे ? किस कारण निराश और दुःखी दिखाई देते हो ? तब 'यह लज्जनीय है, कहने योग्य नहीं है'—ऐसा सोचकर जिसकी आँखों में आँसू भरे थे ऐसे धरण ने (कुछ भी) नहीं कहा। सेठ ने कहा—वत्स ! मैंने सुना है कि चीन से जहाज आया था, वह तुम्हें मिला या नहीं ? तब गद्गद वाणी में धरण ने कहा—आर्य, मिल गया। शोक की

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

बाहसलिलं। तओ 'नूणं विवन्ना से भारिया, अन्नहा कहं ईइसो सोगपसरो' त्ति चिंतिऊण भणियं टोप्पसेट्ठिणा—वच्छ, अवि तं चेव तं जाणवत्तं ति। धरणेण भणियं—'आमं'। सेट्ठिणा भणियं—अवि कुसलं ते भारियाए। धरणेण भणियं—अज्ज, कुसलं। सेट्ठिणा भणियं—ता किमन्नं ते उव्वेवकारणं। धरणेण भणियं—अज्ज, न किंचि आचिक्खियव्वं ति। सेट्ठिणा भणियं—ता किं विमणो सि। धरणेण भणियं—'आमं'। सेट्ठिणा भणियं—'किमामं'। धरणेण भणियं—'एयं', सेट्ठिणा भणियं—'किमेयं', धरणेण भणियं 'न किंचि'। सेट्ठिणा भणियं—वच्छ, किमेएहिं। सुन्नभासिएहिं आचिक्ख सब्भावं। न य अहं अजोग्गो आचिक्खियव्वस्स, पडिवन्नो य तए गुरू। तओ 'न जुत्तं गुरुआणाखंडणं' ति चिंतिऊण जंपियं धरणेण अज्ज, 'अज्जस्स आण' त्ति करिय ईइसं पि भासीयइ त्ति। सेट्ठिणा भणियं—वच्छ, नत्थि अविसओ गुरुयणाणुवत्तीए। धरणेग भणियं—अज्ज, जइ एवं, ता कुसलं मे भारियाए जीविएणं, न उण सीलेणं। सेट्ठिणा भणियं—कहं वियाणसि। धरणेण भणियं 'कज्जओ'। सेट्ठिणा भणियं कह विय। तओ आचिक्खिओ से भोयणाइओ जलनिहितडपज्जवसाणो सयलवुत्तन्तो। तं च सोऊण कुविओ टोप्पसेट्ठी

तिरेकेण च प्रवृत्तं तस्य बाष्पसलिलम्। ततो 'नूनं विपन्ना तस्या भार्या, अन्यथा कथमीदृशः शोकप्रसरः' इति चिन्तयित्वा भणितं टोपश्रेष्ठिना—वत्स ! अपि तदेव तद् यानपात्रमिति। धरणेन भणितम्—'ओम्'। श्रेष्ठिना भणितम्—अपि कुशलं ते भार्यायाः। धरणेन भणितम्—आर्य ! कुशलम्। श्रेष्ठिना भणितम्—ततः किमन्यत्ते उद्वेगकारणम्। धरणेन भणितम्—आर्य ! न किञ्चिदाख्यातव्यमिति। श्रेष्ठिना भणितम्—ततः किं विमना असि। धरणेन भणितम्—'ओम्'। श्रेष्ठिना भणितम् 'किमोम्'। धरणेन भणितम्—'एतद्'। श्रेष्ठिना भणितम्—'किमेतद्'। धरणेन भणितम्—'न किञ्चित्'। श्रेष्ठिना भणितम्—किमेतैः शून्यभाषितैः, आचक्ष्व सद्भावम्। न चाहमयोग्य आख्यातव्यस्य, प्रतिपन्नश्च त्वया गुरुः। ततो 'न युक्तं गुर्वाज्ञाखण्डनम्' इति चिन्तयित्वा जल्पितं धरणेन। आर्य ! 'आर्यस्याज्ञा' इति कृत्वा ईदृशमपि भाष्यते इति। श्रेष्ठिना भणितम्—वत्स ! नास्त्यविषयो गुरुजनानुवृत्याः। धरणेन भणितम्—आर्य ! यद्येवं ततः कुशलं मे भार्याया जीवितेन, न पुनः शीलेन। श्रेष्ठिना भणितम्—कथं विजानासि। धरणेन भणितम्—कार्यतः। श्रेष्ठिना भणितम्—कथमिव। तत आख्यातस्तस्य भोजनादितो जलनिधितटपर्यवसानः सकलवृत्तान्तः। तच्च श्रुत्वा कुपितः टोप्प-

---

अधिकता के कारण उसकी आँखों से आँसू की धारा बहने लगी। तब 'निश्चित ही इसकी पत्नी मर गयी, नहीं तो इतना अधिक दुःखी क्यों होता'—ऐसा सोचकर टोप्पश्रेष्ठी ने कहा—वत्स ! वह जहाज वही था ? धरण ने कहा—हाँ। सेठ ने कहा—तुम्हारी पत्नी सकुशल है ? धरण ने कहा—आर्य कुशल है। सेठ ने कहा—तो दुःखी होने का और क्या कारण है ? धरण ने कहा—आर्य ! कुछ भी नहीं कहना चाहिए ! सेठ ने कहा—तो बेमन क्यों हो ? धरण ने कहा—हाँ। सेठ ने कहा—क्या हाँ ? धरण ने कहा—यही। सेठ ने कहा—क्या यही ? धरण ने कहा—कुछ भी नहीं। सेठ ने कहा—इस शून्य वाणी से क्या ? सही कहो। मुझसे न कहा जा सकता हो ऐसा भी नहीं ! तुमने मुझे बड़ा माना है। तब 'बड़ों की आज्ञा न मानना उचित नहीं' ऐसा सोचकर धरण ने कहा—आर्य ! चूँकि आर्य की आज्ञा है अतः यह भी सुनाता हूँ। सेठ ने कहा—वत्स ! गुरुजनों से न कहने योग्य कुछ भी नहीं है। धरण ने कहा—आर्य ! यदि ऐसा है तो मेरी पत्नी प्राणों से तो सकुशल है, किन्तु शील से नहीं। सेठ ने कहा—कैसे जानते हो ? धरण ने कहा—कार्य से। सेठ ने कहा—कैसे ? तब भोजन से लेकर समुद्र के तट तक का समस्त वृत्तान्त सुनाया। उसे सुनकर टोप्पश्रेष्ठी सुवदन पर कुपित हुआ। धरण को बैठाकर राजा के पास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुवयणस्स। परिसंठविय धरणं गओ नरवइसमीवं। विन्नत्तो णेण सुवयणं पइ जहट्ठियमेव नरवई। सद्दाविओ राइणा सुवयणो, भणिओ य एसो—सत्थवाहपुत्त, पभूयं ते रित्थं सुणीयइ। ता फुडं जंपसु, कहमेयं तए विढत्तयं ति। तओ अजायासंकेण भणियं सुवयणेण—देव, कुलक्कमागयं। राइणा भणियं—भारिया कहं ति। तेण भणियं—गुरुविइण्णा। तओ पुलइओ[1] टोप्पसेट्ठी। भणियं च णेण—देव, सव्वं अलियं ति। सुवयणेण भणियं—किं पुण एत्थ सच्चयं। सेट्ठिणा भणियं—धरणसंतियं रित्थं भारिया य; एयं सच्चयं[2] ति। तओ संखुद्धहियएणं जंपियं सुवयणेण भो भो अउव्वजोइसिय, को एत्थ पच्चओ; रायकुलं खु एयं। टोप्पसेट्ठिणा भणियं—साहारणं रायकुलं; पच्चओ पुण, सो चेव जीवइ त्ति। सुवयणेण भणियं—महाराय, न मए धरणस्स नामं पि आयण्णियं ति। परिक्खउ देवो। राइणा भणियं—भो भो सेट्ठि, आणेहि धरणं, तुमं पि तं महिलियं ति। पेसिया णेहिं[3] सह रायपुरिसेहिं निययपुरिसा। आणिओ य णेहिं हियएणाणिच्छमाणो वि सेट्ठिउवरोहभावियचित्तो धरणो, इयरेहि य भयहित्थहियया[4] लच्छि त्ति। पुलइयाइं राइणा, भणियं च णेण—सुन्दरि, दिट्ठो तए एस

श्रेष्ठो सुवदनस्य। परिसंस्थाप्य धरणं गतो नरपतिसमीपम। विज्ञप्तस्तेन सुवदनं प्रति यथास्थितमेव नरपतिः। शब्दायितो राज्ञा सुवदनः, भणितश्चैषः—सार्थवाहपुत्र ! प्रभूतं ते रिक्थं श्रूयते, ततः स्फुटं जल्प, कथमेतत्त्वयोपार्जितमिति। ततोऽजाताशङ्केन भणितं सुवदनेन—देव कुलक्रमागतम्। राज्ञा भणितम्—भार्या कथमिति। तेन भणितम्—गुरुवितीर्णा। ततो दृष्टः टोप्पश्रेष्ठी। भणितं च तेन—देव ! सर्वमलीकमिति। सुवदनेन भणितम्—किं पुनरत्र सत्यम्। श्रेष्ठिना भणितम्—धरणसत्कं रिक्थं भार्या च, एतत् सत्यमिति। ततः संक्षुब्धहृदयेन जल्पितं सुवदनेन—भो भो अपूर्वज्योतिषिक ! कोऽत्र प्रत्ययः, राजकुलं खल्वेतत्। टोप्पश्रेष्ठिना भणितम्—साधारणं राजकुलम्, प्रत्ययः पुनः स एव जीवतीति। सुवदनेन भणितम्—महाराज ! न मया धरणस्य नामापि आकर्णितमिति। परीक्षतां देवः। राज्ञा भणितम्—भो भोः श्रेष्ठिन् ! आनय धरणम्, त्वमपि तां महिलामिति। प्रेषिता आभ्यां सह राजपुरुषैर्निजपुरुषाः। आनीतश्च तैर्हृदयेनानिच्छन्नपि श्रेष्ठ्युपरोधभावितचित्तो धरणः, इतरैश्च भयत्रस्तहृदया लक्ष्मीरिति। दृष्टौ राज्ञा। भणितं च तेन—सुन्दरि ! दृष्टस्त्वया एष कुत्रापि

गया। राजा से सुवदन के विषय में निवेदन किया। राजा ने सुवदन को बुलवाया और कहा—"सार्थवाहपुत्र ! तुम्हारे पास प्रचुर सम्पत्ति है, अतः ठीक-ठीक कहो, तुमने इसे कैसे उपार्जित किया ?" तब कुछ भी शंका न करके सुवदन ने कहा—"देव ! कुलक्रम से आयी हुई है।" राजा ने कहा—"पत्नी कैसे आयी ?" उसने कहा—'गुरुजनों ने दी।" तब टोप्पश्रेष्ठी दिखाई दिया। उसने कहा—"देव ! सब झूठ है।" सुवदन ने कहा—"सत्य क्या है ?' सेठ ने कहा—"धरण की (यह) सम्पत्ति और भार्या है, यह सत्य है।" तब क्षुभित हृदय से सुवदन ने कहा—"हे हे अपूर्व ज्योतिषी ! इस विषय में क्या प्रमाण है ? यह राजदरबार है।" टोप्पश्रेष्ठी ने कहा—"दरबार तो सभी के लिए है, प्रमाण यह है कि वह अभी जीवित है।" सुवदन ने कहा—"महाराज ! मैंने धरण का नाम भी नहीं सुना। देव ! परीक्षा कर लीजिए।" राजा ने कहा—"हे सेठ ! धरण को लाओ, तुम उस महिला को लाओ।" इन दोनों के साथ राज कर्मचारी भेजे गये। वे हृदय से न चाहते हुए भी सेठ के अनुरोध को माननेवाले धरण को लाये, दूसरी ओर भय से त्रस्त हृदयवाली लक्ष्मी को भी लाया गया। राजा ने देखा। उसने कहा—'सुन्दरि ! तुमने कहीं पर इस

---

१. पलोइओ—क, पुलोइओ—ख। २. सच्चं ति—क। ३. 'देवस्स' इत्यधिकः—ख। ४. भयभिन्नहियया—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहिंपि सत्थवाहपुत्तो। तीए भणियं—देव, न दिट्ठो त्ति। तओ पुच्छिओ धरणो—सत्थवाहपुत्त, अवि एसा ते भारिया। धरणेण भणियं—देव, किमणेण पुच्छिएण; सुयं चेव देवेणं जं जंपियमिमीए। राइणा भणियं—सत्थवाहपुत्त, अओ चेव पुच्छामि। धरणेण भणियं—देव, जइ एवं देवस्स अणुबंधो ता आसि भारिया, न उण संपयं ति। राइणा भणियं—एसो सत्थवाहपुत्तो दिट्ठो तए आसि? धरणेण भणियं—देव, एसो चेव जाणइ त्ति। राइणा भणिओ सुवयणो—सत्थवाहपुत्त, किं दिट्ठो तुमए एस कहिंपि। सुवयणेण भणियं—देव, मए[1] ताव एसो न दिट्ठो त्ति। राइणा भणियं—होउ, किं एइणा; साहेह तुब्भे किं एत्थ रित्थमाणं[2]। सुवयणेण भणियं—देव, एत्थ खलु दससहस्साणि सोवण्णियाणं इट्टासंपुडाणं, अन्नं पि थेवयं खु सुरित्तं[3] भण्डं ति। पुच्छिओ इयरो वि[4]। धरणेण भणियं—देव, एवमेयं। राइणा भणियं—भो किंपमाणा खु ते संपुडा। धरणेण भणियं—देव, न याणामि। राइणा भणियं—कहं निययभण्डस्स वि पमाणं न याणासि। धरणेण भणियं—देव, एवं चेव ते कया, जेण न जाणामि[5]। तओ पुच्छिओ सुवयणो। भद्द, तुमं साहेहि। तेण भणियं—देव, अहमवि निसंसयं न

सार्थवाहपुत्रः। तया भणितम्—देव! न दृष्ट इति। ततः पृष्टो धरणः। सार्थवाहपुत्र! अप्येषा ते भार्या। धरणेन भणितम्—देव! किमनेन पृष्टेन, श्रुतमेव देवेन यज्जल्पितमनया। राज्ञा भणितम्—सार्थवाहपुत्र! अत एव पृच्छामि। धरणेन भणितम्—देव! यद्येवं देवस्यानुबन्धः, तत आसीद् भार्या, न पुनः साम्प्रतमिति। राज्ञा भणितम्—एष सार्थवाहपुत्रो दृष्टस्त्वयाऽऽसीत्? धरणेन भणितम्—देव! एष एव जानातीति। राज्ञा भणितः सुवदनः—सार्थवाहपुत्र! किं दृष्टस्त्वयैष कुत्रापि। सुवदनेन भणितम्—देव! मया तावदेष न दृष्ट इति। राज्ञा भणितम्—भवतु, किमेतेन, कथयत यूयम्, किमत्र रिक्थमानम्। सुवदनेन भणितम्—देव! अत्र खलु दश सहस्राणि सौवर्णिकानामिष्टासम्पुटानाम्, अन्यदपि स्तोकं खलु सुरिक्तं भाण्डमिति। पृष्ट इतरोऽपि। धरणेन भणितम्—देव! एवमेतद्। राज्ञा भणितम्—भोः किंप्रमाणाः खलु ते सम्पुटाः। धरणेन भणितम्—देव! न जानामि। राज्ञा भणितम्—कथं निजभाण्डस्यापि प्रमाणं न जानासि। धरणेन भणितम्—देव! एवमेव ते कृताः, येन न जानामि। ततः पृष्टः सुवदनः। भद्र! त्वं कथय। तेन भणितम्—देव,

---

सार्थवाहपुत्र को देखा है?" उसने कहा—"देव! मैंने नहीं देखा है।" तब धरण से पूछा—"सार्थवाहपुत्र! यह तुम्हारी पत्नी है?" धरण ने कहा—"देव! यह पूछने से क्या, इसने जो कहा वह आपने सुन ही लिया।" राजा ने कहा—"सार्थवाहपुत्र! इसीलिए पूछता हूँ।" धरण ने कहा—"महाराज! यदि ऐसा है तो यह (मेरी) पत्नी थी, अब नहीं है।" राजा ने पूछा—"इस सार्थवाहपुत्र को तुमने देखा था?" धरण ने कहा—"महाराज! यही जानता है।" राजा ने सुवदन से पूछा—"सार्थवाहपुत्र! क्या तुमने इसे कहीं देखा है?" सुवदन ने कहा—"महाराज! मैंने इसे नहीं देखा।" राजा ने कहा—"अच्छा, इनसे क्या, आप लोगों से कहता हूँ—सम्पत्ति इस समय कितनी है?" सुवदन ने कहा—"देव! सोने की दस हजार गोलाकार ईंटें हैं। कुछ और भी सुन्दर चीजें हैं।" दूसरे से भी पूछा। धरण ने कहा—"देव! ऐसा ही है।" राजा ने कहा—"तुम्हारा माल कितना है?" धरण ने कहा—"महाराज! नहीं जानता हूँ।" राजा ने कहा—"क्या अपने माल का भी प्रमाण नहीं जानते हो?" धरण ने कहा—"इसी प्रकार वे बनाये गये थे, जिससे नहीं जानता हूँ।" तब सुवदन से पूछा—"भद्र! तुम कहो।" उसने कहा—"देव! मैं भी निःसन्देह नहीं

---

१. मए सो न दिट्ठो—क। २. रित्थपमाणं—क। ३. सिरिभंडं ति—क। ४. 'राइणा' इत्यधिकः—क। ५. याणामि—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

याणामि। राइणा भणियं—भो एवं ववत्थिए कि मए कायव्वं ति। धरणेण भणियं—देव, थेवमेयं[1] कारणं, किं बहुणा जंपिएणं। अविवाअओ अहं एयस्स; ता गिण्हउ रित्थं भारियं च एसो त्ति। सुवयणेण भणियं—भो महापुरिस! एयं पि भवओ पहूयमेव, जं मे आलो न दिन्नो त्ति। धरणेण भणियं—पसिद्धो अहं आलदायगो। सुवयणेण भणियं—जइ न आलदायगो, ता किमेयं पत्थुयं ति। टोप्पसेट्ठिणा भणियं—अरे रे निल्लज्ज पावकम्म, एवं पि ववहरिउं एवं जंपसि त्ति। पुणो वि अमरिसाइसएण भणियं टोप्पसेट्ठिणा महाराय, किं बहुणा जंपिएण। जइ एयं न धरणसंतियं रित्थं एसा य[2] भारिया, ता मज्झ सव्वस्ससहिया[3] पाणा निग्गरणं ति। आणावेउ देवो सयले दिव्वे त्ति। धरणेणं चिन्तियं—अवहरिओ खु एसो मह सिणेहाणुबंधेण; ता न जुत्तं संपयं पि उदासीणयं काउं ति। जंपियमणेण—देव, जइ एत्थ अणुबंधो तायस्स, ता अलं दिव्वेहिं; अन्नो वि एत्थ उवाओ अत्थि चेव। राइणा भणियं—कहेहि, कीइसो उवाओ त्ति। धरणेण भणियं—देव, ते मए संपुडा सनामेणं चेव अंकिय त्ति। राइणा भणियं—किं तुज्झ नामं। धरणेण भणियं—देव, धरणो त्ति। इयरो वि पुच्छिओ। तेण भणियं—देव,

अहमपि निःसंशयं न जानामि। राज्ञा भणितम्—भो एवं व्यवस्थिते किं मया कर्तव्यमिति। धरणेन भणितम्—स्तोकमेतत् कारणम्, किं बहुना जल्पितेन। अविवादकोऽहमेतस्य, ततो गृह्णातु रिक्थं भार्यां चैव इति। सुवदनेन भणितम्—भो महापुरुष! एतदपि भवतः प्रभूतमेव, यन्मे आलो न दत्त इति। धरणेन भणितम्—प्रसिद्धोऽहमालदायकः। सुवदनेन भणितम्—यदि नालदायकस्ततः किमेतत्प्रस्तुतमिति। टोप्पश्रेष्ठिना भणितम्—अरेरे निर्लज्ज पापकर्मन्! एवमपि व्यवहृत्य एवं जल्पसीति। पुनरपि अमर्षातिशयेन भणितं टोप्पश्रेष्ठिना—महाराज! किं बहुना जल्पितेन, यद्येतन्न धरण-सत्कं रिक्थमेषा च भार्या ततो मम सर्वस्वसहिताः प्राणा निकरणमिति। आज्ञापयतु देवः सकलान् दिव्यानिति। धरणेन चिन्तितम्—अपहृतः खलु एष मम स्नेहानुबन्धेन, ततो न युक्तं साम्प्रतमपि उदासीनतां कर्तुमिति। जल्पितमनेन—देव! यद्यत्रानुबन्धस्तातस्य ततोऽलं दिव्यैः, अन्योऽप्यत्र उपायोऽस्त्येव। राज्ञा भणितम्—कथय, कीदृश उपाय इति। धरणेन भणितम्—देव! ते मया सम्पुटाः स्वनाम्नैवाङ्किता इति। राज्ञा भणितम्—किं तव नाम। धरणेन भणितम्—देव! धरण इति।

जानता हूँ।" राजा ने कहा—"अरे, ऐसी स्थिति में मुझे क्या करना चाहिए?" धरण ने कहा—"यह छोटा-सा कारण है, अधिक कहने से क्या, मेरा इसके साथ में विवाद नहीं है, अतः यह पत्नी को और धन को ग्रहण करे।" सुवदन ने कहा—"हे महापुरुष! यह आपकी ही प्रभुता है जो मेरा भाड़ा नहीं दिया।" धरण ने कहा—"मैं भाड़ा देनेवाला प्रसिद्ध हूँ।" सुवदन ने कहा—"भाड़ा देनेवाले आप नहीं हैं इसलिए ये सब काण्ड आपने किया।" टोप्पश्रेष्ठी ने कहा—"अरे रे! निर्लज्ज, पापकर्मी! ऐसा कार्य कर इस प्रकार कहता है?" पुनः क्रोध की अधिकता से टोप्पश्रेष्ठी ने कहा—"महाराज! अधिक कहने से क्या, यदि यह पत्नी और धन धरण का न हो तो मेरा सब कुछ छीनकर प्राणदण्ड दिया जाय। महाराज सभी शपथों की आज्ञा दें।" धरण ने सोचा—मेरे स्नेह से यह हरा गया है। अतः इस समय उदासीनता करना अच्छा नहीं है। इसने कहा—"देव! यदि तात की आज्ञा है तो वे शपथें व्यर्थ हैं। दूसरा भी यहाँ उपाय है ही।" राजा बोला—"कहो, कैसा उपाय?" धरण ने कहा—उन सभी सम्पुटों (गोलों) पर मैंने नाम लिखा है।" राजाने पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है?" उसने उत्तर दिया—"महाराज!

१. थेवमिणं—ग। २. नेत्थिया—क। ३. सहियस्स—ख।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुवयणो त्ति। राइणा भणियं—जइ एवं, तो छिन्नो खु ववहारो; नवरं आणेह एत्थेव कइवि संपुडे त्ति। तओ[1] पेसियं पंचउलं, आणिया संपुडा, निहालिया राइणा बाहिं, न दिट्ठं धरणनामयं। भणियं च णेण—भो नत्थि एत्थ धरणनामयं। सुवयणेण भणियं—देवो पमाणं ति। अन्नं च देव, देवस्स पुरओ एस[2] महंतं पि अलियं जंपिऊण अज्ज वि पाणे धारेइ[3] त्ति। जाणियं[4] देवेण, जं एएण पमाणीकयं। राइणा भणियं – भो धरण, किमेयं ति। धरणेण भणियं—देव, न अन्नहा एयं; फोडाविऊण मज्झं निरूवेउ देवो। तओ एयमायण्णिऊण संखुद्धो सुवयणो, हरिसिओ टोप्पसेट्ठी। सद्दाविया सुवण्णयारा, फोडाविया संपुडा, दिट्ठं धरणनामयं। कुविओ राया सुवयणस्स लच्छीए य। भणियं च णेणं—हरे वावाएह एयं वाणियगवेसधारिणं महाभुयंगं, निव्वासेह य एयं मम रज्जाओ विवन्नसीलजीवियं अलच्छि, समप्पेह य समत्थमेव रित्थं धरणसत्थवाहस्स। अन्नं च भण, भो महापुरिस किं ते अवरं कीरउ[5]। धरणेण भणियं –देव, अलं मे रित्थेण। करेउ देवो पसायं सुवयणस्स अभयप्पयाणेणं। तओ 'अहो से महाणुभावय' त्ति चिंतिऊण भणियं राइणा—सत्थवाहपुत्त, न जुत्तमेयं, तहावि

इतरोऽपि पृष्टः। तेन भणितम्—देव! सुवदन इति। राज्ञा भणितम्—यद्येवं ततश्छिन्नः खलु व्यवहारः, नवरमानयतात्रैव कत्यपि सम्पुटानिति। ततः प्रेषितं पञ्चकुलम्, आनीताः सम्पुटाः। निभालिता राज्ञा बहिः, न दृष्टं धरणनाम। भणितं च तेन—भो! नास्त्यत्र धरणनाम। सुवदनेन भणितम्—देवः प्रमाणमिति। अन्यच्च देव! देवस्य पुरत एष महदपि अलीकं जल्पित्वा अद्यापि प्राणान् धारयतीति। ज्ञातं देवेन, यदेतेन प्रमाणीकृतम्। राज्ञा भणितम्—भो धरण! किमेतदिति। धरणेन भणितं—देव! नान्यथा एतद्, स्फोटयित्वा मध्यं निरूपयतु देवः। तत एतदाकर्ण्य संक्षुब्धः सुवदनः, हृष्टः टोप्पश्रेष्ठी। शब्दायिताः सुवर्णकाराः। स्फोटिताः सम्पुटाः। दृष्टं धरणनाम। कुपितो राजा सुवदनस्य लक्ष्म्याश्च। भणितं च तेन–अरे व्यापादयतैतं वाणिजकवेषधारिणं महाभुजंगम्, निर्वासयत चैतां मम राज्याद् विपन्नशीलजीवितामलक्ष्मीम्, समर्पयत समस्तमेव रिक्थं धरणसार्थवाहस्य। अन्यच्च, भण भो महापुरुष! किं तेऽपरं क्रियताम्। धरणेन भणितम्—अलं मे रिक्थेन। करोतु देवः प्रसादं सुवदनस्याभयप्रदानेन। ततः 'अहो तस्य महानुभावता' इति चिन्तयित्वा भणितं

मेरा नाम धरण है।" दूसरे से भी पूछा। उसने कहा—"महाराज, सुवदन।" राजा ने कहा—"यदि ऐसा है तो मुकद्दमा निपट गया। कुछ गोलों को यहाँ ले आओ।" तब पंचजनों को भेजा, सम्पुटों (गोलों) को लाये। राजा ने उनको बाहर देखा, उन पर धरण नाम दिखाई नहीं दिया। उसने कहा—"अरे, इन पर धरण नाम नहीं है।" सुवदन ने कहा—"महाराज प्रमाण हैं। दूसरी बात यह है महाराज! महाराज के सामने यह बहुत बड़ा झूठ बोलकर भी प्राणों को धारण कर रहा है। देव ने जान ही लिया, जो इसने प्रमाण बतलाया।" राजा ने कहा—"हे धरण! यह क्या?" धरण ने कहा "देव! यह बात झूठी नहीं है। तोड़कर महाराज अन्दर देखिए।" इसे सुनकर सुवदन क्षुब्ध हुआ, टोप्पश्रेष्ठी प्रसन्न हुआ। सुनारों को बुलाया गया। गोलों को तोड़ा गया। धरण नाम दिखाई पड़ा। राजा सुवदन और लक्ष्मी पर कुपित हुआ। उसने कहा—अरे इस वणिक् वेषधारी चोर को मार डालो, इस अलक्ष्मी को मेरे राज्य से बाहर निकाल दो जो कि शीलभ्रष्ट होकर जी रही है। सारा धन धरण व्यापारी को समर्पित कर दो। दूसरी बात, हे महापुरुष! कहो, तुम्हारा क्या किया जाय?" धरण ने कहा—"मुझे सम्पत्ति नहीं चाहिए। महाराज सुवदन को अभयदान देकर कृपा करें।" 'तब इसकी महानुभावता आश्चर्यजनक है', ऐसा सोचकर

१. तो पेसिऊण पंचउलं आणिया—क। २. एद्दहमेत्तं पि—क। ३. धरेइ त्ति—क। ४. उवलद्धं—क। ५. करीयउ—ख।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अलंघणीयवयणो तुमं ति; ता तुमं चेव जाणसि। धरणेण भणियं—देवपसाओ त्ति, अणुग्गिहीओ अहं देवेण। राइणा भणियं—भो सत्थवाहपुत्त, गेण्हाहि निययरित्थं। धरणेण भणियं—जं देवो आणवेइ। तओ नरिंदपंचउलाहिट्ठिओ सह सुवयणेणं गओ वेलाउलं धरणो, उवगणियं सुवण्णयं पंचउलेण, समप्पियं धरणस्स। तओ धरणेण भणियं—भो सुवयण ! परिच्चय विसायं, अंगीकरेहि पोरुसं, देव्वोवरोहेण कस्स वा खलियं न जायइ त्ति। अन्नं च, भणिओ मए तुज्झ सुवण्णलक्खो, तए पुण महाणुभावत्तणेण अहमेव बहुमन्निओ, न उण सुवण्णलक्खो। भणियं च तए आसि 'किं सुवण्णलक्खेण, तुमं चेव मे बहुमओ' त्ति। अणग्घेयं च एयं संभमवयणं। ता गेण्हाहि संपयं, जं ते पडिहायइ। एवं च भणिओ समाणो लज्जिओ सुवयणो। न जंपियं च णेण। तओ दाऊण अट्ठ सुवण्णलक्खे संपूइऊण नरवइं तओ काउं सयलसुत्थं भंडस्स गओ टोप्पसेट्ठिगेहं। ठिओ कंचि वेलं सह सेट्ठिणा। उवगयाए[2] भोयणवेलाए कयमज्जणा पभुत्ता एए। भुत्तुत्तरकाले य चलणेसु निवडिऊण भणिओ धरणेण टोप्पसेट्ठी—जाएमि अहं किंचि वत्थुं तायं, जइ न करेइ मम पणयभंगं ताओ। तओ हरिसवसुप्फुल्ललोय-

राज्ञा। सार्थवाहपुत्र ! न युक्तमेतद्, तथाऽप्यलङ्घनीयवचनस्त्वमिति, ततस्त्वमेव जानासि। धरणेन भणितम्—देवप्रसाद इति, अनुगृहीतोऽहं देवेन। राज्ञा भणितम्—भोः सार्थवाहपुत्र ! गृहाण निजरिक्थम्। धरणेन भणितम्—यद्देव आज्ञापयति। ततो नरेन्द्रपञ्चकुलाधिष्ठितः सह सुवदनेन गतो वेलाकूलं धरणः, उपगणितं सुवर्णं पञ्चकुलेन, समर्पितं धरणस्य। ततो धरणेन भणितम्—भोः सुवदन ! परित्यज विषादम्, अङ्गीकुरु पौरुषम्, दैवोपरोधेन कस्य वा स्खलितं न जायते इति। अन्यच्च भणितो मया तव सुवर्णलक्षम्, त्वया पुनर्महानुभावत्वेनाहमेव बहु मतः, न पुनः सुवर्णलक्षम्। भणितं च त्वयाऽऽसीत् 'किं सुवर्णलक्षेण, त्वमेव मे बहुमत इति। अनर्घ्यं चैतत् सम्भ्रमवचनम्। ततो गृहाण साम्प्रतं यत्ते प्रतिभाति। एवं च भणितः सन् लज्जितः सुवदनः। न जल्पितं च तेन। ततो दत्वा अष्टसुवर्णलक्षान् सम्पूज्य नरपतिं ततः कृत्वा सकलसुस्थं भाण्डस्य गतः टोप्पश्रेष्ठिगेहम्। स्थितः काञ्चिद् वेलां सह श्रेष्ठिना। उपगतायां च भोजनवेलायां कृतमज्जनौ प्रभुक्तावेतौ। भुक्तोत्तरकाले च चरणयोर्निपत्य भणितो धरणेन टोप्पश्रेष्ठी। याचेऽहं किञ्चिद् वस्तु तातम्, यदि

राजा ने कहा—"सार्थवाहपुत्र ! यह उचित नहीं है, तथापि तुम्हारे वचन उल्लंघन करने योग्य नहीं हैं। अतः आप ही जानें।" धरण ने कहा—"यही कृपा है कि मैं महाराज के द्वारा अनुगृहीत हुआ।" राजा ने कहा—"हे सार्थवाहपुत्र ! अपने धन को ले लो।" धरण ने कहा—"जो देव आज्ञा दें।" तब राजा के पंचजनों से अधिष्ठित होकर सुवदन के साथ धरण समुद्री किनारे पर गया। पंचों से सोना गिनवाया। धरण को सौंप दिया। तब धरण ने कहा—"हे सुवदन ! विषाद छोड़ो, पौरुष अंगीकार करो। भाग्यवश कौन स्खलित नहीं होता ! मैंने तुमसे एक लाख सोना कहा था। तुमने महानुभावता के कारण मुझे ही बहुत माना, एक लाख स्वर्ण को नहीं। तुमने कहा था—एक लाख स्वर्ण से क्या, तुम्हीं मेरे लिए बहुत हो। यह सम्मानित वचन बहुमूल्य है। अतः जो तुम्हें उचित लगे, उसे ले लो।" इस प्रकार कहने पर सुवदन लज्जित हुआ। उसने कुछ भी नहीं कहा। तब आठ लाख स्वर्ण देकर, राजा की पूजा कर माल को भलीभाँति रखकर टोप्पश्रेष्ठी के घर गया। सेठ के साथ कुछ समय बैठा। भोजन का समय आने पर दोनों ने स्नान और भोजन किया। भोजन के बाद पैरों में गिरकर टोप्पश्रेष्ठी से धरण ने कहा—"यदि आप मेरी प्रार्थना अस्वीकार न करें तो मैं कुछ वस्तु माँगता हूँ।" तब हर्ष से विकसित नेत्रों वाला होकर—अहो ! मैं

१. बहुगो—ग। २. आगयाए—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णेण 'अहो अहं कयत्थो, अहो अहं धन्नो, अहो मम सुजीवियं, अहो मम सुलद्धो जम्मो त्ति, जओ ईइसेणावि महाणुभावेण सयलसत्तकप्पतरुकप्पेण तिहुयणचितामणीभूएण वि अहं पत्थिज्जामि' त्ति चिंतिऊण भणियं टोप्पसेट्ठिणा—वच्छ, जइ वि सकलत्तं सपुत्तपरियणं दासत्तनिमित्तं ममं जाएसि, तहावि अहं तुह महापुरिसचेट्ठिएण आकरिसियचित्तो न खंडेमि ते पत्थणापणयं। धरणेण भणियं—ताय, जइ एवं ता देहि तिन्नि वायाओ। ईसि विहसिऊण 'जाय, जो एगं वायं लोप्पइ, सो तिन्नि वि लोप्पयंतो किं केणावि धरिउं पारीयइ' त्ति भणिऊण टोप्पसेट्ठिणा कयाओ तिन्नि वायाओ। 'ताय, अणुग्गिहीओ' त्ति भणिऊण हेमकुंडलविज्जाहरविदिन्नमहग्घेयपुव्वसमप्पियरयणसहस्सं मग्गिओ टोप्पसेट्ठिभंडारिओ। तेण वि य 'जं अज्जो आणवेइ' त्ति भणिऊण समप्पियाइं गहिऊण रयणाइं। तओ ताण मज्झे अद्धं गहेऊण टोप्पसेट्ठिस्स चलणपूयं काऊण[1] पुणो वि णिवडिओ पाएसु 'ताय, एसा सा पत्थण' त्ति भणमाणो धरणो। तओ 'अह कहं छलिओ अहमणेणं' ति सुइरं चिंतिऊण 'अगहिए[2] य विलक्खीभविस्सइ एसो, निवारिओ[3] अहं इमिणा अणागयं चेव' उट्ठविओ धरणो 'वच्छ, पडिवन्ना ते

न करोति मम प्रणयभङ्गं तातः। ततो हर्षवशोत्फुल्ललोचनेन 'अहो अहं कृतार्थः, अहो अहं धन्यः, अहो मम सुजीवितम्, अहो मम सुलब्धं जन्मेति, यत ईदृशेनापि महानुभावेन सकलसत्त्वकल्पतरुकल्पेन त्रिभुवनचिन्तामणीभूतेनापि अहं प्रार्थ्ये' इति चिन्तयित्वा भणितं टोप्पश्रेष्ठिना—वत्स ! यद्यपि सकलत्रं सपुत्रपरिजनं दासत्वनिमित्तं मां याचसे तथाप्यहं तव महापुरुषचेष्टितेनाकृष्टचित्तो न खण्डयामि ते प्रार्थनाप्रणयम्। धरणेन भणितम्—तात ! यद्येवं—ततो देहि तिस्रो वाचः। ईषद् विहस्य 'जात ! य एकां वाचं लुप्यति स तिस्रोऽपि लुप्यन् किं केनापि धर्तुं पार्यते' इति भणित्वा टोप्पश्रेष्ठिना कृतास्तिस्रो वाचः। 'तात ! अनुगृहीतः' इति भणित्वा हेमकुण्डलविद्याधरवितीर्णमहर्घ्यपूर्वसमर्पितरत्नसहस्रं मार्गितः टोप्पश्रेष्ठिभाण्डागारिकः। तेनापि च 'यद् आर्य आज्ञापयति' इति भणित्वा समर्पितानि गृहीत्वा रत्नानि। ततस्तेषां मध्ये अर्धं गृहीत्वा टोप्पश्रेष्ठिनश्चरणपूजां कृत्वा पुनरपि निपतितः पादयो 'तात ! एषा सा प्रार्थना' इति भणन् धरणः। ततोऽथ 'कथं छलितोऽहमनेन' इति सुचिरं चिन्तयित्वा 'अगृहीते च विलक्षीभविष्यति एषः, निवारितोऽहमनेन

कृतार्थ हो गया, मैं धन्य हो गया, मेरा जीना सार्थक हो गया, मेरा जन्म सफल हो गया जो कि समस्त प्राणियों में कल्पवृक्ष, तीनों लोकों में चिन्तामणिरत्न के तुल्य यह महानुभाव भी मुझसे याचना कर रहा है। ऐसा सोचकर टोप्पश्रेष्ठी ने कहा—"वत्स ! यदि तुम पुत्र और पत्नी सहित मुझे दास के रूप में माँगो तो भी आप जैसे महापुरुष के प्रति आकृष्ट चित्तवाला तुम्हारी प्रार्थना का खण्डन नहीं करूँगा।" धरण ने कहा—"तात ! यदि ऐसा है तो तीन वचन दो।" कुछ हँसकर 'पुत्र ! जो एक बात को छिपाता है, वह तीन को भी छिपा सकता है, उसे कौन रोक सकता है—ऐसा कहकर टोप्पश्रेष्ठी ने तीन वचनों का वायदा किया। 'तात ! अनुगृहीत हो गया'—ऐसा कहकर हेमकुण्डल विद्याधर के द्वारा दिये गये बहुमूल्य, पहले समर्पित किये गये रत्नों को टोप्पश्रेष्ठी के भण्डारी से मँगवाया। उसने भी—'जो आर्य आज्ञा दें'—ऐसा कहकर रत्नों को लाकर समर्पित कर दिया। तब उनमें से आधे लेकर टोप्पश्रेष्ठी के चरणों की पूजा कर पुनः चरणों में पड़ गया—'तात ! यही वह प्रार्थना है' ऐसा धरण ने कहा। तब 'क्या इसने मुझे छल लिया ? ऐसा बहुत देर सोचकर 'यदि मैं ग्रहण नहीं करूँगा तो यह खिन्न होगा, इसने आगे ही मुझे रोक दिया !' धरण को उठाया—'वत्स ! तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार है',

१. करेऊण—क। २. अगहीएहि—क। ३. नियाइओ—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पत्थणा[1] भणमाणेण टोप्पसेट्ठिणा।

तओ बहुमन्निओ सेट्ठिणा महया सत्थेण समागओ नियनयरिं। आवासिओ बाहिं। जाओ लोयवाओ, जहा आगओ धरणो त्ति। निग्गओ राया पच्चोणिं। पवेसिओ णेण महाविभूईए। नेऊण नियभवणं, पूइओ मज्जणाइणा नियाभरणपज्जवसाणमुवयारप्पयाणेणं। गओ नियभवणं। तुट्ठा य से जणणिजणया। विइण्णं महादाणं, कया सव्वाययणेसु पूया। अइक्कंता काइ वेला। तओ उवणिमंतिय[1] महारायं पूइओ अणेण सविसेसं। सम्माणिया य जहारुहपडिवत्तीए पउरचाउवेज्जाइया,[2] पडिपूइओ य तेहिं। तओ पुच्छिओ जणणिजणएहिं—वच्छ, अवि कहिं ते घरिणि त्ति। धरणेण भणियं—अलं तीए कहाए। चिंतियं च णेहिं। हंत कयं तीए, जं इत्थिउचियं। ता अलं इमस्स मम्मघट्टणेण इमिणा जंपिएणं। अन्नओ अवगच्छिस्सं ति। एत्थंतरम्मि महापुरिसयाखित्तहियओ विम्हयवसेणुप्फुल्ललोयणो कयमुद्दंगसासणावणनिमित्तं[3] पुणो वि धरणसमीवं समागओ राया। कओ धरणेण समुचिओवयारो। पुच्छिओ य आगमणपओयणं। सिट्ठो से निययाहिप्पाओ राइणा। तओ चलणेसु

अनागतमेव' उत्थापितो धरणा 'वत्स ! प्रतिपन्ना ते प्रार्थना' भणता टोप्पश्रेष्ठिना।

ततो बहुमानितः श्रेष्ठिना महता सार्थेन समागतो निजनगरीम्। आवासितो बहिः। जातो लोकवादः, यथा आगतो धरण इति। निर्गतो राजा (पच्चोणी दे.) सन्मुखम्। प्रवेशितस्तेन महाविभूत्या, नीत्वा निजभवनं पूजितो मज्जनादिना निजाभरणपर्यवसानोपचार-प्रदानेन। गतो निजभवनम्। तुष्टौ च तस्य जननीजनकौ। वितीर्णं महादानम्। कृता सर्वायतनेषु पूजा। अतिक्रान्ता कापि वेला। तत उपनिमन्त्र्य महाराजं पूजितोऽनेन सविशेषम्। सन्मानिताश्च यथार्हप्रतिपत्त्या पौरचातुर्विद्यादयः, प्रतिपूजितश्च तैः। ततः पृष्टो जननीजनकाभ्याम्—वत्स ! अपि कुत्र ते गृहिणीति। धरणेन भणितम्—अलं तस्याः कथया। चिन्तितं ताभ्याम्—हन्त कृतं तया यत् स्त्र्युचितम्। ततोऽलमस्य मर्मघट्टनेनानेन जल्पितेन। अन्यतोऽवगमिष्याव इति। अत्रान्तरे महापुरुषताक्षिप्तहृदयो विस्मयवशेनोत्फुल्ललोचनः कृतमुद्राङ्कशासनार्पणनिमित्तं पुनरपि धरणसमीपं समागतो राजा। कृतो धरणेन समुचितोपचारः। पृष्टश्चागमनप्रयोजनम्। शिष्टस्तस्य निजाभिप्रायो

टोप्पश्रेष्ठी ने कहा।

तब श्रेष्ठी के द्वारा सम्मान पाकर सार्थ के साथ अपनी नगरी को आया। बाहर डेरा डाला। लोगों में यह बात फैल गयी कि धरण आ गया है। राजा सन्मुख आया। उसे बड़े ठाठबाट से प्रवेश कराया, अपने भवन में ले जाकर अभिषेक तथा अपने आभूषण प्रदान आदि सेवा के द्वारा इसका सत्कार किया। (धरण) अपने भवन को गया। माता-पिता सन्तुष्ट हुए। बहुत दान दिया। सभी मन्दिरों में पूजा की। कुछ समय बीत गया। तब इसने महाराज को निमन्त्रित कर उनको विशेषरूप से पूजा। नगर के विद्वानों का सम्मान किया। तब माता-पिता ने पूछा—"बेटे, तुम्हारी गृहिणी कहाँ है ?" धरण ने कहा—"उसकी कथा मत पूछो।" उन दोनों ने सोचा—हाय ! उसने वही किया, जो कि स्त्रियों के योग्य है, अतः पूछकर घाव को नहीं कुरेदना चाहिए। दूसरे लोगों से प्राप्त हो जायेगी। इसी बीच महापुरुषत्व से जिसका हृदय ओतप्रोत था, विस्मय के कारण जिसके नेत्र विकसित थे, ऐसा राजा राज्य की ओर से प्रशस्तिपत्र भेंट करने के लिए धरण के समीप आया। धरण ने समुचित सत्कार किया। आने का प्रयोजन पूछा। राजा ने अपना अभिप्राय बतलाया। तब चरणों में पड़कर धरण ने कहा—"महाराज !

---

१. उवणिमंतियो महाराया—क। २. विज्जाइया—ख। ३. कइउद्दंगसेमेणावइनिमित्तं—क।

निवडिऊण भणियं धरणेण—देव, अलं मुद्दंगेहिं; किं तु 'माणणीओ देवो' त्ति करिय पत्थेमि पत्थणीयं। राइणा भणियं—भणाउ अज्जो। तेण भणियं—पयच्छउ देवो नियरज्जे सव्वसत्ताणं बंदिमोक्खणं[1] सव्वसत्ताणमभयप्पयाणं च[2]। तओ अहो से महाणुभावया, अहो महापुरिसचेट्ठियं सत्थवाहपुत्तस्स' त्ति भणिऊण आणत्तो पडिहारो। अरे कारवेहि चारयघंटपओएण मम रज्जे सयलबंदिमोक्खं, सव्वसत्ताणमभयपयाणं च दवावेहि त्ति। तओ जं देवो आणवेइ' त्ति भणिऊण संपाडियं देवसासणं। सप्पुरिसचेट्ठिएण य परितुट्ठा से जणणिजणया। परिओसवियसियच्छेहिं कयमणेहिं राइणो उचियं करणिज्जं। तओ धरणेण सह कंचि वेलं गमेऊण निग्गओ राया।

धरणो वि चिरयालमिलियवयंसयसमेओ गओ मलयसुंदराभिहाणं उज्जाणं। उवलद्धो य नागलयामंडवम्मि कीलानिमित्तमागओ कुवियं पियपणइणिं पसायंतो रेविलगो नाम कुलउत्तगो सुमरियं लच्छीए। चिंतियं च णेणं। अहो णु खलु एवमपरमत्थपेच्छीणि कामिजणहिययाइं हवंति। समागओ संवेगं। गओ य उज्जाणेक्कदेससंठियं असोयवीहियं।

राज्ञा। ततश्चरणयोर्निपत्य भणितं धरणेन—देव! अलं मुद्राङ्कैः, 'किन्तु माननीयो देवः' इति कृत्वा प्रार्थये प्रार्थनीयम्। राज्ञा भणितम्—भणत्वार्यः। तेन भणितम्—प्रयच्छतु देवो निजराज्ये सर्वसत्त्वानां बन्दिमोक्षणं सर्वसत्त्वानामभयप्रदानं च। ततः 'अहो तस्य महानुभावता, अहो महापुरुषचेष्टितं सार्थवाहपुत्रस्य' इति भणित्वा आज्ञप्तः प्रतीहारः। अरे कारय चारकघण्टाप्रयोगेण मम राज्ये सकलबन्दिमोक्षम्, सर्वसत्त्वानामभयप्रदानं च दापयेति। ततो 'यद् देव आज्ञापयति' इति भणित्वा सम्पादितं देवशासनम्। सत्पुरुषचेष्टितेन च परितुष्टौ तस्य जननीजनकौ। परितोषविकसिताक्षाभ्यां कृतमाभ्यां राज्ञ उचितं करणीयम्। ततो धरणेन सह काञ्चिद् वेलां गमयित्वा निर्गतो राजा।

धरणोऽपि चिरकालमिलितवयस्यसमेतो गतो मलयसुन्दराभिधानमुद्यानम्। उपलब्धश्च नागलतामण्डपे क्रीडानिमित्तमागतः कुपितां प्रियप्रणयिनीं प्रसादयन् रेविलको नाम कुलपुत्रकः। स्मृत लक्ष्म्याः। चिन्तितं च तेन—अहो नु खल्वेवमपरमार्थप्रेक्षीणि कामिजनहृदयानि भवन्ति। समागतः संवेगम्। गतश्च उद्यानैकदेशसंस्थितामशोकवीथिकाम्।

प्रशस्तिपत्र रहने दीजिए, किन्तु महाराज माननीय हैं, अतः एक प्रार्थना करता हूँ।" राजा ने कहा—"आर्य कहें।" उसने कहा—"महाराज! प्रशस्तिपत्र रहने दीजिए, किन्तु महाराज माननीय हैं, अतः एक प्रार्थना करता हूँ।" राजा ने कहा—"आर्य कहें! उसने कहा—महाराज! अपने राज्य के समस्त बन्दियों को मुक्ति और समस्त जीवों को अभयप्रदान करने की आज्ञा दें।" तब 'इसकी महानुभावता आश्चर्यजनक है, सार्थवाहपुत्र की महापुरुष के सदृश चेष्टा आश्चर्ययुक्त है'—ऐसा कहकर द्वारपाल को आज्ञा दी—"अरे, जेल का घण्टा बजवाकर मेरे राज्य के समस्त बन्दियों को मुक्त कराया जाय तथा समस्त प्राणियों को अभयदान दिलाया जाय।" तब 'जो महाराज आज्ञा दें' —कहकर महाराज की आज्ञा सम्पादित हुई। सत्पुरुष के अनुरूप क्रिया करने के कारण माता-पिता सन्तुष्ट हुए। सन्तोष से विकसित नेत्रोंवाले इन दोनों ने राजा के योग्य कार्य किया। तब धरण के साथ कुछ समय बिताकर राजा चला गया।

धरण भी बहुत दिनों बाद मिले हुए मित्रों के साथ मलयसुन्दर नाम के उद्यान में गया। नागलतामण्डप में क्रीड़ा के निमित्त आया हुआ रेविलक नामक कुलपुत्र मिला, जो कि अपनी कुपित प्रेमिका को मना रहा था। लक्ष्मी की स्मृति हो आयी। उसने सोचा - अहो! कामिजनों के हृदय इस तरह परमार्थ को न जानने वाले होते हैं। कुछ मन में उदासीनता आयी और वह उद्यान के एक भाग में स्थित अशोक श्रेणी में चला गया।

---

१. बंधणमोक्खं। २. दव्वावेहि त्ति इत्यधिकः—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिट्ठो य णेण तहियं फासुयदेसम्मि विगलियवियारो ।
सीसगणसंपरिवुडो आयरिओ अरहदत्तो त्ति ॥ ५४१ ॥
अच्चंतसुद्धचित्तो नाणी विविहतवसोसियसरीरो ।
निज्जियमयणो वि दढं अणंगसुहसिद्धितल्लिच्छो ॥ ५४२ ॥
तं पेच्छिऊण चिंता जाया धरणस्स एस लोयम्मि ।
जीवइ सफलं एक्को चत्तो जेणं घरावासो ॥ ५४३ ॥
घरिणी अत्थो सयणो माया य पिया य जीवलोयम्मि ।
माइंदजालसरिसा[1] तहवि जणो पावमायरइ ॥ ५४४ ॥
जा वि उवयारबुद्धी घरिणीपमुहेसु सा वि मोहफलं ।
मोत्तूण जओ धम्मं न मरणधम्मीणमवयारो ॥ ५४५ ॥
सो पुण संपाडेउं न तीरए आसवानियत्तेहिं ।
आसवविणिवित्ती वि य गिहासमं आवसंतेहिं ॥ ५४६ ॥

दृष्टश्च तेन तत्र प्रासुकदेशे विगलितविकारः ।
शिष्यगणसम्परिवृत आचार्योऽर्हद्दत्त इति ॥ ५४१ ॥
अत्यन्तशुद्धचित्तो ज्ञानी विविधतपःशोषितशरीरः ।
निर्जितमदनोऽपि दृढमनङ्गसुखसिद्धितत्परः ॥ ५४२ ॥
तं प्रेक्ष्य चिन्ता जाता धरणस्यैष लोके ।
जीवति सफलमेकस्त्यक्तो येन गृहावासः ॥ ५४३ ॥
गृहिणी अर्थः स्वजनो माता च पिता च जीवलोके ।
मायेन्द्रजालसदृशास्तथापि जनः पापमाचरति ॥ ५४४ ॥
याऽपि उपकारबुद्धिः गृहिणीप्रमुखेषु सापि मोहफलम् ।
मुक्त्वा यतो धर्मं न मरणधर्मिणामुपकारः ॥ ५४५ ॥
स पुनः सम्पादयितुं न शक्यते आस्रवानिवृत्तैः ।
आस्रवविनिवृत्तिरपि च गृहाश्रममावसद्भिः ॥ ५४६ ॥

उसने उस निर्मल स्थान पर विकारों से रहित, शिष्यगणों से घिरे हुए अर्हद्दत्त नामक आचार्य को देखा। वे अत्यन्त शुद्धचित्त, ज्ञानी थे, अनेक प्रकार के तपों से उनकी देह कृश हो गयी थी, काम को जीत लेने पर भी वे अतीन्द्रिय सुख की सिद्धि में सुदृढ़ रूप से तत्पर थे। उन्हें देखकर धरण ने विचार किया—इस संसार में एक ही व्यक्ति का जीना सफल है, जिसने गृहस्थी को त्याग दिया है। गृहिणी, धन, स्वजन, माता-पिता इस संसार में माया रूप इन्द्रजाल के सदृश हैं, फिर भी मनुष्य पाप का आचरण करता है। गृहणी आदि प्रमुख व्यक्तियों के प्रति जो उपकार की बुद्धि होती है वह भी मोह का फल है। धर्म को छोड़कर मृत्युशील प्राणियों का कोई उपकारक नहीं है। कर्मों के आगमन को रोके बिना धर्म का सम्पादन नहीं हो सकता है। गृहाश्रम में रहते हुए सास्रवों को आस्रव से छुटकारा नहीं हो सकता है ॥ ५४१-५४६ ॥

---

1. सरिसं—क ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निघमा तत्थारंभो आरंभेणं च वड्ढई[1] हिंसा।
हिंसाए[2] कओ धम्मो न देसिओ सत्थयारेहिं ॥ ५४७ ॥
पज्जंते वि य एसो सव्वेणं चेव जीवलोयम्मि।
नियमेणमुज्झियव्वो ता अलमेएण पावेणं ॥ ५४८ ॥
एवं च चिंतयंतो पत्तो संजायचरणपरिणामो।
गुरुपायमूलमणहं सवयसो[3] निव्वुइपुरं व ॥ ५४९ ॥
अह वंदिओ य णेणं भगवं सवयंसएण साहू य।
तेहिं चिय धम्मलाहो दिन्नो सव्वेसिं विहिपुव्वं ॥ ५५० ॥
उवविट्ठा य सुविमले मुणीण पुरओ उ उववणुच्छंगे।
अह पुच्छिया य गुरुणा कत्तो तुब्भे त्ति महुरगिरं ॥ ५५१ ॥

एवं च पुच्छिए समाणे जंपियं धरणेण भयवं, इओ चेव अम्हे। अन्नं च; अत्थि मे गिहासम-परिच्चायबुद्धी। ता आइसउ भयवं, जं मए कायव्वं ति। तओ 'अहो से आगिई, अहो विवेगो' त्ति

नियमात्तत्रारम्भ आरम्भेण च वर्धते हिंसा।
हिंसया कृतो धर्मो न दर्शितः शास्त्रकारैः ॥ ५४७ ॥
पर्यन्तेऽपि चैषः सर्वेणैव जीवलोके।
नियमेनोज्झितव्यस्ततोऽलमेतेन पापेन ॥ ५४८ ॥
एवं च चिन्तयन् प्राप्तः सञ्जातचरणपरिणामः।
गुरुपादमूलमनघं सवयस्यो निर्वृतिपुरमिव ॥ ५४९ ॥
अथ वन्दितश्च तेन भगवान् सवयस्येन साधवश्च।
तैरेव धर्मलाभो दत्तः सर्वेषां विधिपूर्वम् ॥ ५५० ॥
उपविष्टाश्च सुविमले मुनीनां पुरतस्तु उपवनोत्सङ्गे।
अथ पृष्टाश्च गुरुणा कुतो यूयमिति मधुरगिरा ॥ ५५१ ॥

एवं च पृष्टे सति जल्पितं धरणेन -भगवन्! इत एव वयम्। अन्यच्च, अस्ति मे गृहाश्रम-परित्यागबुद्धिः। तत आदिशतु भगवान्, यन्मया कर्तव्यमिति। ततः 'अहो तस्याकृतिः, अहो विवेकः'

गृहस्थी में नियम से आरम्भ होता है, आरम्भ से हिंसा बढ़ती है। हिंसा से धर्म नहीं होता है, ऐसा शास्त्रकारों ने कहा है। फलस्वरूप समस्त जीवलोक को इसे नियम से छोड़ ही देना चाहिए। इस पाप से कुछ भी लाभ नहीं है, ऐसा विचार करते हुए जिसके अन्दर चारित्रधारण करने के भाव उत्पन्न हुए हैं—ऐसा वह मित्रों के साथ गुरु के पादमूल में आया, मानो मोक्षनगरी में आया हो। मित्रों के साथ उसने आचार्य और साधुओं की वन्दना की। उन्होंने सभी को विधिपूर्वक धर्मलाभ दिया। उद्यान की निर्मल गोद में मुनियों के सामने बैठा। अनन्तर गुरु ने मधुरवाणी में पूछा—आप कहाँ से आये हैं? ॥ ५४७-५५१ ॥

ऐसा पूछे जाने पर धरण ने कहा—'भगवन्! हम लोग यहीं से आये हैं। दूसरी बात यह है कि मैं घर छोड़ना चाहता हूँ, अतः मेरे योग्य जो विधेय हो उसका आदेश दें।'' तब 'इसकी आकृति आश्चर्यकारक है, विवेक

---

१. वड्ढइ—ख। २. हिंसाइ कओ य—क। ३. सवयस्सो—क।

चिंतिऊण आसयपरिक्खणनिमित्तं जंपियं अरहयत्तेणं। वच्छ, परिचत्तगिहासमेणं निब्भच्छिऊण नियनियविसयलालसाइं इंदियाइं विज्झविय[1] कसायाणलं निरीहेणं चित्तेणं सयलसोक्खनिहाणभूओ संजमो कायव्वो। अन्नहा परिचत्तो वि अपरिचत्तो गिहासमो त्ति। सो पुण अणाइविसयभावणा-भावियस्स जीवस्स अच्चंतदुक्खयरो। पवज्जिऊण वि एयं पुव्वकयकम्मदोसेण केइ न तरंति परि-वालिउं, मुज्झंति निययकज्जे, परिकप्पेंति[2] असयालंबणाइं; विमुक्कसंजमा य ते, आउसो, न गिही न पव्वइयगा उभयलोगविहलं नासंति[3] मणुयत्तणं। एवं ववत्थिए अमुणिऊण हेओवाएयाइं अतुलिऊण-मप्पाणयं न जुत्तो गिहासमपरिच्चाओ त्ति। धरणेण भणियं – एवमेयं, जं तुब्भे आणवेह। किं तु—

हेओ गिहासमो मे बुद्धी समणत्तणं उवाएयं।
तुलणा वि विवेगो च्चिय किलेसवसयाण सत्ताणं ॥ ५५२ ॥

भयवया चिंतियं। अहो से सउण्णया, मुणिओ णेण जहट्ठिओ संसारो, समुप्पन्ना जिणधम्म-

---

इति चिन्तयित्वा आशयपरीक्षणनिमित्तं जल्पितमर्हद्दत्तेन—वत्स ! परित्यक्तगृहाश्रमेण निर्भर्त्स्य निजनिजविषयलालसानीन्द्रियाणि विध्याप्य कषायानलं निरीहेन चित्तेन सकलसौख्यनिधानभूतः संयमः कर्तव्यः। अन्यथा परित्यक्तोऽप्यपरित्यक्तो गृहाश्रम इति। स पुनरनादिविषयभावना-भावितस्य जीवस्यात्यन्तदुःखकरः। प्रपद्याप्येतं पूर्वकृतकर्मदोषेण केऽपि न शक्नुवन्ति परिपालयितुम्, मुह्यन्ति निजकार्ये, परिकल्पयन्त्यसदालम्बनानि, विमुक्तसंयमाश्च ते आयुष्मन् ! न गृहिणो न प्रव्रजितका उभयलोकविफलं नाशयन्ति मनुजत्वम्। एवं व्यवस्थितेऽज्ञात्वा हेयोपादेयानि अतोल-यित्वाऽऽत्मानं न युक्तो गृहाश्रमपरित्याग इति। धरणेन भणितम्—एवमेतद्, यद् यूयमाज्ञापयत। किन्तु—

हेयो गृहाश्रमो मे बुद्धिः श्रमणत्वमुपादेयम्।
तुलनाऽपि विवेक एव क्लेशवशगानां सत्त्वानाम् ॥ ५५२ ॥

भगवता चिन्तितम्—अहो तस्य सपुण्यता, ज्ञातोऽनेन यथा स्थितः संसारः, समुत्पन्ना जिन-

---

आश्चर्ययुक्त है—ऐसा सोचकर अभिप्राय की परीक्षा के लिए अर्हद्दत्त ने कहा—"वत्स ! गृहाश्रम का परित्याग कर, अपने-अपने विषय के प्रति लालसायुक्त इन्द्रियों की भर्त्सना कर, कषायरूपी अग्नि को बुझाकर, निरभिलाष चित्त से—समस्त सुखों का जो खजाना है ऐसे संयम का पालन करना चाहिए, अन्यथा परित्यक्त गृहाश्रम भी अपरित्यक्त के तुल्य है, आदिकाल से जिसने विषय-भावनाओं का चिन्तन किया है, ऐसे जीवों के लिए वह अत्यन्त दुःखकर है। गृहाश्रम को त्यागकर भी पुरुष पूर्व जन्म में किये हुए कर्मों के दोष के कारण पालन नहीं कर सकते हैं वे अपने ही कर्मों में मोहित होते हैं, सदा आलम्बनों की कल्पना करते हैं और हे आयुष्मान् ! वे संयम को छोड़ देते हैं। ऐसे लोग न तो गृही होते हैं, न संयमी होते हैं, इस प्रकार उभयलोक में विफल होकर मनुजपने का नाश करते हैं। ऐसी स्थिति में हेयोपादेय के ज्ञान बिना, अपने आपको तोले बिना, गृहाश्रम का छोड़ना उचित नहीं है।" धरण ने कहा—"जो आप आज्ञा दें। किन्तु—

मेरा विचार है कि गृहाश्रम छोड़ने योग्य है और श्रमणत्व (मुनिदीक्षा) ग्रहण करने योग्य (उपादेय) है। क्लेश के वशीभूत हुए प्राणियों की तुलना भी विवेक ही है" ॥ ५५२ ॥

भगवान् ने विचार किया—इसका पुण्य आश्चर्यकारक है जो कि इसने संसार को जैसा का तैसा ही ज्ञान

---

१. विवज्जिय—क। २. परिकप्पेंति—क। ३. नयंति—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बोही। ता पसंसेमि एयं साहेमि य इमस्स इमीए दुल्लहत्तणं, जेण वयसगाण वि से संबोहो समुप्पज्जइ। भणियं च णेण वच्छ, धन्नो तुमं, नायं तए जाणियव्वं, संपत्ता सयललोयदुल्लहा[1] जिणधम्मबोही। ता जहट्ठियासेवणेण एयं चेव सफलं करेहि, संसिज्झइ य तुह समीहियं। न खलु अणब्भत्थनिरइयारकुसलमग्गा एवंविहा हवंति, अवि य अपरमत्थपेच्छिणो विसयलोलुया य। एयवइयरं च निसुणेहि मे चरियं। धरणेण भणियं 'कहेउ भयवं'। अरहदत्तायरिएण भणियं—सुण।

अत्थि इहेव वासे[2] अयलउरं नाम नयरं। तत्थ जियसत्तू राया, पुत्ता[3] य से अवराजिओ समरकेऊ य। अवराजिओ जुवराया, इयरो य कुमारो। दिन्ना इमस्स कुमारभुत्तीए उज्जेणी। एवं च अइक्कंतो कोइ कालो। अन्नया य विथक्को समरकेसरी नाम पच्चंतनरवई। तओ अवराजिओ तप्पसाहणनिमित्तं गओ। पसाहिओ य एसो। आगच्छमाणेण य मुत्तिमंतो विय पुण्णोदओ संपत्तो इमेण धम्मारामसन्निवेसे सयलमणोरहचिंतामणी राहो नाम आयरिओ त्ति। तं च दट्ठूण समुप्पन्नो एयस्स संवेगो। पुच्छिओ णेण जहाविहीए धम्मो। कहिओ भयवया जहोवइट्ठो परमगुरूहिं। पडि-

धर्मबोधिः, ततः प्रशंसाम्येतम्, कथयामि चास्मै अस्या दुर्लभत्वम्, येन वयस्यानामपि तस्य सम्बोधः समुत्पद्यते। भणितं च तेन—वत्स! धन्यस्त्वम्, ज्ञातं त्वया ज्ञातव्यम्, सम्प्राप्ता सकललोकदुर्लभा जिनधर्मबोधिः। ततो यथास्थितासेवनेन एतामेव सफलां कुरु, संसिध्यति च तव समीहितम्। न खल्वनभ्यस्तनिरतिचारकुशलमार्गा एवंविधा भवन्ति, अपि चापरमार्थप्रेक्षिणो विषयलोलुपाश्च। एतद्व्यतिकरं च निशृणु मे चरितम्। धरणेन भणितं—कथयतु भगवान्। अर्हद्दत्ताचार्येण भणितं—शृणु।

अस्तीहैव वर्षे अचलपुरं नाम नगरम्। तत्र जितशत्रू राजा, पुत्रौ च तस्य अपराजितः समरकेतुश्च। अपराजितो युवराजः, इतरश्च कुमारः दत्ताऽस्य कुमारभुक्त्यां उज्जयिनी। एवं चातिक्रान्तः कोऽपि कालः। अन्यदा च (वित्थक्को दे०) विरुद्धः समरकेसरी नाम प्रत्यन्तनरपतिः। ततोऽपराजितस्तत्प्रसाधननिमित्तं गतः। प्रसाधितश्चैषः। आगच्छता च मूर्तिमानिव पुण्योदयः संप्राप्तोऽनेन धर्मारामसन्निवेशे सकलमनोरथचिन्तामणी राहो नामाचार्य इति। तं च दृष्ट्वा समुत्पन्न एतस्य संवेगः। पृष्टोऽनेन यथाविधि धर्मः। कथितो भगवता यथोपदिष्टः परमगुरुभिः। प्रतिबुद्धश्चैषः। क्षयोपशम-

लिया, जैनधर्म का ज्ञान उत्पन्न हुआ, अतः इसकी प्रशंसा करता हूँ, इससे इसकी (ज्ञान की) दुर्लभता कहता हूँ, जिससे इसके मित्रों को भी बोध उत्पन्न हो। उन्होंने कहा—"वत्स! तुम धन्य हो, तुमने ज्ञेय को जान लिया, समस्त प्राणियों को जो दुर्लभ है ऐसी जिनधर्म बोधि को तुमने प्राप्त कर लिया है। अतः यथास्थित का सेवन करते हुए इसी को सफल करो। आपका इष्ट कार्य पूरा हो। अतीचाररहित शुभ मार्ग का अभ्यास किये बिना लोग इस प्रकार नहीं होते, अपितु परमार्थ को न देखने वाले और विषयों के लोलुपी होते हैं। इसके विपरीत मेरे चरित को सुनो।" धरण ने कहा—"कहिए भगवन्!" अर्हद्दत्त आचार्य ने कहा—"सुनो!

इसी भारतवर्ष में अचलपुर नाम का नगर है। वहाँ पर जितशत्रु राजा था। उसके समरकेतु और अपराजित नाम के पुत्र थे। अपराजित युवराज था, दूसरा कुमार। इसने कुमार के उपभोग के लिए उज्जयिनी दे दी। इस प्रकार कुछ समय बीत गया। एक बार 'समरकेसरी' नामक सीमावर्ती राजा विरुद्ध हो गया। तब अपराजित उसको समझाने के लिए गया। वह मान गया। आते हुए उसने शरीरधारी पुण्योदय के समान धर्मोद्यान में समस्त मनोरथों के लिए चिन्तामणिस्वरूप राहु नामक आचार्य को देखा। उन्हें देखकर इसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। इसने यथाविधि धर्म के विषय में पूछा। भगवान् ने, जैसा परमगुरुओं ने कहा था, वैसा कहा। यह जागृत

१. तेलोकदु—क। २. भारहे वासे। ३. पुत्ता य—क-ख।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बद्धो य एसो। खओवसममुवगयं चारित्तमोहणीयं। तओ माइंदजालसरिसं जीवलोयमवगच्छिय पव्वइओ एसो। करेइ तवसंजमुज्जोयं। अन्नया य गुरुपायमूलम्मि अहासंजमं विहरमाणो गओ तगरासन्निवेसं। एत्थंतरम्मि समागया तत्थ उज्जेणीओ राहायरियस्स अंतेवासिणो अज्जराहुखमासमणसंतिया गुरुसमीवं साहुणो त्ति। कया से से उचियपडिवत्ती। पुच्छिया निरुवसग्गविहारमुज्जेणीए। कहिओ य णेहिं सुंदरो विहारो; केवलं रायपुत्तो पुरोहियपुत्तो य अभद्दया, ते जहोवलद्धीए खलियारेंति साहुणो, तन्निमित्तो उवसग्गो त्ति। तओ एयमायण्णिय चिंतियमवराजिएण। अहो पमत्तया समरकेउणो, जेण परियणं पि न नियमेइ। ता अणुन्नविय गुरुं गच्छामि अहमुज्जेणिं। उवसामेमि ते कुमारे, मा संचिणंतु अबोहिमूलाइं। संसारवद्धणे य साहुपओसो। अत्थि मे तदुवसामणसत्ती। तओ अणुन्नविय गुरुं पेसिओ गुरुणा समागओ उज्जेणिं, पविट्ठो य अज्जराहुखमासमणगच्छे। कयं से उचियकरणिज्जं। समागया भिक्खावेला। पयट्टो एसो। भणिओ य साहूहिं पाहुणया तुब्भे, ता अच्छह त्ति। तेण भणियं – न अच्छामि, अत्तलद्धिओ अहं, नवरं ठवणकुलाईणि दंसेह। तओ दिन्नो

मुपगतं चारित्रमोहनीयम्। ततो मायेन्द्रजालसदृशं जीवलोकमवगत्य प्रव्रजित एषः। करोति तपःसंयमोद्योगम्। अन्यदा च गुरुपादमूले यथासंयमं विहरन् गतस्तगरासन्निवेशम्। अत्रान्तरे समागतास्तत्रोज्जयिन्या राहाचार्यस्यान्तेवासिन आर्यराहुक्षमाश्रमणसत्का गुरुसमीपं साधव इति। कृता तेषामुचितप्रतिपत्तिः। पृष्टा निरुपसर्गविहारमुज्जयिन्याम्। कथितस्तैः सुन्दरो विहारः, केवलं राजपुत्रः पुरोहितपुत्रश्चाभद्रकौ, तौ यथोपलब्ध्या खलीकुरुत (उपद्रवतः) साधून्, तन्निमित्त उपसर्ग इति। तत एतदाकर्ण्य चिन्तितमपराजितेन। अहो प्रमत्तता समरकेतोः, येन परिजनमपि न नियमयति। ततोऽनुज्ञाप्य गुरुं गच्छाम्यहमुज्जयिनीम्। उपशमयामि तौ कुमारौ, मा सञ्चिन्वातामबोधिमूलानि। संसारवर्धने च साधुप्रद्वेषः। अस्ति मे तदुपशमनशक्तिः। ततोऽनुज्ञाप्य गुरुं प्रेषितो गुरुणा समागत उज्जयिनीम्, प्रविष्टश्चार्यराहुक्षमाश्रमणगच्छे। कृतं तस्योचितकरणीयम्। समागता भिक्षावेला। प्रवृत्त एषः। भणितश्च साधुभिः। प्राघूर्णका यूयम्, तत आध्वमिति। तेन भणितम्— न आसे, आत्मलब्धिकोऽहम्, नवरं स्थापनाकुलादीनि दर्शयत। ततो दत्तस्तस्य शिष्यः, दर्शितानि

हुआ। चारित्रमोहनीय के क्षयोपशम को प्राप्त हुआ। तब जीवलोक को मायामयी इन्द्रजाल के समान जानकर इसने दीक्षा धारण कर ली। संयम और तप में उद्योग किया। एक बार गुरु के चरणों में रहकर संयमपूर्वक विहार करते हुए 'तगरा' (कोंकण) सन्निवेश को गया। इसी बीच उज्जयिनी से आचार्य राहु के शिष्य साधु जन क्षमाश्रमण के साथ गुरु के समीप आये। उनसे उचित जानकारी प्राप्त की। पूछा—"उज्जयिनी में विहार करने में कोई बाधा तो नहीं है?" उन्होंने कहा—"विहार सुन्दर है, केवल राजपुत्र और पुरोहित का पुत्र 'अभद्रक' ये दोनों साधुओं को पीड़ित करते हैं। उनके कारण ही उपसर्ग है।" इसे सुनकर अपराजित ने सोचा - अहो समरकेतु का प्रमाद, जो सेवकों पर भी नियन्त्रण नहीं करता है। तब गुरु से आज्ञा ली कि मैं उज्जयिनी जाता हूँ। उन दोनों कुमारों को शान्त करता हूँ। अज्ञान के बीज न फैलें। साधुओं के प्रति द्वेष करना संसारवर्द्धक है। मेरे अन्दर इसे रोकने की शक्ति है। तब गुरु से आज्ञा लेकर गुरु के द्वारा भेजा जाकर उज्जयिनी आया और आर्य राहु क्षमाश्रमण के गच्छ में प्रविष्ट हुआ। उसके योग्य कार्य किया। आहार का समय आया। यह (भोजन करने) प्रवृत्त हुआ। साधुओं ने कहा—"आप लोग अतिथि हैं, अतः आप बैठिए।" उसने कहा—'मैं नहीं बैठूंगा, क्योंकि मैं आत्मोपलब्धि वाला हूँ, केवल स्थापनाकुल आदि को दिखाइए।" तब इसने शिष्य दिया, कुलों को दिखाया। उसने मना किया—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से चेल्लओ, दंसियाणि कुलाणि वारिओ य णेणं 'एयं पडणीयगेहं; मा पविसेज्जसु' त्ति भणिऊण नियत्तो चेल्लओ, पविट्ठो य एसो पढममेव कुमारगेहं। महया सद्देण धम्मलाहियमणेणं। तं च दट्ठूण भीयाओ अंतेउरियाओ। 'हा कट्ठं, इसी कयत्थिज्जिस्सइ' त्ति चिंतिऊण सन्निओ य णाहिं लहु निग्गच्छसु' त्ति। तओ अवहीरिऊण बहिराविडं च काऊण महया सद्देण धम्मलाहियमणेणं। एत्यंतरम्मि धम्मलाहसद्दं सोऊण हम्मियतलाओ पहट्ठमुहपंकया समागया कुमारया। ढक्कियं दुवारं। अइसएणं वंदिओ णेहिं साहू। कयं धम्मलाहणं। भणिओ य णेहिं—भो पव्वइयगा, 'नच्चसु' त्ति। तेण भणियं—कहं गीयवाइएण विणा नच्चामि। कुमारेहिं भणियं—अम्हे गीयवाइयं करेमो। साहुणा भणियं 'सुंदरं' त्ति। विसमतालं कयं गीयवाइयमणेहिं। अकुद्धो वि हियएणं कुद्धो साहू। भणियं च णेण—अरे रे गोवालदारया, इमिणा विन्नाणेण ममं नच्चावेह त्ति। एयं सोऊण कुविया कुमारा, साहुताडणनिमित्तं च धाविया अभिमुहं। तेण वि य 'न अन्नो उवाओ' त्ति कलिऊण करुणापहाणचित्तेण निज्जुद्धवावारकुसलेणं सणियं चेव घेत्तूण सव्वसंधीसु विओइओ एक्को। तओ धाविओ

कुलानि, वारितश्च तेन 'एतत्प्रत्यनीकगेहम्, मा प्रविश' इति भणित्वा निवृत्तः शिष्यः। प्रविष्टश्चैष प्रथममेव कुमारगेहम्। महता शब्देन धर्मलाभितमनेन। तं च दृष्ट्वा भीता अन्तःपुरिकाः। 'हा कष्टम्, ऋषिः कदर्थयिष्यते' इति चिन्तयित्वा संज्ञितश्च ताभिः 'लघु निर्गच्छ' इति। ततोऽवधीर्य बधिरवृत्तितां (?) च कृत्वा महता शब्देन धर्मलाभितमनेन। अत्रान्तरे धर्मलाभशब्दं श्रुत्वा हर्म्यतलात् प्रहृष्टमुखपङ्कजौ समागतौ कुमारौ। स्थगितं द्वारम्। अतिशयेन वन्दितस्ताभ्यां साधुः। कृतं धर्मलाभनम्। भणितश्च ताभ्याम्—'भो प्रव्रजितक! नृत्य' इति। तेन भणितम्—कथं गीतवाद्येन विना नृत्यामि। कुमारैर्भणितम्—आवां गीतवाद्यं कुर्वः। साधुना भणितम् 'सुन्दरम्' इति। विषमतालं कृतं गीतवाद्यमाभ्याम्। अक्रुद्धोऽपि हृदयेन क्रुद्धः साधुः। भणितं च तेन—अरेरे गोपालदारकौ! अनेन विज्ञानेन मां नर्तयतमिति। एतच्छ्रुत्वा कुपितौ कुमारौ, साधुताडननिमित्तं च धावितावभिमुखम्। तेनापि च 'नान्य उपायः' इति कलयित्वा करुणाप्रधानचित्तेन नियुद्धव्यापारकुशलेन शनैरेव गृहीत्वा सर्वसन्धिषु वियोजित एकः। ततो धावितो द्वितीयः, सोऽपि तथैव। ततो

'साधु के विरोधी का यह घर है, प्रवेश मत करो।' ऐसा कहकर शिष्य लौट गया। यह पहले ही कुमार के घर में प्रविष्ट हुआ। इसने ऊँचे शब्द से धर्मलाभ दिया। उसे देखकर अन्तःपुरिकायें भयभीत हुईं। हाय कष्ट है, ऋषि का तिरस्कार किया जायेगा। ऐसा सोचकर उन्होंने साधु को संकेत किया—'जल्दी निकल जाओ।' तब सुनकर बहरा बनकर ऊँचे स्वर से इसने धर्मलाभ दिया। इसी बीच धर्मलाभ सुनकर महल के भीतर से दो कुमार आये। उनके मुखकमल खिले हुए थे। द्वार को बन्द कर दिया। उन दोनों ने साधु की खूब पूजा-अर्चना की। धर्मलाभ लिया। उन दोनों ने कहा—"हे संन्यासी! नाचो।" उसने कहा—"गीत-वाद्य के बिना कैसे नृत्य करूँ?" कुमारों ने कहा—"हम दोनों गाना बजाना करते हैं।" साधु ने कहा—"ठीक है।" इन दोनों ने विषमताल वाला गीत वाद्य किया। हृदय से क्रुद्ध न होने पर भी साधु क्रुद्ध हो गया। उसने कहा—"अरे ग्वाल-बालो! इस विज्ञान के द्वारा मुझे नचाते हो?" इसे सुनकर कुमार कुपित हो गये। साधु को पीटने के लिए दोनों सामने बढ़े। उसने 'अन्य कोई उपाय नहीं है' ऐसा मानकर करुणाप्रधान चित्त से युद्ध कार्य में कुशल होने के कारण धीरे से पकड़ कर समस्त गाँठों को अलग कर दिया। तब दूसरा दौड़ा। उसकी भी वही गति हुई। तब द्वार खोलकर साधु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुइओ, सो वि तहेव। तओ दुवारमुग्घाडिऊण गओ साहू। एगंते ठिओ सज्झायजोगेणं। इयरे वि निच्चेट्ठा तहेव चिट्ठंति। दिट्ठा परियणेणं, उदएण सिंचिऊण ससंभमं वाहित्ता, जाव न जंपंति, तओ निवेइयं रायपुरोहियाणं, जहा इमिणा वुत्तंतेण केणइ साहुणा कुमारा एवं कय त्ति। तओ ते निरूविऊण आयरियसमीवं गओ राया। पणमिओ य णेणायरिओ, भणिओ य—भयवं, खमेह एयमवराहं बालयाणं। आयरिएण भणियं—किमेयं ति नावगच्छामि। कहिओ से वुत्तंतो राइणा। तओ आयरिएण भणियं—वीयरागसासणसंपायणरया[1] तप्पहावओ विइयपरमत्था परलोयभीरुयत्तेण य इहलोयसरीरे दढमपडिबंधयाए खमेंति सयलसत्ताणं साहुणो न पुण पाणभएणं ति। तहावि कारणं पइ समायरियं जइ केणावि भवे, तओ पुच्छावेमि साहुणो। तओ आयरिएण पुच्छिया साहुणो। तेहिं भणियं—भयवं, न अम्हे वियाणामो त्ति। आयरिएण भणियं—महाराय, नेयमिह साहूहिं ववसियं। राइणा भणियं—भयवं, साहुणा न एत्थ संदेहो। आयरिएण भणियं—महाराय, जइ एवं, ता एवं भविस्सइ। अत्थि एगो आगंतुगो[2] साहू; तेणेयमणुचिट्ठियं भवे। राइणा भणियं—भयवं, कहिं पुण सो साहू।

द्वारमुद्घाटय गतः साधुः। एकान्ते स्थितः स्वाध्याययोगेन। इतरावपि निश्चेष्टौ तथैव तिष्ठतः। दृष्टौ परिजनेन, उदकेन सिक्त्वा ससंभ्रमं व्याहृतौ, यावद् न जल्पतः। ततो निवेदितं राजपुरोहिताभ्याम्, यथाऽनेन वृत्तान्तेन केनचित् साधुना कुमारौ एवं कृताविति। ततस्तौ निरूप्य आचार्यसमीपं गतो राजा। प्रणतश्च तेनाचार्यः, भणितश्च। भगवन्! क्षमस्वैतमपराधं बालकयोः। आचार्येण भणितम्—किमेतदिति नावगच्छामि। कथितस्तस्य वृत्तान्तो राज्ञा। तत आचार्येण भणितम्—वीतरागशासनसम्पादनरतास्तत्प्रभावतो विदितपरमार्थाः परलोकभीरुकत्वेन च इहलोकशरीरे दृढमप्रतिबन्धतया क्षमयन्ति सकलसत्त्वान साधवः, न पुनः प्राणभयेनेति। तथापि कारणं प्रति समाचरितं यदि केनापि भवेत् ततः प्रच्छयामि साधून्। आचार्येण पृष्टाः साधवः। तैर्भणितम्—भगवन्! न वयं विजानीम इति आचार्येण भणितम्—महाराज! नेदमिह साधुभिर्व्यवसितम्। राज्ञा भणितम्—भगवन्! साधुना, नात्र सन्देहः। आचार्येण भणितम्—महाराज! यद्येवं तत एवं भविष्यति। अस्त्येक आगन्तुकः साधुः, तेनेदमनुष्ठितं भवेत्। राज्ञा भणितम्—भगवन्! कुत्र पुनः स साधुः।

चला गया। स्वाध्याय के निमित्त एकान्त में बैठ गया। दोनों वैसे ही निश्चेष्ट पड़े रहे। परिजनों ने देखा। जल सींचकर शीघ्र ही बात की, किन्तु उत्तर नहीं मिला। तब दोनों राजपुरोहितों ने निवेदन किया कि किसी साधु ने कुमारों के प्रति इस प्रकार का कार्य किया है। तब उन दोनों को देखकर राजा आचार्य के पास गया। उसने आचार्य को प्रणाम किया और बोला—"दोनों बालकों के इस अपराध को क्षमा करो।" आचार्य ने कहा—"यह कैसे हुआ, मैं नहीं जानता हूँ।" राजा ने उस वृत्तान्त को कहा। तब आचार्य ने कहा—"वीतराग शासन के सम्पादन में लगे हुए, उनके प्रभाव से परमार्थ को जानने वाले, परलोक से डरने वाले, इस लोक में शरीर से अत्यन्त निस्पृह होने के कारण साधु समस्त प्राणियों को क्षमा करते हैं प्राणों के भय से नहीं। तथापि कारण पाकर किसी ने ऐसा किया है तो मैं साधुओं से पूछता हूँ।" तब आचार्य ने साधुओं से पूछा। उन्होंने कहा—"भगवन्! हम लोग नहीं जानते हैं।" आचार्य ने कहा "महाराज! साधुओं ने यह नहीं किया होगा।" राजा ने कहा—"भगवन्! साधु ने किया, इसमें कोई सन्देह नहीं है।" आचार्य ने कहा—"महाराज! यह बात है तो ऐसा हुआ होगा। एक आगन्तुक साधु है, उसने यह किया होगा।" राजा ने कहा—"भगवन्! वह साधु कहाँ है?" आचार्य ने कहा—

---

1. रइपहावओ—ख, रयाणं—क। 2. आगंतुओ—क।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

आयरिएण भणियं—दंसेह से तयं। दंसिओ एगेण साहुणा नाइदूरम्मि चेव सालतरुवरसमीवे झाण- संठिओ त्ति। पच्चभिन्नाओ य राइणा। कुमारावराहलज्जिएण पणमिओ य णेणं। दिन्नो से धम्म- लाहो। भणिओ य पच्छा। भो महासावग, जुत्तमेयं जं तुज्झ संतिए रज्जे इसीणं कयत्थणा कुमा- राणं अणाहत्तणं[1] च। तओ बाहजलभरियलोयणेण राइणा भणियं—भयवं, लज्जिओ म्हि अहियं इमिणा पमायचरिएणं। अत्थि मम एस दोसो; तहावि भयवं करेह अणुग्गहं, संजोएह ते कुमारे। साहुणा भणियं—संजोएमि चरणगुणविहाणेणं न उण अन्नह त्ति। राइणा भणियं—भयवं, अणुमयं ममेयं, नवरं कुमारा पुच्छियव्व त्ति। साहुणा भणियं—लहुं पुच्छेह। राइणा भणियं—भयवं, न सक्केंति ते जंपिउं। साहुणा भणियं—एहि, तत्थेव वच्चामो; अहं जंपावेमि त्ति। आगया कुमाराण समीवं। दिट्ठा य णेहिं परमजोगिणो व्व निरुद्धसयलचेट्ठा कुमारा। आयत्तीकयं च तेसिं साहुणा वयणमेत्तं। पुच्छिया य णेणं—भो कुमारया, इसिकयत्थणापमायजणियकम्मतरुकुसुमुग्गमनुव्वरूवमेयं, फलं तु निरयाइवेयणा। ता जइ भे अत्थि पच्छायावो, ता[2] पवज्जह कम्मतरुमहाकुहाडं पव्वज्जं।

आचार्येण भणितम्—दर्शयतास्य तम्। दर्शित एकेन साधुना नातिदूरे एव सालतरुवरसमीपे ध्यान- संस्थित इति। प्रत्यभिज्ञातश्च राज्ञा। कुमारापराधलज्जितेन प्रणतश्च तेन। दत्तस्तस्य धर्मलाभः, भणितश्च पश्चात्—भो महाश्रावक! युक्तमेतद् यत् तव सत्के राज्ये ऋषीणां कदर्थना कुमाराणाम- नाथत्वं च। ततो बाष्पजलभृतलोचनेन राज्ञा भणितम्—भगवन्! लज्जितोऽस्मि अधिकमनेन प्रमादचरितेन। अस्ति ममैष दोषः, तथापि भगवन्! कुर्वनुग्रहम्, संयोजय तौ कुमारौ। साधुना भणितम्—संयोजयामि चरणगुणविधानेन न पुनरन्यथेति। राज्ञा भणितम्—भगवन्! अनुमतं ममैतद्, नवरं कुमारौ प्रष्टव्याविति। साधुना भणितम्—लघु पृच्छत। राज्ञा भणितम्—भगवन्! न शक्नुतस्तौ जल्पितुम्। साधुना भणितम्—एहि तत्रैव व्रजावः, अहं जल्पयामीति। आगतौ कुमारयोः समीपम्। दृष्टौ च ताभ्यां परमयोगिनाविव निरुद्धसकलचेष्टौ कुमारौ। आयत्तीकृतं च तयोः साधुना वचनमात्रम्। पृष्टौ च तेन—भोः कुमारौ! ऋषिकदर्थनाप्रमादजनितकर्मतरुकुसुमोद्गम- पूर्वरूपमेतत, फलं तु निरयादिवेदना। ततो यदि युवयोरस्ति पश्चात्तापः, ततः प्रपद्येथां कर्मतरुमहा-

'उसे दिखलाता हूँ।'' एक साधु ने समीप के ही साल वृक्ष के नीचे ध्यान लगाये हुए साधु को दिखाया। राजा ने पहचान लिया। उसने कुमारों के अपराध के कारण लज्जित होकर प्रणाम किया। उसे धर्मलाभ मिला। पश्चात् (साधु ने) कहा—"हे महाश्रावक! तुम्हारे जैसों के राज्य में ऋषियों का अपमान और कुमारों की स्वच्छन्द वृत्ति क्या उचित है?" तब आँखों में आँसू भरकर राजा ने कहा—"भगवन्! मैं इस प्रमाद के आचरण के कारण अत्यधिक लज्जित हूँ। मेरा यह दोष है तथापि भगवन्! अनुग्रह कीजिए। उन दोनों कुमारों को ठीक कर दीजिए।" साधु ने कहा—"यदि चारित्र धारण करें तो ठीक किये देता हूँ, दूसरे प्रकार से नहीं।" राजा ने कहा—"भगवन्! यह मुझे मंजूर है। हम दोनों कुमारों से कुछ पूछना चाहते हैं।" साधु ने कहा—"जल्दी पूछिए।" राजा ने कहा—"भगवन्! वे दोनों बात नहीं कर सकते हैं।" साधु ने कहा—"आओ, वहीं चलें, मैं बात कराता हूँ।" दोनों कुमारों के समीप आये। उन दोनों को परमयोगी के समान समस्त चेष्टाओं से रहित देखा। साधु के वचन मात्र से वे दोनों वशीभूत हो गये। साधु ने उन दोनों से पूछा (कहा)—ऋषि का अपमान करने के प्रमाद से उत्पन्न कर्मवृक्ष के पुष्पोद्गम का यह पूर्व रूप है और फल नरकादि वेदना है। तब यदि आप दोनों को पश्चात्ताप है तो कर्मवृक्ष के लिए बहुत

1. कुमाराण य अवुदत्तणं नि—क। 2. 'जइ य न नात्थ तिरिय मणुयदुक्खाण भायणो' इत्यधिकः—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोएमि अहं इमाओ उवद्दवाओ, भवामि य परलोयसाहणुज्जयाणं सहाओ त्ति। कुमारेहिं भणियं—भयवं, अणुग्गहो त्ति। लज्जिया अम्हे इमिणा पमायचरिएणं, अत्थि णे महंतो अणुयावो, पवज्जामो य पव्वज्जं जइ गुरू अणुजाणंति। तओ[1] अणुन्नाया गुरूहिं। संजोइया साहुणा अंगसंघाएण परमगुणसंघाएण य। तओ पवन्ना पव्वज्जं। परिणया य तेसिं समणगुणा। एवं च जहुत्तकारीणं अइक्कंतो कोइ कालो। ताणं च पुरोहियकुमारस्स कम्मोदएणं विइयजिणधम्मसारस्स वि 'बला इमिणा पव्वाविय' त्ति समुप्पन्नो गुरुपओसो। न निंदिओ णेणं नालोइओ गुरुणो। तओ मरिऊणं अहाउयक्खएण समुप्पन्नो ईसाणदेवलोए भुंजेइ दिव्वभोए। अइक्कंतो कोइ कालो रइसागरावगाढस्स।

अन्नया य वरच्छरापरिगयस्स मिलाणाइं सुरहिकुसुमदामाइं, पयम्पिओ कप्पपायवो, पणट्ठाओ हिरिसिरीओ, उवरत्ताइं[2] देवदूसाइं, समुप्पन्नो दीणभावो, उत्थरियं निद्दाए, विउडिओ कामरागो, भमडिया दिट्ठी, समुप्पन्नो कम्पो, वियंभिया अरइ त्ति। तओ तेण चिंतियं 'हंत, किमेयं' ति।

कुठारं प्रव्रज्याम्। मोचयाम्यहमस्मादुपद्रवात्, भवामि च 'परलोकसाधनोद्यतयोः सहाय इति। कुमारैर्भणितम्--भगवन्! अनुग्रह इति। लज्जितावावामनेन प्रमादचरितेन, अस्त्यावयोर्महाननुतापः, प्रपद्यावहे च प्रव्रज्यां यदि गुरवोऽनुजानन्ति। ततोऽनुज्ञातो गुरुभिः। संयोजितौ साधुना अङ्गसंघातेन परमगुणसंघातेन च। ततः प्रपन्नौ प्रव्रज्याम्। परिणताश्च तयोः श्रमणगुणाः। एवं च यथोक्तकारिणोरतिक्रान्तः कोऽपि कालः। तयोश्च पुरोहितकुमारस्य कर्मोदयेन विदितजिनधर्मसारस्यापि 'बलादनेन प्रव्राजितः' इति समुत्पन्नो गुरुप्रद्वेषः। न निन्दितस्तेन, नालोचितो गुरोः। ततो मृत्वा यथायुःक्षयेण समुत्पन्न ईशानदेवलोके भुङ्क्ते दिव्यभोगान्। अतिक्रान्तः कोऽपि कालो रतिसागरावगाढस्य।

अन्यदा च वराप्सरःपरिगतस्य म्लानि सुरभिकुसुमदामानि, प्रकम्पितः कल्पपादपः प्रनष्टे ह्रीश्रियौ, उपरक्तानि देवदूष्यानि, समुत्पन्नो दीनभावः, उत्स्तृतं (आक्रान्तं) निद्रया, विकुटितः (विनष्टः) कामरागः, भ्रान्ता दृष्टिः, समुत्पन्नः कम्पः, विजृम्भिता अरतिरिति। ततस्तेन चिन्तितम्

बड़ी कुल्हाड़ी के समान प्रव्रज्या धारण करो। मैं इस उपद्रव से मुक्त किये देता हूँ और परलोक का साधन करने के लिए उद्यत आप दोनों का सहायक होता हूँ।" दोनों कुमारों ने कहा—भगवन्! "यह अनुग्रह है। हम दोनों प्रमादपूर्वक किये हुए आचरण से लज्जित हैं, हमें बड़ा खेद है। यदि माता-पिता आज्ञा देते हैं तो हम प्रव्रज्या धारण करते हैं!" तब माता पिता ने आज्ञा दी। अंग को जोड़ तथा उत्कृष्ट गुणों से युक्त कर साधु ने ठीक कर दिया। फिर इन दोनों ने दीक्षा धारण की। उन दोनों में श्रमण के गुण प्रकट हुए। इस प्रकार मुनि-दीक्षा धारण किये हुए कुछ समय बीत गया। उन दोनों में एक पुरोहित कुमार के कर्मोदय से धर्म के सार को जानते हुए भी यह गुरु के प्रति द्वेष उत्पन्न हुआ कि इसने हमें बलात् प्रव्रजित किया है। उसने न तो गुरु की निन्दा की, न आलोचना की। तब आयु का क्षय हो जाने के कारण मरकर ईशान स्वर्ग में उत्पन्न हुआ और दिव्य भोगों को भोगा। रतिसागर में निमग्न हुए कुछ काल बीत गया।

एक बार उत्तम अप्सराओं से घिरे हुए उसकी सुगन्धित पुष्पों की माला म्लान पड़ गयी, कल्पवृक्ष कम्पित हुआ, ह्री और श्री नष्ट हो गयी, देववस्त्र म्लान पड़ गये। दीनभाव उत्पन्न हुआ, निद्रा से आक्रान्त हुआ, कामराग नष्ट हो गया, दृष्टि भ्रान्त हो गयी, कँपकँपाहट उत्पन्न हो गयी, अरति उत्पन्न हो गयी। तब उसने सोचा - हाय!

1. 'पुलोइओ राया साहुणो। तओ थाहिऊण संबंधियुत्तंतं इमस्स' इत्यधिक;—क। २. अवरत्ताई—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वियाणियाइं चवणलिंगाइं, विसण्णो हियएणं, विद्दाणो परियणो, विलवियं अच्छराहिं। तओ 'किमिमिणा मोहचेट्ठिएणं; पुच्छामि ताव भयवंतं पउमनाहं तित्थयरं, कहिं मे उववाओ, सुलहबोहिओ वा न व' त्ति समागओ पुव्वविदेहं। पणमिओ तेलोक्कनाहो पुच्छिओ य। सिट्ठं भयवया। उववाओ ते जम्बुद्दीवदाहिणद्धभरहे कोसम्बीए नयरीए। दुल्लहबोहिओ तुमं। संचिणियं तुमए गुरुपओसेण इमिणा पगारेण अबोहिबीयं। नीसेसमाचिक्खिओ पुव्वभववइयरो। तओ तेण चिंतियं—हंत एद्दहमेत्तस्स वि गुरुपडणीयभावस्स दारुणो विवागो त्ति। भयवया भणियं—भो देवाणुप्पिया, न एस थेवो। इह खलु इहलोगोवयारी वि कयन्नुणा बहु मन्नियव्वो, किमंग पुण परलोगोवयारी। परलोगोवयारिणो य गुरवो; जओ फेडंति मिच्छत्तवाहिं, पणासेंति अन्नाणतिमिरं, ठवेंति परमपयसाहियाए किरियाए, चोइंति खलिएसु, संथवेंति गुणरयणे। एवं च, देवाणुप्पिया, मोएंति जम्मजरामरणरोयसोयबहुलाओ संसारवासाओ, पावेंति सासयं सुहं सिद्धिं ति। ता एवंविहेसु वि पओसो गुणपओसभावेण नासेइ सम्मत्तं, जणेइ अन्नाणं, चालेइ साहुकिरियं। तओ य से जीवे तहाविह-

—'हन्त किमेतद्' इति। विज्ञातानि च्यवनलिङ्गानि, विषण्णो हृदयेन, विद्राणः परिजनः, विलपितमप्सरोभिः। ततः 'किमनेन मोहचेष्टितेन, पृच्छामि तावद् भगवन्तं पद्मनाभं तीर्थकरम्, कुत्र मे उपपातः, सुलभबोधिको वा न वा' इति समागतः पूर्वविदेहम्। प्रणतस्त्रैलोक्यनाथः पृष्टश्च। शिष्टं भगवता—उपपातस्ते जम्बूद्वीपदक्षिणार्धभरते कौशाम्ब्यां नगर्याम्। दुर्लभबोधिकस्त्वम्। संचितं त्वया गुरुप्रद्वेषेण अनेन प्रकारेणाबोधिबीजम्। निःशेषमाख्यातः पूर्वभवव्यतिकरः। ततस्तेन चिन्तितम्—हन्त एतावन्मात्रस्यापि गुरुप्रत्यनीकभावस्य दारुणो विपाक इति। भगवता भणितम्—भो देवानुप्रिय! नैष स्तोकः। इह खलु इहलोकोपकार्यपि कृतज्ञेन बहु मानयितव्यः, किमङ्ग पुनः परलोकोपकारी। परलोकोपकारिणश्च गुरवः, यतः स्फेटयन्ति मिथ्यात्वव्याधिम्, प्रणाशयन्ति अज्ञानतिमिरम्, स्थापयन्ति परमपदसाधिकायां क्रियायाम्, चोदयन्ति स्खलितेषु, संस्तुवन्ति (प्रशंसन्ति) गुणरत्नानि। एवं च देवानुप्रिय! मोचयन्ति जन्मजरामरणरोगशोकबहुलात्संसारवासात्, प्रापयन्ति शाश्वतं सुखं सिद्धिमिति। तत एवंविधेष्वपि प्रद्वेषो गुणप्रद्वेषभावेन नाशयति सम्यक्त्वम्, जनयत्यज्ञानम्,

यह क्या है? च्युत होने के चिह्नों को जाना, हृदय से दुःखी हुआ, परिजनों ने जागृत किया, अप्सराओं ने विलाप किया। तब इस मोहचेष्टा से क्या लाभ? भगवान् पद्मनाथ तीर्थंकर से पूछता हूँ, मैं कहाँ उत्पन्न होऊँगा, मुझे ज्ञान सुलभ होगा या नहीं? वह पूर्वविदेह क्षेत्र में आया। उसने त्रिलोकीनाथ को नमस्कार किया और पूछा। भगवान् ने कहा—"जम्बूद्वीप के दक्षिणार्द्ध भरत की कौशाम्बी नगरी में उत्पन्न होगे। तुम्हें बोधि प्राप्त होना कठिन है। गुरु के प्रति द्वेष के कारण तुमने अज्ञानरूपी बीज का संचय किया है।" पूर्वभव के सम्बन्ध में पूर्ण रूप से कहा। तब उसने सोचा—गुरु के प्रति इतने से विपरीत भाव रखने का दारुण फल होता है। भगवान् ने कहा—"यह थोड़ी बात नहीं है। इस संसार में जो उपकार करता है, उसके प्रति कृतज्ञ होकर उसे बहुत सत्कार देना चाहिए, किन्तु जो परलोक के प्रति भी उपकारी है, उसके विषय में तो कहना ही क्या! गुरु परलोक सम्बन्धी उपकार करने वाले होते हैं, क्योंकि मिथ्यात्व रूपी व्याधि को नष्ट कर देते हैं, अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करते हैं, परमपद की साधक क्रियाओं में स्थापित करते हैं, स्खलित होते हुए लोगों को प्रेरणा देते हैं, गुणरत्नों की प्रशंसा करते हैं। इस प्रकार हे देवानुप्रिय! सद्गुरु जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक की जिसमें अधिकता है ऐसे संसारवास से छुड़ा देते हैं, शाश्वत सुख की सिद्धि को प्राप्त करा देते हैं। ऐसे व्यक्ति के प्रति द्वेष रखना गुणों के प्रति द्वेष रखना है, इससे सम्यक्त्व का नाश होता है, अज्ञान उत्पन्न होता है, साधु-क्रियाओं में चंचलता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किलिट्ठपरिणामपरिणए खणमेत्तेणावि, देवाणुप्पिया, तहा बंधेइ कम्मं, जहा पावेइ अणेगभवियं मिच्छत्तमोहं ति। अओ चेव बेमि—

सम्मत्तनाणसहिया एगंतपमायवज्जिणो पुरिसा।
इहपरभवनिरवेक्खा तरंति[1] नियमेण भवजलहिं ॥ ५५३ ॥

न उण[2] सेस त्ति। देवेण चिंतियं। एवमेयं, न अन्नहा। ता न याणामि, किंपज्जवसाणो मे एसो अबोहिलाभो त्ति। भयवया भणियं—थेवनियाणो खु एसो; ता अणंतरभवे चेव भविस्सइ अवसाणं ति। देवेण भणियं—भयवं, कुओ सयासाओ। भयवया भणियं—मूयगावरनामाओ नियमाउणो त्ति। देवेण भणियं—भयवं, किं पुण तस्स पढमनामं, केण वा कारणेण इमं से दुइयं ति। भयवया भणियं—सुण—

पढमनामं से असोगदत्तो; मूयगो पुण इमेणं कारणेणं। इमीए चेव कोसंबीए अईयसमयम्मि तावसो नाम सेट्ठी अहेसि। सो य दाणाइकिरियासमेओ[3] वि पमाई, बहुविहवसंपन्नो वि निच्च-

चालयति साधुक्रियाम्। ततश्च स जीवस्तथाविधक्लिष्टपरिणामपरिणतः क्षणमात्रेणापि देवानुप्रिय! तथा बध्नाति कर्म यथा प्राप्नोत्यनेकभविकं मिथ्यात्वमोहमिति। अत एव ब्रवीमि—

सम्यक्त्वज्ञानसहिता एकान्तप्रमादवर्जिनः पुरुषाः।
इहपरभवनिरपेक्षास्तरन्ति नियमेन भवजलधिम् ॥ ५५३ ॥

न पुनः शेषा इति। देवेन चिन्तितम्—एवमेतद्, नान्यथा। ततो न जानामि किंपर्यवसानो मे एषोऽबोधिलाभ इति। भगवता भणितम्—स्तोकनिदानः खल्वेषः, ततोऽनन्तरभवे एव भविष्यति अवसानमिति। देवेन भणितम्—भगवन्! कुतः सकाशात्। भगवता भणितम्—मूकापरनाम्नो निजभ्रातुरिति। देवेन भणितम्—भगवन्! किं पुनस्तस्य प्रथमनाम, केन वा कारणेनेदं तस्य द्वितीयमिति। भगवता भणितम्—शृणु—

प्रथमनाम तस्याशोकदत्तः, मूकः पुनरनेन कारणेन। अस्यामेव कौशाम्ब्यामतीतसमये तापसो नाम श्रेष्ठ्यासीत। स च दानादिक्रियासमेतोऽपि प्रमादी, बहुविभवसम्पन्नोऽपि नित्यव्यापृतः। तत

पैदा करता है। इस प्रकार हे देवानुप्रिय! वह जीव उस प्रकार के क्लिष्ट परिणामों के फलस्वरूप क्षणमात्र में उस प्रकार के कर्म का बन्धन करता है, जो अनेक भव तक मिथ्यात्व-मोह को प्राप्त कराता है। अतएव कहता हूँ—

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानसहित एकान्त रूप से जिन्होंने प्रमाद का परित्याग कर दिया है ऐसे इहभव और परभव से निरपेक्ष पुरुष नियम से संसार-समुद्र को पार करते हैं ॥ ५५३ ॥

शेष व्यक्ति संसार-समुद्र को नहीं पार करते हैं। देव ने सोचा—ऐसा ही है, अन्यथा नहीं है। अतः मैं नहीं जानता हूँ, मेरे इस अज्ञान की समाप्ति कब होगी? भगवान् ने कहा—"इसका कारण छोटा-सा (थोड़ा-सा) है, अतः दूसरे भव में ही इसकी समाप्ति होगी।" देव ने कहा—"किसके साथ?" भगवान् ने कहा—"जिसका दूसरा नाम मूक है ऐसे अपने भाई के साथ।" देव ने पूछा—"भगवन्! उसका पहला नाम क्या है? किस कारण से उसका दूसरा नाम है?" भगवान् ने कहा—"सुनो—"

उसका पहला नाम अशोकदत्त है और मूक इस कारण से है - इसी कौशाम्बी में प्राचीन समय में तापस नामक श्रेष्ठी था। वह दानक्रियाओं से युक्त होते हुए भी प्रमादी तथा बहुत वैभवयुक्त होते हुए भी सदैव किसी

1. निस्थरंति भवन्नवं—क। २. तुण—क। ३. समेतो—ख।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वावडो। तओ अट्टज्झाणदोसेण मरिऊण समुप्पन्नो नियगेहम्मि चेव सूयरो। जायं से पुव्वोवभुत्त-पएसावलोयणेणं जाईसरणं। अन्नया य उवट्ठिए पिइदिवसए सिद्धपाए भोयणे समासन्नाए परिवेसण-वेलाए अवहरियमज्जारमंसाए सूवयारीए वेलाइक्कमगिहवइभएणं मंसनिमित्तं पच्छन्नमेव वावाइऊण विससिओ कोलो। तहा कोहाभिभूओ य मरिऊण समुप्पन्नो तम्मि चेव गेहे भुयंगमत्ताए त्ति। तत्थ वि तं चेव दट्ठूण हम्मियं तं च सूवयारिं भयसंभमाभिभूयस्स परिणामविसेसओ समुप्पन्नं से जाइ-सरणं। विचित्तयाए कम्मपरिणामस्स न गहिओ कसाएहिं, अणुगंपियं च णेणं। एत्थंतरम्मि उवलद्धो सूवयारीए[1]। तओणाए कओ कोलाहलो 'सप्पो सप्पो' त्ति। तं च सोऊण समागया मोग्गरवावड-ग्गहत्था कम्मयरा। वावाइओ णेहिं। समुप्पन्नो य तहा अकामनिज्जराए मरिऊण नियपुत्तस्स चेव नागदत्ताभिहाणस्स बंधुमईए भारियाए कुच्छिंसि पुत्तत्ताए त्ति। जाओ उचियसमएणं। कयं च से नामं असोगदत्तो त्ति। तओ अइक्कंतसंवच्छरस्स तं चेव सूवयारिं पेच्छिय जणणिजणए य अचिंतयाए कम्मसामत्थस्स समुप्पन्नं से जाईसरणं। चिंतियं च णेणं– वहुया जणणी सुओ चेव य पिया। अओ

आर्तध्यानदोषेण मृत्वा समुत्पन्नो निजगेहे एव शूकरः। जातं तस्य पूर्वोपभुक्तप्रदेशावलोकनेन जाति-स्मरणम्। अन्यदा चोपस्थिते पितृदिवसे सिद्धप्राये भोजने समासन्नायां परिवेषणवेलायां अपहृत-मार्जारमांसया (मार्जारापहृतमांसया) सूपकार्या वेलातिक्रमगृहपतिभयेन मांसनिमित्तं प्रछन्नमेव व्यापाद्य विशस्तः (पाचितः) कोलः। तथा क्रोधाभिभूतश्च मृत्वा समुत्पन्नस्तस्मिन्नेव गेहे भुजङ्ग-मतयेति। तत्रापि च तमेव दृष्ट्वा हर्म्ये तां च सूपकारीं भयसम्भ्रमाभिभूतस्य परिणामविशेषतः समुत्पन्नं तस्य जातिस्मरणम्। विचित्रतया कर्मपरिणामस्य न गृहीतः कषायैः। अनुकम्पितं च तेन। अत्रान्तरे उपलब्धः सूपकार्या। ततोऽनया कृतः कोलाहलः 'सर्पः सर्पः' इति। तं च श्रुत्वा समागता मुद्गरव्यापृताग्रहस्ताः कर्मकराः। व्यापादितस्तैः। समुत्पन्नश्च तथाऽकामनिर्जरया मृत्वा निजपुत्र-स्यैव नागदत्ताभिधानस्य बन्धुमत्या भार्यायाः कुक्षौ पुत्रतयेति। जात उचितसमयेन। कृतं च तस्य नाम अशोकदत्त इति। ततोऽतिक्रान्तसंवत्सरस्य तामेव सूपकारीं प्रेक्ष्य जननीजनकौ चाचिन्त्यतया कर्मसामर्थ्यस्य समुत्पन्नं तस्य जातिस्मरणम्। चिन्तितं च तेन—वधूर्जननी, सुत एव च पिता। अतः

न किसी कार्य में लगा रहता था। तब आर्तध्यान के दोष से मरकर अपने ही घर सुअर हुआ। पहले भोगे हुए स्थानों के देखने से उसे जातिस्मरण हो गया। एक बार पितृदिवस उपस्थित होने पर भोजन करते समय बिल्ली द्वारा मांस ले जाने के कारण, रसोइया ने देर हो जाने के कारण गृहस्वामी के भय से मांस के निमित्त छिपाकर मार दिया और पका दिया। सुअर क्रोधित होकर मरा और अपने ही घर में काला साँप हुआ। पुनः उसी भवन और उसी रसोइन को देखकर भय और घबराहट से अभिभूत होकर उसे जातिस्मरण हो गया। कर्म के परिणामों की विचित्रता से उसने कषाय नहीं की। उसने दया की। इसी बीच रसोइन आयी। तब इसने (रसोइन ने) कोलाहल किया। 'साँप, साँप।' उसे सुनकर, जिनके हाथ में मुद्गर थे, ऐसे नौकर आये। उन लोगों ने उसे मार दिया। अकामनिर्जरा से मरकर अपने ही पुत्र नागदत्त के यहाँ उसकी बन्धुमती नामक भार्या की कोख में पुत्र के रूप में आया। उचित समय पर उत्पन्न हुआ। उसका नाम अशोकदत्त रखा गया। एक वर्ष बीत जाने पर उसी रसोइन और माता-पिता को देखकर कर्म की सामर्थ्य की अचिन्त्यता से उसे जातिस्मरण हो गया। उसने सोचा--बहू माता है, पुत्र ही पिता है, अतः खिलौने के समान संसार-निवास को धिक्कार है। अब मैं कैसे

---

1. तओ मोग्गरवावडग्गहत्था आगया कम्म—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पेच्छगयसमाणस्स[1] धिरत्थु संसारवासस्स । ता कहमहं बहुयं चेव जणणिं सुयं च तायं वाहरेमि त्ति। पडिवन्नं मूयगवयं । जाओ लोयवाओ अहो एस मूयगो ति। एवं च अइक्कंता दुवालस संवच्छरा। समागओ तत्थ चउणाणाइसयसंपन्नो मेहनाओ नाम मुणिवरो। मुणिओ य से अणेण हिययभावो। पेसिओ वयणविन्नासकुसलो सुमंगलाभिहाणो इसो नागदेवगेहं, भणिओ य एसो —वत्तव्वओ तए तत्थ गिहालिंदगनिविट्ठो[2] असोगदत्तो । जहा, भो कुमारया, पेसिओ म्हि गुरुणा, सो य एवं भणाइ—

तावस किमिणा मूणव्वएण पडिवज्ज जाणिउं धम्मं ।
मरिऊण सूअरोरग जाओ पुत्तस्स पुत्तो त्ति ॥ ५५४ ॥

तओ 'जं भयवं आणवेइ' त्ति भणिऊण गओ सो रिसी। साहिओ गुरुसंदेसओ। पणामपुव्वयं भणियं च णेणं—भयवं, कत्थ सो गुरू। इसिणा भणियं—कुमार, सक्कावयारे चेइयम्मि। तेण भणियं—एहि, गच्छम्ह विम्हिओ मूयगपरियणो। चिंतियं च णेणं—अहो सामत्थं भयवओ; ता जाउ एसो, कयाइ सोहणयरं भवे। गओ मेहनायगुरुसमीवं। वंदिओ गुरु। धम्मलाहिओ गुरुणा। पुच्छिओ

प्रेक्षणकसमानस्य धिगस्तु संसारवासस्य । ततः कथमहं वधूमेव जननीं सुतं च तातं व्याहरामीति । प्रतिपन्नं मूकव्रतम् । जातो लोकवादः 'अहो एष मूकः' इति। एवं चातिक्रान्ता द्वादश संवत्सराः । समागतस्तत्र चतुर्ज्ञानातिशयसम्पन्नो मेघनादो नाम मुनिवरः । ज्ञातश्च तस्यानेन हृदयभावः प्रेषितो वचनविन्यासकुशलः सुमङ्गलाभिधान ऋषिर्नागदेवगेहम्, भणितश्चैषः । वक्तव्यस्त्वया तत्र गृहालिन्दकनिविष्टोऽशोकदत्तः । यथा भो कुमार ! प्रेषितोऽस्मि गुरुणा, स चैवं भणति—

तापस ! किमनेन मौनव्रतेन प्रतिपद्यस्व ज्ञात्वा धर्मम् ।
मृत्वा सूकरोरगौ, जातः पुत्र पुत्रस्य इति ॥ ५५४ ॥

ततो 'यद् भगवान् आज्ञापयति' इति भणित्वा गतः स ऋषिः । कथितो गुरुसन्देशकः । प्रमाणपूर्वकं भणितं च तेन भगवन् ! कुत्र स गुरुः ऋषिणा भणितम् —कुमार ! शक्रावतारे चैत्ये । तेन भणितम्—एहि, गच्छावः । विस्मितो मूकपरिजनः । चिन्तितं च तेन—अहो सामर्थ्यं भगवतः, ततो यातु एषः, कदाचित् शोभनतरं भवेत् । गतो मेघनादगुरुसमीपम् । वन्दितो गुरुः । धर्मलाभितो

बहू को ही माता और पुत्र को ही पिता कहूँ ? उसने मौन व्रत धारण कर लिया । लोगों में चर्चा फैल गयी—अरे यह गूँगा है । इस प्रकार बारह वर्ष बीत गये । उस स्थान पर चार ज्ञानों के अतिशय से सम्पन्न मेघनाद नामक मुनिवर आये । उन्होंने इसके हृदय के भावों को जाना । वचनों के विन्यास में कुशल सुमंगल नाम के ऋषि को नागदेव के घर भेजा । इससे कहा—तुम जाकर घर के बाहरी द्वार वाले प्रकोष्ठ में बैठे हुए अशोकदत्त से कहो कि हे कुमार ! मुझे गुरु ने भेजा है, वह ऐसा कहते हैं—

'तापस ! यह मौन व्रत व्यर्थ है, धर्म को जानकर उसकी शरण में जाओ । (तुम) मरकर सूकर, सर्प और पुत्र के पुत्र हुए ।' ॥ ५५४ ॥

तब 'जो भगवान् आज्ञा दें'—ऐसा कहकर वह ऋषि चला गया । गुरु के सन्देश को कहा । उसने प्रणामपूर्वक कहा—"भगवन् ! वे गुरु कहाँ हैं ?" ऋषि ने कहा—"कुमार ! शक्रावतार के चैत्य में हैं ।" उसने कहा—"आओ, हम दोनों चलें ।" गूँगे के परिजन विस्मित हुए । उसने सोचा—भगवान् की सामर्थ्य अचिन्तनीय है । अतः इसे जाने दो । कदाचित् और उत्कृष्ट हो जाय । (यह) मेघनाद गुरु के समीप गया । गुरु की वन्दना की । गुरु ने धर्मलाभ

---

१. नडपेच्छणय—क । २. अलिन्दकः—बहिर्द्वारप्रकोष्ठकः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असोगदत्तेणं—भयवं, कहं पुण तुमं मईयं वुत्तंतं जाणासि । तेण भणियं—नाणबलेणं ति । 'अहो ते नाणाइसओ' त्ति विम्हिओ असोगदत्तो । तओ 'भयवया[1] "पडिबुज्झिस्सइ[2]' त्ति नाऊण कहिओ से धम्मो । पडिबुद्धो एसो । पुव्ववासणाए य नावगयं से मूयगाभिहाणं । ता एएण कारणेण इमं से दुइयं नामं ति ।

एवं च सिट्ठे समुप्पन्नो से पमोओ । पुच्छिओ य भयवं—अह कहिं केण वा पगारेणं अहं संबुज्झिस्सं ति । भयवया भणियं—वेयड्ढपव्वए नियकुंडलजुवलपदरिसणेणं भविस्सइ ते पडिबोहो । तओ वंदिऊण भयवंतं गओ कोसंबि नर्यारं । दिट्ठो मूयगो, साहिओ से वुत्तंतो, जहा उप्फालिओ भयवया । सबहुमाणं[3] हत्थे गेण्हिऊण भणिओ य एसो । ता अवस्समहं तए पडिबोहियव्वो त्ति । तेण भणियं—जइस्समहं जहासत्तीए । तओ तेण नीओ वेयड्ढपव्वयं, दंसियं सिद्धाययणकूडं । भणिओ य एसो—भो मम दुवे चेव अच्चंतपियाणि एत्थ जम्मम्मि, इमं सिद्धाययणकूडं रयणावयंसगाभिहाणं च कुंडल जुयलं ति । ता चिट्ठउ इमं इहं कायव्वं तए पुव्वकहियं ति ।[4] निमियं सिलासंघायविवरेगदेसे

गुरुणा । पृष्टोऽशोकदत्तेन—भगवन् ! कथं पुनस्त्वं मदीयं वृत्तान्तं जानासि । तेन भणितम्—ज्ञानबलेनेति । 'अहो ते ज्ञानातिशयः' इति विस्मितोऽशोकदत्तः । ततो भगवता 'प्रतिभोत्स्यते' इति ज्ञात्वा कथितस्तस्य धर्मः । प्रतिबुद्ध एषः । पूर्ववासनया च नापगतं तस्य मूकाभिधानम् । तत एतेन कारणेनेदं तस्य द्वितीयं नामेति ।

एवं च शिष्टे समुत्पन्नस्तस्य प्रमोदः । पृष्टश्च भगवान्, अथ कुत्र केन वा प्रकारेणाहं सम्भोत्स्यामीति । भगवता भणितम्—वैताढ्यपर्वते निजकुण्डलयुगलदर्शनेन भविष्यति ते प्रतिबोधः । ततो वन्दित्वा भगवन्तं गतः कौशाम्बीं नगरीम् । दृष्टो मूकः, कथितस्तस्य वृत्तान्तः, यथा कथितो भगवता । सबहुमानं हस्ते गृहीत्वा भणितश्चैषः । यतोऽवश्यमहं त्वया प्रतिबोधितव्य इति । तेन भणितम्—यतिष्येऽहं यथाशक्ति । ततस्तेन नीतो वैताढ्यपर्वतम्, दर्शितं सिद्धायतनकूटम् । भणितश्चैषः—भो ! मम द्वावेवात्यन्तप्रियावत्र जन्मनि, इदं सिद्धायतनकूटं रत्नावतंसकाभिधानं च कुण्डलयुगलमिति । ततस्तिष्ठतु इदमिह, कर्तव्यं त्वया पूर्वकथितमिति । न्यस्तं शिलासङ्घातविवरैकदेशे

दिया । अशोकदत्त ने पूछा—"भगवन् ! तुम मेरे वृत्तान्त को कैसे जानते हो ?" उसने कहा—"ज्ञान बल से । 'अहो आपके ज्ञान का प्रकर्ष'—इस प्रकार अशोकदत्त विस्मित हुआ । तब भगवान् ने 'यह प्रतिबुद्ध हो जायगा' ऐसा जानकर इसे धर्म का स्वरूप समझाया । यह प्रतिबुद्ध हो गया । पहले के संस्कार के कारण उसका 'मूक' यह नाम नहीं मिटा । अतएव इस कारण यह उसका दूसरा नाम है ।

ऐसा कहे जाने पर उसे हर्ष उत्पन्न हुआ । (उसने) भगवान् से पूछा—"मैं कहाँ पर और किस प्रकार से बोध प्राप्त करूँगा ?" भगवान् ने कहा—"वैताढ्य पर्वत पर अपने दोनों कुण्डल देखकर तुम्हें प्रतिबोध होगा ।" तब भगवान् की वन्दना कर कौशाम्बी नगरी गया । 'मूक' को देखा । जैसा भगवान् ने कहा था वैसा वृत्तान्त उससे कहा । सम्मानपूर्वक हाथ में हाथ लेकर इसने कहा—"तो अवश्य ही मुझे तुमसे प्रतिबोधित होना चाहिए ।" उसने कहा—"मैं यथाशक्ति कोशिश करूँगा ।" तब वह वैताढ्यपर्वत पहले गया, सिद्धायतन कूट को दिखाया । इसने कहा—"अरे ! इस जन्म में मेरे दो ही प्रिय हैं । यह सिद्धायतन कूट और रत्नावतंस नाम का कुण्डल । तब यहाँ बैठो, जैसा तुमने पहले कहा था, वैसा करो ।" शिलाओं की खोल के एक भाग में दोनों कुण्डलों

१. भगवया—क । २. पडिबुज्झइ—क । ३. हत्थेणं—क । ४. निम्मियं—ख ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुंडलजुयलं, समप्पियं च इमस्स चितामणिरयणं। भणिओ य एसो—एयं खु चिंतामेत्तपडिवन्नसहायभावं साहेइ इहलोयपडिवद्धं एगदिवसे एगपओयणं। ता एयसामत्थओ वेयड्ढगमणमणुचिट्ठियव्वं ति। पडिवन्नमणेण। आगया कोसम्बि। गओ देवो नियविमाणं। वावन्नो कालक्कमेणं। समुप्पन्नो बंधुमईकुच्छीए। जाओ से सरयसमयम्मि सहयारेसु दोहलो। असंपज्जमाणे य तम्मि समुप्पन्ना से अरई, पव्वायं वयणकमलं, पीडिओ गब्भो, संजायं किसकृत्तणं। एत्थंतरम्मि पयट्टो लोयवाओ। अहो एसा असंपाडियदोहला[1] न जीवइ त्ति। तओ माइनेहमोहिएणं असोगदत्तेणं 'न तित्थयरभासियं निप्फलं,[2] ता भविस्सइ, न अन्नहा वि वेयड्ढगमणं' ति चिंतिऊण चिंतियाइं चिंतामणिरयणसन्निहाणम्मि सहयाराइं। समुप्पन्नाणि य इमाइं। संपाडिओ दोहलो। पसूया एसा। जाओ य से दारओ। कयं च से नामं अरहदत्तो त्ति।

पत्तो य बालभावं। तओ सो असोगदत्तो नेइ तं साहुसमीवं, पाडेइ चलणेसु, रुयइ य तओ। एवं च अइक्कंतो कोइ कालो। पत्तो कुमारभावं। साहिओ णेण जिणभासिओ धम्मो, न परिणो य

कुण्डलयुगलम्, समर्पितं चास्य चिन्तामणिरत्नम्। भणितश्चैषः। एतत्खलु चिन्तामात्रप्रतिपन्नसहायभावं साधयति इहलोकप्रतिबद्धमेकदिवसे एकप्रयोजनम्। तत एतत्सामर्थ्यतो वैताढ्यगमनमनुष्ठातव्यमिति। प्रतिपन्नमनेन। आगतौ कौशाम्बीम्। गतो देवो निजविमानम्। व्यापन्नः कालक्रमेण। समुत्पन्नो बन्धुमतीकुक्षौ। जातस्तस्य शरत्समये सहकारेषु दोहदः। असम्पद्यमाने च तस्मिन् समुत्पन्ना तस्या अरतिः, म्लानं वदनकमलम्, पीडितो गर्भः, सञ्जातं कृशत्वम्। अत्रान्तरे प्रवृत्तो लोकवादः, अहो एषाऽसम्पादितदोहदा न जीवतीति। ततो मातृस्नेहमोहितेनाशोकदत्तेन 'न तीर्थंकरभाषितं निष्फलम्, ततो भविष्यति, नान्यथाऽपि वैताढ्यगमनम्' इति चिन्तयित्वा चिन्तितानि चिन्तामणिरत्नसन्निधाने सहकाराणि। समुत्पन्नानि चेमानि। सम्पादितो दोहदः। प्रसूतैषा। जातश्च तस्या दारकः। कृतं च तस्य नाम अर्हद्दत्त इति।

प्राप्तश्च बालभावम्। ततः सोऽशोकदत्तो नयति तं साधुसमीपम्, पातयति चरणयोः, रोदिति च ततः। एवं चातिक्रान्तः कोऽपि कालः। प्राप्तः कुमारभावम्। कथितस्तेन जिनभाषितो धर्मः, न

को रख दिया और इसे चिन्तामणि रत्न समर्पित कर दिया। इसने कहा—"यह विचार करने मात्र से सहायता करता है। इहलोकवासी का एक दिन में एक प्रयोजन सिद्ध करता है। अतः इसकी सामर्थ्य से वैताढ्यगमन करना चाहिए।" इसके द्वारा वैताढ्य पर गया। दोनों कौशाम्बी नगरी में आये। देव अपने विमान को चला गया। कालक्रम से (देव) मर गया। बन्धुमती के गर्भ में आया। उसे शरत्काल में आम का दोहला उत्पन्न हुआ। उसके पूरा न होने पर इसे अरति उत्पन्न हुई, मुखकमल म्लान पड़ गया, गर्भ पीड़ित हो गया, दुर्बलता उत्पन्न हुई। लोगों में यह चर्चा फैली—'इसका मनोरथ पूरा नहीं हुआ तो यह जीवित नहीं रहेगी।' तब माता के स्नेह से मोहित अशोकदत्त ने कहा—"तीर्थंकर की वाणी निष्फल नहीं होती है, अतः होकर रहेगी।" वैताढ्य गमन भी निरर्थक नहीं हुआ—ऐसा सोचकर चिन्तामणि रत्न के समीप आमों का चिन्तवन किया। ये (आम) उत्पन्न हो गये। दोहद पूरा हो गया। इसने प्रसव किया। उसके पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम अर्हद्दत्त रखा।

बाल्यावस्था को प्राप्त हुआ। तब अशोकदत्त उसे साधु के समीप ले गया। प्रणाम करवाया, तब वह रोने लगा। इस प्रकार कुछ समय बीत गया। कुमारावस्था को प्राप्त हुआ। उसे जिनभाषित धर्म की शिक्षा दी गयी, पुनः

१. डोहला—क। २. निप्फलं भविस्सइ—ख।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्स। पुणो वि साहिओ, पुणो वि न परिणओ त्ति। एवं च अइक्कंतो कोइ कालो। पुणो वि कहिओ असोगदत्तेण पुव्वभववइयरो, न परिणओ य अरहयत्तस्स। भणिओ य णेणं—असोगदत्तो! किमि-मिणा पलविएणं ति। तओ सो एयवइयरेणेव 'अहो सामत्थं कम्मपरिणईए' त्ति चिंतिऊण पडिवन्नो समणलिंगं। अरहदत्तेण वि य परिणीयाओ चत्तारि सेट्ठिदारियाओ। भुंजमाणस्स पवरभोए अइक्कंतो कोइ कालो।

तओ परिवालिऊणमणइयारं सामण्णं अहाउयस्स खएण देवलोयमुवगओ असोयदत्तो। सुयं च णेणं—जहा असोगदत्तसमणगो पंचत्तमुवगओ त्ति। तओ समुब्भूओ अरहदत्तस्स सोगो। कयं उद्ध-देहियं। समुप्पन्नो य सो बंभलोए। दिन्नो उवओगो, विन्नाओ य ओहिणा अरहदत्तवइयरो। आभोइयं च णेणं 'न एस एवं पडिबुज्झइ' त्ति। पत्थुओ उवाओ। अयडम्मि चेव समुप्पाइओ से वाही। संजायं जलोयरं, परिसुक्काओ भुयाओ, सूणं चलणजुयलं, मिलाणाइं लोयणाइं, जड्डिया जीहा, पणट्ठा निद्दा, उवगया अरई, समुब्भूया महावेयणा। विसण्णो य एसो। सद्दाविया वेज्जा। उवन्नत्थं

परिणतश्च तस्य। पुनरपि कथितः, पुनरपि न परिणत इति। एवं चातिक्रान्तः कोऽपि कालः। पुनरपि कथितोऽशोकदत्तेन पूर्वभवव्यतिकरः, न परिणतश्चार्हद्दत्तस्य। भणितश्च तेनाशोकदत्तः किमनेन प्रलपितेनेति। ततः स एतद्व्यतिकरेणैव 'अहो सामर्थ्यं कर्मपरिणतेः' इति चिन्तयित्वा प्रतिपन्नः श्रमणलिङ्गम्। अर्हद्दत्तेनापि च परिणीताश्चतस्रः श्रेष्ठिदारिकाः। भुञ्जानस्य प्रवरभोगान् अतिक्रान्तः कोऽपि कालः।

ततः परिपाल्यानतिचारं श्रामण्यं यथायुष्कस्य क्षयेण देवलोकमुपगतोऽशोकदत्तः। श्रुतं च तेन, यथाऽशोकदत्तश्रमणः पञ्चत्वमुपगत इति। ततः समुद्भूतोऽर्हद्दत्तस्य शोकः। कृतमौर्ध्वदेहिकम्। समुत्पन्नश्च स ब्रह्मलोके। दत्त उपयोगः। विज्ञातश्चावधिना अर्हद्दत्तव्यतिकरः। आभोगितं च तेन 'नैष एवं प्रतिबुध्यते' इति। प्रस्तुत उपायः। अकाण्ड एव समुत्पादितस्तस्य व्याधिः। सञ्जातं जलोदरम्, परिशुष्कौ भुजौ, शूनं (शोथवत्) चरणयुगलम्, म्लाने लोचने, जडा जिह्वा, प्रनष्टा निद्रा, उपगताऽरतिः, समुद्भूता महावेदना। विषण्णश्चैषः। शब्दायिता वैद्याः। उपन्यस्तं सर्वसारम्।

कोई परिवर्तन नहीं आया। इस प्रकार कुछ समय बीत गया। अशोकदत्त ने पूर्वभव का सम्बन्ध कहा, फिर भी अर्हद्दत्त नहीं बदला। उसने अशोकदत्त से कहा कि इस प्रकार प्रलाप करने से क्या! तब वह इसी आघात से 'अहो कर्मों की सामर्थ्य' ऐसा सोचकर मुनि बन गया। अर्हद्दत्त ने चार श्रेष्ठ कन्याएँ विवाहीं। उत्कृष्ट भोगों को भोगते हुए कुछ समय व्यतीत हो गया।

तब श्रामण्य (मुनिधर्म) का निरतिचार पालन करते हुए आयुक्षय होने पर अशोकदत्त स्वर्ग चला गया। अर्हद्दत्त ने सुना कि अशोकदत्त श्रमण पंचत्व को प्राप्त हो गया। तब अर्हद्दत्त को शोक उत्पन्न हुआ। अन्त्येष्टि कर्म किया। वह (अशोकदत्त) ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ। (उसने) ध्यान लगाया। अवधिज्ञान से अर्हद्दत्त के सम्बन्ध में जाना है। उसने सोचा कि 'यह इस प्रकार प्रतिबोध को प्राप्त नहीं होता है', (तब उसने) उपाय प्रस्तुत किया। असमय ने ही उसके व्याधि (रोग) उत्पन्न कर दी। (उसे) जलोदर हो गया, दोनों भुजाएँ सूख गयीं, दोनों पैर सूज गये, नेत्र म्लान पड़ गये, जीभ जड़ हो गयी, नींद नष्ट हो गयी, अरति को प्राप्त हो गया, महावेदना उत्पन्न हुई। यह दुःखी हुआ। (उसने) वैद्यों को बुलवाया, सारी बात सामने रख दी। उसने कहा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वसारं। भणियं च णेण –अवहर एयं वेयणं। पउत्ताइं ओसहाइं; न जाओ से विसेसो। पच्चक्खाओ वेज्जेहिं। तओ वेयणाइसयमोहिएण भणियं—न चएमि एयं अणेगतिव्ववेयणाभिभूयं दिवससेत्तमवि सरीरगं धारेउं। ता देह मे कट्ठाणि, पविसामि जलणं ति। एयं सोऊण विद्दाणा बंधवा, मुच्छियाओ पत्तीओ, परोविओ परियणो। एत्थंतरम्मि सो देवो सबरवेज्जरूवं काऊण गहियगोणत्तओ आगओ कोसंबिं। उग्घोसियं च णेणं अरहदत्तघरसमीवे—अहं खु सबरवेज्जो फेडेमि सीसवेयणं, सुणावेमि बहिरं, अवणेमि तिमिरं, पणासेमि खसरं, उम्मूलेमि मलवाहिं, पसमेमि सूलं, नासेमि जलोयरं ति। एयं सोऊण सद्दिओ सबहुमाणं। भणिओ य से परियणेणं—भद्द, अवणेहि इमस्स महोयरं; जं मग्गियं दिज्जइ त्ति। तेण भणियं—धम्मवेज्जो अहं, न उण अत्थलोलुओ; ता अलं मे अत्थेणं। किंतु किच्छसज्झो एस वाही, न सुहेणं अवेइ। एत्थ खलु परिहरियव्वं नियाणं, सेवियव्वो पडिवक्खो। नियाणं च दुविहं हवइ, इहलोइयं पारलोइयं च। तत्थ इहलोइयं अवच्छासेवणजणिओ वायाइधाउक्खोहो, पारलोइयं पावकम्मं। तत्थ 'इहलोइयं पि न पारलोइयसंबंधमंतरेणं' ति पारलोइयं परिहरि-

---

भणितं च तेन—अपहरैतां वेदनाम्। प्रयुक्तान्यौषधानि, न जातस्तस्य विशेषः। प्रत्याख्यातो वैद्यैः। ततो वेदनातिशयमोहितेन भणितम्—न शक्नोम्येतदनेकतीव्रवेदनाभिभूतं दिवसमात्रमपि शरीरकं धारयितुम्। ततो दत्त मे काष्ठानि, प्रविशामि ज्वलनमिति। एतच्छ्रुत्वा विद्राणा बान्धवाः, मूर्च्छिताः पत्न्यः, प्ररुदितः परिजनः। अत्रान्तरे स देवः शबरवैद्यरूपं कृत्वा गृहीतगोणीत्रय आगतः कौशाम्बीम्। उद्घोषितं च तेन अर्हद्दत्तगृहसमीपे। अहं खलु शबरवैद्यः स्फेटयामि शीर्षवेदनाम्, श्रावयामि बधिरम्, अपनयामि तिमिरम्, प्रणाशयामि खसम् (कच्छूम्), उन्मूलयामि मलव्याधिम्, प्रशमयामि शूलम्, नाशयामि जलोदरमिति। एतच्छ्रुत्वा शब्दितः सबहुमानम्, भणितश्च स परिजनेन—भद्र! अपनयास्य महोदरम्, यन्मार्गितं दीयते इति। तेन भणितम्—धर्मवैद्योऽहम्, न पुनरर्थलोलुपः, ततोऽलं मेऽर्थेन। किन्तु कृच्छ्रसाध्य एष व्याधिः, न सुखेनापैति। अत्र खलु परिहर्तव्यं निदानम्, सेवितव्यः प्रतिपक्षः। निदानं च द्विविधं भवति—ऐहलौकिकं पारलौकिकं च। तत्रैहलौकिकमपथ्यासेवनजनितो वातादिधातुक्षोभः, पारलौकिकं पापकर्म। तत्र 'ऐहलौकिकमपि न पारलौकिकसम्बन्ध-

---

इस वेदना को दूर करो। औषधियों का प्रयोग किया गया, उससे कुछ लाभ नहीं हुआ। वैद्यों ने (अच्छा कर सकने की सामर्थ्य के विषय में) मना कर दिया। तब तीव्र वेदना से मूर्च्छित हुआ सा उसने कह दिया—'तीव्र वेदना के कारण एक दिन भी शरीर धारण करने में समर्थ नहीं हूँ। अतः लकड़ियाँ इकट्ठी कर दो, मैं अग्निप्रवेश करूँगा।' यह सुनकर बान्धव जागे, पत्नियाँ मूर्च्छित हुईं, परिजन रोये। इसी बीच वह देव शबरवैद्य का रूप धारण कर तीन बैलों को लेकर कौशाम्बी में आया। उसने अर्हद्दत्त के समीप घोषणा की—'मैं शबरवैद्य हूँ। बड़ी से बड़ी वेदना को दूर करता हूँ, बहरों को सुनवाता हूँ, अन्धकार (नेत्र रोग) दूर करता हूँ, करेंच नामक लता से उत्पन्न खुजली नष्ट करता हूँ, संग्रहणी का उन्मूलन करता हूँ, पेटदर्द को शान्त करता हूँ, जलोदर का नाश करता हूँ।' यह सुनकर परिजनों ने उसे आदरपूर्वक बुलाया और कहा—'भद्र! इसकी व्याधि दूर कर दो, जो माँगोगे वही मिलेगा।' उसने कहा—'मैं धर्मवैद्य हूँ, धन का लोलुप नहीं हूँ, अतः मुझे धन से कोई प्रलोभन नहीं है, किन्तु यह रोग कठिनाई से दूर हो सकेगा, आसानी से दूर नहीं किया जा सकता। अतः परहेज करना होगा, निदान को छोड़ना होगा और प्रतिपक्ष का सेवन करना होगा। निदान भी दो तरह का होता है—ऐहलौकिक और पारलौकिक। ऐहलौकिक निदान अपथ्य सेवन से उत्पन्न वात आदि धातुओं का क्षोभ है और पारलौकिक निदान पापकर्म है। ऐहलौकिक निदान भी पारलौकिक सम्बन्ध के बिना नहीं होता, अतः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यव्वं ति। तत्थ वि पहाणभावओ मिच्छत्तं। परिहरिए य तम्मि समुप्पन्नसमत्तभावेण पइदिवसमेव आसेवियव्वाइं नाणचरणाइं, कायव्वो पढमचरिमपोरुसीसु[1] चित्तमलविसोहणो जिणवयणसज्झाओ, सोयव्वो बिइयपोरुसीए हियाहियभावदंसगो 'तस्स अत्थो, मणवयणकायजोगेहिं न हिंसियव्वा पाणिणो, न जंपियव्वमलियं, न गेण्हियव्वमदत्तयं, न सेवियव्वमबंभं, न कायव्वो मुच्छाइ परिग्गहो, न भुंजियव्वं रयणीए, खायव्वा खंती, भावियव्वं मद्दवं, वज्जणिज्जा माया, निहणियव्वो लोहो, हिंडियव्वं अपडिबद्धेणं, वसियव्वं सेलकाणणुज्जाणेसु, वज्जियव्वो आरंभो, भवियव्वं निरीहेणं। एवं च, भो देवाणुप्पिया, अवेइ भवजलोयरं पि, किमंग पुण एयं इहलोयमेत्तपडिबद्धं।

तओ परियणेण चिंतियं 'मरणाओ वरमिमं' ति। भणिओ य एसो परियणेण—भो अरहदत्त, अलं मरणेणं, एयं करेहिं' त्ति। तओ 'मरणाओ वि एयमहियरं, तहावि का अन्ना गइ' त्ति चिंतिऊण जंपियमणेणं—'जं वो रोयइ' त्ति।

सबरवेज्जेण भणियं—जइ एवं, ता पेच्छ मे वेज्जसत्ति। इयाणि चेव पन्नवेमि; किं तु

मन्तरेण' इति पारलौकिकं परिहर्तव्यमिति। तत्रापि प्रधानभावतो मिथ्यात्वम्। परिहृते च तस्मिन् समुत्पन्नसम्यक्त्वभावेन प्रतिदिवसमेवासेवितव्ये ज्ञानचरणे, कर्तव्यः प्रथमचरमपौरुष्योश्चित्तमलविशोधनो जिनवचनस्वाध्यायः, श्रोतव्यो द्वितीयपौरुष्यां हिताहितभावदर्शकस्तस्यार्थः, मनोवचनकाययोगैर्न हिंसितव्याः प्राणिनः, न जल्पितव्यमलीकम्, न ग्रहीतव्यमदत्तम्, न सेवितव्यमब्रह्म, न कर्तव्यो मूर्च्छया परिग्रहः, न भोक्तव्यं रजन्याम्, क्षन्तव्या क्षान्तिः, भावयितव्यं मार्दवम्, वर्जनीया माया, निहन्तव्यो लोभः, हिण्डितव्यमप्रतिबद्धेन, वस्तव्यं शैलकाननोद्यानेषु, वर्जयितव्य आरम्भः, भवितव्यं निरीहेण। एवं च भो देवानुप्रिय! अपैति भवजलोदरमपि किमङ्ग पुनरेतदिहलोकमात्रप्रतिबद्धम्।

ततः परिजनेन चिन्तितम्—'मरणाद् वरमिदम्' इति। भणितश्चैष परिजनेन—भो अर्हद्दत्त! अलं मरणेन, एतत्कुर्विति। ततो 'मरणादप्येतदधिकतरम्, तथापि काऽन्या गतिः' इति चिन्तयित्वा जल्पितमनेन 'यद् वो रोचते' इति।

शबरवैद्येन भणितम्—यद्येवं ततः प्रेक्षस्व मे वैद्यशक्तिम्। इदानीमेव प्रज्ञापयामि,

---

पारलौकिक निदान से बचना चाहिए। उसमें प्रधान भाव मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व के दूर हो जाने पर उत्पन्न हुए सम्यक्त्व भाव से प्रतिदिन ज्ञान और चारित्र का सेवन करना चाहिए। प्रथम और अन्तिम पौरुष में चित्त के मल को विशुद्ध करने वाले जिनवचन का स्वाध्याय करना चाहिए। द्वितीय पौरुष में हित और अहित भाव को दर्शानेवाला उसका (जिनवचनों का) अर्थ सुनना चाहिए। मन, वचन और काय के योग से किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए, झूठ वचन नहीं बोलना चाहिए, बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण नहीं करना चाहिए, अब्रह्मचर्य का सेवन नहीं करना चाहिए, मूर्च्छा (ममत्वभाव) से परिग्रह नहीं करना चाहिए, रात्रि भोजन नहीं करना चाहिए क्षमा भाव धारण करना चाहिए। मार्दव की भावना करना चाहिए, माया को छोड़ना चाहिए, लोभ नष्ट करना चाहिए। बेरोक-टोक भ्रमण करना चाहिए, पर्वत, वन और उद्यानों में रहना चाहिए, आरम्भ का त्याग करना चाहिए और कामनारहित होना चाहिए। इस प्रकार हे देवानुप्रिय! संसार रूप जलोदर भी मिट जाता है, इस ऐहलौकिक जलोदर की तो बात ही क्या?'

तब परिजन ने सोचा—मरण से यही अच्छा।' और उससे कहा—'हे अर्हद्दत्त! मरनाव्यर्थ है, यही करो। तब 'मरण से तो यह अच्छा है, अन्य क्या चारा है' ऐसा सोचकर इसने कहा—'जो आप लोगों को उचित लगे।'

शबरवैद्य ने कहा—'यदि ऐसा है तो मेरी वैद्य—शक्ति देखो। इसी समय निवेदन करता हूँ, किन्तु

1. पोरिसीसुं—क। 2. तस्सत्थो—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निच्छिएण होयव्वं, न दायव्वो मोहपसरो, न सोयव्वं वयणमकल्लाणमित्ताणं, न कायव्वा कुसीलसंसग्गी, न बहु मन्नियव्वं इहलोयवत्थुं, न मोत्तव्वो अहं, न खंडियव्वा मम आणत्ती'। पडिस्सुयमणेणं। तओ आलिहियं वेज्जेण मंतमंडलं, मिलिओ नयरिजणवओ, ठाविओ मंडलम्मि अरहदत्तो, सव्वजणसमक्खमेव अहिमंतिऊण पउत्ताइं ओसहाइं; ठइओ धवलपडएणं, सुमरिया माइट्ठाणविज्जा, देवसत्तीए कोलाहली कओ एसो। तओ मोयावेऊण अक्कंदभेरवे, लोट्टाविऊण महियलम्मि, भंजाविऊण अंगमंगाइं, गमिउं विचित्तमोहे जंबालकलमलओ अइभीसणो रूवेणं असोयव्वभासी [सवणपंथाओ पुट्ठो किं पुण दंसणस्स] दुरहिगंधिणा देहेण नियरूवसरिसअट्ठुत्तरवाहिसयपरिवारिओ विवागसव्वस्सं पिव पावकम्मस्स निप्फेडिओ से मुत्तिमंतो चेव मायावाहि त्ति। दिट्ठो य लोएणं। तओ विम्हिओ लोओ। कओ णेण कोलाहलो। अहो महाणुभावया सबरवेज्जस्स, अउव्ववेज्जमग्गेण अदिट्ठपुव्वेण अम्हारिसेहिं निप्फेडिओ मुत्तिमंतो चेव वाहि त्ति। अहो अच्छरियं; पउणो अरहदत्तो, वाहिविगमेण समागया से निद्दा। थेववेलाए पडिबोहिओ सबरवेज्जेणं। भणिओ य णेणं—भद्द, पेच्छप्पणोच्चियं महापाव-

---

किन्तु निश्चितेन भवितव्यम्, न दातव्यो मोहप्रसरः, न श्रोतव्यं वचनमकल्याणमित्राणाम्, न कर्तव्यः कुशीलसंसर्गः, न बहु मानयितव्यमिहलोकवस्तु, न मोक्तव्योऽहम्, न खण्डयितव्या ममाज्ञप्तिः। प्रतिश्रुतमनेन। तत आलिखितं वैद्येन मन्त्रमण्डलम्, मिलितो नगरीजनव्रजः, स्थापितो मण्डलेऽर्हद्दत्तः सर्वजनसमक्षमेवाभिमन्त्र्य प्रयुक्तान्यौषधानि, स्थगितो धवलपटेन, स्मृता मातृस्थानविद्या, देवशक्त्या कोलाहली कृत एषः। ततो मोचयित्वाऽऽक्रन्दभैरवान् लोटयित्वा महीतले भञ्जयित्वाऽङ्गाङ्गानि गमयित्वा विचित्रमोहान् (जम्बालकलमलओ दे०) दुर्गन्धी अतिभीषणो रूपेण अश्रोतव्यभाषी [श्रवणपथस्यापि च स्पष्टः किं पुनर्दर्शनस्य] दुरभिगन्धिना देहेन निजरूपसदृशाष्टोत्तरव्याधिशतपरिवृतो विपाकसर्वस्वमिव पापकर्मणो निष्फेटितस्तस्य मूर्तिमानिव मायाव्याधिरिति। दृष्टश्च लोकेन। ततो विस्मितो लोकः। कृतोऽनेन कोलाहलः। अहो महानुभावता शबरवैद्यस्य, अपूर्ववैद्यमार्गेण अदृष्टपूर्वेणास्मादृशैर्निष्फेटितो मूर्तिमानिव व्याधिरिति। अहो आश्चर्यम्। प्रगुणोऽर्हद्दत्तः, व्याधिविगमेन समागता तस्य निद्रा। स्तोकवेलायां प्रतिबोधितः शबरवैद्येन। भणितश्चानेन—भद्र! प्रेक्षस्व आत्मनश्चैव महापापकर्मव्याधिम्। ततस्तथा कुर्याः, न

निश्चित होना चाहिए, मोह को नहीं फैलाना चाहिए, अकल्याणकारी मित्र के वचन नहीं सुनना चाहिए, कुशील सेवन नहीं करना चाहिए, ऐहलौकिक पदार्थों को अधिक मान नहीं देना चाहिए, मुझे नहीं छोड़ना, मेरी आज्ञा का खण्डन (उल्लंघन) नहीं करना।' इसने अंगीकार किया। तब वैद्य ने मन्त्र का मण्डल (समूह) लिखा, नगरी के मनुष्य मिले, अर्हद्दत्त को मण्डल में बैठाया, सभी लोगों के समक्ष अभिमन्त्रित कर औषधियाँ प्रयुक्त कीं। सफेद वस्त्र से ढक दिया, मातृस्थान विद्या स्मरण की, देव की शक्ति से इसने कोलाहल किया। तब चिल्लाते हुए भैरवों से छुड़ाकर, पृथ्वी पर लोटकर, अङ्ग-अङ्ग को तोड़ते हुए विचित्र मोह को प्राप्त होकर, दुर्गंधयुक्त अति भीषण रूप से अश्रोतव्यभासी (कानों से नहीं सुनने योग्य, देखने की तो बात ही क्या), बदबूदार देह से अपने रूप के सदृश आठ सौ व्याधियों से घिरे हुए, पापकर्म के परिपूर्ण फल के समान मानो शरीरधारिणी माया व्याधि निकली। लोगों ने देखा, तब लोग विस्मित हुए। इसने कोलाहल किया। शबरवैद्य का महान् प्रभाव आश्चर्ययुक्त है जो कि अपूर्व वैद्यमार्ग से हम लोगों ने जिसे पहले नहीं देखा, ऐसी व्याधि को मूर्तिमान के समान निकाल दिया। अरे बड़े आश्चर्य की बात है! अर्हद्दत्त ठीक हो गया, रोग के नष्ट होने से उसे नींद आ गयी। थोड़ी देर में शबरवैद्य ने उसे जगाया और उससे कहा—'भद्र! अपनी महा पापकर्मरूप व्याधि को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम्मवाहिं। ता तहा करेज्जासि, न उणो जहा इमेणं घेप्पसि त्ति। दिट्ठो अरहदत्तेणं। विम्हिओ एसो। जायं से भयं। भणिओ य सबरवेज्जेणं – भद्द, मोयाविओ ताव तुमं मए इमाओ पावकम्मवाहिकिलेसाओ, पाविओ आरोग्गसुहेक्कदेसं। अओ परं भद्देण सयमेव तहा कायव्वं, जहा सयलपावकम्मवाहिविगमो होइ, तव्विगमे य संपज्जिस्सइ ते जम्मजरामरणविरहियं एगंतनिप्पच्चवायं आसंसारमपत्तपुव्वं[1] आरोग्गसुहं ति। अहं पि गहिओ चेव इमिणा पावकम्मवाहिणा; अवणीया य भवओ विय काइ मत्ता इमस्स मए, सेसावणयणत्थं च 'अजोग्गो उत्तिमोवायस्स' त्ति पयट्टो इमिणा पयारेणं। ता तुमं पि उत्तमोवायं वा पडिवज्ज एयं वा मज्झ संतियं चेट्ठियं ति। लोएण भणियं—'को उण[2] एत्थ उत्तमोवाओ। सबरवेज्जेण भणियं—जिणसासणम्मि पव्वज्जापवज्जणं। तत्थ खलु पडिवन्नाए पव्वज्जाए परिवालिज्जमाणीए जहाविहिं न संभवइ एस वाही, सिग्घमेव य अवेइ अवसेसं ति। ईइसा य मज्झ जाई, जेण न होइ सा इमीए सयलदुक्खसेलवज्जासणी महापव्वज्जा। तुमं पुण भद्द उत्तमजाइगुणओ जोग्गो इमीए महापव्वज्जाए। ता एयं वा गेण्ह, गहियगोणतओ मए वा सह विहरसु

पुनर्यथाऽनेन गृह्यसे इति। दृष्टोऽर्हद्दत्तेन। विस्मित एषः जातं तस्य भयम्। भणितश्च शबरवैद्येन—भद्र! मोचितस्तावत् त्वं मयाऽस्मात् पापकर्मव्याधिक्लेशात्, प्रापित आरोग्यसुखैकदेशम्। अतः परं भद्रेण स्वयमेव तथा कर्तव्यम् यथा सकलपापकर्मव्याधिविगमो भवति, तद्विगमे च सम्पत्स्यते ते जन्मजरामरणविरहितमेकान्तनिष्प्रत्यवायमासंसारमप्राप्तपूर्वमारोग्यसुखमिति। अहमपि गृहीत एवानेन पापकर्मव्याधिना, अपनीता च भवत इव काचिन्मात्राऽस्य मया, शेषापनयनार्थं च 'अयोग्य उत्तमोपायस्य' इति प्रवृत्तोऽनेन प्रकारेण। ततस्त्वमपि उत्तमोपायं वा प्रतिपद्यस्व, एतद्वा मम सत्कं चेष्टितमिति। लोकेन भणितम्—कः पुनरत्र उत्तमोपायः। शबरवैद्येन भणितम्—जिनशासने प्रव्रज्याप्रपदनम्। तत्र खलु प्रतिपन्नायां प्रव्रज्यायां परिपाल्यमानायां यथाविधि न सम्भवत्येष व्याधिः, शीघ्रमेव चापैत्यवशेषमिति। ईदृशी च मम जातिः, येन न भवति साऽस्यां सकलदुःखशैलवज्राशनिर्महाप्रव्रज्या। त्वं पुनर्भद्र! उत्तमजातिगुणतो योग्योऽस्याः महाप्रव्रज्यायाः। तत एतां गृहाण, गृहीतगोणत्रयो मया वा सह विहर इति। लोकेन भणितम्—भो! सुन्दरमिदम्,

---

देखो। अतः ऐसा उपाय करो जिससे इससे पुनः ग्रस्त न हो।' अर्हद्दत्त ने देखा। वह विस्मित हो गया। उसका भय जाता रहा। शबरवैद्य ने कहा—'भद्र! तुम मेरे द्वारा पापकर्मरूप रोग के क्लेश से मुक्त कर दिये गये हो और आरोग्य रूप सुख के स्थान पर पहुँचा दिये गये हो, अतः भद्र को स्वयं वैसा करना चाहिए जिससे समस्त कर्मरूप व्याधियाँ दूर हों, कर्मरूप व्याधियों के दूर होने पर तुम जन्म, जरा और मरण से रहित, एकान्त बाधा से रहित, संसार में जिसकी प्राप्ति पहले कभी नहीं हुई, ऐसे आरोग्य रूप सुख को प्राप्त होगे। मुझे भी इस पापकर्मरूप व्याधि ने ग्रहण कर लिया था, आपके समान इसकी कुछ मात्रा को मैंने दूर कर दिया है, शेष को दूर करने के लिए उत्तम उपाय के अयोग्य हूँ। अतः आप उत्तम उपाय को प्राप्त हों, यही मेरी चेष्टा है।' लोगों ने कहा—'यहाँ उत्तम उपाय क्या है?' शबर वैद्य ने कहा—'जिनशासन में दीक्षा धारण करो। इसके प्राप्त होने तथा पालन करने पर यह रोग नहीं उत्पन्न होता है और शेष बचा शीघ्र दूर हो जाता है। मेरी जाति ऐसी है कि समस्त दुःखरूप पर्वतों को वज्र के समान यह प्रव्रज्या नहीं होती है। भद्र! तुम उत्तम जाति में उत्पन्न होने रूप गुण के कारण इस प्रव्रज्या के योग्य हो, अतः इसे ग्रहण करो अथवा तीन बैल लेकर मेरे साथ विचरण करो।'

---

१. —मेवमपत्त—क। २. पुण—क, ख।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

त्ति। लोएण भणियं – भो सुंदरमिमं, तुज्झ भाया वि पव्वइओ चेव; ता एयं ववससु' त्ति।

तओ अरहदत्तेण अणिच्छमाणेणावि चित्तेणं पडिवन्नमेय। आगओ कोइ तहाविहो साहू। तओ पडिवन्नो एयस्स समीवे पव्वज्जं दव्वओ, न उण भावओ त्ति। गओ सबरवेज्जो।

अइक्कंता कइवि दियहा। मिच्छत्तोदएणं च समुप्पन्ना इमस्स अरई। तओ परिच्चइय पोरुसं, अणवेक्खिऊण निययकुलं, अगणिऊण वयणिज्जं, अणालोइऊण आयइं परिच्चत्तमणेण दव्वलिंगं। आगओ सगिहं। पवत्तो पडिकूलसेवणे। गया कइवि वासरा। आभोइयं देवेण। कओ से पुव्ववाही। विसण्णो एसो। निंदिओ लोएणं। संसारसिणेहेणं गविट्ठो से बंधवेहिं सबरवेज्जो। लद्धो देव्वजोएणं। भणिओ य णेहिं - भद्द, कुविओ सो तस्स वाही। ता करेहि से अणुग्गहं, उवसामेहि एयं' ति। सबरवेज्जेण भणियं—किं कयमपच्छं ति। बंधवेहिं भणियं—भद्द, लज्जिया अम्हे तस्स चरिएणं; तहावि करेह अणुग्गहं ति। सबरवेज्जेण भणियं—जइ एवं पुणो वि पव्वयइ। तओ अणिच्छमाणो वि हियएण पव्वइओ। तहेव उवसामिऊण वाहिं गओ सबरवेज्जो।

तव भ्राताऽपि प्रव्रजित एव, तत एतद् व्यवस्येति।

ततोऽर्हद्दत्तेनानिच्छताऽपि चित्तेन प्रतिपन्नमेतद्। आगतः कोऽपि तथाविधः साधुः। ततः प्रतिपन्न एतस्य समीपे प्रव्रज्यां द्रव्यतः, न पुनर्भावत इति। गतः शबरवैद्यः।

अतिक्रान्ताः कत्यपि दिवसाः। मिथ्यात्वोदयेन च समुत्पन्नाऽस्यारतिः। ततः परित्यज्य पौरुषम् अनपेक्ष्य निजकुलम्, अगणयित्वा वचनीयम्, अनालोच्यायतिं परित्यक्तमनेन द्रव्यलिङ्गम्। आगतः स्वगृहम्। प्रवृत्तः प्रतिकूलसेवने। गताः कत्यपि वासराः। आभोगितं देवेन। कृतस्तस्य पूर्वव्याधिः। विषण्ण एषः। निन्दितो लोकेन। संसारस्नेहेन गवेषितस्तस्य बान्धवैः शबरवैद्यः। लब्धो दैवयोगेन। भणितश्च तैः—भद्र! कुपितः स तस्य व्याधिः। ततः कुरु तस्यानुग्रहम्, उपशमय एतमिति। शबरवैद्येन भणितम्—किं कृतमपथ्यमिति। बान्धवैर्भणितम्—भद्र! लज्जिता वयं तस्य चरितेन, तथापि कुर्वनुग्रहमिति। शबरवैद्येन भणितम्—यद्येवं पुनरपि प्रव्रजति। ततोऽनिच्छन्नपि हृदयेन प्रव्रजितः। तथैवोपशमय्य व्याधिं गतो शबरवैद्यः।

लोगों ने कहा—'यह सुन्दर है, आपका भाई भी प्रव्रजित हुआ था अतः इसी का निश्चय करो।'

तब अर्हद्दत्त ने मन में न रहते हुए भी इसे स्वीकार कर लिया। कोई उस प्रकार का साधु आया। वह इसके समीप द्रव्य से दीक्षित हो गया, भाव से नहीं। शबरवैद्य चला गया।

कुछ दिन बीत गये। मिथ्यात्व के उदय से उसे (तपस्या के प्रति) अरुचि पैदा हुई। तब पुरुषार्थ को त्यागकर अपने कुल की अपेक्षा न कर, निन्दा को न मानकर, भावी कल को न सोचकर इसने द्रव्यलिंग का त्याग कर दिया। अपने घर आ गया। प्रतिकूल वस्तुओं के सेवन करने में प्रवृत्त हो गया। कुछ दिन बीत गये। देव को ज्ञात हुआ। उसकी पहले की व्याधि (देव ने) उत्पन्न कर दी। यह खिन्न हुआ। लोगों ने निन्दा की। संसार के स्नेह से उसके बान्धवों ने शबरवैद्य को खोजा। दैवयोग से (वह वैद्य) मिल गया। उन्होंने कहा – 'भद्र! यह व्याधि कुपित हो गयी, अतः उसके ऊपर अनुग्रह कीजिए, इसे शान्त कर दीजिए।' शबरवैद्य ने पूछा—'क्या अपथ्य सेवन किया है?' बान्धवों ने कहा--'भद्र! हम लोग उसके आचरण से लज्जित हैं, तथापि अनुग्रह करो।' शबरवैद्य ने कहा—'यदि ऐसा है तो पुनः दीक्षा धारण कर ले।' तब हृदय से न चाहता हुआ भी वह प्रव्रजित हो गया। उसी प्रकार व्याधि का उपशमन कर शबरवैद्य चला गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अइक्कंतेसु कइवयदिणेसु तहेव उप्पव्वइओ। [1]आहोइयं देवेणं। कओ से तिव्वयरवेयणो वाही। भणिओ य बंधवेहिं –किं पुण तुमं एवं पि अत्ताणयं न लक्खेसि। ता परिच्चयसु वा जीवियं, करेहि वा तस्स वयणं ति। तेण भणियं—करेमि संपयं, जइ तं पेच्छामि त्ति। गवेसिओ सबरवेज्जो, बंधवेहिं दिट्ठो य देव्वजोएणं। [2]लज्जावणयवयणं भणिओ य णेहिं—अजुत्तं चेव ववसियं [3]ते पुत्तएण, गहिओ य एसो तिव्वयरेण वाहिणा; ता को उण इह उवाओ त्ति। सबरवेज्जेण भणियं—नत्थि तस्स उवाओ; विसयलोलुओ खु एसो पुरिसयाररहिओ य। ता थेवमियमेयस्स, बहुयराओ य अग्गओ तिरियनारएसु विडंबणाओ। तहावि तुम्हाण उवरोहओ चिकिच्छामि एक्कसि जइ मए चेव सह हिंडइत्ति। पडिवन्नमणेहिं, साहियं च अरहदत्तस्स। संखुद्धो य एसो। तहावि 'का अन्ना गइ' त्ति चिंतिऊण पडिवन्नमणेण। आणिओ सबरवेज्जो। भणिओ य णेणं—भद्द, पच्छिमा खेड्डिया; ता सुंदरेण होयव्वं। सव्वहा जमहं करेमि, तं चेव तुमए कायव्वं; न मोत्तव्वो य अहयं ति। पडिवन्नं अरहदत्तेणं। तिगिच्छिओ य एसो। भणिओ य लोएणं—भो सत्थवाहपुत्त, मा संपयं पि कुपुरिस-

अतिक्रान्तेषु कतिपयदिनेषु तथैवोत्प्रव्रजितः। आभोगितं देवेन। कृतस्तस्य तीव्रतरवेदनो व्याधिः। भणितश्च बान्धवैः—किं पुनस्त्वमेवमपि आत्मानं न लक्षयसि। ततः परित्यज वा जीवितं कुरु वा तस्य वचनमिति। तेन भणितम्—करोमि साम्प्रतम्, यदि तं पश्यामीति। गवेषितः शबर-वैद्यो बान्धवैः, दृष्टश्च दैवयोगेन। लज्जावनतवदनं भणितश्च तैः—अयुक्तमेव व्यवसितं ते पुत्रकेण, गृहीतश्चैष तीव्रतरेण व्याधिना, ततः कः पुनरिहोपायः इति। शबरवैद्येन भणितम्—नास्ति तस्यो-पायः, विषयलोलुपः खल्वेष पुरुषकाररहितश्च। ततः स्तोकमिदमेतस्य, बहुतराश्चाग्रतः तिर्यग्नार-केषु विडम्बनाः। तथापि युष्माकमुपरोधतश्चिकित्साम्येकशः, यदि मयैव सह हिण्डते इति। प्रति-पन्नमेभिः, कथितं चार्हद्दत्तस्य। संक्षुब्धश्चैषः। तथापि 'काऽन्या गतिः' इति चिन्तयित्वा प्रतिपन्न-मनेन। आनीतः शबरवैद्यः। भणितश्च तेन—भद्र! पश्चिमा (खेड्डिया दे०) द्वारिका (चरम उपाय इत्यर्थः), ततः सुन्दरेण भवितव्यम्। सर्वथा यदहं करोमि तदेव त्वया कर्तव्यम्, न मोक्तव्यश्चाह-मिति। प्रतिपन्नमर्हद्दत्तेन। चिकित्सितश्चैषः। भणितश्च लोकेन—भो सार्थवाहपुत्र! मा साम्प्रत-

कुछ दिन बीत जाने पर उसी प्रकार प्रव्रज्या छोड़ दी। देव को ज्ञात हुआ। उसने उसे तीव्रतर व्याधि उत्पन्न कर दी। बान्धवों ने कहा—'तुम अपने आपको भी नहीं देखते हो। अतः या तो जीवन का त्याग कर दो या उसके वचनों का पालन करो।' उसने कहा कि यदि वह (शबरवैद्य) मिल जाय तो करूँगा। बान्धवों ने शबरवैद्य को ढूंढ़ा, दैवयोग से दिखाई पड़ गया। लज्जा से चेहरे झुकाकर उन्होंने कहा—'इस पुत्र ने अयोग्य कार्य किया, अतः उसे तीव्रतर व्याधि ने घेर लिया, अतः अब क्या उपाय है?' शबरवैद्य ने कहा—'कोई उपाय नहीं है, यह विषयलोलुप और पौरुषहीन है अतः यह (वेदना) तो थोड़ी-सी ही है, आगे तिर्यंच और नरकगतियों में और भी अधिक पीड़ा होगी; तथापि आप लोगों के अनुरोध से एक बार पुनः चिकित्सा करता हूँ। यदि वह मेरे साथ भ्रमण करना स्वीकार करे तो।' इन लोगों ने स्वीकार कर लिया और अर्हद्दत्त से कहा। यह क्षुभित हुआ, तथापि अन्य क्या उपाय है? ऐसा सोचकर इसने अंगीकार कर लिया। शबरवैद्य को लाया गया। उसने कहा—'भद्र, उत्कृष्ट उपाय है, अतः (आपको) ठीक हो जाना चाहिए; किन्तु जो मैं करता हूँ वही तुम्हें करना होगा और मुझे नहीं छोड़ना होगा।' अर्हद्दत्त ने स्वीकार कर लिया। इसकी चिकित्सा की गयी। लोगों ने कहा—

१. आभोइयं—क। २. दिव्व—ख। ३. तेण—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चेट्ठियं करिस्ससि[1]। समप्पिओ मे गोणत्तओ। निग्गया नयरीओ, गया य गामंतरं। कया देवेण माया। दिट्ठं च णेहिं धूमंधयारियं नहयलं, सुओ हाहारवगब्भिणो [2]वंसफुट्टणसद्दो, पुलइया दिट्ठि-दुक्खया जालावली। विन्नायं य णेहिं, जहा पलित्तो एस गामो त्ति। तओ विज्झवणनिमित्तं घेत्तूण तणभारयं धाविओ देवो। भणिओ य णेणं—भो किं तणभारएणं पलित्तं विज्झविज्जइ। देवेण भणियं—किमेत्तियं वियाणासि। तेण भणियं—कहं न याणामि। देवेण भणियं—जइ जाणसि, ता कहमन्नाणपवणसंधुक्कियं अणेगदेहिंधणं कोहाइसंपलित्तं [3]गहियदेहिंधणो पुणो वि गिहवासं पविससि। ठिओ तुण्हिक्को, न संबुद्धो य।

गया कंचि भूमिभागं। पयट्टो देवो तिक्खकंटयाउलेणं अडविमग्गेणं। इयरेण भणियं—भो किं पुण तुमं पंथं मोत्तूण अडविं पविससि। देवेण भणियं—किमेत्तियं जाणसि। तेण भणियं—कहं न याणामि। देवेण भणियं—जइ जाणसि, ता कहं मोक्खमग्गं मोत्तूण अणेगवसणसावयसंकुलं संसाराडविं पविससि। ठिओ तुण्हिक्को न संबुद्धो य। गया कंचि भूमिभागं। आवासिया गाम-

मपि कुपुरुषचेष्टितं करिष्यसि। समर्पितस्तस्य गोणत्रिकः। निर्गतौ नगर्याः, गतौ च ग्रामान्तरम्। कृता देवेन माया। दृष्टं च ताभ्यां धूमान्धकारितं नभस्तलम्। श्रुतो हाहारवगर्भितः वंशस्फुट्टनशब्दः, दृष्टा दृष्टिदुःखदा ज्वालावलिः। विज्ञातं च ताभ्याम्, यथा प्रदीप्त एष ग्राम इति। ततो विध्यापननिमित्तं गृहीत्वा तृणभारकं धावितो देवः। भणितश्च तेन—भोः किं तृणभारकेण प्रदीप्तं विध्याप्यते। देवेन भणितम्—किमेतावद् विजानासि? तेन भणितम्—कथं न जानामि? देवेन भणितम्—यदि जानासि ततः कथमज्ञानपवनसन्धुक्षितमनेकदेहेन्धनं क्रोधादिसम्प्रदीप्तं गृहीतदेहेन्धनः पुनरपि गृहवासं प्रविशसि? स्थितः तूष्णिकः, न सम्बुद्धश्च।

गतौ कञ्चिद् भूमिभागम्। प्रवृत्तो देवः तीक्ष्णकण्टकाकुलेनाटवीमार्गेण। इतरेण भणितम्—भोः किं पुनस्त्वं पन्थानं मुक्त्वाऽटवीं प्रविशसि? देवेन भणितम्—किमेतावद् जानासि? तेन भणितम्—कथं न जानामि? देवेन भणितम्—यदि जानासि, ततः कथं मोक्षमार्गं मुक्त्वाऽनेकव्यसनश्वापद-संकुलां संसाराटवीं प्रविशसि? स्थितः तूष्णिकः, न सम्बुद्धश्च। गतौ कञ्चिद् भूमिभागम्। आवासितौ

'हे सार्थवाहपुत्र! पुनः बुरे पुरुष के समान आचरण मत करना।' उसको तीन बैल समर्पित कर दिये। नगरी से निकले, दूसरे ग्राम को गये। देव ने माया की। उन दोनों ने धुएँ से अन्धकारित (काले-काले) आकाश को देखा। हा हा शब्द जिसमें गर्भित था, ऐसे बाँसों के फूटने से होनेवाले शब्द को सुना। नेत्रों को दुःख देने वाली ज्वाला पंक्ति दिखाई दी। उन दोनों ने जाना कि गाँव जल रहा है। तब तृणों के ढेर को लेकर देव बुझाने के लिए दौड़ा। उसने (अर्हद्दत्त ने) कहा—'क्या तृणों के समूह से अग्नि की ज्वाला बुझायी जाती है?' देव ने कहा—'यदि जानते हो तो अज्ञानरूपी पवन के द्वारा, जिसमें अनेक देहरूपी ईंधन झोंके गये हैं, क्रोधादि से जलते हुए देह रूप ईंधन को धारण कर क्यों पुनः गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हो?' (अर्हद्दत्त) चुप रहा, बोधि को प्राप्त नहीं हुआ।

दोनों कुछ दूर गये। देव तीक्ष्ण काँटों से व्याप्त जंगल के मार्ग से प्रविष्ट हुआ। दूसरे (अर्हद्दत्त) ने कहा—'अरे! क्यों रास्ते को छोड़कर जंगल में प्रवेश करते हो?' देव ने कहा—'क्या इतना जानते हो?' उसने कहा—'क्यों नहीं जानता हूँ?' देव ने कहा—'यदि जानते हो तो मोक्षमार्ग छोड़कर क्यों अनेक व्यसनरूपी हिंसक पशुओं से व्याप्त संसाररूप वन में भ्रमण (प्रवेश) करते हो?' (वह) चुप रहा, जागृत नहीं हुआ। दोनों कुछ दूर गये। गाँव

---

१. करेज्जसु त्ति—क। २. वंसफुडण—क। ३. घणियं—क।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

देवउले। तत्थ पुण वाणमंतरो लोएण अच्चिज्जमाणो हेट्ठामुहो पडइ; पुणो वि ठविओ, पुणो वि पडइ। तेण भणियं—अहो वाणमंतरस्स अहन्नया, जो अच्चिओ उवरिहुत्तो य कओ हेट्ठामुहो पडइ। देवेण भणियं—किमेयं वियाणसि। तेण भणियं—किमेत्थ जाणियव्वं। देवेण भणियं—जइ एवं, ता कीस तुमं अच्चणिज्जट्ठाणे देवगइसिद्धिगईओ पडुच्च उवरिहुत्तो वि किज्जमाणो परिणामदारुणगिहवासपवज्जणेणं निरयगइतिरियगइगमणभावओ हेट्ठामुहो पडसि। ठिओ तुण्हिक्को, न संबुद्धो य।

गया कंचि भूमिभागं। दिट्ठो य नाणापयारे कणियकुंडए चइऊण अच्चंतदुरहिगंधअसुइयं भुंजमाणओ सूयरो। तेण भणियं अहो अविवेगो सूयरस्स, जो कणियकुंडए चइऊण असुइयं भुंजइ त्ति। देवेण भणियं—किमेत्तियं वियाणसि। तेण भणियं—किमेत्थ वियाणियव्वं। देवेण भणियं—जइ एवं, ता कीस तुमं अच्चंतसुहरूवं समणत्तणं चइऊण असुइए विसए बहु मन्नसि त्ति। ठिओ तुण्हिक्को न संबुद्धो य।

गया थेवं भूमिभागं। कया देवेण माया। दिट्ठो य णेहिं छेत्तंतरोवारियादूरदेसट्ठियविमुक्क-

---

ग्रामदेवकुले। तत्र पुनर्वानमन्तरो लोकेनार्च्यमानोऽधोमुखः पतति, पुनरपि स्थापितः पुनरपि पतति। तेन भणितम—अहो वानमन्तरस्याधन्यता, योऽर्चित (उवरिहुत्तो दे०) ऊर्ध्वाभिमुखश्च कृतोऽधोमुखः पतति। देवेन भणितम्—किमेतद् विजानासि ? तेन भणितम्—किमत्र ज्ञातव्यम् ? देवेन भणितम्—यद्येवं ततः कस्मात्त्वमर्चनीयस्थाने देवगतिसिद्धिगती प्रतीत्य ऊर्ध्वाभिमुखोऽपि क्रियमाणः परिणामदारुणगृहवासप्रपदनेन निरयगतितिर्यग्गतिगमनभावतोऽधोमुखः पतसि? स्थितः तूष्णिको न सम्बुद्धश्च।

गतौ कञ्चिद् भूमिभागम्। दृष्टश्च नानाप्रकारान् कणिककुण्डान् त्यक्त्वाऽत्यन्तदुरभिगन्धाशुचिकं भुञ्जानः सूकरः। तेन भणितम्—अहो अविवेकः सूकरस्य, यः कणिककुण्डान् त्यक्त्वाऽशुचिकं भुङ्क्ते इति। देवेन भणितम्—किमेतावद् विजानासि ? तेन भणितम्—किमत्र विज्ञातव्यम् ? देवेन भणितम्—यद्येवं ततः कस्मात्त्वमत्यन्तसुखरूपं श्रमणत्वं त्यक्त्वाऽशुचिकान् विषयान् बहु मन्यसे इति। स्थितस्तूष्णीकः, न सम्बुद्धश्च।

गतौ स्तोकं भूमिभागम्। कृता देवेन माया। दृष्टश्च ताभ्यां क्षेत्रान्तर—(ओवारिय दे०)

के मन्दिर में ठहरे। वहाँ देखा कि लोगों के द्वारा पूजित वानमन्तर (व्यन्तर देव) अधोमुख हो नीचे गिरता है, फिर से रखा जाता है, फिर से गिरता है। उसने (अर्हद्दत्त ने) कहा—'अरे व्यन्तरदेव की अधन्यता, जो पूजित होकर ऊर्ध्वमुख स्थापित किया जाने पर भी अधोमुख हो नीचे गिर पड़ता है।' देव ने कहा—'क्या यह जानते हो ?' उसने कहा—'यहाँ जानने योग्य बात ही क्या है ?' देव ने कहा—'यदि ऐसा है तो तुम क्यों देवगति और सिद्धगति नामक पूजनीय स्थान पर पहुँचाने के लिए ऊर्ध्वमुख किये जाने पर भी जिसका फल कठोर है ऐसे गृहवास में जाकर नरकगति और तिर्यग्गति में जाने के भाव से नीचे की ओर गिरते हो ?' (यह) चुप रहा, जागृत नहीं हुआ।

दोनों थोड़ी दूर गये। देखा कि अनेक प्रकार के धान्य से भरे हुए कुण्डों को छोड़कर सूकर अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त, अपवित्र पदार्थों का भक्षण कर रहा है। उसने कहा—'अरे सूकर की अविवेकता देखो, जो कि अनाज से भरे हुए कुण्डों को छोड़कर अपवित्र पदार्थों का भक्षण कर रहा है।' देव ने कहा—'क्या इतना जानते हो ?' उसने कहा—'इसमें जानने योग्य बात ही क्या है ?' देव ने कहा—'यदि ऐसा है तो तुम क्यों अत्यन्त सुखरूप मुनिधर्म (श्रमणत्व) का त्याग करके अपवित्र विषयों को अधिक आदर देते हो ?' वह चुप रहा, प्रबुद्ध नहीं हुआ।

कुछ दूर गये। देव ने माया की। उन दोनों ने देखा कि दूसरे स्थान पर ढेर लगाये हुए तृणसमूह को छोड़कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जुंजुमयचारी सुक्कूवतडेक्कदेससंजायदुरुव्वापवाललवबद्धाहिलासो तन्निमित्तमेव अज्झवसाएणं कूवपडणेणं अणासाइऊण दुरुव्वापवाललवं विसमपडिकूवेक्कदेसेसु संचुण्णियंगोवंगो बइल्लो त्ति। तं च दट्ठूणं भणिअं अरहदत्तेण —अहो मूढया बइल्लस्स, जेण मोत्तूण जुंजुमयचारिं कूववडतडसंठियं दुरुव्वालवमहिलसंतो तत्थेव पडिओ। देवेण भणियं—किमेत्तियं वियाणसि। तेण भणियं—कहं न याणामि। देवेण भणियं—जइ जाणसि, ता कहं छेत्तंतरोवारिय[1]जुंजुमयचारिकप्पं महंतं सुरसोक्खमुज्झिय दुरुव्वापवाललवतुल्ले तुच्छे माणुससोक्खम्मि बद्धाहिलासो पाडेसि अप्पाणयं सुक्ककूवसरिसीए दोग्गईए त्ति।

एयमायण्णिऊण विचलिओ से कम्मरासी। चिंतियं च णेणं। अहो अमाणुसो एसो। कहमन्नहा एवं वाहरइ। सोहणं च एयं। भाया वि मे एवं चेव कहियव्वं ति। ता पुच्छामि ताव, को उण एत्थ परमत्थो त्ति। पुच्छिओ य—भो को उण तुमं असोयदत्तो विय मम वच्छलो त्ति। देवेण भणियं—परियायंतरगओ सो चेव असोयदत्तो म्हि। इयरेण भणियं— को पच्चओ। देवेण भणियं—

राशीकृतादूरदेशस्थितविमुक्तजुञ्जुमयचारिः शुष्ककूपतटैकदेशसञ्जातदूर्वाप्रवाललवबद्धाभिलाषस्तन्निमित्तमेवाध्यवसायेन कूपपतनेनासाद्य दूर्वाप्रवाललवं विषमप्रतिकूपैकदेशेषु सञ्चूर्णिताङ्गोपाङ्गो बलीवर्द इति। तं च दृष्ट्वा भणितमर्हद्दत्तेन—अहो मूढता बलीवर्दस्य, येन मुक्त्वा जुञ्जुमयचारिं कूपावटतटसंस्थितं दूर्वालवमभिलषन् तत्रैव पतितः। देवेन भणितम्—किमेतावद् विजानासि? तेन भणितम्—कथं न जानामि? देवेन भणितम्—यदि जानासि ततः कथं क्षेत्रान्तरराशीकृत—(ओवारियं दे० राशीकृतम्) जुञ्जुमयचारिकल्पं महत् सुरसौख्यमुज्झित्वा दूर्वाप्रवाललवतुल्ये तुच्छे मानुषसौख्ये बद्धाभिलाषः पातयस्यात्मानं शुष्ककूपसदृश्यां दुर्गत्यामिति।

एतदाकर्ण्य विचलितस्तस्य कर्मराशिः। चिन्तितं च तेन—अहो अमानुष एषः, कथमन्यथैवं व्याहरति। शोभनं चैतद्। भ्रात्राऽपि मे एवमेव कथयितव्यमिति। ततः पृच्छामि तावत्, कः पुनरत्र परमार्थ इति। पृष्टश्च—भोः! कः पुनस्त्वमशोकदत्त इव मम वत्सल इति। देवेन भणितम्—पर्यायान्तरगतः स एवाशोकदत्तोऽस्मि। इतरेण भणितम्—कः प्रत्ययः। देवेन भणितम्—त्वया मया

कुएँ के किनारे के एक स्थान पर लगी हुई सूखी दूब के समूह की अभिलाषा कर, उसी के लिए प्रयत्न करता हुआ दूर्वाकार लटके हुए थोड़े से भाग को प्राप्त करते समय एक बैल कुएँ में गिर पड़ा और उसके अंगोपांग टूट गये। उसे देखकर अर्हद्दत्त ने कहा—'अरे यह बैल कितना मूर्ख है जो कि एकत्रित तृणराशि को छोड़कर कुएँ के किनारे लगी हुई दूब की इच्छा करता हुआ उसी में गिर गया।' देव ने कहा—'क्या इतना जानते हो?' उसने कहा—'क्यों नहीं जानता हूँ?' देव ने कहा—'यदि जानते हो तो दूसरे स्थान पर एकत्रित तृणसमूह के सदृश बहुत बड़े स्वर्गसुख को छोड़कर दूब के सदृश मनुष्य-सुख की अभिलाषा में बद्ध हुए अपने आपको दुर्गति रूप शुष्ककूप में क्यों गिराते हो?'

यह सुनकर उसकी कर्मराशि विचलित हो गयी। उसने सोचा—यह दिव्य है, कैसे दूसरे रूप में इस प्रकार कह रहा है। यह सुन्दर है। मेरा भाई भी ऐसा ही कहता, अतः पूछता हूँ (तुम) यथार्थतः कौन हो? पूछा—अशोकदत्त के समान मुझसे स्नेह करने वाले तुम कौन हो?' देव ने कहा—'दूसरी गति में गया हुआ वही मैं अशोकदत्त हूँ।' अर्हद्दत्त ने कहा—'क्या विश्वास है?' देव ने कहा—'तुम्हें और मुझे प्रतिबोधित करने में जो कारण थे

1. ताव—ख।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

तुमए मए त पडिबोहनिमित्तं आसि जहा वेयड्ढपव्वए कुंडलजुवलयं ठवियं, ता तं चेव[1] दंसेमि त्ति; किमन्नेण पच्चएणं ति । पडिस्सुयमणेणं । तओ दिव्वरूवेण होऊणं नीओ वेयड्ढपव्वयं, दंसियं से सिद्धाययणकूडम्मि रयणावयंसयं कुंडलजुवलयं । तं चेव पेक्खिऊण विचित्तयाए कम्मपरिणामस्स समुप्पन्नं जाईसरणं । पडिबुद्धो एसो, पव्वइओ य भावओ । खामिओ देवेणं । गओ देवो ।

ताणं च अहयं, भो धरण, पुरोहियकुमारो त्ति । ता न एवं, देवाणुप्पिया, अणब्भत्थकुसलमूलाणं विराहयाणं च बुद्धी हवइ, न य अविराहयाणं विणिज्जियमहामोहसत्तूणं अणुट्ठाणं न निव्वहइ, न य इमाओ अन्नं सुंदरयरं ति । ता समीहियसंपायणेण करेहि सफलं मणुयत्तणं । धरणेण भणियं - जं भयवं आणवेइ, किं तु साहेमि जणणिजणयाणमेयवइयरं, कयाइ संबुज्झंति त्ति । भयवया भणियं— जुत्तमेयं । तओ पडिबुद्धवयंसयसमेओ पविट्ठो नयरिं । कहिओ य णेण जणणिजणयाण वइयरो । पडिबुद्धा य एए । सलाहिओ गिहासमपरिच्चाओ । कयं उचियकरणिज्जं । पवन्नो जहाविहीए सह जणणिजणएहिं वयंसएहि य अरहदत्तगुरुसमीवे समणत्तणं ।

च प्रतिबोधनिमित्तमासीद् यथा वैताढ्यपर्वते कुण्डलयुगलं स्थापितम्, ततस्तदेव दर्शयामीति, किमन्येन प्रत्ययेनेति । प्रतिश्रुतमनेन । ततो दिव्यरूपेण भूत्वा नीतो वैताढ्यपर्वतम्, दर्शितं तस्य सिद्धायतनकूटे रत्नावतंसकं कुण्डलयुगलम् । तदेव प्रेक्ष्य विचित्रतया कर्मपरिणामस्य समुत्पन्नं जातिस्मरणम् । प्रतिबुद्ध एषः । प्रव्रजितश्च भावतः, क्षामितो देवेन । गतो देवः ।

तेषां चाहं भो धरण ! पुरोहितकुमार इति । ततो नैवं देवानुप्रिय ! अनभ्यस्तकुशलमूलानां विराधकानां च बुद्धिर्भवति । न चाविराधकानां विनिर्जितमहामोहशत्रूणामनुष्ठानं न निर्वहति, न चास्मादन्यत् सुन्दरतरमिति । ततः समीहितसम्पादनेन कुरु सफलं मनुजत्वम् । धरणेन भणितम्—यद् भगवानाज्ञापयति, किन्तु कथयामि जननीजनकयोरेतद्व्यतिकरम्, कदाचित् सम्भोत्स्येते इति । भगवता भणितम्—युक्तमेतद् । ततः प्रतिबुद्धवयस्यसमेतः प्रविष्टो नगरीम् । कथितश्च तेन जननीजनकयोर्व्यतिकरः । प्रतिबुद्धौ चैतौ । श्लाघितो गृहाश्रमपरित्यागः । कृतमुचितकरणीयम् । प्रपन्नो यथाविधि सह जननीजनकाभ्यां वयस्यैश्चार्हद्दत्तगुरुसमीपे श्रमणत्वम् ।

वैताढ्यपर्वत पर वे कुण्डल स्थापित किये थे । अतः वही दिखलाता हूँ, अन्य विश्वास दिलाने से क्या (लाभ) ? इसने अंगीकार किया । तब दिव्य रूप धारण कर (देव) वैताढ्यपर्वत पर ले गया और सिद्धायतन कूट पर कानों के आभूषण कुण्डल के जोड़े को दिखाया । उसे देखकर कर्मों के परिणाम की विचित्रता से (उसे) जातिस्मरण हो गया । वह जागा । भावपूर्वक दीक्षा धारण कर ली । देव से क्षमा माँगी । देव चला गया ।

हे धरण ! मैं उनका पुरोहित कुमार हूँ । अतः हे देवानुप्रिय ! जिनका सत्कर्म का अभ्यास नहीं है, जो दूसरे का अपकार करते हैं, उसकी ऐसी बुद्धि नहीं होती है । जो दूसरे का अपकार नहीं करते हैं, जिन्होंने महामोह शत्रुओं का जीत लिया है—उनका कार्य पूरा न हो—ऐसा नहीं है और इससे अधिक सुन्दर बात नहीं अतः इष्टकार्य का सम्पादन कर मनुष्य जन्म को सफल करो ।' धरण ने कहा—'जो भगवान् आज्ञा दें, किन्तु इस सम्बन्ध में मैं माता-पिता से कहूँगा, कदाचित् ये दोनों भी जागृत हो जायँ ।' भगवान ने कहा—'यह ठीक है । अनन्तर जागृत हुआ, मित्र सहित नगरी में प्रवेश किया । उसने माता-पिता से इस सम्बन्ध में कहा । ये दोनों प्रतिबुद्ध हुए । गृहाश्रम का परित्याग करने की प्रशंसा की । योग्य कार्यों को किया । विधि-पूर्वक माता-पिता और मित्रों के साथ अर्हद्दत्त ने गुरु के समीप मुनिदीक्षा धारण कर ली ।

---

1. तं चेव पच्चयनिमित्तं तव दंसेमि—क ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अइक्कन्तो कोइ कालो । अहिज्जियं सुत्तं, आसेविओ किरियाकलावो । संपत्तो एगल्लविहार-पडिमापडिवत्तिजोग्गयं । समुप्पन्ना से इच्छा । पुच्छिया य णेण गुरवो, 'उचिओ' त्ति कलिऊण अणुजाणिओ य णेहिं । भावियाओ भावणाओ । पडिवन्नो एगल्लविहारपडिमं । गामे एगराएण नगरे पंचराएण य विहरमाणो समागओ तामलित्तिं । ठिओ पडिमाए ।

इओ य सा लच्छी देवउरनिव्वासिया गवेसाविया सुवयणेण, दिट्ठा य नंदिवद्धणाभिहाण-सन्निवेसे, घडिया य णेणं । तओ सो तं गहेऊण गओ निययदीवं ।

अइक्कन्तो कोइ कालो । पुणो आगओ तामलित्तिं । ठिओ बाहिरियाए । दिट्ठो य सो रिसी उज्जाणमुवगयाए कहवि लच्छीए, पच्चभिन्नाओ य णाए । तओ गरुययाए कम्मपरिणामस्स[1] वियंभिओ से कोवाणलो । आहया विय वज्जेणं । चिंतियं च णाए । अहो मे पावपरिणई, पुणो वि एसो दिट्ठो त्ति । ता इमं एत्थ पत्तयालं । ठवेमि एयस्स समीवे छिन्नकंकणं कंठाहरणं, 'अहो मुट्ठा मुट्ठ' त्ति करेमि कोलाहलं । तओ विवित्तयाए उज्जाणस्स दरिसणेण कंठाहरणस्स संभावियचोरभावो

अतिक्रान्तः कोऽपि कालः । अधीतं सूत्रम् । आसेवितः क्रियाकलापः । सम्प्राप्त एकाकिविहार-प्रतिमाप्रतिपत्तियोग्यताम् । समुत्पन्ना तस्येच्छा, पृष्टाश्च तेन गुरवः । 'उचितः' इति कलयित्वाऽनुज्ञातश्च तैः । भाविता भावनाः । प्रतिपन्न एकाकिविहारप्रतिमाम् । ग्रामे एकरात्रेण नगरे पञ्च-रात्रेण विहरन् समागतस्ताम्रलिप्तीम् । स्थितः प्रतिमया ।

इतश्च सा लक्ष्मीर्देवपुरनिर्वासिता गवेषिता सुवदनेन । दृष्टाश्च नन्दीवर्धनाभिधानसन्निवेशे, घटिता च तेन । ततः स तां गृहीत्वा गतो निजद्वीपम् ।

अतिक्रान्तः कोऽपि कालः । पुनरागतस्ताम्रलिप्तीम् । स्थितो बाह्यायाम् । दृष्टश्च स ऋषि-रुद्यानमुपगतया कथमपि लक्ष्म्या, प्रत्यभिज्ञातश्च तया । ततो गुरुकतया कर्मपरिणामस्य विजृम्भित-स्तस्य कोपानलः । आहतेव वज्रेण । चिन्तितं च तया --अहो मे पापपरिणतिः, पुनरप्येष दृष्ट इति । तत इदमत्र प्राप्तकालम् । स्थापयाम्येतस्य समीपे छिन्नकङ्कणं कण्ठाभरणम्, 'अहो मुषिता मुषिता' इति करोमि कोलाहलम् । ततो विविक्ततयोद्यानस्य दर्शनेन कण्ठाभरणस्य सम्भावितचौरभावश्चण्ड-

---

कुछ समय बीत गया । सूत्र का अध्ययन किया । क्रियाओं के समूह का सेवन किया । अकेले विहार करने योग्य ज्ञान प्राप्त किया । उसकी (अकेले विहार करने की) इच्छा उत्पन्न हुई । उचित है, ऐसा मानकर उन्होंने (गुरु ने) आज्ञा प्रदान कर दी । भावनाओं का चिन्तन किया । एकाकी विहार करना आरम्भ किया । ग्राम में एक रात्रि और नगर में पाँच रात्रि रहकर विहार करते हुए ताम्रलिप्ती पहुँचे । प्रतिमा रूप में स्थित हो गये ।

इधर देवपुर से निर्वासित उस लक्ष्मी को सुवदन ने ढूँढा । (वह) नन्दिवर्द्धन नाम के सन्निवेश में दिखाई दी, और उसके साथ हुई । तदनन्तर वह उसे लेकर अपने द्वीप चला गया ।

कुछ समय बीत गया । पुनः ताम्रलिप्ती आये । बाहर ही ठहर गये । उद्यान में आये हुए उस ऋषि को किसी प्रकार लक्ष्मी ने देख लिया और उसने पहिचान लिया । तब कर्मों के परिणाम की प्रबलता से उसकी क्रोधाग्नि प्रज्वलित हुई, वह मानो वज्र से आहत हुई । उसने सोचा - अरे मेरे पाप की परिणति, यह पुनः दिखाई दिया । अतः यह यहाँ काल प्राप्त हो गया । इसके समीप में जिसका कंकण टूटा हुआ है, ऐसे कण्ठाभरण को रख देती हूँ । हे जनो, 'मेरा सर्वस्व चला गया, सर्वस्व चला गया' इस प्रकार कोलाहल करती हूँ । तब उद्यान सूना होने के कारण, कण्ठाभरण के दिखाई दे जाने पर चौरकार्य की सम्भावना कर चण्डशासन राजा

---

1. पावकम्मस्स -- क ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चंडसासणेण राइणा वावाइज्जिस्सइ त्ति। गहिया य सुए भिक्खुरूवधारिणो सलोत्ता चेव तक्करा वावाइया य। ता 'लिंगिणो वि चोरियं करेंति' समुप्पन्ना पसिद्धि त्ति। चिंतिऊण संपाडियमिमीए। धाविया आरक्खिया, गहिओ सो रिसी। बोल्लाविओ तेहिं य जाव न जंपइ त्ति, गवेसियं कंठाहरणं; दिट्ठं च नाइदूरे। तओ 'छिन्नकंकणं' ति सद्दाविया नयरिजणवया। साहियं नरवइस्स। 'अहो अउव्वो तक्करो' त्ति विम्हिओ राया। भणियं च णेणं – निरूविऊण वावाएह त्ति। पुच्छिओ दंडवासिएहिं। जाव न जंपइ त्ति, तओ 'अहो से कवडवेसो' त्ति अहिययरं कुविएहिं पाविओ वज्झथामं ति। निहया सूलिया। उक्खित्तो मुणिवरो: आघोसियं चंडालेणं—भो भो नायरया, एएण समणवेसधारिणा परदव्वावहारो कओ त्ति वावाइज्जइ एसो; ता अन्नो वि जइ परदव्वावहारं करिस्सइ, तं पि राया सुतिक्खेणं डंडेण एवं चेव वावाइस्सइ त्ति। भणिऊण मुक्को य सो भयवं चंडालेहिमुवरि सूलियाए। तवप्पहावेण धरणितलमुवगया सूलिया, न विद्धो खु अहासन्निहियदेवयानिओएणं, निवडिया कुसुमवुट्ठी। 'जयइ भयवं धम्मो' त्ति उट्ठाइओ[1] कलयलो। साहियं नरवइस्स। संजायपमोओ

शासनेन राज्ञा व्यापादयिष्यते इति। गृहीताश्च श्वो भिक्षुरूपधारिणः सलोप्त्रा एव तस्करा व्यापादिताश्च। ततो 'लिङ्गिनोऽपि चौर्यं कुर्वन्ति' समुत्पन्ना प्रसिद्धिरिति। चिन्तयित्वा सम्पादितमनया। धाविता आरक्षकाः, गृहीतः स ऋषिः। वादितश्च तैश्च यावन्न जल्पतीति, गवेषितं कण्ठाभरणम्, दृष्टं च नातिदूरे। ततः 'छिन्नकङ्कणम्' इति शब्दायिता नगरीजनव्रजाः। कथितं नरपतये। 'अहो अपूर्वः तस्करः' इति विस्मितो राजा। भणितं च तेन – निरूप्य व्यापादयतेति। पृष्टो दण्डपाशिकैः, यावन्न जल्पतीति। ततः 'अहो तस्य कपटवेशः' इति अधिकतरं कुपितैः प्रापितो वध्यस्थानमिति। निहता शूलिका उत्क्षिप्तो मुनिवरः। आघोषितं चाण्डालेन – भो भो नागरा! एतेन श्रमणवेषधारिणा परद्रव्यापहारः कृत इति व्यापाद्यते एषः, ततोऽन्योऽपि यदि परद्रव्यापहारं करिष्यति तमपि राजा सुतीक्ष्णेन दण्डेन एवमेव व्यापादयिष्यति इति। भणित्वा मुक्तश्च स भगवान् चाण्डालैरुपरि शूलिकायाम्। तपःप्रभावेण धरणीतलमुपगता शूलिका, न विद्धः खलु यथासन्निहितदेवतानियोगेन, निपतिता कुसुमवृष्टिः। 'जयति भगवान् धर्मः' इत्युत्थितः कलकलः। कथितं नरपतये। सञ्जात-

द्वारा मारा जाएगा। कल भिक्षुरूपधारी चोर चोरी से माल के साथ पकड़े गये और मारे गये। अतः श्रमण वेषधारी भी चोरी करते हैं – ऐसी प्रसिद्धि है—इस प्रकार सोचकर वह चिल्लायी। सिपाही दौड़े और उस ऋषि को पकड़ लिया। उन लोगों ने उनसे पूछा, किन्तु वे नहीं बोले। कण्ठाभरण को खोजा गया, समीप में ही दिखाई पड़ा। तब 'कंकण टूटा हुआ है'—ऐसा नगर के लोगों ने शब्द किया। राजा से कहा गया—अहो! (यह) अपूर्व चोर है'—इस प्रकार राजा विस्मित हुआ। उसने कहा—'पूछताछ कर मार डालो। सैनिकों ने पूछा, कोई उत्तर नहीं मिला। तब 'अरे इसका कपट वेश'—इस प्रकार अत्यधिक कुपित होकर वध्यस्थान में पहुँचा दिया गया। शूली गाड़ी, मुनिराज को ऊँचा किया। चाण्डाल ने घोषणा की—'हे हे नगरवासियो! इस श्रमणवेषधारी ने दूसरे के द्रव्य का अपहरण किया अतः यह मारा जाता है, जो कोई दूसरा भी व्यक्ति दूसरे के द्रव्य का अपहरण करेगा, उसे भी राजा सुतीक्ष्ण दण्ड से इसी प्रकार मार डालेगा' ऐसा कहकर उसने भगवान् को शूली के ऊपर छोड़ दिया। तप के प्रभाव से शूली पृथ्वी पर आ गयी। समीपवर्ती देवता के कारण उसने मुनिराज को नहीं बेधा, फूलों की वर्षा हुई। 'भगवान् का धर्म जयशील हो'—इस

1 उद्धाइओ – क-ख।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

य आगओ राया। वंदिओ णेण भयवं। पुच्छिओ विम्हियमणेणं—भयवं, कहं पुण इमं वत्तं ति। न जंपियं भयवया। भणियं मंतिणा – देव, वयविसेससंगओ खु एसो, कहमियाणिं पि मंतइस्सइ। ता तं चेव सत्थवाहघरिणिं सद्दावेऊण पुच्छेह।

तओ पेसिया दंडवासिया। जणरवाओ[1] इमं वइयरं आयण्णिऊण पलाणा एसा, न दिट्ठा दंडवासिएहिं। निवेइयं च राइणो—देव, पलाणा खु एसा, न दीसए गेहमाइएसु। भणियं च णेणं—अरे सम्मं गवेसिऊणं आणेह[2]। गया दंडवासिया। गविट्ठा आरामसुन्नदेवउलाइएसु। न दिट्ठा एसा। दिट्ठो य कुओइ एयमायण्णिय एयवइयरेणेव पलायमाणो सुवयणो। गहिओ दंडवासिएहिं, आणीओ नरवइसमीवं। निवेइयं राइणो—देव, नत्थि सा तामलित्तीए; एसो य किल तीए भत्तारो त्ति, दिट्ठो पलायमाणो गहिओ अम्हेहिं; संपयं देवो पमाणं ति। निरूविओ सुवयणो, भणिओ य एसो—भद्द, कहिं ते घरिणि त्ति। तेण भणियं—देव, न जाणामि। राइणा भणियं—ता कीस तुमं पलाणो त्ति। सुवयणेण भणियं—देव, भएण। राइणा भणियं—कुओ निरवराहस्स भयं। सुवयणेण भणियं—देव,

---

प्रमोदश्चागतो राजा। वन्दितस्तेन भगवान्। पृष्टो विस्मितमनसा—भगवन्! कथं पुनरिदं वृत्तमिति। न जल्पितं भगवता। भणितं मन्त्रिणा—देव! व्रतविशेषसङ्गतः खल्वेषः, कथमिदानीमपि मन्त्रयिष्यते। ततस्तामेव सार्थवाहगृहिणीं शब्दापयित्वा पृच्छत।

ततः प्रेषिता दण्डपाशिकाः। जनरवादिमं व्यतिकरमाकर्ण्य पलायितैषा। न दृष्टा दण्डपाशिकैः। निवेदितं च राज्ञे—देव! पलायिता खल्वेषा, न दृश्यते गेहादिषु। भणितं च तेन—अरे सम्यग्गवेषयित्वाऽऽनयत। गता दण्डपाशिकाः। गवेषिताऽऽरामशून्यदेवकुलादिषु। न दृष्टैषा। दृष्टश्च कुतश्चिदेतदाकर्ण्य एतद्व्यतिकरेणैव पलायमानः सुवदनः। गृहीतो दण्डपाशिकैः, आनीतो नरपतिसमीपम्। निवेदितं राज्ञे—देव! नास्ति सा ताम्रलिप्त्याम्, एष च किल तस्या भर्तेति, दृष्टश्च पलायमानो गृहीतोऽस्माभिः, साम्प्रतं देवः प्रमाणमिति। निरूपितः सुवदनः भणितश्चैषः—भद्र! कुत्र ते गृहिणीति। तेन भणितम्—देव! न जानामि। राज्ञा भणितम्—ततः कस्मात्त्वं पलायित इति। सुवदनेन भणितम्—देव! भयेन। राज्ञा भणितम्—कुतो निरपराधस्य भयम्? सुवदनेन

प्रकार का कोलाहल हुआ। राजा से कहा गया। आनन्दित होकर राजा आया। उसने भगवान् की वन्दना की। विस्मित मन से पूछा—'भगवन्! यह घटना कैसे घटी?' भगवान् नहीं बोले। मन्त्रियों ने कहा—'देव! यह व्रतविशेष से युक्त हैं, अतः इस समय कैसे बतलाएँगे? अतः उसी सार्थवाह की पत्नी को बुलाकर पूछते हैं।'

तब सिपाही भेजे गये। मनुष्यों के शब्दों से इस घटना को सुनकर यह भाग गयी। सिपाहियों को नहीं दिखाई पड़ी। राजा से निवेदन किया गया—'महाराज! यह भाग गयी, घर आदि में नहीं दिखाई पड़ रही है।' राजा ने कहा—'अरे अच्छी तरह से ढूंढकर लाओ।' सिपाही गये। उद्यानों और शून्य मन्दिरों आदि में ढूँढा। यह दिखाई नहीं दी। इसी घटना को सुनकर भागता हुआ सुवदन दिखाई पड़ा। सैनिकों ने पकड़ लिया, राजा के समीप लाये। राजा से निवेदन किया—'महाराज! वह (स्त्री) ताम्रलिप्ती में नहीं है, यह उसका पति है, भागता हुआ दिखाई पड़ने के कारण हमने इसे पकड़ लिया, इस विषय में महाराज प्रमाण हैं।' राजा ने सुवदन को देखा और इससे पूछा—'भद्र! तुम्हारी पत्नी कहाँ है?' उसने कहा—'महाराज! (मैं) नहीं जानता हूँ।' राजा ने कहा—'तब तुम भागे क्यों?' सुवदन ने कहा—'महाराज, भय से।' राजा ने कहा—'निरपराध को भय कहाँ?' सुवदन ने कहा—'महाराज! अपराध है।' राजा ने कहा—'क्या अपराध है!' सुवदन ने कहा—'महाराज!

---

1. सा य जण—क। 2. 'मे समीवं' इत्यधिकः—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्थि अवराहो। राइणा भणियं—को अवराहो। सुवयणेण भणियं—देव, तहाविहकलत्तसंगहो त्ति। राइणा भणियं—भो अभयमेव तुज्झ। ता साहेहि अवितहं, को उण भयवओ तीए य वइयरो त्ति। निरूविओ सुवयणेण भयवं, पच्चभिन्नाओ य णेणं। तओ महापुरिसचरियविम्हयक्खित्तहियएणं बाहोल्ललोयणं जंपियमणेणं—देव, अणाचिक्खणीओ वइयरो, ता ण सक्कुणोमि आचिक्खिउं। राइणा भणियं—भद्द, ईइसो एस संसारो, किमेत्थ अपुव्वयं ति; ता साहेउ भद्दो। सुवयणेण भणियं—देव, जइ एवं, ता विवित्तमाइसउ देवो। तओ राइणा पुलोइओ परियणो ओसरिओ य। तओ धरणदंसण-संजायपच्छायावेण जंपियं सुवयणेणं—देव, पावकम्मो अहं पुरिससारमेओ, न उण पुरिसो त्ति। निवेइयं देवस्स—पुरिसो खु देव अकज्जायरणविरओ सच्चाहिसंधी कयन्नुओ परलोयभीरू परोवयार-निरओ य हवइ, जहा एस भयवं ति। राइणा भणियं—कहमेवंविहो पुरिससारमेओ हवइ त्ति, ता पत्थुयं भणसु। तओ साहिओ सुवयणेणं दीवदंसणाइओ अट्ठसुवन्नलक्खपयाणपज्जवसाणो धरण-वइयरो। तुट्ठो य से राया। मुक्को य णेण सुवयणो। वंदिऊण भयवंतं लज्जापराहीणयाए तुरियमेव

भणितम्—देव! अस्त्यपराधः। राज्ञा भणितम्—कोऽपराधः? सुवदनेन भणितम्—देव! तथाविध-कलत्रसंग्रह इति। राज्ञा भणितम्—भो! अभयमेव तव। ततः कथयावितथम्, कः पुनर्भगवतस्त-स्याश्च व्यतिकर इति। निरूपितः सुवदनेन भगवान्, प्रत्यभिज्ञातश्च तेन। ततो महापुरुषचरित-विस्मयाक्षिप्तहृदयेन बाष्पार्द्रलोचनं जल्पितमनेन—देव! अनाख्यानीयो व्यतिकरः, ततो न शक्नो-म्याख्यातुम्। राज्ञा भणितम्—भद्र! ईदृश एष संसारः, किमत्रापूर्वमिति, ततः कथयतु भद्रः। सुवद-नेन भणितम्—देव! यद्येवं ततो विविक्तमादिशतु देवः। ततो राज्ञा दृष्टः परिजनोऽपसृतश्च। ततो धरणदर्शनसञ्जातपश्चात्तापेन जल्पितं सुवदनेन—देव! पापकर्माऽहं पुरुषसारमेयः, न पुनः पुरुष इति। निवेदितं देवाय—पुरुषः खलु देव! अकार्याचरणविरतः सत्याभिसन्धिः कृतज्ञः परलोकभीरुः परोपकार-निरतश्च भवति, यथैष भगवानिति। राज्ञा भणितम्—कथमेवंविधः पुरुषसारमेयो भवतीति, ततः प्रस्तुतं भण। ततः कथितः सुवदनेन द्वीपदर्शनादिकोऽष्टसुवर्णलक्षप्रदानपर्यवसानो धरणव्यतिकरः। तुष्टश्च तस्य राजा। मुक्तश्च तेन सुवदनः। वन्दित्वा भगवन्तं लज्जापराधीनतया त्वरितमेव गतः

इस प्रकार की स्त्री का रखना (अपराध है)।' राजा ने कहा—'तुम्हें अभय है। अतः सच कहो, भगवान् का और उसका पारस्परिक सम्बन्ध क्या है?' सुवदन ने भगवान् को देखा और पहिचान लिया। तब महापुरुष की चेष्टा के कारण आकृष्ट हृदय वाले इसने (सुवदन ने) आँखों में आँसू भरकर कहा—'देव! सम्बन्ध न कहने योग्य है, अतः सम्बन्ध के विषय में नहीं कहता हूँ।' राजा ने कहा—'भद्र! यह संसार ऐसा ही है। यहाँ अपूर्व क्या है? अतः भद्र कहो।' सुवदन ने कहा—'देव! यदि ऐसा है तो महाराज एकान्त स्थान की आज्ञा दें।' तब राजा ने परिजनों की ओर देखा। (वे) चले गये। तब धरण को देखने के कारण जिसे पश्चात्ताप उत्पन्न हो रहा है, ऐसे सुवदन ने कहा—'महाराज! मैं पापकर्म करनेवाला, मनुष्य के रूप में कुत्ता हूँ, मनुष्य नहीं हूँ। महाराज! अकार्य न करनेवाला, सत्यप्रतिज्ञ, कृतज्ञ, परलोक से डरनेवाला तथा परोपकार में रत पुरुष है, जैसे ये भगवान् हैं।' राजा ने पूछा—'इस प्रकार कैसे पुरुष के रूप में कुत्ता होता है? ठीक-ठीक कहो!' तब सुवदन ने द्वीपदर्शन से लेकर आठ लाख सुवर्णप्रदान तक का धरण का सम्बन्ध सुनाया। उसके ऊपर राजा प्रसन्न हुआ। उसने सुवदन को छोड़ दिया। भगवान की वन्दना कर लज्जा से पराधीन हुआ सुवदन तुरन्त ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

13456 I.

गओ सुवयणो। धरणाणुराएण य अज्जमंगुसमीवे सोऊण धम्मं परियाणिऊण मिच्छत्तं पच्छाणुयावाणलदड्ढकम्मिंधणो पवन्नो समणत्तणं। राया वि पूइऊण भयवंतं पविट्ठो नयरिं।

लच्छी वि महाभयाभिभूया पलाइऊण तामलित्तीओ अवहरियवसणालंकारा तक्करेहिं जाममेत्ताए सव्वरीए पत्ता कुसत्थलाभिहाणं सन्निवेसं। तत्थ पुण तीए चेव रयणीए पारद्धं पुरोहिएणं रायमहिसीए सव्वविग्घविघायगं चरुकम्मं। पज्जालिओ सन्निवेसबाहिरियाए चउप्पहथंडिलम्मि जलणो, विइण्णा निसियकड्ढियासिणो दिसावाला, समारोविओ नहभिन्नतंदुलसमेओ चरू, पत्थुओ मंतजावो। एत्थंतरम्मि जलंतमवलोइऊण सत्थो, भविस्सइ त्ति' आगया लच्छी, सिवारावसमणंतरं च दिट्ठा दिसावालेहिं। पेच्छिऊण 'अहो एसा सा रक्खसि' त्ति भीया य एए, मुक्काइं मंडलग्गाइं, थंभिया ऊरुया, पकंपियाओ भुयाओ, विमुक्का विय जीविएणं निवडिया धरणिवट्ठे। एत्थंतरम्मि 'भो भो मा बीहसु, इत्थिया अहं' ति भणमाणी समागया पुरोहियसमीवं। दिट्ठा विगयवसणा। तओ पोरुसमवलंबिऊण 'रक्खसी एस' त्ति केसेसु गहिया अणेणं। 'अरे मा बीहसु' त्ति विबोहिया दिसावाला। उट्ठिया य

सुवदनः। धरणानुरागेण च आर्यमङ्गुसमीपे श्रुत्वा धर्मं परिज्ञाय मिथ्यात्वं पश्चादनुतापानलदग्धकर्मेन्धनः प्रपन्नः श्रमणत्वम्। राजापि पूजयित्वा भगवन्तं प्रविष्टो नगरीम्।

लक्ष्मीरपि महाभयाभिभूता पलाय्य ताम्रलिप्त्या अपहृतवसनालङ्कारास्तस्करैर्याममात्रायां शर्वर्यां प्राप्ता कुशस्थलाभिधानं सन्निवेशम्। तत्र पुनस्तस्यामेव रजन्यां प्रारब्धं पुरोहितेन राजमहिष्याः सर्वविघ्नविघातकं चरुकर्म। प्रज्वालितः सन्निवेशबाह्यायां चतुष्पथस्थण्डिले ज्वलनः, वितीर्णा निशितकृष्टासयो दिक्पालाः, समारोपितो नखभिन्नतन्दुलसमेतश्चरुः, प्रस्तुतो मन्त्रजापः। अत्रान्तरे ज्वलन्तमवलोक्य 'सार्थो भविष्यति' इत्यागता लक्ष्मीः। शिवारावसमनन्तरं च दृष्टा दिक्पालैः। प्रेक्ष्य 'अहो एषा सा राक्षसी' इति भीताश्चैते, मुक्तानि मण्डलाग्राणि, स्तम्भिता ऊरवः, प्रकम्पिता भुजाः। विमुक्ता इव जीवितेन निपतिता धरणीपृष्ठे। अत्रान्तरे 'भो भो! मा बिभीत, स्त्री अहम्' इति भणन्ती समागता पुरोहितसमीपम्। दृष्टा विगतवसना। ततः पौरुषमवलम्ब्य 'राक्षसी एषा' इति केशेषु गृहीताऽनेन। 'अरे मा बिभीत' इति विबोधिता दिक्पालाः। उत्थिता-

---

चला गया। धरण के प्रति अनुराग के कारण आर्य मङ्गु के समीप धर्म सुनकर, मिथ्यात्व के विषय में जानकारी प्राप्त कर, पश्चात्ताप के कारण जिसके कर्मों का ईंधन दग्ध हो रहा था, ऐसा वह मुनि हो गया। राजा भी भगवान की पूजा कर नगरी में प्रविष्ट हुआ।

लक्ष्मी भी भय से अभिभूत होकर ताम्रलिप्ती से प्रहरमात्र में भागकर रात्रि में कुशस्थल नामक सन्निवेश में पहुँची। उसके वसन अलंकार वगैरह चोरों ने अपहरण कर लिये थे। उसी रात्रि में राजमहिषी ने पुरोहित से समस्त विघ्नों को नष्ट करनेवाला यज्ञ प्रारम्भ कराया। सन्निवेश के बाहरी भाग में यज्ञ के लिए चौरस की हुई भूमि में अग्नि जलायी। दिशाओं की रक्षा करने वाले, तीक्ष्ण तलवारों से युक्त दिक्पालों को नियुक्त किया। नखों से तोड़े गये चावलों से युक्त पूजन सामग्री को चढ़ाया। मन्त्र-जाप प्रारम्भ किया। इसी बीच अग्नि को देखकर सुवदन होगा—ऐसा सोचकर लक्ष्मी आई और शृगाली की आवाज के बाद दिक्पालों ने (उसे) देखा। देखकर—'अरे, यह वही राक्षसी है'—इस प्रकार ये लोग भयभीत हो गये। तलवारों को छोड़ा, जंघाएँ स्तम्भित हो गयीं, भुजाएँ काँपने लगीं। मानो प्राण छूट गये हों, इस प्रकार जमीन पर गिर पड़े। इसी बीच 'अरे अरे! मत डरो—मैं स्त्री हूँ'—ऐसा कहती हुई पुरोहित के समीप आ गयी। (इसे) नग्न देखा। तब पौरुष का अवलम्बन कर 'यह राक्षसी है'—यह कहकर इसके बाल पकड़ लिये। 'अरे डरो मत'—ऐसा दिक्पालों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एए। बद्धा खु एसा। पेसिया सन्निवेसं। साहियं नरवइस्स। तेण वि य 'न पीइसज्झा रक्खसि' त्ति खाविऊण निययमंसं, विट्टालिऊण असुइणा, कयत्थिऊण नाणाविडंबणाहिं, निब्भच्छिऊण य सरोसं तओ निव्वासिय त्ति। अलभमाणी य गामाइसु पवेसं परिब्भमंती अडवीए पुव्वकयकम्मपरिणामेण विय घोररूवेण वावाइया मइंदेण। समुप्पन्ना य एसा धूमप्पहाए निरयपुढवीए सत्तरससागरोवमट्ठिई नारगो त्ति।

धरणो वि भगवं अहासंजमं विहरिऊण पवड्ढमाणसुहपरिणामो काऊण संलेहणं पवन्नो पायवगमणं। विवन्नो कालक्कमेणं, समुप्पन्नो आरणाभिहाणे देवलोए चंदकंते विमाणे एक्कवीस-सागरोवमाऊ वेमाणिओ त्ति।

छट्ठं भवग्गहणं समत्तं॥

श्चैते। बद्धा खल्वेषा। प्रेषिता सन्निवेशम्। कथितं नरपतेः। तेनापि च 'न प्रीतिसाध्या राक्षसी' इति खादयित्वा निजमांसं संसृज्याशुचिना, कदर्थयित्वा नानाविडम्बनाभिर्निर्भर्त्स्यं च सरोषं ततो निर्वासितेति। अलभमाना च ग्रामादिषु प्रवेशं परिभ्रमन्त्यटव्यां पूर्वकृतकर्मपरिणामेनेव घोररूपेण व्यापादिता मृगेन्द्रेण। समुत्पन्ना चैषा धूमप्रभायां निरयपृथिव्यां सप्तदशसागरोपमस्थितिर्नारक इति।

धरणोऽपि च भगवान् यथासंयमं विहृत्य प्रवर्धमानशुभपरिणामः कृत्वा संलेखनां प्रपन्नः पादपगमनम्। विपन्नः कालक्रमेण, समुत्पन्न आरणाभिधाने देवलोके चन्द्रकान्ते विमाने एकविंशति-सागरोपमायुर्वैमानिक इति।

इति श्रीयाकिनीमहत्तरासूनुपरमगुणानुरागिभगवच्छ्रीहरिभद्रसूरिविरचितायां समरादित्यकथायां पण्डितभगवानदासकृते संस्कृतच्छायानुवादे षष्ठो भवः समाप्तः॥

ने प्रबुद्ध किया। ये लोग उठे, इसे बाँधा। सन्निवेश में भेजा। राजा से कहा। उसने भी 'राक्षसी प्रीति से साध्य नहीं होती है'--ऐसा सोचकर उसी का मांस खिलाकर, अपवित्र पदार्थों से संयोग कराकर, तरह तरह से अपमानित करके और फटकार कर रोषपूर्वक बाहर निकाल दिया। ग्रामादि में प्रवेश न पाने के कारण जंगल में भ्रमण करती हुई पूर्वकृत कर्मों के फलस्वरूप (उसे) घोररूप वाले सिंह ने मार डाला। यह धूमप्रभा नामक नरक की भूमि में उत्पन्न हुई, उसकी आयु सत्रह सागरोपम थी।

वह भगवान् धरण भी संयमपूर्वक विहार करते हुए, शुभ परिणामों का विकास करते हुए, सल्लेखना को स्वीकार करके समाधिमरण को प्राप्त हुए। कालक्रम से मर कर आरण नामक स्वर्ग के चन्द्रकान्त नामक विमान में इक्कीस हजार सागरोपम आयुवाले वैमानिक देव हुए।

इस प्रकार याकिनीमहत्तरा के पुत्र, परमगुणों के अनुरागी भगवान् श्री हरिभद्रसूरिविरचित समरादित्य कथा का छठा भव समाप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ सत्तमो भवो ॥

वक्खायं जं भणियं धरणो लच्छी य [1]तह य पइभज्जा ।
एत्तो सेणविसेणा पित्तियपुत्त त्ति वोच्छामि ॥ ५५५ ॥

अत्थि इहेव जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे सेसफणाभोयसन्निहेण [2]पायारेण हिमगिरिसिहरसरिसेहिं भवणेहिं लहुइयनंदणवणेहिं उववणेहिं विणिज्जियमाणससरेहिं सरेहिं चंपा नाम नयरी। जीए अहिट्ठाणं विय रूवस्स बीयं विय सुंदरयाए जोणी विय विणयस्स चेट्ठियं विय मयरकेउणो संसारम्मि वि रमणीयबुद्धिजणओ इत्थियायणो। जीए य अपिसुणो अमच्छरी कयन्नू दक्खो सुहाभिगमणीओ पुरिसवग्गो। तीए य दरियारिमद्दणो अमरसेणो नाम [3]नरवई होत्था।

जो माणविक्कमधणो पसाहियासेसदिसिवहुभएण ।
ईसानडियाए व निच्चमेव लच्छीए [4]उवऊढो ॥ ५५६ ॥

व्याख्यातं यद् भणितं धरणो लक्ष्मीश्च तथा च पतिभार्ये ।
इतः सेनविषेणौ पितृव्यपुत्राविति वक्ष्ये ॥ ५५५ ॥

अस्तीहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे शेषफणाभोगसन्निभेन प्राकारेण हिमगिरिशिखरसदृशैर्भवनैर्लघूकृतनन्दनवनैरुपवनैर्विनिर्जितमानसरोभिः सरोभिः सुशोभिता चम्पा नाम नगरी। यस्यामधिष्ठानमिव रूपस्य बीजमिव सुन्दरताया योनिरिव विनयस्य चेष्टितमिव मकरकेतोः संसारेऽपि रमणीयबुद्धिजनकः स्त्रीजनः। यस्यां चापिशुनोऽमत्सरी कृतज्ञो दक्षः सुखाधिगमनीयः पुरुषवर्गः। तस्यां च दृप्तारिमर्दनोऽमरसेनो नाम नरपतिरभवत्।

यो मानविक्रमधनः प्रसाधिताशेषदिग्वधूभयेन ।
ईर्ष्याविधाकुलयेव नित्यमेव लक्ष्म्योपगूढः ॥ ५५६ ॥

धरण और लक्ष्मी के रूप में पति-पत्नी के विषय में जो कहा गया, उसकी व्याख्या हो चुकी। अब सेन और विषेण के रूप में चचेरे भाइयों के विषय में कहता हूँ॥ ५५५ ॥

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में शेषनाग के फण के समान विस्तारवाले प्राकार से, हिमालय के शिखर के सदृश भवनों से, नन्दनवन को तिरस्कृत करनेवाले उपवनों से तथा मानसरोवर को जीतनेवाले सरोवरों से सुशोभित चम्पा नाम की नगरी है। जिसमें रूप की अधिष्ठान जैसी, सौन्दर्य की बीज जैसी, विनय की योनि जैसी, काम की चेष्टा जैसी तथा संसार में रमणीयता की बुद्धि उत्पन्न करनेवाली स्त्रियाँ थीं। जिस नगरी में पुरुषवर्ग कृतज्ञ, दक्ष तथा सुख से प्राप्त करने योग्य था, चुगलखोर और द्वेषी नहीं था, उस नगरी में अभिमानी शत्रुओं का मर्दन करनेवाला अमरसेन नामक राजा हुआ।

वह राजा मान और पराक्रम रूप धन से युक्त था। सजी हुई समस्त दिशाओं रूप वधुओं के भय और ईर्ष्या के कारण ही मानो व्याकुल हुई लक्ष्मी से सदैव आलिङ्गित रहता था॥ ५५६ ॥

---

१. तह पई—क। २. पागारेण—क। ३. नरवनी—क, ख। ४. अवऊढो—ख।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्स सयलंतेउरपहाणा जयसुंदरी नाम भारिया। स इमीए सह विसयसुहमणुहवंतो[1] चिट्ठइ।
इओ य सो आरणकप्पवासी देवो अहाउयं पालिऊण तओ चुओ समाणो जयसुंदरीए गब्भम्मि उववन्नो त्ति। दिट्ठो य णाए [2]सुविणयम्मि तीए चेव रयणीए पहायसमयम्मि कणयमयतुंगदंडो अणेयरयणभूसिओ देवदूसावलंबियपडाओ महुरपवणंदोलिरो निवासो व्व रम्मयाए भूसणं विय नहयलस्स उप्पत्ती विय विम्हयाणं चक्करयणचूडामणी महाधओ वयणेणमुयरं पविसमाणो त्ति। पासिऊण तं सुहविउद्धा एसा। सिट्ठो य णाए जहाविहिं दइयस्स। हरिसवसपयट्टपुलएण भणिया य णेणं सुंदरि, सयलनरिंदकेउभूओ पुत्तो ते भविस्सइ। पडिस्सुयमिमीए। अहिययरं परितुट्ठा एसा। तओ य सविसेसं तिवग्गसंपायणरयाए पत्तो पसूइसमओ। पसूया एसा। जाओ से दारओ। निवेइयं च राइणो अमरसेणस्स हरिसमइनामाए चेडियाए, जहा 'महाराय, देवी जयसुंदरी दारयं पसूय' त्ति। परितुट्ठो राया। दिन्नं इमीए पारितोसियं। कयं उचियकरणिज्जं। अइक्कंतो मासो। पइट्ठावियं

तस्य सकलान्तःपुरप्रधाना जयसुन्दरी नाम भार्या। सोऽनया सह विषयसुखमनुभवन् तिष्ठति।
इतश्च स आरणकल्पवासी देवो यथायुः पालयित्वा ततश्च्युतः सन् जयसुन्दर्या गर्भे उपपन्न इति। दृष्टश्चानया स्वप्ने तस्यामेव रजन्यां प्रभातसमये कनकमयतुङ्गदण्डोऽनेकरत्नभूषितो देवदूष्यावलम्बितपताको मधुरपवनान्दोलनशीलो निवास इव रम्यताया भूषणमिव नभस्तलस्य उत्पत्तिरिव विस्मयानां चक्ररत्नचूडामणिर्महाध्वजो वदनेनोदरं प्रविशन्निति। दृष्ट्वा तं सुखविबुद्धैषा। शिष्टश्चानया यथाविधि दयिताय। हर्षवशप्रवृत्तपुलकेन भणिता च तेन—सुन्दरि! सकलनरेन्द्रकेतुभूतः पुत्रस्ते भविष्यति। प्रतिश्रुतमनया। अधिकतरं परितुष्टैषा। ततश्च सविशेषं त्रिवर्गसम्पादनरतायाः प्राप्तः प्रसूतिसमयः। प्रसूतैषा। जातस्तस्य दारकः। निवेदितं च राज्ञोऽमरसेनस्य हर्षवतीनामया चेटिकया, यथा 'महाराज! देवी जयसुन्दरी दारकं प्रसूतेति।' परितुष्टो राजा। दत्तमस्यै पारितोषिकम्। कृतमुचितकरणीयम्। अतिक्रान्तो मासः। प्रतिष्ठापितं नाम

उसकी समस्त अन्तःपुर में प्रधान जयसुन्दरी नामक पत्नी थी। वह इसके साथ विषयसुख का अनुभव करते हुए रहता था।

इधर वह आरण स्वर्ग का वासी देव आयु पूर्ण कर वहाँ से च्युत होकर जयसुन्दरी के गर्भ में आया। इसने स्वप्न में उसी रात्रि को प्रातः समय महाध्वज को मुख से उदर में प्रवेश करते हुए देखा। वह ध्वज स्वर्णमय उन्नत दण्डवाला था, अनेक रत्नों से भूषित था, देववस्त्र की लटकती हुई पताकावाला था और मधुर पवन से फहरा रहा था। वह रम्यता का मानो निवास, आकाश का मानो भूषण, विस्मयों का मानो उद्गमस्थल तथा चक्ररत्न रूपी चूडामणि से युक्त था। उसे देखकर यह सुखपूर्वक जाग गयी। इसने विधिपूर्वक स्वामी से निवेदन किया। हर्ष के वश जिसे रोमांच हो आया है, ऐसे राजा ने उससे कहा—'सुन्दरि! समस्त राजाओं के ध्वज के समान (अग्रणी) तुम्हारा पुत्र होगा।' इसने स्वीकार किया। यह अत्यधिक सन्तुष्ट हुई। अनन्तर विशेष रूप से धर्म, अर्थ और काम के सम्पादन में रत रहते हुए इसका प्रसूतिसमय आया। इसने प्रसव किया। इसके पुत्र उत्पन्न हुआ। हर्षवती नामक दासी ने अमरसेन राजा से निवेदन किया कि महाराज! देवी जयसुन्दरी के पुत्र उत्पन्न हुआ है। राजा सन्तुष्ट हुआ। (उसने) दासी को पारितोषिक दिया। योग्य क्रियाओं को किया। एक मास

---

1. मणुहविसु त्ति—क। 2. सिविणयम्मि—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नामं दारयस्स सेणो त्ति। अइक्कंतो संवच्छरो।

एत्थंतरम्मि सो लच्छीजीवनारओ तओ [1]नरयाओ उव्वट्टिय पुणो य संसारमाहिंडिय अणंतरभवे तहाविहं किंपि अणुट्ठाणं काऊण समुप्पन्नो अमरसेणभाउणो हरिसेणजुवरायस्स तारप्पहाए भारियाए कुच्छिसि पुत्तत्ताए त्ति। जाओ उचियसमएणं। पइट्ठावियं च से नामं विसेणो त्ति। अइक्कंतो कोइ कालो। वड्ढिओ कुमारसेणो देहोवचएणं कलाकलावेण य। अत्थि य इमस्स पीई विसेणकुमारे, न उण तस्स इयरम्मि।

अन्नया य [2]समुद्धाइओ नयरीए जयजयरवो, अहिट्ठियं नहयलं सुरसिद्धविज्जाहरेहिं, निवडिया कुसुमवुट्ठी। तओ राइणा भणियं—भो भो किमेयं ति गवेसिऊण लहुं संवाएह। तओ गवेसिऊण निवेइयं से पडिहारेणं—देव, समुप्पन्नमेत्थ भूयभविस्सवत्तमाणत्थगाहयं सयललोयालोयविसयं साहूणीए केवलनाणं ति। आणंदिया नयरी, पमुइया सुरसिद्धविज्जाहरा थुणंति महुरवग्गूहिं। एयं सोऊण देवो पमाणं ति। तओ हरिसिओ राया पयट्टो वंदणनिमित्तं भयवईए।

दारकस्य सेन इति। अतिक्रान्तः संवत्सरः।

अत्रान्तरे स लक्ष्मीजीवनारकस्ततो नरकादुद्वृत्य पुनश्च संसारमाहिण्ड्यानन्तरभवे तथाविधं किमप्यनुष्ठानं कृत्वा समुत्पन्नोऽमरसेनभ्रातुर्हरिषेणयुवराजस्य तारप्रभाया भार्यायाः कुक्षौ पुत्रतयेति। जात उचितसमयेन। प्रतिष्ठापितं च तस्य नाम विषेण इति। अतिक्रान्तः कोऽपि कालः। वृद्धः कुमारसेनो देहोपचयेन कलाकलापेन च। अस्ति चास्य प्रीतिर्विषेणकुमारे, न पुनस्तस्येतरस्मिन्।

अन्यदा च समुद्धावितो जयजयरवः, अधिष्ठितं नभस्तलं सुरसिद्धविद्याधरैः, निपतिता कुसुमवृष्टिः। ततो राज्ञा भणितम्—भो भोः किमेतदिति गवेषयित्वा लघु संवादयत। ततो गवेषयित्वा निवेदितं तस्य प्रतीहारेण—देव! समुत्पन्नमत्र भूतभविष्यद्वर्तमानार्थग्राहकं सकललोकालोकविषयं साध्व्याः केवलज्ञानमिति। आनन्दिता नगरी, प्रमुदिता सुरसिद्धविद्याधराः स्तुवन्ति मधुरवाग्भिः। एतच्छ्रुत्वा देवः प्रमाणमिति। ततो हर्षितो राजा प्रवृत्तो वन्दननिमित्तं भगवत्याः।

व्यतीत हुआ। पुत्र का नाम सेन रखा गया। एक वर्ष बीता।

इसी बीच वह लक्ष्मी का जीव नारकी उस नरक से निकलकर पुनः संसार में घूमकर अनन्तर भव में उस प्रकार का कोई अनुष्ठान करके अमरसेन के भाई हरिषेण युवराज की तारप्रभा नामक स्त्री के गर्भ में पुत्र के रूप में आया। उचित समय पर उत्पन्न हुआ। उसका नाम विषेण रखा गया। कुछ समय बीता। कुमार सेन कलाओं के समूह और वृद्धि को प्राप्त होता गया। सेन की विषेणकुमार के प्रति तो प्रीति थी, किन्तु विषेण की सेन के प्रति प्रीति नहीं थी।

एक बार 'जय जय' शब्द उठा। आकाश सुर, सिद्ध और विद्याधरों से अधिष्ठित हो गया। फूलों की वर्षा हुई। अनन्तर राजा ने कहा—'हे हे! यह क्या है? पता लगाकर शीघ्र ही कहो।' अनन्तर पता लगाकर उससे प्रतीहार ने कहा—'महाराज! यहाँ पर भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालीन पदार्थ को जाननेवाला, समस्त लोक और अलोक को विषय करनेवाला केवलज्ञान एक साध्वी के उत्पन्न हुआ है। नगरी आनन्दित है, प्रमुदित होकर देव, सिद्ध तथा विद्याधर मधुरवचनों से स्तुति कर रहे हैं। यह सुनकर महाराज प्रमाण हैं। तब राजा हर्षित होकर भगवती की वन्दना के लिए गया।

---

१. निरयाओ—ख। २. समुट्ठाइओ—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पत्तो य सो कमेणं पडिस्सयं धम्मनिहियणियचित्तो ।
वरसिप्पिसिप्पसव्वस्सनिम्मियं सुरविमाणं व ॥५५७॥
निम्मलफलिहच्छायं कंचणकयपालिकयपरिक्खेवं ।
पायडियविज्जुवलयं सरयंबुहरस्स सिहरं व ॥५५८॥
विप्फुरियजच्चकंचणकिंकिणिकिरणाणुरंजियपडायं ।
रययमयगिरिवरं पिव पज्जलियमहोसहिसणाहं ॥५५९॥
कयविमलफलिहनिम्मलकोट्टिमसंकंतकंचणत्थंभं ।
थंभोचियविद्दुमकिरणरत्तमुत्ताहलोऊलं ॥५६०॥
ओऊललग्गमरगयमऊहहरियायमाणसियचमरं ।
सियचमरदंडचामीयरप्पहापिंजरद्दायं ॥५६१॥
अद्दायगयविरायंतपवरमणिरयणहारनिउरुंबं ।
हारनिउरुंबलंबियकंचणमयकिंकिणीजालं ॥५६२॥

प्राप्तश्च स क्रमेण प्रतिश्रयं धर्मनिहितनिजचित्तः ।
वरशिल्पिशिल्पसर्वस्वनिर्मितं सुरविमानमिव ॥५५७॥
निर्मलस्फटिकच्छायं काञ्चनकृतपालिकृतपरिक्षेपम् ।
प्रकटितविद्युद्वलयं शरदम्बुधरस्य शिखरमिव ॥५५८॥
विस्फुरितजात्यकाञ्चनकिङ्किणीकिरणानुरञ्जितपताकम् ।
रजतमयगिरिवरमिव प्रज्वलितमहौषधिसनाथम् ॥५५९॥
कृतविमलस्फटिकनिर्मलकुट्टिमसंक्रान्तकाञ्चनस्तम्भम् ।
स्तम्भोचितविद्रुमकिरणरक्तमुक्ताफलावचूलम् ॥ ५६०॥
अवचूललग्नमरकतमयूखहरितायमानसितचामरम् ।
सितचामरदण्डचामीकरप्रभापिञ्जरादर्शम् ॥५६१॥
आदर्शगतविराजत्प्रवरमणिरत्नहारनिकुरम्बम् ।
हारनिकुरम्बलम्बितकाञ्चनमयकिङ्किणीजालम् ॥५६२॥

वह राजा अपने चित्त में धर्म धारण कर क्रम से सभामण्डप में पहुँचा। वह सभामण्डप श्रेष्ठ शिल्पियों द्वारा शिल्प के सर्वस्व से निर्मित देवविमान के समान था, स्वच्छ स्फटिक के समान उसकी कान्ति थी, स्वर्ण निर्मित किनारे से उसका घेरा बनाया गया था, शरत्कालीन मेघ के शिखर के सदृश बिजली के समूह को प्रकट कर रहा था, चमकदार तपाये हुए सोने से निर्मित छोटी-छोटी घण्टियों की किरणों से उसकी पताकाएँ अनुरञ्जित थीं, वह कैलाशपर्वत के समान देदीप्यमान महौषधियों से युक्त था। स्वच्छ स्फटिक के साफ फर्श पर सोने के खम्भे प्रतिबिम्बित हो रहे थे, स्तम्भ के अनुरूप मूँगे की किरणों से मोतियों के गुच्छे रंगीन हो रहे थे, गुच्छों में लगे हुए मरकतमणियों की किरणों से सफेद चँवर हरे-हरे हो रहे थे, सफेद चँवर के दण्ड की किरणों की प्रभा से दर्पण पीले-पीले हो रहे थे, दर्पण में उत्कृष्ट मणियों के हारों का समूह शोभित हो रहा था, हारों के समूह पर स्वर्णमय छोटी-छोटी घण्टियाँ लटक रही थीं ॥५५७-५६२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जालंतरनिंतपरिप्फुरंतदीसंतविविहमणिकिरणं ।
मणिकिरणुज्जलमउडाहिं कणयपडिमाहिं [1]पज्जुत्तं ॥५६३॥
दिट्ठा य तेण तेहिं[2] य नित्थिण्णभवण्णवा तहिं गणिणी ।
सिरिसरिसरूवसोहा गुणरयणविभूसिया सोम्मा ॥५६४॥
आसीणा समणोवासियाहिं तह साहूणीहिं परिकिण्णा ।
संपुण्णमुहमियंका निसि व्व नक्खत्तपंतीहिं ॥५६५॥
[3]विच्छूढरोसतिमिरा फुरंतबिंबाहरारुणच्छाया ।
उज्झियताराहरणा रयणिवरामे व्व पुव्वदिसा ॥५६६॥
धवलपडपाउयंगी तिव्वतवोलुग्गमुद्धमुहयंदा ।
जलरहियललिणजलहरपडलपिहिय व्व सरयनिसा ॥५६७॥

अहिणंदिया राइणा भयवई । विमुक्कं कुसुमवरिसं, उग्गाहिओ धूवो । करयलकयंजलिउडं

जालान्तरगतपरिस्फुरद्दृश्यमानविविधमणिकिरणम् ।
मणिकिरणोज्ज्वलमुकुटाभिः कनकप्रतिमाभिः प्रयुक्तम् ॥५६३॥
दृष्टा च तेन तैश्च निस्तीर्णभवार्णवा तत्र गणिनी ।
श्रीसदृशरूपशोभा गुणरत्नविभूषिता सौम्या ॥५६४॥
आसीना श्रमणोपासिकाभिस्तथा साध्वीभिः परिकीर्णा ।
सम्पूर्णमुखमृगाङ्का निशेव नक्षत्रपंक्तिभिः ॥५६५॥
विक्षिप्तरोषतिमिरा स्फुरद्बिम्बाधरारुणच्छाया ।
उज्झितताराभरणा रजनीविरामे इव पूर्वदिक् ॥ ५६६॥
धवलपटप्रावृताङ्गा तीव्रतपोऽवरुग्ण (कृश) मुग्धमुखचन्द्रा ।
जलरहितलिन (कृश) जलधरपटलपिहितेव शरन्निशा ॥५६७॥

अभिनन्दिता राज्ञा भगवती विमुक्तं कुसुमवर्षम् । उद्ग्राहितो धूपः । करतलकृताञ्जलिपुटं

घण्टियों के समूह के मध्य चमकते हुए रत्नों की किरणें दिखाई दे रही थीं, मणियों की किरणों से उज्ज्वल मुकुटों में स्वर्णप्रतिमाएँ लगायी गयी थीं। वहाँ पर राजा तथा अन्य लोगों ने संसाररूपी समुद्र को पार हुई गणिनी देखी। लक्ष्मी के समान उसकी रूपशोभा थी, वह गुणरूपी रत्नों से विभूषित तथा सौम्य थी। साध्वियों, श्रमणों और उपासिकाओं से घिरी हुई वह विराजमान थी तथा सम्पूर्ण चन्द्रमा को धारण किये हुए नक्षत्रपंक्ति से युक्त रात्रि के समान प्रतीत हो रही थी। रोषरूपी अन्धकार का उसने त्याग कर दिया था। बिम्बाफल के समान उसके अधर से लाल कान्ति विकीर्ण हो रही थी। वह ताराओं रूपी आभरण का त्याग किये हुए रात्रि के अन्तवर्ती पूर्वदिशा के समान लग रही थी। सफेद वस्त्रों से वह अंगों को ढके हुए थी और तीव्र तप के कारण उसका मुग्ध मुखरूपी चन्द्रमा कृश (दुर्बल) हो रहा था और वह जल से रहित (कृश) मेघसमूह से ढकी हुई शरत्कालीन रात्रि के समान लग रही थी ॥५६३-५६७॥

राजा ने भगवती का अभिनन्दन किया, फूलों की वर्षा की। धूप उठायी। हाथ जोड़कर पैरों में पड़

१. पज्जत्त—ग। २. तहियं—क, ख। ३. निच्छूढ—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निवडिओ चलणेसु, उवविट्ठो कुट्टिमतले। पत्थुया धम्मकहा।

एत्थंतरम्मि समहिलिया चेव समागया बंधुदेवसागरनामा सत्थवाहपुत्ता। पणमिऊण भयवइं भणियं सागरेण - महाराय, न एत्थ खेवो[1] कायव्वो त्ति। दिट्ठं मए अच्चब्भुयं असंभावणीयं महारायस्स वि एगंतविम्हयजणयं किंचि वत्थुं। विम्हियविक्खित्तहियओ अमुणियतयत्थो न चएमि चिट्ठिउं। ता किं तयं ति पुच्छामि भयवइं। राइणा भणियं – भो सत्थवाहपुत्त, किं तमच्चब्भुयं असंभावणीयं च। सागरेण भणियं—देव सुण।

अत्थि इओ कोइ कालो पणइणीए मे पणट्ठस्स हारस्स। विसुमरिओ एसो। गओ य अहमज्ज भुत्तुत्तरसमयम्मि चित्तसालियं, जाव अयंडम्मि चेव चित्तंतरालगएण ऊससियं मोरेण उन्नामिया गीवा विहुयं [2]पक्खजालं पसारिओ बरिहभारो। तओ ओयरिऊण तओ विभागाओ कुसुम्भरत्तवसणसंगयम्मि पडलए विमुक्को णेण हारो। गओ [3]निययथामं, ठिओ निययरूवेणं। समुप्पन्नो य मे विम्हओ 'हंत किमेयं' ति। तओ थेववेलाए चेव समुद्धाइओ जयजयारवो, विभूसियमंबरं सुरसिद्ध-

निपतितश्चरणयोः। उपविष्टः कुट्टिमतले। प्रस्तुता धर्मकथा।

अत्रान्तरे समहिलावेव समागतौ बन्धुदेवसागरनामानौ सार्थवाहपुत्रौ। प्रणम्य भगवतीं भणितं सागरेण—महाराज! नात्र खेदः कर्तव्य इति। दृष्टं मयाऽत्यद्भुतमसम्भावनीयं महाराजस्यापि एकान्तविस्मयजनकं किञ्चिद् वस्तु। विस्मयाक्षिप्तहृदयोऽज्ञाततदर्थो न शक्नोमि स्थातुम्। ततः किं तदिति पृच्छामि भगवतीम्। राज्ञा भणितम्—भो सार्थवाहपुत्र! किं तदत्यद्भुतमसम्भावनीयं च? सागरेण भणितम्—देव शृणु।

अस्तीतः कोऽपि कालः प्रणयिन्या मे प्रनष्टस्य हारस्य। विस्मृत एषः। गतश्चाहमद्य भुक्तोत्तरसमये चित्रशालिकाम्, यावदकाण्डे एव चित्रान्तरालगतेनोच्छ्वसितं मयूरेण, उन्नामिता ग्रीवा, विधूतं पक्षजालम्, प्रसारितो बर्हभारः। ततोऽवतीर्य ततो विभागात् कुसुम्भरक्तवसनसङ्गते पटलके विमुक्तस्तेन हारः। गतो निजस्थानम्, स्थितो निजरूपेण। समुत्पन्नश्च मे विस्मयो 'हन्त किमेतद्' इति। ततः स्तोकवेलायामेव समुद्धावितो जयजयारवः, विभूषितमम्बरं सुरसिद्धविद्याधरैः,

गया। फर्श पर बैठ गया। धर्म कथा प्रस्तुत हुई।

इसी बीच दो महिलाओं के साथ बन्धुदेव और सागर नाम के दो वणिकपुत्र आये। भगवती को नमस्कार कर सागर ने कहा—'महाराज! आप अब खेद न करें, मैंने अत्यन्त अद्भुत और असम्भावनीय तथा महाराज को एकान्तरूप से विस्मय में डाल देनेवाली कोई वस्तु देखी है। विस्मय से पूर्ण हृदयवाला मैं उसके अर्थ का निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ। अतः वह क्या है, यह भगवती से पूछता हूँ।' राजा ने कहा—'हे वणिक्पुत्र! वह अत्यन्त अद्भुत और असम्भावनीय वस्तु क्या है?' सागर ने कहा—'सुनो।

कुछ समय पहले मेरी प्रिया का हार नष्ट हो गया था। यह भूल गयी। आज मैं भोजन के बाद चित्रशाला में गया, तब असमय में ही चित्रशाला के बीच में ही मोर ने लम्बी साँस ली, गर्दन ऊँची की, पंखों को फड़फड़ाया, पूँछ फैलायी। फिर उस भाग से उतरकर कुसुम्भी रंग के वस्त्र से युक्त पेटी में उसने हार छोड़ा। वह मोर अपने स्थान पर चला गया और अपने स्वाभाविक रूप में खड़ा हो गया। मुझे विस्मय हुआ—आश्चर्य है, यह क्या है! अनन्तर थोड़े ही समय में जय जय शब्द उठा। सुर, सिद्ध और विद्याधरों से आकाश विभूषित हो गया,

१. खेओ—क। २. पक्खजालियं—क। ३. नियमेव—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विज्जाहरेहिं, पवुट्ठं कुसुमवरिसं। आयण्णियं च लोयाओ जहा समुप्पन्नं भयवईए केवलनाणं ति। तओ भत्तिविम्हयक्खित्तहियओ समागओ इहइं ति।

राइणा भणियं—अहो सच्चमच्चब्भुयं असंभावणिज्जं च। भयवइ किमेयं ति। भयवईए भणियं—सोम, किमच्चब्भुयं असंभावणिज्जं च कम्मपरिणईए। णियफलदाणसमुज्जयम्मि एयम्मि नत्थि तं, जं न होइ त्ति। तत्थ असुहम्मि ताव जलं पि हुयासणो, चंदो वि तिमिरहेऊ, नओ वि अणओ, मित्तो वि वेरिओ, अत्थो वि अणत्थो, भवणोयरगयस्स वि य सव्वस्सपाणनासयं अप्पतक्कियं चेव निवडइ नहयलाओ वि असणिवरिसं। सुहम्मि विवज्जओ। तं जहा—विसं पि अमयं, दुज्जणो वि सज्जणो, कुचेट्ठा वि फलहेऊ, अयसो वि हु जसो, दुव्वयणं पि सुवयणं, गिरिमत्थयगयस्स वि य सयलजणपीइकारयं सग्घमेव लोयंतरे वि सुहावहं कुओ वि संपज्जए महानिहाणं ति। राइणा भणियं—भयवइ, अह कस्स पुण एसा कम्मपरिणई। भयवईए भणियं—सोम, मज्झेव आसि त्ति। राइणा भणियं—कहं किंनिमित्तस्स वा कम्मस्स। भयवईए भणियं—सुण।

प्रवृष्टं कुसुमवर्षम्। आकर्णितं च लोकाद् यथा समुत्पन्नं भगवत्याः केवलज्ञानमिति। ततो भक्तिविस्मयाक्षिप्तहृदयः समागत इहेति।

राज्ञा भणितम्—अहो सत्यमद्भुतमसम्भावनीयं च। भगवति! किमेतदिति। भगवत्या भणितम्—सौम्य! किमत्यद्भुतमसम्भावनीयं च कर्मपरिणत्याः? निजफलदानसमुद्यते एतस्मिन् नास्ति तद् यन्न भवतीति। तत्राशुभे तावज्जलमपि हुताशनः, चन्द्रोऽपि तिमिरहेतुः, नयोऽप्यनयः, मित्रमपि वैरिकः, अर्थोऽप्यनर्थः, भवनोतरगतस्यापि च सर्वस्वप्राणनाशकमप्रतर्कितमेव निपतति नभस्तलादप्यशनिवर्षम्। शुभे विपर्ययः। तद् यथा—विषमप्यमृतम्, दुर्जनोऽपि सज्जनः, कुचेष्टाऽपि फलहेतुः, अयशोऽपि खलु यशः, दुर्वचनमपि सुवचनम्, गिरिमस्तकगतस्यापि च सकलजनप्रीतिकारकं शीघ्रमेव लोकान्तरेऽपि सुखावहं कुतोऽपि सम्पद्यते महानिधानमिति। राज्ञा भणितम्—भगवति! अथ कस्य पुनरेषा कर्मपरिणतिः? भगवत्या भणितम्—सौम्य! ममैव आसीदिति। राज्ञा भणितम्—कथं किंनिमित्तस्य वा कर्मणः? भगवत्या भणितम्—शृणु।

फूलों की वर्षा हुई और लोगों ने सुना कि भगवती को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। पश्चात् भक्ति के कारण विस्मय से भरे हुए हृदयवाला मैं यहाँ आ गया।'

राजा ने कहा—'ओह! सचमुच अत्यन्त अद्भुत और असम्भावनीय है। भगवती! यह क्या है?' भगवती ने कहा—'हे सौम्य! कर्म की परिणति के लिए क्या अद्भुत और असम्भावनीय है! जब यह अपना फल देने के लिए उद्यत होती है तो ऐसा कुछ नहीं, जो न होता हो। अशुभकर्म आने पर जल भी अग्नि हो जाता है, चन्द्रमा भी अन्धकार का कारण हो जाता है, नीति भी अनीति हो जाती है, मित्र भी वैरी हो जाता है, अर्थ भी अनर्थ हो जाता है, भवन के अन्दर रहनेवाले के सर्वस्वभूत प्राणों का नाश अनायास ही हो जाता है तथा बिना किसी सम्भावना के आकाश से भी वज्र की वर्षा हो जाती है! शुभकर्म आने पर विपरीत बात होती है। जैसे—विष भी अमृत हो जाता है, दुर्जन भी सज्जन हो जाता है, कुचेष्टा भी फल का कारण होती है, अयश भी यश हो जाता है, दुर्वचन भी सुवचन हो जाते हैं, पर्वत की चोटी पर गये हुए का भी समस्त मनुष्यों के लिए प्रीतिकारक, दूसरे लोक में भी सुखावह, महानिधान की शीघ्र ही कहीं से प्राप्ति हो जाती है।' राजा ने कहा—'भगवती! यह कर्मपरिणति किसकी थी?' भगवती ने कहा—'सौम्य! मेरी ही थी।' राजा ने कहा—'किस कारण (अथवा किस कर्म के कारण) यह परिणति थी?' भगवती ने कहा—'सुनो—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्थि इहेव जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे संखवद्धणं नाम नयरं। तत्थ संखवालो नाम नरवई अहेसि। तस्स अच्चंतबहुमओ धणो नाम सत्थवाहो, धण्णा से भारिया, धणवइधणावहा पुत्ता गुणसिरी य धूय त्ति। सा पुण अहमेव, परिणीया तन्नयरवत्थव्वएणं सोमदेवेणं। अविन्नायविसयसंगाए य उवरओ मे भत्ता। जाओ मे निव्वेओ। चिंतियं मए। एवमवसाणो खु एस सयणसंगमो; ता अलं एत्थ पडिबंधेणं। रया तवविहाणम्मि। अइक्कंतो कोइ कालो। अन्नया य समागया तत्थ चंदकंताभिहाणा गणिणो। साहिया से सहियाहिं। गया तीए वंदणनिमित्तं जिणहरं। दिट्ठा य एसा।

रुइरा वि निव्वियारा कलासु कुसला वि माणपरिहीणा।
सुयदेवय व्व धम्मं साहेंती सावियाणं तु ॥५६८॥

जाओ य मे विम्हओ। अहो से रूवसोम्मया। पविट्ठा जिणहरं। चालियाओ घंटाओ। पज्जालिया [1]दीवया। विमुक्कं कुसुमवरिसं। पूइयाओ वीयरायपडिमाओ। उग्गाहिओ धूवो। वंदिया परमगुरवो। समागया गणिणीसमीवं। पणमिया एसा। धम्मलाहिया य णाए। उवविट्ठा तीए पुरओ।

अस्तीहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे शङ्खवर्धनं नाम नगरम्। तत्र शङ्खपालो नाम नरपतिरासीत्। तस्यात्यन्तबहुमतो धनो नाम सार्थवाहः, धन्या तस्य भार्या, धनपतिधनावहौ पुत्रौ गुणश्रीश्च दुहितेति। सा पुनरहमेव, परिणीता तन्नगरवास्तव्येन सोमदेवेन। अविज्ञातविषयसङ्गयाश्च उपरतो मे भर्ता। जातो मे निर्वेदः। चिन्तितं मया—एवमवसानः खलु एष स्वजनसङ्गमः, ततोऽलमत्र प्रतिबन्धेन। रता तपोविधाने। अतिक्रान्तः कोऽपि कालः। अन्यदा च समागता तत्र चन्द्रकान्ताभिधाना गणिनी। कथिता मे सखीभिः। गता तस्या वन्दननिमित्तं जिनगृहम्। दृष्टा चैषा।

रुचिराऽपि निर्विकारा कलासु कुशलाऽपि मानपरिहीना।
श्रुतदेवतेव धर्मं कथयन्ती श्राविकाणां तु ॥५६८॥

जातश्च मे विस्मयः। अहो तस्य रूपसौम्यता। प्रविष्टा जिनगृहम्। चालिता घण्टाः। प्रज्वालिता दीपाः। विमुक्तं कुसुमवर्षम्। पूजिता वीतरागप्रतिमाः। उद्ग्राहितो धूपः। वन्दिता परमगुरवः। समागता गणिनीसमीपम्। प्रणतैषा। धर्मलाभिता च तया। उपविष्टा तस्याः पुरतः।

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में शंखवर्धन नाम का नगर है। वहाँ पर शंखपाल नामक राजा था। उसके द्वारा अत्यधिक सम्मानित 'धन' नाम का व्यापारी था। उस व्यापारी की धन्या नामक स्त्री थी। धनपति और धनावह दो पुत्र तथा गुणश्री नाम की पुत्री थी। वह पुत्री मैं ही हूँ। मेरा विवाह उसी नगर के निवासी सोमदेव के साथ हुआ था। विषयसुख का अनुभव न कर मेरे पति की मृत्यु हो गयी। मुझे वैराग्य उत्पन्न हो गया। मैंने सोचा—स्वकीयजनों के संगम का इस प्रकार अन्त होता है, अतः इसमें बँधने से कोई लाभ नहीं। तप में रत हो गयी। कुछ समय बीता। एक बार चन्द्रकान्ता नामक गणिनी आयी। मुझे सखियों ने बताया। मैं उनकी वन्दना के लिए जिनमन्दिर गयी और उनके दर्शन किये।

वह सुन्दर होने पर भी निर्विकार थीं, कलाओं में कुशल होने पर भी मानरहित थीं, श्रुतदेवता के समान वह श्राविकाओं को धर्मोपदेश दे रही थीं॥ ५६८ ॥

मुझे विस्मय हुआ—'ओह! उनकी सौम्यता!' (मैं) जिनमन्दिर में प्रविष्ट हुई। घण्टा बजाया। दीपक जलाये फूलों की वर्षा की। वीतराग प्रतिमा की पूजा की। धूप जलायी। परमगुरुओं को प्रणाम किया। (और) गणिनी के पास आयी। उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने (गणिनी ने) धर्मलाभ दिया और मैं उनके सामने बैठ गयी।

---

१. दिविया—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भणियं च णाए—'कत्तो तुब्भे' त्ति। मए भणियं—भयवइ, इओ चेव। एत्थंतरम्मि जंपियं मे सहीए—भयवइ, एसा खु धणसत्थवाहधूया गुणसिरी नाम। इमीए य विचित्तयाए कम्मपरिणामस्स विवाहसमणंतरमेव पंचत्तमुवगओ भत्ता। वेरग्गिया य एसा खवेइ अत्ताणयं नियमोववासेहिं। सुयं च णाए, जहा भयवई आगय त्ति। तओ भत्तिनिब्भरा अणुन्नविय जणणिजणए तुह चलणवंदणनिमित्तमागय त्ति। गणिणीए भणियं—साहु कयं जमागया वेरग्गिया य। [1]ईइसो एस संसारो, दुक्खभायणं चेव एत्थ पाणिणो त्ति। कहिओ मे[2] धम्मो, परिणओ पुव्वपओएण। पडिवन्ना देसविरई। अइक्कंतो कोइ कालो। तओ पंचत्तमुवगएसु जणणिजणएसु जाया य मे चिंता। अलं गिहासमेणं, पवज्जामि समणलिंगं। पुच्छिया य भायरो, नाणुमयमेएसिं। भणियं च णेहिं—एत्थेव ठिया जहासमीहियं कुणसु त्ति। [3]तओ कारावियं जिणहरं, [4]भरावियाओ पडिमाओ, फुल्लबलिगंधचंदणाइएसु पारद्धो महावओ। कुरुगुरेंति भाइजायाओ। तओ मए चिंतियं—पेच्छामि ताव भाइचित्तं। किं ममेयाहिं ति। अन्नया जाममेत्ताए जामिणीए वासहरमुवगए धणवइम्मि आलोचिऊण नियडीए

भणितं च तया 'कुतो यूयम्' इति। मया भणितम्—भगवति! इत एव। अत्रान्तरे जल्पितं मे सख्या—भगवति! एषा खलु धनसार्थवाहदुहिता गुणश्रीर्नाम। अस्याश्च विचित्रतया कर्मपरिणामस्य विवाहसमनन्तरमेव पञ्चत्वमुपगतो भर्ता। वैराग्यिता चैषा क्षपयत्यात्मानं नियमोपवासैः। श्रुतं चानया यथा भगवत्यागतेति। ततो भक्तिनिर्भरा अनुज्ञाप्य जननीजनकौ तव चरणवन्दननिमित्तमागतेति। गणिन्या भणितम्—साधु कृतं यदागता वैराग्यिता च। ईदृश एष संसारः, दुःखभाजनमेवात्र प्राणिन इति। कथितो मे धर्मः, परिणतः पूर्वप्रयोगेण। प्रतिपन्ना देशविरतिः। अतिक्रान्तः कोऽपि कालः। ततः पञ्चत्वमुपगतयोर्जननीजनकयोर्जाता च मे चिन्ता। अलं गृहाश्रमेण, प्रपद्ये श्रमणलिङ्गम्। पृष्टौ च भ्रातरौ, नानुमतमेतयोः। भणितं च ताभ्याम्—अत्रैव स्थिता यथासमीहितं कुर्विति। ततः कारितं जिनगृहम्, भारिताः प्रतिमाः, पुष्पबलिगन्धचन्दनादिभिः प्रारब्धो महाव्ययः। कुरकुरायेते भ्रातृजाये। ततो मया चिन्तितम्—प्रेक्षे तावद् भ्रातृचित्तम्, किं ममैताभ्यामिति। अन्यदा याममात्रायां यामिन्यां वासगृहमुपगते धनपतौ आलोच्य निकृत्या रति-

उन्होंने पूछा—'तुम सब कहाँ से आये?' मैंने कहा—'भगवती! यहीं से।' इसी बीच मेरी सखी ने कहा—'भगवती! यह धन व्यापारी की गुणश्री नाम की पुत्री है। इसके कर्मपरिणाम की विचित्रता से विवाह के बाद ही पति की मृत्यु हो गयी। इसे वैराग्य हो गया। अपना समय नियम और उपवासों में व्यतीत करती है। इसने सुना कि भगवती आयी हैं तो भक्ति से भरकर माता-पिता से पूछकर चरणवन्दना के लिए आयी है।' गणिनी ने कहा—'ठीक किया जो चली आयी और वैराग्य धारण किया। यह संसार ऐसा ही है, इसमें प्राणी दुःखों के ही पात्र होते हैं।' गणिनी ने मुझसे धर्म कहा, पूर्वाभ्यास के कारण समझ में आ गया। मैंने देशविरति प्राप्त की। कुछ समय बीता। माता-पिता की मृत्यु के बाद मुझे चिन्ता हुई—गृहस्थाश्रम व्यर्थ है, मैं श्रमणलिंग धारण करती हूँ। दोनों भाइयों से पूछा—दोनों ने अनुमति नहीं दी। उन दोनों ने कहा—'यहीं रहकर इष्टकार्य करो।' अनन्तर मन्दिर बनवाया, जिनप्रतिमा की स्थापना करायी, पुष्प, गन्ध, चन्दनादि से पूजाकर महान् व्यय प्रारम्भ किया। दोनों भाभियों ने अव्यक्त शब्द किये। तब मैंने सोचा—भाई का चित्त देखूँ, मुझे इन दोनों से क्या? एक बार रात्रि का प्रहर मात्र बीतने पर जब धनपति शयनगृह में चला गया तो विचारकर रतिमन्दिर में प्रवेश

1. एरिसो—क। 2. से—ख। 3. तओ गिहासन्ने क। 4. काराविया—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोवणयपवेसकालम्मि चेव जहा सो सुणेइ तहा धम्मदेसणापुव्वयं भणिया से भारिया—सुंदरि, किं बहुणा जंपिएणं; साडियं रक्खेज्जसु त्ति। तओ एवं ति भणिऊण पविट्ठा वासगेहं। चिंतियं च से भत्तारेणं। [1]नूणमेसा दुच्चारिणी, कहमन्नहा मे ससा एवं जंपइ त्ति; ता अलमिमीए। कयं पसुत्तचेट्ठियं। उवविट्ठा य एसा सयणीए। संवाहिया से चलणा। उस्सिक्किओ दीवओ। निरूवियं तंबोलपडलयं। तओ निवज्जमाणी वारिया दइएणं 'मा निवज्जसु' त्ति। तीए चिंतियं। हंत किमेयं, परिहासो भविस्सइ त्ति। नुवन्ना एसा। उट्ठिओ से दइओ। 'कहं कुविओ खु एसो' त्ति संखुद्धा एसा। भणियं च णाए—'अज्जउत्त, किमेयं' ति। तेण भणियं—न किंचि, अवि य नीसरसु मे गेहाओ। तओ सा 'किं मए दुक्कडं कयं' ति चिंतयंती उट्ठिया सयणीयाओ। नुवन्नो एसो। थेवबहुचिंतावसाणे य उवगया से निद्दा। इयरी वि उवविट्ठा मसूरए। न सुमरिओ अत्तणो दोसो। गहिया महासोएणं। चिंतियं च णाए। को मे गुणो अज्जउत्तस्स वि उव्वेवकारएणं जीविएणं। ता परिच्चयामि एयं। अहवा दुज्जणो खु लोओ। एवं पि मा अज्जउत्तस्स लाघवं संभाविइस्सइ त्ति। न किंचि एएणं।

मन्दिरप्रवेशकाले एव यथा स शृणोति तथा धर्मदेशनापूर्वकं भणिता तस्य भार्या— सुन्दरि! किं बहुना जल्पितेन, शाटिकां रक्षेति। तत एवमिति भणित्वा प्रविष्टा वासगेहम। चिन्तितं च तस्य भर्त्रा नूनमेषा दुश्चारिणी, कथमन्यथा मे स्वसा एवं जल्पतीति, ततोऽलमनया। कृतं प्रसुप्तचेष्टितम्। उपविष्टा चैषा शयनीये। संवाहितौ तस्य चरणौ। [2]उज्ज्वालितो दीपः। निरूपितं ताम्बूलपटलकम्। ततो निपद्यमाना (शयाना) वारिता दयितेन 'मा निपद्यस्व' इति। तया चिन्तितम्—हन्त किमेतद्, परिहासो भविष्यतीति। निपन्नैषा। उत्थितस्तस्य दयितः। 'कथं कुपितः खल्वेषः' इति संक्षुब्धैषा। भणितं चानया—'आर्यपुत्र! किमेतद्' इति। तेन भणितम्—न किञ्चिद्, अपि च निःसर मे गेहाद्। ततः सा 'किं मया दुष्कृतं कृतम्' इति चिन्तयन्ती उत्थिता शयनीयात्। निषण्ण एषः। स्तोकबहुचिन्तावसाने चोपगता तस्य निद्रा। इतराऽपि उपविष्टा मसूरके। न स्मृत आत्मनो दोषः। गृहीता महाशोकेन। चिन्तितं चानया। को मे गुण आर्यपुत्रस्यापि उद्वेगकारकेन जीवितेन। ततः परित्यजाम्येतद्। अथवा दुर्जनः खलु लोकः। एवमपि मा आर्यपुत्रस्य लाघवं

करते समय, वह सुन ले, इस प्रकार छल से, धर्मोपदेशपूर्वक मैंने उसकी पत्नी से कहा 'सुन्दरि, अधिक कहने से क्या, साड़ी की रक्षा करो।' तब 'ठीक है'—ऐसा कहकर वह (भाभी) शयनगृह में प्रविष्ट हुई। उसके पति ने सोचा—निश्चित ही यह दुराचारिणी है, नहीं तो बहिन ऐसा क्यों कह रही है? अतः इससे बस अर्थात् इससे कोई नाता नहीं। उसने सोने की चेष्टा की। यह (भाभी) शय्या पर बैठ गयी, उसके (पति के) चरण दबाये। दीपक जलाया। पान का डिब्बा देखा। अनन्तर जब सोने लगी तो पति ने मना किया—मत सोओ! उसने सोचा—हाय, यह क्या? हँसी कर रहे होंगे। यह सो गयी। उसका पति उठ गया। 'यह क्षुब्ध क्यों हैं' ऐसा सोचती हुई यह भी क्षोभित हुई। इसने कहा—'आर्यपुत्र! क्या बात है?' उसने कहा—'कुछ नहीं; बल्कि मेरे घर से निकल जाओ।' तब 'मैंने क्या बुरा कार्य किया'—सोचती हुई शय्या से उठ गयी। यह सो गया। थोड़ी-बहुत चिन्ता के बाद उसे नींद आ गयी। दूसरी (भाभी) भी सिरहाने बैठी रही। (उसे) अपना दोष याद नहीं आया। उसे बहुत अधिक शोक हुआ। उसने सोचा आर्यपुत्र को उद्विग्न करनेवाली मेरे जीने में कौन-सा गुण है! अतः इस जीवन का परित्याग करती हूँ। अथवा लोक दुर्जन है। यों भी आर्यपुत्र का लाघव न हो। इससे कुछ नहीं

---

१. नूणं मे भारिया—क। २. संधुक्कियं उद्दीरियं उज्जालियं च तेअवियं। अंदुमियं ओगिलियं उप्पुंसियं च तेआवियं॥ (पाइयलच्छी, १६।)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुस्सहं चिमं पढमं दुक्खं। ता न याणामि, किमेत्थ जुत्तयं ति। अहवा सब्भाविणी बहुबुद्धिसंगया य मे नणंदा। ता तयं पुच्छिय जहाजुत्तमणुचिट्ठिस्सं ति। चिंतयंती अणवरयपयट्टबाहसलिला माणसदुक्खाइरेएणं खणं पि अलद्धनिद्दा ठिया तत्थ रयणीए। पहायसमए य विद्दाणवयणकमला ओलग्गमंगमुव्वहंती निग्गया वासगेहाओ। दिट्ठा सा मए भणिया य—सुंदरि, कीस तुमं अज्ज अप्पोयगा विय कुमुइणी पव्वाया दीससि। तओ परुण्णवयणाए जंपियं धणसिरीए—न याणामि अवराहं, रुट्ठो य मे भत्ता। कोवाइसयसंभमेण भणियं च णेणं—'नीसरसु मे गेहाओ' त्ति। तओ मए भणियं—सुंदरि, धीरा होहि; अहं ते भलिस्सामि। पडिस्सुयमिमीए। भणिओ य भाया—'भो किमेय-मेवं ति। तेण भणियं—अलं मे एयाए दुट्ठसीलाए। दुट्ठसीला खु इत्थिया विणासेइ संतइं, करेइ वयणिज्जं, मइलेइ कुलहरं, वावाएइ दइयं। ता किं उभयलोयगरहणीएणं तीए परिग्गहेणं ति। मए भणियं—कहं वियाणसि, जहा एसा दुट्ठसील त्ति। तेणं भणियं—किमेत्थ जाणियव्वं। सुयं मए तुज्झ चेव सयासाओ इमीए देसणापुव्वयं निवारणं। मए भणियं—अहो ते पंडियत्तणं, अहो ते वियारक्ख-

सम्भावयिष्यतीति। न किञ्चिदेतेन। दुःसहं चेदं प्रथमं दुःखम्। ततो न जानामि किमत्र युक्त-मिति। अथवा सद्भाविनी बहुबुद्धिसङ्गता च मे ननान्दा। ततस्तां पृष्ट्वा यथायुक्तमनुष्ठास्यामि इति। चिन्तयन्ती अनवरतप्रवृत्तबाष्पसलिला मानसदुःखातिरेकेण क्षणमप्यलब्धनिद्रा स्थिता तत्र रजन्याम्। प्रभातसमये च विद्राणवदनकमलाऽवरुग्णमङ्गमुद्वहन्ती निर्गता वासगृहात्। दृष्टा सा मया भणिता च—सुन्दरि! कस्मात्त्वमद्य अल्पोदकेव कुमुदिनी म्लाना दृश्यसे? ततः प्ररुदितवदनया जल्पितं धनश्रिया—न जानाम्यपराधम्, रुष्टश्च मे भर्ता। कोपातिशयसम्भ्रमेण भणितं चानेन—'निःसर मे गेहाद्' इति। ततो मया भणितम्—सुन्दरि! धीरा भव, अहं ते भलयिष्ये (निरूपयि-ष्यामि)। प्रतिश्रुतमनया। भणितश्च भ्राता 'भो किमेतदेवम्' इति। तेन भणितम्—अलं मे एतया दुष्टशीलया। दुष्टशीला खलु स्त्री विनाशयति सन्ततिम्, करोति वचनीयम्, मलिनयति कुल-गृहम्, व्यापादयति दयितम्। ततः किमुभयलोकगर्हणीयेन तस्याः परिग्रहेणेति। मया भणितम्—कथं विजानासि, यथैषा दुष्टशीलेति। तेन भणितम्—किमत्र ज्ञातव्यम्। श्रुतं मया तवैव सका-शादस्या देशनापूर्वकं निवारणम्। मया भणितम्—अहो ते पण्डितत्वम्, अहो ते विचारक्षमता,

होता। पहले यह दुःख दुःसह है, अतः मैं नहीं जानती हूँ क्या करना उचित है। अथवा मेरी ननद अच्छे भावों वाली और बुद्धिमती है अतः उससे पूछकर ठीक-ठीक कार्य करूँगी, इस प्रकार सोचती हुई निरन्तर आँसू छोड़कर मानसिक दुःख की अधिकता के कारण क्षण भर भी न सोकर उस रात बैठी रही। प्रातःकाल नींद से जागे हुए मुख-कमल वाली, बीमार शरीर को धारण किये हुए (भाभी) शयनगृह से निकल गयी। उसे मैंने देखा और कहा—'सुन्दरि! अल्प जलयुक्त कमलिनी के समान क्यों म्लान (फीके मुँह वाली) दिखाई दे रही हो?' तब अत्यधिक रुआँसे मुख से धनश्री ने कहा—'अपराध नहीं जानती हूँ और मेरे पति रुष्ट हैं। कोप की अधिकता के कारण हड़बड़ाकर इन्होंने (पति ने) कहा—'मेरे घर से निकल जाओ।' अनन्तर मैंने कहा—'सुन्दरि! धीर होओ, मैं उससे विचार-विमर्श करूँगी।' इसने स्वीकृति दी। मैंने भाई से कहा—'हे भाई! यह ऐसा क्या है?' उसने कहा—'मुझे इस दुष्ट-शील वाली से क्या प्रयोजन? दुष्टशीला स्त्री सन्तति का विनाश करती है, कलंक लगाती है, कुलगृह को मलिन करती है, पति को मार देती है। अतः दोनों लोकों के लिए निन्दित उसके स्वीकार करने से क्या?' मैंने कहा—'कैसे जानते हो कि दुष्ट चरित्र वाली है?' उसने कहा—'यहाँ क्या जानना है? मैंने तुम्हारे ही साथ इसका उप-देशपूर्वक निवारण सुना है।' मैंने कहा—'ओह! तुम्हारा पाण्डित्य, तुम्हारी क्षमता, तुम्हारा महार्थत्व, स्नेह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मया, अहो 'महत्थत्तणं, अहो सिणेहाणुबंधो, अहो लोइयत्तणं। मए सामन्नेण 'बहुदोसमेयं भयवया भणियं' ति उवइट्ठं, न उण दोसदंसणेण निवारिया एसा। ता किमेद्दहमेत्तेणं चेव दुच्चारिणी हवइ त्ति। तओ विलियो खु एसो। हंत असोहणं अणुचिट्ठियं ति' जाओ से पच्छायावो। पसाइया तेणं। तओ चिंतियं मए। एस ताव कसणधवलपडिवज्जओ त्ति। बिइओ वि एवं चेव विन्नासिओ। नवरं भणिया य से भारिया। किं बहुणा जंपिएणं; हत्थं रक्खेज्जसु त्ति जाव एसो वि कसणधवलपडिवज्जओ चेव।

एत्थंतरम्मि बद्धं मए नियडिअब्भक्खाणदोसओ तिव्वकम्मं। अइक्कंतो कोइ कालो। पव्वइया अहयं सह भाउजायाहिं भाउएहि य। पालियं अहाउयं। गयाणि सुरलोयं[2]। तत्थ वि य अहाउयं पालिऊणं पढममेव चुया मे भायरो, समुप्पन्ना इमीए चेव चंपानयरीए पुन्नयत्तस्स इब्भस्स संपयाए[3] भारियाए कुच्छिसि पुत्तत्ताए त्ति। कयाइं च तेसिं नामाइं बंधुदेवो सागरो य। अइक्कंतो कोइ कालो। तओ चुया अहयं। समुप्पन्ना गयउरे संखस्स इब्भस्स सुहकंताए भारियाए कुच्छिसि इत्थियत्ताए त्ति। जाया कालक्कमेणं, पइट्ठावियं च मे नामं सव्वंगसुंदरि त्ति। एत्थंतरम्मि ताओ

अहो महार्थत्वम्, अहो स्नेहानुबन्धः, अहो लौकिकत्वम्।' मया सामान्येन 'बहुदोषमेतद् भगवता भणितम्' इत्युपदिष्टम्, न पुनर्दोषदर्शनेन निवारितैषा। ततः किमेतावन्मात्रेणैव दुश्चारिणी भवतीति। ततो व्रीडितः (लज्जितः) खल्वेषः। 'हन्त अशोभनमनुष्ठितम्' इति जातस्तस्य पश्चात्तापः। प्रसादिता तेन। ततश्चिन्तितं मया। एष तावत्कृष्णधवलप्रतिपद्यमान इति। द्वितीयोऽप्येवमेव विन्यासितः। नवरं भणिता च तस्य भार्या। किं बहुना जल्पितेन, हस्तं रक्षेति यावदेषोऽपि कृष्णधवलप्रतिपद्यमान एव।

अत्रान्तरे बद्धं मया निकृत्यभ्याख्यानदोषात् तीव्रकर्म। अतिक्रान्तः कोऽपि कालः। प्रव्रजिताऽहं सह भ्रातृजायाभ्यां भ्रातृभ्यां च। पालितं यथाऽऽयुः, गताः सुरलोकम्। तत्रापि च यथायुः पालयित्वा प्रथममेव च्युतौ मे भ्रातरौ, समुत्पन्नौ अस्यामेव चम्पानगर्यां पुण्यदत्तस्येभ्यस्य शम्पाया भार्यायाः कुक्षौ पुत्रतयेति। कृते च तयोर्नाम्नी बन्धुदेवः सागरश्च। अतिक्रान्तः कोऽपि कालः। ततश्च्युताऽहम्। समुत्पन्ना गजपुरे शंखस्येभ्यस्य शुभकान्ताया भार्यायाः कुक्षौ स्त्रीतयेति। जाता काल-

बन्धन, लौकिकता आश्चर्यकारक है। मैंने सामान्य से 'ये बहुत सारे दोष भगवान ने कहे थे'—ऐसा उपदेश दिया था, इसके दोष देखने के कारण इसे नहीं रोका। अतः क्या इतने मात्र से (यह) दुराचारिणी हो जायेगी?' अनन्तर यह लज्जित हुआ। हाय मैंने बुरा किया—इस प्रकार उसे पश्चाताप हुआ। उसने अपनी पत्नी को प्रसन्न किया। तब मैंने सोचा—ये जोड़ा मेरे प्रति काला और धवल है अर्थात् भाभी मेरे प्रति अधिक श्रद्धा नहीं रखती है, भाई रखता है। दूसरे भाई के प्रति भी यही किया। उसकी पत्नी से दूसरे प्रकार से कहा - 'अधिक कहने से क्या, हाथ की रक्षा करो।' ये जोड़ा भी (श्रद्धा की दृष्टि से) काला और सफेद निकला।

इसी बीच मैंने कपट वचन कहने के दोष से तीव्र कर्म बाँधा। कुछ समय बीता। मैं दोनों भाइयों और भाभियों के साथ प्रव्रजित हुई। आयु पूरी कर स्वर्गलोक गये। वहाँ भी आयु पूरी कर पहले मेरे दोनों भाई च्युत होकर इसी चम्पा नगरी के पुण्यदत्त धनी (इभ्य) के शम्पा नामक स्त्री के गर्भ से पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए। उन दोनों के नाम बन्धुदेव और सागर रखे गये। कुछ समय बीता। अनन्तर मैं (स्वर्गलोक से) च्युत हुई (और) गजपुर में 'शंख' धनी की शुभकान्ता नामक स्त्री के गर्भ में कन्या के रूप में आयी। कालक्रम से (मेरा)

१. महत्थन्नुत्तणं (महार्थज्ञत्वं)—ख। २. परलोयं—ख। ३. संपाए—ख।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि भाउज्जायाओ चविऊण देवलोगाओ कोसलाउरे नयरे नंदणाभिहाणस्स इब्भस्स देविलाए भारियाए कुच्छिंसि इत्थियत्ताए उववन्नाओ त्ति । जायाओ कालक्कमेणं, पइट्ठावियाइं च नामाइं सिरिमई कंतिमई य । अइक्कंतो कोइ कालो । सावयकुलुप्पत्तीए य पाविओ मए जिणिंदभासिओ धम्मो । पत्ता जोव्वणं । दिट्ठा य अहमिओ गयउरगएणं लीलावणुज्जाणाओ सभवणमुवागच्छमाणी बंधुदेवेण । पुच्छियं च णेणं 'कस्स एसा कन्नय' त्ति । साहियं च से वद्धणाहिहाणेणं 'संखस्स धूया सव्वंगसुंदरि' त्ति । मग्गिया णेणं । भणियं च ताएणं–जोग्गो तुमं, किं तु न साहम्मिओ त्ति । अभिग्गहो स मज्झं 'न संजोएमि अवच्चं असाहम्मिएणं ।' बंधुदेवेण भणियं–करेहि साहम्मियं । ताएण भणियं–सुणसु जिणवरपणीयं धम्मं, पडिवज्जसु य भावओ । तओ मज्झ लोभेण गओ साहुसमीवं, आयण्णिओ धम्मो, भाविओ नियडिभावेणं न उण भावओ त्ति । पारद्धं अणुट्ठाणं, पवत्तियं दाणाइयं । अइक्कंतो कोइ कालो । गओ तायसमीवं । भणियं च णेणं—अज्ज, न अन्नहा तए घेत्तव्वं । धन्नो खु अहं, जस्स मे अज्जेण उवएसो दिन्नो त्ति । तुह पसाएण मए पाविओ जिणभासिओ

क्रमेण । प्रतिष्ठापितं च मे नाम सर्वाङ्गसुन्दरीति । अत्रान्तरे तेऽपि भ्रातृजाये च्युत्वा देवलोकाद् कोशलापुरे नगरे नन्दनाभिधानस्येभ्यस्य देविलाया भार्यायाः कुक्षौ स्त्रीतयोपपन्ने इति । जाते कालक्रमेण । प्रतिष्ठापिते नामनी श्रीमती कान्तिमती च । अतिक्रान्तः कोऽपि कालः । श्रावककुलोत्पत्त्या च प्राप्तो मया जिनेन्द्रभाषितो धर्मः । प्राप्ता यौवनम् । दृष्टा चाहमितो गजपुरगतेन लीलावनोद्यानात् स्वभवनमुपागच्छन्ती बन्धुदेवेन । पृष्टं च तेन 'कस्यैषा कन्यका' इति । कथितं तस्य वर्धनाभिधानेन 'शङ्खस्य दुहिता सर्वाङ्गसुन्दरीति । मार्गिता तेन । भणितं च तातेन—योग्यस्त्वम्, किन्तु न साधर्मिक इति । अभिग्रहः स मम 'न संयोजयाम्यपत्यमसाधर्मिकेण' । बन्धुदेवेन भणितम्—कुरु साधर्मिकम । तातेन भणितं—शृणु जिनवरप्रणीतं धर्मम्, प्रतिपद्यस्व च भावतः । ततो मम लोभेन गतः साधुसमीपम्, आकर्णितो धर्मः, भावितो निकृतिभावेन न पुनर्भावत इति । प्रारब्धमनुष्ठानम्, प्रवर्तितं दानादिकम् । अतिक्रान्तः कोऽपि कालः गतः तातसमीपम् । भणितं च तेन—आर्य ! नान्यथा त्वया गृहीतव्यम् । धन्यः खल्वहम्, यस्य मे आर्येणोपदेशो दत्त इति । तव प्रसादेन मया प्राप्तो जिनभाषितो धर्मः ।

जन्म हुआ। मेरा नाम सर्वांगसुन्दरी रखा गया। इसी बीच वे दोनों भाभियाँ भी स्वर्गलोक से च्युत होकर कोशलापुर नगर में नन्दननामक धनी की देविला (नामक) स्त्री के गर्भ में कन्या के रूप में आयीं। कालक्रम से दोनों का जन्म हुआ। दोनों के नाम क्रमशः 'श्रीमती' और 'कान्तिमती' रखे गये। कुछ समय बीता। श्रावककुल में जन्म लेने के कारण मैंने जिनेन्द्रभाषित धर्म पाया। यौवनावस्था को प्राप्त हुई। यहाँ से गजपुर की ओर जाते हुए बन्धुदेव ने लीलावनोद्यान से अपने भवन को जाती हुई मुझको देखा। उसने पूछा—'यह किसकी कन्या है ?' उसने कहा–'वर्धन नाम वाले शंख (स्तुतिपाठक) की पुत्री सर्वांगसुन्दरी है। उसने (पिताजी से याचना की और पिताजी ने कहा—'तुम योग्य हो, किन्तु साधर्मी नहीं हो। मेरा यह नियम है कि मैं (अपनी) सन्तान का सम्बन्ध असाधर्मी से नहीं करूँगा।' बन्धुदेव ने कहा—'साधर्मी बना लो।' पिताजी ने कहा—'जिनवर प्रणीत धर्म को सुनो और भावपूर्वक उसे प्राप्त करो।' अनन्तर मेरे लोभ से वह साधु के पास गया, धर्म सुना और कपटपूर्वक धर्म स्वीकार किया, भावपूर्वक नहीं। उसने अनुष्ठान प्रारम्भ किया और दानादि दिया। कुछ समय बीत गया। (वह) पिताजी के पास गया और कहा—'आर्य ! आप अन्यथा न लें। मैं धन्य हूँ जो कि आर्य ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धम्मो। ता तुमं मज्झ परलोयबंधवो देवया गुरू, न कोइ सो जो न होहि त्ति। विइयसंसारसहावस्स य मज्झं थेवमियाणिं कन्नयाए पओयणं ति। पयट्टो संपयं अहं निययदेसं। ता दिट्ठो तुमं। वहियव्वो मज्झ सासणाणुराएण वावारो, थिरीकरेयव्वो धम्मे, आइसियव्वं उचियकरणिज्जं, दट्ठव्वो निययबुद्धीए त्ति। भणिऊण निवडिओ चलणेसु। सुद्धसहावत्तणेण बहुमन्निओ ताएणं, भणिओ य णेणं—वच्छ, धन्नो तुमं, जेण सयलतेलोक्कदुल्लहा लद्धा जिणधम्मबोही, पावियं परमत्थपावियव्वं। ता एत्थ अप्पमत्तेण होयव्वं ति। पडिस्सुयमणेणं। निग्गओ गेहाओ। ताएण वि सयणमेलयं काऊण साहिओ एस वइयरो। सुद्धसहावयाए जंपियमणेण—उचिओ खु एसो सव्वंगसुंदरीए भत्तारो त्ति पडिहाइ मज्झं। संपयं तुब्भे पमाणं ति। सयणेण भणियं—तुमं चेव जाणसि त्ति। सुंदरो य एसो सत्थवाहपुत्तो अम्हाणं पि बहुमओ चेव। तओ विइण्णा[1] अहं। वत्तो विवाहो। दीणाणाहाण कयं उचियकरणिज्जं। तओ अइक्कंतेसु कइवयदिणेसु अणुन्नविय तायं समागओ निययदेसं। अइक्कंतो कोइ कालो। आगओ विसज्जावओ पविट्ठो य गेहं। संपाडिओ से विहवसंभवाणुरूवो उवयारो।

ततस्त्वं मम परलोकबान्धवो देवता गुरुः, न कोऽपि स यो न भवतीति। विदितसंसारस्वभावस्य च मम स्तोकमिदानीं कन्यकायाः प्रयोजनमिति। प्रवृत्तः साम्प्रतमहं निजदेशम्। ततो दृष्टस्त्वम्। वोढव्यो मम शासनानुरागेण व्यापारः, स्थिरीकर्तव्यो धर्मे, आदेष्टव्यमुचितकरणीयम्, द्रष्टव्यो निजबुद्ध्येति। भणित्वा निपतितश्चरणयोः। शुद्धस्वभावत्वेन बहुमानितस्तातेन, भणितस्तेन वत्स! धन्यस्त्वम्, येन सकलत्रैलोक्यदुर्लभा लब्धा जिनधर्मबोधिः, प्राप्तं परमार्थप्राप्तव्यम्। ततोऽत्राप्रमत्तेन भवितव्यमिति। प्रतिश्रुतमनेन। निर्गतो गेहाद्। तातेनापि स्वजनमेलकं कृत्वा कथित एष व्यतिकरः। शुद्धस्वभावतया जल्पितमनेन। उचितः खल्वेष सर्वाङ्गसुन्दर्या भर्तेति प्रतिभाति मम। साम्प्रतं यूयं प्रमाणमिति। स्वजनेन भणितम्—त्वमेव जानासीति सुन्दरश्चैष सार्थवाहपुत्रोऽस्माकमपि बहुमत एव। ततो वितीर्णाऽहम्। वृत्तो विवाहः। दीनानाथानां कृतमुचितं करणीयम्। ततोऽतिक्रान्तेषु कतिपयदिनेषु अनुज्ञाप्य तातं समागतो निजदेशम्। अतिक्रान्तः कोऽपि कालः। आगत आनयनार्थः प्रविष्टश्च गृहम्। सम्पादितस्तस्य विभवसम्भवानुरूप उपचारः। अतिक्रान्तो

मुझे उपदेश दिया। आपकी कृपा से मैंने जिनोक्तधर्म पाया। अतः आप मेरे परलोक के बान्धव, देव। और ऐसा नहीं जो (आप) न हों। संसार के स्वभाव को जाननेवाले मुझे इस समय कन्या से क्या प्रयोजन? अब मैं अपने देश को जाता हूँ। आप मुझे दिखाई दिये, शासन के प्रति अनुराग होने से आप मेरे व्यापार के वाहक बनें, धर्म में स्थिर करें, योग्य कार्यों का आदेश दें और अपने समान देखें'—ऐसा कहकर उनके चरणों में गिर गया। शुद्ध स्वभाव वाले होने के कारण पिताजी ने बहुत सम्मान किया और उससे कहा—'वत्स! तुम धन्य हो, जिसने समस्त लोकों में दुर्लभ जिनधर्मरूपी बोधि को प्राप्त कर लिया है, जो वास्तव में पाना चाहिए उसे पा लिया है। इस विषय में अप्रमत्त रहो।' इसने स्वीकार किया। (वह) घर से चला गया। पिताजी ने भी अपने लोगों को इकट्ठा कर यह घटना कही। शुद्ध स्वभाव वाला होने के कारण उन्होंने कहा—'सर्वांगसुन्दरी के लिए मुझे यह योग्य पति प्रतीत होता है। आप लोग प्रमाण हैं।' स्वजनों ने कहा—'आप ही जानें। यह वणिकपुत्र सुन्दर है, हम लोगों की भी सम्मति है।' अनन्तर मुझे दे दिया गया। विवाह हुआ। दीन और अनाथों के योग्य कार्य (दानादि) को किया। अनन्तर कुछ दिन बीत जाने पर पिताजी से अनुमति लेकर अपने देश आया। कुछ

1. विलो—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अइक्कंतो वासरो, सज्जियं वासगेहं, पज्जालिया मंगलदीवा, विमुक्कं कुसुमवरिसं, पत्थुया सेज्जा, उल्लंबियाइं कुसुमदामाइं, दिन्नाओ धूववट्टीओ, पणामिया पडवासा, ढोवियं उवगरणपडलयं, पविट्ठो बंधुदेवो। एत्थंतरम्मि उइयं मे नियडिबंधणं पढमं कम्मं। तओ अचिंतसामत्थयाए कम्मपरिणामस्स आगओ कहवि तत्थ खेत्तवालो। दिट्ठं च णेण तं वहुवरं। समुप्पन्ना य से चिंता। पेच्छामि ताव खेड्डुयं। विप्पलंभेमि बंधुदेवं, मा होउ एएसिं समागमो त्ति। अन्नपुरिसरूवेण दंसेमि एत्थ अप्पाणयं बंधुदेवस्स, सविसयजायावाहरणेण य जणेमि आसंकं ति। चिंतिऊण संपाडियं जहा चिंतियमणेण - दिट्ठा य बंधुदेवेण वायायणनिमियवयणा 'कहिं अज्ज एत्थ सव्वंगसुंदरि' त्ति जंपिरी दइविगो [1]पुरिसागिई। समुप्पन्नो य से वियप्पो, अवगया आलोयणा, वियम्भिया अरई, गहिओ कसाएहिं। चिंतियं च णेण - दुट्ठसीला मे महिलिया; अन्नहा कहं कोइ अवलोइउं एवं च वाहरिउं गओ त्ति। विगलिओ नेहाणुबंधो, जाया से अमेत्ती। एत्थंतरम्मि समागया अहं वासभवणं। कयमणेण [2]पसुत्तचेट्ठियं। तओ 'सामिणि निवज्जसु' त्ति भणिऊण निग्गयाओ सहीओ। विइण्णं

वासरः, सज्जितं वासगृहम्, प्रज्वालिता मङ्गलदीपाः, विमुक्तं कुसुमवर्षम्। प्रस्तृता शय्या, उल्लम्बितानि कुसुमदामानि, दत्ता धूपवर्तयः, अर्पिताः पटवासाः, ढौकितमुपकरणपटलम्, प्रविष्टो बन्धुदेवः। अत्रान्तरे उदितं मे निकृतिबन्धनं प्रथमं कर्म। ततोऽचिन्त्यसामर्थ्यतया कर्मपरिणामस्यागतः कथमपि तत्र क्षेत्रपालः। दृष्टं च तेन तद् वधूवरम्। समुत्पन्ना च तस्य चिन्ता। प्रेक्षे तावत् कौतुकम्। विप्रलम्भयामि बन्धुदेवम्, मा भवत्वेतयोः समागम इति। अन्यपुरुषरूपेण दर्शयाम्यत्रात्मानं बन्धुदेवस्य, स्वविषयजायाव्याहरणेन च जनयाम्याशङ्कामिति। चिन्तयित्वा सम्पादितं यथा चिन्तितमनेन। दृष्टा च बन्धुदेवेन वातायनन्यस्तवदना 'कुत्राद्यात्र सर्वाङ्गसुन्दरी, इति जल्पयन्ती दैविकी पुरुषाकृतिः। समुत्पन्नश्च तस्य विकल्पः, अपगताऽऽलोचना, विजृम्भिताऽरतिः, गृहीतः कषायैः। चिन्तितं च तेन—दुष्टशीला मे महिला, अन्यथा कथं कोऽप्यवलोक्य एवं च व्याहृत्य गत इति। विगलितः स्नेहानुबन्धः, जाता तस्याममैत्री। अत्रान्तरे समागताऽहं वासभवनम्। कृतमनेन प्रसुप्तचेष्टितम्। ततः 'स्वामिनि! निपद्यस्व' इति भणित्वा निर्गताः सख्यः। वितीर्णं भवनद्वारम्।

समय बीता। (वह) लेने के लिए आया और उसने घर में प्रवेश किया। उसके वैभव और कुल के अनुरूप सत्कार किया। दिन व्यतीत हुआ, शयनगृह को सजाया, मंगलदीपक जलाये, फूलों की वर्षा की। शय्या बिछायी, फूलों की मालाएँ लटकायीं, धूपबत्ती जलायी, सुगन्धित द्रव्य लगाया, उपकरणों का समूह भेंट किया, बन्धुदेव प्रविष्ट हुआ। इसी बीच कपट के कारण बाँधा हुआ मेरा पहला कर्म उदित हुआ। अनन्तर कर्मपरिणाम की अचिन्त्यता के कारण किसी प्रकार वहाँ क्षेत्रपाल आ गया। उसने उस वधू और वर को देखा। उसे चिन्ता उत्पन्न हुई—कौतूहल देखूँ, बन्धुदेव को धोखा दूँ, इन दोनों का समागम न हो। अन्य पुरुष के रूप में अपने आपको बन्धुदेव को दिखाऊँगा और अपनी स्त्री के समान सर्वांगसुन्दरी से व्यवहार कर शंका उत्पन्न करूँगा—ऐसा सोचकर उसने जैसा सोचा था, वैसा किया। बन्धुदेव ने खिड़की से झाँककर देखा—कोई दैवी पुरुषाकृति कह रही है—'आज यहाँ सर्वांगसुन्दरी कहाँ?' उसके मन में विकल्प हुआ, विचार जाता रहा, अरति बढ़ गयी। (बन्धुदेव को) कषायों ने जकड़ लिया। उसने सोचा—मेरी स्त्री दुष्ट शीलवाली है, नहीं तो कोई देखकर ऐसा कहकर कैसे चला गया? उसका स्नेह सम्बन्ध टूट गया, उसके प्रति अमैत्री उत्पन्न हो गयी। इसी बीच मैं शयनागार में आयी।

---

१. पुरिसागिती—क, ग। २. पसुत्तचेट्ठियं—ज।

भवणद्दारं। कहकहवि उवविट्ठा सयणीएगदेसे। तओ झत्ति उट्ठिओ बंधुदेवो। ससज्झसा य अहयं। तओ मए चिंतियं 'हंत किमेयं' ति। सज्झसेणं न पुच्छिओ एसो। अजंपिऊण निमित्तं सयणीयमुवगओ त्ति। जाया से मिच्छावियप्पा, अद्धाणखेएण य समागया कहवि निद्दा। अहं पि कम्मपरिणामाणुरूवेण गहिया महासोएणं। संपत्ता अणाचिक्खणीयमवत्थंतरं। उवविट्ठा धराए। तओ नारयस्स विय महाउयद्धा कहकहवि वोलिया मे रयणी। समागयाओ सहीओ। निग्गओ बंधुदेवो। तओ मं अत्थाणसंठियं तहा पेच्छिऊण जंपियं मे सहीहिं 'सामिणि, किमेयं' ति। तओ उक्कडयाए सोगाणलस्स निरुद्धयाए सरणीणं पणट्ठयाए मईए अकहणीययाए पओयणस्स न जंपियं मए त्ति। विद्दाणाओ सहीओ। सगग्गयक्खरं पुणो जंपियमिमीहिं 'सामिणि, किमेयं' ति। तओ तव्वयणसवणसमागयमईए जंपियं मए—हला, न याणामि, भागधेयाणि मे पुच्छह त्ति। साहिओ रयणिवइयरो। चिंतियं च णाहिं। किमेत्थ कारणं ति। न ताव इहलोयदोसो सामिणीए, न यावि सो अकुसलो सत्थवाहपुत्तो; ता भवियव्वं एत्थ कम्मपरिणईए त्ति। एत्थंतरम्मि अपुच्छिऊण सयणवग्गं निग्गओ बंधुदेवो 'महंतं

कथं कथमपि उपविष्टा शयनीयैकदेशे। ततो झटित्युत्थितो बन्धुदेवः। ससाध्वसा चाहम्। ततो मया चिन्तितम्—'हन्त किमेतद्' इति। साध्वसेन न पृष्ट एषः। अजल्पित्वा निमित्तं शयनीयमुपगत इति। जातास्तस्य मिथ्याविकल्पाः, अध्वखेदेन च समागता कथमपि निद्रा। अहमपि कर्मपरिणामानुरूपेण गृहीता महाशोकेन। सम्प्राप्ताऽनाख्यानीयमवस्थान्तरम्। उपविष्टा धरायाम्। ततो नारकस्येव यथाऽऽयुष्काद्धा कथंकथमपि व्यतिक्रान्ता मे रजनी। समागताः सख्यः। निर्गतो बन्धुदेवः। ततो मामास्थानसंस्थितां तथा प्रेक्ष्य जल्पितं मे सखीभिः 'स्वामिनि! किमेतद्' इति। तत उत्कटतया शोकानलस्य निरुद्धतया सरणीनां प्रनष्टतया मत्या अकथनीयतया प्रयोजनस्य न जल्पितं मयेति। विद्राणाः सख्यः। सगद्गदाक्षरं पुनर्जल्पितमाभिः 'स्वामिनि किमेतद्' इति। ततस्तद्वचनश्रवणसमागतमत्या जल्पितं मया—सख्यो! न जानामि, भागधेयानि मे पृच्छतेति। कथितो रजनीव्यतिकरः। चिन्तितं चाभिः। किमत्र कारणमिति। न तावदिहलोकदोषः स्वामिन्याः, न चापि सोऽकुशलः सार्थवाहपुत्रः, ततो भवितव्यमत्र कर्मपरिणत्येति। अत्रान्तरे अपृष्ट्वा स्वजनवर्गं निर्गतो बन्धुदेवो 'महन्मे

बन्धुदेव ने सोने की चेष्टा की। अनन्तर स्वामिनी! 'सो जाइए'—ऐसा कहकर सखियाँ निकल गयीं। भवनद्वार बन्द कर दिया। जिस किसी प्रकार शय्या के एक ओर बैठी। अनन्तर शीघ्र ही बन्धुदेव उठ खड़ा हुआ और घबरायी हुई मैं भी खड़ी हो गयी। पश्चात् मैंने सोचा—हाय, यह क्या? घबराहट के कारण बन्धुदेव से नहीं पूछा। कारण न कहकर (वह) शय्या पर आ गया। उसे झूठा विकल्प उत्पन्न हुआ और मार्ग की थकावट के कारण किसी प्रकार नींद आ गयी। कर्म के परिणाम के अनुरूप मुझे भी महाशोक ने जकड़ लिया। मैं अकथनीय अवस्था को प्राप्त हो गयी। धरती पर बैठ गयी। अनन्तर नरक जैसी जिस किसी प्रकार रात बितायी। सखियाँ आयीं, बन्धुदेव निकल गया। पश्चात् मुझे अस्थान में स्थित देख मेरी सखियों ने कहा—'स्वामिनी! यह क्या?' अनन्तर शोकरूपी अग्नि की उत्कटता, मार्गों की रुकावट, बुद्धि का नष्ट हो जाना तथा प्रयोजन की अकथनीयता के कारण मैं नहीं बोली। सखियाँ दुःखी हो गयीं। गद्गद अक्षरों में इन लोगों ने पुनः कहा—'स्वामिनी, यह क्या?' अनन्तर उनके वचनों के सुनने से बुद्धि आ जाने के कारण मैंने कहा—'सखियो, मैं नहीं जानती हूँ। मेरे भाग्य से पूछो।' रात्रि का वृत्तान्त कहा। इन लोगों ने सोचा—क्या कारण है? स्वामिनी का इस लोक का कोई दोष नहीं है, वह वणिक्पुत्र अकुशल भी नहीं है अतः यहाँ कर्म की परिणति ही होनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मे पओयणं' ति साहिऊण सूरिलस्स समागओ चंपं। अवच्चसिणेहाणुबंधेण कुविया य मे जणणि-जणया बंधुदेवस्स। कओ असंववहारो। अइक्कंतो कोइ कालो। जाया य मे चिंता। ईइसो एस संसारो, सुलहाणि एत्थ दुक्खाणि, दुल्लहा चरणपडिवत्ती, चंचलं जीवियं। ता अलं मे किलेसायास-कारएण संसारहेउणा गिहासमेणं; पवज्जामि पव्वज्जं ति। एत्थंतरम्मि समागया अहासंजमविहारेणं विहरमाणी जसमई नाम पवत्तिणि त्ति। साहिओ मए निययाहिप्पाओ जणणिजणयाणं, बहुमओ य तेसिं। अणुसासिया य णेहिं पवन्ना जहाविहीए पव्वज्जं ति।

इओ य परिणीया बंधुदेवेण कोसलाउरे नंदस्स धूया सिरिमई, भाउणा य से तीए चेव भइणी कंतिमइ त्ति। अइक्कंतो कोइ कालो। समुप्पन्नो पणओ, आणीयाओ चंपं, पवूढो घरवासो। एत्थं-तरम्मि अहं अहासंजमं विहरमाणी समं पवत्तिणीए समागया चंपं। अप्पमायओ पणट्ठपुव्ववइयरस-इया पविट्ठा गोयरं। तत्थ वि गया बंधुदेवगेहं। दिट्ठा सिरिमइकंतिमईहिं। पुव्वभवब्भासओ जाया ममोवरि पीई। पडिलाहिया फासुयदाणेणं। समागयाओ पडिस्सयं। साहिओ तासिं धम्मो, परिणओ

प्रयोजनम्' इति कथयित्वा सूरिलस्य (श्वसुरस्य) समागतश्चम्पाम्। अपत्यस्नेहानुबन्धेन कुपितौ च मे जननीजनकौ बन्धुदेवस्य। कृतोऽसंव्यवहारः। अतिक्रान्तः कोऽपि कालः। जाता च मे चिन्ता। ईदृश एष संसारः, सुलभान्यत्र दुःखानि, दुर्लभा चरणप्रतिपत्तिः, चञ्चलं जीवितम्। ततोऽलं मे क्लेशायासकारकेन संसारहेतुना गृहाश्रमेण, प्रपद्ये प्रव्रज्यामिति। अत्रान्तरे समागता यथासंयम-विहारेण विहरन्ती यशोमतिर्नाम प्रवर्तिनीति। कथितो मया निजाभिप्रायो जननीजनकयोः, बहु-मतश्च तयोः। अनुशिष्टा च ताभ्यां प्रपन्ना यथाविधि प्रव्रज्यामिति।

इतश्च परिणीता बन्धुदेवेन कोशलापुरे नन्दस्य दुहिता श्रीमती, भ्राता च तस्य तस्या एव भगिनी कान्तिमतीति। अतिक्रान्तः कोऽपि कालः। समुत्पन्नः प्रणयः, आनीते चम्पाम्। प्रव्यूढो (प्रवृत्तो) गृहवासः। अत्रान्तरेऽहं यथासंयमं विहरन्ती समं प्रवर्तिन्या समागता चम्पाम्। अप्रमादतः प्रनष्ट-पूर्वव्यतिकरस्मृतिका प्रविष्टा गोचरम्। तत्रापि गता बन्धुदेवगृहम्। दृष्टा श्रीमतीकान्तिमती-भ्याम्। पूर्वभवाभ्यासतो जाता ममोपरि प्रीतिः। प्रतिलाभिता प्रासुकदानेन। समागते प्रतिश्रयम्।

चाहिए। इसी बीच स्वजनों से बिना पूछे 'श्वसुर से मुझे बहुत बड़ा कार्य है'—ऐसा कहकर बन्धुदेव निकल गया और चम्पानगरी में आया। सन्तान के प्रति स्नेह होने के कारण मेरे माता-पिता बन्धुदेव पर कुपित हुए। उससे सम्बन्ध नहीं रखा। कुछ समय बीत गया। मुझे चिन्ता उत्पन्न हुई—यह संसार ऐसा ही है, यहाँ पर दुःख सुलभ हैं, चारित्र की प्राप्ति दुर्लभ है, जीवन चंचल है। अतः क्लेश और परिश्रम करनेवाले संसार के हेतुभूत गृहस्थाश्रम से मेरा कोई प्रयोजन नहीं है, दीक्षा लेती हूँ। इसी बीच संयमानुसार विहार करती हुई यशोमति नाम की प्रवर्तिनी (साध्वियों की अध्यक्ष) आयी। मैंने अपना अभिप्राय माता-पिता से कहा, उन दोनों ने स्वीकृति दे दी। उन दोनों की आज्ञा लेकर मैंने विधिपूर्वक दीक्षा ले ली।

इधर बन्धुदेव ने कोशलापुर में नन्द की पुत्री 'श्रीमती' से विवाह किया और उसके भाई के साथ श्रीमती की बहिन कान्तिमती का विवाह हुआ। कुछ समय बीता। प्रेम उत्पन्न हुआ, दोनों को चम्पा में ले आया। बन्धुदेव गृहवास में प्रवृत्त हो गया। इसी बीच मैं संयमानुसार प्रवर्तिनी के साथ विहार करती हुई चम्पा आयी। पहली घटना की जिसकी स्मृति नष्ट हो गयी थी, ऐसी मैं प्रमादरहित होकर मार्ग में प्रविष्ट हुई। उस पर भी बन्धुदेव के घर प्रविष्ट हुई। वहाँ पर श्रीमती और कान्तिमती ने देखा। पूर्वभव के अभ्यास के कारण उन दोनों की मुझ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

य। तओ जायाओ सावियाओ। भणियं च णाहिं—कायव्वो तए अम्ह गेहागमणेण पसाओ, जेण परियणो वि णे उवसमइ त्ति। अणुन्नाया पवत्तिणीए समारद्धा जाइउं।

एत्थंतरम्मि उइण्णं मे नियडिनिबंधणं बीयं कम्मं। तओ सिरिमइकंतिमईणं ममोवरि असाहारणभत्तिबहुमाणेहिं विम्हिओ एयासिं भवणवाणमंतरो। चिंतियं च णेणं—पेच्छामि ताव अत्थावहारेण एयासिं कीइसं साहुणीए उवरि चित्तं ति। अन्नया गया अहमिमीण गेहं। दिट्ठा य कंतिमई वासभवणम्मि पडलयट्ठियं हारं पोयमाणी। अब्भुट्ठिया अहमणाए, कयं विहिवंदणयं, उवणीयाइं आसणाइं, उवविट्ठा अहयं साहुणीओ य। कया धम्मदेसणा। पयट्टा अहयं पडिस्सयं। तओ तीए भणियं—अज्जे, अज्ज तुह पारणयं ति; ता गेण्हावेहि एयं फासुयपहेणयं। तओ मए भणियाओ साहुणीओ 'गेण्हह' त्ति। निग्गयाओ साहुणीओ कंतिमई य। एत्थंतरम्मि वाणमंतरपओएण चित्तयम्माओ चेव ओयरिओ मोरो। गहिओ णेण हारो, पक्खित्तो उयरम्मि, ठिओ य निययथामे। तओ मए चिंतियं—किमेयमच्छरीयं, अहवा मयहरियं पुच्छिस्सामि त्ति। निग्गया वासगेहाओ,

---

कथितस्तयोर्धर्मः परिणतश्च। ततो जाते श्राविके। भणितं च ताभ्याम्—कर्तव्यस्त्वया आवयोर्गृहागमनेन प्रसादः, येन परिजनोऽप्यावयोरुपशाम्यति इति। अनुज्ञाता प्रवर्तिन्या समारब्धा यातुम्।

अत्रान्तरे उदीर्णं मे निकृतिनिबन्धनं द्वितीयं कर्म। ततः श्रीमतीकान्तिमत्योर्ममोपरि असाधारणभक्तिबहुमानाभ्यां विस्मित एतयोर्भवनवानमन्तरः। चिन्तितं च तेन—प्रेक्षे तावदर्थापहारेण एतयोः कीदृशं साध्व्या उपरि चित्तमिति। अन्यदा गताऽहमनयोर्गृहम्। दृष्टा च कान्तिमती वासभवने पटलकस्थितं हारं प्रोयमाना। अभ्युत्थिताऽहमनया, कृतं विधिवन्दनकम्, उपनीतान्यासनानि, उपविष्टाऽहं साध्व्यश्च। कृता धर्मदेशना। प्रवृत्ताऽहं प्रतिश्रयम्। ततस्तया भणितम्—आर्ये! अद्य तव पारणकमिति, ततो ग्राहयैतत्प्रासुकखाद्यम्। ततो मया भणिताः साध्व्यो 'गृह्णीत' इति। निर्गताः साध्व्यः कान्तिमती च। अत्रान्तरे वानमन्तरप्रयोगेण चित्रकर्मण एवावतीर्णो मयूरः। गृहीतस्तेन हारः, प्रक्षिप्त उदरे, स्थितश्च निजस्थाने। ततो मया चिन्तितम्—किमेतदाश्चर्यम्, अथवा महत्तरां प्रक्ष्यामि इति। निर्गता वासगृहात्, संक्षुब्धा हृदयेन। आगताः साध्व्यः कान्तिमती च। ततो गता

में प्रीति हो गयी। उन्होंने प्रासुकदान देकर सत्कार किया। दोनों आश्रम में आयीं। उन दोनों को धर्म का उपदेश दिया, उन्होंने माना। अनन्तर वे दोनों श्राविकाएँ हो गयीं। उन दोनों ने कहा कि आप हम दोनों के घर आने की कृपा करें, जिससे हमारे परिजन भी निवृत्ति को प्राप्त हों। प्रवर्तिनी ने आज्ञा दे दी, मैं जाने लगी।

इसी बीच कपट से बाँधा हुआ मेरा दूसरा कर्म उदय में आया। उससे श्रीमती और कान्तिमती को मुझपर असाधारण भक्ति और सम्मान होने के कारण इन दोनों के भवन का वानमन्तर विस्मित हुआ। उसने सोचा—इन दोनों का साध्वी के प्रति किस प्रकार चित्त है, यह मैं धन चुराकर देखता हूँ। एक बार मैं उन दोनों के घर गयी और कान्तिमती को शयनागार में पेटी में रखे हार को पिरोते हुए देखा। यह मुझे देखकर उठ गयी, विधिपूर्वक वन्दना की। आसन लायी गयीं। मैं और साध्वियाँ बैठ गयीं। मैंने धर्मोपदेश दिया। प्रतिश्रय निवास को चल पड़ी। अनन्तर उसने कहा—आर्ये! आज आपका भोजन है, अतः यह प्रासुक (स्वच्छ, जीवजन्तु से रहित) भोजन ग्रहण कीजिए।' तब मैंने साध्वियों से कहा—'ग्रहण कर लो।' साध्वियाँ और कान्तिमती निकल गयीं। इसी बीच व्यन्तर के प्रयोग से चित्र से ही मोर उतरा। उसने हार ले लिया, उदर में डाला और अपने स्थान पर स्थित हो गया। पश्चात् मैंने सोचा—यह आश्चर्य है अथवा मालकिन से पूछूँगी। मैं निवासगृह से निकली, हृदय क्षुब्ध हो गया। साध्वियाँ आयीं और कान्तिमती आ गयी। अनन्तर हम लोग गये। कान्तिमती शयन-

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

संखुद्धा हियएणं। आगयाओ साहुणीओ कंतिमई य। तओ गया अम्हे। पविट्ठा कंतिमई वासभवणं। तयणंतरमेव निरूविओ हारो, जाव नत्थि त्ति। तओ तीए चिंतियं—किमेयं वड्डुखेड्डुं। पुच्छिओ परियणो। तेण भणियं—न याणामो, न य कोइ एत्थ अज्जं मोत्तूण पविट्ठो; ता तयं निरूवेहि। कंतिमईए भणियं—किमेवमसंबद्धं पलवह। समतणमणिमुत्तलेट्ठुकंचणा भयवइ त्ति। अंबाडिओ परियणो, फुट्टं च लोए। मए वि आगंतूण साहियं पवत्तिणीए। भणियं च णाए—वच्छे, विचित्तो कम्मपरिणामो, नत्थि किंचि वि एयस्स असंभावणिज्जं ति। ता अहिययरं तवचरणसंगयाए होयव्वं। न गंतव्वं च तं सत्थवाहगेहं। न याणामि कस्सवि इयमणिट्ठं ति। अन्नं च। दुहा वि पवयणलाघवं, रक्खियव्वं च एयं महापयत्तेणं। अरक्खमाणे य जीवे जणेइ एयस्स सरयचंदचंदिमासच्छहस्स मालिन्नं, आवाएइ परमपयहेउणो अहम्मबुद्धिं, विपरिणामेइ अहिणवधम्मसंगयं जणं, लंघेइ अलंघणिज्जं परमगुरुआणं ति। तओ य से जीवे अणेयसत्ताण पडिवज्जिऊण संसारहेउभावं मुज्झिऊण कज्जाकज्जेसु पउस्सिऊण गुणाणं बहुमन्निऊणमगुणे संचिऊणमबोहिमूलाइ दीहमद्धं संसार-

---

वयम्। प्रविष्टा कान्तिमती वासभवनम्। तदनन्तरमेव निरूपितो हारः, यावद् नास्तीति। ततस्तया चिन्तितम्। किमेतद् महत्कुतूहलम्। पृष्टः परिजनः। तेन भणितम्—न जानीमः, न च कोऽप्यत्र आर्यां मुक्त्वा प्रविष्टः, ततस्तां निरूपय। कान्तिमत्या भणितम्—किमेवमसम्बद्धं प्रलपत, समतृणमणिमुक्तालेष्टुकाञ्चना भगवतीति। तिरस्कृतः परिजनः। प्रसृतं च लोके। मयाप्यागत्य कथितं प्रवर्तिन्याः। भणितं च तया—वत्से! विचित्रः कर्मपरिणामः, नास्ति किञ्चिदप्येतस्यासम्भावनीयमिति। ततोऽधिकतरं तपश्चरणसङ्गतया भवितव्यम्। न गन्तव्यं च तत्सार्थवाहगृहम्। न जानामि कस्यापीदमनिष्टमिति। अन्यच्च द्विधाऽपि प्रवचनलाघवम्, रक्षितव्यं चैतन्महाप्रयत्नेन। अरक्षति च जीवे जनयत्येतस्य शरच्चन्द्रचन्द्रिकासच्छायस्य मालिन्यम्, आपादयति परमपदहेतोरधर्मबुद्धिम्, विपरिणामयत्यभिनवधर्मसङ्गतं जनम्, लङ्घयति अलङ्घनीयां परमगुर्वाज्ञामिति। ततश्च स जीवोऽनेकसत्त्वानां प्रतिपद्य संसारहेतुभावं मोहित्वा कार्याकार्ययोः प्रद्विष्य गुणान् बहु मत्वाऽगुणान् सञ्चित्याबोधिमूलानि दीर्घाध्वानं संसारसागरं पयटतीति। एतच्छ्रुत्वा समुत्पन्ना मे संवेगभावना,

---

गृह में प्रविष्ट हुई। तदनन्तर हार देखा, नहीं था। उसने सोचा—यह कैसा बड़ा कौतूहल है? सेवक से पूछा। उसने कहा—'नहीं जानते हैं और आर्या को छोड़कर कोई भी यहाँ प्रविष्ट नहीं हुआ अतः उन्हीं को देखो।' कान्तिमती ने कहा—'यह असम्बद्ध बकवास क्यों करते हो? भगवती की दृष्टि तृण, मणि, मोती, ढेला, स्वर्ण, सबमें समान है।' सेवक का तिरस्कार हुआ। बात लोगों में फैल गयी। मैंने भी आकर प्रवर्तिनी (साध्वियों की अध्यक्ष) से कहा। उसने कहा—'वत्से! कर्म की परिणति विचित्र है, उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। अतः अत्यधिक तप करना होगा और उस व्यापारी के घर नहीं जाना होगा। नहीं जानती हूँ यह किसका अनिष्ट है। फिर, प्रवचनलाधव भी दो प्रकार का होता है, इसकी बड़े प्रयत्न से रक्षा करनी चाहिए। जो जीव इसकी रक्षा नहीं करता वह उसकी शरत्कालीन चन्द्रमा की किरणों को मलिन कर देता है, परमपद के हेतुभूत धर्म में अधर्मबुद्धि ला देता है, मनुष्य को नये धर्म से युक्त बना देता है और अलंघनीय परमगुरु की आज्ञा का उल्लंघन करा देता है। वह जीव अनेक प्राणियों को संसार के कारणरूप भावों को प्राप्त कराकर कार्य-अकार्य के विषय में मोहित कर, गुणों से द्वेष कर, अगुणों को बहुत मानकर, अबोधि के मूल में संचित कर लम्बे मार्गवाले संसारसागर में लपेटता है।' यह सुनकर उदासीन भावना उत्पन्न हुई, गुरु के वचन प्रस्तुत हुए, तपविशेष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सायरं परियडइ त्ति। एयं सोऊण समुप्पन्ना मे संवेगभावणा, पत्थुयं गुरुवयणं, अंगोकओ तवविसेसो, परिचत्तं बंधुदेवगिहगमणं। आसंकियं परियणेणं। न संकियाओ सावियाओ। चिंतियं च णाहिं। उवलद्धं एत्थ किंपि अज्जाए, तेण नागच्छइ 'मा मे संकडं भविस्सइ'त्ति। जुत्तं च एयं इहलोयनिप्पिवासस्स मुणिजणस्स। अणेयदोसो खु परघरपवेसो। पडिवन्नो य णाए धम्माणुराएण। ता अलं णे एत्थ अणुबंधेणं। अम्हे चेव तत्थ गच्छिस्सामो त्ति। चिंतिऊण संपाडियं समीहियं। अइक्कंता कइवि दियहा। परिणया मे भावणा, विसुद्धं चित्तरयणं, नियत्तो अग्गहो, आवडियं परमज्झाणं, वियलिओ कम्मरासी, जायं अपुव्वकरणं, समुप्पन्ना खवगसेढी; उल्लसियं जीववीरिएणं, वड्ढिओ सुहपरिणामो, समुप्पन्नं केवलं। खविज्जमाणे य तन्निबंधणभूए कम्मए अभावेण य निमित्तस्स संजायपच्छायावेण वाणमंतरपओगेण विमुक्को मोरेण हारो। ता एवं जहुत्तनिमित्तस्स कम्मुणो एस विवागो त्ति।'

एत्थंतरम्मि विम्हिया परिसा। अहो एद्दहमेत्तस्स वि दुक्कडस्स ईइसो विवागो त्ति चिंतिऊण

प्रस्तुतं गुरुवचनं, अङ्गीकृतो तपोविशेषः, परित्यक्तं बन्धुदेवगृहगमनम्। आशङ्कितं परिजनेन, न शङ्किते श्राविके। चिन्तितं च ताभिः—उपलब्धमत्र किमप्यार्यया, तेन नागच्छति 'मा मे संकटं भविष्यति' इति। युक्तं चैतदिहलोकनिष्पिपासस्य मुनिजनस्य। अनेकदोषः खलु परगृहप्रवेशः। प्रतिपन्नश्च तथा धर्मानुरागेण। ततोऽलमावयोरत्रानुबन्धेन। आवामेव तत्र गमिष्याव इति। चिन्तयित्वा सम्पादितं समीहितम्। अतिक्रान्ताः कत्यपि दिवसाः। परिणता मे भावना, विशुद्धं चित्तरत्नम्, निवृत्तोऽग्रहः, आपतितं परमध्यानम्, विचलितः कर्मराशिः, जातमपूर्वकरणम्, समुत्पन्ना क्षपकश्रेणिः, उल्लसितं जीववीर्येण, वृद्धः शुभपरिणामः, समुत्पन्नं केवलम्। क्षीयमाणे च तन्निबन्धनभूते कर्मणि अभावेन च निमित्तस्य सञ्जातपश्चात्तापेन वानमन्तरप्रयोगेण विमुक्तो मयूरेण हारः। तत एवं यथोक्तनिमित्तस्य कर्मण एष विपाक इति।

अत्रान्तरे विस्मिता परिषद्। अहो एतावन्मात्रस्यापि दुष्कृतस्य ईदृशो विपाक इति

अंगीकार किया, बन्धुदेव का घर छोड़ दिया। सेवक को शंका हुई। किन्तु दोनों श्राविकाओं ने शंका नहीं की। उन्होंने सोचा—कोई आर्या को मिल गया होगा, अतः नहीं आती होंगी। मुझ पर संकट न आ जाय। इस लोक के प्रति पिपासा से रहित मुनिजन के लिए यह युक्त ही है। दूसरे के घर में प्रवेश करना अनेक दोषों वाला है। वह धर्मानुराग से आती थीं। अतः भावी अशुभपरिणामों से हम दोनों बस करें अर्थात् आगे के लिए अशुभ-परिणाम रखना व्यर्थ है। 'हम दोनों ही वहाँ जाया करेंगी'—ऐसा सोचकर इष्ट कार्य सम्पन्न किया अर्थात् वे दोनों ही प्रतिश्रय में आने लगीं। कुछ दिन बीत गये। मेरी भावना फलित हुई, चित्तरत्न विशुद्ध हो गया, बुरे ग्रह समाप्त हो गये, उत्कृष्ट ध्यान हुआ, कर्मराशि विचलित हो गयी, अपूर्वकरण हुआ, क्षपकश्रेणी उत्पन्न हुई। आत्मा वीर्य से उल्लसित हुई, शुभपरिणाम बढ़ा, केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। उस कारणभूत कर्म के क्षीण होने और निमित्त के अभाव होने पर वानमन्तर को पश्चात्ताप हुआ और उसके प्रयोग से मोर ने हार छोड़ दिया। तो कहे हुए कर्म के निमित्त का यह फल है।

इसी बीच सभा विस्मित हुई। 'ओह, इतने से दुष्कृत का ऐसा फल!'—ऐसा सोचकर राजदेव और बन्धुदेव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जंपियं नरिंदबंधुदेवेहिं। अहो दारुणं महंतं दुक्खमणुभूयं भयवईए। तीए भणियं—सोम्म, केत्तियमिणं ति सुण।

सुरनरनरयतिरिक्खेसु वट्टमाणाणमेत्थ जीवाणं।
को संखं पि समत्थो काउं तिक्खाण दुक्खाणं ॥५६९॥
अच्छंतु तिरियनरएसु ताव अइदुस्सहाइ दुक्खाइं।
मणुयाण वि जाइ हवंति ताण को वच्चए अंतं ॥५७०॥
जं होइ जियाण दुहं कलमलभरियम्मि गब्भवासम्मि।
एक्कं पि य वच्चइ नवरि[1] तस्स नरएण सारिच्छं ॥५७१॥
जायाण वि जम्मजरामरणेहि अहिद्दुयाण किं सोक्खं।
पियविरहपरब्भत्थणपमुहमहावसणगहियाणं ॥५७२॥
जं पि सुरयम्मि सोक्खं जायइ जीवस्स जोव्वणत्थस्स।
तं पि हु चिंतिज्जंतं दुक्खं चिय केवलं नूणं ॥५७३॥

चिन्तयित्वा जल्पितं नरेन्द्रबन्धुदेवाभ्याम्। अहो दारुणं महद् दुःखमनुभूतं भगवत्या। तया भणितम्—सौम्य! कियदिदमिति। शृणु—

सुरनरनरकतिर्यक्षु वर्तमानानामत्र जीवानाम्।
कः संख्यामपि समर्थः कर्तुं तीक्ष्णानां दुःखानाम् ॥ ५६९॥
आसतां तिर्यङ्नरकेषु तावदतिदुःसहानि दुःखानि।
मनुजानामपि यानि भवन्ति तेषां को व्रजत्यन्तम् ॥५७०॥
यद् भवति जीवानां दुःखं कलमलभृते गर्भवासे।
एकमपि च व्रजति नवरं तस्य नरकेण सादृश्यम् ॥५७१॥
जातानामपि जन्मजरामरणैरभिद्रुतानां किं सौख्यम्।
प्रियविरहपराभ्यर्थनाप्रमुखमहाव्यसनगृहीतानाम् ॥ ५७२ ॥
यद्यपि सुरते सौख्यं जायते जीवस्य यौवनस्थस्य।
तदपि खलु चिन्त्यमानं दुःखमेव केवलं नूनम् ॥५७३ ॥

ने कहा - ओह! भगवती ने दारुण दुःख का अनुभव किया।' भगवती ने कहा—'सौम्य! यह भला कितना है। सुनो—

देव, मनुष्य, नरक और तिर्यंच गतियों में वर्तमान जीवों के तीक्ष्ण दुःखों की गणना भी करने में कौन समर्थ है? तिर्यंच और नरकगतियों में रहनेवाले जीवों के दुःख अत्यन्त दुःसह हैं। मनुष्यगति में भी जो दुःख होते हैं, उनका कौन अन्त पा सकता है? अपक्व मल से भरे हुए गर्भवास में जीवों को जो दुःख होता है, एक नरक का दुःख ही उसकी समानता पा सकता है। जन्म, जरा और मरण से आक्रमित तथा इष्टवियोग, अनिष्ट संयोगादि प्रमुख आपत्तियों से जकड़े हुए जन्म लेनेवाले प्राणियों को क्या सुख होता है? यद्यपि युवावस्था में जीव को सम्भोग में सुख उत्पन्न होता है, किन्तु विचार करने पर वह दुःख ही है ॥५६९-५७३॥

१. नवरं तस्स तं चेव सारिक्खं—क। को तस्स नवरि वच्चइ उवमं तं चेव सारिच्छं—ख।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पामागहियस्स जहा कंडुयणं दुक्खमेव मूढस्स।
पडिहाइ सोक्खमतुलं एवं सुरयं[1] पि विन्नेयं ॥५७४॥

वंचिज्जइ एस जणो अचेयणो पमुहमेत्तरसिएहिं।
खलसंगएहि व सया विरामविरसेहि भोएहिं ॥५७५॥

ता उज्झिऊण एए अणवज्जं परमसोक्खसंजणयं।
तित्थयरभासियं खलु पडिवज्जह भावओ धम्मं ॥५७६॥

एत्थंतरम्मि संविग्गा सभा[2]। भणियं रायबंधुदेवेहिं—भयवइ, एवमेयं जं तए आणत्तं ति। पडिवज्जामो अम्हे गिहासमपरिच्चाएण तित्थयरभासियं धम्मं। भयवईए भणियं—अहासुहं देवाणुप्पिया, मा पडिबंधं करेह। तओ दवावियं रायबंधुदेवेहिं आघोसणापुव्वयं महादाणं, कारा‍विया जिणाययणाइसु[3] अट्ठाहिया महिमा, संमाणिओ पणइवग्गो, अहिणंदिया पउरजणवया। दिन्नं हरिसेणजुवरायस्स रज्जं। पवन्ना सयलपहाणपरियणसमेया पुरिसचंदगणिसमीवे समणत्तणं ति।

पामागृहीतस्य यथा कण्डूयनं दुःखमेव मूढस्य।
प्रतिभाति सौख्यमतुलमेव सुरतमपि विज्ञेयम् ॥५७४॥

वञ्च्यते एष जनोऽचेतनः प्रमुखमात्ररसिकैः।
खलसङ्गतैरिव सदा विरामविरसैर्भोगैः ॥५७५॥

तत उज्झित्वा एतान् अनवद्यं परमसौख्यसञ्जनकम्।
तीर्थंकरभाषितं खलु प्रतिपद्यध्वं भावतो धर्मम् ॥५७६॥

अत्रान्तरे संविग्ना सभा। भणितं राजबन्धुदेवाभ्याम्—भगवति ! एवमेतद् यत्त्वयाऽऽज्ञप्तमिति। प्रतिपद्याव आवां गृहाश्रमपरित्यागेन तीर्थंकरभाषितं धर्मम्। भगवत्या भणितम्—यथासुखं देवानुप्रियौ ! मा प्रतिबन्धं कुरुतम्। ततो दापितं राजबन्धुदेवाभ्यामाघोषणापूर्वकं महादानम्, कारिता जिनायतनादिष्वष्टाह्निका महिमा, सन्मानितः प्रणयिवर्गः, अभिनन्दिताः पौरजनव्रजाः। दत्तं हरिषेणयुवराजाय राज्यम्। प्रपन्नौ सकलप्रधानपरिजनसमेतौ पुरुषचन्द्रगणिसमीपे श्रमणत्वमिति।

जिसे खाज हो गयी है, ऐसे मूढ़ व्यक्ति का उसे खुजलाना दुःख ही है उसी प्रकार सम्भोग में जो अनुपम सुख प्रतीत होता है उसके विषय में भी जानना चाहिए। यह मनुष्य मात्र अचेतन प्रमुख रसों द्वारा ठगा जाता है। जैसे दुष्टों की संगति अन्त में नीरस होती है, उसी प्रकार भोग भी अन्त में नीरस होते हैं। अतः इन्हें छोड़कर निर्दोष, परम सुख के जनक, तीर्थंकर भाषित धर्म को ही भाव से प्राप्त करें ॥५७४-५७६॥

इसी बीच सभा भयभीत हो गयी। राजदेव और बन्धुदेव ने कहा—'भगवति ! जैसी आपने आज्ञा दी वैसा ही है। हम दोनों गृहाश्रम का त्याग कर तीर्थंकर भाषित धर्म को प्राप्त करते हैं।' भगवती ने कहा—'जैसे देवानुप्रियों को सुख लगे। रुकावट मत करो।' तब राजदेव और बन्धुदेव ने घोषणा कराकर महादान दिलाया, जिनायतनों में अष्टाह्निक महोत्सव कराया, याचकों का सम्मान किया, नगरवासियों का अभिनन्दन किया। हरिषेण युवराज के लिए राज्य दिया। दोनों सभी प्रमुख परिजनों के साथ पुरुषचन्द्र गणि के समीप श्रमण हो गये।

---

१. सुरयम्मि—क। २. सहा—ग। ३. -यणाइएसु—ख।

अइक्कंतो कोइ कालो। इओ य पउत्ता अहिमरया[1] विसेणेण सेणस्स। न छलिओ य णेहिं। अन्नया य अत्थमुवगयप्पाए दिणयरम्मि पुप्फिया तत्थ अयालपुप्फिणो रायभवणुज्जाणपायवा। दिट्ठा उज्जाणपालेणं[2]। साहिया अमच्चस्स। निरूवाविया णेणं। तहेवोवलद्धा य। पेच्छमाणाण य निरूवयाणं पुणो पयइभावमुवगय त्ति। निवेइयं अमच्चस्स। चिंतियं च णेण—कस्स पुण एए निवेयया। एत्थंतरम्मि समागओ तत्थ अट्ठंगमहानिमित्तपारओ अम्महुंडो[3] नाम सिद्धपुत्तो। सुओ य मंतिणा। सद्दाविऊण पुच्छिओ एगदेसम्मि भो किंविवागो पुण एस वइयरो त्ति। तेण भणियं—भो न तए कुप्पियव्वं, सत्थयारवयणं खु एयं। मंतिणा भणियं—अज्ज, को कोवो देव्वपरिणईए; ता साहेउ अज्जो। तेण भणियं—भो सुण। रज्जपरियत्तणविवाओ अयालकुसुमुग्गमो, खीणवेलाबलेण य पहूयकालफलओ, थेवकालोवलंभेण य न चिरयालट्ठिई। एस सत्थयाराहिप्पाओ त्ति। मंतिणा भणियं—अज्ज, एवं ववत्थिए को उण उवाओ। नेमित्तिएण भणियं—अत्थपयाणाइयं संतिकम्मं। ता देह दीणाणाहाण दविणजायं, पूएह गुरुदेवए, परिच्चयह अहाउयमेव किंचि सावज्जं,

अतिक्रान्तः कोऽपि कालः। इतश्च प्रयुक्ता अभिमरका (घातकाः) विषेणेन सेनस्य। न छलितश्च तैः। अन्यदा च अस्तमुपगतप्राये दिनकरे पुष्पितास्तत्राकालपुष्पिणो राजभवनोद्यानपादपाः। दृष्टा उद्यानपालेन। कथिता अमात्यस्य। निरूपितास्तेन। तथैवोपलब्धाश्च। प्रेक्षमाणानां च निरूपकानां पुनः प्रकृतिभावमुपगता इति। निवेदितममात्यस्य। चिन्तितं च तेन—कस्य पुनरेते निवेदकाः। अत्रान्तरे समागतस्तत्राष्टाङ्गमहानिमित्तपारग आम्रहुण्डो नाम सिद्धपुत्रः। श्रुतश्च मन्त्रिणा। शब्दयित्वा पृष्ट एकदेशे—भोः किंविपाकः पुनरेष व्यतिकर इति। तेन भणितम्—भो न त्वया कुपितव्यम्, शास्त्रकारवचनं खल्वेतद्। मन्त्रिणा भणितम्—आर्य, कः कोपो दैवपरिणतौ, ततः कथयत्वार्यः। तेन भणितम्—भोः शृणु। राज्यपरिवर्तनविपाकोऽकालकुसुमोद्गमः, क्षीणवेलाबलेन च प्रभूतकालफलदः, स्तोककालोपलम्भेन च न चिरकालस्थितिः। एष शास्त्रकाराभिप्राय इति। मन्त्रिणा भणितम्—आर्य! एवं व्यवस्थिते कः पुनरुपायः। नैमित्तिकेन भणितम्—अर्थप्रदानादिकं शान्तिकर्म। ततो दत्त दीनानाथेभ्यो द्रविणजातम्, पूजयत गुरुदेवते, परित्यजत

कुछ समय बीता। इधर विषेण ने सेन के घातक भेजे। उनसे नहीं छला गया। एक दिन जब सूर्य अस्तप्राय हो गया था तो राजभवन के उद्यान के वृक्षों में असमय में ही फूल लग गये। उद्यानपाल ने देखे। (उसने) मन्त्री से कहा। मन्त्री ने देखा, (पेड़) फूले हुए उपलब्ध हुए। दर्शकों ने जब देखे तो पुनः स्वभाव को प्राप्त हो गये। मन्त्री से निवेदन किया गया, मन्त्री ने सोचा ये किसके निवेदक (सूचक) हैं। इसी बीच वहाँ पर अष्टांग महानिमित का ज्ञाता आम्रहुण्ड नामक सिद्धपुत्र आया। मन्त्री ने सुना। बुलाकर एकान्त में पूछा – 'हे सिद्धपुत्र ! इस घटना का क्या फल है ?' उसने कहा – 'हे मन्त्रिन् ! आप कुपित न हों, यह वचन शास्त्र का अनुगामी है।' मन्त्री ने कहा —'भाग्य की परिणति पर क्या कोप करना, अतः आर्य कहें।' उस सिद्धपुत्र ने कहा—'सुनो। असमय में फूलों के उद्गम का फल राज्य परिवर्तन है, अनवसर में शक्तिशाली होने पर बहुत समय तक फलदायी होता है और थोड़े समय के लिए प्राप्ति हो तो चिरकाल तक स्थिति नहीं रहती है - यह शास्त्र का अभिप्राय है।' मन्त्री ने कहा – 'आर्य ! ऐसी स्थिति में क्या उपाय है ?' नैमित्तिक ने कहा—'धनप्रदान आदि शान्तिकर्म। अतः दीन और अनाथों को धन दो, गुरु और देवताओं की पूजा करो, आयु के अनुसार कुछ पापों को छोड़ो, अधिक गुणस्थानों

१. अहिमारया—क। अहिमरा—ख। २. पालएणं—ख। ३. अमहुंडो—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पवज्जइ अहिए गुणट्ठाणे त्ति ।

एत्थंतरम्मि य समागओ रायपडिहारो। भणियं च णेणं—भो भो अमच्च, महाराओ आणवेइ 'सिग्घमागंतव्वं' ति। तेण भणियं—जं देवो आणवेइ त्ति। वच्च तुमं, एस आगच्छामि। पुच्छिओ नेमित्तिओ—अज्ज, किं पुण आहवणनिमित्तं। नेमित्तिएण भणियं—संखेवओ ताव एयं। समागओ रायपुरसामिणो सयासाओ एत्थ रायपुरिसो, आणंदहेऊ य सो नरवइस्स। ता तन्निमित्तमाहवणं ति। मंतिणा भणियं—अज्ज, कहं आणंदहेउ त्ति। नेमित्तिएण भणियं—जइ एवं, ता पढसु किंचि त्ति। मंतिणा भणियं—जयति[1] जयलच्छिनिलओ। अवगयं नेमित्तियस्स। भणियं च णेण। सोम, समागओ खु एसो कुमाराण कन्नयापयाणनिमित्तं; महापुरिससंबंधेण य महंतो आणंदो त्ति। अन्नं च। ईइसं एत्थ लग्गं जओ एयं पि मुणिज्जइ 'जो चेव कुमाराण एयं कन्नयं परिणइस्सइ, सो चेव एयं विवन्नं पि राजधुरमुव्वहिस्सइ' त्ति। आणंदिओ मंती। पूइओ नेमित्तिओ। तओ आइसिय संतिकम्मं गओ रायउलममच्चो। दिट्ठो णेण राया दूओ य। अब्भुट्ठिओ राइणा, पणामियं आसणं, उवविट्ठो अमच्चो।

यथायुष्कमेव किञ्चित् सावद्यम्, प्रपद्यध्वमधिकानि गुणस्थानानीति।

अत्रान्तरे च समागतो राजप्रतीहारः। भणितं च तेन—भो भो अमात्य! महाराज आज्ञापयति 'शीघ्रमागन्तव्यम्' इति। तेन भणितम् यद्देव आज्ञापयति इति। व्रज त्वम्, एष आगच्छामि। पृष्टो नैमित्तिकः—आर्य! किं पुनराह्वाननिमित्तम्। नैमित्तिकेन भणितम्—संक्षेपतस्तावदेतद्। समागतो राजपुरस्वामिनः सकाशादत्र राजपुरुषः, आनन्दहेतुश्च स नरपतेः। ततस्तन्निमित्तमाह्वानमिति। मन्त्रिणा भणितम्—आर्य! कथमानन्दहेतुरिति। नैमित्तिकेन भणितम्—यद्येवं ततः पठ किञ्चिदिति। मन्त्रिणा भणितम्—जयति जयलक्ष्मीनिलयः। अवगतं नैमित्तिकस्य। भणितं च तेन—सौम्य! समागतः खल्वेष कुमारयोः कन्याप्रदाननिमित्तम्, महापुरुषसम्बन्धेन च महानानन्द इति। अन्यच्च ईदृशमत्र लग्नम्, यत एतदपि ज्ञायते 'य एव कुमारयोरेतां कन्यकां परिणेष्यति स एवैतां विपन्नामपि राजधुरमुद्वक्ष्यति' इति। आनन्दितो मन्त्री। पूजितो नैमित्तिकः। तत आदिश्य शान्तिकर्म गतो राजकुलममात्यः। दृष्टस्तेन राजा दूतश्च। अभ्युत्थितो राज्ञा, अर्पित-

---

को प्राप्त करो।'

इसी बीच राजा का द्वारपाल आया। उसने कहा—'हे हे मन्त्री! महाराज आज्ञा देते हैं, शीघ्र आओ।' मन्त्री ने कहा—'जो महाराज की आज्ञा। तुम चलो, मैं आता हूँ।' (मन्त्री ने) नैमित्तिक से पूछा—'आर्य! बुलाने का क्या कारण है?' नैमित्तिक ने कहा—'संक्षेप में बात यह है। राजपुर के स्वामी के पास से यहाँ एक राजपुरुष आया है, वह महाराज के आनन्द का कारण है। अतः उसके लिए महाराज ने बुलाया है।' मन्त्री ने कहा—'आर्य, (वह पुरुष) महाराज के आनन्द का कारण कैसे है?' नैमित्तिक ने कहा—'यदि ऐसा है तो कुछ पढ़ो।' मन्त्री ने कहा—'विजयलक्ष्मी के निवास की जय हो।' नैमित्तिक ने जान लिया और उसने कहा—सौम्य! यह दोनों कुमारों को कन्या प्रदान करने के लिए आया है। महापुरुष के सम्बन्ध के कारण महान् आनन्द है। दूसरी बात यह है—यहाँ पर ऐसी लग्न है, जिससे यह भी ज्ञात होता है कि 'दोनों कुमारों में से जो इस कन्या को विवाहेगा वह इसके मरने पर भी राज्य की धुरी को धारण करेगा।' मन्त्री आनन्दित हुआ। (उसने) नैमित्तिक की पूजा की। अनन्तर शान्तिकर्म का आदेश देकर मन्त्री राजदरबार में गया। उसने राजा और दूत को देखा। राजा ने अगवानी की,

---

1. जयइ—ख।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भणियं नरिंदेण—अज्ज, एसो खु रायउरसामिणा पेसिओ संखराएण। भणियं च णेणं—अत्थि मे दुहिया संतिमई नाम जीवियाओ वि अहिययरी। सा मए अणुमएण भवओ तुह बहुमयस्स अन्नयर-कुमारस्स पडिवाइय त्ति। अमच्चेण भणियं—देव, सुंदरमेयं। अणुरूवो खु एस संबंधो; ता कीरउ इमस्स वयणं। राइणा भणियं—'तुमं पमाणं' ति। अमच्चेण भणियं—ता आइसउ देवो कुमाराण-मन्नयरं ति। राइणा भणियं—किमेत्थ आइसियव्वं; कुमारसेणस्स एसा पढमघरिणि त्ति। अमच्चेण भणियं—देव, सोहणमिणं; ता पयासीयउ सामंतनायरयाणं। राइणा भणियं—जमेत्थ अणुरूवं, तं सयमेव अणुचिट्ठउ अज्जो। तओ पयासियं सामंतनायरयाणं, करावियं वद्धावणयं, पहयाइं मंगल-तूराइं, नच्चियं अंतेउरे (रिया) हिं, जाओ महापमोओ त्ति।

एयवइयरेणं च दूमिओ विसेणकुमारो। चिंतियं च णेणं। अणत्थो मे एस जीवमाणो; न सक्कुणोमि एयं संपयं सोउं पि, किमंग पुण पेच्छिउं। अहवा नत्थि दुक्करं कम्मपरिणईए। अइक्कंतेसु य कइवयदिणेसु संतिमईविवाहनिमित्तं महया चडयरेण पहाणामच्चसंगओ रायपुरमेव पेसिओ

मासनम्, उपविष्टोऽमात्यः। भणितं नरेन्द्रेण—आर्य ! एष खलु राजपुरस्वामिना प्रेषितः शङ्खराजेन। भणितं च तेन—अस्ति मे दुहिता शान्तिमती नाम जीवितादप्यधिकतरा, सा मयाऽनुमतेन भवतस्तव बहुमतस्यान्यतरकुमारस्य प्रतिपादितेति। अमात्येन भणितम्—देव ! सुन्दरमेतद्। अनुरूपः खल्वेष सम्बन्धः, ततः क्रियतामस्य वचनम्। राज्ञा भणितम्—'त्वं प्रमाणम्' इति। अमात्येन भणितम्—आदिशतु देवः कुमारयोरन्यतरमिति। राज्ञा भणितम्—किमत्रादेष्टव्यम्, कुमारसेनस्यैषा प्रथमगृहिणीति। अमात्येन भणितम्—देव ! शोभनमिदम्, ततः प्रकाश्यतां सामन्तनागरकानाम्। राज्ञा भणितम्—यदत्रानुरूपं तत्स्वयमेवानुतिष्ठत्वार्यः। ततः प्रकाशितं सामन्तनागरकानाम्, कारितं वर्धापनकम्, प्रहतानि मङ्गलतूर्याणि, नर्तितमन्तःपुरिकाभिः, जातो महाप्रमोद इति।

एतद्व्यतिकरेण च दूनो विषेणकुमारः। चिन्तितं च तेन। अनर्थो मे एष जीवन्, न शक्नोम्येतं साम्प्रतं श्रोतुमपि, किमङ्ग पुनः प्रेक्षितुम्। अथवा नास्ति दुष्करं कर्मपरिणत्याः। अतिक्रान्तेषु च कतिपयदिनेषु शान्तिमतीविवाहनिमित्तं महता चटकरेण (आडम्बरेण) प्रधानामात्य-

---

आसन दिया, मन्त्री बैठ गया। राजा ने कहा—'आर्य ! इसे राजपुर के स्वामी शंखराज ने भेजा है और उसने कहा है—मेरे प्राणों से अधिक (प्रिय) 'शान्तिमती' नामक कन्या है। उसे आप जिस कुमार को अधिक मानते हों, उस एक को देने की मैं अनुमति देता हूँ।' मन्त्री ने कहा—'महाराज ! यह ठीक है। निश्चित रूप से यह सम्बन्ध अनुरूप है, अतः इसके वचनों को पूरा करें।' राजा ने कहा—'आप प्रमाण हो।' मन्त्री ने कहा—'महाराज ! दोनों कुमारों में से एक को आदेश दें।' राजा ने कहा—'यहाँ क्या आदेश देना है ? प्रथम कुमार सेन की यह गृहिणी हुई।' अमात्य ने कहा—'महाराज ! यह ठीक है, अतः सामन्त और नागरिकों को यह बात प्रकट की जाय !' राजा ने कहा—'जो यहाँ पर अनुरूप हो, उसे आर्य स्वयं ही पूरा करें।' अनन्तर सामन्त और नागरिकों पर यह बात प्रकट की गयी। महोत्सव कराया, मंगल बाजे बजाये गये, अन्तःपुरिकाओं ने नृत्य किया, बहुत आनन्द आया।

इस घटना से विषेणकुमार दुःखी हुआ और उसने सोचा—मेरा यह जीवन व्यर्थ है, इस समय मैं इसे सुन भी नहीं सकता, देखने की तो बात ही क्या है। अथवा कर्म की परिणति के लिए कुछ भी कार्य कठिन नहीं है। कुछ दिन बीत जाने पर शान्तिमती से विवाह के लिए बड़े ठाठ-बाट से प्रधानमन्त्री के साथ सेनकुमार को

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

सेणकुमारो। पत्तो कालक्कमेण। निवेइयं संखरायस्स। परितुट्ठो य एसो। दिन्नं पारिओसियं। समाइट्ठं च णेणं। हरे, मोयावेह सव्वबंधणाणि, दवावेह महादाणं, सोहावेह रायमग्गे, करावेह हट्टसोहाओ, पयट्टेह सयलपायमूलाइं, वायावेह हरिसजमलसंखे, सज्जेह मंगलाइं, दवावेह परमाणंदतूरं, ढोयावेह वारूयं; निग्गच्छामो कुमारपच्चोणि त्ति। संपाडियं रायसासणं। निग्गओ राया। दिट्ठो य णेण रईसमागमूसुओ विय पंचबाणो कुमारसेणो त्ति। पणमिओ कुमारेण। अहिणंदिओ राइणा। पवेसिओ महाविभूईए। दिन्नो जन्नावासओ। कयं उचियकरणिज्जं। समागओ विवाहदिवसो। निवत्तं ण्हवणयं। एत्थंतरम्मि संखकाहलासद्दगंभीरतूरनिग्घोसबहिरियदिसामंडलो गहियवरकणयदंडधयवडुग्घायनच्चंततरुणनिवहो मंगलपहाणगायंतचारणवियड्ढपेच्छणयसंघायसंकुलो पइण्णपडवासधूलिधूसरियमणहरुत्तालनच्चंतवेसविलओ महया गइंदपीढेण समागओ विवाहमंडवं कुमारसेणो त्ति। कयं उचियकरणिज्जं। पवेसिओ कोउयहरं। दिट्ठा य णेण वहुया पसाहिया सुरहिवण्णएहिं विभूसिया दिव्वालंकारेणं परिहिया खोमजुयलं पडिछन्ना कुसुमदामेहिं समोत्थया सण्हदेवदूसेणं। तं च दट्ठूण-

---

संगतो राजपुरमेव प्रेषितः सेनकुमारः। प्राप्तः कालक्रमेण। निवेदितं शङ्खराजस्य। परितुष्टश्चैषः। दत्तं पारितोषिकम्। समादिष्टं च तेन—अरे मोचयत सर्वबन्धनानि, दापयत महादानम्, शोधयत राजमार्गान्, कारयत हट्टशोभाः, प्रवर्तयत सकलपादमूलानि (नर्तकान्), वादयत हर्षयमलशङ्खे, सज्जयत मङ्गलानि, दापयत परमानन्दतूर्यम्, ढौकयत हस्तिनीम्, निर्गच्छाम कुमारसन्मुखमिति। सम्पादितं राजशासनम्। निर्गतो राजा। दृष्टस्तेन रतिसमागमोत्सुक इव पञ्चबाणः कुमारसेन इति। प्रणतः कुमारेण। अभिनन्दितो राज्ञा। प्रवेशितो महाविभूत्या। दत्तो जन्यावासः। कृतमुचितकरणीयम्। समागतो विवाहदिवसः। निर्वृत्तं स्नपनकम्। अत्रान्तरे शङ्खकाहलाशब्दगम्भीरतूर्यनिर्घोषबधिरितदिग्मण्डलो गृहीतवरकनकदण्डध्वजपटोद्धातनृत्यत्तरुणनिवहो मङ्गलप्रधानगायच्चारणविदग्धप्रेक्षणकसंघातसंकुलः प्रकीर्णपटवासधूलिधूसरितमनोहरोत्तालनृत्यद्वेश्यावनितो महता गजेन्द्रपीठेन समागतो विवाहमण्डपं कुमारसेन इति। कृतमुचितकरणीयम्। प्रवेशितः कौतुकगृहम्। दृष्टा च तेन वधूः प्रसाधिता सुरभिवर्णकैर्विभूषिता दिव्यालङ्कारेण परिहिता क्षौमयुगलं प्रतिछन्ना कुसुमदामभिः समवस्तृता श्लक्ष्णदेवदूष्येण। तां च दृष्ट्वाऽनादिभवा-

---

राजपुर ही भेजा। कालक्रम से वह पहुँच गया। शंखराज से निवेदन किया गया। यह सन्तुष्ट हुआ। (इसने) पारितोषिक दिया और उसने आज्ञा दी – अरे, समस्त बन्दियों को छोड़ दो, महादान दिलाओ, मार्ग साफ कराओ, बाजार की शोभा कराओ, समस्त नृत्यकारों को प्रवृत्त करो, हर्ष से शंखयुगल बजाओ, मांगलिक वस्तुओं को सजाओ, उत्कृष्ट आनन्द के बाजे बजाओ, हथिनी को ले चलो, कुमार के सम्मुख निकलें। राजा की आज्ञा को पूरा किया गया। राजा निकला, उसने रति से समागम के लिए उत्सुक कामदेव के समान कुमार सेन को देखा। कुमार ने (राजा को) प्रणाम किया। राजा ने अभिनन्दन किया। बड़ी विभूति से प्रवेश कराया। जनवास दिया। योग्य कार्यों को किया। विवाह का दिन आया। स्नान से निर्वृत्त हुए। इसी बीच बहुत विशाल हाथी की पीठ पर सवार होकर कुमार सेन विवाहमण्डप में आया। उस समय शंख, काहला के शब्द से, गम्भीर मृदंग की आवाज से दिशाएँ बधिर हो रही थीं। श्रेष्ठ स्वर्णदण्डों में ध्वज-वस्त्रों को लगाये हुए तरुणों का समूह नृत्य कर रहा था। मंगलप्रधान गीत गाते हुए चारण, विदग्ध और नाटककारों के समूह व्याप्त हो रहे थे, वेश्याएँ बिखेरे गये सुगन्धित द्रव्य की धूल से धूसरित होकर मनोहर नृत्य कर रही थीं। योग्य कार्यों को किया गया। कौतुकगृह में प्रवेश कराया गया। कुमार ने वधू को देखा। उसे सुगन्धित अनुलेपन से सजाया गया था, दिव्य अलंकारों से विभूषित किया गया था, रेशमी वस्त्रों का युगल पहिनाया गया था, फूलों की मालाओं से आच्छादित किया गया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणाइभवब्भासदोसेण वियंभिओ कुमारस्स पेम्मसायरो। चिंतियं च णेण। अहो से रूवसोम्मया, संसारम्मि वि ईइसा भाव त्ति। [1]कराविओ कोउयाइं। पूइया देवगुरवो। निवत्तो हत्थग्गहो। सम्माणिया सामंता, अहिणंदिया नायरया, परिओसिओ तक्कुयजणो त्ति। भमियाइं मंडलाइं। वत्तो विवाहजन्नो। अमरकुमरोवमं च सोक्खमणुहवंतस्स अइक्कंता कइवि दियहा। समुप्पन्नो पणओ। तओ 'कज्जप्पहाणा राइणो' त्ति सम्माणिओ नरिंदेण, पूइओ सामंतेहिं, अहिणंदिओ नयरिजणवएणं, घेत्तूण संतिमइं महया चडयरेण समागओ नियनयरिं। आणंदिओ राया, हरिसियाइं अंतेउराइं, तुट्ठो नयरिजणवओ, दूमिओ विसेणो, कया अयालमहिमा, पविट्ठो महाविभूईए। पणमिओ राया, अहिणंदिओ णेण, गओ नियथावासं। तत्थ वि य अइक्कंतो कोइ कालो विसयसुहमणुहवंतस्स।

अन्नया य समागओ वसंतसमओ। सो उण उद्दामकामिणीयणवियंभियमयणपसरो महुरपरहुयासद्दवित्तासियपहियथणनिवहो पिययमामाणकलिकेउभूयवियंभियमलयाणिलो कुसुममहुमत्त-

---

भ्यासदोषेणविजृम्भितः कुमारस्य प्रेमसागरः। चिन्तितं च तेन—अहो तस्य रूपसौम्यता, संसारेऽपीदृशा भावा इति। कारितः कौतुकानि। पूजिता देवगुरवः। निर्वृत्तो हस्तग्रहः। सन्मानिताः सामन्ताः, अभिनन्दिता नागरकाः, परितोषितः [2]स्वजनजन इति। भ्रान्तानि मण्डलानि। वृत्तो विवाहयज्ञः। अमरकुमारोपमं च सौख्यमनुभवतोऽतिक्रान्ताः कत्यपि दिवसाः। समुत्पन्नः प्रणयः। ततः 'कार्यप्रधाना राजानः' इति सन्मानितो नरेन्द्रेण, पूजितः सामन्तैः, अभिनन्दितो नगरीजनव्रजेन। गृहीत्वा शान्तिमतीं महताऽऽडम्बरेण समागतो निजनगरीम्। आनन्दितो राजा, हृषितान्यन्तःपुराणि, तुष्टो नगरीजनव्रजः, दूनो विषेणः, कृताऽकालमहिमा, प्रविष्टो महाविभूत्या। प्रणतो राजा, अभिनन्दितस्तेन, गतो निजावासम्। तत्रापि च गतः कोऽपि कालो विषयसुखमनुभवतः।

अन्यदा च समागतो वसन्तसमयः। स पुनरुद्दामकामिनीजनविजृम्भितमदनप्रसरो मधुरपरभृताशब्दवित्रासितपथिकजननिवहः प्रियतमामानकलिकेतुभूतविजृम्भितमलयानिलः कुसुममधमत्त-

---

था, महीन दैवीय वस्त्र उसके ऊपर फैलाया गया था। उसे देखकर अनादि भव के अभ्यास के दोष से कुमार का प्रेमरूपी सागर बढ़ गया। उसने सोचा—अहा, इस राजकन्या की रूपसौम्यता, संसार में भी ऐसी वस्तुएँ हैं? कौतुक कराये गये। देव और गुरुओं की पूजा की। पाणिग्रहण संस्कार पूरा हुआ। सामन्तों का सम्मान किया गया, नागरिकों का अभिनन्दन किया गया, स्वजन सन्तुष्ट हुए। फेरे हुए। विवाह-यज्ञ सम्पन्न हुआ। देवकुमारों के समान सुख का अनुभव करते हुए कुछ दिन बीत गये। प्रणय उत्पन्न हुआ। अनन्तर राजा लोग कार्यप्रधान होते हैं—ऐसा सोचकर राजा ने सम्मान किया, सामन्तों ने पूजा की, नगर के जन-समूह ने अभिनन्दन किया। शान्तिमती को लेकर कुमार ठाठ-बाट के साथ अपनी नगरी में आया। राजा आनन्दित हुआ, अन्तःपुर हर्षित हुआ, नगरी के लोग सन्तुष्ट हुए। विषेण दुःखी हुआ, असामयिक महोत्सव किया गया, बड़ी विभूति के साथ कुमार प्रविष्ट हुआ। (उसने) राजा को प्रणाम किया। राजा ने अभिनन्दन किया। (वह) अपने निवास पर गया। वहाँ पर भी विषयसुख का अनुभव करते हुए कुछ समय बीत गया।

एक बार वसन्त समय आया। उसमें उत्कट कामिनियों के द्वारा काम का विस्तार बढ़ा दिया गया। कोयल की मधुर आवाज ने पथिकों के समूह को दुःखी कर दिया, प्रियतमाओं के मान से उत्पन्न कलह के लिए

---

1. कारविधो—क। २: तक्कुय (दे०) स्वजनः।

भमिरभमरउलकयवमालो वियसियसहयाररेणुधूलिधूसरियनहयलो कुरुबयकुसुमामोयहरिसिय-मुद्धमहुयरिगणो सुइसुहसुव्वंतचच्चरीतूरमहुरनिग्घोसो भवणंगणुब्बद्धविविहविडविहिंडोलयाउलो, महुमहो व्व महुयररिंछोलिसामलच्छाओ लच्छिपडिवन्नवच्छो य, पसाहियवारविलयानिवहो व्व तिलउज्जलो जणियमयणपसरो य, मुणियपरमत्थजोइनाहो व्व अइमुत्तयालंकिओ दढमसोयचित्तो य, सुरासुरमहिज्जंतदुद्धोयहि व्व [1]वियंभियसुरापरिमलो विइण्णभुवणलच्छी य।

अवि य

नलिणीए बद्धराओ त्ति जमि मुणिउं व दक्खिणदिसाए।
खिच्छुब्भइ दियसयरो मलयाणिलमुक्कनीसासं ॥५७७॥
वियसियपंकयनयणा जम्मि य वोलेंति मंथरं दियहा।
उउसिरिदंसणसंभमपहरिसहीरंतहियय व्व ॥५७८॥

भ्रमद्भ्रमरकुलकृत [2]कलकलो विकसितसहकाररेणुधूलिधूसरितनभस्तलः कुरुबककुसुमामोदहृषितमुग्धमधुकरीगण: श्रुतिसुखश्रूयमाणचर्च्चरीतूर्यमधुरनिर्घोषो भवनाङ्गणोद्बद्धविविधविटपहिन्दोलाकुलो मधमथ इव मधुकरश्रेणि श्यामलच्छायो लक्ष्मीप्रतिपन्नवक्षाश्च, प्रसाधितवारवनितानिबह इव तिलकोज्ज्वलो जनितमदनप्रसरश्च, ज्ञातपरमार्थयोगिनाथ इवातिमुक्तका(ता)लंकृतो दृढमशोकचित्र (त्त) श्च, सुरासुरमथ्यमानदुग्धोदधिरिव विजृम्भितसुरापरिमलो वितीर्णभुवनलक्ष्मीश्च।

अपि च

नलिन्यां बद्धराग इति यस्मिन् ज्ञात्वेव दक्षिणदिशा।
विक्षिप्यते दिवसकरो मलयानिलमुक्तनि:श्वासम् ॥५७७॥
विकसितपङ्कजनयना यस्मिंश्च व्यतिक्रामन्ति मन्थरं (मन्दं) दिवसाः।
ऋतुश्रीदर्शनसम्भ्रमप्रहर्षह्रियमाणहृदया इव ॥५७८॥

ध्वजास्वरूप मलयपवन बढ़ गया, फूलों के मधु से मतवाले होकर घूमनेवाले भौंरों का समूह गुंजार करने लगा, विकसित आम के पराग की धूलि से आकाश धूसरित हो गया, कुरबक के फूलों की सुगन्धि से हर्षित भौंरियों का समूह मुग्ध हो गया, नृत्यमण्डली के वाद्यों की मधुर आवाज कानों में सुख देती हुई सुनाई देने लगी, भवन के आँगन अनेक प्रकार के वृक्षों में बाँधे गये झूलों से व्याप्त हो गये। भौंरों की पंक्तियाँ मधुमथ की भाँति श्याम कान्तिवाली हो रही थीं। वृक्ष शोभासम्पन्न हो गये थे। काम के प्रसार को उत्पन्न करनेवाला उज्ज्वल तिलक (वृक्षसमूह) सज्जित वाराङ्गनाओं के समूह की तरह लग रहा था, अत्यधिक मोतियों से अलंकृत दृढ़ अशोक परमार्थ को जाननेवाले योगिनाथ की भाँति लग रहा था। सुर और असुरों के द्वारा मथे जाते हुए क्षीरसागर के समान मद्य की सुगन्धि को बढ़ाती हुई ही मानो भुवनलक्ष्मी उतर आयी थी।

और भी –

जिस वसन्त ऋतु में दक्षिण दिशा सूर्य को कमलिनी के प्रति राग में बँधा हुआ जानकर मलयपवन के द्वारा लम्बी साँस छोड़कर विकल हो रही थी, जिसमें ऋतुरूप लक्ष्मी के दर्शन के उत्साह से हर्षित होकर हरे गये हृदयवालों के समान विकसित नेत्रकमलों वाले दिन मन्द गति से व्यतीत हो रहे थे ॥५७७-५७८॥

---

1. सुरहिपरिमलो – क। 2. रोलो रावो बयलो हलबोलो कयवलो वमालोव ॥ (पाइयलच्छी, ४७)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जम्मि सहयारपरिमलखित्तो भरियावराहविणियत्तो ।
अंदोलइ दोलासु व माणो गरुओ वि विलयाणं ॥५७९॥
मुच्छानिमीलियच्छे जम्मि य पहिए [1]विसंथुलोअल्लो ।
विसकुसुमाण व गंधो पसरंतो कुणइ बउलाणं ॥५८०॥
[2]दट्ठुं नवमंजरिए चूए गुंजंतभमरपरियरिए ।
जम्मि अइमच्छरेण व धणियं फुट्टंति अंकोल्ला ॥५८१॥
वज्जंतभमरवंसं कोइलकलसद्दबद्धसंगीयं ।
पवणधुयपल्लवकरं नच्चंति व जत्थ रण्णाइं ॥५८२॥
जम्मि य गयणविलग्गा सहंति पवियसियकुसुमपब्भारा ।
मयगयवइगहिओल्लोल्लसोल्लभारा इव पलासा ॥५८३॥
जम्मि य सहंति किंसुयकुसुमाइं थलीण पवणपडियाइं ।
तक्खणसमागयाइं महुणा सह नहवयाइ व्व ॥५८४॥

यस्मिन् सहकारपरिमलक्षिप्तः [3]स्मृतापराधविनिवृत्तः ।
आन्दोलयति दोलास्विव मानो गुरुरपि वनितानाम् ॥५७९॥
मूर्च्छानिमीलिताक्षान् यस्मिश्च पथिकान् विसंस्थुलपर्यस्तः ।
विषकुसुमानामिव गन्धः प्रसरन् करोति बकुलानाम् ॥५८०॥
दृष्ट्वा नवमञ्जरीकान् चूतान् गुञ्जद्भ्रमरपरिकरितान् ।
यस्मिन्नतिमत्सरेणेव गाढं स्फुटन्ति अङ्कोठाः ॥५८१॥
वाद्यमानभ्रमरवंशं कोकिलकलशब्दबद्धसङ्गीतम् ।
पवनधूतपल्लवकरं नृत्यन्तीव यत्रारण्यानि ॥५८२॥
यस्मिश्च गगनविलग्ना राजन्ते प्रविकसितकुसुमप्राग्भाराः ।
मृतगजपतिगृहीतार्द्रार्द्रमांसभारा इव पलाशाः ॥५८३॥
यस्मिश्च राजन्ते किंशुककुसुमानि स्थलीनां पवनपतितानि ।
तत्क्षणसमागता मधुना सह नखव्रजा इव ॥५८४॥

जिसमें आम की सुगन्धि के रूप में फेंका हुआ स्मरण रूप अपराध से लौटाया हुआ स्त्रियों का भारी मान भी मानो झूलों पर झूलता था, जिसमें मूर्च्छा से नेत्र बन्द किये हुए पथिकों के ऊपर विषम रूप से फेंके गये नीलकमलों के समान गन्ध बकुलों का प्रसार करती थी, जिन पर गुंजार करते हुए भ्रमरों से युक्त नवमञ्जरी वाले आमों को देखकर मानो अत्यन्त ईर्ष्या से ही अंकोष्ठ अत्यधिक रूप से विकसित हो रहे थे, जहाँ पर भ्रमररूपी बाँसुरी को बजाकर कोयलों की मधुर ध्वनि के रूप में गाना गाकर वायु के द्वारा पल्लवरूपी हाथों को हिलाते हुए वन मानो नृत्य कर रहे थे, जहाँ पर आकाश में लगे हुए अत्यधिक विकसित फूलों के समूहवाले पलाश मरे हुए सिंहों से गृहीत आर्द्र मांस के भार के समान शोभित हो रहे थे, जिसमें वायु के द्वारा पृथ्वी पर गिरे हुए किंशुक के फूल उसी क्षण मधु के साथ आये हुए नखवज्रा के समान शोभित हो रहे थे। ॥५७९-५८४॥

---

१. -थुलुव्विल्लो—ख । २. दट्ठूण य—क, ख । ३. भरियं लद्धियं सुमरियं—(पाइयलच्छी, ५६४) ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जत्थ य पियंति तरुणा पवरमहुं कामिणीण [1]अहरे य।
वट्टंति य खेड्डाइं सुरयाइं बहुवियारायाइं ॥५८५॥

एवंगुणाहिरामे य पवत्ते वसंतसमए सो सेणकुमारो कीलानिमित्तमेव विसेसुज्जलनेवच्छेण संगओ परियणेणं पयट्टो अमरनंदणं उज्जाणं। दिट्ठो य पासायतलगएणं विसेणकुमारेणं निम्मल-विचित्तदेवंगनिवसणो बहलहरियंदणविलित्तदेहो विमलमाणिक्ककडयभूसियकरो पउमरायखचिय-केऊरपडिवन्नबाहू भुवणसारकडिसुत्तउच्छइयकडियडो वच्छयलाभोयविरइयवररयणपालंबो निम्मलकवोलघोलंतसवणकुंडलो विविहवररयणकलियमउडपसाहिउत्तिमंगो आरूढो धवलवारणं पवज्जमाणेणं वसंतचच्चरीतूरेणं नच्चमाणेहिं किंकरगणेहिं एरावणगओ विय तियसकुमारपरियरिओ देवराओ त्ति।

संतिमई वि य भूसियसहियणपरिवारिया विसालच्छी।
पवरदुगुल्लनिवसणा चंदणनिम्मज्जियसरीरा ॥५८६॥

यत्र पिबन्ति तरुणाः प्रवरमधु कामिनीनामधरांश्च।
वर्तते खेलानि सुरतानि बहुविकाराणि ॥५८५॥

एवंगुणाभिरामे च प्रवृत्ते वसन्तसमये स सेनकुमारः क्रीडानिमित्तमेव विशेषोज्ज्वलनैपथ्येन सङ्गतः परिजनेन प्रवृत्तोऽमरनन्दनमुद्यानम्। दृष्टश्च प्रासादतलगतेन विषेणकुमारेण निर्मलविचित्र-देवाङ्गनिवसनो बहलहरिचन्दनविलिप्तदेहो विमलमाणिक्यकटकभूषितकरः पद्मरागखचितकेयूर-प्रतिपन्नबाहुर्भुवनसारकटिसूत्रावच्छादितकटितटो वक्षःस्थलाभोगविरचितवररत्नप्रालम्बो निर्मल-कपोल[2]भ्रमच्छ्रवणकुण्डलो विविधवररत्नकलितमुकुटप्रसाधितोत्तमाङ्ग आरूढो धवलवारणं प्रवाद्यमानेन वसन्तचर्चरीतूर्येण नृत्यद्भिः किङ्करगणैरैरावणगत इव त्रिदशकुमारपरिकरितो देवराज इति।

शान्तिमत्यपि च भूषितसखीजनपरिवृता विशालाक्षी।
प्रवरदुकूलनिवसना चन्दननिर्माजित (उपलिप्त)शरीरा ॥५८६॥

जहाँ पर तरुण लोग मधु और स्त्रियों के अधर का पान कर रहे थे तथा जहाँ बहुत-सी विकारयुक्त, सम्भोग-क्रीड़ाएँ हो रही थीं ॥५८५॥

इस प्रकार के गुणों से सुन्दर लगनेवाले वसन्त समय के आने पर वह सेनकुमार क्रीड़ा के लिए विशेष उज्ज्वल पोशाक पहिनकर परिजनों के साथ 'अमरनन्दन' उद्यान में गया। भवन के नीचे गये हुए कुमार विषेण ने उसे देवकुमारों से घिरे हुए इन्द्र के समान देखा। वह निर्मल, विचित्र, दैवीय वस्त्र पहिने था, अत्यधिक हरिचन्दन से उसका शरीर लिप्त था, निर्मलमणियों से निर्मित कड़ों से उसके हाथ भूषित थे, भुजाओं में पद्मरागमणि से जड़े हुए भुजबन्द थे, लोकों के साररूप कटिसूत्र (करधनी) से उसकी कमर का तट आच्छादित था, वक्षःस्थल के विस्तृत भाग पर श्रेष्ठ रत्नहार लटक रहा था, स्वच्छ गालों पर कर्णकुण्डल डोल रहे थे, अनेक प्रकार के श्रेष्ठ रत्नों से युक्त मुकुट से उसका सिर सजा हुआ था, वह सफेद हाथी पर सवार था, वसन्त मास की नृत्यमण्डलियों के बाजों के साथ किंकर नृत्य कर रहे थे, ऐसा मालूम पड़ रहा था जैसे ऐरावत हाथी पर सवार होकर इन्द्र जा रहा हो।

कुमार विषेण ने शान्तिमती को भी देखा। वह शान्तिमती भी भूषित सखीजनों के साथ थी। उसके नेत्र विशाल थे। वह उत्कृष्ट रेशमी वस्त्र पहिने हुए थी। चन्दन से उसका शरीर लिप्त था ॥५८६॥

---

१. अहरेण—क। २. घोलियइ डुलियाइ भमिअत्थे (पाइयलच्छी ५२९)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नियकंतिसच्छहेण य कुंकुमराएण पिंजरियदेहा ।
सुरहिबहुवण्णवण्णयकवोलकयपत्तलेहा य ॥५८७॥
मणहररइयविसेसयविसेसभंगुरकयालयसणाहा ।
सविसेसपेच्छणिज्जा सोहियसंजमियधम्मेल्ला ॥५८८॥
नेउररसणामणिवलयहारकुंडलविभूसणेहिं च ।
पडिवन्नचलणतियहत्थकंठसवणा मियंकमुही ॥५८९॥
धरियसिहिपिच्छविरइयकंचणमयदंडसाहुलिसमेया ।
बहुरयणभूसियं दंतघडियजंपाणमारूढा ॥५९०॥

तओ तं दट्ठूण पुव्वकयकम्मगरुययाए समुप्पन्नो विसेणस्स मच्छरो, वड्ढियं अहमज्झाणं। चिंतियं च णेणं। वावाएमि एयं दुरायारं। पउत्ता वावायगा। पत्तो य सेणकुमारो अमरणंदणं उज्जाणं। तं पुण सुसिणिद्धपायवं उद्दाममाहवीलयालिंगियसहयारं बउलतरुकुसुमसुरहिगंधायड्ढिय-भमंतभमरोलिमंजुगुंजियरवाऊरियदिसं महल्लपाडलावडियसुरहिकुसुमनियरपच्छाइयभूमिभाग

निजकान्तिसच्छायेन (सदृशेण) च कुंकुमरागेण पिञ्जरित देहा ।
सुरभिबहुवर्णवर्णककपोलकृतपत्रलेखा च । ॥५८७।
मनोहररचितविशेषकविशेषभङ्गुरकृतालकसनाथा ।
सविशेषप्रेक्षणीया शोभितसंयमितधम्मिला ॥५८८॥
नूपुररसनामणिवलयहारकुण्डलविभूषणैश्च ।
प्रतिपन्नचरणत्रिकहस्तकण्ठश्रवणा मृगाङ्कमुखी ॥५८९॥
धृतशिखिपिच्छविरचितकाञ्चनमयदण्डसखीसमेता ।
बहुरत्नभूषितं दन्तघटितजम्पानमारूढा ॥५९०॥

ततस्तां दृष्ट्वा पूर्वकृतकर्मगुरुकतया समुत्पन्नो विषेणस्य मत्सरः, वृद्धमधमध्यानम् । चिन्तितं च तेन–व्यापादयाम्येतं दुराचारम् । प्रयुक्ता व्यापादकाः । प्राप्तश्च सेनकुमारोऽमरनन्दनमुद्यानम् । तत्पुनः सुस्निग्धपादपम्, उद्दाममाधवीलतालिङ्गितसहकारम्, बकुलतरुकुसुमसुरभिगन्धाकृष्टभ्रमद्भ्रमरालिमञ्जुगुञ्जितरवापूरितदिशं महत्पाटलापतितसुरभिकुसुमनिकरप्रच्छादित-

---

अपनी दक्षिणागिरि कान्ति के समान कुंकुम के रंग से उसका शरीर पीला पीला हो रहा था। अनेक प्रकार सुगन्धित रंगों से उसके गालों पर पत्ररचना की गयी थी। उसके माथे पर मनोहर विशेष तिलक लगा था। वह घुँघराले बालों से युक्त थी, उसके बालों का सुशोभित बाँधा हुआ जूड़ा विशेष रूप से देखने योग्य था, (वह) चन्द्रमुखी चरण और हाथ, कण्ठ तथा कान में नूपुर, रसना, मणि चूड़ी, हार तथा कुण्डल (इन) आभूषणों को धारण किये हुए थी। मयूरपिच्छों को धारण किये हुए, रची हुई सोने की छड़ियों और सखियों से युक्त, अनेक रत्नों से भूषित, हाथी दाँत से निर्मित जम्पान (एक प्रकार की पालकी) पर वह सवार थी ॥५८७-५९०॥

अनन्तर उसे देखकर पूर्वकर्म की प्रबलता से विषेण को डाह हुई। नीचा ध्यान (कुध्यान) बढ़ा। उसने सोचा – इस दुराचारी को मार डालूँ। मारनेवालों को प्रयुक्त किया। सेनकुमार अमरनन्दन उद्यान में गया। उस उद्यान के वृक्ष बहुत मनोहर थे। उत्कट माधवी लता से आम्रवृक्ष आलिंगित थे, बकुल (मौलसिरी) के फूलों की सुगन्धित गन्ध से आकृष्ट होकर घूम रहे भौंरों की मधुर गुंजार की ध्वनि से दिशाएँ व्याप्त हो रही थीं। बहुत बड़े लाल लोध्र से गिरे हुए सुगन्धित पुष्पसमूह से भूमिभाग आच्छादित हो रहा था, नववधू का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नववहुवयणं पिव तिलयउज्जलं असोयपल्लवकयावयंसयं च, माहवपणइणीसरीरं पिव दीहियाकमलोव-सोहियं भमंतमुहलालिउलजालपरिगयं च, रिद्धिमंतं पिव सच्छायं सउणजणसेवियं च, नवजोव्वणं पिव उम्मायजणणं विलोहणिज्जं च, कामिणीथओहरजुयलं विय परिमंडलं चंदणपंडुरं च, वासहरं पिव अणंगपणइणीए, संगमो विय उउलच्छीणं, कारणं पिव आणंदभावस्स, सहोयरं पिव सुरलोय-देसाणं। तं च दट्ठूण अब्भहियजायहरिसो ओइण्णो करिवराओ पविट्ठो अमरनंदणं। पवत्तो कीलिउं[1] विचित्तकीलाहिं। परिणओ वासरो। पविट्ठो नयरिं। एवं च अइक्कंता कइवि दियहा।

अन्नया य नियभवणगयस्स चेव गयणयलमज्झसंठिए दिणयरम्मि विरलीहूए परियणे नियनिय-निओयवावडेसु निओयपुरिसेसु समागया तावसवेसधारिणो गहियनलियापओगखग्गा विसेणकुमार-संतिया चत्तारि महाभुयंग त्ति[2]। दिट्ठा सेणकुमारेण। भणियं च णेण 'भो पविसह' त्ति। पविट्ठा एए।

भूमिभागम्, नववधूवदनमिव तिलकोज्ज्वलमशोकपल्लवकृतावतंसकं च, माधवप्रणयिनीशरीर-मिव दीर्घिकाकमलोपशोभितं भ्रमन्मुखरालिकुलजालपरिगतं च, ऋद्धिमदिवसच्छायं शकुन-(सगुण)जनसेवितं च, नवयौवनमिवोन्मादजनन विलोभनीयं च, कामिनीपयोधरयुगलमिव परि-मण्डलं चन्दनपाण्डुरं च, वासगृहमिवानङ्गप्रणयिन्याः संगम इव ऋतुलक्ष्मीनासङ्गम्, कारणमिवानन्द-भावस्य, सहोदरमिव सुरलोकदेशानाम्। तच्च दृष्ट्वाऽभ्यधिकजातहर्षोऽवतीर्णः करिवरात् प्रविष्टोऽमरनन्दनम्। प्रवृत्तः क्रीडितुं विचित्रक्रीडाभिः। परिणतो वासरः। प्रविष्टो नगरीम्। एवं चातिक्रान्ताः कत्यपि दिवसाः।

अन्यदा च निजभवनगतस्यैव गगनतलमध्यसंस्थिते दिनकरे विरलीभूते परिजने निजनिज-नियोगव्यापृतेषु नियोग(गि)पुरुषेषु समागताः तापसवेषधारिणो गृहीतनलिकाप्रयोगखड्गा विषेण-कुमारसत्काश्चत्वारो महाभुजङ्गा इति। दृष्टाः सेनकुमारेण। भणितं च तेन 'भोः प्रविशत' इति।

मुख जिस प्रकार तिलक से उज्ज्वल होता है उसी प्रकार वह तिलक से उज्ज्वल था। अशोक के कोमल पत्तों से (उस वनरूपी नववधू) का कर्णकुण्डल बन रहा था, माधव (विष्णु) की प्रणयिनी का शरीर जिस प्रकार कमला (लक्ष्मी) से शोभित होता है, उसी प्रकार उस वन की बावड़ियाँ कमलों से सुशोभित थीं। घूम-घूमकर शब्द करते हुए भौंरों के समूह से वह घिरा हुआ था। ऋद्धिमान् के समान कान्तिवाले (सउण) गुणयुक्त व्यक्तियों के समान वह पक्षियों (सउण) से शोभित था। नव यौवन जिस प्रकार उन्मादजनक और विलोभनीय होता है उसी प्रकार वह विलोभनीय था। स्त्रियों के स्तन जैसे गोल-गोल और चन्दन (के लेप) से पीले-पीले होते हैं उसी प्रकार वह वन भी चारों ओर विस्तृत तथा चन्दन वृक्षों से पीला-पीला था। काम की प्रेमी स्त्रियों के लिए वह वासगृह (शयनगृह) के समान था। ऋतुलक्ष्मी का मानो वह संगम था। आनन्दभाव का मानो कारण था। स्वर्ग के स्थलों का तो वह वन मानो सहोदर था। उसे देखकर जिसे अत्यधिक हर्ष हुआ है ऐसा कुमार सेन श्रेष्ठ हाथी से उतरा और अमरनन्दन उद्यान में प्रविष्ट हुआ। अनेक प्रकार की क्रीडाओं से वह क्रीडा करने में प्रवृत्त हुआ। दिन ढल गया। (कुमार सेन) नगरी में प्रविष्ट हुआ। इस प्रकार कुछ दिन बीत गये।

एक बार जब कुमार सेन अपने ही भवन में था, सूर्य जब आकाश के मध्य में आ गया था, परिजन विरल हो गये थे तथा नियुक्त पुरुष अपने-अपने कार्यों में लग गये थे तब विषेण कुमार के साथ म्यान (पद्मदण्ड) में तलवार लिये हुए तापसवेषधारी चार बड़े गुण्डे (वहाँ) प्रविष्ट हुए। सेनकुमार ने (उन्हें) देखा और उसने कहा—

---

१. कीलियो चित्तकीलाहिं—क। २. पडिहारिया पडिहारेण पविट्ठा कुमाराणुन्नाया—ड।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेणकुमारेण भणियं—भो किंनिमित्तमागया। तेहिं भणियं—अत्थि किंचि गुरुनिदेसवत्तव्वं; ता विवित्तदेसमहिट्ठह। तओ परत्थसंपायणसुद्धचित्तयाए 'गुरुवच्छला तवस्सिणो, थेवो य न एत्थ दोसो' त्ति चिंतिऊण गओ भवणुज्जाणभूसणं एलालयावणं। तत्थ पुण तक्खणा चेव अवहडा से छुरिया. कड्ढियाइं मंडलग्गाइं. पहओ एगेण खंधदेसे। तओ 'हा किमेयं' ति चिंतिऊण आसुरुत्तो कुमारो वलिओ वामपासेण। तओ अचलिययाए सत्तस्स उक्कडयाए पुरिसयारस्स संखुद्धयाए वावायगाणं जेऊण ते गहियाइं मंडलग्गाइं। दिट्ठं चिमं उज्जाणवालियाए। घोसियं च णाए। 'किमेयं' ति उद्धाइओ कलयलो। समागया अट्ठ पाहरिया। कड्ढियाइं करवालाइं। उद्धाइया पहरिउं। निवारिया कुमारेण। हरे किमेएण मयमारणेणं। खुद्दा खु एए तवस्सिया। वावन्नो य एएसिं पुरिसयारो। परिचत्ता एए सफलजीवियनिवासेणमहिमाणेणं। पडिवन्ना विसयभावं दयाए, अज्झासिया निरत्थयजीयलोहेण। ता अलमेएसिं वावायणेणं। एत्थंतरम्मि इमं चेव वइयरमायण्णिऊण समागओ राया। बंधाविया णेण वावायगा। भणिओ य कुमारसेणो 'वच्छ, किमेयं' ति। तेण भणियं—'ताय, न याणामि'।

प्रविष्टा एते। सेनकुमारेण भणितम्—भोः किंनिमित्तमागताः। तैर्भणितम्—अस्ति किञ्चिद् गुरुनिदेशवक्तव्यम्, ततो विविक्तदेशमधितिष्ठत। ततः परार्थसम्पादनशुद्धचित्ततया 'गुरुवत्सलाः तपस्विनः, स्तोकश्च नात्र दोषः' इति चिन्तयित्वा गतो भवनोद्यानभूषणमेलालतावनम्। तत्र पुनः तत्क्षणादेवापहृता तस्य छुरिका, कृष्टानि मण्डलाग्राणि, प्रहत एकेन स्कन्धदेशे। ततो 'हा किमेतद्' इति चिन्तयित्वा आसुरुत्तो (अतिकुपितः) कुमारो वलितो वामपार्श्वेण। ततोऽचलिततया सत्त्वस्य उत्कटतया पुरुषकारस्य संक्षुब्धतया व्यापादकानां जित्वा तान् गृहीतानि मण्डलाग्राणि। दृष्टं चेदमुद्यानपालिकया। घोषितं चानया। 'किमेतद्' इति उद्धावितः (प्रसृतः) कलकलः। समागता अष्ट प्राहरिकाः। कृष्टानि करवालानि। उद्धाविताः प्रहर्तुम्। निवारिताः कुमारेण। अरे! किमेतेन मृतमारणेन। क्षुब्धाः(द्राः) खल्वेते तपस्विकाः। व्यापन्नश्चैतेषां पुरुषकारः। परित्यक्ता एते सफलजीवितनिवासेनाभिमानेन। प्रतिपन्ना विषयभावं दयायाः, अध्यासिता निरर्थकजीवितलोभेन। ततोऽलमेतेषां व्यापादनेन। अत्रान्तरे इमं चैव व्यतिकरमाकर्ण्य समागतो राजा। बन्धितास्तेन व्यापादकाः। भणितश्च कुमारसेनः 'वत्स! किमेतद्' इति। तेन भणितम्—तात! न

'अरे, प्रवेश करो।' ये लोग प्रविष्ट हुए। सेनकुमार ने कहा—'(आप लोग) किस लिए आये हैं?' उन्होंने कहा—गुरु की 'कुछ आज्ञा कहना है अतः एकान्त स्थान में चलें।' तब परार्थ का सम्पादन करने में शुद्धचित्त वाला होने के कारण 'तपस्वी लोग गुरु के प्रति प्रेम रखनेवाले होते हैं (यह सामान्य बात है), इसमें कोई दोष नहीं'—ऐसा सोचकर मदन के उद्यान के भूषणस्वरूप इलायची के लतावन में गया। वहाँ पर उसी क्षण उसकी छुरी छीन ली गयी, तलवारें खिंच गयीं। एक ने (उसके) कन्धे पर प्रहार किया। अनन्तर हाय! यह क्या? ऐसा सोचकर अत्यन्त कुपित होकर कुमार बायीं ओर मुड़ा। पश्चात् वीर्य की स्थिरता, पुरुषार्थ की उत्कटता, मारने वाले की संक्षुब्धता के कारण उन्हें जीतकर (उनसे) तलवारें ले लीं। यह उद्यानपालिका ने देख लिया। इसने आवाज दी—'यह क्या हो रहा है!' का शोर उठा। आठ प्रहरी आये। तलवारें खींचीं। प्रहार करने के लिए दौड़े। कुमार ने रोक लिया। 'अरे! इन मरे हुओं को मारने से क्या लाभ? ये तपस्वी क्षुब्ध हुए। इनका पुरुषार्थ मर गया है। सफल जीवन में निवास करनेवाले अभिमान ने इन्हें छोड़ दिया है, ये दया के विषयभाव को प्राप्त हुए हैं, निरर्थक जीवन के लोभ से ये अधिष्ठित हैं, अतः इनके मारने से बस, अर्थात् इनका मारना व्यर्थ है।' इसी बीच इसी घटना को सुनकर राजा आया। उसने मारनेवालों को बँधवाया और कुमार सेन से कहा—'वत्स! यह

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

पुच्छिया घायगा। हरे, किं पुण तुब्भेहिं एयं ववसियं ति। तेहिं भणियं—देव्वं पुच्छह त्ति। राइणा भणियं—केण देव्वो चोइओ। तेहिं भणियं देव, न याणामो त्ति। राइणा भणियं—नाणिमित्तं वावायणं ति। ता किं पुण निमित्तं कुओ वा तुब्भे, कस्स वा संतिय त्ति। तओ न जंपियमेएहिं। पुणो पुच्छिया, पुणो वि न जंपंति। कुविओ राया। अच्छोडाविया कसेहिं। तओ कायरयाए भावस्स दुव्विसहयाए कसप्पहाराणं सावेक्खयाए जीवियस्स कुविययाए नरिंदस्स जंपियमणेहिं—देव, न किंचि एत्थ निमित्तं; अवि य एत्थेव अम्हे कुमारविसेणसंतिया, तस्सेव सासणेणं इमं अम्हेहिं ववसियं। संपयं देवो पमाणं ति कहं कुमारविसेणसासणं ति कुविओ राया विसेणस्स। भणियं च सेणेण—ताय, न खलु इम एवं देवावगंतव्वं ति। कहं पुण सो महाणुभावो अमच्छरिओ सयणवग्गे दइओ साहुवाए लोलुओ निम्मलजसे अवच्चं तायस्स इमं ईइसं उभयलोयविरुद्धं मंताइस्सइ। ता जहा कहंचि जीवियभीरुययाए इमं जंपियमिमेहिं। करेउ ताओ पसायं, मोयावेउ एए जीवियभीरुए त्ति। तओ 'कस्स संतिय' त्ति गवेसावियं राइणा। मुणियं पहाणपरियणाओ, जहा कुमारसंतिय त्ति। तओ न

जानामि'। पृष्टा घातकाः—अरे! किं पुनर्युष्माभिरेतद् व्यवसितमिति। तैर्भणितम्—दैवं पृच्छतेति। राज्ञा भणितम्—केन दैवश्चोदितः। तैर्भणितम्—देव! न जानीम इति। राज्ञा भणितम्—नानिमित्तं व्यापादनमिति। ततः किं पुनर्निमित्तम्, कुतो वा यूयम्, कस्य वा सत्का इति। ततो न जल्पितमेतैः। पुनः पृष्टाः, पुनरपि न जल्पन्ति। कुपितो राजा। आच्छोटिताः कशैः। ततः कातरतया भावस्य दुर्विषहतया कषप्रहाराणां सापेक्षतया जीवितस्य कुपिततया नरेन्द्रस्य जल्पितमेभिः—देव! न किञ्चिदत्र निमित्तम्, अपि चात्रैव वयं कुमारविषेणसत्काः तस्यैव शासनेनेदमस्माभिर्व्यवसितम्, साम्प्रतं देवः प्रमाणमिति। 'कथं कुमारविषेणशासनम्' इति कुपितो राजा विषेणस्य। भणितं च सेनेन—तात! न खल्विदमेवमेवावगन्तव्यमिति। कथं पुनः स महानुभावोऽमत्सरिकः स्वजनवर्गे दयितः साधुवादे लोलुपो निर्मलयशसि अपत्यं तातस्येदमीदृशमुभयलोकविरुद्धं मन्त्रयिष्यति। ततो यथाकथंचिज्जीवितभीरुकतयेदं जल्पितमेभिः। करोतु तातः प्रसादम्, मोचयत्वेतान् जीवितभीरुकानीति। ततः 'कस्य सत्काः' इति गवेषितं राज्ञा। ज्ञातं प्रधानपरिजनाद् यथा कुमार-

---

क्या है?' उसने कहा—'पिता जी! नहीं जानता हूँ।' घातकों से पूछा गया—'अरे तुम लोगों ने ऐसा कार्य क्यों किया?' उन्होंने कहा—'भाग्य से पूछो!' राजा ने कहा—'किस भाग्य से प्रेरित हुए हो?' उन्होंने कहा—'नहीं जानते हैं।' राजा ने कहा—'मारना बिना कारण नहीं है। अतः क्या कारण है, तुम लोग कहाँ से आये हो और किसके साथ हो?' उस पर भी ये लोग नहीं बोले। बार-बार पूछा फिर भी नहीं बोले।' राजा कुपित हुआ। कोड़ों का प्रहार किया गया। अनन्तर भावों की विकलता, कोड़ों के प्रहारों का कठिनाई से सहन होना, प्राणों की सापेक्षता तथा राजा के कुपित होने के कारण ये लोग बोले—'महाराज! इसका कोई दूसरा कारण नहीं है अपितु हम लोग यहाँ विषेणकुमार के साथ हैं, उन्हीं की आज्ञा से हम लोगों ने यह कार्य किया है। अब महाराज प्रमाण हैं।' 'कैसी कुमार विषेण की आज्ञा?' कहकर राजा विषेण पर कुपित हुआ। सेन ने कहा—'इसको ऐसा ही मत मानो। वह महानुभाव जो कि स्वजनों के प्रति दाह से रहित है, मधुर बोलने का प्रेमी है, निर्मल यश का लोभी है और पिताजी की सन्तान है, कैसे इस प्रकार दोनों लोकों के विरुद्ध सलाह देगा? अतः प्राणों के प्रति भयभीत होने के कारण इन लोगों ने जो कुछ भी कह दिया है। पिता जी प्रसन्न हों, प्राणों से भयभीत इन लोगों को छोड़ दें।' अनन्तर 'किसके साथ हैं'—राजा ने इसका पता लगाया। प्रधान परिजनों से ज्ञात हुआ कि कुमार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्नहा एयं ति कुविओ राया विसेणस्स। समाणत्तं च णेणं—हरे, निव्वासेह तं मम रज्जाओ कुलदूसणं विसेणं ति। वावाएह एए महासामिसालवच्छले सुभिच्चे। एत्थंतरम्मि चलणेसु निवडिऊण जंपियं सेणेण—ताय, मा साहसं मा साहसं ति। कज्जमाणे[1] य एयम्मि पावेमि अहं नियमेणं तायसोगकारिणिं अवत्थं ति निवेइयं तायस्स। तओ 'अहो पुरिसाणमंतरं' ति चिंतिऊण जंपियं नरिंदेण—वच्छ, जइ एवं, ता तुमं चेव जाणसि; न उण जुत्तमेयं ति। सेणेण भणियं—ताय, अणुग्गहिओ म्हि एएसिं अवावायणेण कुमारसंगहेण य। मोयाविया वावायगा[2] थेवावराह ति। पूइऊण पेसिया सेणेण। एत्थंतरम्मि वणसुत्थमाइसिऊण निग्गओ राया। जाओ लोयवाओ। अहो विसेणेण असोहणमणुचिट्ठियं। समागओ सेणकुमारकण्णविसयं। चिंतियं च णेण। अहो निरवराहा वि नाम पाणिणो एवं अयसभायणं हवंति। अन्नहा कहं कुमारो, कहमीइसमसज्जणचरियं। असंभावणीयमेयं। निरंकुसो य लोओ, न जुत्ताजुत्तं वियारेइ। अहवा नत्थि दोसो जणस्स कुमारस्स चेव पुव्वकयकम्मपरिणई एस त्ति। निमित्तं चाहमेत्थं ति दूमिओ नियचित्तेणं।

सत्का इति। ततो 'नान्यथैतद्' इति कुपितो राजा विषेणस्य। समाज्ञप्तं च तेन—अरे निर्वासयत तं मम राज्यात् कुलदूषणं विषेणमिति। व्यापादयतैतान् महास्वामिसालवत्सलान् सुभृत्यान्। अत्रान्तरे चरणयोर्निपत्य जल्पितं सेनेन—तात! मा साहसं मा साहसमिति। क्रियमाणे चैतस्मिन् प्राप्नोम्यहं नियमेन तातशोककारिणीमवस्थामिति निवेदितं तातस्य। ततोऽहो पुरुषाणामन्तरमिति चिन्तयित्वा जल्पितं नरेन्द्रेण—वत्स! यद्येवं ततस्त्वमेव जानासि, न पुनर्युक्तमेतदिति। सेनेन भणितम्—तात! अनुगृहीतोऽस्मि एतेषामव्यापादनेन कुमारसंग्रहेण च। मोचिता व्यापादकाः स्तोकापराधा इति। पूजयित्वा प्रेषिता सेनेन। अत्रान्तरे व्रणसुस्थमादिश्य निर्गतो राजा। जातो लोकवादः। अहो विषेणेनाशोभनमनुष्ठितम्। समागतः सेनकुमारकर्णविषयम्। चिन्तितं च तेन—अहो निरपराधा अपि नाम प्राणिन एवमयशोभाजनं भवन्ति। अन्यथा कथं कुमारः, कथमीदृशमसज्जनचरितम्। असम्भावनीयमेतद्। निरंकुशश्च लोकः, न युक्तायुक्तं विचारयति। अथवा नास्ति दोषो जनस्य, कुमारस्यैव पूर्वकृतकर्मपरिणतिरेषेति। निमित्तं चाहमत्रेति दूनो निजचित्तेन।

के साथ हैं। पश्चात् 'यह बात अन्यथा नहीं है'—ऐसा सोचकर राजा विषेण पर कुपित हुआ। उसने आज्ञा दी—'अरे, मेरे राज्य से कुलदूषण विषेण को निकाल दो। महास्वामी रूपी सियार के प्रेमी इन सुभृत्यों को मार दो।' इसी बीच दोनों पैरों में पड़कर सेन ने कहा—'पिता जी! दण्ड मत दो, दण्ड मत दो। ऐसा किये जाने पर मैं निश्चित ही पिता जी को शोक उत्पन्न करनेवाली अवस्था को प्राप्त हो जाऊँगा' ऐसा पिता जी से निवेदन किया। अनन्तर 'ओह, पुरुषों का अन्तर!'—ऐसा सोचकर राजा ने कहा—'वत्स! यदि ऐसा है तो तुम ही जानो; किन्तु यह ठीक नहीं है।' सेन ने कहा—'पिता जी! इनको न मारने और कुमार की रक्षा के कारण मैं अनुगृहीत हूँ।' सेन ने 'साधारण अपराध है'—कहकर आदर के साथ मारनेवालों को छोड़ दिया। इसी बीच घाव को ठीक करने का आदेश देकर राजा निकल गया। लोगों में चर्चा फैल गयी। ओह! विषेण ने बुरा किया। (यह बात) सेन के भी कानों में आयी। सेन ने सोचा—निरपराध भी प्राणी इस प्रकार अयश के पात्र होते हैं नहीं तो कैसे कुमार और कैसा यह असज्जनों का आचरण! यह असम्भव है और लोक निरंकुश है, युक्त-अयुक्त का विचार नहीं कर रहा है। अथवा लोगों का दोष नहीं है, यह कुमार के ही पहिले किये हुए कर्मों की परिणति है। मैं यहाँ पर निमित्त हुआ—ऐसा सोचकर वह अपने मन में दुःखी हुआ।

1. किज्जमाणे—क। 2. वायगा—क, ख।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अइक्कंता कइवि वासरा। पउणो वणो। ण्हाओ सोहणदिणे। कयं राइणा जहोचियं करणिज्जं। वायाविया चारयकालघंटा। दवावियं महादाणं। पूइयाओ नयरिदेवयाओ। आहणाविया आणंद-भेरी। समागया विसेसुज्जलनेवत्थधारिणो रायनायरा। तओ वज्जंतमंगलतूररवापूरियदिसामंडलं नच्चंतरायनायरलोयं तुरियविइज्जमाणकडिसुत कंठयं विइण्णपडवासधूसरियनहयलं सयलनयरिजण-च्छेरयभूयं कयं वद्धावणयं ति। इओ य सो विसेणकुमारो तप्पभिइमेव 'हा न संपन्नमहिलसियं' ति अच्चंतदुम्मणो अपेच्छमाणो नरवइं असंपाययंतो उचियकरणिज्जं अणिग्गच्छमाणो नियगेहाओ अजंपमाणो सह परियणेणं ठिओ एत्तिए दिवसे, नागओ य वद्धावणए। मणिओ एस वइयरो धणगुण-भंडारियाओ सेणकुमारेण। चिंतियं च णेण। जुत्तमेवं एयं कुमारस्स। दुस्सहो असंताभिओगो। मह-सिणेहमोहिएण य दारुणमणुचिट्ठियं ताइणं, जमेत्तिय पि कालं कुमारदंसणं परिहरियं ति। ता विन्न-वेमि तायं, जेण कुमारं इह आणेइ त्ति। कीइसो तेण विणा आणंदो। तओ चलणेसु निवडिऊण विन्नत्तो नरवई— ताय, आणेह इह विसेणकुमारं। तद्दंसणूसुओ अहं। कोइसो तेण विणा पमोओ।

अतिक्रान्ताः कत्यपि वासराः। प्रगुणो व्रणः। स्नातः शोभनदिवसे। कृतं राज्ञा यथोचितं करणीयम्। वादिता चारककालघण्टा। दापितं महादानम्। पूजिता नगरीदेवताः आघातिता आनन्दभेरी। समागता विशेषोज्ज्वलनेपथ्यधारिणो राजनागरकाः। ततो वाद्यमानमङ्गलतूर्यरवा-पूरितदिग्मण्डलं नृत्यद्राजनागरलोकं त्वरितवितीर्यमाणकटिसूत्रकण्ठकं वितीर्णपटवासधूसरितनभ-स्तलं सकलनगरीजनाश्चर्यभूतं कृतं वर्धापनकमिति। इतश्च स विषेणकुमारस्तत्प्रभृत्येव 'हा न सम्पन्नमभिलषितम्' इत्यत्यन्तदुर्मना अप्रेक्षमाणो नरपतिमसम्पादयन् उचितकरणीयमनिर्गच्छन् निजगेहाद् अजल्पन् सह परिजनेन स्थित एतावतो दिवसान्, नागतश्च वर्धापनके। श्रुत एष व्यति-करो धनगुणभाण्डागारिकात् सेनकुमारेण। चिन्तितं च तेन—युक्तमेवैतत्कुमारस्य। दुःसहोऽसदभि-योगः। मम स्नेहमोहितेन च दारुणमनुष्ठितं तातेन यदेतावन्तमपि कालं कुमारदर्शनं परिहृतमिति। ततो विज्ञपयामि तातं येन कुमारमिहानयतीति कीदृशस्तेन विनाऽऽनन्दः। ततश्चरणयोर्निपत्य विज्ञप्तो नरपतिः। तात! आनयतेह। विषेणकुमारम्। तद्दर्शनोत्सुकोऽहम्। कीदृशस्तेन विना

कुछ दिन बीत गये। घाव ठीक हुआ। शुभ दिन में स्नान किया। राजा ने यथायोग्य कार्य किया। प्रयाणकालीन घण्टा बजवाया। महादान दिलाया। नगरदेवी की पूजा की। आनन्दभेरी पिटवायी। विशेष उज्ज्वल वेष धारण कर राज्य के नागरिक आये। अनन्तर नगर के समस्त लोगों को आश्चर्य में डालनेवाला महोत्सव किया। उस समय बजाये जाते हुए मंगलवाद्यों के शब्द से आकाशमण्डल गूँज रहा था। राजकीय पुरुष और नागरिक नाच रहे थे, जल्दी-जल्दी कटिसूत्र और हार धारण किये जा रहे थे, फैलाये हुए सुगन्धित द्रव्य से आकाशतल धूसरित हो रहा था। इधर वह विषेणकुमार उसी समय से ही—'हाय! मनोरथ सम्पन्न नहीं हुआ'— इस प्रकार अत्यन्त दुःखी मन हो, राजा को दिखाई न देता हुआ, योग्य कार्यों को न करता हुआ, अपने घर से न निकलता हुआ, सेवकों से बातचीत न करता हुआ इतने दिनों तक रहा, महोत्सव में नहीं आया। इस वृत्तान्त को धनगुण नामक भण्डारी से सेनकुमार ने सुना। उसने सोचा—कुमार के लिए यह उचित ही है। झूठा अभियोग सहन करना कठिन है। मेरे स्नेह से मोहित हुए पिता जी ने कठिन कार्य किया जो कि इतने समय तक कुमार के दर्शनों से बचाया। अतः तात से निवेदन करता हूँ जिससे कुमार यहाँ लाये जाएँ। उसके बिना कैसा आनन्द? अनन्तर दोनों चरणों में गिरकर राजा से निवेदन किया, 'पिता जी! विषेणकुमार को यहाँ लाओ। मैं उसके दर्शन का उत्सुक हूँ। उसके बिना प्रमोद कैसा?' राजा ने कहा—'वत्स! उस कुलदूषण से बस अर्थात् कुल को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राइणा भणियं—वच्छ, अलं तेण कुलदूसणेणं। कुमारेण भणियं – ताय, परिच्चय इमं मिच्छा-वियप्पं। कहं कुमारो अकज्जमणुचिट्ठिस्सइ[1] त्ति। राइणा भणियं—सुद्धसहावो तुमं, न उण सो एरिसो त्ति। कुमारेण भणियं– ताय, कहं न ईइसो जो इमीए वयणिज्जलज्जाए उज्झिऊण कुमार-भावोचियं चावल्लं[2] अवलंबिऊण गंभीरयं अपसायमंते वि य तुमम्मि असंपाययंतो[3] उचियकरणिज्जं अपरिच्चयंतो कुलहरं एवं चिट्ठइ त्ति। राइणा भणियं – वच्छ, जइ एवं तुज्झ निब्बंधो, ता पेसेहि से आहवणनिमित्तं कंचि नियर्य ति। कुमारेण भणियं—ताय, अहमेव गच्छामि। राइणा भणियं—एवं करेहि त्ति। गओ सेणकुमारो। पविट्ठो विसेणमंदिरं। दिट्ठो[4] तव्वइयरचिंताए चेव अच्चंतदुब्बलो उज्झिएहिं आहरणएहिं परिमिलाणेणं वयणकमलेणं विमणपरियणसमेओ असुंदरं सयणीयमवगओ विसेणकुमारो त्ति। चिंतियं च णेणं – अहो सच्चयमिणं।

संतगुणविप्पणासे असंतदोसुब्भवे य जं दुक्खं।
तं सोसेइ समुद्दं किं पुण हिययं मणुस्साणं ॥५९०॥

प्रमोदः। राज्ञा भणितम्—वत्स ! अलं तेन कुलदूषणेन। कुमारेण भणितम्—तात ! परित्यजेमं मिथ्याविकल्पम्। कथं कुमारोऽकार्यमनुष्ठास्यतीति। राज्ञा भणितम्—शुद्धस्वभावस्त्वम्, न पुनः स ईदृश इति। कुमारेण भणितम्—तात ! कथं नेदृशो योऽनया वचनीयलज्जया उज्झित्वा कुमार-भावोचितं चापलमवलम्ब्य गम्भीरतामप्रसादवत्यपि त्वयि असम्पादयन् उचितकरणीयमपरित्यजन् कुलगृहमेवं तिष्ठतीति। राज्ञा भणितम्—वत्स ! यद्येवं तव निर्बन्धस्ततः प्रेषय तस्याह्वाननिमित्तं कञ्चिद् निजकमिति। कुमारेण भणितम्—तात ! अहमेव गच्छामि। राज्ञा भणितम्—एवं कुर्विति। गतः सेनकुमारः। प्रविष्टो विषेणमन्दिरम्। दृष्टस्तद्व्यतिकरचिन्तयैवात्यन्तदुर्बल उज्झितैराभरणैः परिम्लानेन वदनकमलेन विमनःपरिजनसमेतोऽसुन्दरं शयनीयमुपगतो विषेणकुमार इति। चिन्तितं च तेन—अहो सत्यमिदम्—

सद्गुणविप्रणाशे असद्दोषोद्भवे च यद् दुःखम्।
तच्छोषयति समुद्रं किं पुनर्हृदयं मनुष्याणाम् ॥५९०॥

दूषित करने वाले से सम्बन्ध रखना व्यर्थ है।' कुमार ने कहा—'पिता जी ! इस मिथ्या विकल्प को छोड़ दीजिए, कुमार कैसे अकार्य करेंगे ?' राजा ने कहा—'तुम शुद्ध स्वभाव वाले हो, वह ऐसा नहीं है।' कुमार ने कहा—'पिता जी ! कैसे ऐसा नहीं है जो कि इस निन्दा की लज्जा से कुमारोचित चंचलता को छोड़कर, गम्भीरता का अवलम्बन कर, आप पर प्रसन्न न होकर भी, योग्य कार्यों को न कर, कुलगृह (पितृगृह) को न छोड़ता हुआ वह इस तरह रह रहा है।' राजा ने कहा – 'वत्स ! यदि तुम्हारी हठ ऐसी है तो उसको बुलाने के लिए किसी अपने आदमी को भेजो।' कुमार ने कहा—'पिता जी ! मैं ही जाता हूँ।' राजा ने कहा—'यही करो।' सेनकुमार गया। विषेण के महल में प्रविष्ट हुआ। उसी घटना की चिन्ता से ही अत्यन्त दुर्बल, आभूषणों का परित्याग किये हुए, म्लान मुखवाला, दुःखी परिजनों के साथ, असुन्दर शय्या पर स्थित विषेणकुमार दिखाई दिया। उसने सोचा – ओह ! यह सत्य है—

सद्गुणों का विनाश और असद्दोषों का उद्भव होने पर जो दुःख होता है वह समुद्र को भी सुखा देता है मनुष्यों के हृदय की तो बात ही क्या है ॥५९०॥

---

१. -स्सति—ख। २. चावल—क। –३. -यंतुचिय—क। ४. दिट्ठो य णेणं—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्नहा कहं कुमारस्स ईइसी अवत्थ त्ति । उवसप्पिऊण भणियं च णेणं । कुमार, किमेयं बालचेट्ठियं । तेण भणियं—पावपरिणइं मे पुच्छसु । सेणकुमारेण भणियं अलं पावचिंताए । धन्नो तुमं, जेण तायस्स पुत्तो त्ति । ता करेहि रायकुमारोचियं किरियं, जेण तायसमीवं गच्छामो त्ति । तओ अणिच्छमाणो विभूसिओ सहत्थेण, विलित्तो मलयचंदणरसेण, परिहाविओ खोमजुवलयं, गेण्हाविओ तंबोलं नीओ नरवइसमीवं । पाडिओ चलणेसु । वोलियं वद्धावणयं । अइक्कंतो कोइ कालो वीसंभगब्भिणं परमसुहमणुहवंतस्स सेणकुमारस्स, संकिलिट्ठचित्तस्स य अणभिन्नसुहसरूवस्स विसेणस्स ।

अन्नया य पवत्ते कोमुइमहूसवे उज्जाणगएसु नायरएसु निग्गए नरवइम्मि भरमुवगए कीलापमोए अप्पतक्किओ चेव वियरिओ मत्तवारणो, तोडियाओ अंदुयाओ, दलिओ आलाणखंभो, भग्गा महापायवा, गालिओ[1] आहोरणो, धाविओ जणवयाभिमुहं, उद्धाइओ कलयलो, भिन्नाइं आवाणयाइं, पणट्ठाओ चच्चरीओ, 'हा कहमियं' त्ति विसण्णो नयरिलोओ । एत्थंतरम्मि इमं[2] चेवावगच्छिय जंपियं

अन्यथा कथं कुमारस्येदृश्यवस्थेति । उपसर्प्य भणितं च तेन—कुमार ! किमेतद् बालचेष्टितम् । तेन भणितम्—पापपरिणतिं मे पृच्छ । सेनकुमारेण भणितम्—अलं पापचिन्तया । धन्यस्त्वं येन तातस्य पुत्र इति । ततः कुरु राजकुमारोचितां क्रियाम्, येन तातसमीपं गच्छाव इति । ततोऽनिच्छन् विभूषितः स्वहस्तेन, विलिप्तो मलयचन्दनरसेन, परिधापितः क्षौमयुगलं, ग्राहितस्ताम्बूलं नीतो नरपतिसमीपम् । पातितश्चरणयोः । व्यतिक्रान्तं वर्धापनकम् । अतिक्रान्तः कोऽपि कालो विश्रम्भगर्भितं परमसुखमनुभवतः सेनकुमारस्य, संक्लिष्टचित्तस्य च अनभिज्ञ (ज्ञात) सुखस्वरूपस्य विषेणस्य ।

अन्यदा च प्रवृत्ते कौमुदीमहोत्सवे उद्यानगतेषु नागरकेषु निर्गते नरपतौ भरमुपगते क्रीडाप्रमोदे अप्रतर्कित एव विचरितो मत्तवारणः । त्रोटिता अन्दुकाः (श्रृङ्खलाः), दलित आलानस्तम्भः, भग्ना महापादपाः, गालितः (पातितः) आधोरणः, धावितो जनव्रजाभिमुखम्, उद्धावितः (प्रसृतः) कलकलः, भिन्नान्यापणानि, प्रनष्टाश्चर्चर्यः, 'हा कथमिदम्' इति विषण्णो नगरीलोकः । अत्रान्तरे

अन्यथा कुमार की ऐसी अवस्था कैसे होती ? समीप में पहुँचकर उसने कहा—'कुमार ! यह क्या बालकों जैसी चेष्टा है ?' उसने कहा—'मेरी पापपरिणति से पूछो ।' सेनकुमार ने कहा—'पाप की चिन्ता से बस अर्थात् पाप की चिन्ता व्यर्थ है । तुम धन्य हो जो कि पिता जी के पुत्र हो । अतः राजकुमारोचित क्रियाओं को करो, जिससे पिता जी के पास दोनों चलें ।' अनन्तर उसके न चाहने पर अपने हाथों से उसे विभूषित किया, मलयचन्दन के रस से लिप्त किया, वस्त्रयुगल को पहिनाया । पान लिवाया (और) राजा के पास ले गया । दोनों चरणों में गिराया । महोत्सव समाप्त हुआ । विश्वास से गर्भित परमसुख का अनुभव करते हुए सेनकुमार का कुछ समय व्यतीत हो गया और सुख के स्वरूप को न जानते हुए दुःखी मनवाले विषेण का भी कुछ समय व्यतीत हुआ ।

एक बार कौमुदी महोत्सव आने पर जब नागरिक उद्यान में गये, राजा बाहर निकला, क्रीड़ा प्रमोद अतिरेक को प्राप्त हो गये तब बिना सम्भावना के ही मतवाला हाथी विचरण करने लगा । उसने साँकलें तोड़ दीं, बन्धन-स्तम्भ को चीर डाला, बड़े-बड़े वृक्ष नष्ट कर दिये, महावत को गिरा दिया, लोगों के समूह के सामने दौड़ा, कोलाहल उठा, दूकानें टूट गयीं । आमोद-प्रमोद नष्ट हो गया, 'हाय यह क्या हुआ'—इस प्रकार नगर के लोग दुःखी हुए । इसी बीच यह जानकर राजा ने कहा, 'अरे शीघ्र ही दुष्ट हाथी को पकड़ो । उसने लोक का

१. गाहियो आरोहणो—क । २. सयं इमं—क ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

नरिंदेण - हरे गेण्हह लहु दुट्ठवारणं कयत्थिओ णेणं लोओ त्ति। तओ गहणूसुओ वि नरवइअणाए-सभीरू आएससमणंतरमेव पुलोइज्जमाणो भयविब्भमाहियविभूसियाहिं पुरसुंदरीहिं धाविओ सेणकुमारो। सीहकिसोरओ विय दिट्ठो मत्तवारणेणं। तं च दट्ठूण अचिंतणीययाए पुरिससामत्थस्स विगलिओ से मओ। निरुद्धमणेण गमणं। चित्तगओ विय ठिओ पयइभावे। अहो कुमारस्स सामत्थं ति विम्हिया नायरया, हरिसियाओ पुरसुंदरीओ, परितुट्ठो नरवई। एत्थंतरम्मि सिक्खाइसयकोविओ विज्जाहरकुमारओ विय नहगमणेणं समारूढो मत्तवारणं, निबद्धं आसणं, गहिओ वारुअंकुसो, अप्फालिओ कुंभभाए, गुलगुलियमणेणं। 'जयइ कुमारो' त्ति समुद्धाइओ कलयलो, आहयाइं तूराइं, नीओ आलाणखंभं। एयववइयरेण दूनिओ विसेणो। चिंतियं च णेणं। न चएमि ईइसे इमस्स संतिए अणक्खे सोउं पि किमंग पुण पेच्छिउं। ता जं होउ, तं होउ। समारंभेमि महासाहसं। वावाएमि सयमेव एयं ति।

अन्नया य संतिमईसमेयम्मि उज्जाणसंठिए कुमारे परिणयप्पाए वासरे कसाओदएणमणालो-

---

इदं चैवावगत्य जल्पितं नरेन्द्रेण 'अरे गृहाण लघु दुष्टवारणम्, कदर्थितस्तेन लोक'इति। ततो ग्रहणोत्सुकोऽपि नरपत्यनादेशभीरुरादेशसमन्तरमेव प्रलोक्यमानो भयविभ्रमाधिकविभूषिताभिः पुरसुन्दरीभिर्धावितः सेनकुमारः। सिंहकिशोरक इव दृष्टो मत्तवारणेन। तं च दृष्ट्वाऽचिन्तनीयतया पुरुषसामर्थ्यस्य विचलितस्तस्य मदः। निरुद्धमनेन गमनम्। चित्रगत इव स्थितः प्रकृतिभावे। अहो कुमारस्य सामर्थ्यमिति विस्मिता नागरकाः, हर्षिताः पुरसुन्दर्यः, परितुष्टो नरपतिः। अत्रान्तरे शिक्षातिशयकोविदो विद्याधरकुमार इव नभोगमनेन समारूढो मत्तवारणम्, निबद्धमासनम्, गृहीतः शीघ्राऽङ्कुशः, आस्फालितः कुम्भभागे, गुलुगुलितं (गर्जितं) अनेन। 'जयति कुमारः' इति समुद्धावितः कलकलः, आहतानि तूर्याणि, नीत आलानस्तम्भम्। एतद्व्यतिकरेण दूनो विषेणः। चिन्तितं च तेन—न शक्नोमीदृशान् अस्य सत्कानि यशांसि (?) श्रोतुमपि, किमङ्ग पुनः प्रेक्षितुम्। ततो यद् भवतु तद् भवतु। समारम्भे महासाहसम्। व्यापादयामि स्वयमेव एतमिति।

अन्यदा च शान्तिमतीसमेते उद्यानसंस्थिते कुमारे परिणतप्राये वासरे कषायोदयेनानालोच्य

तिरस्कार किया है।' अनन्तर पकड़ने को उत्सुक होने पर भी राजा का आदेश न होने से डरनेवाला कुमार सेन राजा के आदेश के तुरन्त बाद ही भय के विभ्रम से अधिक विभूषित नगरसुन्दरियों के द्वारा देखा जाता हुआ दौड़ा। सिंह-शावक के समान इसे हाथी ने देखा। उसे (सेन कुमार को) देखकर पुरुष के सामर्थ्य की अचिन्तनीयता के कारण उस (हाथी) का मद दूर हो गया। उसने गमन रोक दिया और चित्रलिखित के समान स्वाभाविक रूप में ही खड़ा हो गया। 'ओह कुमार का सामर्थ्य!' इस प्रकार नागरिक विस्मित हुए, नगरसुन्दरियाँ हर्षित हुईं। राजा सन्तुष्ट हुआ। इसी बीच शिक्षा-अतिशय के ज्ञाता विद्याधर कुमार के समान आकाश गमन से (कुमार सेन) मतवाले हाथी पर सवार हुआ, आसन जमाया, शीघ्र ही अंकुश लिया, गण्डस्थल को दबाया। इसने (हाथी ने) गर्जना की। 'कुमार की जय हो'—ऐसा कोलाहल उठा, बाजे बजाये गये, हाथी को बाँधने के खम्भे तक लाया गया। इस घटना से विषेण दुःखी हुआ और उसने सोचा—इसके इस प्रकार के यशों को सुन भी नहीं सकता हूँ, देखने की तो बात ही क्या है। अतः जो हो सो हो, महान पराक्रम आरम्भ करता हूँ। इसे स्वयं ही मारता हूँ।

एक बार शान्तिमती के साथ जब कुमार उद्यान में था और दिन प्रायः ढल रहा था, तब कषाय के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिऊण परिणइं अणवेक्खिऊण नियबलं अचिंतिऊण कुमारसत्तिं कुमारवावायणनिमित्तमेव कइवयपुरिसपरिवारिओ गओ तमुज्जाणं। कुमारचित्तवित्तीए अपडिहारिओ चेव पविट्ठो चंदणलयाहरयं। दिट्ठो य णेण केवलो चेव कुमारो संतिमई य। वीसत्थो त्ति कड्ढियं मंडलग्गं। दिट्ठं संतिमईए भणियं च णाए अज्जउत्त, परित्तायहि परित्तायहि। तओ 'किमेयं' ति उट्ठिओ कुमारो। दिट्ठो य णेण विसेणो। छूढं तेणोहरणं। सिक्खाइसएण वंचियं कुमारेणं, 'किमेयं' ति चिंतासुन्नहियएणावि भुयं रुंभिऊण अवहडं से खग्गं। भणिओ य एसो 'कुमार, किमेयं' ति। तओ निरुंभमाणेण कड्ढिया छुरिया। दरविइण्णे पहारे बाहुं वालिऊण अवहडा य णेणं। बाहुवलणपीडाए निवडिओ विसेणो। उट्ठाविओ णेणं, निवेसिओ सयणिज्जे, पुच्छिओ संभमेणं 'कुमार किमेयं' ति। तओ अदाऊण उत्तरं निग्गओ चंदणलयाहराओ। भणियं च संतिमईए—अज्जउत्त, किमेयं ति। कुमारेणं भणियं—सुंदरि, अहं पि न मुणेमि। एत्तिएण पुण एत्थ होयव्वं रज्जमुद्दिसिऊण पयारिओ केणइ कुमारो त्ति। ता अलं मे इहत्थिएणं जत्थ पहाणसयणस्स कुमारस्स वि ईइसो उव्वेवो। अवत्थाणे य अवस्समेव केणइ

परिणतिमनवेक्ष्य निजबलमचिन्तयित्वा कुमारशक्ति कुमारव्यापादननिमित्तमेव कतिपयपुरुषपरिवृतो गतस्तमुद्यानम्। कुमारचित्रवेत्र्या (प्रतीहार्या) अप्रतिहारित (अनवरुद्धः) एव प्रविष्टश्चन्दनलतागृहम्। दृष्टश्च तेन केवल एव कुमारः शान्तिमती च। विश्वस्त इति कृष्टं मण्डलाग्रम्। दृष्टं शान्तिमत्या। भणितं च तया आर्यपुत्र! परित्रायस्व, परित्रायस्व। ततः 'किमेतद्' इत्युत्थितः कुमारः। दृष्टस्तेन विषेणः। क्षिप्तं तेन शस्त्रम्। शिक्षातिशयेन वञ्चितं कुमारेण। 'किमेतद्' इति चिन्ताशून्यहृदयेनापि भुजं रुद्ध्वाऽपहृतं तस्य खड्गम्। भणितश्चैषः 'कुमार! किमेतद्' इति। ततो निरुध्यमानेन कृष्टा छुरिका। दरवितीर्णे (ईषद्दत्ते) प्रहारे बाहुं वालयित्वा अपहृता च तेन। बाहुवलनपीडया निपतितो विषेणः। उत्थापितोऽनेन, निवेशितः शयनीये, पृष्टः सम्भ्रमेण 'कुमार! किमेतद्' इति। ततोऽदत्त्वोत्तरं निर्गतश्चन्दनलतागृहात्। भणितं च शान्तिमत्या—आर्यपुत्र! किमेतदिति। कुमारेण भणितम्—सुन्दरि! अहमपि न जानामि। एतावता पुनरत्र भवितव्यम्, राज्यमुद्दिश्य प्रतारितः केनचित्कुमार इति। ततोऽलं मे इह स्थितेन, यत्र प्रधानस्वजनस्य कुमार-

उदय से फल का विचार न कर, अपनी शक्ति को न देखकर, कुमार की शक्ति का विचार न कर, कुमार को मारने के लिए ही कुछ पुरुषों के साथ (कुमार विषेण) उस उद्यान में गया। चित्रवेत्री (प्रतीहारी) के द्वारा न रोके जाने पर कुमार चन्दनलतागृह में बेरोक-टोक प्रवेश कर गया। उसने केवल कुमार और शान्तिमती को देखा। विश्वस्त होकर तलवार खींची। शान्तिमती ने देख लिया। उसने कहा—'आर्यपुत्र! रक्षा करो, रक्षा करो।' अनन्तर यह क्या!—ऐसा कहकर कुमार उठ गया। उसने विषेण को देखा। विषेण ने शस्त्र चलाया। शिक्षा के अतिशय से कुमार ने उसे रोक लिया। 'यह क्या!'—इस प्रकार चिन्ताशून्य हृदयवाला होते हुए भी भुजा रोककर उसकी तलवार छीन ली। इससे कहा—'कुमार! यह क्या है?' अनन्तर रोके जाने पर भी विषेण ने छुरी छीन ली। (तब) कुछ प्रहार कर (तथा) बाहु को मोड़कर सेन ने उसे भी छीन लिया। बाहु के मुड़ने की पीड़ा से विषेण गिर गया। सेन ने (उसे) उठाया, शय्या पर रखा, घबराकर पूछा—'कुमार! यह क्या है?' अनन्तर उत्तर न देकर विषेण चन्दन लतागृह से निकल गया। शान्तिमती ने कहा—'आर्यपुत्र! यह सब क्या है?' कुमार ने कहा—'सुन्दरि! मैं भी नहीं जानता हूँ। यहाँ इतनी ही बात होना चाहिए कि राज्य को उद्देश्य कर किसी के द्वारा कुमार ठगा गया है। अतः मेरा यहाँ रहना व्यर्थ है, जहाँ पर कि प्रधान स्वजन कुमार को भी इस प्रकार उद्वेग होता है। (मेरे यहाँ) ठहरने पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिंगेण जाणइ कुमारचेट्ठियं ताओ। तओ य घेप्पइ उम्माहएणं, निव्वासइ य कुमारं, आवहइ सोयमंबा 'लाघवं कुलहरस्स कुपुरिसो' त्ति। अन्नत्थ विलज्जियं जीवइ कुमारो। परत्थसंपायणाणुगयं च कुलवयणिज्जरक्खणामेत्तफलं सुपुरिसाण चेट्ठियं, एत्थ पुण उभयविवज्जओ त्ति। संतिमईए भणियं—अज्जउत्त, एवमेयं; किं तु कहं पुण गुरू अज्जउत्तं विसज्जिस्संति। कुमारेण भणियं—अइपंडिए, को गुरूणं कहेइ। अत्थि ईइसो नाओ 'बहुयरगुणे कज्जे नेहकायरयाए विग्घकारिणो गुरू अपुच्छिऊण वि पयट्टिज्जइ' त्ति। संतिमईए भणियं--अज्जउत्तो पमाणं। कुमारेण भणियं—सुंदरि, जइ एवं, ता अकहिऊण परियणस्स इओ चेवावक्कमामो। अलं कालहरणेणं। मा इमं चेव कुमारो संपाडइस्सइ; लज्जिओ खु सो वि इमिणा चेट्ठिएण। संतिमईए भणियं—अज्जउत्तो पमाणं।

एत्थंतरम्मि अत्थमिओ सूरिओ। कयं पओसावस्सयं। भणिओ य परियणो। अज्ज मए एत्थेव वसियव्वं ति। तओ सज्जियं उज्जाणवासभवणं। सीसं मे दुक्खइ त्ति भणिऊण लहुं चेव विसज्जिओ परियणो। अइक्कंता काइ वेला। तओ पसुत्ते परियणे अडयणाए विय अहिसरणगमणम्मि कसणपडएण

स्यापीदृश उद्वेगः। अवस्थाने चावश्यमेव केनचिद् लिङ्गेन जानाति कुमारचेष्टितं तातः। ततश्च गृह्यते उन्माथकेन (विनाशकेन), निर्वासयति च कुमारम्, आवहति शोकमम्बा 'लाघवं कुलगृहस्य कुपुरुषः' इति। अन्यत्र विलज्जितं जीवति कुमारः। परार्थसम्पादनानुगतं च कुलवचनीयरक्षणमात्रफलं सुपुरुषाणां चेष्टितम्, अत्र पुनरुभयविपर्यय इति। शान्तिमत्या भणितम्—आर्यपुत्र! एवमेतद्, किन्तु कथं पुनर्गुरवः आर्यपुत्रं विसर्जयिष्यन्ति। कुमारेण भणितम्—अतिपण्डिते! को गुरून् कथयति। अस्तीदृशो न्यायः 'बहुतरगुणे कार्ये स्नेहकातरतया विघ्नकारिणो गुरूनपृष्ट्वाऽपि प्रवर्त्यते' इति। शान्तिमत्या भणितम्--आर्यपुत्रः प्रमाणम्। कुमारेण भणितम्—सुन्दरि! यद्येवं ततोऽकथयित्वा परिजनस्य इतश्चैवापक्राम्यामः। अलं कालहरणेन। मा इदमेव कुमारः सम्पादयिष्यति, लज्जितः खलु सोऽप्यनेन चेष्टितेन। शान्तिमत्या भणितम्—आर्यपुत्रः प्रमाणम्।

अत्रान्तरे अस्तमितः सूर्यः। कृतं प्रदोषावश्यकम्। भणितश्च परिजनः। अद्य मयात्रैव वस्तव्यमिति। ततः सज्जितमुद्यानवासभवनम्। 'शीर्षं मे दुःखयति' इति भणित्वा लघ्वेव विसर्जितः परिजनः। अतिक्रान्ता काचिद्वेला। ततः प्रसुप्ते परिजने कुलटायामिवाभिसरणगमने कृष्णपटेनेव

किसी चिह्न से पिता जी कुमार विषेण की चेष्टा को अवश्य ही जान लेंगे। पश्चात् विनाशक द्वारा पकड़वाकर कुमार को बाहर निकाल देंगे, माता को शोक होगा। 'कुलगृह का कुपुरुष है'—इस प्रकार लघुता होगी। दूसरी जगह कुमार लज्जित होकर जीवित रहेगा। सत्पुरुषों की चेष्टाएँ परार्थ का सम्पादन करनेवाली और कुल की निन्दा की रक्षामात्र फलवाली होती हैं, यहाँ पर दोनों विपरीत हो रही हैं। शान्तिमती ने कहा—'आर्यपुत्र! यह ठीक है, किन्तु माता-पिता आर्यपुत्र को कैसे जाने देंगे?' कुमार ने कहा—'अतिपण्डिते! माता-पिता से कौन कहता है? इस प्रकार का न्याय है कि बहुत गुणवाले कार्य में स्नेहातिरेक से दुःखी होने के कारण विघ्न करने वाले माता-पिता से बिना पूछे ही प्रवृत्ति की जाती है।' शान्तिमती ने कहा—'आर्यपुत्र प्रमाण हैं।' कुमार ने कहा—'सुन्दरि! यदि ऐसा है तो परिजनों से न कहकर यहीं से भाग चलें। समय बिताना व्यर्थ है। यही कुमार न कर बैठे, वह इस चेष्टा से लज्जित है।' शान्तिमती ने कहा—'आर्यपुत्र प्रमाण हैं।'

इसी बीच सूर्य अस्त हो गया। सन्ध्याकालीन क्रियाओं को किया। परिजनों से कहा—'आज मैं यहीं निवास करूँगा। अतः उद्यान के निवासभवन को सजाओ। मेरा सिर दुःख रहा है'—ऐसा कहकर शीघ्र ही परिजनों को विदा कर दिया। कुछ समय बीता। अनन्तर परिजनों के सोने पर कुलटा स्त्री जिस प्रकार अभिसरण के लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विय तिमिरनिवहेण [1]ओत्थयाए रयणीए उट्ठिओ कुमारो संतिमई य। भणियं च णेण--सुंदरि, दीहाणि देसंतराणि, विचित्ता कम्मपरिणई, आवयाभायणं च एत्थ पाणिणो। बाहेइ य मं कुमार-नेहाणुबंधो, उप्पेक्खामि य इह अवत्थाणम्मि तस्स आवयं, अणिव्वुईए य चित्तस्स न सक्कुणोमि इह चिट्ठिउं, अणुचिया य तुमं किलेसायासस्स। ता न याणामि, किमेत्थ जुत्तं ति। संतिमईए भणियं—अज्जउत्तचित्तनिव्वुइसंपायणं ति। को य मम अज्जउत्तसहियाए किलेसायासो त्ति। तओ भवियव्व-याए[2] निओएण संतिमईसमेओ घेत्तूण असिवरं अलक्खिओ परियणेण निग्गओ उज्जाणाओ। गओ रयणीए चेव चंपावासयं सन्निवेसं।

एत्थंतरम्मि अइक्कंता रयणी, उग्गओ अंसुमाली। परिस्संता संतिमइ त्ति ठिओ एगम्मि वणनिगुंजे। दिट्ठो य तत्थ तामलित्तिपत्थिएण रायउरनिवासिणा साणुदेवनामेण सत्थवाहपुत्तेण, पच्च-भिन्नाओ य णेण। जाया य से चिंता। किं पुण एसो रइदुइओ विय मयरकेऊ रायधूयामेत्तपरियणो एवं वट्टइ। किं राइणा निव्वासिओ त्ति। अहवा न संभवइ एयं रायधूयापयाणाणुमाणमुणियसिणेहाइ-

तिमिरनिवहेनावस्तृतायां रजन्यामुत्थितः कुमारः शान्तिमती च। भणितं च तेन—सुन्दरि! दीर्घाणि देशान्तराणि, विचित्रा कर्मपरिणतिः, आपद्भाजनं चात्र प्राणिनः। बाधते च मां कुमारस्नेहानुबन्धः, उत्प्रेक्षे चेहावस्थाने तस्यापदम्। अनिर्वृत्या च चित्तस्य न शक्नोमीह स्थातुम्, अनुचिता च त्वं क्लेशायासस्य। ततो न जानामि किमत्र युक्तमिति। शान्तिमत्या भणितम्—आर्यपुत्रचित्तनिर्वृति-सम्पादनमिति। कश्च ममार्यपुत्रसहितायाः क्लेशायास इति। ततो भवितव्यताया नियोगेन शान्तिमती-समेतो गृहीत्वाऽसिवरमलक्षितः परिजनेन निर्गत उद्यानात्। गतो रजन्यामेव चम्पावासं सन्निवेशम्।

अत्रान्तरे अतिक्रान्ता रजनी, उद्गतोऽशुमाली। परिश्रान्ता शान्तिमतीति स्थित एकस्मिन् वननिकुञ्जे। दृष्टश्च तत्र ताम्रलिप्तीप्रस्थितेन राजपुरनिवासिना सानुदेवनाम्ना सार्थवाहपुत्रेण, प्रत्यभिज्ञातश्च तेन। जाता च तस्य चिन्ता। किं पुनरेष रतिद्वितीय इव मकरकेतू राजदुहितृमात्र-परिजन एवं वर्तते। किं राज्ञा निर्वासित इति। अथवा न सम्भवत्येतद् राजदुहितृप्रदानानुमानज्ञात-

गमन करती है, उसी प्रकार कुमार सेन और शान्तिमती उठे। उस समय रात्रि काले वस्त्र के समान अन्धकार समूह से आच्छादित हो रही थी। कुमार सेन ने कहा—'सुन्दरि! देशान्तर दीर्घ होते हैं, कर्मों की परिणति विचित्र है, यहाँ प्राणी आपत्ति के पात्र होते हैं। कुमार के प्रति स्नेह का सम्बन्ध मुझे पीड़ित कर रहा है। यहाँ पर ठहरने में उसकी आपत्ति देखता हूँ। चित्त की शान्ति न होने के कारण यहाँ नहीं रह सकता हूँ। तुम क्लेश और थकावट के योग्य नहीं हो, अतः नहीं जानता हूँ, यहाँ क्या युक्त है।' शान्तिमती ने कहा—'आर्यपुत्र के चित्त की शान्ति का सम्पादन (करना ही यहाँ उचित है)। अतः आर्यपुत्र के साथ मुझे क्लेश और थकावट कहाँ?' अनन्तर भवितव्यता के नियोग से शान्तिमती के साथ श्रेष्ठ तलवार लेकर परिजनों के द्वारा न दिखाई देते हुए उद्यान से निकल गया। रात्रि में ही चम्पावास नामक सन्निवेश में पहुँचा।

इसी बीच रात्रि बीत गयी, सूर्योदय हुआ। शान्तिमती थक गयी है—ऐसा सोचकर एक वनकुंज में ठहर गया। वहाँ पर ताम्रलिप्ती को जाते हुए राजपुर के निवासी 'सानुदेव' नामक सार्थवाहपुत्र ने देख लिया और पहिचान लिया। उसे चिन्ता हुई। रति के साथ कामदेव की तरह राजकुमारी मात्र ही जिसकी सेवक है, ऐसा (यह कुमार सेन) इस अवस्था में क्यों है? क्या राजा ने निकाल दिया? अथवा राजपुत्री के प्रदान के अनुमान

1. उच्छइया रयणी—क। 2. -यानिओ—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयस्स राइणो हरिसेणस्स। गुणायरो य एसो, गुणेगंतपक्खवाई य राया। अओ अपक्खो चेव एसो त्ति। न य अन्नो कोइ निव्वासणसमत्थो। एत्थ एद्दहमेत्तपरियणो य एसो। ता भवियव्वमणेणं निय-निव्वेयनिग्गएणं। विचित्ताणि य विहिणो विलसियाणि। ता इमं एत्थ पत्तयालं, पणमिऊण पुच्छामि एयं ति। चिंतिऊण पणमिओ कुमारो संतिमई य। भणियं च णेणं—देव, अमुणियवुत्तंतो त्ति विन्न-विस्सं देवं। तओ न कायव्वो खेओ। कुमारेण भणियं—भद्द, को एत्थ अवसरो खेयस्स; ता भणाउ भद्दो। साणुदेवेण भणियं—देव, अहं खु रायउरवत्थव्वओ साणुदेवो नाम सत्थवाहपुत्तो, पयट्टो सत्थेण तामलित्तिं। आवासिओ य णे सत्थो एत्थ सन्निवेसे। आयमणनिमित्तं च समागओ इओ नाइदूरदेस-वत्तिणं सरं। उवलद्धं च एयं वणनिउंजं। तओ समुप्पन्नो मे पमोओ। आचिक्खियं विय हियएणं, जहा एत्थ कल्लाणं ते भविस्सइ त्ति। तओ भवियव्वयानिओएण समागओ इहइं। उवलद्धो य देवो सामिधूया य। रायउरोवलद्धसंगयाणुस्सरणगुणेण य समुप्पन्नं पच्चभिन्नाणं। तओ आणंदियं पि विसण्णं विय मे चित्तं, 'कहिं देवो, कहिं एद्दहमेत्तपरियणो' त्ति। ता आइसउ देवो, जइ अकहणीयं न

स्नेहातिशयस्य राज्ञो हरिषेणस्य। गुणाकरश्चैषः, गुणैकान्तपक्षपाती च राजा। अतोऽपक्ष एष इति। न चान्यः कोऽपि निर्वासनसमर्थः। अत्र एतावन्मात्रपरिजनश्चैषः। ततो भवितव्यमनेन निजनिर्वेद-निर्गतेन। विचित्राणि च विधेर्विलसितानि। तत इदमत्र प्राप्तकालम्, प्रणम्य पृच्छाम्येतमिति। चिन्तयित्वा प्रणतः कुमारः शान्तिमती च। भणितं च तेन—देव! अज्ञातवृत्तान्त इति विज्ञपयिष्ये देवम्, ततो न कर्तव्यः खेदः। कुमारेण भणितम्—भद्र! कोऽत्रावसरः खेदस्य, ततो भणतु भद्रः। सानुदेवेन भणितम्—अहं खलु राजपुरवास्तव्यः सानुदेवो नाम सार्थवाहपुत्रः प्रवृत्तः सार्थेन ताम्र-लिप्तीम्। आवासितश्चास्माभिः सार्थोऽत्र सन्निवेशे। आचमननिमित्तं च समागत इतो नातिदूर-देशवर्ति सरः। उपलब्धं चैतद् वननिकञ्जम्। ततः समुत्पन्नो मे प्रमोदः। आख्यातमिव हृदयेन, यथाऽत्र कल्याणं ते भविष्यतीति। ततो भवितव्यतानियोगेन समागत इह। उपलब्धश्च देव स्वामिदुहिता च। राजपुरोपलब्धसङ्गतानुस्मरणगुणेन च समुत्पन्नं प्रत्यभिज्ञानम्। तत आनन्दित-मपि विषण्णमिव मे चित्तम्, कुत्र देवः, कुत्र एतावन्मात्रपरिजन इति। तत आदिशतु देवो यद्-

---

से जिसका स्नेहातिशय ज्ञात होता है—ऐसे राजा हरिषेण में यह बात सम्भव नहीं है। यह राजा गुणों की खान और गुणों का एकान्त रूप से पक्षपाती है। अतः यह पक्ष नहीं हो सकता है। दूसरा कोई निकालने में समर्थ है नहीं। यहाँ पर इतने मात्र परिजन से यह युक्त है। अतः अपनी ही विरक्ति से इसे निकला हुआ होना चाहिए। भाग्य के विलास विचित्र हैं। तो अब समय आ गया है, प्रणाम कर इसी से पूछूँ—ऐसा सोचकर उसने कुमार और शान्तिमती को प्रणाम किया और कहा—'महाराज! मुझे चूँकि वृत्तान्त ज्ञात नहीं है, अतः महाराज से निवेदन करना चाहता हूँ, अतः खेद न करें।' कुमार ने कहा—'भद्र! यहाँ पर खेद का क्या अवसर, अतः भद्र, कहिए।' सानुदेव ने कहा—'मैं राजपुरी का निवासी सानुदेव नामक वणिक्‌पुत्र सार्थ (काफिले) के साथ ताम्रलिप्ती जा रहा हूँ। हम लोगों के सार्थ ने यहाँ सन्निवेश में डेरा डाला है। पानी पीने के लिए यहाँ समीपवर्ती तालाब पर आया और इस वन-निकुंज तक आ पहुँचा। अनन्तर यहाँ मुझे हर्ष हुआ। हृदय ने मानो कहा कि यहाँ तुम्हारा कल्याण होगा। अतः होनहार के नियोग से यहाँ आया हूँ। यहाँ पर महाराज और स्वामिपुत्री मिले। राजपुर में प्राप्त मेल के स्मरणरूप गुण से पहिचान लिया। उससे आनन्दित होने पर भी मेरा मन खिन्न-सा है। कहाँ तो महाराज और कहाँ इतने मात्र परिजन! अतः महाराज! यदि अकथनीय न हो तो कहिए।'

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

हवइ। कुमारेण चिंतियं—अहो वच्छलया सत्थवाहपुत्तस्स, अहो निब्भराणुराओ, अहो वयणकोसल्लं ति। चिंतिऊण जंपियं च णेणं—सत्थवाहपुत्त, अत्थि एत्थ कारणं। किं तु अहं पि तामलित्ति चेव पत्थिओ। ता पुणो साहइस्सं। साणुदेवेण भणियं—देव, पसाओ त्ति अणुग्गिहीओ देवेणं। तहावि सत्थगमणेण आणंदेउ मं देवो। कुमारेण भणियं – सत्थवाहपुत्त, अत्थि एयं। किं तु कयाइ तत्थ तायपेसिया अन्नेसयपुरिसा पेच्छंति। तओ न संपज्जइ मे समीहियं। साणुदेवेण भणियं—देव, जइ एवं, ता चिट्ठामि ताव एत्थ कइवि दियहे। वोलीणेसु पुरिसेसु पयत्तगोविएणं देवेणं सह पुणो गमिस्सं ति। कुमारेण भणियं—सत्थवाहपुत्त, अलं इमिणा निब्बंधेण, गच्छ तुमं। साणुदेवेण भणियं—देव, मा एवमाणवेह। समुप्पज्जइ मे दुक्खं, निरत्थयं च मन्नेमि देवस्स दंसणं। कुमारेण भणियं—जइ ते निब्बंधो, ता एवं हवउ त्ति। साणुदेवेण भणियं—देव, पसाओ। कुमारेण भणियं—जइ एवं, ता गच्छ नियसत्थं। न जंपियव्वो एस वइयरो, नागंतव्वमिहइं[1]। तओ 'जं देवो आणवेइ' त्ति जंपिऊण साणुदेवो गओ सत्थं। थेववेलाए य आगया आसवारा। पुच्छिया य णेहिं सत्थिया। भो न तुब्भेहिं एव-

---

अकथनीयं न भवति। कुमारेण चिन्तितम्—अहो वत्सलता सार्थवाहपुत्रस्य, अहो निर्भरानुरागः, अहो वचनकौशल्यमिति चिन्तयित्वा जल्पितं च तेन – सार्थवाहपुत्र ! अस्त्यत्र कारणम्, किन्त्वहमपि ताम्रलिप्तीमेव प्रस्थितः, ततः पुनः कथयिष्ये। सानुदेवेन भणितम्—देव ! प्रसाद इत्यनुगृहीतो देवेन, तथापि सार्थगमनेनानन्दयतु मां देवः। कुमारेण भणितम्—सार्थवाहपुत्र ! अस्त्येतद्, किन्तु कदाचित् तत्र तातप्रेषिता अन्वेषकपुरुषाः प्रेक्षन्ते, ततो न सम्पद्यते मे समीहितम्। सानुदेवेन भणितम्—देव ! यद्येवं ततस्तिष्ठामि तावदत्र कत्यपि दिवसान्। व्यतिक्रान्तेषु पुरुषेषु प्रयत्नगोपायितेन देवेन सह पुनर्गमिष्ये इति। कुमारेण भणितम्—सार्थवाहपुत्र ! अलमनेन निर्बन्धेन, गच्छ त्वम्। सानुदेवेन भणितम्—देव ! मैवमाज्ञापय। समुत्पद्यते मे दुःखम्, निरर्थकं च मन्ये देवस्य दर्शनम्। कुमारेण भणितम्—यदि ते निर्बन्धस्तत एवं भवत्विति। सानुदेवेन भणितम्—देव ! प्रसादः। कुमारेण भणितम्—यद्येवं ततो गच्छ निजसार्थम्। न जल्पितव्य एष व्यतिकरः, देव, नागन्तव्यमिह। ततो 'यद्देव आज्ञापयति' इति जल्पित्वा सानुदेवो गतः सार्थम्। स्तोकवेलायामागता

कुमार ने सोचा—ओह वणिक्पुत्र का प्रेम, अत्यधिक अनुराग, वचनों की कुशलता आश्चर्यजनक है। और ऐसा सोचकर उसने कहा—'इसका कारण है, किन्तु मैं ताम्रलिप्ती ही जा रहा हूँ, अतः फिर बताऊँगा।' सानुदेव ने कहा—'महाराज ! आपने कृपा की अतः मैं अनुगृहीत हुआ तो भी सार्थ (काफिला) तक पहुँचकर हे देव ! मुझे आनन्दित करें।' कुमार ने कहा—'सार्थवाहपुत्र ! ठीक है, किन्तु कदाचित् पिता जी के द्वारा भेजे हुए अन्वेषक पुरुष देख लेंगे, अतः आपका मनोरथ पूर्ण नहीं कर सकता हूँ।' सानुदेव ने कहा—'महाराज ! यदि ऐसा है तो यहीं कुछ दिन ठहर जाता हूँ। पुरुषों के चले जाने पर प्रयत्न से छिपाये हुए महाराज के साथ पुनः चल दूँगा।' कुमार ने कहा—'इस प्रकार की हठ मत करो, तुम जाओ।' सानुदेव ने कहा—'महाराज ! ऐसी आज्ञा मत दो। मुझे दुःख होता है और महाराज का दर्शन व्यर्थ मानता हूँ।' कुमार ने कहा—'यदि तुम्हारी हठ है तो ऐसा ही हो।' सानुदेव ने कहा—'महाराज ! अनुगृहीत हूँ।' कुमार ने कहा—'यदि ऐसा है तो अपनी टोली के पास जाओ। यह घटना मत कहना, यहाँ मत आना।' अनन्तर 'जो महाराज आज्ञा दें'—ऐसा कहकर सानुदेव व्यापारियों की टोली में चला गया। कुछ ही देर में घुड़सवार आये। उन्होंने टोली के व्यापारियों से पूछा—'अरे ! आप लोगों

---

१. •व्वं केणइ इहइं—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विइजायासमेओ एवंविहो पुरिसो समुवलद्धो त्ति। तेहिं भणियं—'नोवलद्धो'। मिहो जंपियमणेहिं—हरे, भणियं मए 'अवदिसा खु एसा कुमारस्स'; ता एहि, रायउरवत्तिणीए लग्गामो त्ति। नियत्ता आसवारा। थेववेलाए य पच्चइयपुरिसहत्थम्मि पेसिऊण भोयणं आगओ साणुदेवो। निवेइओ आसवारवुत्तंतो। कराविओ पाणवित्ति।

अइक्कन्ते य वासरे अत्थमिए दिणयरम्मि नक्खत्तमालापसाहियाए नहयलसिरीए आणिओ सत्थनिवेसं। कओ उचिओवयारो। जामावसेसाए जामिणीए कुमाराएसेण विदिन्नं पयाणयं। समप्पियं पहाणजंपाणं संतिमईए कुमारस्स य। गया कंचि भूमिभागं। आवासिओ सत्थो। निविट्ठं चेलहरयं। ठिया तत्थ संतिमई कुमारसेणो य। संपाडियं उचियकरणिज्जं।

एवं च अणवरयपयाणएहिं वच्चमाणाणमइक्कंता कइवि वासरा। पत्ता दंतरत्तियाभिहाणं महाडविं। आवासिओ सत्थो। 'भयाणया अडवि' त्ति निविट्ठाइं थाणयाइं। पहायसमए य विसंसरिएसु थाणएसु सत्थलद्दणवावडेसु कम्मयरेसु आवस्सयकरणुज्जएहिं आडियत्तिएहिं अप्पतक्किया चेव

अश्ववाराः। पृष्टाश्च तैः सार्थिकाः—भो! न युष्माभिरेवंविधजायासमेत एवंविधपुरुषः समुपलब्ध इति। तैर्भणितम्—नोपलब्धः। मिथो जल्पितमेभिः—अरे भणितं मया अपदिक् खल्वेषा कुमारस्य, तत एहि राजपुरवर्तिन्यां लगाम इति। निवृत्ता अश्ववाराः। स्तोकवेलायां च प्रत्ययितपुरुषहस्ते प्रेषयित्वा भोजनमागतः सानुदेवः। निवेदितोऽश्ववारवृत्तान्तः। कारितः प्राणवृत्तिम्।

अतिक्रान्ते च वासरे अस्तमिते दिनकरे नक्षत्रमालाप्रसाधितायां नभस्तलश्रियामानीतः सार्थनिवेशम्। कृत उचितोपचारः। यामावशेषायां यामिन्यां कुमारादेशेन विदत्तं प्रयाणकम्। समर्पितं प्रधानजम्पानं शान्तिमत्याः कुमारस्य च। गताः कञ्चिद् भूमिभागम्। आवासितः सार्थः। निविष्टं चेलगृहम्। स्थिता तत्र शान्तिमती कुमारसेनश्च। सम्पादितमुचितकरणीयम्।

एवं चानवरतप्रयाणकैर्व्रजतामतिक्रान्ताः कत्यपि वासराः। प्राप्ता दन्तरत्निकाभिधानां महाटवीम्। आवासितः सार्थः। 'भयानका अटवी' इति निविष्टानि स्थानकानि। प्रभातसमये च विसंसृतेषु (अपगतेषु) स्थानकेषु सार्थभारारोपणव्यापृतेषु कर्मकरेषु आवश्यककरणोद्यतेषु सुभटेषु अप्रतर्कितैव

को इस प्रकार की स्त्री के साथ इस प्रकार का पुरुष तो नहीं मिला ?' उन्होंने कहा—'नहीं।' इन घुड़सवारों ने आपस में कहा—'अरे; मैंने कहा था, यह कुमार का मार्ग नहीं है अतः आओ राजपुरी की ओर चलें।' घुड़सवार लौट गये। थोड़ी देर में विश्वस्त पुरुषों के हाथ भोजन भेजकर सानुदेव आया। (उसने) घुड़सवारों का वृत्तान्त निवेदन किया। भोजन कराया।

दिन बीत गया, सूर्य अस्त हो गया और जब नक्षत्रमाला से प्रसाधित आकाशमण्डल विशेष शोभायुक्त हो गया तब उन्हें वह व्यापारियों के पड़ाव पर लाया। (उनका) उचित सत्कार किया। रात्रि का प्रहर मात्र शेष रह जाने पर कुमार की आज्ञा से प्रयाण किया। शान्तिमती और कुमार को मुख्य जम्पान (पालकी) में बैठाया। थोड़ी दूर गये। व्यापारियों की टोली ने पड़ाव डाला। रावटी (चेलगृह) बाँधी। वहाँ पर कुमार सेन और शान्तिमती ठहर गये। योग्य कार्यों को किया।

इस प्रकार निरन्तर चलते हुए कुछ दिन बीत गये। दन्तरत्निका नामक बहुत बड़ी पहाड़ी आयी। टोली ने पड़ाव डाला। पहाड़ी भयानक है—ऐसा सोचकर प्रहरियों को तैनात किया गया। प्रातःकाल प्रहरियों को चले जाने पर जब मजदूर टोली के माल को चढ़ाने में लग गये, सुभट आवश्यक कार्यों के करने में उद्यत हो गये तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विमुक्कबाणवरिसा निवडिया सबरधाडी। वाइयाइं सिंगाइं, हण हण त्ति उद्धाइओ कलयलो, विसण्णा कम्मारया, वुण्णो इत्थियायणो। पइट्ठिया आडियत्तिया, पवत्तमाओहणं —'सुंदरि, धीरा होहि' त्ति परिसंठवेऊण संतिमइं धाविओ कुमारसेणो, कड्ढियं मंडलग्गं। तओ केसरिकिसोरएण विय हरिणजूहं भग्गं सबरसेन्नं। अन्नदिसाए य भेल्लिओ सत्थो, विलुत्तं सारभंडं, पाडिया आडियत्तिया नट्ठो इत्थियायणो। 'कहं इओ विणिज्जिओ त्ति वलिओ कुमारसेणो। पलाणा सबरपुरिसा। तओ एगागी अवेक्खिऊण कुमारसेणं उवट्ठिओ' पल्लीवई, मिलिओ य तस्स। छूढं च णेणोहरणं। वंचियं कुमारेणं, परिछूढं च तस्स। पाडिओ पल्लीवई, मुच्छिओ य एसो। वीजियो कुमारेणं, जाव न चेयइ त्ति। तओ आसन्नवत्तिसराओ घेत्तूण नलिणिपत्तेण दिन्नं से सलिलं। तओ चेइयमणेणं[२]। दिट्ठो कुमारो। चिंतियं च णेणं। को पुण एसो महापुरिसो, सुकुमारदेहो वि दढप्पहारी, असहाओ वि ववसायजुत्तो, केसरो विय परक्कमेणं, मुणिकुमारो विय दयाए, कुसुमाउहो विय रूवेण, सत्तूण वि असत्तू[३]। ता आगिईओ चेवावगच्छामि, जहा परमेसरो खु एसो। ता न जुत्तमम्हेहिं ववसियं ति।

विमुक्तत्राणवर्षा निपतिता शबरघाटी। वादितानि शृङ्गाणि, 'जहि जहि' इत्युद्धावितः कलकलः, विषण्णाः कर्मकारकाः, भीतः स्त्रीजनः। प्रतिष्ठिताः सुभटाः। प्रवृत्तमायोधनम्। 'सुन्दरि! धीरा भव' इति परिसंस्थाप्य शान्तिमतीं धावितः कुमारसेनः, कृष्टं मण्डलाग्रम्। ततः केसरिकिशोरकेनेव हरिणयूथं भग्नं शबरसैन्यम्। अन्यदिशि च भेदितः सार्थः, विलुप्तं सारभाण्डम्, पातिताःसुभटाः, नष्टः स्त्रीजनः। 'कथमितो विनिर्जितः' इति वलितः कुमारसेनः। पलायिताः शबरपुरुषाः। तत एकाकी अवेक्ष्य कुमारसेनमुपस्थितः पल्लीपतिः मिलितश्च तस्य। क्षिप्तं च तेन शस्त्रम्। वञ्चितं कुमारेण, प्रतिक्षिप्तं च तस्य। पातितः पल्लीपतिः, मूच्छितश्चैषः। वीजितः कुमारेण, यावन्न चेतयते इति। तत आसन्नवर्तिसरसा गृहीत्वा नलिनीपत्रेण दत्तं तस्य सलिलम्। ततश्चेतितमनेन। दृष्टः कुमारः। चिन्तितं च तेन। कः पुनरेष महापुरुषः, सुकुमारदेहोऽपि दृढप्रहारी, असहायोऽपि व्यवसाययुक्तः, केसरीव पराक्रमेण, मुनिकुमार इव दयया, कुसुमायुध इव रूपेण, शत्रूणामप्यशत्रुः। तत आकृत्या एवावगच्छामि, यथा परमेश्वरः खल्वेषः। ततो न युक्तमस्माभिर्व्यवसितमिति। अत्रान्तरे भणितं

अनायास ही बाणों की वर्षा छोड़ती हुई भीलों की सेना टूट पड़ी। सिंगा बजाये गये। 'मारो-मारो'—ऐसा कोलाहल उठा, मजदूर दु:खी हुए, स्त्रियाँ भयभीत हो गयीं। योद्धा अवस्थित हो गये। युद्ध होने लगा। 'सुन्दरि! धीर धरो'—इस प्रकार शान्तिमती को ठहराकर कुमार सेन दौड़ा, तलवार खींची। अनन्तर जिस प्रकार सिंह का बच्चा हरिणों के झुण्ड को पराजित कर देता है, उसी प्रकार शबर सेना को (कुमार सेन ने) पराजित कर दिया। अन्य दिशाओं में टोली टूट गयी, कीमती माल लुप्त हो गया, सुभट गिर गये, स्त्रियाँ नष्ट हो गयीं। 'यहाँ से कैसे जीतकर जाओगे'—ऐसा कहकर कुमार सेन मुड़ा। शबरपुरुष भागे। अनन्तर कुमार सेन को अकेला देख भीलों का स्वामी आया, उससे मिला। उसने शस्त्र छोड़ा, कुमार ने चकमा दे दिया और उत्तरस्वरूप उसके ऊपर फेंका। भीलों का स्वामी गिरा दिया गया। वह मूच्छित हो गया। कुमार ने हवा की। (उसे) होश नहीं आया। तब समीप के तालाब से कमलिनी के पत्ते में पानी लाकर उसे पानी दिया। उससे इसे होश आया। (उसने) कुमार को देखा और सोचा—यह महापुरुष कौन है? सुकुमार देहवाला होने पर भी दृढ़ता से प्रहार करनेवाला है। असहाय होने पर भी उद्योगी है। पराक्रम में सिंह के समान है। शत्रुओं का भी मित्र है। इसकी

१. पइट्ठिओ—क, ख। २. •मणेणं। उम्मिलियं लोयणजुयलं—क। ३. सत्तूण कयंतो। ता आगिईओ यवगच्छामि भविअव्वमणेण परमेसरणेण—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एत्थंतरम्मि भणियं कुमारेणं—भद्द, वीसत्थो होहि। तेण भणियं—अज्ज, कीइसी अम्हारिसाणं वीसत्थया। एत्थंतरम्मि कहियमेगेण सबरेण सेणाए, जहा पल्लीवई पाडिओ त्ति। अमरिसावेसेण 'हण हण' त्ति जंपमाणा धाविया सबरपुरिसा। 'विणिज्जिओ अहं, महापुरिसो य एसो, ता न पहरियव्वं तुब्भेहिं' ति सन्नासंपायणत्थं चेट्ठियं पल्लिणाहेणं। कयमणेण गोमाउवासियं। तओ तमवगच्छिऊण विमुक्कचावपरसू सिरकयंजलिउडा समागया सबरपुरिसा। भणियं च णेहिं—अज्ज, अभयं देहि त्ति। कुमारेण भणियं—अभयं मुक्काउहाणं। एत्थंतरम्मि चलणेसु निवडिओ पल्लीवई। भणियं च णेण—अज्ज, खमियव्वो एस अवराहो। कुमारेण भणियं—भद्द, को एत्थ अवराहो। तेण भणियं—जं सत्थो लूडिओ त्ति। कुमारेण चिंतियं। हंत किमेयं ति। एत्थंतरम्मि जंपियं पल्लिणाहेणं—अरे करेह आघोसणं, निवारेह आओहणं। आणेह जं जेण गहियं; पुणोवलद्धे य न खमेमि अहयं ति। आएससमणंतरं च संपाडियमणेहिं। भणियं च पल्लिवइणा—अज्ज, निरूवेहि एयं, किं एत्थ नत्थि त्ति। कुमारेण भणियं--भद्द, असामिओ अहं एयस्स; ता निरूविऊण सत्थवाहपुत्तं पुच्छसु त्ति। निरूविओ

कुमारेण—भद्र! विश्वस्तो भव। तेन भणितम्—आर्य! कीदृशी अस्मादृशानां विश्वस्तता। अत्रान्तरे कथितमेकेन शबरेण सेनायाः, यथा पल्लीपतिः पातित इति। अमर्षावेशेण 'जहि जहि' इति जल्पन्तो धाविताः शबरपुरुषाः। 'विनिर्जितोऽहम्, महापुरुषश्चैषः, न प्रहर्तव्यं युष्माभिः' इति संज्ञासम्पादनार्थं चेष्टितं पल्लीनाथेन। कृतमनेन गोमायुवाशितम्। ततस्तमवगत्य विमुक्तचापपरशवः शिरःकृताञ्जलिपुटाः समागताः शबरपुरुषाः। भणितं च तैः—आर्य! अभयं देहीति। कुमारेण भणितम्—अभयं मुक्तायुधानाम्। अत्रान्तरे चरणयोर्निपतितः पल्लीपतिः। भणितं च तेन—आर्य! क्षमितव्य एषोऽपराधः। कुमारेण भणितम्—भद्र! कोऽत्रापराधः। तेन भणितम्—यत्सार्थो लुण्ठित इति। कुमारेण चिन्तितम्—हन्त किमेतदिति। अत्रान्तरे जल्पितं पल्लीनाथेन—अरे कुरुताघोषणाम्, निवारयतायोधनम्। आनयत यद् येन गृहीतम्, पुनरुपलब्धे च न क्षाम्याम्यहमिति। आदेशसमनन्तरं च सम्पादितमेभिः। भणितं च पल्लीपतिना—निरूपयैतत्, किमत्र नास्तीति। कुमारेण भणितम्—भद्र! अस्वाम्यहमेतस्य ततो निरूप्य सार्थवाहपुत्रं पृच्छेति। निरूपितः सार्थवाहपुत्रः,

---

आकृति से लगता है कि यह परमेश्वर है। अतः (हमारा कार्य ठीक नहीं है), हम लोगों ने यह ठीक नहीं किया है। इसी बीच कुमार ने कहा—'भद्र! विश्वस्त होओ।' उसने कहा—'आर्य! हम जैसे लोगों की विश्वस्तता कैसी?' इसी बीच किसी ने शबरसेना से कह दिया कि स्वामी गिरा दिया गया। क्रोध से आविष्ट होकर 'मारो-मारो'—ऐसा कहते हुए शबरपुरुष दौड़ पड़े। 'मैं जीत लिया गया और यह महापुरुष हैं, इन पर प्रहार मत करो', इस प्रकार का इशारा करने के लिए भिल्लराज ने चेष्टा की। इसने सियार की आवाज की। अनन्तर उसे जानकर धनुष और परशुओं को छोड़कर अंजलि को सिर पर बाँधे हुए शबरपुरुष आये और उन्होंने कहा—'आर्य! अभय दो।' कुमार ने कहा—'आयुधों को छोड़नेवालों को अभय है।' इसी बीच भिल्लराज चरणों में गिर गया। उसने कहा—'आर्य! यह अपराध क्षमा करें।' कुमार ने कहा—'भद्र! कैसा अपराध!' उसने कहा—'जो कि सार्थ को लूटा।' कुमार ने सोचा—हाय! यह क्या? इसी बीच भिल्लराज ने कहा—'अरे! घोषणा करो, योद्धाओं को रोको। जिसने जो ग्रहण किया हो, उसे लाओ। बाद में मिलने पर मैं क्षमा नहीं करूँगा।' आदेश के बाद इन्होंने (भीलों ने) उसे पूरा किया। भिल्लराज ने कहा—'इसे देखो, यहाँ क्या नहीं है?' कुमार ने कहा—'भद्र! मैं इनका स्वामी नहीं हूँ, अतः देखकर सार्थवाहपुत्र से पूछो।' सार्थवाहपुत्र को देखा गया,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्थवाहपुत्तो, उवलद्धो वणनिउंजे, आणीओ य णेहिं। भणिओ पल्लिवइणा—अज्ज, न विन्नायं अम्हेहिं, जहा एसो महापुरिसो इह गच्छइ त्ति। विणिज्जिया य णेण अम्हे। महाणुभावयाए पडिवन्नो य एस अम्हेहिं सामी। अओ संबंधिओ तुमं ति। अदोहया[1] णे तुज्झ रित्थस्स। ता निरूवावेहि एयं, किं एत्थ नत्थि त्ति। तओ 'अहो महाणुभावया कुमारस्स, एयाइणा विणिज्जिया सबरसेणा। भिच्च-भावमुवगओ[2] पल्लीव; अहवा थेवमियमिमस्स किं करेंति हरिणया केसरिकिसोरयस्स' त्ति चिंतिऊण जंपियं साणुदेवेण भद्द, सामिसालम्मि अज्जउत्ते तुम्मि य संबंधिए किं ममं नत्थि त्ति। तेण भणियं —तहावि निरूवावसु त्ति, न मे अन्नहा चित्तनिव्वुई होइ। तओ निरूवावियमणेणं, जाव 'पुज्जइ' त्ति साहियं पल्लिणाहस्स। परितुट्ठो य एसो। चिंतियं कुमारेणं। अहो महाणुभावया एयस्स। एद्दहमेत्ते-णावि एवं चिट्ठइ त्ति—अहवा सुगेज्झाणि सज्जणहिययाणि। भंजाविओ से पहारो, विइण्णं कडि-सुत्तयं। महापसाओ त्ति भणिऊण गहियं पल्लिवइणा। निरूवाविया पडिहयपुरिसा। कयाइं वणपरि-कम्माइं। भणियं च णेण—अज्ज, पच्चासन्ना चेव एत्थ अम्हाण पल्ली; ता तीए दंसणेण अणुगहेउ मं

उपलब्धो वननिकुञ्जे, आनीतश्च तैः। भणितः पल्लीपतिना। आर्य ! न विज्ञातमस्माभिः, यथैष महापुरुष इह गच्छतीति। विनिर्जिताश्च तेन वयम्। महानुभावतया प्रतिपन्नश्चैषोऽस्माभिः स्वामी। अतः सम्बन्धी त्वमिति। अद्रोहका वयं तव रिक्थस्य। ततो निरूपयैतत् किमत्र नास्तीति। ततः 'अहो महानुभावता कुमारस्य, एकाकिना विनिर्जिता शबरसेना, भृत्यभावमुपगतः पल्लीपतिः, अथवा स्तोकमिदमस्य, किं कुर्वन्ति हरिणकाः केसरिकिशोरकस्य' इति चिन्तयित्वा जल्पितं सानुदेवेन—भद्र ! स्वामिनि आर्यपुत्रे त्वयि च सम्बन्धिनि किं मम नास्तीति। तेन भणितम्—तथापि निरूपयेति, न मेऽन्यथा चित्तनिर्वृत्तिर्भवति। ततो निरूपितमनेन, यावत् 'पूर्यते' इति कथितं पल्लीनाथस्य। परितुष्टश्चैषः। चिन्तितं कुमारेण—अहो महानुभावतैतस्य। एतावन्मात्रेणापि एवं तिष्ठतीति। अथवा सुग्राह्याणि सज्जनहृदयानि। भञ्जितस्तस्य प्रहारः, वितीर्णं कटिसूत्रम्। 'महाप्रसादः' इति भणित्वा गृहीतं पल्लिपतिना। निरूपिताः प्रतिहतपुरुषाः। कृतानि व्रणपरिकर्माणि। भणितं च तेन—आर्य ! प्रत्यासन्नैवात्रास्माकं पल्ली, ततस्तस्या दर्शनेनानुगृह्णातु मामार्य इति।

(वह) वननिकुंज में प्राप्त हुआ, वे लोग (उसे) ले आये। भिल्लराज ने कहा—'आर्य ! हम लोगों ने नहीं जाना कि यह महापुरुष जा रहा है। उसने हम लोगों को जीत लिया। महानुभावता के कारण यह हम लोगों का स्वामी हो गया, अतः तुम सम्बन्धी हो। हम लोग तुम्हारी सम्पत्ति के द्रोही नहीं हैं। अतः इसे देख लो, यहाँ क्या नहीं है ? (इसमें क्या नहीं है ?)।' अनन्तर, ओह कुमार की महानुभावता, अकेले ही शबरसेना को जीत लिया, भिल्लराज सेवक बन गया। अथवा इसके लिए यह बहुत थोड़ा है, सिंह के बच्चे का हरिण क्या कर पाते हैं ? ऐसा सोचकर सानुदेव ने कहा—'भद्र ! आर्यपुत्र के स्वामी होने और तुम्हारे सम्बन्धी होने पर मेरा क्या नहीं है ?' भिल्लराज ने कहा—'तो भी देख लो (अन्यथा मेरे मन को शान्ति नहीं होगी)।' अनन्तर सानुदेव ने देखा, 'पूरी है'—ऐसा भिल्लनाथ से कहा। भिल्लराज सन्तुष्ट हुआ। कुमार ने सोचा—ओह इसकी महानुभावता। इतने मात्र से ही यह इस प्रकार बैठा है अथवा सज्जनों के हृदय सुग्राह्य हैं। उसके प्रहार को विफल किया, कटिसूत्र दिया। बहुत बड़ी कृपा—ऐसा कहकर भिल्लराज ने ले लिया। घायल पुरुषों को देखा। उनके घाव पर मरहमपट्टी वगैरह की। भिल्लराज ने कहा—'आर्य ! समीप में ही हमारी बस्ती है, अतः दर्शन कर मुझे अनुगृहीत करें।'

---

1. अदोहणया—क। 2. -मुवगीयो—क।

अज्जो त्ति। कुमारेण भणियं—सत्थवाहपुत्तो पमाणं। साणुदेवेण भणियं—भद्द, दिट्ठे तुमम्मि दिट्ठा चेव पल्लि त्ति।

एत्थंतरम्मि बाहप्फुल्ललोयणो समागओ साणुदेवसूवयारो। भणियं च णेण—अज्ज, परित्तायाहि परित्तायाहि। पणट्ठं सव्वसारं, न दीसए रायधूय त्ति। तओ आउलीहूओ कुमारो। विसण्णो साणुदेवो। 'किमेयं' ति मूढो पल्लीवई। भणियं च णेण—अज्ज, का एसा रायधूय त्ति। साणुदेवेण भणियं—भद्द, रायउरसामिणो संखरायस्स धूया, कुमारं उद्दिसिऊण देवस्स घरिणी संतिमइ त्ति। तेण भणियं—कहं न दीसइ त्ति। सूवआरेण भणियं—सुण। पवत्ते आओहणे सबरसेणासम्मुहम्मि गए रायउत्ते अन्नदिसाए य भेल्लिए सत्थे विलुप्पमाणे सारभंडे पाडिएहिं आडियत्तिएहिं 'हा अज्जउत्त हा अज्जउत्त' त्ति भणमाणी निग्गया चेलहराओ, पहाविया अडविहुत्तं। 'न मोत्तव्वा एस' त्ति सत्थवाहपुत्तस्स वयणमणुसरंतो लग्गो अहं तीए मग्गओ। गओ थेवं भूमिभागं। आहओ लउडेण सबरजवाणेण। निवडिओ धरणिवट्ठे। समागया मुच्छा। अइक्कंता काइ वेला। पडिलद्धा चेयणा। उट्ठिओ संभमेणं। पवत्तो गवेसिउं। तओ गुविलयाए रण्णस्स मूढयाए दिसाविभायाणं अन्नेसमाणेणावि न दिट्ठा रायधूया मए।

कुमारेण भणितम्—सार्थवाहपुत्रः प्रमाणम्। सानुदेवेन भणितम्—दृष्टे त्वयि दृष्टैव पल्लीति।

अत्रान्तरे बाष्पोत्फुल्ललोचनः समागतः सानुदेवसूपकारः। भणितं च तेन—आर्य! परित्रायस्व परित्रायस्व प्रनष्टं सर्वसारम्, न दृश्यते राजदुहितेति। तत आकुलीभूतः कुमारः विषण्णः सानुदेवः 'किमेतद्' इति मूढः पल्लीपतिः। भणितं च तेन—आर्य! का एषा राजदुहितेति। सानुदेवेन भणितम्—भद्र! राजपुरस्वामिनः शङ्खराजस्य दुहिता, (कुमारमुद्दिश्य) देवस्य गृहिणी शान्तिमतीति। तेन भणितम्—कथं न दृश्यते इति। सूपकारेण भणितम्—शृणु। प्रवृत्ते आयोधने शबरसेनासम्मुखे गते राजपुत्रे अन्यदिशि च भेदिते सार्थे विलुप्यमाने सारभाण्डे पातितेषु सुभटेषु 'हा आर्यपुत्र! हा आर्यपुत्र!' इति भणन्ती निर्गता चेलगृहात्। प्रधाविता अटवीसम्मुखम्। 'न मोक्तव्या एषा' इति सार्थवाहपुत्रस्य वचनमनुस्मरन् लग्नोऽहं तस्याः पृष्ठतः। गतः स्तोकं भूमिभागम्। आहतो लकुटेन शबरयूना। निपतितो धरणीपृष्ठे। समागता मूर्च्छा। अतिक्रान्ता काचिद् वेला। प्रतिलब्धा चेतना। उत्थितः सम्भ्रमेण। प्रवृत्तो गवेषयितुम्। ततो गहनतयाऽरण्यस्य मूढतया दिग्विभागाना-

---

कुमार ने कहा—'सार्थवाहपुत्र प्रमाण है।' सानुदेव ने कहा—'तुम्हारे देखने पर बस्ती देख ही ली।'

इसी बीच आँसुओं से गीले नेत्रों वाला सानुदेव का रसोइया आया और उसने कहा—'आर्य! बचाओ, बचाओ, सब धन नष्ट हो गया! राजपुत्री नहीं दिखाई दे रही है।' अनन्तर कुमार आकुलित हुआ, सानुदेव खिन्न हुआ। 'यह क्या!'—इस प्रकार भिल्लराज मूढ़ हुआ। उसने कहा—'आर्य! यह राजपुत्री कौन है?' सानुदेव ने कहा—'भद्र! राजपुर के स्वामी शंखराज की पुत्री (कुमार की ओर इशारा कर) महाराज की गृहिणी शान्तिमती। उसने कहा—'दिखाई क्यों नहीं देती है?' रसोइए ने कहा—'सुनो। युद्ध प्रारम्भ होने पर जब राजपुत्र शबरसेना के सम्मुख चला गया और टोली अन्य दिशाओं में छिन्न भिन्न हो गयी, कीमती माल लुट गया। तब सुभटों के टूट पड़ने पर 'हाय आर्यपुत्र! हाय आर्यपुत्र!' ऐसा कहती हुई रावटी से निकल गयी। वन की ओर दौड़ी। 'इसे नहीं छोड़ना चाहिए'—इस प्रकार वणिकपुत्र के वचनों का स्मरण कर मैं उसके पीछे लग गया। थोड़ी दूर तक गया। शबरयुवक ने डण्डे से प्रहार किया, पृथ्वी पर गिर गया। मूर्च्छा आ गयी। कुछ समय बीत गया। चेतना प्राप्त हुई। घबराहट से उठ गया। ढूंढ़ने लगा। अनन्तर जंगल की गहनता, दिशाओं के विभागों की मूढ़ता के कारण ढूंढ़ने पर भी वह राजपुत्री मुझे नहीं दिखाई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संपयं तुब्भे पमाणं ति। तओ 'हा देवि' त्ति भणमाणो मुच्छिओ कुमारसेणो। समासासिओ पल्लिणाहेणं। भणियं च णेणं—देव, अलं विसाएणं। कित्तियमित्तमरण्णं[1], थेवा य वेला सत्थविब्भमस्स, अणुचियधरणिपरिसक्कणा य देवी, पवणवेगगमणा य मुणियसयलरण्णभावा य सबरपुरिसा। ता कहिं गमिस्सइ त्ति। गवेसिऊण संजोएमि देवं रायधूयाए। विसज्जिया णेण दिसो दिसिं नियपुरिसा। भणिओ य साणुदेवो—अज्ज, अइक्कंतो ताव कालो पल्लीदंसणस्स। ता समासासेउ देवं अज्जो। अहं पुण देविं चेव अन्नेसामि त्ति। पडिस्सुयं साणुदेवेण। तओ कुमारसमीवम्मि निरूविऊण कइवयनियपुरिसे पयट्टो पल्लिणाहो। भणियं च णेणं—देव, परिच्चय विसायं, अवलंबेहि उच्छाहं, गवेसामो देविं ति। पडिस्सुयं कुमारेणं। पयट्टो सबरपुरिससमेओ गवेसिउं।

इओ य रायधूया 'कहिं अज्जउत्त' त्ति गवेसमाणी निवडिया कंतारमज्झे। मूढाओ दिसाओ। अपेच्छमाणी दइययं भमिया महाडवीए। परिणयप्पाए वासरे समागया गिरिनइं। न दिट्ठो अज्जउत्तो

मन्वेषमाणेनापि न दृष्टा राजदुहिता मया। साम्प्रतं यूयं प्रमाणमिति। ततो 'हा देवि!' इति भणन् मूर्च्छितः कुमारसेनः। समाश्वासितः पल्लीनाथेन। भणितं च तेन—देव! अलं विषादेन। कियदिदमरण्यम्, स्तोका च वेला सार्थविभ्रमस्य, अनुचितधरणीपरिष्वष्कणा (—परिचंक्रमणा) च देवी, पवनवेगगमनाश्च ज्ञातसकलारण्यभावाश्च शबरपुरुषाः। ततः कुत्र गमिष्यतीति। गवेषयित्वा संयोजयामि देवं राजदुहित्रा। विसर्जितास्तेन दिशि दिशि निजपुरुषाः। भणितश्च सानुदेवः—आर्य! अतिक्रान्तस्तावत्कालः पल्लीदर्शनस्य। ततः समाश्वासयतु देवमार्यः। अहं पुनर्देवीमेवान्वेष्ये इति। प्रतिश्रुतं सानुदेवेन। ततः कुमारसमीपे निरूप्य (नियोज्य) कतिपयनिजपुरुषान् प्रवृत्तः पल्लीनाथः। भणितं च तेन—देव! परित्यज विषादम्, अवलम्ब स्वोत्साहम्, गवेषयामो देवीमिति। प्रतिश्रुतं कुमारेण। प्रवृत्तः शबरपुरुषसमेतो गवेषयितुम्।

इतश्च सा राजदुहिता 'कुत्र आर्यपुत्रः' इति गवेषयन्ती निपतिता कान्तारमध्ये। मूढा दिशः। अप्रेक्षमाणा दयितं भ्रान्ता महाटव्याम्। परिणतप्राये वासरे समागता गिरिनदीम्। न दृष्ट आर्यपुत्र

दी, इस समय आप प्रमाण हैं। अनन्तर 'हा देवी'—ऐसा कहता हुआ कुमार मूर्च्छित हो गया। भिल्लराज ने आश्वस्त किया। उसने कहा—'महाराज! विषाद मत कीजिए। यह जंगल कितना-सा है, सार्थ के घूमने का समय थोड़ा है और देवी पृथ्वी पर चलने में असमर्थ है, समस्त वन से परिचित शबरपुरुष वायु के वेग के समान गमन करने वाले हैं। अतः कहाँ जाएगी? ढूँढ़कर महाराज को राजपुत्री से मिलाये देता हूँ।' उसने प्रत्येक दिशा में आदमी भेजे। सानुदेव से कहा—'आर्य! भीलों की बस्ती देखने का काल बीत गया है, अतः आर्य महाराज को सान्त्वना दें। मैं देवी की खोज करता हूँ।' सानुदेव ने स्वीकार किया। अनन्तर कुमार के पास कुछ निजी पुरुषों को नियुक्त कर भिल्लराज चल पड़ा। (जाते हुए) उसने कहा—'महाराज! विषाद छोड़िए, उत्साह का अवलम्बन कीजिए, (हम लोग) देवी को खोजते हैं।' कुमार ने स्वीकार किया। (भिल्लराज) शबरों के साथ ढूँढ़ने लग गया।

इधर वह राजपुत्री 'आर्यपुत्र कहाँ हैं?'—इस प्रकार ढूँढ़ती हुई वन के बीच गिर गयी। दिशाएँ मूढ़ हो गयीं। पति को न देखती हुई विशाल वन में भटक गयी। दिन ढलने पर पर्वतीय नदी के पार आयी।

---

1. केत्तिय—ख।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्ति विसण्णा हियएणं। चिंतियं च णाए। अलं मे अज्जउत्तविरहियाए जीविएणं। ता एयम्मि असो-अपायवे उक्कलंबेमि अत्ताणयं। निबद्धो वल्लीए पासओ। निमिया सिरोहरा। भणियं च णाए—भयवईओ वणदेवयाओ, न मए अज्जउत्तं मोत्तूण अन्नो मणसा वि चिंतिओ। इमिणा सच्चेण जम्मरम्मि वि अज्जउत्तो चेव भत्ता हवेज्ज त्ति कयं नियाणं। पवाहिओ अप्पा, तुट्टो से पासओ, निवडिया धरणिवट्ठे, गया मुच्छं। दिट्ठा आसन्नतवोवणवासिणा संझोवासणनिमित्तमागएणं मुणिकुमारएणं। चिंतियं च णेणं—हा का उण एसा वणदेवया विव इत्थिया निवडिया धरणिवट्ठे। अहवा किं मम इत्थियाए। अन्नओ गच्छामि। वारियं खु समए इत्थियादंसणं। भणियं च तत्थ—अवि य अंजियव्वाइं तत्तलोहसलायाए अच्छीणि, न दट्ठव्वा य अंगपच्चंगसंठाणेणं इत्थिया; अवि य भक्खियव्वं विसं, न सेवियव्वा विसया; छिंदियव्वा जीहा न जंपियव्वमलियं ति। ता किं मम इमीए, अणहियारो य एसो मुणिजणस्स। अहवा दीणजणअब्भुद्धरणं पि समसत्तुमित्तयाए पडिवाइयमेव। भणियं च तत्थ—अत्ताणनिव्विसेसं दट्ठव्वा सव्वपाणिणो, पवत्तियव्वं हिए जहासत्तीए, अब्भुद्धरेयव्वा दीणया, न खलु

इति विषण्णा हृदयेन। चिन्तितं च तया। अलं मे आर्यपुत्रविरहिताया जीवितेन। तत एतस्मिन्नशोकपादपे उल्लम्बे आत्मानमिति। निबद्धो वल्ल्या पाशः। न्यस्ता शिरोधरा। भणितं च तया—भगवत्यो वनदेवताः! न मयाऽऽर्यपुत्रं मुक्त्वाऽन्यो मनसाऽपि चिन्तितः। अनेन सत्येन जन्मान्तरेऽप्यार्यपुत्र एव भर्ता भवेदिति कृतं निदानम्। प्रवाहित (मुक्तः) आत्मा, त्रुटितस्तस्याः पाशः, निपतिता धरणीपृष्ठे, गता मूर्च्छाम्। दृष्टाऽऽसन्नतपोवनवासिना सन्ध्योपासननिमित्तमागतेन मुनिकुमारकेन। चिन्तितं च तेन—हा का पुनरेषा वनदेवतेव स्त्री निपतिता धरणीपृष्ठे। अथवा किं मम स्त्रिया। अन्यतो गच्छामि। वारितं खलु समये स्त्रीदर्शनम्। भणितं च तत्र—अपि चाञ्जितव्यानि तप्तलोहशलाकयाऽक्षीणि, न द्रष्टव्या च अङ्गप्रत्यङ्गसंस्थानेन स्त्री, अपि च भक्षितव्यं विषम्, न सेवितव्या विषयाः, छेत्तव्या जिह्वा, न जल्पितव्यमलीकमिति। ततः किं ममानया, अनधिकारश्चैष मुनिजनस्य। अथवा दीनजनाभ्युद्धरणमपि समशत्रुमित्रतया प्रतिपादितमेव। भणितं च तत्र—आत्मनिर्विशेषं द्रष्टव्याः सर्वप्राणिनः, प्रवर्तितव्यं हिते यथाशक्ति, अभ्युद्धर्तव्या दीनाः, न खल्वहिंसातो-

---

आर्यपुत्र दिखाई नहीं दिये, अतः हृदय से दुःखी हुई। उसने सोचा—आर्यपुत्र के बिना मेरा जीना व्यर्थ है। अतः इस अशोकवृक्ष पर अपने को लटकाती हूँ। लताओं से पाश बाँधे। गर्दनी रखी। उसने कहा—'भगवती वनदेवियो! मैंने आर्यपुत्र को छोड़कर अन्य का मन से भी चिन्तन नहीं किया है। इस सत्य से अन्य जन्म में भी आर्यपुत्र ही पति हों' इस प्रकार निदान किया। अपने आपको छोड़ दिया, उसका पाश टूट गया, (वह) धरती पर गिर गयी, मूर्च्छित हो गयी। समीप के तपोवन में रहनेवाले मुनिकुमार को, जो कि सन्ध्योपासना के लिए आया था, वह दिखाई दी। उसने सोचा—हाय! यह कौन वनदेवी के समान स्त्री धरती पर पड़ी है! अथवा मुझे स्त्री से क्या? दूसरी ओर जाता हूँ। शास्त्रों में स्त्री का देखना निषिद्ध है। कहा गया है—तपाये हुए लोहे की सलाई से आँखों को आँज ले, किन्तु अङ्ग-प्रत्यङ्ग के आकार से स्त्री को न देखे। और भी—विष को खा लेना चाहिए किन्तु विषय का सेवन नहीं करना चाहिए, जीभ काट लेनी चाहिए, किन्तु झूठ नहीं बोलना चाहिए। अतः इससे क्या, यह मुनिजन का अधिकार नहीं है। अथवा शत्रु और मित्रों पर समान दृष्टि होने के कारण दीनजनों का उद्धार करना भी प्रतिपादित ही है। उसमें कहा गया है—अपने समान सभी प्राणियों को देखना चाहिए, हित में यथाशक्ति प्रवृत्त होना चाहिए, दीनों का उद्धार करना चाहिए, अहिंसा के अतिरिक्त अन्य कोई धर्म का साधन नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसाओ अन्नं धम्मसाहणं ति। दीणा य एसा। अन्नहा कहिं रण्णं, कहिं एगागिणी इत्थिया। ता पेच्छामि ताव, का उण एसा; मा नाम विज्जाहरी पसुत्ता भवे। पुलइया मुणिकुमारेणं। दिट्ठो से पासओ। विसण्णो मुणिकुमारो। चिंतियं च णेण—अहो एसा आगिई, एसो य पासओ त्ति विरुद्ध-मेयं। अहवा नत्थि कम्मपरिणईए विरुद्धं ति। चिंतिऊण अब्भुक्खिया कमंडलुपाणिएणं। समागया चेयणा, ऊससियं मणागं, उम्मिल्लियाइं लोयणाइं, दिट्ठो मुणिकुमारओ। संतत्था य एसा। भणिया य णेण—वच्छे, अलं संतासेण, मुणिकुमारओ अहं। तओ पणमिओ इमीए। 'अविहवा हवसु' त्ति भणिया अणेण— भयवं, कहिं तुमं एत्थं' ति पुच्छिओ[2] संतिमईए। भणियं च णेण—आसन्नं मे तवोवणं। पयट्टो संझोवासणनिमित्तं गिरिनइं, अंतराले य दिट्ठा तुमं ति वलियो वत्तिणीओ। ता साहेहि अज्जे, का तुमं, कहं वा एयाइणी, किं वा ते इमस्स ववसायस्स कारणं ति। तओ चिंतियं संतिमईए—हद्धी मुणिकुमारओ खु एसो, न जुत्तं च अप्पणा अप्पाणयं कहेउं, एसो य एवं वाहरइ; ता किमेत्थ उचियं। अहवा माणणीया तवस्सिणो। वरं अत्तणो लहुत्तणं ति। साहेमि[3] भयवओ, न एत्थ अत्तणो वि

ऽन्यद् धर्मसाधनमिति। दीना चैषा। अन्यथा कुत्रारण्यम्, कुत्रैकाकिनी स्त्री। ततः प्रेक्षे तावत् का पुनरेषा, मा नाम विद्याधरी प्रसुप्ता भवेद्। दृष्टा मुनिकुमारेण। दृष्टस्तस्याः पाशः। विषण्णो मुनिकुमारः। चिन्तितं च तेन—अहो एषाऽऽकृतिः, एष च पाश इति विरुद्धमेतद्। अथवा नास्ति कर्मपरिणत्या विरुद्धमिति। चिन्तयित्वा अभ्युक्षिता कमण्डलुपानीयेन। समागता चेतना, उच्छ्वसितं मनाक्, उन्मिलिते लोचने, दृष्टो मुनिकुमारकः। सन्त्रस्ता चैषा। भणिता च तेन—वत्से! अलं सन्त्रासेन, मुनिकुमारकोऽहम्। ततः प्रणतोऽनया। 'अविधवा भव' इति भणिताऽनेन। 'भगवन्! कुत्र (कुतः) त्वमत्र' इति पृष्टः शान्तिमत्या। भणितं च तेन—आसन्नं मे तपोवनम्। प्रवृत्तः सन्ध्योपासननिमित्तं गिरिनदीम्, अन्तराले च दृष्टा त्वमिति वलितो वर्तिनीतः। ततः कथय आर्ये! का त्वम्, कथं वा एकाकिनी, किं वा तेऽस्य व्यवसायस्य कारणमिति। ततश्चिन्तितं शान्तिमत्या—हा धिक्, मुनिकुमारकः खल्वेषः, न युक्तं चात्मनाऽऽत्मानं कथयितुम्, एष चैवं व्याहरति, ततः किमत्रोचितम्। अथवा माननीयाः तपस्विनः, वरमात्मनो लघुत्वमिति। कथयामि भगवतः। नात्रात्म-

है। यह दीन है, अन्यथा कहाँ तो जंगल और कहाँ अकेली स्त्री। अतः देखता हूँ, कौन है। विद्याधरी सोयी हुई हो! मुनिकुमार ने देखा। उसके पाश दिखाई दिये। मुनिकुमार खिन्न हुआ। उसने सोचा—'ओह! यह आकृति और यह पाश'—यह विरुद्ध है। अथवा कर्म की परिणति के विरुद्ध नहीं है—ऐसा सोचकर कमण्डलु के जल से सींचा। चेतना प्राप्त हुई, आँखें खोलकर थोड़ी साँस ली, मुनिकुमार दिखाई दिया। यह डर गयी। उस मुनिकुमार ने कहा—'वत्से! मत डरो, मैं मुनिकुमार हूँ।' तब इसने प्रणाम किया। 'अविधवा (सौभाग्यवती) होओ'—ऐसा मुनिकुमार ने कहा। 'भगवन्! आप यहाँ कहाँ से?'—इस प्रकार शान्तिमती ने पूछा। उसने कहा—समीप में मेरा तपोवन है। सन्ध्योपासना के लिए पर्वतीय नदी की ओर जा रहा था, बीच में तुम दिखाई दी, अतः रास्ते से लौट आया। अतः आर्ये! कहो, तुम कौन हो अथवा अकेली कैसे हो, तुम्हारे इस प्रकार के निश्चय का क्या कारण है?' तब शान्तिमती ने सोचा—हाय धिक्कार! यह मुनिकुमार है, अपने आपके विषय में कहना उचित नहीं है और यह ऐसा पूछ रहा है, अतः यहाँ क्या उचित है। अथवा तपस्वी लोग माननीय होते हैं, अपनी लघुता ठीक है। भगवान् से कहती हूँ। इसमें अपनी भी लघुता नहीं है। यह आपत्ति है और भगवान् देवता के समान

१. एसा—क। २. पुच्छियं—क। ३. भगवओ साहिएण—ग।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लाघवं। आवया खु एसा, देवयाकप्पो य भयवं ति। चिंतिऊण जंपियमिमीए— भयवं, रायउरसामिणो संखरायस्स धूया अहं, सत्थभंगविब्भमेण एगागिणी, अज्जउत्तो न दीसइ त्ति इमस्स ववसायस्स कारणं ति भणिऊण रोविउं पयत्ता। भणिया य णेण—अज्जे, मा रुय। ईइसो एस संसारो, विचित्तयाए कम्मपरिणामस्स अणुगरेइ नडपेडयं। खणेण विओगो, तेणेव संगमो; खणेण सोगो, तेणेव पमोओ; खणेण आवया, तेणेव संपय त्ति। एवंविहे य एयम्मि बुद्धिमंतेण सत्तेण आवडिए वि विसमदसाविभाए न सेवियव्वो विसाओ, न कायव्वमणुचियं, न मोत्तव्वं सत्तं, न उज्झियव्वो उच्छाहो। एवं च वट्टमाणो सत्तो[1] पुरिसयारजेयं कम्मं खविऊणं लंघेइ आवयं। ता अज्जे मुंच विसायं। पुणो वि य करुणापवन्नचित्तेण 'कालोचियमिणं' ति विसेसओ निरूविऊण भणियं मुणिकुमारएणं। अन्नं च। लक्खणओ अवगच्छामि, न विवन्नो ते भत्ता, जओ सुहफलोदओ आभोगो, कणगावदाया देहच्छवी, परहुयालवियमणहरो सद्दो, सुपइट्ठिया चलणा, वियडं नियंबफलयं, दाहिणावत्तसंगया नाही, अमिलाणकंतिसोहा करा, संपुण्णकलामियंको व्व परिमंडलं वयणकमलं, महुगुलियासरिसाइं लोयणाइं, सुपइ-

नोऽपि लाघवम्। आपद् खल्वेषा, देवताकल्पश्च भगवानिति। चिन्तयित्वा जल्पितमनया—भगवन्! राजपुरस्वामिनः शङ्खराजस्य दुहिताऽहम्, सार्थभङ्गविभ्रमेणैकाकिनी, आर्यपुत्रो न दृश्यते इत्यस्य व्यवसायस्य कारणमिति भणित्वा रोदितुं प्रवृत्ता। भणिता च तेन—आर्ये! मा रुदिहि। ईदृश एष संसारः, विचित्रतया कर्मपरिणामस्यानुकरोति नटपेटकम्। क्षणेन वियोगः, तेनैव सङ्गमः, क्षणेन शोकः, तेनैव प्रमोदः, क्षणेनापद्, तेनैव सम्पदिति। एवंविधे चैतस्मिन् बुद्धिमता सत्त्वेन आपतितेऽपि विषमदशाविभागे न सेवितव्यो विषादः, न कर्तव्यमनुचितम्, न मोक्तव्यं सत्त्वम्, न उज्झितव्यं उत्साहः। एवं च वर्तमानः सत्त्वः पुरुषकारजेयं कर्म क्षपयित्वा लङ्घयत्यापदम्। तत आर्ये! मुञ्च विषादम्। पुनरपि च करुणाप्रपन्नचित्तेन 'कालोचितमिदम्' इति विशेषतो निरूप्य भणितं मुनिकुमारकेन। अन्यच्च, लक्षणतोऽवगच्छामि, न विपन्नस्ते भर्ता, यतः शुभफलोदय आभोगः, कनकावदाता देहच्छविः, परभृतालपितमनोहरः शब्दः, सुप्रतिष्ठितौ चरणौ, विकटं नितम्बफलकम्, दक्षिणावर्तसङ्गता नाभिः, अम्लानकान्तिशोभौ करौ, सम्पूर्णकलामृगाङ्क इव परिमण्डलं वदनकमलम्, मधु-

हैं—ऐसा सोचकर वह बोली—'भगवन्! मैं राजपुर के स्वामी की पुत्री हूँ, व्यापारियों की टोली के छिन्न-भिन्न हो जाने के विभ्रम से अकेली हो गयी, आर्यपुत्र नहीं दिखाई दे रहे हैं, यह इस निश्चय का कारण है'—ऐसा कहकर रोने लगी। मुनिकुमार ने कहा—'मत रोओ। यह संसार ही ऐसा है। यह संसार कर्म के परिणामों की विचित्रता से नट की पेटी का अनुसरण करता है। क्षण में वियोग होता है, क्षण में संयोग होता है, क्षण में शोक होता है, क्षण में हर्ष होता है, क्षण में आपत्ति आती है, क्षण में सम्पत्ति प्राप्त होती है। इसके इस प्रकार होने पर बुद्धिमान् प्राणी को विषमदशा का विभाग आने पर विषाद का सेवन नहीं करना चाहिए (विषाद नहीं करना चाहिए), अनुचित कार्य नहीं करना चाहिए, शक्ति नहीं छोड़नी चाहिए, उत्साह का त्याग नहीं करना चाहिए। इस प्रकार की अवस्था वाला प्राणी पुरुषार्थ के द्वारा जीतने योग्य कर्म का नाश कर आपत्ति को लाँघ जाता है। अतः आर्ये! विषाद छोड़ो। पुनः करुणायुक्त चित्त होकर 'यह समयोचित है'—इस प्रकार विशेष विचार कर मुनिकुमार ने कहा—'दूसरी बात यह है कि लक्षण से जानता हूँ कि तुम्हारे पति की मृत्यु नहीं हुई है; क्योंकि शुभ फल के उदय वाला विस्तार है, स्वर्ण के समान उज्ज्वल देहकान्ति है, कोयल की आवाज—जैसे शब्द हैं, सुप्रतिष्ठित चरण हैं, विकट नितम्ब भाग है, दक्षिणावर्त से युक्त नाभि है, जिनकी कान्ति और शोभा म्लान नहीं हुई

1. संतो—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्ठियनिद्धतिलयभूसियं निडालं, सिहिणकिडकुडिला सिरोरुहा। ता एवंविहेहिं लक्खणेहिं न नारी वेहव्वदुक्खमणुहवइ, पुत्तभाइणी य होइ त्ति। ता एहि वच्छे, कुलवइं वंदसु त्ति। तओ 'जं भयवं आणवेइ' त्ति भणिऊण गया तवोवणं। वंदिओ कुलवई, अहिणंदिया य णेण। साहिओ वइयरो मुणिकुमारएणं। समासासिया कुलवइणा, भणिया य णेणं—वच्छे, न संतप्पियव्वं। नाणओ अवगच्छामि, थेवदियहेहिं चेव एत्थं तवोवणे भविस्सइ ते समागमो पिययमेणं ति। तओ 'अन्नहा रिसिवयणं' ति पडिस्सुयमिमीए। समप्पिया तावसीणं कुलवइणा[1]।

इओ य अन्नेसमाणाणं सबरपुरिसपल्लिणाहकुमाराणं अइक्कंतो वासरो। 'न दिट्ठा देवि' त्ति विसण्णा एए, मिलिया एगओ, समागया सत्थं। भणियं पल्लिणाहेणं—देव, न कायव्वो विसाओ, अवस्समेव जुज्जइ देवो देवीए। कस्स वा विसमदसाविभागो न होइ। ता परिसंथवेउ देवो परियणं, 'कालसज्झं चिमं पओयणं' ति करेउ सयलपरियणसाहारणं पाणवित्ति। तओ 'जुत्तमेयं' ति चिंतिऊण परियणाणुरोहेणं कया पाणवित्ती। अत्थुयं सयणिज्जं, णुवण्णो एसो तओ नाइदूरम्मि पल्लीवई य।

गुलिकासदृशे लोचने, सुप्रतिष्ठितस्निग्धतिलकभूषितं ललाटम्, श्लक्ष्णकृष्णकुटिलाः शिरोरुहाः। तत एवंविधैर्लक्षणैर्न नारी वैधव्यदुःखमनुभवति, पुत्रभागिनी च भवतीति। तत एहि वत्से! कुलपतिं वन्दस्वेति। ततो 'यद् भगवान् आज्ञापयति' इति भणित्वा गता तपोवनम्। वन्दितः कुलपतिः, अभिनन्दिता च तेन। कथितो व्यतिकरो मुनिकुमारकेन। समाश्वासिता कुलपतिना, भणिता च तेन—वत्से! न सन्तप्तव्यम्। ज्ञानतोऽवगच्छामि, स्तोकदिवसैरेवात्र तपोवने भविष्यति ते समागमः प्रियतमेनेति। ततो 'नान्यथा ऋषिवचनम्' इति प्रतिश्रुतमनया। समर्पिता तापसीनां कुलपतिना।

इतश्चान्वेषमाणानां शबरपुरुषपल्लीनाथकुमाराणामतिक्रान्तो वासरः। 'न दृष्टा देवी' इति विषण्णा एते, मिलिता एकतः, समागताः सार्थम्। भणितं पल्लीनाथेन—देव! न कर्तव्यो विषादः, अवश्यमेव युज्यते देवो देव्या। कस्य वा विषमदशाविभागो न भवति। ततः परिसंस्थापयतु देवः परिजनम्, 'कालसाध्यं चेदं प्रयोजनम्' इति करोतु सकलपरिजनसाधारणां प्राणवृत्तिम्। ततो 'युक्तमेतद्' इति चिन्तयित्वा परिजनानुरोधेन कृता प्राणवृत्तिः। आस्तृतं शयनीयम्, निपन्न एषः,

ऐसे दोनों हाथ हैं, सम्पूर्णकलाओं से युक्त चन्द्रमण्डल के समान मुखकमल है, मधु की गोली के समान नेत्र हैं, सुप्रतिष्ठित सुन्दर तिलक से भूषित मस्तक है, चिकने, काले और घुंघराले बाल हैं। इस प्रकार लक्षणों वाली स्त्री वैधव्य के दुःख का अनुभव नहीं करती है और पुत्रवती होती है, अतः आओ वत्से! कुलपति की वन्दना करो।' अनन्तर 'भगवान् की जैसी आज्ञा'—ऐसा कहकर (वह) तपोवन में गयी। कुलपति की वन्दना की। कुलपति ने अभिनन्दन किया। मुनिकुमार ने घटना बतायी। कुलपति ने धैर्य बँधाया और कहा—'वत्से! दुःखी मत होओ। ज्ञान से जानता हूँ कि थोड़े ही दिनों में इसी तपोवन में तेरा प्रियतम से समागम होगा।' तब—'ऋषि के वचन अन्यथा नहीं होते'—ऐसा सोचकर इसने स्वीकार किया। कुलपति ने इसे तापसियों को सौंप दिया।

इधर शबरपुरुष, भिल्लराज और कुमार को ढूंढ़ते हुए दिन बीत गया। देवी दिखाई नहीं दी, अतः ये दुःखी हो गये, एक स्थान पर मिले, व्यापारियों की टोली के पास आये। भिल्लराज ने कहा—'महाराज! विषाद न करें, महाराज का देवी से अवश्य मिलन होगा। अथवा विषम अवस्था का विभाग किसका नहीं होता है? अतः महाराज परिजनों को निर्देश दें। यह प्रयोजन समय पर सिद्ध होगा, अतः समस्त लोगों के लिए साधारण आहार ग्रहण करें।' अनन्तर, ठीक है—ऐसा सोचकर परिजनों के अनुरोध से आहार किया। शय्या बिछायी गयी, यह

---

१. पडिजागरणीया एसा। जं भयवं अणवेइ'त्ति भणिऊण णीया णिययमासनं।—इत्यधिकः पाठः क—पुस्तकप्रान्ते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तओ बहुवोलियाए रयणीए थाणयनिविट्ठा तुरियतुरियमागया सबरपुरिसा। भणिओ णेहिं पल्लीवई— सामि, परो मरइ, परो मरइ[1] त्ति। तओ उट्ठिओ एसो, चडावियं धणुवरं[2], निबद्धा[3] नाहला। पुच्छिया य एए–हरे किमेयंति। तेहिं भणियं– सामि, न निस्संसयं वियाणामो। एत्तियं पुण तक्केमो, 'महंतो सत्थो पविट्ठो' त्ति अवगच्छिय अवस्समेत्थ नीसरइ द्रोणीओ पल्लीवइ त्ति संपहारिऊण वीसउरसामिणा धाडी पेसिय त्ति, जओ समागयं साहणं। पल्लिणाहेण भणियं—अहो न साहियं सामिकज्जं ति। अविसाई वि विहुरेसु विसण्णं मे चित्तं। अहवा न एस कालो विसायस्स। एह तत्थेव गच्छामो; मा इह सामिसत्थपीडा भविस्सइ। साहिओ एस वइयरो साणुदेवस्स। भणिओ य एसो–कुमारे अप्पमत्तेण होयव्वं। कज्जगरुययाए पडिस्सुयमणेण। तओ दूरओ चेव पणमिऊण कुमारं पयट्टो पल्लीवई। सुओ एस वइयरो कुमारेण[4]। चिंतियं च णेणं—अहो महाणुभावया पल्लिणाहस्स। पडिवन्नभिच्चभावो य एसो। ता जइवि अजुत्तयारी तहावि न जुत्तमेयम्मि पयट्टे उयासीणयं भाविउंति। उट्ठिओ कुमारो, गहियं खग्गरयणं, करम्मि घेत्तूण भणिओ साणुदेवो। सत्थवाहपुत्त, न मे पणयभंगो कायव्वो

ततो नातिदूरे पल्लीपतिश्च। ततो बहुव्यतिक्रान्तायां रजन्यां स्थानकनिविष्टास्त्वरितत्वरितमागताः शबरपुरुषाः। भणितस्तैः पल्लीपतिः—स्वामिन्! परो म्रियते परो म्रियते इति। तत उत्थित एषः, आरोपितं धनुर्वरम्, निबद्धा नाहला (इषुधिः?)। पृष्टाश्चैते—अरे किमेतदिति। तैर्भणितम्—स्वामिन्! न निःसंशयं विजानीमः। एतावत् पुनः तर्कयामः 'महान् सार्थः प्रविष्टः' इत्यवगत्यावश्यमत्र निःसरति द्रोणीतः पल्लीपतिरिति सम्प्रधार्य विश्वपुरस्वामिना धाटिः प्रेषितेति, यतः समागतं साधनम्। पल्लीनाथेन भणितम्—अहो न साधितं स्वामिकार्यमिति। अविषाद्यपि विधुरेषु विषण्णं मे चित्तम्। अथवा नैष कालो विषादस्य। एत तत्रैव गच्छामः, मेह स्वामिसार्थपीडा भविष्यति। कथित एष व्यतिकरः सानुदेवस्य। भणितश्चैषः—कुमारेऽप्रमत्तेन भवितव्यम्। कार्यगुरुकतया प्रतिश्रुतमनेन। ततो दूरत एव प्रणम्य कुमारं प्रवृत्तः पल्लीपतिः। श्रुत एष व्यतिकरः कुमारेण। चिन्तितं च तेन—अहो महानुभावता पल्लीनाथस्य। प्रतिपन्नभृत्यभावश्चैषः। ततो यद्यपि अयुक्तकारी, तथापि न युक्तमेतस्मिन् प्रवृत्ते उदासीनतां भावयितुमिति। उत्थितः कुमारः, गृहीतं खड्ग-

पड़ गया। उसी के समीप भिल्लराज भी पड़ गया। अनन्तर जब रात्रि बहुत अधिक बीत गयी तो नगर (स्थानक) में नियुक्त शबरपुरुष जल्दी-जल्दी आये। उन्होंने भिल्लराज से कहा—'स्वामी! शत्रु मर रहा है, शत्रु मर रहा है।' तब यह उठ खड़ा हुआ, धनुष चढ़ाया, शरसन्धान किया और इन लोगों से पूछा—'अरे यह क्या? उन्होंने कहा—'स्वामी, ठीक से नहीं जान पा रहे हैं। यह अनुमान करते हैं कि बहुत बड़ी टोली प्रविष्ट हुई है—यह जानकर अवश्य यहाँ द्रोणी (दो पर्वतों के बीच के नगर) से भिल्लराज निकल रहा है। अतः निश्चय ही विश्वपुर के स्वामी ने सेना भेजी है; क्योंकि सेना आ गयी है। भिल्लराज ने कहा—ओह! स्वामी के कार्य को नहीं साधा; विधुर के विषादी न होने पर भी मेरा चित्त खिन्न है। अथवा यह समय विषाद (करने) का नहीं है। यहाँ से वहीं जायेंगे, इस स्वामी की टोली को पीड़ा न हो। यह घटना सानुदेव से कही। और इससे कहा—'कुमार के विषय में अप्रमादी होना अर्थात् प्रमाद मत करना, तत्पर रहना।' कार्य के भारी होने के कारण इसने स्वीकार किया। अनन्तर दूर से ही कुमार को प्रणाम कर भिल्लराज चल दिया। इस घटना को कुमार ने सुना। उसने विचार किया—ओह भिल्लराज की महानुभावता, यह भृत्यपने को प्राप्त हुआ है। यद्यपि यह अयुक्तकारी है तो भी इसके विषय में उदासीन रहना ठीक नहीं है। कुमार उठा, खड्गरत्न को ग्रहण किया। हाथ में लेकर सानुदेव से

१. सरइ—ख। २. धणुहं—क। ३. निपुच्छा—क, निविट्ठा—ख। ४. दरविज्झेण—इत्यधिकः पाठः क—पुस्तके।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्ति। पत्थेमि सत्थवाहपुत्तं। साणुदेवेण भणियं—आणवेउ देवो। कुमारेण भणियं—तए इहेव चिट्ठियव्वं कालं वा नाऊण पयाणयं दायव्वं। अहं पुण पेच्छामि ताव, किमेयस्स पल्लिवइणो संजायं ति। किकायव्वमूढे य साणुदेवे अइन्नपडिवयणे य 'अलमन्नहावियप्पेणं' ति भणिऊण धाविओ कुमारसेणो। जाव आवडियमाओहणं सबरधाडीणं। 'हण हण' त्ति उद्धाइओ कलयलो। छाइयं नहं सायएहिं। एत्थंतरम्मि मिलिओ कुमारो, दिट्ठो पल्लिवइणा, भणियो य णेण—देव, किं बहुणा जंपिएण; कालोचियमियं पेक्खउ देवो भिच्चावयवपरक्कमं ति। तओ कुमारेण कड्ढियं मंडलग्गं। केसरिकिसोरओ विय अणवेक्खिऊण रिउबलं पविट्ठो सबरमज्झे। अहो देवस्स परक्कमो त्ति हरिसिओ पल्लीवई। आवडियं पहाणजुज्झं, पाडिया कुलउत्तया, भग्गा धाडी, वाणरेहिं विय बुक्कारियं सबरेहिं। तओ अमरिसेण नियत्ता ठकुरा। थेवा सबर त्ति वेढिया अस्ससाहणेणं।[1] संपलग्गं जुज्झं। महया विमद्देण निज्जिया सबरा। पाडिया कुमारपल्लीवई, गहिया य णेहिं। कुमारचरिएण विम्हिया ठकुरा। को उण एसो

रत्नम्। करे गृहीत्वा भणितः सानुदेवः। सार्थवाहपुत्र ! न मे प्रणयभङ्गः कर्तव्य इति। प्रार्थये सार्थवाहपुत्रम्। सानुदेवेन भणितम्—आज्ञापयतु देवः। कुमारेण भणितम्—त्वया इहैव स्थातव्यम् कालं वा ज्ञात्वा प्रयाणकं दातव्यम्। अहं पुनः प्रेक्षे तावत् किमेतस्य पल्लीपतेः सञ्जातमिति। किंकर्तव्यमूढे च सानुदेवेऽदत्तप्रतिवचने च 'अलमन्यथा विकल्पेन' इति भणित्वा धावितः कुमारसेनः। यावदापतितमायोधनं शबरघाटीनाम्। 'जहि जहि' इत्युद्धावितः कलकलः। छादितं नभः सायकैः। अत्रान्तरे मिलितः कुमारः, दृष्टः पल्लीपतिना, भणितश्च तेन। देव ! किं बहुना जल्पितेन, कालोचितमिदं प्रेक्षतां देवो भृत्यावयवपराक्रममिति। ततः कुमारेण कृष्टं मण्डलाग्रम्। केसरिकिशोरक इवानपेक्ष्य रिपुबलं प्रविष्टः शबरमध्ये। अहो देवस्य पराक्रम इति हर्षितः पल्लीपतिः। आपतितं प्रधानयुद्धम्, पातितः—कुलपुत्रकाः, भग्ना धाटी। वानरैरिव बूत्कारितं (शब्दितम्) शबरैः। ततोऽमर्षेण निवृत्ताः ठक्कुराः। स्तोकाः शबरा इति वेष्टिता अश्वसाधनेन। सम्प्रलग्नं युद्धम्। महता विमर्देन (विनाशेन) निर्जिताः शबराः। पातितौ कुमारपल्लीपती, गृहीतौ च तैः। कुमारचरितेन विस्मिताः ठक्कुराः। कः पुनरेष इति चिन्तितमेभिः।

कहा—'सार्थवाहपुत्र ! मेरी प्रार्थना भंग मत करना, यह मैं सार्थवाहपुत्र से प्रार्थना करता हूँ।' सानुदेव ने कहा—'महाराज आज्ञा दें।' कुमार ने कहा—'आप यहीं रहें अथवा उचित समय पर प्रयाण कर दें। मैं देखता हूँ कि इस भिल्लराज का क्या हुआ है।' सानुदेव किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। उसके उत्तर न देने पर, अन्यथा सोचना व्यर्थ है—ऐसा कहकर कुमार सेन दौड़ा। तब तक शबरसेनाओं का युद्ध छिड़ गया। 'मारो मारो' ऐसा कोलाहल उठा। आकाश बाणों से आच्छादित हो गया। इसी बीच कुमार मिल गया, पल्लीपति (भिल्लराज) ने देखा और उसने कहा—'देव ! अधिक कहने से क्या, इस भृत्य का कालोचित पराक्रम देखिए।' अनन्तर कुमार ने तलवार खींची। सिंह के बच्चे के समान शत्रुबल की अपेक्षा न करता हुआ शबरों के बीच में प्रविष्ट हुआ। 'ओह महाराज का पराक्रम'—इस प्रकार पल्लीपति हर्षित हुआ। प्रधानयुद्ध आ गया, कुलपुत्र गिरा दिये गये, सेना नष्ट हो गयी। शबरों ने बन्दरों के समान शब्द किया। अनन्तर क्रोध से ठक्कुर (ठाकुर) लौट आये। 'शबर थोड़े हैं'—ऐसा सोचकर अश्वसाधन से वेष्टित हो गये। युद्ध शुरू हो गया। बड़े विनाश के साथ शबर जीत लिये गये। कुमार और पल्लीपति गिरा दिये गए और ठक्कुरों ने दोनों को पकड़ लिया। कुमार के आचरण से ठक्कुर

1. 'दरिया' इत्यधिकः क—पुस्तके।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्ति चिंतियमणेहिं। नीया वीसउरं, कुमारचरियसणाहं च निवेइया सरवकेउणो, परक्कमवल्लहत्तणेण दिट्ठा य णेणं। कुमाररूवाइसएण विम्हिओ राया। चिंतियं च णेण—अहो को उण एसो महाणुभावो। अहवा भवियव्वमणेण नरवइसुएणं। अन्नहा कह ईइसा रूवपरक्कम त्ति। ता गवेसिस्सामि ताव एयं, इम पुण तक्करं वावाएमि त्ति। आइट्ठं च णेणं—हरे वावाएह एयं दुरायारं तक्करं, इमं पुण महाणुभावं पडियग्गह त्ति। कुमारेण भणियं—अहो मे महाणुभावया, जो एयम्मि वावाइज्जमाणे पाणे रक्खेमि। ता किं इमिणा; ममं चेव वावायसु त्ति। तओ 'अहो से धीरगरुओ आलावो; अहवा उचियमेव एयं इमाए आगिईए'त्ति चिंतिऊण जंपियं नरिंदेणं—भो महाणुभाव, कं पुण भवंतमवगच्छामि। तओ कुमारेण निरूवियाइं पासाइं। एत्थंतरम्मि मुणियकुमारवुत्तंतो कइवयपुरिसेहिं[1] घेत्तूण दरिसणिज्जं कुमारवुत्तंतसाहणत्थमेव राइणो समागओ साणुदेवो। पडिहारिओ पडिहारेणं। अणुमओ राइणा। पविट्ठो य एसो। दिट्ठो नरवई। समप्पियं दरिसणिज्जं बहुमन्निओ राइणा। दवावियं आसणं। भणिओ य णेणं—'उवविससु'त्ति। सो य तहा अणेयपहारपीडियं पेच्छिऊण कुमारं

नीतौ विश्वपुरम्, कुमारचरितसनाथं च निवेदितौ शबरकेतोः, पराक्रमवल्लभत्वेन दृष्टौ च तेन। कुमाररूपातिशयेन विस्मितो राजा। चिन्तितं च तेन—अहो कः पुनरेष महानुभावः। अथवा भवितव्यमनेन नरपतिसुतेन। अन्यथा कथमीदृशौ रूपपराक्रमौ इति। ततो गवेषयामि तावदेतम्, इमं पुनः तस्करं व्यापादयामीति। आदिष्टं च तेन—अरे व्यापादयतैतं दुराचार तस्करम्, इमं पुनर्महानुभावं प्रतिजागृतेति। कुमारेण भणितम्—अहो मे महानुभावता, य एतस्मिन् व्यापाद्यमाने प्राणान् रक्षामि। ततः किमनेन, मां चैव व्यापादयेति। ततो 'अहो तस्य धीरगुरुक आलापः, अथवोचितमेवैतदस्या आकृत्याः' इति चिन्तयित्वा जल्पितं नरेन्द्रेण। भो महानुभाव! कं पुनर्भवन्तमवगच्छामि। ततः कुमारेण निरूपितानि पार्श्वाणि। अत्रान्तरे ज्ञातकुमारवृत्तान्तः कतिपयपुरुषैर्गृहीत्वा दर्शनीयं कुमारवृत्तान्तकथनार्थमेव राज्ञः समागतः सानुदेवः। प्रतिहारितः (अवरुद्धः) प्रतीहारेण। अनुमतो राज्ञा। प्रविष्टश्चैषः। दृष्टो नरपतिः। समर्पितं दर्शनीयम्। बहुमानितो राज्ञा। दापितमासनम्। भणितश्च तेन 'उपविश' इति। स च तथाऽनेकप्रहारपीडितं प्रेक्ष्य कुमारं

विस्मित हुए। 'यह कौन है'—ऐसा इन लोगों ने विचार किया। दोनों को विश्वपुर ले गये, कुमार के चरित के साथ दोनों को शबरकेतु से निवेदन किया। पराक्रम के प्रति प्रेम रखने के कारण उसने दोनों को देखा। कुमार के रूप की अतिशयता से राजा विस्मित हुआ। उसने सोचा—ओह! यह कौन महानुभाव है! अथवा इसे राजपुत्र होना चाहिए, नहीं तो इस प्रकार का रूप और पराक्रम कैसे होता? अतः इसके विषय में खोज करता हूँ और इस चोर को मार डालता हूँ। उसने आदेश दिया—'अरे! इस दुराचारी चोर को मार डालो और इन महानुभाव (कुमार) के प्रति सावधान रहो।' कुमार ने कहा—'ओह, मेरी महानुभावता! जो कि इसके मारे जाते हुए मैं प्राणों की रक्षा कर रहा हूँ? अतः इससे क्या, मुझे ही मार दो।' तब ओह! इसका धीरता के गौरव से युक्त कथन अथवा इसकी आकृति के यह योग्य है—ऐसा सोचकर राजा ने कहा—'हे महानुभाव! मैं आपको कौन जानूँ?' अनन्तर कुमार ने आस-पास देखा। इसी बीच कुमार का वृत्तान्त जानकर कुछ पुरुषों के द्वारा लाया हुआ, दर्शनीय कुमार के वृत्तान्त को राजा से कहने के लिए ही मानो सानुदेव आ गया। द्वारपाल ने रोक दिया। राजा ने अनुमति दे दी। यह प्रविष्ट हुआ। राजा को देखा। देखने योग्य वस्तु भेंट की। राजा को सम्मान दिया, आसन

---

1. 'परियरिओ' इत्यधिकः क—पुस्तके।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गहिओ महासोएणं। निवडिओ धरणिवट्ठे। तओ राइणा 'हा किमेयं' ति सिंचाविओ उदएणं, वीयाविओ चेलकण्णेहिं। समागया से चेयणा। भणिओ य राइणा—भद्द, किमेयं ति। साणुदेवेण भणियं—देव, सच्चमेयं रिसिवयणं 'असारो संसारो, आवयाभायणं च एत्थ पाणिणो', जेण चंपाहिवसुयस्स कुमारसेणस्य वि ईइसी अवत्थ त्ति। तओ 'न अन्नहा मे वियप्पियं'ति चिंतिऊण जपियं नरिंदेणं—भद्द, कहं पुण एस एद्दहमेत्तपरियणो इमं अरण्णमुवगओ त्ति। साणुदेवेण भणियं—देव, न याणामि परमत्थं; मए वि एस रायउराओ तामलित्ति पत्थिएणं चंपावासए सन्निवेसे कलत्तमेत्तपरिवारो वणनिउंजे उवलद्धो त्ति। रायउरदंसणाणुसरणेण पच्चभिन्नाओ य एसो। जाया य मे चिंता। किं पुण एस रइदुइओ विय मयरकेऊ रायधूयामेत्तपरियणो एवं वट्टइ त्ति। एवमाई साहिओ पत्थणापज्जंतो सयलवइयरो। तओ देव, आयण्णियं मए सबरपुरिसेहिंतो, जहा देवाएसागयाए धाडीए नीया कुमारपल्लीवइणो। एयं च सोऊण इमस्स चेव वइयरस्स विन्नवणनिमित्तं आगओ देवसमीवं। संपयं देवो पमाणं ति। राइणा भणियं—भद्द, साहु कयं ति। जुत्तमेव एयं तएजारिसाणं

गृहीतो महाशोकेन, निपतितो धरणीपृष्ठे। ततो राज्ञा 'हा किमेतद्' इति सिञ्चित उदकेन, वीजितश्च चेलकर्णैः। समागता तस्य चेतना। भणितश्च राज्ञा—भद्र! किमेतदिति। सानुदेवेन भणितम्—देव! सत्यमेतद् ऋषिवचनम्, 'असारः संसारः, आपद्भाजनं चात्र प्राणिनः', येन चम्पाधिपसुतस्य कुमारसेनस्यापीदृश्यवस्थेति। ततो 'नान्यथा मे विकल्पितम्' इति चिन्तयित्वा जल्पितं नरेन्द्रेण—भद्र! कथं पुनरेष एतावन्मात्रपरिजन इदमरण्यमुपगत इति। सानुदेवेन भणितम—देव! न जानामि परमार्थम्, मयाऽपि एष राजपुरात् ताम्रलिप्तीं प्रस्थितेन चम्पावासके सन्निवेशे कलत्रमात्रपरिवारो वननिकुञ्जे उपलब्ध इति। राजपुरदर्शनानुस्मरणेन प्रत्यभिज्ञातश्चैषः। जाता च मे चिन्ता। किं पुनरेष रतिद्वितीय इव मकरकेतू राजदुहितृमात्रपरिजन एवं वर्तत इति। एवमादिः कथितः प्रार्थनापर्यन्तः सकलव्यतिकरः। ततो देव! आकर्णितं मया शबरपुरुषेभ्यः, यथा देवादेशादागतया धाट्या नीतौ कुमारपल्लीपती। एतच्च श्रुत्वा अस्य चैव व्यतिकरस्य विज्ञापननिमित्तमागतो देवसमीपम्। साम्प्रतं देवः प्रमाणमिति। राज्ञा भणितम्—भद्र, साधु कृतमिति। युक्त-

---

दिया और उससे कहा—'बैठो।' वह अनेक प्रहारों से पीड़ित कुमार को वैसा देखकर बहुत दुःखी हुआ और (दुःखातिशय के कारण वह) धरती पर गिर गया। तदनन्तर राजा ने—'हाय यह क्या' ऐसा कहकर पानी से सींचा और कपड़े के पखों से हवा की। उसे होश आया। राजा ने कहा—'भद्र! यह क्या है?' सानुदेव ने कहा—'महाराज! ऋषि के वचन सत्य हैं कि संसार असार है और यहाँ प्राणी आपत्ति के पात्र होते हैं, जिससे कि चम्पानगरी के राजपुत्र कुमारसेन की यह अवस्था है।' अनन्तर 'मैंने भिन्न प्रकार से नहीं सोचा था'—ऐसा विचारकर राजा ने कहा—'भद्र! यह कैसे इतने मात्र परिजनों से युक्त होकर इस वन में आया?' सानुदेव ने कहा—'महाराज, वास्तविक बात नहीं जानता हूँ। राजपुर से ताम्रलिप्ती को जाते हुए 'चम्पावास' नामक सन्निवेश में स्त्री मात्र परिवार के साथ यह वन के निकुंज में प्राप्त हुआ था। राजपुर में चूँकि इसे देखा था, अतः पहिचान लिया और मुझे चिन्ता हुई—रतियुक्त कामदेव के समान राजपुत्री मात्र परिजन युक्त यह ऐसा क्यों? इस प्रकार आदि से लेकर प्रार्थना पर्यन्त समस्त घटना कही। अनन्तर महाराज! मैंने शबरपुरुषों से सुना कि महाराज के आदेश से सेना आकर कुमार और पल्लीपति को ले गयी। यह सुनकर इसी घटना का निवेदन करने के लिए महाराज के पास आया हूँ। अब महाराज प्रमाण हैं।' राजा ने कहा—'भद्र! ठीक किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाणुभावाणं। समाणत्तो य परियणो। हरे एयाणं जत्तं करेहि त्ति। तओ आएसाणंतरमेव पेसिया [1]कच्छंतरं। निम्मियाओ पवरसेज्जाओ। सद्दाविया वेज्जा। पत्थुयं वणकम्मं। पेसिया य रायधूयागवेसणनिमित्तं नियपुरिसा।

अइक्कंतेसु य कइवयदिणेसु 'विसमभूमिसंठिओ से सत्थो'त्ति अवगच्छिऊण सद्दाविओ साणुदेवो। भणिओ य राइणा—भद्द, विसमभूमिसंठिओ ते सत्थो। दूरं च गंतव्वं, पच्चासन्नो य घणसमओ; थाणे य रायपुत्तो, ता गच्छ तुमं ति। साणुदेवेण भणियं—देव, रायपुत्तं वज्जिय न मे पाया वहंति। [2]कुमारेण भणियं—भद्द, अलं इमिणा अधीरपुरिसोचिएणं चेट्ठिएणं। कज्जपहाणा खु पुरिसा हवंति। ता कीरउ महारायवयणं। अकीरमाणे य एयम्मि अहिया मे अणिव्वुई। साणुदेवेण भणियं—देव, जं तुमं आणवेसि त्ति। [तत्तो पणमिऊणं कुमारं] गओ साणुदेवो। [3]अइक्कंतो घणसमओ। पउणा कुमारपल्लीवई। कयं वद्धावणयं। भणिओ राइणा कुमारो—वच्छ, किं ते पियं करेमि।

मेवैतत् त्वादृशानां महानुभावानाम्। समाज्ञप्तश्च परिजनः—अरे एतयोर्यत्नं कुर्विति। तत आदेशानन्तरमेव प्रेषितौ कक्षान्तरम्। निर्मिते प्रवरशय्ये। शब्दायिता वैद्याः। प्रस्तुतं व्रणकर्म। प्रेषिता राजदुहितृगवेषणनिमित्तं निजपुरुषाः।

अतिक्रान्तेषु च कतिपयदिनेषु 'विषमभूमिसंस्थितस्तस्य सार्थः' इत्यवगत्य शब्दायितः सानुदेवः। भणितश्च राज्ञा—भद्र! विषमभूमिसंस्थितस्ते सार्थः, दूरं च गन्तव्यम्, प्रत्यासन्नश्च घनसमयः, स्थाने च राजपुत्रः, ततो गच्छ त्वमिति। सानुदेवेन भणितम्—देव! राजपुत्रं वर्जित्वा न मे पादौ वहतः। कुमारेण भणितम्—भद्र! अलमनेनाधीरपुरुषोचितेन चेष्टितेन। कार्यप्रधानाः खलु पुरुषा भवन्ति। ततः क्रियतां महाराजवचनम्। अक्रियमाणे चैतस्मिन् अधिका मेऽनिर्वृतिः। सानुदेवेन भणितम्—देव! यत्त्वमाज्ञापयसीति। [ततः प्रणम्य कुमारं] गतः सानुदेवः। अतिक्रान्तो घनसमयः। प्रगुणौ कुमारपल्लीपती। कृतं वर्धापनकम्। भणितो राज्ञा कुमारः—वत्स! किं ते प्रियं

आप जैसे महानुभावों के लिए यह उचित है।' परिजनों को आज्ञा दी—'अरे, इन दोनों की (दवा वगैरह का) प्रयत्न करो।' अनन्तर आदेश के बाद ही दोनों को कमरे में भेज दिया गया। उत्कृष्ट शय्याएँ बिछायी गयीं। वैद्य बुलाये गये। घावों की चिकित्सा की गयी। (राजा ने) राजपुत्री की खोज के लिए अपने आदमी भेजे।

कुछ दिन बीत जाने पर 'उसका सार्थ विषमभूमि में स्थित है'—ऐसा जानकर सानुदेव को बुलाया और राजा ने कहा—'भद्र! तुम्हारा सार्थ (टोली) विषमभूमि में स्थित है और गन्तव्य दूर है तथा मेघ का समय समीप है, राजपुत्र ठीक है, अतः तुम जाओ। सानुदेव ने कहा—'महाराज! राजपुत्र को छोड़कर मेरे दोनों पैर आगे नहीं चलते हैं।' कुमार ने कहा—'भद्र! इस प्रकार की अधीर पुरुषों के योग्य चेष्टा न करो। पुरुष निश्चित रूप से कार्यप्रधान होते हैं अतः महाराज के वचन (पूरे) करो। इसे न मानने पर मुझे अधिक अशान्ति होगी।' सानुदेव ने कहा—'महाराज जो आज्ञा दें। (तब कुमार को प्रणामकर) सानुदेव चला गया। वर्षाकाल बीत गया। कुमार और भिल्लराज ठीक हो गये। बधाई महोत्सव किया। राजा ने कुमार से कहा—'वत्स! तुम्हारा क्या

---

१. कच्छंतरम्मि—ख। २. 'गओ साणुदेवो सेणकुमार समीवं। गाहियं से नरवइसासणं' इत्यधिकः ख—पुस्तके। ३. समागओ घणसमओ। तओ पूरिऊण कायव्वमणोरहे निष्फाइऊण सव्वसस्से—इत्यधिकः ख—पुस्तके।

पेसिया ताव मए तुह जायागवेसणनिमित्तं निययपुरिसा। तत्थ उण केइ आगया अवरे न व त्ति।

एत्थंतरम्मि विइयकुमारवुत्तंतेणेव भणियं सोमसूरेण—देव, सुमरियं मए कुमारस्स पिययमासंजोयकारणं ति। राइणा भणियं—कहेउ अज्जो, कोइसं। सोमसूरेण भणियं—देव, अत्थि कायंबरीए अडवीए पियमेलयं नाम तित्थं। तस्स किल एसा उट्ठाणपारियावणिया। इमीए चेव कायम्बरीए विसाहवद्धणं नाम नयरं अहेसि। अजियबलो राया, वसुंधरो सेट्ठी, पियमित्तो से सुओ। लद्धा य णेण तन्नयरवत्थव्वयस्स ईसरखंदस्स धूया नोलुया[1] नाम कन्नया। अइक्कंतो कोइ कालो। अवत्ते विवाहे पत्ताणि जोव्वणं। एत्थंतरम्मि विचित्तयाए कम्मपरिणामस्स, 'चंचला सिरि' त्ति सच्चयाए लोयपवायस्स[2] वसुंधरसेट्ठिणो विचलिओ विहवो। 'वुड्ढो चेव अहयं; ता अलं मे परमत्थसंपायणरहिएणं जीविएणं' ति चिंतिऊण य अहिमाणेक्करसिययाए परिचत्तमणेण जीवियं। पियमित्तो वि य 'अमाणणीया दरिद्द' त्ति परिभूओ परियणेणं 'करेंतस्स वि य अणुट्ठाणं विहलं संपज्जइ' त्ति गहिओ विसाएणं। तओ 'किमिह अत्तणा विडंबिएणं' ति असाहिऊण

करोमि। प्रेषितास्तावन्मया तव जायागवेषणनिमित्तं निजपुरुषाः। तत्र पुनः केऽप्यागता अपरे नवेति।

अत्रान्तरे विदितकुमारवृत्तान्तेनैव भणितं सोमसूरेण—देव! स्मृतं मया कुमारस्य प्रियतमासंयोगकारणमिति। राज्ञा भणितम्—कथयत्वार्यः, कीदृशम्? सोमसूरेण भणितम्—देव! अस्ति कादम्बर्यामटव्यां प्रियमेलकं नाम तीर्थम्। तस्य किलैषा उत्थानपर्यापनिका। अस्यामेव कादम्बर्यां विशाखवर्धनं नाम नगरमासीद्। अजितबलो राजा, वसुन्धरः श्रेष्ठी, प्रियमित्रस्तस्य सुतः। लब्धा च तेन तन्नगरवास्तव्यस्येश्वरस्कन्दस्य दुहिता नीलुका नाम कन्यका। अतिक्रान्तः कोऽपि कालः। अवृत्ते विवाहे प्राप्तौ यौवनम्। अत्रान्तरे विचित्रतया कर्मपरिणामस्य 'चञ्चला श्रीः' इति सत्यतया लोकप्रवादस्य वसुन्धरश्रेष्ठिनो विचलितो विभवः। 'वृद्ध एवाहम्, ततोऽलं मे परमार्थसम्पादनरहितेन जीवितेन' इति चिन्तयित्वा च अभिमानैकरसिकतया परित्यक्तमनेन जीवितम्। प्रियमित्रोऽपि च 'अमाननीया दरिद्राः' इति परिभूतः परिजनेन 'कुर्वतोऽपि चानुष्ठानं विफलं सम्पद्यते' गृहीतो

प्रिय करूँ? तुम्हारी पत्नी को ढूँढ़ने के लिए मैंने अपने आदमी भेजे थे। उनमें कुछ लोग आ गये हैं, कुछ लोग नहीं।'

इसी बीच मानो वृत्तान्त विदित हो इस प्रकार सोमसूर ने कहा—'महाराज! मुझे कुमार की प्रियतमा के संयोग का कारण स्मरण है।' राजा ने कहा—'कहो आर्य, कैसा (स्मरण)?' सोमसूर ने कहा—'महाराज! कादम्बरी नामक वन में प्रियमेलक नाम का तीर्थ है। उसकी यह भूमिका और उपसंहार है। इसी कादम्बरी में विशाखवर्धन नाम का नगर था। (वहाँ का) राजा अजितबल (और) सेठ वसुन्धर था। उस सेठ का प्रियमित्र (नाम का) पुत्र था। उसने उसी नगर के वासी ईश्वरस्कन्द की पुत्री नीलुका नामक कन्या प्राप्त की। कुछ समय बीता। दोनों ने यौवनावस्था प्राप्त की, विवाह नहीं हुआ। इसी बीच कर्मपरिणाम की विचित्रता से, 'लक्ष्मी चंचल होती है' ऐसे लोकापवाद की सत्यता से वसुन्धर सेठ का वैभव चला गया। मैं वृद्ध ही हूँ, अतः दूसरे के प्रयोजन को पूरा किये बिना मेरा जीना व्यर्थ है—ऐसा सोचकर अभिमान मात्र का ही रसिक होने के कारण इसने प्राण त्याग दिये। प्रियमित्र भी 'दरिद्र लोग माननीय नहीं होते हैं'—इस तरह परिजनों से तिरस्कृत होकर 'कार्य करते हुए भी विफलता मिलती है'—(इस कारण) विषाद से जकड़ लिया गया। अनन्तर अपने उपहास से क्या?

1. नीलया—क। 2. लोयवायस्स—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परियणस्स निग्गओ नयराओ। निव्वेयगरुययाए अचिंतिऊण गंतव्वं अवियारिऊण दिसिवहं पयट्टो उत्तराहिमुहं। गओ थेवं भूमिभागं। दिट्ठो य णेण पियवयंसओ नागदेवो नाम पंडरभिक्खू। वंदिओ सविणयं। कहकहवि पच्चभिन्नाओ भिक्खुणा। भणिओ य णेण—वच्छ पियमित्त, कहं ते ईइसी अवत्था, कहिं वा तं एयाई पत्थिओ सि त्ति। पियमित्तेण भणियं—भयवं, परोप्परविरुद्धकारिणं देव्वं पुच्छसु त्ति, जेण तायपुत्तो करिय निरवराहो चेए ईइसं अवत्थं पाविओ म्हि। नागदेवेण भणियं—वच्छ, अवि कुसलं ते तायस्स। पियमित्तेण भणियं—भयवं, परिवालियसप्पुरिसमग्गस्स सुरलोयमणुगयस्स वि कुसलं; अकुसलं पुण तायवंसविडंबयस्स जंतपुरिसाणुधारिणो पियमित्तस्स, जस्स उभयलोयफलसाहणे असमत्था ईइसी अवत्थ त्ति। नागदेवेण भणियं—वच्छ, अवि अत्थमिओ सो बंधवकुमुयायरससी। अहो दारुणया संसारस्स, अहो निरवेक्खया मच्चुणो। अहवा सुरासुरसाहारणो अप्पडियारो खु एसो। ता किं एत्थ करीयउ। अणुवाओ खु एसो, उवाओ य धम्मो, जओ जेऊण धम्मेण मच्चुं अयरामरगइमुवगया मुणओ त्ति। अन्नं च। वच्छ, कहं ते उभयलोयफलसाहणे

विषादेन। ततः 'किमिहात्मना विडम्बितेन' इत्यकथयित्वा परिजनस्य निर्गतो नगरात्। निर्वेदगुरुकतयाऽचिन्तयित्वा गन्तव्यमविचार्य दिक्पथं प्रवृत्त उत्तराभिमुखम्। गतः स्तोकं भूमिभागम्। दृष्टश्च तेन पितृवयस्यो नागदेवो नाम पाण्डरभिक्षुः। वन्दितः सविनयम्। कथं कथमपि प्रत्यभिज्ञातः भिक्षुणा। भणितश्च तेन—वत्स प्रियमित्र! कथं ते ईदृश्यवस्था, कुत्र वा त्वमेकाकी प्रस्थितोऽसि इति। प्रियमित्रेण भणितम्—भगवन्! परस्परविरुद्धकारिणं दैवं पृच्छेति येन तातपुत्रः कृत्वा निरपराध एव ईदृशीमवस्थां प्रापितोऽस्मि। नागदेवेन भणितम्—वत्स! अपि कुशलं ते तातस्य। प्रियमित्रेण भणितम्—परिपालितसत्पुरुषमार्गस्य सुरलोकमनुगतस्यापि कुशलम्, अकुशलं पुनस्तातवंशविडम्बकस्य यन्त्रपुरुषानुकारिणः प्रियमित्रस्य, यस्योभयलोकफलसाधनेऽसमर्था ईदृश्यवस्थेति। नागदेवेन भणितम—वत्स! अपि अस्तमितः स बान्धवकुमुदाकरशशी। अहो दारुणता संसारस्य, अहो निरपेक्षता मृत्योः। अथवा सुरासुरसाधारणोऽप्रतिकारः खल्वेषः। ततः किमत्र क्रियताम्। अनुपायः खल्वेषः, उपायश्च धर्मः, यतो जित्वा धर्मेण मृत्युमजरामरगतिमुपगता मुनय इति। अन्यच्च, वत्स! कथं ते उभयलोकफलसाधनेऽसमर्थाऽवस्था, यतः पुरुषकारसाध्यं फलम्,

---

अर्थात् अपनी हँसी उड़वाना व्यर्थ है—ऐसा सोचकर परिजनों से बिना कहे ही नगर से निकल गया। वैराग्य की अधिकता से गन्तव्य का बिना विचार किये ही उत्तरापथ की ओर चला गया। थोड़ी दूर गया। उसने पिताजी के मित्र नागदेव नामक, गेरुए रंग के वस्त्र पहिने हुए, भिक्षु को देखा। विनय सहित (उसकी) वन्दना की। जिस किसी प्रकार भिक्षु ने पहिचाना। उसने कहा—'वत्स प्रियमित्र! तुम्हारी ऐसी अवस्था कैसे हुई? अकेले कहाँ जा रहे हो?' प्रियमित्र ने कहा—'भगवन्! परस्पर विरुद्ध (कार्य) करनेवाले भाग्य से पूछो, जिसके द्वारा पिताजी का पुत्र बनाकर बिना अपराध के ही ऐसी अवस्था को पहुँचाया गया हूँ।' नागदेव ने कहा—'वत्स! आपके पिता जी कुशल तो हैं?' प्रियमित्र ने कहा—'सत्पुरुषों के मार्ग का पालन करते हुए सुरलोक का अनुसरण करनेवाले (पिताजी) का भी कुशल है, किन्तु पिताजी के वंश की हँसी उड़वाने वाले मन्त्रपुरुष का अनुसरण करनेवाले 'प्रियमित्र' का कुशल नहीं है जिसकी दोनों लोकों के फल साधने में असमर्थ ऐसी अवस्था है।' नागदेव ने कहा—'वत्स! बान्धवरूपी कमलों से भरे हुए तालाब के लिए चन्द्रमा के समान वह अस्त हो गया? ओह संसार दारुण है, मृत्यु निरपेक्ष है अथवा यह सुर असुर सभी के लिए साधारण है, इसका प्रतीकार नहीं किया जा सकता। इस विषय में क्या किया जा सकता है? मृत्यु अनुपाय है; उपाय धर्म है; क्योंकि धर्म से मृत्यु जीतकर मुनिजन अजर-अमर गति को प्राप्त हुए हैं। दूसरी बात यह है, वत्स! तुम्हारी अवस्था उभयलोक का साधन करने में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असमत्था अवत्था; जओ पुरिसयारसज्झं फलं, विवेगउच्छाहमूलो य पुरिसयारो, उभयसंपन्नो य तुमं। पयइनिग्गुणे य संसारे परलोयफलसाहणं चेव सुंदरं न उण इहलोइयं ति। जोग्गो य तुमं धम्मसाहणे; ता कहमसमत्थो त्ति। पियमित्तेण भणियं—भयवं, जइ जोग्गो, ता आइसउ किं मए कायव्वं ति। नागदेवेण भणियं—वच्छ, इमं चेव भिक्खुत्तणं। पडिस्सुयमणेण। साहिओ से गोरस-परिवज्जणाइओ नियकिरियाकलावो। परिणओ य एयस्स। अइक्कंता कइवि दियहा। दिन्ना य से दिक्खा। करेइ विहियाणुट्ठाणं। इओ य सा नीलुया कुओ वि एयमवगच्छिऊण 'भत्तारदेवया नारि' त्ति धम्मपरा जाया विसयनिप्पिवासा वि तद्दंसणूसुया, विरहदुब्बलंगी दढं खिज्जइ त्ति। अइक्कंतो कोइ कालो। विहरमाणो य समागओ से भत्ता तन्नयरपच्चासन्नं तवोवणं। सुओ नीलुयाए। तओ अणुन्नविय जणणिजणए गया वंदणनिमित्तं। दिट्ठो य णाए झाणजोयमुवगओ पियमित्तो। समुप्पन्नं सज्झसं, वेवियाइं अंगाइं, विमूढा चेयणा, संभमाइसएण मुच्छिया एसा। 'परित्तायह परित्तायह' त्ति अक्कंदियं परियणेणं। 'करुणापहाणा मुणि' त्ति परिच्चइय झाणजोयं उट्ठिओ पियमित्तो।

विवेकोत्साहमूलश्च पुरुषकारः, उभयसम्पन्नश्च त्वम्। प्रकृतिनिर्गुणे च संसारे परलोकफलसाधनमेव सुन्दरम्, न पुनरैहलौकिकमिति। योग्यश्च त्वं धर्मसाधने, ततः कथमसमर्थ इति। प्रियमित्रेण भणितम्—भगवन्! यदि योग्यस्तत आदिशतु किं मया कर्तव्यमिति। नागदेवेन भणितम्—वत्स! इदमेव भिक्षुत्वम्। प्रतिश्रुतमनेन। कथितस्तस्य गोरसपरिवर्जनादिको निजक्रियाकलापः। परिणत-श्चैतस्य। अतिक्रान्ताः कत्यपि दिवसाः। दत्ता च तस्य दीक्षा। करोति विहितानुष्ठानम्। इतश्च सा नीलुका कुतोऽप्येतदवगत्य 'भर्तृदेवता नारी' इति धर्मपरा जाता विषयनिष्पिपासाऽपि तद्दर्शनो-त्सुका विरहदुर्बलाङ्गी दृढं क्षीयते इति। अतिक्रान्तः कोऽपि कालः। विहरंश्च समागतस्तस्य भर्ता तन्नगरप्रत्यासन्नं तपोवनम्। श्रुतो नीलुकया। ततोऽनुज्ञाप्य जननीजनकौ गता वन्दननिमित्तम्। दृष्टश्च तया ध्यानयोगमुपगतः प्रियमित्रः। समुत्पन्नं साध्वसम्, वेपितान्यङ्गानि, विमूढा चेतना, सम्भ्रमातिशयेन मूर्च्छितैषा। 'परित्रायध्वं परित्रायध्वम्' इत्याक्रन्दितं परिजनेन। करुणाप्रधाना मुनयः' इति परित्यज्य ध्यानयोगमुत्थितः प्रियमित्रः। 'किमेतत् किमेतद्' इति पृष्टमनेन। कथितं तस्याः सखीभिः। एषा खलु ईश्वरस्कन्ददुहिता नीलुका नाम कन्यका देवतागुरुवितीर्णं भवन्तमेव

असमर्थ कैसे; क्योंकि फल पुरुषार्थ से सिद्ध होता है, विवेक और उत्साह पुरुषार्थ का मूल है और तुम इन दोनों से सम्पन्न हो। स्वभाव से निर्गुण संसार में परलोक का साधन करना ही सुन्दर है, इह-लौकिक फल का साधन करना सुन्दर नहीं। तुम धर्मसाधन के योग्य हो अतः असमर्थ कैसे?' प्रियमित्र ने कहा—'यदि योग्य हूँ तो आदेश दो मैं क्या करूँ?' नागदेव ने कहा—'वत्स, यही भिक्षुपना (धारण करो)।' उसने अंगीकार किया। उसने गोरस का छोड़ना आदि क्रियाकलाप कहे। वह पालन करने लगा। कुछ दिन बीत गये। उसे दीक्षा दी। विहित अनुष्ठानों को प्रियमित्र करने लगा। इधर वह नीलुका कहीं से इस समाचार को जानकर 'नारी का देवता पति होता है'—ऐसा मानकर धर्मपरायणा हो गयी। विषयों के प्रति प्यासी न होने पर भी उसके दर्शन की उत्सुक और विरह से दुर्बल अंगोंवाली होने से और अधिक दुर्बल होती गयी। कुछ समय बीता। विहार करते हुए उसके पति उसी नगर के समीपवर्ती तपोवन में आये। नीलुका ने सुना। अनन्तर माता-पिता से आज्ञा लेकर वन्दना के लिए गयी। उसने ध्यान लगाये हुए प्रियमित्र को देखा। घबराहट उत्पन्न हुई, अंग काँपने लगे, चेतना मूढ़ हो गयी, घबराहट की अधिकता के कारण वह मूच्छित हो गयी। 'बचाओ-बचाओ'—इस प्रकार परिजन चिल्लाये। मुनिजन करुणाप्रधान होते [illegible] सोचकर ध्यानयोग छोड़कर प्रियमित्र उठ गया। 'यह क्या, यह क्या'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'किमेयं किमेयं' ति पुच्छियमणेणं। साहियं से सहियाहिं। एसा खु ईसरखंदधूया नीलुया नाम कन्नया देवयागुरुविइन्नं भवंतमेव भत्तारं एयावत्थमवलोइऊण मोहमुवगय त्ति। तओ सुमरियमणेणं। 'अहो मे पणइणीए दढाणुराएव' त्ति गहिओ सोएणं। वियलिओ झाणासओ, उल्लसिओ सिणेहो। 'समासस समासस' त्ति अब्भुक्खिया कमंडलुपाणिएणं। लद्धा य णाए चेयणा। उम्मिलियं लोयणजुयं। दिट्ठा य एसो। सज्झसपवेविरंगी उट्ठिया एसा। हरिसविसायगब्भिणं नीससियमिमीए, फुरियं बिंबाहरेणं, पुलइयाइं अंगाइं, ईसिवलियतारयं च पुलोइउमारद्धा, एत्थंतरम्मि दुज्जययाए मयणस्स रम्मयाए विलासाण विवित्तयाए काणणस्स आवज्जियं से चित्तं। चिंतियं च णेण—हंत किमेत्थ जुत्तं ति। एगओ गुरुवयणभंगो, अन्नओ अणुरत्तजणवज्जणं ति। उभयं पि गरुयं। अहवा सुयं मए भयवओ सयासे, जहा अखंडियवयाणं जम्मंतरिओ हिययइच्छियवत्थुलाभो हवइ; हिययइच्छिओ य मे इमीए समागमो। ता अखंडिऊण वयं परिच्चएमि जीवियं, जेण उभयं पि गरुयं अवियलं संपज्जइ त्ति। अहवा इमं चेव साहेमि एयाए। पेच्छामि ताव किमेसा जंपइ त्ति। चिंतिऊण भणिया णेण—सुंदरि, अलं खिज्जिएणं। आवज्जियं मे हिययं तुह सिणेहेण। किं तु अणुचिओ अंगीकयपरिच्चाओ, अजुत्तो

भर्तारमेतदवस्थामवलोक्य मोहमुपगतेति। ततः स्मृतमनेन। 'अहो मे प्रणयिन्या दृढानुरागता' इति गृहीतः शोकेन। विचलितो ध्यानाशयः, उल्लसितः स्नेहः। समाश्वसिहि समाश्वसिहि' इत्यभ्युक्षिता कमण्डलुपानीयेन। लब्धा च तया चेतना। उन्मीलितं लोचनयुगम्। दृष्टश्चैषः। साध्वसप्रवेपमानाङ्गी उत्थितैषा। हर्षविषादगर्भितं निःश्वसितमनया, स्फुरितं बिम्बाधरेण, पुलकितान्यङ्गानि, ईषद्वलिततारकं च प्रलोकितुमारब्धा। अत्रान्तरे दुर्जयतया मदनस्य रम्यतया विलासानां विविक्ततया काननस्यावर्जितं तस्य चित्तम्। चिन्तितं च तेन—हन्त किमत्र युक्तमिति। एकतो गुरुवचनभङ्गोऽन्यतोऽनुरक्तजनवर्जनमिति। उभयमपि गुरुकम्। अथवा श्रुत मया भगवतः सकाशे, यथाऽखण्डितव्रतानां जन्मान्तरितो हृदयेप्सितवस्तुलाभो भवति, हृदयेप्सितश्च मेऽस्याः समागमः। ततो अखण्डित्वा व्रतं परित्यजामि जीवितम्, येनोभयमपि गुरुकमविकलं सम्पद्यते इति। अथवेदमेव कथयाम्येतस्याः। प्रेक्षे तावत् किमेषा जल्पतीति। चिन्तयित्वा भणिता च तेन—सुन्दरि! अलं खेदितेन। आवर्जितं मे हृदयं तव स्नेहेन। किन्तु अनुचितोऽङ्गीकृतपरित्यागः, अयुक्तो गुरुवचनभङ्गः। श्रुतं च

—इस प्रकार इसने पूछा। नीलुका की सखियों ने कहा—'यह ईश्वरस्कन्द की पुत्री नीलुका नाम की कन्या देवता तथा माता-पिता के द्वारा दिये हुए पति आप ही को देखकर मोह को प्राप्त हुई है।' अनन्तर इसे स्मरण हुआ। 'ओह! मेरी प्रणयिनी का दृढ़ अनुराग' इस प्रकार शोक को प्राप्त हुआ। ध्यान का आशय विचलित हो गया, स्नेह उल्लसित हो गया। 'आश्वस्त हो, आश्वस्त हो' - ऐसा कहकर कमण्डलु के जल से सींचा। उसे होश आया! (उसने) दोनों नेत्र खोले। यह दिखाई दिया। घबराहट के कारण काँपते अंगों वाली नीलुका उठ गयी। उसने हर्ष और विषाद युक्त होकर लम्बी साँस ली, बिम्बाफल के समान ओठ फड़काये, अंग पुलकित हुए, पुतलियों को कुछ मोड़कर देखने लगी। इसी बीच कामदेव की दुर्जेयता, विलासों की रमणीयता और वन की एकान्तता से उसका चित्त वशीभूत हो गया। उसने सोचा—हन्त! यहाँ पर क्या उचित है? एक ओर गुरु-वचनों का भंग, दूसरी ओर अनुरक्त जन का त्याग—दोनों भारी हैं। अथवा मैंने भगवान् के समीप में सुना था कि जो अखण्डित व्रत वाले होते हैं, उनको दूसरे जन्म में हृदय के लिए इष्टवस्तु का लाभ होता है। मेरा हृदय इसके समागम का अभिलाषी है। अतः व्रत का खण्डन करते हुए प्राण त्यागता हूँ जिससे दोनों भारी (कार्य) अविकल सम्पन्न हों। अथवा इससे यही कहता हूँ। देखता हूँ, क्या कहती है—ऐसा सोचकर प्रियमित्र ने कहा—'सुन्दरि! खेद मत करो। मेरा हृदय तुम्हारे स्नेह के वशीभूत है किन्तु स्वीकार किये हुए का त्याग अनुचित है, गुरु के वचनों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरुवयणभंगो। सुयं च मए भयवओ सयासे, जहा अखंडियवयाणं जम्मंतरिओ हिययइच्छियवत्थुलाहो, हिययइच्छिओ मे इमिणा सब्भावसंभमेणं तुमए सह समागमो। ता आचिक्ख, किं मए कायव्वं ति। नीलुयाए भणियं—अज्जउत्त, जहा उभयं पि संपज्जइ आसन्नं च जम्मंतरं अप्पवसयाणं बहुमओ य मे इमस्स किलेसायासहेउणो देहस्स चाओ, ता एवं ववत्थिए अज्जउत्तो पमाणं ति। पियमित्तेण भणियं—सुंदरि, अभिन्नचित्ता मे तुमं। ता किं एत्थ अवरं भणीयइ। पडिवन्नं मए अणसणं। हिययइच्छिओ य मे जम्मंतरम्मि वि तुमए सह समागमो त्ति। नीलुयाए भणियं—अज्जउत्तो पमाणं। पुज्जंतु ते मणोरहा। अन्नं च। अणुजाणेउ मं अज्जउत्तो हिययइच्छियमणोरहापूरणेण। अहवा भत्तारदेवया इत्थिया; जं सो करेइ, तं तीए अणुचिट्ठियव्वं। कयं चेयं तुमए, अओ अत्थओऽणुमयमेवं ति। आपुच्छियाओ सहीओ, खामिया जणणिजणया। 'मा साहसं मा साहसं' ति धारिज्जमाणी सहीहिं पडिवन्ना अणसणं। जम्मंतरम्मि वि इमिणा चेव भत्तणा अविउत्ता हवेज्ज त्ति संपाडिओ पणिही। ठियाइं अइमुत्तलयालिंगियस्स असोयपायवस्स हेट्ठे। एत्थंतरम्मि सोऊण नीलुयासहियण-

मया भगवतः सकाशे, यथाऽखण्डितव्रतानां जन्मान्तरितो हृदयेप्सितवस्तुलाभः, हृदयेप्सितश्च मेऽनेन सद्भावसम्भ्रमेण त्वया सह समागमः। तत आचक्ष्व, किं मया कर्तव्यमिति। नीलुकया भणितम्—आर्यपुत्र! यथोभयमपि सम्पद्यते, आसन्नं च जन्मान्तरमात्मवशगानाम्, बहुमतश्च मेऽस्य क्लेशायासहेतोर्देहस्य त्यागः, तत एवं व्यवस्थिते आर्यपुत्रः प्रमाणमिति। प्रियमित्रेण भणितम्—सुन्दरि! अभिन्नचित्ता मे त्वम्। ततः किमत्रापरं भण्यते। प्रतिपन्नं मयाऽनशनम्। हृदयेप्सितश्च मे जन्मान्तरेऽपि त्वया सह समागम इति। नीलुकया भणितम्—आर्यपुत्रः प्रमाणम्। पूर्यन्तां ते मनोरथाः। अन्यच्च, अनुजानातु मामार्यपुत्रो हृदयेप्सितमनोरथापूरणेन। अथवा भर्तृदेवता स्त्री, यत्स करोति तत् तयाऽनुष्ठातव्यम्। कृतं चेदं त्वया, अतोऽर्थतोऽनुमतमेवमिति। आपृष्टाः सख्यः, क्षामितौ जननीजनकौ। 'मा साहसं मा साहसम्' इति वार्यमाणा सखीभिः प्रतिपन्नाऽनशनम्। जन्मान्तरेऽप्यनेनैव भर्त्राऽवियुक्ता भवेयमिति सम्पादितः प्रणिधिः (संकल्पः)। स्थितावतिमुक्तलतालिङ्गितस्याशोकपादपस्याधः। अत्रान्तरे श्रुत्वा नीलुकासखीजनकोलाहलमागतो नागदेवः। दृष्टः

का भंग करना अनुचित है। मैंने भगवान् के समीप सुना था कि अखण्डित व्रत वालों को दूसरे जन्म में इष्ट वस्तु का लाभ होता है। इस सद्भाव से उत्पन्न घबराहट के कारण मेरा तुम्हारे साथ मिलन हृदय का इष्ट है अतः कहो, मैं क्या करूँ?' नीलुका ने कहा—'आर्यपुत्र! जिससे दोनों कार्य सम्पन्न हों, जो जितेन्द्रिय हैं उनका दूसरा जन्म समीप है, मुझे इस क्लेश और थकावट के कारण शरीर का त्याग इष्ट है—अतः ऐसी स्थिति में आर्यपुत्र प्रमाण हैं।' प्रियमित्र ने कहा—'सुन्दरि! तुम मेरी अभिन्नचित्त हो अतः दूसरी बात क्या कही जाय! मैंने अनशन धारण कर लिया। हृदय के लिए इष्ट मेरा दूसरे जन्म में भी तुम्हारे साथ समागम हो।' नीलुका ने कहा—'आर्यपुत्र प्रमाण हैं। तुम्हारे मनोरथ पूर्ण हों। और यह कि आर्यपुत्र मुझे अपना मनोरथ पूरा करने की आज्ञा दें। अथवा स्त्री का देवता पति होता है। जो वह करता है, वह उसे करे। चूँकि तुमने इसे किया है अतः यथार्थतः अनुमति दे ही दी। सखियों से पूछा, माता-पिता दुर्बल हो गये। 'साहस मत करो, साहस मत करो' इस प्रकार सखियों द्वारा रोकी जाने पर भी इसने अनशन धारण कर लिया 'दूसरे जन्म में भी इसी पति से समागम हो' ऐसा संकल्प कर लिया। दोनों अतिमुक्तक लता से आलिंगित अशोकवृक्ष के नीचे बैठ गये। तभी नीलुका की सखियों का कोलाहल सुनकर नागदेव आया। प्रियमित्र ने देखा। दोनों उठे और अत्यधिक

1. तस्यट्ठियाए चेव—इत्यधिकः क—पुस्तके।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोलाहलं आगओ नागदेवो। दिट्ठो पियमित्तेणं। विलिओ य एसो। अब्भुट्ठिओ णेहिं, वंदिओ य अईवविलिएहिं। 'अहिलसियं संपज्जउ' त्ति अहिणंदियाइं नागदेवेण। चिंतियं च णेणं—का उण एसा इत्थिया समाणरूवा उचियवया य पियमित्तस्स। वयणवियारेणं सिणेहनिब्भरा एयम्मि लक्खिज्जए, विलिओ य एसो; ता किं पुण इमं ति। एत्थंतरम्मि सगग्गयक्खरं जंपियं सहीहिं—भयवं एसा खु ईसरखंदधूया नीलुया नाम कन्नगा, विइन्ना पियमित्तस्स, पडिकूलयाए देव्वस्स न परिणीया य णेणं। 'पव्वइओ एसो' त्ति कुओ वि वियाणियम्मिमीए। तओ 'भत्तारदेवया नारि' त्ति धम्मपरा जाया विसयनिप्पिवासा वि य पिययमदंसणूसुया विरहपरिदुब्बलंगी दढं खिज्जइ त्ति। एवमाइ साहियमणसणावसाणं। चिंतियं नागदेवेण—अहो दारुणया मयणवियारस्स, जेण पियमित्तेणावि एयं ववसियं ति। अहवा ईइसो एस मयणो मोहणं विवेयस्स तिमिरं दंसणस्स ओच्छायणं चरित्तस्स। एएणमभिभूया पाणिणो नत्थि तं जं न समायरंति त्ति। तेण अविसओ उवएसस्स। ता इमं एत्थ पत्तयालं, जं किंचि भणिय अवक्कमामि इमाओ विभागाओ; अणभिप्पेयकारावओ माणणीओ वि

प्रियमित्रेण। व्रीडितश्चैषः। अभ्युत्थित आभ्याम्, वन्दितश्चातीवव्रीडिताभ्याम्। 'अभिलषितं सम्पद्यताम्' इति अभिनन्दितौ नागदेवेन। चिन्तितं च तेन—का पुनरेषा स्त्री, समानरूपा उचितवयाश्च प्रियमित्रस्य। वदनविकारेण स्नेहनिर्भरा एतस्मिन् लक्ष्यते, व्रीडितश्चैषः, ततः किं पुनरिदमिति। अत्रान्तरे सगद्गदाक्षरं जल्पितं सखीभिः—भगवन् ! एषा खलु ईश्वरस्कन्ददुहिता नीलुका नाम कन्यका, वितीर्णा प्रियमित्रस्य, प्रतिकूलतया दैवस्य न परिणीता च तेन। 'प्रव्रजित एषः' इति कुतोऽपि विज्ञातमनया। ततो 'भर्तृदेवता नारी' इति धर्मपरा जाता विषयनिष्पिपासाऽपि च प्रियतमदर्शनोत्सुका विरहपरिदुर्बलाङ्गी दृढं खिद्यते इति। एवमादि कथितमनशनावसानम्। चिन्तितं नागदेवेन—अहो दारुणता मदनविकारस्य, येन प्रियमित्रेणाप्येतद् व्यवसितमिति। अथवेदृश एष मदनो मोहनं विवेकस्य तिमिरं दर्शनस्य अवच्छादनं चारित्रस्य। एतेनाभिभूतः प्राणिनो नास्ति तद् यन्न समाचरन्तीति। तेनाविषय उपदेशस्य। तत इदमत्र प्राप्तकालम्, यत्किञ्चिद् भणित्वाऽपक्रमामि अस्माद्विभागात्, अनभिप्रेतकारको माननीयोऽपि दृढमुद्वेगजनक इति। चिन्त-

---

लज्जित होकर दोनों ने वन्दना की। अभिलषित कार्य पूरा करो, इस प्रकार नागदेव ने अभिनन्दन किया। नागदेव ने सोचा—प्रियमित्र के समान रूप और अवस्था वाली यह स्त्री कौन है? मुख-विकार से यह इस पर अत्यधिक स्नेहयुक्त दिखाई दे रही है, प्रियमित्र लज्जित है, अतः यह सब क्या है? तभी गद्गद अक्षरों के साथ सखियों ने कहा—'भगवन् ! यह ईश्वरस्कन्द की पुत्री नीलुका नामक कन्या है. प्रियमित्र को दी गयी, किन्तु भाग्य की प्रतिकूलता से उसके द्वारा परिणीत नहीं हुई। 'यह प्रव्रजित हो गये'—ऐसा इसे कहीं से पता चला। अनन्तर 'नारी का देवता पति होता है'—ऐसा सोचकर धर्मपरायण हो गयी, विषयों के प्रति पिपासा रहित होने पर भी प्रियतम के दर्शन की उत्सुकता से और विरह से दुर्बल होकर अत्यधिक दुखी हो गयी।' यहाँ से लेकर अनशन तक की बात कह दी। नागदेव ने सोचा—ओह ! काम के विकार की दारुणता, जिससे प्रियमित्र ने भी ऐसा निश्चय किया। अथवा इस प्रकार का यह काम विवेक को मोहित करनेवाला, दर्शन का अन्धकार और चारित्र को ढाँकनेवाला है। इससे अभिभूत प्राणी ऐसा कुछ नहीं है जो न करते हों। अतः (यह) उपदेश का विषय नहीं है। अब समय आ गया है कि किंचित् कहकर इस स्थान से चला जाऊँ, अनिष्ट कार्य को करनेवाले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दढमुव्वेयजणओ त्ति। चिंतिऊण जंपियमणेणं—वच्छ! पियमित्त, जाणामि अहमिणं, नत्थि दुक्करं सिणेहस्स, सब्भावगेज्झाणि य सज्जणहिययाणि। एयावत्थेण वि न कओ अंगीकयपरिच्चाओ। ता कीस तुमं खिज्जसि त्ति। परिच्चय विसायं। ईइसो एस संसारो, किमेत्थ करीयउ। तहावि तत्तभावणा कायव्व त्ति भणिऊण गओ नागदेवो। इयरो वि पियमित्तो तप्पभूइमेव पूइज्जमाणो सयणवग्गेण अहिणंदिज्जमाणो राइणा अपरिवडियतहाविहपरिणामो जीविऊण दुमासमेत्तं कालं चइऊण देहपंजरं सह नीलुयाए उववन्नो किन्नरेसु। पउत्तो ओही, विइओ पुव्ववुत्तंतो, समागओ सह पिययमाए तमुज्जाणं। कया उज्जाणपूया। निम्मियं असोयपायवासन्नम्मि देउलं। निविट्ठो आणंददेवो निव्वुई य तस्स सहचरी देवया। गयाणि नंदणवणं। दिट्ठा य तत्थ एगा विज्जाहरी पिययमविओय-दुक्खेण अच्चंतदुब्बला दीहदीहं नीससंती इओ तओ परिब्भममाणि त्ति। पुच्छिया य णेहिं—सुंदरि, का तुमं किंनिमित्तं वा एवमेयाइणी परिब्भमसि। तीए भणियं—मयणमंजुया नाम विज्जाहरी अहं। पिययमाणुरायनिब्भराए य खंडिओ मए विज्जादेवओवयारो। अहिसत्ता य णाए आ दुरायारे,

यित्वा जल्पितमनेन—वत्स प्रियमित्र! जानाम्यहमिदम्, नास्ति दुष्करं स्नेहस्य, सद्भावग्राह्याणि च सज्जनहृदयानि। एतदवस्थेनापि न कृतोऽङ्गीकृतपरित्यागः। ततः कस्मात्त्वं खिद्यसे इति। परित्यज विषादम्। ईदृश एष संसारः, किमत्र क्रियताम्। तथापि तत्त्वभावना कर्तव्येति भणित्वा गतो नागदेवः। इतरोऽपि प्रियमित्रः तत्प्रभृत्येव पूज्यमानः स्वजनवर्गेण अभिनन्द्यमानो राज्ञा अपरिपतिततथाविधपरिणामो जीवित्वा द्विमासमात्रं कालं त्यक्त्वा देहपञ्जरं सह नीलुकयोपपन्नः किन्नरेषु। प्रयुक्तोऽवधिः, विदितः पूर्ववृत्तान्तः समागतः सह प्रियतमया तमुद्यानम्। कृतोद्यानपूजा। निर्मितमशोकपादपासन्नं देवकुलम्। निविष्ट आनन्ददेवो निर्वृतिश्च तस्य सहचरी देवता। गतौ नन्दनवनम्। दृष्टा च तत्रैका विद्याधरी प्रियतमवियोगदुःखेनात्यन्तदुर्बला दीर्घदीर्घं निःश्वसती इतस्ततः परिभ्रमन्तीति। पृष्ठा च ताभ्याम्—सुन्दरि! का त्वम्, किंनिमित्तं वा एवमेकाकिनी परिभ्रमसि। तया भणितम्—मदनमञ्जुला नाम विद्याधरी अहम्। प्रियतमानुरागनिर्भरया च खण्डितो मया विद्यादेवतोपचारः। अभिशप्ता च तया—आ दुराचारे! अनेनावद्यविलसितेन षाण्मासिकस्ते भर्त्रा

माननीय भी अत्यधिक उद्वेग के जनक होते हैं—ऐसा सोचकर नागदेव ने कहा—'वत्स प्रियमित्र! मैं यह जानता हूँ कि स्नेह के लिए कोई कार्य कठिन नहीं है और सज्जनों के हृदय सद्भाव से ग्रहण करने योग्य हैं। इस अवस्था में भी अंगीकृत का परित्याग नहीं किया, अतः क्यों खिन्न होते हो? विषाद छोड़ो। यह संसार ऐसा ही है, इस विषय में क्या किया जाय, तथापि तत्त्वचिन्तन करो'—ऐसा कहकर नागदेव चला गया। प्रियमित्र भी उसी समय से स्वजनों द्वारा पूजित होकर, राजा द्वारा अभिनन्दित होकर, उस प्रकार के परिणामों से पतित न होकर, दो माह जीकर देहपंजर का त्याग कर नीलुका के साथ किन्नरों में उत्पन्न हुआ। अवधिज्ञान का प्रयोग किया, पूर्ववृत्तान्त जाना, प्रियतमा के साथ उस उद्यान में आया। उद्यान की पूजा की। अशोक वृक्ष के नीचे मन्दिर बनाया। आनन्द देव और उसकी सहचरी देवी 'निर्वृति' की स्थापना की। दोनों नन्दनवन गये। वहाँ पर एक विद्याधरी को देखा। (वह) प्रियतम के वियोगरूपी दुःख से अत्यधिक दुर्बल होकर लम्बी-लम्बी साँसें लेती हुई इधर-उधर घूम रही थी। उन दोनों किन्नरों ने पूछा—'सुन्दरि! तुम कौन हो? किस कारण अकेली घूम रही हो?' उसने कहा—'मैं मदनमंजुला नामक विद्याधरी हूँ। प्रियतम के प्रति अत्यधिक अनुराग होने के कारण मैंने विद्यादेवी की पूजा का खण्डन किया। उस देवी ने शाप दिया—अरी दुराचारिणी! इस दोषयुक्त चेष्टा से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इमिणा अवज्जाविलसिएणं छम्मासिओ ते भत्तुणा सह विओओ 'भविस्सइ। तंनिमित्तं विउत्ता पिययमेणं, समाउत्ता अरईए, गहिया रणरणएणं, अद्धमुक्का पाणेहिं भमिसि' (हिसि) त्ति। भणिऊण तुण्हिक्का ठिया भयवई। तओ मए भयसंभंताए चलणेसु निवडिऊण विन्नत्ता भयवई। देवि, कयं मए अपुण्णभायणाए एयं², दिट्ठो य कोवो। ता करेउ पसायं भयवई अणुग्गहेणं ति। भणमाणी पुणोवि निवडिया चलणेसु। तओ अणुकंपिया भयवईए। भणियं च णाए³—वच्छे, आयइअपेच्छयाणि अणुराइहिययाणि हवंति। ता न सुंदरमणुचिट्ठियं तए। तहावि एस ते अणुग्गहो। गच्छ नंदणवणं; तत्थ अमुगदेसम्मि सिणिद्धमाहवीलयालिंगिओ धवलजमलकुसुमो पियमेलओ नाम रुक्खो। तस्स अहोभायसंठियाए भविस्सइ ते पिययमेणं समागमो त्ति। तओ समागया नंदणवणं तं च उद्देसयं। न पेच्छामि य तं रुक्खयं। अओ परिब्भमामि त्ति॥ किन्नरेण भणियं—सुंदरि, धीरा होहि; अहं ते निरूवेमि। निरूविओ लद्धो य। साहिओ विज्जाहरीए। समागया तस्स हेट्ठं। तओ तक्खणमेव अचिंतसामत्थयाए पायवस्स घडिया पिययमेणं। साहिओ अणाए³ वुत्तंतो पिययमस्स, बहुमन्निओ य तेणं। जाया विज्जाहरकिन्नराणं पीई। अन्नोन्ननेहाणुबंधेणं गमिऊण कंचि वेलं गयाइं विज्जाहराइं।

सह वियोगो भविष्यति। तन्निमित्तं वियुक्ता प्रियतमेन, समायुक्ताऽरत्या, गृहीता रणरणकेन, अर्धमुक्ता प्राणैर्भ्रमिष्यसि इति। भणित्वा तूष्णिका स्थिता भगवती। ततो मया भयसम्भ्रान्तया चरणयोर्निपत्य विज्ञप्ता भगवती। देवि! कृत मयाऽपुण्यभाजनया एतद्, दृष्टश्च कोपः। ततः करोतु प्रसादं भगवत्यनुग्रहेणेति। भणन्ती पुनरपि निपतिता चरणयोः। ततोऽनुकम्पिता भगवत्या। भणितं च तया—वत्से! आयत्यप्रेक्षकाणि अनुरागिहृदयानि भवन्ति। ततो न सुन्दरमनुष्ठितं त्वया। तथाप्येष तेऽनुग्रहः। गच्छ नन्दनवनम् तत्रामुकदेशे स्निग्धमाधवीलताऽऽलिङ्गितो धवलयमलकुसुमः प्रियमेलको नाम वृक्षः। तस्याधोभागसंस्थिताया भविष्यति ते प्रियतमेन समागम इति। ततः समागता नन्दनवनं तं चोद्देशम्। न प्रेक्षे च तं वृक्षम्। अतः परिभ्रमामीति। किन्नरेण भणितम्—सुन्दरि! धीरा भव, अहं ते निरूपयामि। निरूपितो लब्धश्च। कथितो विद्याधर्याः। समागता तस्याधः। ततस्तत्क्षणमेवाचिन्त्यसामर्थ्यतया पादपस्य घटिता प्रियतमेन। कथितोऽनया वृत्तान्तः प्रियतमस्य, बहुमानितश्च तेन। जाता विद्याधरकिन्नरयोः प्रीतिः। अन्योन्यस्नेहानुबन्धेन गमयित्वा

तेरा छह मास तक पति से वियोग होगा। उस कारण पति से वियुक्त, अरति से युक्त, उत्कण्ठा से गृहीत हो अर्धविमुक्त प्राणों से भ्रमण करोगी—ऐसा कहकर भगवती चुप हो गयी। अनन्तर मैंने भय होने से चरणों में पड़कर देवी से निवेदन किया—'देवी! मुझ पापिन ने यह किया और कोप देखा, अतः भगवती अनुग्रह करने की कृपा करें।' ऐसा कहती हुई पुनः चरणों में पड़ गयी। तब भगवती ने दया की। उसने कहा—'अनुरागी हृदय भावी फल को नहीं देखते हैं। अतः तुमने अच्छा नहीं किया। फिर भी तुम पर यह अनुग्रह है। नन्दनवन जाओ, वहाँ पर अमुक स्थान पर कोमल माधवी लता से आलिंगित स्वच्छ जुड़वे फूलवाला प्रियमेलक नाम का वृक्ष है। उसके नीचे जाने पर तेरा प्रियतम से समागम होगा।' अनन्तर मैं नन्दनवन और उस स्थान पर आयी (किन्तु) उस वृक्ष को नहीं देख रही हूँ। अतः भ्रमण कर रही हूँ। किन्नर ने कहा—'सुन्दरि! धीर होओ, मैं तुम्हें (वह वृक्ष) दिखलाता हूँ।' देखा और प्राप्त हो गया। (किन्नर ने) विद्याधरी से कहा। (वह) उसके नीचे आयी। उसी समय वृक्ष की अचिन्त्य सामर्थ्य से प्रियतम से मिल गयी। इसने प्रियतम से वृत्तान्त कहा, उसने सत्कार किया। विद्याधर और किन्नर में प्रीति हो गयी। एक-दूसरे के प्रति स्नेह रखते हुए कुछ समय बिताकर

१. भमासि—क। २. तक्कमेयं—क। ३. णाए—क।

किन्नरीए य भणिओ पिययमो—अज्जउत्त, दुव्विसहं पियविओयदुक्खं, परत्थसंपायणफलो य जीवाणं जम्मो पसंसोयइ। ता नेहि केणइ उवाएण एयं तत्थ पायवं, जत्थ मे अज्जउत्तेण सह दंसणं संजायं ति। निवेसेहि निययनिविट्ठदेवउलसमीवे। साहेहि य इमस्स माहप्पं, जणाण, जेण पियविउत्ता वि पाणिणो एयं समासाइऊण पणट्ठपियविरहदुक्खा सुहभाइणो हवंति। अणुचिट्ठियं च तं किन्नरेणं। निविट्ठो नियदेवउलसमीवे पायवो। साहिओ जणवयाणं। विन्नासिओ णेगेहिं जाव तहेव त्ति। जाया य से पसिद्धी, अहो पियमेलओ त्ति। समुप्पन्नं तित्थं, कयं च से नामं पियमेलयं ति।

अओ अवगच्छामि, तहिं गयस्स अचिंतसामत्थयाए कप्पपायवाणं नियमेण पिययमासंजोओ जायइ त्ति। ता इमं एत्थ कारणं। संपइ देवो पमाणं ति। एयं सोऊण हरिसिओ राया कुमारसेणो य। चिंतियं च राइणा। एयमेयं, न एत्थ संदेहो। अचिंतसामत्था कप्पपायवा। ता इमं एत्थ पत्तयालं, पेसेमि विइन्ननियपुरिसपरिवारं तहिं कुमारं। अवि नाम पुज्जंतु से मणोरह त्ति। समालोचिओ पल्लिणाहो। भणियं च णेण—देव, सुयपुव्वं मए, वियाणामि य अहयं तवोवणासन्नं तमुद्देसं।

काञ्चिद् वेलां गतौ विद्याधरौ। किन्नर्या च भणितः प्रियतमः—आर्यपुत्र ! दुर्विषहं प्रियवियोगदुःखम्, परार्थसम्पादनफलं च जीवानां जन्म प्रशस्यते, ततो नय केनचिदुपायेनैतं तत्र पादपम्, यत्र मे आर्यपुत्रेण सह दर्शनं सञ्जातमिति। निवेशय निजनिविष्टदेवकुलसमीपे। कथय चास्य माहात्म्यं जनानाम्, येन प्रियवियुक्ता अपि प्राणिन एतं समासाद्य प्रनष्टप्रियविरहदुःखाः सुखभागिनो भवन्ति। अनुष्ठितं च तत् किन्नरेण। निविष्टो निजदेवकुलसमीपे पादपः। कथितो जनव्रजानाम्। विन्यासितोऽ (परीक्षितो) नेकैर्यावत्तथैवेति। जाता च तस्य प्रसिद्धिः, अहो प्रियमेलक इति। समुत्पन्नं तीर्थम्, कृतं च तस्य नाम प्रियमेलकमिति।

अतोऽवगच्छामि, तत्र गतस्याचिन्त्यसामर्थ्यतया कल्पपादपानां नियमेन प्रियतमासंयोगो जायते इति। तत इदमत्र कारणम्। सम्प्रति देवः प्रमाणमिति। एतच्छ्रुत्वा हृष्टो राजा कुमारसेनश्च। चिन्तितं च राज्ञा एवमेतद् नात्र सन्देहः। अचिन्त्यसामर्थ्याः कल्पपादपाः। तत इदमत्र प्राप्तकालम्, प्रेषयामि वितीर्णनिजपुरुषपरिवारं तत्र कुमारम्। अपि नाम पूर्यन्तां तस्य मनोरथा इति। समालोचितः पल्लीनाथः। भणितं च तेन—देव ! श्रुतपूर्वं मया, विजानामि चाहं तपोवनासन्नं

विद्याधरयुगल चला गया। किन्नरी ने प्रियतम से कहा—'आर्यपुत्र ! प्रिय का वियोग सहना कठिन है, दूसरे के प्रयोजन का सम्पादन करनेवाले जीवों का जन्म प्रशंसनीय होता है, अतः किसी उपाय से वहाँ पर वृक्ष को ले चलो जहाँ मैंने आर्यपुत्र के दर्शन किये थे। अपने द्वारा स्थापित मन्दिर के समीप रखो और इसका माहात्म्य लोगों से कहो, जिससे प्रिय से वियुक्त भी प्राणी इसको पाकर प्रिय के विरहजन्य दुःख को नष्ट कर सुख के पात्र हों।' किन्नर ने इस कार्य को पूरा किया। अपने मन्दिर के पास वृक्ष को रख दिया। लोगों से कहा। अनेक लोगों ने परीक्षा की, उसी प्रकार सिद्ध हुआ। उस वृक्ष की प्रसिद्धि हुई—ओह ! प्रियमेलक है। तीर्थ उत्पन्न हुआ, उसका नाम प्रियमेलक रखा गया।

अतः जानता हूँ कि वहाँ जाने पर कल्पवृक्ष की अचिन्त्य सामर्थ्य से नियम से ही प्रियतमा के साथ संयोग होता है। तो अब समय आ गया है। अब महाराज प्रमाण हैं। यह सुनकर राजा और कुमारसेन प्रसन्न हुए। राजा ने सोचा—यह ठीक है, इसमें सन्देह नहीं कि कल्पवृक्षों की अचिन्त्य सामर्थ्य होती है। तो यह यहाँ समय आ गया है, अपने आदमियों के साथ कुमार को वहाँ भेजता हूँ। हो सकता है उसके मनोरथ पूर्ण हों। भिल्लराज से विचार-विमर्श किया। उसने कहा—'महाराज ! मैंने पहले ही सुना था और मैं तपोवन के समीपवर्ती उस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संपयं देवो पमाणं ति। तओ पेसिओ महया चडयरेणं कुमारो। हत्थे गहिऊण भणिओ राइणा—वच्छ, संपाविऊण पत्तिं अवस्समिहेवागंतव्वं ति। पडिस्सुयं कुमारेणं।

तओ पणमिय रायाणं अणवरयपयाणेहिं पत्तो कइवयदिणेहिं तवोवणं। तावसजणोवरोह-भीरुयाए य थेवपुरिसपरिवारिओ चेव पविट्ठो एसो। वंदिया तावसा। अणुसासिओ णेहिं। नीओ य पल्लिणाहेण अणेयतरुसंकुलं तमुद्देसं। दिट्ठं जिण्णदेवउलं। भणिओ कुमारो—देव, एसो खु सो उद्देसो, न याणामि य विसेसओ कप्पपायवं ति। तओ विसण्णो कुमारो। सुमरियं संतिमईए। सा उण तावसिसमेया विणिग्गया कुसुमसामिधेयस्स। गेण्हिऊण य तं समागच्छमाणी तवोवणं विचित्तयाए कम्मपरिणामस्स भवियव्वयाए निओएण उवविट्ठा पियमेलयसमीवे। दिट्ठो य णाए नागवल्लीलया-लिंगिओ असोओ। सुमरियं कुमारस्स, उक्कंठियं से चित्तं, फुरियं वामलोयणेणं। तओ हिययनिग्गओ विय परिब्भमंतो दिट्ठो इमोए कुमारो। तओ सा 'अज्जउत्तो' त्ति हरिसिया, 'चिराओ दिट्ठो' त्ति उक्कंठिया, 'परिक्खामो' त्ति उव्विग्गा, 'विरहम्मि जीविय' त्ति लज्जिया, 'कुओ वा एत्थ अज्जउत्तो'

तमुद्देशम्। साम्प्रतं देवः प्रमाणमिति। ततः प्रेषितो महता चटकरेण (आडम्बरेण) कुमारः। हस्ते गृहीत्वा भणितो राज्ञा—वत्स! सम्प्राप्य पत्नीमवश्यमिहैवागन्तव्यमिति। प्रतिश्रुतं कुमारेण।

ततः प्रणम्य राजानमनवरतप्रयाणैः प्राप्तः कतिपयदिवसैः तपोवनम्। तापसजनोपरोध-भीरुतया च स्तोकपुरुषपरिवृत एव प्रविष्ट एषः। वन्दिताः तापसाः। अनुशिष्टस्तैः। नीतश्च पल्ली-नाथेनानेकतरुसंकुलं तमुद्देशम्। दृष्टं जीर्णं देवकुलम्। भणितः कुमारः—देव! एष खलु स उद्देशः, न जानामि च विशेषतः कल्पपादमिति। ततो विषण्णः कुमारः। स्मृतं शान्तिमत्याः। सा पुनः ताप-सीसमेता विनिर्गता [1]कुसुमसामिधेयाय। गृहीत्वा च तं समागच्छन्ती तपोवनं विचित्रतया कर्म-परिणामस्य भवितव्यताया नियोगेनोपविष्टा प्रियमेलकसमीपे। दृष्टश्च तया नागवल्लीलता-ऽऽलिङ्गितोऽशोकः। स्मृतं कुमारस्य, उत्कण्ठितं तस्याश्चित्तम्, स्फुरितं वामलोचनेन। ततो हृदय-निर्गत इव परिभ्रमन् दृष्टोऽनया कुमारः। ततः सा 'आर्यपुत्रः' इति हृष्टा, 'चिराद् दृष्टः' इत्यु-त्कण्ठिता, 'परीक्षे' इत्युद्विग्ना, 'विरहे जीविता' इति लज्जिता, कुतो वाऽत्रार्यपुत्र इति सवितर्का,

---

स्थान को जानता हूँ। इस समय महाराज प्रमाण हैं। अनन्तर बड़े ठाठ-बाट से कुमार को भेजा। हाथ में हाथ लेकर राजा ने कहा—'वत्स! पत्नी को पाकर अवश्य ही यहीं आना।' कुमार ने स्वीकार किया।

अनन्तर राजा को प्रणाम कर निरन्तर चलते हुए, कुछ दिन में तपोवन में पहुँच गया। तापसजनों को विघ्न न हो अतः कुछ लोगों के साथ ही यह प्रविष्ट हुआ। तापसों की वन्दना की। उन लोगों ने आज्ञा दी। भिल्लराज अनेक वृक्षों से व्याप्त उस स्थान पर ले गया। पुराना मन्दिर देखा। कुमार से कहा—'महाराज! यह वही स्थान है। मैं कल्पवृक्ष विशेष को नहीं जानता। अनन्तर कुमार खिन्न हुआ। शान्तिमती का स्मरण किया। वह तापसियों के साथ फूल तथा समिधा लाने के लिए निकली। उसे लेकर तपोवन को आती हुई, कर्मपरिणाम की विचित्रता (तथा) भवितव्यता के नियोग से वह प्रियमेलक वृक्ष के पास आकर बैठ गयी। उसने नाग-वल्ली लता से आलिंगित अशोकवृक्ष को देखा। कुमार का स्मरण हो आया, उसका चित्त उत्कण्ठित हो गया, बायीं आँख फड़की। अनन्तर हृदय से निकले हुए के समान इसने वहाँ घूमते कुमार को देखा। फिर वह 'आर्यपुत्र हैं' यह सोचकर हर्षित हुई, 'बहुत समय बाद देखा' अतः उत्कण्ठित हुई, 'देखा' अतः उद्विग्न हुई, 'विरह में जीवित हैं' अतः लज्जित हुई, 'आर्यपुत्र कहाँ से आ गये!' अतः सोचने लगी, 'स्वप्न हो सकता है' ऐसा विचार

१- कुसुमानां समिधा—काष्ठानां च समूहाय, कुसुमानि काष्ठादि चाहर्तुमित्यर्थः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्ति सवियक्का, 'सिविणो हवेज्ज' ति विसण्णा, 'थरो पच्चओ' त्ति समासत्था संकिण्णरसनिब्भरं अंगमुव्वहंती अविभावियपरमत्था नेहनिब्भरयाए मोहमुवगय त्ति। तओ 'हा किमेयं' ति विसण्णाओ तावसीओ। समासासिया य णाहिं, जाव न जंपइ त्ति। तओ बप्फपज्जाउललोयणाहिं परिसित्ता कमंडलुपाणिएणं, तहावि न चेयइ त्ति। तओ अक्कंदियमिमीहिं। तं च अइकलुणमक्कंदियरवं सोऊण 'न भाइयव्वं न भाइयव्वं' ति भणमाणो धाविओ कुमारो। दिट्ठाओ तावसीओ; न दिट्ठं भयकारणं। पुच्छियाओ णेण—कुओ भयं भयवईणं। ताहिं भणियं—महासत्त, संसाराओ। कुमारेण भणियं—ता किं इमं अक्कंदियं। तावसीए भणियं—एसा खु तवस्सिणो रायउरसामिणो संखरायस्स धूया संतिमई नाम। एसा य देव्वनिओएण विउत्तभत्तारा पाणपरिच्चायं ववसमाणी कहंचि मुणिकुमारएणं धरिऊण कुलवइणो निवेइया। अणुसासिया य णेण। समाइट्ठो य से एत्थेव तवोवणम्मि भत्तारेण समागमो। जाव एसा कुलवइसमाएसेणेव कुसुमसामिधेयस्स गया, तं गेण्हिऊण वच्चमाणी तवोवणं वीसमणनिमित्तं एत्थ उवविट्ठा, न याणामो कारणं, अयण्डम्मि चेव मोहमुवगय त्ति। तओ अक्कंदियं

'स्वप्नो भवेद' इति विषण्णा, 'स्थिरः प्रत्ययः' इति समाश्वस्ता संकीर्णरसनिर्भरमङ्गमुद्वहन्ती अविभावितपरमार्था स्नेहनिर्भरतया मोहमुपगतेति। ततो 'हा किमेतद्' इति विषण्णाः तापस्यः। समाश्वस्ता च ताभिः, यावन्न जल्पतीति। ततो बाष्पपर्याकुललोचनाभिः परिषिक्ता कमण्डलुपानीयेन, तथापि न चेतयते इति। तत आक्रन्दितमाभिः। तं चातिकरुणमाक्रन्दितरवं श्रुत्वा 'न भेतव्यं न भेतव्यम्' इति भणन् धावितः कुमारः। दृष्टाः तापस्याः, न दृष्टं भयकारणम्। पृष्टास्तेन—कुतो भयं भगवतीनाम्। ताभिर्भणितम्—महासत्त्व! संसारात्। कुमारेण भणितम्—ततः किमिदमाक्रन्दितम्। तापस्या भणितम्—एषा खलु तपस्विनो राजपुरस्वामिनः शङ्खराजस्य दुहिता शान्तिमती नाम। एषा च दैवनियोगेन वियुक्तभर्तृका प्राणपरित्यागं व्यवस्यन्ती कथञ्चिद् मुनिकुमारकेन धृत्वा कुलपतये निवेदिता। अनुशिष्टा च तेन। समादिष्टश्च तस्या अत्रैव तपोवने भर्त्रा समागमः। यावदेषा कुलपतिसमादेशेनैव कुसुमसामिधेयाय गता, तद् गृहीत्वा व्रजन्ती तपोवनं विश्रमणनिमित्तमत्रोपविष्टा, न जानीमो कारणम्, अकाण्डे एव मोहमुपगतेति। तत आक्रन्दितमस्माभिः। एतच्छ्रुत्वा

कर दुःखी हुई, 'दृढ़ विश्वास है' ऐसा मानकर आश्वस्त हुई। इस प्रकार मिश्रित रस से भरे हुए अंग को धारण करती हुई, परमार्थ को न जानकर स्नेह की अधिकता के कारण मूर्च्छित हो गयी। अनन्तर 'हाय, यह क्या हुआ'—इस प्रकार तापसियाँ दुःखी हुईं। उन लोगों ने आश्वस्त किया, फिर भी यह नहीं बोली। अनन्तर आँसू भरे नेत्रों से युक्त होकर कमण्डलु के जल से सींचा तो भी होश में नहीं आयी तो ये चिल्लायीं। उस अत्यन्त करुण चिल्लाहट के शब्द सुनकर 'मत डरो, मत डरो'—कहता हुआ कुमार दौड़ा। तापसियों को देखा, भय का कारण दिखाई नहीं दिया। उसने पूछा—'आप लोगों को किससे भय है?' उन्होंने कहा—'महानुभाव, संसार से भय है।' कुमार ने कहा—'तो यह चिल्लाहट क्यों?' तापसियों ने कहा—'यह बेचारी राजपुर के स्वामी शंखराज की पुत्री शान्तिमती है। भाग्यवश पति से वियुक्त होकर यह प्राणपरित्याग कर रही थी तो किसी प्रकार मुनिकुमार ने लाकर कुलपति से निवेदन किया। कुलपति ने उपदेश दिया और इससे कहा कि इसी तपोवन में पति के साथ समागम होगा। जब यह कुलपति के आदेश से पुष्प समिधा लाने के लिए गयी तो लेकर तपोवन में जाती हुई विश्राम के लिए यहाँ बैठी, हम नहीं जानती हैं कि किस कारण असमय में ही यह मूर्च्छित हो गयी। अतः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अम्हेहिं। एयं सोऊण हरिसविसायगब्भिणं अवत्थमणुहवंतेणं पुलोइया कुमारेणं। वीइया तावसीहिं। कमंडलुजलसिंचणेण समासत्था एसा। दिट्ठो य णाए पच्चासन्नो कुमारो। संभंता एसा, भणिया णेण – सुंदरि, अलं संभमेण; न अन्नहा कुलवइसमाएसो; अमोहवयणा खु तवस्सिणो हवंति। कुसलोदएण संपन्नं तं भयवओ वयणं। ता एहि, गच्छामो तवोवणं, निवेएहि एयं कुलवइस्स, जेण सो वि अकारणवच्छलो एयं मुणिऊण णिव्वुओ होइ। तावसीहिं चिंतियं—नूणमेसो चेव से भत्ता; कहमन्नहा एवं जंपइ त्ति। कल्लाणागिई य एसो। अहो णु खलु जुत्तयारी विही, सरिसमेयं जुवलयं ति। एत्थंतरम्मि आणंदबाहजलभरियलोयणा अणाचिक्खणीयं अवत्थंतरमणुहवंती पयडपुलया उट्ठिया संतिमई। निरूविया पल्लिणाहेण। हरिसिओ एसो। विम्हयाखित्तहियएण चिंतियं च णेण—अहो देवस्स घरिणीए रूवसंपया। अहवा ईइसस्स पुरिसरयणस्स ईइसेण चेव कलत्तेण होयव्वं ति। सयलसुंदरसंगया चेव महापुरिसा हवंति। ता किमेत्थ अच्छरियं; न वंचिजइ सूरो दिवसलच्छीए त्ति। अओ मेइणिं विव सयलरज्जसुहहेउभूयं देवस्स पणमामि एयं ति। तओ सविणओत्तिमंगेण जंपिय-

---

हर्षविषादगर्भितामवस्थामनुभवता प्रलोकिता कुमारेण। वीजिता तापसीभिः। कमण्डलुजलसेचनेन समाश्वस्तैषा। दृष्टश्च तया प्रत्यासन्नः कुमारः। सम्भ्रान्तैषा, भणिता तेन—सुन्दरि! अलं सम्भ्रमेण नान्यथा कुलपतिसमादेशः, अमोघवचनाः खलु तपस्विनो भवन्ति। कुशलोदयेन सम्पन्नं तद् भगवतो वचनम्। तत एहि, गच्छामः तपोवनम्। निवेदयैतत् कुलपतये, येन सोऽप्यकारणवत्सल एतज्ज्ञात्वा निर्वृतो भवति। तापसीभिश्चिन्तितम्—नूनमेष एव तस्या भर्ता, कथमन्यथैवं जल्पतीति। कल्याणाकृतिश्चैषः। अहो नु खलु युक्तकारी विधिः, सदृशमेतद् युगलकमिति अत्रान्तरे आनन्दबाष्पजलभृतलोचनाऽनाख्यानीयमवस्थान्तरमनुभवन्ती प्रकटपुलकोत्थिता शान्तिमती। निरूपिता पल्लीनाथेन। हृष्ट एषः। विस्मयाक्षिप्तहृदयेन चिन्तितं च तेन—अहो देवस्य गृहिण्या रूपसम्पद्। अथवेदृशस्य पुरुषरत्नस्येदृशेनैव कलत्रेण भवितव्यमिति। सकलसुन्दरसङ्गता एव महापुरुषा भवन्ति। ततः किमत्राश्चर्यम्, न वञ्च्यते सूरो दिवसलक्ष्म्येति। अतो मेदिनीमिव सकलराज्यसुखहेतुभूतां देवस्य प्रणमाम्येतामिति। ततः सविनतोत्तमाङ्गेन जल्पितमनेन—स्वामिनि! अग्रहीतव्यनामा देवस्य भृत्या-

---

हम लोग चिल्लायीं।' यह सुनकर हर्ष और विषाद से युक्त अवस्था का अनुभव करते हुए कुमार ने देखा। तपस्विनियों ने हवा की। कमण्डलु के जल के सींचने से यह आश्वस्त हुई। उसने समीपवर्ती कुमार को देखा। वह घबरा गयी। कुमार ने उससे कहा—'सुन्दरि! घबराओ मत, कुलपति की आज्ञा अन्यथा नहीं थी, तपस्वी जन अमोघवचन वाले होते हैं। शुभकर्म के उदय से भगवान् का वह वचन सम्पन्न हो गया। तो आओ, तपोवन को चलें। इस घटना को कुलपति से निवेदन करो, जिससे अकारण स्नेह रखनेवाले वे इसे जानकर सुखी हों।' तापस्विनियों ने सोचा—निश्चित रूप से यही उसका पति है, अन्यथा कैसे इस प्रकार बोलता। इसकी आकृति कल्याणमय है। ओह! विधाता उचित कार्य करनेवाला है, यह जोड़ा समान है। इसी बीच आनन्द से आँखों में आँसू भरे हुए, अनिर्वचनीय अवस्था का अनुभव करती हुई, रोमांच प्रकट करती हुई शान्तिमती उठ गयी। भिल्लराज ने (उसे) देखा। वह प्रसन्न हुआ। विस्मय से आकृष्ट हृदयवाले उसने सोचा—ओह! महाराज की गृहीणी की रूपसम्पत्ति। अथवा ऐसे पुरुषरत्न की ऐसी ही भार्या होनी चाहिए। महापुरुष समस्त सुन्दर वस्तुओं से युक्त होते हैं। अतः यहाँ क्या आश्चर्य है? सूर्य दिवस लक्ष्मी से वंचित नहीं होता। अस्तु; महाराज के समस्त राज्यसुख का कारणभूत पृथ्वी की तरह इसे प्रणाम करता हूँ। अनन्तर सिर झुकाकर इसने कहा—'स्वामिनि! नाम लेने योग्य महाराज का तुच्छ भृत्य आपको प्रणाम करता है।' अनन्तर उसने 'स्वामी के महलों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भणेणं—सामिणि, अचेत्तव्वनामो देवस्स भिच्चावयवो ते पणमइ। तओ तीए 'सामिसालाणुरूवे साए पावसु' त्ति भणिऊण पुलोइयं कुमारवयणं। भणियं च णेण—सुंदरि, नत्थि एयस्स संभमाणुरूवो पसायविसओ त्ति। तओ लज्जिओ पल्लिणाहो।

एत्थंतरम्मि 'अह किंनिमित्तं पुण एसा अणब्भा वुट्ठि' त्ति निरूविओ कुमारेण पायरूवो, जाव अच्चंतसुंदरो अदिट्ठपुव्वो य। तओ हरिसिएण पुच्छिओ पल्लिणाहो—भद्द, किनामधेओ खु एसो पायवो। तेण भणियं—देव, न याणामि, अदिट्ठपुव्वो य एसो। तओ पुच्छियाओ तावसीओ। ताहि वि इमं चेव संलत्तं ति। कुमारेण भणियं—कहं तवोवणासन्नो वि न दिट्ठो भयवईहिं। तावसीहिं भणियं—कुमार, नाइबहुकालागया अम्हे, जम्मापुव्वो य एसो पएसो त्ति। कुमारेण चितियं—नूणमेसो खु सो पियमेलओ; कहमन्ना एवमेयं हवइ। निरूवियाइं कुसुमाइं; दिट्ठाणि य घणपत्तसाहाविवरंतरेणं, जाव धवलाइं जमलाणि य। दंसियाइं पल्लिणाहस्स। तेण भणियं—देव, सो चेव एसो जहाइट्ठकुसुमो। कुमारेण भणियं—ता पूएमि एयं कप्पपायवं ति।

वयवस्ते प्रणमति। ततस्तया 'स्वामिशालानुरूपान् प्रसादान् प्राप्नुहि' इति भणित्वा प्रलोकितं कुमारवदनम्। भणितं च तेन—सुन्दरि! नास्त्येतस्य सम्भ्रमानुरूपः प्रसादविषय इति। ततो लज्जितः पल्लीनाथः।

अत्रान्तरे 'अथ किंनिमित्तं पुनरेषाऽनभ्रा वृष्टिः' इति निरूपितः कुमारेण पादपः, यावदत्यन्तसुन्दरोऽदृष्टपूर्वश्च। ततो हर्षितेन पृष्टः पल्लीनाथः—'भद्र! किंनामधेयः खल्वेष पादपः। तेन भणितम्—देव! न जानामि, अदृष्टपूर्वश्चैषः। ततः पृष्टाः तापस्यः। ताभिरपीदमेव संलपितमिति। कुमारेण भणितम्—कथं तपोवनासन्नोऽपि न दृष्टो भगवतीभिर्भणितम्—कुमार! नातिबहुकालागता वयम्, जन्मापूर्वश्चैव प्रदेश इति। कुमारेण चिन्तितम्—नूनमेष खलु स प्रियमेलकः, कथमन्यथैवमेतद् भवति। निरूपितानि कुसुमानि, दृष्टानि च घनपत्रशाखाविवरान्तरेण, यावद्धवलानि यमलानि च। दर्शितानि पल्लीनाथस्य। तेन भणितम्—देव! स एवैष यथादिष्टकुसुमः। कुमारेण भणितम्—ततः पूजयाम्येतं कल्पपादपमिति। समादिष्टो भिल्लनाथः—भद्र! उपनय मे पूजोप-

---

के अनुरूप महल प्राप्त करें'—ऐसा कहकर कुमार के मुँह की ओर देखा। कुमार ने कहा—'सुन्दरि! प्रसन्नता का विषय घबराहट इसके अनुरूप नहीं है। अनन्तर भिल्लराज लज्जित हुआ।

इसी बीच 'बिना बादल के यह वर्षा क्यों हो रही है'—ऐसा कहकर कुमार ने वृक्ष देखा। वह वृक्ष अत्यन्त सुन्दर था और ऐसा वृक्ष पहिले कभी नहीं देखा था। अनन्तर हर्षित होकर (कुमार ने) भिल्लराज से पूछा—'भद्र! इस वृक्ष का क्या नाम है?' उसने कहा—'महाराज नहीं जानता हूँ, यह मैंने पहिले नहीं देखा।' अनन्तर तापस्विनियों से पूछा। तापस्विनियों ने भी यही कहा। कुमार ने कहा—'तपोवन के समीप होने पर भी आप लोगों ने नहीं देखा?' तापस्विनियों ने कहा—'कुमार! हम लोगों को आये हुए अभी अधिक समय नहीं हुआ है, यह प्रदेश जन्म से अपूर्व है।' कुमार ने सोचा—निश्चित ही यह वह प्रियमेलक है, अन्यथा यह ऐसा कैसे होता? फूलों को देखा, घने पत्तों वाली शाखा के छेद से देखा, (पुष्प) सफेद और जुड़वे हैं। भिल्लराज को (फूल) दिखलाये। भिल्लराज ने कहा—'महाराज! वही वह निर्दिष्ट फूल हैं।' कुमार ने कहा—'तो इस कल्पवृक्ष की पूजा करता हूँ।' भिल्लराज को आदेश दिया—'भद्र! मेरे लिए पूजा की सामग्री ले आओ, अचिन्त्य सामर्थ्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाइट्ठो भिल्लणाहो। भद्द, उवणेहि मे पूओवगरणं, पूएमि एयं अचिंतसामत्थं कप्पपायवं। तओ तेण समाहूओ परियणो, उवणीयं फुल्लचंदणाइयं पूओवगरणं। कुमारेण विसुद्धचित्तयाए पसत्थझाणमणुहवंतेण पूइओ कप्पपायवो—महापुरिसगुणावज्जियाए य अहासन्निहियाए पायडरूवाए चेव होऊण जंपियं खेत्तदेवयाए। वच्छ, परितुट्ठा ते अहं इमाए सुद्धचित्तयाए पूइओ देवाणुप्पिएणं पियमेलओ। आवज्जियं मे चित्तं, अमोहदंसणाणि य देवयाणि हवंति। ता भण, किं ते पियं करीयउ। कुमारेण भणियं—भयवइ, तुह दंसणाओ वि किं अवरं पियं ति। देवयाए चिंतियं—अहिमाणधणो खु एसो, कहं किंपि पत्थेइ। ता सयमेव उवणेमि एयं सव्वरोगविसनिग्घायणसमत्थं आरोग्गमणिरयणं ति। चिंतिऊण भणिओ कुमारो—वच्छ, अणुरूवो ते विवेगो अलुद्धया य, तहावि परोवयारनिमित्तं मज्झ बहुमाणेण गेण्हाहि एयं आरोग्गमणिरयणं ति। तओ 'माणणीयाओ देवयाओ' त्ति चिंतिऊण 'जं भयवई आणवेइ'त्ति भणिऊण सबहुमाणमेव पडिच्छियं आरोग्गमणिरयणं कुमारेण। वंदिया देवया। 'चिरं जीवसु' त्ति भणिऊण तिरोहिया एसा। तावसीहिं चिंतियं—अहो कुमारस्स पहावो, जेण

करणम्, पूजयाम्येतमचिन्त्यसामर्थ्यं कल्पपादपम्। ततस्तेन समाहूतः परिजनः, उपनीतं पुष्पचन्दनादिकं पूजोपकरणम्। कुमारेण विशुद्धचित्ततया प्रशस्तध्यानमनुभवता पूजितः कल्पपादपः। महा- महापुरुषगुणावर्जितया च यथासन्निहितया प्रकटरूपयैव भूत्वा जल्पितं क्षेत्रदेवतया—वत्स! परितुष्टा तेऽहमनया शुद्धचित्ततया। पूजितो देवानुप्रियेण प्रियमेलक। आवर्जितं मे चित्तम्, अमोघदर्शनानि च दैवतानि भवन्ति। ततो भण, किं ते प्रियं क्रियताम्। कुमारेण भणितम्—भगवति! तव दर्शनादपि किमपरं प्रियमिति। देवतया चिन्तितम्—अभिमानधनः खल्वेषः, कथं किमपि प्रार्थयते। ततः स्वयमेवोपनयाम्येतत् सर्वरोगविषनिर्घातनसमर्थमारोग्यमणिरत्नमिति। चिन्तयित्वा भणितः कुमारः—वत्स! अनुरूपस्ते विवेकोऽलुब्धता च, तथापि परोपकारनिमित्तं मम बहुमानेन गृहाणैतद् आरोग्यमणिरत्नमिति। ततो 'माननीया देवताः' इति चिन्तयित्वा 'यद् भगवत्याज्ञापयति' इति भणित्वा सबहुमानमेव प्रतीष्टमारोग्यमणिरत्नं कुमारेण। वन्दिता देवता। 'चिरं जीव' इति भणित्वा तिरोहितैषा। तापसीभिश्चिन्तितम्—अहो कुमारस्य प्रभावः, येन देवता अपि एवं बहु

वाले इस कल्पवृक्ष की पूजा करता हूँ। अनन्तर उसने सेवकों को बुलाया, फूल-चन्दन आदि पूजा के उपकरण लाये गये। विशुद्धचित्त वाला होने के कारण कुमार ने शुभध्यान का अनुभव करते हुए कल्पवृक्ष की पूजा की। प्रशस्त महापुरुष के गुणों से आकृष्ट हो पास आकर मानो प्रकट रूप वाली होकर क्षेत्रदेवी ने कहा—'वत्स! इस विशुद्ध चित्तपने के कारण मैं तुमसे सन्तुष्ट हूँ। देवानुप्रिय ने प्रियमेलक की पूजा की, मेरा चित्त आकृष्ट हो गया, देवता जन अमोघ दर्शनवाले होते हैं। अतः कहो, तुम्हारा क्या प्रिय करूँ?' कुमार ने कहा—'भगवति! आपके दर्शन से भी अधिक क्या दूसरा प्रिय है?' देवी ने सोचा—यह अभिमान रूपी धन वाला है, अतः कुछ कैसे माँगेगा? अतः समस्त रोग और विष को नष्ट करने में समर्थ 'आरोग्यमणिरत्न' इसे देती हूँ—ऐसा सोचकर कुमार से कहा—'वत्स! तुम्हारा विवेक और निर्लोभता उचित है तथापि मेरे प्रति आदर होने के कारण परोपकार के लिए इस आरोग्यमणिरत्न को ग्रहण करो।' अनन्तर 'देवता माननीय होते हैं'—ऐसा सोचकर 'जैसी भगवती आज्ञा दें' ऐसा कहकर कुमार ने आदरपूर्वक आरोग्यमणिरत्न स्वीकार कर लिया। देवी की पूजा की। 'चिरायु हो'—ऐसा कहकर वह (देवी) तिरोहित हो गयी। तापसनियों ने सोचा—ओह कुमार का प्रभाव, जिससे देवता भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवयाओ वि एवं बहु मन्नंति त्ति। भणियं च णाहिं—कुमार, अइक्कमइ णे मज्झण्हसमयविहिवेला; ता गच्छामो त्ति। कुमारेण भणियं—मए वि भयवं कुलवई। वंदियव्वो त्ति, ता समगमेव गच्छम्ह। तओ परियणसमेयो गओ कुलवइसमीवं वंदिओ य णेण भयवं कुलवई। तेण वि विइन्न ससमयपसिद्धा आसीसा। दवावियं आसणं। उवविट्ठो कुमारो सह परियणेण। निवेइओ से कुमारवुत्तंतो तावसीहिं। तओ दत्तावहाणो कुमारं निरूविऊण परितुट्ठो कुलवई। सबहुमाणं समप्पिया से भारिया। भणिओ कुलवइणा—कुमार, किमवरं भणीयइ। एसा खु मे धम्मसुया, परिच्छिन्नसंसारस्स वि य गुणपक्खवाएण महंतो मम इमीए पडिबंधो; ता अणुरूवं दट्ठव्व त्ति। कुमारेण भणियं—जं भयवं आणवेइ। एत्थंतरम्मि 'कहमियाणिं न दट्ठव्वो भयवं' ति मन्नुसिया संतिमई। परिसंथविया कुलवइणा, भणिया य णेण—वच्छे, अलं उव्वेवेणं, परिच्चय विसायं। धम्मनिरया तुमं; ता निच्चसन्निहिओ ते अहं। उवएसपडिवत्ती दंसणं मुणियणस्स; सा य अवियला तुज्झं ति। तओ पणमिओ इमीए कुलवई, आउच्छियाओ तावसीओ, समागया कुमारसमीवं। सो वि पूइऊण सपरिवारं कुलवइं समं संतिमईए

मन्यन्ते इति। भणितं च ताभिः—कुमार! अतिक्रामत्यस्माकं मध्याह्नसमयविधिवेला, ततो गच्छाम इति। कुमारेण भणितम्—मयाऽपि भगवान् कुलपतिर्वन्दितव्य इति, ततः समकमेव गच्छामः। ततः परिजनसमेतो गतः कुलपतिसमीपम्। वन्दितश्च तेन भगवान् कुलपतिः। तेनापि वितीर्णा स्वसमयप्रसिद्धाऽऽशीः। दापितमासनम्। उपविष्टः कुमारः सह परिजनेन। निवेदितस्तस्य कुमारवृत्तान्तस्तापसीभिः। ततो दत्तावधानः कुमारं निरूप्य परितुष्टः कुलपतिः। सबहुमानं समर्पिता तस्य भार्या। भणितः कुलपतिना—कुमार! किमपरं भण्यते। एषा खलु मे धर्मसुता, परिच्छिन्नसंसारस्यापि च गुणपक्षपातेन महान् ममास्यां प्रतिबन्धः, ततोऽनुरूपं द्रष्टव्येति। कुमारेण भणितम् यद् भगवान् आज्ञापयति। अत्रान्तरे 'कथमिदानीं न द्रष्टव्यो भगवान्' इति मन्युश्रिता शान्तिमती। परिसंस्थापिता कुलपतिना, भणिता च तेन—वत्से! अलमुद्वेगेन, परित्यज विषादम्। धर्मनिरता त्वम्, ततो नित्यसन्निहितस्तेऽहम्। उपदेशप्रतिपत्तिर्दर्शनं मुनिजनस्य, सा चाविकला तवेति। ततः प्रणतोऽनया कुलपतिः, आपृष्टास्तापस्यः, समागता कुमारसमीपम्। सोऽपि पूजयित्वा सपरिवारं

इस प्रकार सत्कार करते हैं। उन्होंने (तापसिनियों ने) कहा—'कुमार, हमारी मध्याह्नकालीन नियम की वेला बीत रही है, अतः (हमलोग) जा रही हैं। कुमार ने कहा—'मुझे भी भगवान् कुलपति की वन्दना करना है। अतः साथ ही चलते हैं।' अनन्तर परिजनों के साथ कुलपति के पास (कुमार) गया। उसने भगवान् कुलपति की वन्दना की। कुलपति ने भी स्व-समय प्रसिद्ध आशीर्वाद दिया। आसन दिलाया। कुमार स्वकीयजनों के साथ बैठा। तापसनियों ने कुमार का वृत्तान्त निवेदन किया। अनन्तर ध्यान देकर कुमार को देखकर कुलपति सन्तुष्ट हुए। आदरपूर्वक उसकी पत्नी को समर्पित कर दिया। कुलपति ने कहा—'कुमार! और क्या कहा जाय, यह मेरी धर्मपुत्री है, संसार को छोड़ देने पर भी गुणों के प्रति पक्षपात होने के कारण मेरा इसके प्रति दृढ़ अनुराग है, अतः (इस पर) योग्य दृष्टि रखना कुमार ने कहा—'जो भगवान् आज्ञा दें।' इसी बीच 'क्या अब भगवान् के दर्शन नहीं होंगे?'—ऐसा सोचकर शान्तिमती शोकाकुल हो गयी। कुलपति ने उसे धैर्य बंधाया और उन्होंने कहा—'पुत्री! उद्वेग मत करो, विषाद छोड़ो। तुम धर्म में रत हो, अतः मैं तुम्हारे समीप सदैव हूँ। मुनिजन का दर्शन उसके उपदेश के प्रति श्रद्धा है। वह (उपदेश के प्रति श्रद्धा) तुममें अविकल रूप से है।' अनन्तर इसने (शान्तिमती ने) कुलपति को प्रणाम किया, तापसनियों से पूछा (आज्ञा ली), कुमार के पास आ गयीं। कुमार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निग्गओ तवोवणाओ। कइवयदिणेहिं च समागओ वीसउरं। निवेइओ संतिमइलाहो राइणो। परितुट्ठो राया। काराविय वद्धावणयं। कयसम्माणो विसज्जिओ भिल्लणाहो। कुमारस्स वि पेइए विय रज्जे समं संतिमईए विसयसुहमणुहवंतस्स अइक्कंता कइ वि वासरा। अन्नया य विचित्तयाए कम्मपरिणामस्स असारयाए संसारस्स महारायसमरकेउणो कयंतो विय आवडिओ सज्जघाई आमओ; उम्मूलयंतं विय अंते समुद्धाइयं सूलं, उक्खणंतो विय लोयणाइं जाया सीसवेयणा; आयंपियाओ संधीओ, पयलिया दंता, समुद्धाइओ सासो, भग्गाइं लोयणाइं, निरुद्धा वाणी। समागया वेज्जा, पउत्ताइं नाणाविहाइं ओसहाइं, न जाओ य से विसेसो। तओ विसण्णं वेज्जमंडलं, परुइयाओ अंतेउरियाओ। निवेइओ एस वुत्तंतो पडिहारेणं कुमारस्स। सो वुण 'मए जीवंतम्मि परमोवयारिणो दुहियसत्तवच्छलस्स महारायस्स ईइसी अवत्था; असमत्थो य अहयं पडिविहाणे; ता धिरत्थु मे जीविएणं' ति चिंतिऊण मोहमुवगओ त्ति। वीइओ वायचीराए समासासिओ संतिमईए। भणियं च णाए—अज्जउत्त, न सुमरेसि तं देवयाविइन्नं आरोग्गमणिरयणं। ता तस्स

कुलपतिं समं शान्तिमत्या निर्गतस्तपोवनात। कतिपयदिनैश्च समागतो विश्वपुरम्। निवेदितः शान्तिमतीलाभो राज्ञः। परितुष्टो राजा। कारितं वर्धापनकम्। कृतसम्मानो विसर्जितो भिल्लनाथः। कुमारस्यापि पैतृके इव राज्ये समं शान्तिमत्या विषयसुखमनुभवतोऽतिक्रान्ताः कत्यपि वासराः। अन्यदा च विचित्रतया कर्मपरिणामस्य असारतया संसारस्य महाराजसमरकेतोः कृतान्त इव आपतितः सद्योघात्यामयः। उन्मूलयदिवान्त्राणि समुद्धावितं शूलम्, उत्क्षणवतीव लोचने जाता शीर्षवेदना, आकम्पिताः सन्धयः, प्रचलिता दन्ताः, समुद्धावितः श्वासः, भग्ने लोचने, निरुद्धा वाणी। समागता वैद्याः, प्रयुक्तानि नानाविधान्यौषधानि, न जातश्च तस्य विशेषः। ततो विषण्णं वैद्य-मण्डलम्, प्ररुदिता अन्तःपुरिकाः। निवेदित एष वृत्तान्तः प्रतीहारेण कुमारस्य। स पुनः 'मयि जीवति परमोपकारिणो दुःखितसत्त्ववत्सलस्य महाराजस्येदृश्यवस्था, असमर्थश्चाहं प्रतिविधाने, ततो धिगस्तु मे जीवितेन' इति चिन्तयित्वा मोहमुपगत इति। वीजितो वातचीरेण, समाश्वस्तः शान्तिमत्या। भणितं च तया—आर्यपुत्र! न स्मरसि तद् देवतावितीर्णमारोग्यमणिरत्नम्। ततस्त-

---

भी सपरिवार कुलपति की पूजा कर शान्तिमती के साथ तपोवन से निकल गया। कुछ दिन में विश्वपुर आया। राजा से शान्तिमती की प्राप्ति के विषय में निवेदन किया। राजा सन्तुष्ट हुआ। (उसने) उत्सव कराया। सम्मान कर भिल्लराज को विदा कर दिया। पैतृक राज्य के समान शान्तिमती के साथ विषय-सुख का अनुभव करते हुए कुमार के भी कुछ दिन बीत गये। एक बार कर्मों के परिणाम की विचित्रता तथा संसार की असारता से महाराज समरकेतु को यम के समान 'सद्योघाती' नामक बीमारी आ लगी। मानो आँतें उखड़ गयी हों—इस प्रकार शूल उठा। दोनों नेत्रों को उखाड़ती हुई-सी शिरोवेदना उत्पन्न हुई। जोड़ों में कम्पन होने लगा, दाँत किटकिटाने लगे, श्वास छूटने लगी, दोनों नेत्र फट गये, वाणी रुक गयी। वैद्य आये, अनेक प्रकार की औषधियाँ प्रयुक्त की गयीं, किन्तु राजा को कोई लाभ नहीं हुआ। अनन्तर वैद्य दुःखी हो गये, अन्तःपुरिकाएँ रोने लगीं। इस वृत्तान्त को द्वारपाल ने कुमार से निवेदन किया। पुनश्च वह 'मेरे जीवित रहते हुए परमोपकारी, दुःखियों के प्रति स्नेह रखनेवाले महाराज की ऐसी अवस्था और मैं इसे दूर करने में असमर्थ हूँ, अतः मेरे जीवन को धिक्कार है'—ऐसा सोचकर मूर्च्छित हो गया। वस्त्र से हवा की गयी, शान्तिमती ने आश्वस्त किया। उसने कहा—'आर्यपुत्र! क्या देवी के द्वारा दिये हुए उस आरोग्यमणिरत्न का स्मरण नहीं है? अतः उसका यह समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एस कालो, परिच्चय विसायं, उवणेहि तं महारायस्स । तओ 'सुंदरि, साहु सुमरियं' ति हरिसिओ कुमारो। गहियं आरोग्गमणिरयणं। निग्गच्छंतस्स भवणाओ केणइ संलत्तं 'निए अत्थे चिरं जीवसु' त्ति। तओ 'अणुकूलसउणो' त्ति हरिसिओ लहु चेव गओ नरिंदभवणं, पविट्ठो नरवइसमीवं। तओ सोचिऊण हत्थपाए आरोग्गमणिरयणेण ओमज्जिओ राया। अचिंतसामत्थयाए मणिरयणस्स उवसंतं सूलं, पणट्ठा सीसवेयणा, घडियाओ संधोओ, थिरीहूया दंता, उवसंतो सासो, उम्मिल्लियाइं लोयणाइं 'अहो किमेयं' ति पयट्टा वाणी। थेववेलाए य पुव्वसामत्थओ वि अहिययरसामत्थजुत्तो उट्ठिओ राया। 'अहो कुमारस्स पहावो' त्ति जंपियं वेज्जेहिं। हरिसिया मंतिणो। [1]पणच्चियाओ देवीओ। राइणा भणियं—भो पणट्ठसरणा मे अवत्था अहेसि; ता न विन्नायं मए, किमेत्थ संजायं ति। साहेह तुब्भे। साहियं जीवाणंदेण। हरिसिओ राया। भणियं च णेण—कहं णु खलु अमयभूए कुमारे पहवंतम्मि मच्चुणो अवयासो त्ति। लज्जिओ कुमारो। भणियं च णेण—देवयागुरुपसाओ एसो त्ति। राइणा भणियं—वच्छ, तुह संतिया इमे पाणा; ता जहिच्छं जोएयव्व त्ति। कुमारेण भणियं—गुरू तुब्भे।

स्यैष कालः, परित्यज विषादम्, उपनय तद् महाराजस्य। ततः 'सुन्दरि ! साधु स्मृतम्' इति हर्षितः कुमारः। गृहीतमारोग्यमणिरत्नम्। निर्गच्छतो भवनात् केनचित् संलपितं 'निजेऽर्थे चिरं जीव' इति। ततो 'ऽनुकूलशकुनः' इति हृष्टो लघ्वेव गतो नरेन्द्रभवनम्, प्रविष्टो नरपतिसमीपम्। ततः शोचयित्वा (क्षालयित्वा) हस्तपादान् आरोग्यमणिरत्नेनावमार्जितो राजा। अचिन्त्यसामर्थ्यतया मणिरत्नस्योपशान्तं शूलम्, प्रनष्टा शीर्षवेदना, घटिताः सन्धयः, स्थिरीभूता दन्ताः, उपशान्तः श्वासः, उन्मिलिते लोचने, 'अहो किमेतद्' इति प्रवृत्ता वाणी। स्तोकवेलायां च पूर्वसामर्थ्यादप्यधिकतरसामर्थ्ययुक्त उत्थितो राजा। 'अहो कुमारस्य प्रभावः' इति जल्पितं वैद्यैः। हर्षिता मन्त्रिणः। प्रनर्तिता देव्यः। राज्ञा भणितम्—भोः प्रनष्टस्मरणा मेऽवस्थाऽऽसीदिति, ततो न विज्ञातं मया, किमत्र सञ्जातमिति। कथयत यूयम्। कथितं जीवानन्देन। हृष्टो राजा। भणितं च तेन—कथं नु खल्वमृतभूते कुमारे प्रभवति मृत्योरवकाश इति। लज्जितः कुमार इति। भणितं च तेन—देवतागुरुप्रसाद एष इति। राज्ञा भणितम्—वत्स ! तव सत्का इमे प्राणाः,

---

है। विषाद छोड़ो, उस औषधि को महाराज के पास ले जाओ।' अनन्तर 'सुन्दरि ! (तुमने) ठीक स्मरण किया'—इस प्रकार कुमार हर्षित हुआ। (उसने) आरोग्यमणिरत्न को लिया। जब वह भवन से निकल रहा था तो किसी ने कहा—'अपने प्रयोजन में लगे रहकर चिरकाल तक जीवित रहो।' अनन्तर 'शकुन अनुकूल है' इस प्रकार हर्षित होता हुआ शीघ्र ही राजभवन में गया। राजा के समीप प्रविष्ट हुआ। पश्चात् हाथ-पैर धोकर आरोग्यमणिरत्न से राजा को आवर्जित किया। मणिरत्न की अचिन्त्य सामर्थ्य से शूल शान्त हो गया, शिरोवेदना नष्ट हो गयी, जोड़ मिल गये, दाँत स्थिर हो गये, श्वास शान्त हो गया, दोनों नेत्र खुल गये। ओह ! यह क्या ! — इस प्रकार वाणी खुल गयी। थोड़े ही समय में पहले की सामर्थ्य से अधिक सामर्थ्ययुक्त हो राजा उठ गया। 'ओह कुमार का प्रभाव !'—ऐसा वैद्यों ने कहा। मन्त्रिगण हर्षित हो गये। देवियाँ नृत्य करने लगीं। राजा ने कहा—'मैं नष्ट स्मृति को प्राप्त हो गया था, अतः मैंने नहीं जाना, यहाँ क्या हुआ। तुम सब कहो।' जीवानन्द ने बताया। राजा प्रसन्न हुआ। राजा ने कहा—'अमृतभूत कुमार के समर्थ रहते हुए मृत्यु को अवकाश कहाँ !' कुमार लज्जित हुआ। उसने कहा—'यह देवता और गुरुजनों का प्रसाद है। राजा

---

१. आइट्ठं बद्धावयणं मतीहिं। पण-—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राइणा भणियं—कुमार, अलंघणीयवयणा गुरू; ता मज्झ बहुमाणेण अणुचिट्ठियव्वमेयं देवाणुप्पिएणं। कुमारेण भणियं—आणवेउ ताओ। राइणा भणियं—न मोत्तव्वो अहं ति। कुमारेण भणियं—जं तुब्भे आणवेह। राइणा भणियं—वच्छ, गुरुबहुमाणाणुरूवं फलं पावसु त्ति। 'निययावासे होहि' त्ति भणिऊण विसज्जिओ कुमारो। सद्दाविऊण भणिओ से निउत्तपरियणो। न तुब्भेहिं मम अणिवेइऊण समागओ वि कुमारसंतिओ को वि कुमारस्स पेसियव्वो त्ति। तेण भणियं—जं देवो आणवेइ।

अइक्कंतो कोइ कालो। अन्नया य कहिंचि वियाणिऊणमेयं वुत्तंतं समागओ पहाणामच्चपुत्तो अमरगुरू। निवेइओ राइणो। सद्दाविऊण पूइओ णेण, भणिओ य नेहसारं—भद्द, किं बहुणा जंपिएणं; जीवियाओ वि अहिओ मे कुमारो। पडिवन्नं च एएण, जहा मए तुमं न मोत्तव्वो। ता तहाणुचिट्ठियव्वं, जहा दो वि अम्हे सुहं चिट्ठामो त्ति। मंतिपुत्तेण भणियं—देव, धन्नो कुमारो, जस्स देवो वि एवं मंतेइ। ता जमाणत्तं देवेण; एत्थ भयवं विही विय उवउत्तो अहं। राइणा भणियं—

ततो यथेच्छं द्रष्टव्या इति। कुमारेण भणितम्—गुरवो यूयम्। राज्ञा भणितम्—कुमार! अलङ्घनीयवचना गुरव:, ततो मम बहुमानेनानुष्ठातव्यमेतद् देवानुप्रियेण। कुमारेण भणितम्—आज्ञापयतु तात:। राज्ञा भणितम्—न मोक्तव्योऽहमिति। कुमारेण भणितम्—यद् यूयमाज्ञापयत। राज्ञा भणितम्—'वत्स! गुरुबहुमानानुरूपं फलं प्राप्नुहीति। नियतावासो भव' इति भणित्वा विसर्जित: कुमार:। शब्दयित्वा भणितस्तस्य नियुक्तपरिजन:। न युष्माभिर्ममानिवेद्य समागतोऽपि कुमारसत्क: कोऽपि कुमारस्य प्रेषयितव्य इति। तेन भणितम्—यद्देव आज्ञापयति।

अतिक्रान्त: कोऽपि काल:। अन्यदा च कुत्रचिद् विज्ञायैतं वृत्तान्तं समागत: प्रधानामात्यपुत्रोऽमरगुरु:। निवेदितो राज्ञ:। शब्दायित्वा पूजितस्तेन, भणितश्च स्नेहसारम्—भद्र! किं बहुना जल्पितेन, जीवितादप्यधिको मे कुमार:। प्रतिपन्नं चैतेन, यथा मया त्वं न मोक्तव्य:। ततस्तथाऽनुष्ठातव्यं यथा द्वावप्यावां सुखं तिष्ठाव इति। मन्त्रिपुत्रेण भणितम्—देव! धन्य: कुमार:, यस्य देवोऽप्येवं मन्त्रयते। ततो यदाज्ञप्तं देवेन, अत्र भगवान् विधिरिव उपयुक्तोऽहम्। राज्ञा भणितम्—

ने कहा—'वत्स! ये प्राण तुम्हारे हैं, अत: इच्छानुसार दृष्टि रखो।' कुमार ने कहा—'आप माता-पिता हैं।' राजा ने कहा—'कुमार! माता-पिता के वचनों का उल्लंघन नहीं किया जाता है, अत: मेरे कथनानुसार देवानुप्रिय इसे पूरा करें।' कुमार ने कहा—'पिताजी आज्ञा दीजिए!' राजा ने कहा—'मुझे मत छोड़ना।' कुमार ने कहा—'जैसी आपकी आज्ञा।' राजा ने कहा—'वत्स! माता-पिता के सम्मान के अनुरूप फल को प्राप्त करो। नियत रूप से रहने वाले होओ—' ऐसा कहकर कुमार को विदा किया। कुमार द्वारा नियुक्त परिजन को बुलाकर कहा—'मुझसे बिना निवेदन किये कुमार के पास आनेवाले को कुमार के पास मत भेजना।' उसने कहा—'जो महाराज आज्ञा दें।'

कुछ समय बीत गया। एक बार कहीं से यह वृत्तान्त जानकर प्रधानमन्त्री का पुत्र 'अमरगुरु' आया। राजा से निवेदन किया गया। बुलाकर उसने (राजा ने) उसका सत्कार किया और स्नेहयुक्त होकर कहा—'भद्र! अधिक कहने से क्या, मुझे कुमार प्राणों से भी अधिक प्रिय है। कुमार ने स्वीकार कर लिया है—मैं तुम्हें नहीं छोड़ूंगा। अत: वैसा करें जिससे हम दोनों सुख से रहें।' मन्त्रिपुत्र ने कहा—'महाराज! कुमार धन्य हैं, जिसके विषय में महाराज भी ऐसा कहते हैं।' अनन्तर 'महाराज की जैसी आज्ञा, इस विषय में भगवान् ब्रह्मा के समान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वद्धावेह कुमारं एयस्स समागमणेण। गया वद्धावया। भणिओ य एसो—भद्द, कुमारं पेच्छसु त्ति। निग्गओ मंतिपुत्तो, चिंतियं च णेण—इमं चेव एत्थ पत्तयालं, जमेस राया न परिच्चईयइ त्ति। जओ वसीकयं रज्जं विसेणेण, साणुक्कोसो य कुमारो। तमंतरेण पवज्जमाणेण य पव्वज्जं भणिओ अहं ताएण। 'हारविस्सइ विसेणो रज्जं, पणट्ठं च एयं सेणो उद्धरिस्सइ' त्ति नेमित्तियाएसो। पारद्धं च तं विसेणेण, जओ अवमाणिया सामंता, पीडियाओ पयाओ, लंघिओ उचियायारो, बहुमन्निओ लोहो। ता इहेव अवत्थाणं सोहणं ति। एत्थंतरम्मि निवेइयं कुमारस्स, जहा देव, अमच्चपुत्तो अमरगुरू आगओ; संपइ देवो पमाणं त्ति। कुमारेण वद्धावयस्स दाउं जहोचियं भणियं—लहुं पवेसेह। हरिसवसेण उट्ठिओ कुमारो, पविट्ठो अमरगुरू, समाइच्छिओ णेण, पुच्छिओ सबहुमाणं—'अज्ज, कुसलं तायकुमाराणं।' तेण भणियं—देव, कुसलं। अन्नं च। देव, 'तुमं न दिट्ठो' त्ति संजायनिव्वेओ विसेणस्स रज्जं दाऊण तायप्पमुहप्पहाणपरियणसमेओ पव्वइओ महाराओ। तओ 'अहो ममोवरि सिणेहाणुबंधो तायस्स' त्ति चिंतिऊण जंपियं कुमारेण—अज्ज, बहुमया विय मे तायपव्वज्जा कुमार-

---

वर्धापयत कुमारमेतस्य समागमनेन। गता वर्धापकाः। भणितश्चैषः—भद्र! कुमारं प्रेक्षस्वेति। निर्गतो मन्त्रिपुत्रः। चिन्तितं च तेन—इदमेवात्र प्राप्तकालम्, यदेष राजा न परित्यज्यते इति। यतो वशीकृतं राज्यं विषेणेन, सानुक्रोशश्च कुमारः। तमन्तरेण प्रपद्यमानेन च प्रव्रज्यां भणितोऽहं तातेन। 'हारयिष्यति विषेणो राज्यम्, प्रनष्टं चैतत् सेन उद्धरिष्यति' इति नैमित्तिकादेशः। प्रारब्धं तद् विषेणेन, यतोऽवमानिताः सामन्ताः, पीडिताः प्रजाः, लङ्घित उचिताचारः, बहुमतो लोभः। तत इहैवावस्थानं शोभनमिति। अत्रान्तरे निवेदितं कुमारस्य, यथा देव! अमात्यपुत्रोऽमरगुरुरागतः, सम्प्रति देवः प्रमाणमिति। कुमारेण वर्धापकाय दत्त्वा यथोचितं भणितम्—लघु प्रवेशय। हर्षवशेनोत्थितः कुमारः, प्रविष्टोऽमरगुरुः, समागतः (आगतः) तेन, पृष्टः सबहुमानम्—आर्य! कुशलं तातकुमारयोः। तेन भणितम्—देव! कुशलम्। अन्यच्च, देव! 'त्वं न दृष्टः' इति सञ्जातनिर्वेदो विषेणस्य राज्यं दत्त्वा तातप्रमुखप्रधानपरिजनसमेतः प्रव्रजितो महाराजः। ततोऽहो ममोपरि स्नेहानुबन्धस्तातस्य' इति चिन्तयित्वा जल्पितं कुमारेण—आर्य! बहुमतेव मे तातप्रव्रज्या

मैं उपयुक्त हूँ।' राजा ने कहा—'इन्हें मिलाकर कुमार को बधाई दो।' बधाई देनेवाले गये। इससे (मन्त्रिपुत्र से) कहा—'भद्र! कुमार को देखो।' मन्त्रिपुत्र निकला। उसने सोचा—अब यही दैव आ गया है कि इसे राजा नहीं छोड़ते हैं। विषेण ने राज्य को वश में कर लिया है और कुमार दयायुक्त हैं। कुमार के बिना, दीक्षा लेते हुए पिताजी ने मुझसे कहा था—'विषेण राज्य हार जायगा, नष्ट हुए इस राज्य का सेन उद्धार करेगा'—ऐसा निमित्तज्ञानी का आदेश है। विषेण ने वह प्रारम्भ कर दिया है; क्योंकि सामन्तों का तिरस्कार हुआ है, प्रजा पीड़ित है, उचित आचार का लंघन हुआ है (और) लोभ का सम्मान हुआ है। अतः यहीं रहना ठीक है। इसी बीच कुमार से निवेदन किया गया कि 'महाराज! मन्त्रिपुत्र अमरगुरु आये हैं, अब महाराज प्रमाण हैं।' कुमार ने वर्धापक (बधाई देनेवाले) को योग्य वस्तु देकर कहा—'शीघ्र प्रवेश कराओ।' हर्षवश कुमार उठ गया, अमरगुरु प्रविष्ट हुआ, कुमार ने अगवानी की, आदरपूर्वक पूछा—'आर्य! पिताजी और कुमार दोनों की कुशल है?' मन्त्रिपुत्र ने कहा—'महाराज! कुशल है। दूसरी बात यह है महाराज, कि 'आप दिखाई नहीं दिये' अतः जिन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया है ऐसे महाराज, विषेण को राज्य देकर तातप्रमुख प्रधान परिजनों के साथ प्रव्रजित हो गये हैं। अनन्तर 'ओह मुझ पर महाराज का दृढ़ प्रेम!' ऐसा सोचकर कुमार ने कहा—'कुमार को राज्य प्रदान कर पिताजी की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रज्जपयाणेण । अन्नं च । कुलट्ठिई एसा अम्हाणं, जं रज्जभरधुरक्खमे जुवरायम्मि पव्वज्जापवज्जणं ति । अमच्चपुत्तेण भणियं—जं देवो आणवेइ । कुमारेण भणियं—अवि सुंदरो पयाणं कुमारो । अमच्चपुत्तेण भणियं—देव, सुंदरो; किं तु देवनिग्गमणेणं महारायपव्वज्जाए य पीडियाओ पयाओ असामिसालं चिय अत्ताणयं मन्नंति । कुमारेण भणियं—कहं विसेणकुमारे जीवमाणम्मि असामिसालाओ । एत्थन्तरम्मि छिक्कियं पडिहारेण । 'देवो जीवउ' त्ति भणियं अमरगुरुणा । फुरियं च वामलोयणेणं कुमारस्स । तओ चिंतियमणेणं—हा किमेयमनिमित्तं ति । अहवा अलमनिमित्तासंकाए; देवयाओ सिवं करिस्संति । भणिया संतिमई—सुंदरि, संपाडेहि कालोचियं अज्जस्स । तीए भणियं—जं अज्जउत्तो आणवेइ । कारविया सरीरट्ठिई । समप्पिओ निययाहियारो । पडिच्छिओ णेण । पउत्ता विसेणरज्जम्मि पणिही । पइदिणं च नियपरियणेण पवड्ढमाणस्स[1] कुमारस्स अइक्कंतो कोइ कालो ।

इओ य संतिमई अणेयसउणगणनिसेवियं कलयंठिकोलाहलेण सवणसुहयं[2] छप्पयकुलबद्धसंगीयं

कुमारराज्यप्रदानेन । अन्यच्च, कुलस्थितिरेषाऽस्माकम्, यद् राज्यभरधूःक्षमे युवराजे प्रव्रज्याप्रपदनमिति । अमात्यपुत्रेण भणितम्—यद् देव आज्ञापयति । कुमारेण भणितम्—अपि सुन्दरः प्रजानां कुमारः । अमात्यपुत्रेण भणितम्—देव ! सुन्दरः, किन्तु देवनिर्गमनेन महाराजप्रव्रज्यया च पीडिताः प्रजा अस्वामिशालमिवात्मानं मन्यन्ते । कुमारेण भणितम्—कथं विषेणकुमारे जीवति अस्वामिशालाः [प्रजाः] । अत्रान्तरे क्षुतं प्रतीहारेण । 'देवो जीवतु' इति भणितममरगुरुणा । स्फुरितं च वामलोचनेन कुमारस्य । ततश्चिन्तितमनेन—'हा किमेतदनिमित्तमिति । अथवा ऽलमनिमित्ताशङ्कया, देवताः शिवं करिष्यन्ति । भणिता शान्तिमती—सुन्दरि ! सम्पादय कालोचितमार्यस्य । तया भणितम्—यदार्यपुत्र आज्ञापयति । कारिता शरीरस्थितिः । समर्पितो निजाधिकारः । प्रतीष्टस्तेन । प्रयुक्ता विषेणराज्ये प्रणिधयः । प्रतिदिनं निजपरिजनेन प्रवर्धमानस्य कुमारस्यातिक्रान्तः कोऽपि कालः ।

इतश्च शान्तिमती अनेकशकुनगणनिषेवितं कलकण्ठी कोलाहलेन श्रवणसुखदं षट्पदकुल-

दीक्षा का मैं आदर करता हूँ । दूसरी बात यह है कि युवराज के राज्यरूपी भार को धारण करने में धुरा के समान समर्थ होने पर राजा का दीक्षा धारण करना—यह हमारे कुल की मर्यादा है ।' मन्त्रिपुत्र ने कहा—'जो महाराज की आज्ञा ।' कुमार ने कहा—'प्रजाओं के लिए कुमार ठीक है ?' मन्त्रिपुत्र ने कहा—'महाराज ! ठीक हैं; किन्तु आपके निकलने और महाराज के प्रव्रजित होने से पीड़ित प्रजा अपने को बिन स्वामी के समान मानती है ।' कुमार ने कहा—'विषेणकुमार के जीवित होते हुए प्रजा बिना स्वामी के कैसे है ?' इसी बीच द्वारपाल ने छींका । महाराज जीवित रहें—ऐसा अमरगुरु ने कहा । कुमार की बायीं आँख फड़की । तब कुमार ने सोचा—हाय ! यह क्या अपशकुन है ! अथवा अपशकुन की शंका से बस अर्थात् इस प्रकार की शंका नहीं करनी चाहिए, देवता कल्याण करेंगे । शान्तिमती से कहा—'सुन्दरि ! आर्य का समयानुरूप कार्य करो ।' शान्तिमती ने कहा—'जो आर्यपुत्र आज्ञा दें ।' भोजन कराया । अपना अधिकार समर्पित किया । उसने स्वीकार किया । कुमार ने विषेण के राज्य पर ध्यान दिया । प्रतिदिन अपने परिजनों के साथ बढ़ते हुए कुमार का कुछ समय बीत गया ।

इधर शान्तिमती अनेक पक्षिगणों से सेवित, कोयल के कोलाहल से कानों को सुख देनेवाले, भौंरों के

1. पवट्टमाणस्स—क । २. •सुहं— ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुप्फफलनिमियसयसाहं तमालघणभमरंजणसरिसं वण्णेण पत्तयपयरेण निव्विवरं—किं बहुणा वायाडम्बरेण तेलोक्कस्स वि नयणमणाणंदयारिणं गयणयलमणुलिहंतं चिंतामणिकप्पं कप्पपायवं वयणेणमुयरं पविसमाणं सुमिणयम्मि पासिऊण पडिबुद्धा। हरिसवसपुलइयंगीए सिट्ठो दइयस्स सुमिणओ। तेण वि य पफुल्लवयणकमलेण भणियं—सुंदरि, सयलतइलोक्कपिहणीओ ते पुत्तो भविस्सइ त्ति। पडिस्सुणेऊण अहिययरं तिवग्गसंपायणरयाए अइक्कंतो कोइ कालो। तओ सोहणे तिहिमुहुत्तनक्खत्तकरणजोए कमेण पसूया संतिमई। जाओ से दारओ। कयं उचियकरणिज्जं राइणा समरकेउणा कुमारेण य। पइट्ठावियं से नामं पियामहसंतियं अमरसेणो त्ति।

अन्नया य आगओ चंपाओ अमरगुरुपउत्तो पणिही। निवेइयं च णेण, जहा विरत्तमंडलं विसेणं जाणिऊण अयलउरसामिणा मुत्तावीढेण सयमेवागच्छिय थेवदियहेहिं चेव गहिया चंपा, नट्ठो विसेणो, गहियं च णेण भंडायारं, वसीकयं रज्जं; संपइ अज्जो पमाणं ति। तओ कुविओ अमरगुरू। साहियमणेणं कुमारस्स। 'पेइयं मे रज्जमवहरियं' ति जाओ से अमरिसो। भणियं—च

बद्धसंगीतं पुष्पफलन्यस्तशतशाखं तमालघनभ्रमराञ्जनसदृशं वर्णेन पत्रप्रकरेण निर्विवरम्, किं बहुना वाताडम्बरेण त्रैलोक्यस्यापि नयनमनआनन्दकारिणं गगनतलमनुलिहन्तं चिन्तामणिकल्पं कल्पपादपं वदनेनोदरं प्रविशन्तं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धा। हर्षवशपुलकिताङ्ग्या शिष्टो दयितस्य स्वप्नः। तेनापि च प्रफुल्लवदनकमलेन भणितम्—सुन्दरि! सकलत्रैलोक्यस्पृहणीयस्ते पुत्रो भविष्यति इति। प्रतिश्रुत्याधिकतरं त्रिवर्गसम्पादनरताया अतिक्रान्तः कोऽपि कालः। ततः शोभने तिथिमुहूर्तनक्षत्रकरणयोगे क्रमेण प्रसूता शान्तिमती। जातस्तस्या दारकः। कृतमुचितकरणीयं राज्ञा समरकेतुना कुमारेण च। प्रतिष्ठापितं तस्य नाम पितामहसत्कममरसेन इति।

अन्यदा चागतश्चम्पाया अमरगुरुप्रयुक्तो प्रणिधिः। निवेदितं च तेन, यथा विरक्तमण्डलं विषेणं ज्ञात्वा अचलपुरस्वामिना मुक्तापीठेन स्वयमेवागत्य स्तोकदिवसैरेव गृहीता चम्पा, नष्टो विषेणः, गृहीतं च तेन भाण्डागारम्, वशीकृतं राज्यम्, सम्प्रति आर्यः प्रमाणमिति। ततः कुपितोऽमरगुरुः। कथितमनेन कुमारस्य। 'पैतृकं मे राज्यमपहृतम्' इति जातस्तस्यामर्षः। भणितं च तेन—आर्य! को

समूह द्वारा जहाँ संगीत हो रहा था, जिसकी सैकड़ों शाखाएँ फूल और फलों को धारण किये हुए थीं, रंग में तमाल, मेघ, भ्रमर और अंजन के समान काले वर्णवाले पत्तों के समूह से जो छिद्ररहित था; अधिक कहने से क्या, वायु के आरम्भ से तीनों लोकों के नेत्रों और मनों को आनन्द देनेवाले, आकाशतल को छूनेवाले, चिन्तामणिरत्न के सदृश कल्पवृक्ष को स्वप्न में मुँह से उदर में प्रवेश करते हुए देखकर जाग गयी। हर्षवश जिसके अंग पुलकित हो रहे थे, ऐसी शान्तिमती ने पति से स्वप्न निवेदन किया। उसने भी खिले हुए मुखकमल वाला होकर कहा—'सुन्दरि! समस्त त्रैलोक्य स्पृहणीय तुम्हारा पुत्र होगा।' स्वीकार कर अत्यधिक रूप मे धर्म, अर्थ, कामरूप त्रिवर्ग के सम्पादन में रत रहते हुए इसका कुछ समय व्यतीत हो गया। अनन्तर शुभ-तिथि, मुहूर्त, नक्षत्र और करण के योग में क्रमशः शान्तिमती ने प्रसव किया। उसके पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा समरकेतु और कुमार ने उचित कार्यों का सम्पादन किया। पितामह के समान उसका नाम अमरसेन रखा गया।

एक बार चम्पा से अमरगुरु के द्वारा भेजा हुआ गुप्तचर आया और उसने निवेदन किया कि विषेण को राज्य से विरक्त हुआ जान अचलपुर के स्वामी 'मुक्तापीठ' ने स्वयं आकर थोड़े ही दिनों में चम्पा ले ली, विषेण नष्ट हुआ। मुक्तापीठ ने भण्डार ले लिया, राज्य को अधिकार में कर लिया। अब आप ही प्रमाण हैं। अनन्तर अमरगुरु कुपित हुआ। इसने (अमरगुरु ने) कुमार से कहा। 'मेरा पैतृक राज्य छीन लिया' इस प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णेण—अज्ज, को मए जीवमाणम्मि कुमारं परिहवइ। कस्स वा विसमदसाविभाओ न होइ। ता न संतप्पियव्वं अज्जेण। पइट्ठावेमि थेवदियहेहिं[1] चेव कुमारं नियरज्जे। एत्थंतरम्मि गुलुगुलियं मत्तवारणेण, 'जयउ देवो' त्ति जंपियं अमरगुरुणा, फुरिओ दक्खिणभुओ कुमारस्स। तओ चिंतियमणेणं—जिओ कुमारपरिहवणसीलो अयलउरसामी। भणिओ य अमरगुरू—अज्ज, निवेएहि एयं वुत्तंतं महारायस्स। विन्नवेहि एयं, जहा एवं ववत्थिए तुब्भं समाएसेण अवस्सं मए गंतव्वं ति। [2]निवेइयं अमरगुरुणा। कुविओ समरकेऊ। भणियं च णेणं—भद्द, न एस कुमारस्स परिहवो, अवि य मज्झं ति। ता अलं तमंतरेण संरंभेणं। विक्खेवसज्झो खु एसो। पेसेमि य अज्जेव तत्थ विक्खेवं ति। अमच्चपुत्तेण भणियं - देव, एवमेयं, तहा वि गहिओ कुमारो अमरिसेणं। ता सो चेव विक्खेवसामी पेसीयउ त्ति। समरकेउणा भणियं—भद्द, जं बहुमयं कुमारस्स। दिन्नो पहाणविक्खेवो। तओ अमरिसवसेण रायाणं पणमिय तम्मि चेव दिवसे चलिओ कुमारो। कहं—

मयि जीवति कुमारं परिभवति। कस्य वा विषमदशाविभागो न भवति। ततो न सन्तपितव्यमार्येण। प्रतिष्ठापयामि स्तोकदिवसैरेव कुमारं निजराज्ये। अत्रान्तरे गुलुगुलितं मत्तवारणेन, 'जयतु देवः' इति जल्पितममरगुरुणा, स्फुरितो दक्षिणभुजः कुमारस्य। ततश्चिन्तितमनेन। जितः कुमारपरिभवनशीलोऽचलपुरस्वामी। भणितश्चामरगुरुः—आर्य! निवेदयैतं वृत्तान्तं महाराजस्य। विज्ञपयैतम्, यथैवं व्यवस्थिते युष्माकं समादेशेनावश्यं मया गन्तव्यमिति। निवेदितसमरगुरुणा। कुपितः समरकेतुः। भणितं च तेन—भद्र! नैष कुमारस्य परिभवः, अपि च ममेति। ततोऽलं तदन्तरेण (तत्सम्बन्धिना) संरम्भेण (गमनोद्योगेन)। विक्षेप (सैन्य) साध्यः खल्वेषः। प्रेषयामि च अद्यैव तत्र विक्षेपमिति (सैन्यमिति)। अमात्यपुत्रेण भणितम्—देव! एवमेतद्, तथापि गृहीतः कुमारोऽमर्षेण। तत स एव विक्षेपस्वामी प्रेष्यतामिति। समरकेतुना भणितम्—भद्र! यद् बहुमतं कुमारस्य। दत्तः प्रधानविक्षेपः। ततोऽमर्षवशेन राजानं प्रणम्य तस्मिन्नेव दिवसे चलितः कुमारः। कथम्—

उसे दुःख हुआ। उसने कहा—'आर्य मेरे जीवित रहते हुए कौन कुमार का तिरस्कार करता है। अथवा विषम दशा किसकी नहीं होती है? अतः आर्य दुःखी न हों। कुमार को थोड़े ही दिनों में अपने राज्य पर बिठाऊँगा।' इसी बीच मतवाले हाथी ने दहाड़ा। 'महाराज की जय हो'—अमरगुरु ने कहा। कुमार की दायीं भुजा फड़की। अनन्तर इसने सोचा—कुमार का तिरस्कार करनेवाला अचलपुर का स्वामी जीत लिया गया। अमरगुरु से कहा—'आर्य! इस वृत्तान्त को महाराज से निवेदन करो। यह निवेदन करो कि ऐसी स्थिति में आपकी आज्ञा से मुझे अवश्य जाना होगा।' अमरगुरु ने निवेदन किया। समरकेतु कुपित हुआ और उसने कहा—'भद्र! यह कुमार का तिरस्कार नहीं; अपितु मेरा है। अतः उसके गमन के उद्योग से कोई लाभ नहीं। यह सेना द्वारा साध्य है। आज ही वहाँ पर सेना भेजता हूँ।' मन्त्रिपुत्र ने कहा—'महाराज! यह ठीक है; तथापि कुमार क्रुद्ध हो गये हैं, अतः उन्हें ही सेनापति के रूप में भेजिए।' समरकेतु ने कहा—'भद्र! जो कुमार को स्वीकार हो।' प्रधान सेना दे दी। अनन्तर राजा को प्रणाम कर क्रोधवश कुमार उसी दिन चल पड़ा। कैसे—

१. थेवेहिं चेव दियहेहिं—क। २. [illegible]

चलिओ चलंतचामरगमणंदोलंतकुंडलसणाहो ।
ऊसियसियायवत्तो रायगइंदं समारूढो ॥५६२॥
सियवरवसणनिवसणो सियमुत्ताहारभूसियसरीरो ।
सियकुसुमसेहरो सियसुयंधहरियंदणविलित्तो ॥५६३॥
सामंतेहि समेओ दोघट्टतुरंगरहवरसएहिं ।
नीसरिओ नयराओ इंदो व्व सुरोहपरिवारो ॥५६४॥
तूररवबहिरियदिसं बंदिसमुग्घुट्ठविविहजयसद्दं ।
अहिवंदिऊण पुरओ कंचणकलसं सलिलपुण्णं ॥५६५॥
सोऊण पडहसद्दं विलयायणहिययदूसहं तुरियं ।
आयण्णिउं च वयणं एस कुमारो पयट्टो त्ति ॥५६६॥
तो भरिया निवमग्गा निरंतरूसियसियायवत्तेहिं ।
खयकालखुहियखीरोयसलिलनिवहेहि व बलेहिं ॥५६७॥

चलितश्चलच्चामरगमनान्दोलयत्कुण्डलसनाथः ।
उच्छ्रितसितातपत्रो राजगजेन्द्रं समारूढः ॥५६२॥
सितवरवसननिवसनः सितमुक्ताहारविभूषितशरीरः ।
सितकुसुमशेखरः सितसुगन्धहरिचन्दनविलिप्तः ॥५६३॥
सामन्तैः समेतो दोघट्ट (हस्ति) तुरङ्गरथवरशतैः ।
निःसृतो नगराद् इन्द्र इव सुरौघपरिवारः ॥५६४॥
तूर्यरवबधिरितदिशं बन्दिसमुद्घुष्टविविधजयशब्दम् ।
अभिवन्द्य पुरतः काञ्चनकलशं सलिलपूर्णम् ॥५६५॥
श्रुत्वा पटहशब्दं वनिताजनहृदयदुःसहं त्वरितम् ।
आकर्ण्य च वचनं एष कुमारः प्रवृत्त इति ॥५६६॥
ततो भृता नृपमार्गा निरन्तरोच्छ्रितसितातपत्रैः ।
क्षयकालक्षुब्धक्षीरोदसलिलनिवहैरिव बलैः ॥५६७॥

गमन करते समय वह हिलते हुए कुण्डलों से युक्त था, उसका चंचल चँवर चलायमान हो रहा था। उसके ऊपर सफेद छत्र लगा हुआ था, वह राजकीय हाथी पर सवार था । अत्यधिक सफद वस्त्र पहिने था । सफेद मोतियों के हार से उसका शरीर विभूषित था । सिर पर सफेद सेहरा था । सफेद सुगन्धित हरिचन्दन का उसके ऊपर लेप किया गया था । सैकड़ों हाथी, घोड़े, रथ तथा सामन्तों से युक्त वह देवताओं से घिरे हुए इन्द्र के समान नगर से निकला । उस समय बाजों के शब्द से दिशाएँ बधिर हो रही थीं, बन्दिजन नाना प्रकार से जय-शब्द उच्चार रहे थे । नारी-हृदय के लिए दुःसह नगाड़े के शब्द को सुनकर स्त्रियाँ सामने जल से पूर्ण स्वर्णमयी कलशों से अभिनन्दन कर रही थीं । 'यह कुमार चल पड़ा'—यह बचन सुनाई दे रहा था । प्रलयकाल में क्षुब्ध क्षीरसागर के जलसमूह के समान सेनाओं के निरन्तर उठे हुए सफेद छत्रों से राजपथ भरे हुए थे ॥५६२-५६७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पेल्लेसि[1] अइतुरंतो कीस ममं किं न पेच्छसि च्चेयं ।
गरुयगयगज्जिभउंध्पित्थवुण्णतुरयं रहं पुरओ ॥५९८॥
मह रुंभिऊण पंथं हरिसोल्लंतस्स रूससे कीस ।
एंतमणुमग्गलग्गं न पेच्छसे मत्तमायंगं ॥५९९॥
खंचियखलीणतुरयं खणंतरं कुणसु सारहि रहं ता ।
जा जाइ एस पुरओ निब्भरमयमंथरं हत्थी ॥६००॥
इय नितार्णं ताहे रायवहेसु विउलेसु वि नराणं ।
करिरहसंकडपडियाण पायडा आसि आलावा ॥ ६०१॥
अह बलसमुदयसहियस्स तस्स नयराउ निष्फिडंतस्स ।
निग्घोसपूरियदिसं गुलुगुलियं वारणिंदेणं ॥६०२॥
जयइ कुमारो त्ति तओ हरिसभरिज्जंतसव्वगत्तेहिं ।
भणियमह सेणिएहिं अहवा को एत्थ संदेहो ॥६०३॥

पीडयसि अतित्वरमाणः कस्माद् मम किं न प्रेक्षसे चैतम् ।
गुरुकगजगर्जितव्याकुल[2]भीत[3]तुरगं रथं पुरतः ॥५९८॥
मम रुद्ध्वा पन्थानं हर्षोल्लसतो रुष्यसि कस्मात् ।
यन्तमनुमार्गलग्नं न प्रेक्षसे मत्तमातङ्गम् ॥५९९॥
आकृष्टखलीनतुरगं क्षणान्तरं कुरु सारथे ! रथं ततः ।
यावद् याति एष पुरतो निर्भरमदमन्थरं हस्ती ॥६००॥
इति गच्छतां तदा राजपथेषु विपुलेष्वपि नराणाम् ।
करिरथसङ्कटपतितानां प्रकटा आसन् आलापाः ॥६०१॥
अथ बलसमुदायसहितस्य तस्य नगराद् निष्फेटयतः (निष्क्रामतः) ।
निर्घोषपूरितदिशं गुलुगुलितं (गर्जितं) वारणेन्द्रेण ॥६०२॥
जयति कुमार इति ततो हर्षभ्रियमाणसर्वगात्रैः ।
भणितमथ सैनिकैरथवा कोऽत्र सन्देहः ॥६०३॥

अत्यन्त जल्दी करते हुए मुझे क्यों पीड़ित कर रहे हो ? क्या भारी हाथी की इस गर्जना से आकुल भयभीत घोड़े के रथ को नहीं देख रहे हो ? हर्ष और उल्लासवश मेरा मार्ग रोककर क्यों रुष्ट हो रहे हो ? उस मार्ग में लगे हुए मतवाले हाथी को नहीं देख रहे हो ? घोड़ों की लगाम खींचकर हे सारथी, रथ को कुछ समय के लिए दूर कर दो; जिससे कि यह अत्यधिक मद से मन्थर हाथी सामने जा सके । इस प्रकार विस्तीर्ण राजपथों में जब मनुष्य जा रहे थे तब हस्तिरथ से घिरने के कारण गिरे हुए लोगों की बातचीत प्रकट हो रही थी । अनन्तर सैन्य-समुदायसहित उस नगर से निकलते हुए गजेन्द्र ने अपने निर्घोष से दिशाओं को पूर्ण कर दिया। हर्ष से जिसका सारा शरीर भरा हुआ था ऐसे सैनिकों ने 'कुमार की जय हो'—कहा । अथवा इसमें सन्देह ही क्या है ? ॥५९८-६०३॥

---

१. पल्लेहिसि—ख । २. उव्विंध (दे.) व्याकुलः । 'आउलं आविद्धं उव्विंधं'—(पाइयलच्छी, ४७५) । ३. वुन्न (दे.) भीतः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]पत्तो य विसयसंधि अणवरयपयाणएहिं इयरो वि।
दरिओ मुत्तावीढो समागयो नवर तत्थेव ॥६०४॥

एत्थंतरम्मि दूओ पट्ठविओ तस्स अह कुमारेण।
भणिऊण भणिइकुसलो वयणमिणं नीइसारेणं ॥६०५॥

मोत्तूण पेइयं मे रज्जं नियय च जाहि किं बहुणा।
इय मज्झ होइ पोई ठायसु वा जुज्झसज्जो त्ति ॥६०६॥

गंतूण तेण भणिओ मुत्तावीढो ससंभमं एयं।
भणियं च तेण वि इमं सकक्कसं वंकभणिईए ॥६०७॥

एवं चिय तुह पीई होइ वियाणामि निच्छियं एयं।
किं पुण मए न गहियं रज्जमिणं मोयणट्ठाए ॥६०८॥

जुज्झेण उ अप्पोई तुज्झं तुह जाइयाण य भडाणं।
जमलोयदंसणभया तहवि ठिओ जुज्झसज्जो म्हि ॥६०९॥

प्राप्तश्च विषयसन्धिमनवरतप्रयाणकैरितरोऽपि।
दृप्तो मुक्तापीठः समागतो नवरं तत्रैव ॥६०४॥

अत्रान्तरे दूतः प्रस्थापितस्तस्याथ कुमारेण।
भणित्वा भणितिकुशलो वचनमिदं नीतिसारेण ॥६०५॥

मुक्त्वा पैतृकं मे राज्यं निजकं (राज्यं) च याहि किं बहुना।
इति मम भवति प्रीतिः तिष्ठ वा युद्धसज्ज इति ॥६०६॥

गत्वा तेन भणितो मुक्तापीठः ससम्भ्रममेतत्।
भणितं च तेनापीदं सकर्कशं वक्रभणित्या ॥६०७॥

एवमेव तव प्रीतिर्भवति विजानामि निश्चितमेतद्।
किं पुनर्मया न गृहीतं राज्यमिदं मोचनार्थम् ॥६०८॥

युद्धेन तु अप्रीतिस्तव तव याचितानां च भटानाम्।
यमलोकदर्शनभयात् तथापि स्थितो युद्धसज्जोऽस्मि ॥६०९॥

निरन्तर प्रयाण करते हुए देश की सीमा पर पहुँचे। दूसरा (राजा) गर्वीला मुक्तापीठ भी वहीं आ गया। इसी बीच कुमार ने सूक्तिनिपुण दूत को इन वचनों को कहकर भेजा कि अधिक कहने से क्या, 'मेरे पैतृक राज्य को छोड़कर अपने राज्य को जाओ। इस प्रकार मुझे प्रीति होगी। यदि ठहरते हो तो युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।' उसने जाकर मुक्तापीठ से शीघ्र ही यह समाचार कह दिया। मुक्तापीठ ने कर्कशयुक्त कुटिल वाणी में यह कहा—'इसी तरह तुम्हें प्रीति होगी' यह निश्चितरूप से जानता हूँ। परन्तु मैंने इस राज्य को छोड़ने के लिए ग्रहण नहीं किया है। युद्ध से अप्रीति तो तुम्हें और तुम्हारे माँगे हुए सैनिकों को है; क्योंकि तुम्हें यमलोक के दर्शन से भय है। फिर भी यदि तुम ठहरे रहते हो तो मैं युद्ध के लिए तैयार हूँ।' ॥६०४-६०९॥

---

१. तो रोसाइसएण अक्खलियपयाणएहिं सो धीरो। पत्तो हु विसयसंधि दुमाससमेत्तेण कालेण॥ ताउं सेणागमणं अणवरयपयाणएहिं चंपाओ। दरियो····—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुविओ य तओ दूओ जमलोयं पत्थिओ तुमं नूणं ।
रोडिसि जो कुमारं इय भणिउं निग्गओ चेव ॥६१०॥
आगंतूण य सिट्ठं सयराहं चेव अमरिसवसेण ।
पइरिक्के नरवइणो जहट्ठियं चेव दूएण ॥६११॥
सोऊण इमं वयणं विरसं दूयमुहनिग्गयं तस्स ।
हिययम्मि तक्खणं चिय अहियं कोवाणलो [1]जाओ ॥७१२॥
धीरधरिओ वि रोसो कहवि पयत्तेण निययहिययम्मि ।
विसमफुरियाहरोट्ठं पायडभिउडीए पायडिओ ॥६१३॥
जायं च पयइसोमं पि भीसणं तक्खणम्मि से वयणं ।
कोवाणलदुप्पेच्छं पलयम्मि मियंकबिम्बं व ॥६१४॥
हंतूण करेण करं कहकहवि खलंतवण्णसंचारं ।
भणियं च णेण अम्ह वि मणोरहो चेव एसो त्ति ॥६१५॥

कुपितश्च ततो दूतो यमलोकं प्रस्थितस्त्वं नूनम् ।
रोडसि[2] (अनाद्रियसे) यः कुमारं इति भणितं निर्गत एव ॥६१०॥
आगत्य च शिष्टं शीघ्रमेवामर्षवशेन ।
परिरिक्ते नरपतेर्यथास्थितमेव दूतेन ॥६११॥
श्रुत्वेदं वचनं विरसं दूतमुखनिर्गतं तस्य ।
हृदये तत्क्षणमेवाधिकं कोपानलो जातः ॥६१२॥
धैर्यधृतोऽपि रोषः कथमपि प्रयत्नेन निजहृदये ।
विषमस्फुरिताधरोष्ठं प्रकटभृकुटया प्रकटितः ॥६१३॥
जातं च प्रकृतिसौम्यमपि भीषणं तत्क्षणे तस्य वदनम् ।
कोपानलदुष्प्रेक्ष्यं प्रलये मृगाङ्कबिम्बमिव ॥६१४॥
हत्वा करेण करं कथं कथमपि स्खलद्वर्णसञ्चारम् ।
भणितं च तेनास्माकमपि मनोरथ एव एष इति ॥६१५॥

तब दूत क्रुद्ध होकर—'तुम कुमार का अनादर कर रहे हो अतः निश्चित रूप से यमलोक में जाओगे' —यह कह कर निकल गया। अमर्ष के वश होकर दूत ने शीघ्र ही राजा से यथास्थित बात कह सुनायी। दूत के मुख से निकले हुए इस विरस वचन को सुनकर उसके हृदय में उसी क्षण अत्यधिक क्रोधाग्नि उत्पन्न हुई। अपने हृदय में प्रयत्न से धैर्यपूर्वक धारण किया भी रोष विषमरूप से फड़कते हुए अधरोष्ठ तथा प्रकट हुई भृकुटी से प्रकट हो गया। स्वभाव से सौम्य भी उसका मुख उसी क्षण भीषण हो गया। प्रलयकाल में चन्द्रबिम्ब के समान क्रोधरूपी अग्नि के कारण उसका मुख कठिनाई से देखा जानेवाला हो गया। हाथ से हाथ को मारकर फिसलती हुई जबान से उसने कहा कि हमारा भी यही मनोरथ है ॥६१०-६१५॥

---

१. जलिओ—क। २. रोड् अनादरे हैमधातुपाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बिइयदियहम्मि घट्ठो दोसु वि य बलेसु तह य संगामो ।
गरुया कया पसाया दोहि वि सुहडेहि भिच्चाणं ॥६१६॥

दाणं च बहुवियप्पं दिन्नं दीणस्स अत्थिनिवहस्स ।
रणदिक्खसंठियाणं तुरियं रयणी अइक्कंता ॥६१७॥

ताव य विसालमयगलगलंतमयसलिलपसमियरयाइं ।
पुलइयतरलतुरंगमगमणविसंवइयचंदाइं[1] ॥६१८॥

पढमपइट्ठियसारहिरहरहसारूढपत्थिवसयाइं ।
निसियासिकुंतपट्टिसमऊहविज्जोवियदिसाइं[2] ॥६१९॥

धुव्वंतधवलधयवडचलिरबलाओलिजणियसंकाइं ।
उद्दामसद्दबंदिणवंद्रसमुग्घुट्ठनामाइं ॥६२०॥

पहयपडुपडहपडिरवभरियदिसायक्कबहिरियजयाइं ।
सामिपसायपसाइयपत्तिसमुब्भिन्नपुलयाइं ॥ ६२१॥

द्वितीयदिवसे घोषितो द्वयोरपि च बलयोस्तथा च संग्रामः ।
गुरुकाः कृताः प्रसादा द्वयोरपि सुभटैर्भृत्यानाम् ॥६१६॥

दानं च बहुविकल्पं दत्तं दीनस्यार्थिनिवहस्य ।
रणदीक्षासंस्थितानां त्वरितं रजन्यतिक्रान्ता ॥६१७॥

तावच्च विशालमदकलगलद्मदसलिलप्रशमितरजस्कानि ।
पुलकिततरलतुरङ्गमगमनविसंवादितचन्द्राणि ॥६१८॥

प्रथमप्रतिष्ठितसारथिरथरभसारूढपार्थिवशतानि ।
निशितासिकुन्तपट्टिशमयूखविद्योतितदिशानि ॥६१९॥

धूयमानधवलध्वजपटचलद्बलाकालिजनितशङ्कानि ।
उद्दामशब्दबन्दिवन्द्रसमुद्घोषितनामानि ॥६२०॥

पहतपटुपटहप्रतिरवभृतदिक्चक्रबधिरितजगन्ति ।
स्वामिप्रसादप्रसादितपार्थिवसमुद्भिन्नपुलकानि ॥६२१॥

दूसरे दिन दोनों सेनाओं का संग्राम घोषित हुआ। दोनों ओर के सुभटों ने भृत्यों पर अत्यधिक कृपा की और दीन व्यक्तियों तथा याचकों को अनेक प्रकार का दान दिया। रणदीक्षा में स्थित हुए लोगों की शीघ्र ही रात्रि बीत गयी। विशाल मतवाले हाथियों के गण्डस्थलों से गिरते हुए मद के जल से धूलि शान्त हो गयी। पुलकित चंचल घोड़ों के गमन से चन्द्र निराश हो गया। जिन पर पहले से सारथी बैठे हुए थे ऐसे रथों पर वेग से सैकड़ों राजा बैठ गये। तीक्ष्ण तलवार, कुन्त और भालों की किरणों से दिशाएँ चमक उठीं। फहराती हुई सफेद ध्वजाओं के वस्त्र चलती हुई बगुलों की पंक्ति की शंका उत्पन्न कर रहे थे। बन्दिसमूह के उत्कट शब्दों से नामों की घोषणा हो रही थी। पीटे गये विशाल नगाड़े की प्रतिध्वनि से भरी हुई दिशाओं के कारण संसार बहरा हो रहा था। स्वामी की कृपा से प्रसन्न हुए राजाओं के रोमांच प्रकट हो रहा था ॥६१६-६२१॥

1. -चंदाइं—क। २. -मदाइं—क।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूरुग्गमवेलाए धणियं अन्नोन्नबद्धवेराइं ।
आवडियाइ सहरिसं परोप्परं दोन्नि वि बलाइं ॥ ६२२॥

जायं च महासमरं सरनियरोत्थइयनहयलाभोयं ।
निसियासिपहरदारियपडंतवरदरियपाइक्कं ॥६२३॥

तुरयारूढमहाभडसेल्लसमुब्भिन्नमत्तमायंगं ।
मायंगचलणचमढणभीयविसट्टंतभीरुजणं ॥६२४॥

रहसारहिधणुपेसियखुरुप्पछिज्जंतछत्तधयनिवहं ।
निवहट्ठियनियसाहणसरहससम्मिलियनरणाहं ॥६२५॥

एहि इओ किं इमिणा हक्कारिज्जंतवलियभडनियरं ।
अन्नोन्नगंधजिघणमच्छरियपहावियगइंदं ॥ ६२६॥

परितुट्ठसुहडपुलइयरुहिरारुणविसमनच्चिरकबंधं ।
अन्नोन्नरहसपरिणयगइंदविगलियभडइंधं ॥६२७॥

सूरोद्गमवेलायां गाढमन्योन्यबद्धवैराणि ।
आपतितानि सहर्षं परस्परं द्वयोरपि बलानि ॥६२२॥

जातं च महासमरं शरनिकरोत्स्थगितनभस्तलाभोगम् ।
निशितासिप्रहारदारितपतद्दृप्तपदातिकम् ॥६२३॥

तुरगारूढमहाभट कुन्तसमुद्भिन्नमत्तमातङ्गम् ।
मातङ्गचरणमर्दनभीतपतद्भीरुजनम् ॥६२४॥

रथसारथिधनुःप्रेषितक्षुरप्र (बाणविशेष) छिद्यमानछत्रध्वजनिवहम् ।
निवहस्थितनिजसाधनसरभससम्मिलितनरनाथम् ॥६२५॥

एहि इतः किमनेन [इति] आकार्यमाणवलितभटनिकरम् ।
अन्योन्यगन्धघ्राणमत्सरितप्रधावितगजेन्द्रम् ॥६२६॥

परितुष्टसुभटपुलकितरुधिरारुणविषमनृत्यत्कबन्धम् ।
अन्योन्यरभसपरिणतगजेन्द्रविगलद्भटचिह्नम् ॥६२७॥

सूर्योदय की वेला में एक दूसरे के प्रति गाढ़ वैर में बंधी दोनों ओर की सेनाएँ हर्षित होती हुई आ गयीं और परस्पर महायुद्ध आरम्भ हो गया। उस समय आकाश का विस्तार बाणों से स्थगित हो गया, तीक्ष्ण तलवारों के प्रहार से विदीर्ण हुए श्रेष्ठ अभिमानी पैदल सिपाही गिरने लगे। घोड़े पर सवार महायोद्धाओं के कुन्तों (भालों) से मतवाले हाथी भिद गये। हाथियों के पैरों तले दबने से भयभीत हुए डरपोक आदमी गिरने लगे। रथों के सारथियों के धनुषों से प्रेषित क्षुरप्र नामक बाणविशेषों से ध्वजाओं का समूह छिदने लगा। समूह में स्थित राजा अपनी सेना से शीघ्र मिलने लगा। इससे क्या, इधर आओ—इस प्रकार योद्धाओं का समूह मुड़कर (एक-दूसरे को) बुलाने लगा। एक दूसरे की गन्ध को सूँघने से मात्सर्ययुक्त हुए हाथी दौड़ने लगे। सन्तुष्ट हुए योद्धाओं के खून से लाल धड़ पुलकित हो विषम नृत्य करने लगे। हाथियों के एक दूसरे पर वेग से झपटने के कारण योद्धाओं के चिह्न नष्ट हो गये ॥६२२-६२७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमिसगंधवसागयबहुरावारावबहिरियदियंतं ।
बहुकंकगिद्धवायससहस्ससंछाइयनहग्गं ॥ ६२८॥
एवंविहम्मि समरे मुत्तावीढेण दप्पियं पि दढं ।
उट्ठेऊण य निहयं[1] सेणबलं अमरिसवसेण ॥६२९॥
भग्गम्मि सेणराया बंदिसमुग्घुट्ठपवरनियगोत्तो ।
समुवट्ठिओ समाहयतूररवप्फुण्णसव्वदिसं ॥६३०॥
आवडियं तेण समं तो समरं मुक्कतियसकुसुमोहं ।
पडिभडसंघडियभडोहसंकुलं तक्खणं चेव ॥६३१॥
आयण्णायड्ढियजीवकोडिचक्कलियचावमुक्केहिं ।
अप्फुण्णं गयणयलं सरेहि घणजलहरेहिं व ॥ ६३२॥
वरतुरयखरखुरुक्खयधरणिरओहेण[2] ठइयसुरसिद्धं ।
संजणियबहलतिमिरं भरियाइ नहंतरालाइं ॥६३३॥

आमिषगन्धवशागत[3] बहुरावारावबधिरितदिगन्तम् ।
बहुकङ्कगृध्रवायससहस्रसंछादितनभोऽग्रम् ॥६२८॥
एवंविधे समरे मुक्तापीठेन दर्पितमपि दृढम् ।
उत्थाय च निहतं सेनबलममर्षवशेन ॥६२९॥
भग्ने (सैन्ये) सेनराजो बन्दिसमुद्घोषितप्रवरनिजगोत्रः ।
समुपस्थितः समाहततूर्यरवापूर्णसर्वदिशम् ॥६३०॥
आपतितं तेन समं ततः समरं मुक्तत्रिदशकुसुमौघम् ।
प्रतिभटसंघटितभटौघसंकुलं तत्क्षणमेव ॥६३१॥
आकर्णाकृष्टजीवाकोटिवक्रीकृत[4]चापमुक्तैः ।
आपूर्णं गगनतलं शरैर्घनजलधरैरिव ॥६३२॥
वरतुरगखरखुरोत्खातधरणीरजओघेन स्थगितसुरसिद्धम् ।
सञ्जनितबहलतिमिरं भृतानि नभोऽन्तरालानि ॥६३३॥

मांस की गन्ध के वश आये हुए, अनेक प्रकार के शब्दों से दिशाओं के छोर को बहरा करते हुए, कई हजार कंक, गीध और कौओं से आकाश का अग्रभाग ढक गया। इस प्रकार के युद्ध में मुक्तापीठ अत्यधिक गर्वयुक्त हो क्रोधवश बढ़कर सेना को मारने लगा। सेना के नष्ट होने पर बन्दियों द्वारा जिसके उत्कृष्ट स्वकीय गोत्र की घोषणा की गयी थी ऐसा सेन राजा बजाये हुए वाद्यों के शब्द से दिशाओं को पूरता हुआ उपस्थित हुआ। अनन्तर मुक्तापीठ के साथ उसका युद्ध हुआ। देवताओं ने फूल बरसाये। योद्धाओं का समूह उसी क्षण प्रतिपक्षी योद्धाओं से भिड़कर व्याप्त हो गया। कानों तक खींची गयी प्रत्यंचा के कारण गोलाकार हुए धनुषों से छोड़े गये बाणों से आकाशतल उसी तरह व्याप्त हो गया, जिस तरह घने मेघों से व्याप्त हो जाता है। श्रेष्ठ अश्वों के खुरों से ऊपर उड़ी हुई धरातल की धूलि-समूह से सुर और सिद्धों (के मार्ग) अवरुद्ध हो गये, गहरा अन्धकार आकाश के अन्तरालों में भर गया ॥६२८-६३३॥

१. भग्गं—क । २. थयइ—क । ३. बहुरावा (दे.) शृगाली । ४. चक्कलिय (दे.) चक्रीकृतः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्नोन्नावडणखणक्खणंतकरवालनिवहसंजणिओ ।
तडिनियरो व्व समंता विप्फुरिओ सिहिफुलिंगोहो ॥६३४॥

रणतूररवायण्णणदूरुद्धयघोलिरग्गघोरकरा ।
मेह व्व गुलुगुलिता रसिसु वरमत्तमायंगा ॥ ६३५॥

तिक्खखुरुप्पुक्खुडिया रहाण धुव्वंतया चिरं नट्ठा ।
सरघणजालंतरिया धवलधया रायहंस व्व ॥६३६॥

सुहडासिवियडदारियकुंभयडा गरुयजलयनिवह व्व ।
वरिसिसु वरगइंदा जलं व मुत्ताफलुग्घायं ॥ ६३७॥

निहयहयहत्थिपाइक्कचक्कवणविवरनिज्झरपलोट्टा ।
वरभडसीसुक्कत्तियसिरयसमुल्लसियसेवाला ॥६३८॥

मायंगकरप्फालणविसमसमुत्थल्लहल्लिरतरंगा ।
गयदंतावरवडिया लोलंतुच्छलियडिण्डीरा ॥६३९॥

अन्योन्यापतनखणखणत्करवालनिवहसञ्जनितः ।
तडिन्निकर इव समन्ताद् विस्फुरितः शिखिस्फुलिङ्गौघः ॥६३४॥

रणतूर्यरवाकर्णनदूरोद्धतभ्राम्यदग्रघोरकराः ।
मेघा इव गलुगुलन्तोऽरसिषुर्मत्तमातङ्गाः ॥६३५॥

तीक्ष्णक्षुरप्रोत्खण्डिता रथानां धूयमानाश्चिरं नष्टाः ।
शरघनजालान्तरिता धवलध्वजा राजहंसा इव ॥६३६॥

सुभटासिविकटदारितकुम्भतटा गुरुकजलदनिवहा इव ।
अवर्षिषुर्वरगजेन्द्रा जलमिव मुक्ताफलोद्घातम् ॥६३७॥

निहतहयहस्तिपदातिचक्रव्रणविवरनिर्झरपर्यस्ताः ।
वरभटशीर्षोत्कर्तितशिरोजसमुल्लसितशैवाला ॥६३८॥

मातङ्गकरास्फालनविषमसमुच्छलच्चलत्तरङ्गा ।
गजदन्तावरपतिता लोलदुच्छलितडिण्डीरा ॥६३९॥

एक दूसरे पर गिरायी हुई 'खन खन' करती तलवारों के समूह से उत्पन्न अग्नि की चिनगारियाँ चारों ओर बिजली के समूह के समान चमक उठीं। युद्ध के वाद्यों को सुनकर अपनी विकट सूँड़ों को ऊपर उठाकर घुमाते हुए मतवाले हाथी अत्यधिक शब्द करनेवाले मेघों के समान दहाड़ने लगे। रथों की फहराती हुई सफेद ध्वजाएँ पैने क्षुरप्र नामक बाणों से उखाड़ी जाती हुई, बाणरूपी मेघसमूह में छिपे हुए राजहंसों की तरह चिरकाल के लिए नष्ट हो गयीं। योद्धाओं की तलवारों से जिनका भयंकर कुम्भस्थल विदीर्ण कर दिया गया था, ऐसे उत्तम हाथी भारी मेघसमूह के द्वारा की गयी जलवृष्टि के समान मोतियों के समूह की वर्षा करने लगे। मारे गये घोड़े, हाथी तथा पैदल सैनिक-समूह के घावों के छिद्रों से झरने बहने लगे। श्रेष्ठ योद्धाओं के सिरों के काटे गये बाल शैवाल की तरह प्रतीत होने लगे। हाथियों द्वारा सूँड़ों के चलाने से भयंकर चंचल तरंगें उछलने लगीं। श्रेष्ठ हाथीदाँतों के गिरने से चंचल फेनपिण्ड उछलने लगे ॥६३४-६३९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुंजरवरवियडतडा विउडियभडविडवपायडियकूला ।
करिमयपंककखउरा[1] रुहिरवसावाहिणी वूढा ॥६४०॥
इय भीसणसंगामे जलहरसमए व्व निहयनियसेन्ने ।
गाढं मुत्तावीढो सेणकुमारेण पडिरुद्धो ॥६४१॥
आयारेऊण दढं काउं सुरसिद्धबहुमयं जुज्झं ।
पडिपहरं पहरंतो पहओ तिक्खेण खग्गेण ॥६४२॥
तत्तो य विसमदट्ठोट्ठभिउडिरत्तंतनेत्तदुप्पेच्छो ।
आयड्ढेंतो पडिओ मुच्छाविहलो महीवट्ठे ॥६४३॥
उग्घट्ठो जयसद्दो जियं कुमारेण पेच्छयजर्णेहिं ।
जयसिरिपवेसमंगलतूरं व समाहयं तूरं ॥ ६४४॥

कुमारेण वि य मुत्तावीढपोरुसायड्ढियहियएण तालयंटवाएण चंदणसलिलाब्भुक्खणेण सयमेवासासिओ मुत्तावीढो । लद्धा णेणं चेयणा । भणिओ कुमारेण—साहु भो नरिंद, साहु अणुचिट्ठियं

कुञ्जरवरविकटतटा विकुटितभटविटपप्रकटितकूला ।
करिमदपङ्ककलुषिता रुधिरवसावाहिनी व्यूढा (प्रवृत्ता) ॥६४०॥
इति भीषणसंग्रामे जलधरसमये इव निहतनिजसैन्यो ।
गाढं मुक्तापीठः सेनकुमारेण प्रतिरुद्धः ॥६४१॥
आकार्य दृढं कृत्वा सुरसिद्धबहुमतं युद्धम् ।
प्रतिपहारं प्रहरन् प्रहतस्तीक्ष्णेन खड्गेन ॥६४२॥
ततश्च विषमदष्टौष्ठरक्तान्तनेत्रदुष्प्रेक्षः ।
आकृषन् पतितो मूर्च्छाविह्वलो महीपृष्ठे ॥६४३॥
उद्घोषितो जयशब्दो जितं कुमारेण प्रेक्षकजनैः ।
जयश्रीप्रवेशमङ्गलतूर्यमिव समाहतं तूर्यम् ॥६४४॥

कुमारेणापि च मुक्तापीठपौरुषाकृष्टहृदयेन तालवृन्तवातेन चन्दनसलिलाभ्युक्षणेन स्वयमेवाश्वस्तो मुक्तापीठः । लब्धा तेन चेतना । भणितः कुमारेण—साधु भो नरेन्द्र ! साध्वनुष्ठितं

श्रेष्ठ हाथियों के भयंकर तट से नष्ट हुए योद्धारूपी वृक्षों से किनारे प्रकट हो गये । हाथियों के मदरूपी कीचड़ से कलुषित हुई खून और चरबी की नदी बहने लगी। इस प्रकार वर्षाकाल के समान भीषण संग्राम में अपनी सेना के मारे जाने पर मुक्तापीठ सेनकुमार के द्वारा दृढ़तापूर्वक रोक लिया गया । ललकार कर सुरों और सिद्धों के द्वारा मान्य किये गये युद्ध को दृढ़ करके प्रतिक्षण तीक्ष्ण तलवारों से परस्पर प्रहार करते हुए मारने लगे। अनन्तर भयंकर दाँत, ओठ और लाल नेत्रप्रान्त से कठिनाई से देखे जानेवाला मुक्तापीठ खींचा जाने पर मूर्च्छा से विह्वल हो पृथ्वीतल पर गिर गया । 'कुमार ने (मुक्तापीठ को) जीत लिया'—इस प्रकार दर्शक जनों ने जय शब्द की घोषणा की। विजयलक्ष्मी के प्रवेश के समय बजाये जानेवाले मंगलवाद्यों के समान बाजे बजाये गये ॥६४०-६४४॥

मुक्तापीठ के पुरुषार्थ से जिसका हृदय आकृष्ट था, ऐसे कुमार ने पंखे की हवा कर चन्दन के जल को सींचकर मुक्तापीठ को स्वयं आश्वस्त किया । उसे होश आया । कुमार ने कहा—'हे नरेन्द्र ! ठीक है, तुमने

---

1. खउरा (दे.) कलुषिता ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुमए नरिंदाणुरूवं, न मुक्को पुरिसयारो, न पडिवन्नं दीणत्तणं; उज्जालिया पुव्वपुरिसट्ठिई। गहियं मए इमं रज्जं, न उण तुज्झ कित्ती। ता न संतप्पियव्वं तुमए। विसेणराइणो वि अहिओ भाय तुमं ममं ति। सबहुमाणमेव नेयाविओ आवासं। बद्धा वणपट्टया, पूइऊण पेसिओ निययरज्जं।

भणिओ अमरगुरू—अज्ज, गवेसिऊण पेसेहि चंपाए विसेणमहारायं। तेण भणियं—जं देवो आणवेइ। अवि य, देव, तुम्हाणं पि जुत्तमेव चंपागमणं। तहिं गओ सयमेव कुमारं पेसइस्सइ महाराओ। सेणकुमारेण भणियं—अज्ज, गच्छामो चंपं। महाराओ पुण विसेणो, जस्स ताएण अहिसेओ कओ त्ति। मंतिणा भणियं—जं देवो आणवेइ। पेसिया णेण विसेणसमीवं केइ पुरिसा, भणिया य एए। वत्तव्वो तुब्भेहिं कुमारो, जहा देवो आणवेइ 'एहि, पिइपियामहोवज्जियं रज्जं कुणसु त्ति। गया ते विसेणसमीवं।

कुमारसेणो वि अणवरयपयाणएहिं समागओ चंपं। परितुट्ठा पउरजणवया, निग्गया पच्चोणिं, पूइया कुमारेण। विन्नत्तो य णेहिं—देव, पविससु त्ति। कुमारेण भणियं—अपविट्ठे महारायविसेणम्मि

त्वया नरेन्द्रानुरूपम्, न मुक्तः पुरुषकारः, न प्रतिपन्नं दीनत्वम्, उज्ज्वालिता पूर्वपुरुषस्थितिः। गृहीतं मयेदं राज्यम्, न पुनस्तव कीर्तिः, ततो न सन्तप्तव्यं त्वया। विषेणराजादपि अधिको भ्राता त्वं ममेति। सबहुमानं नायित आवासम्। बद्धा व्रणपट्टाः। पूजयित्वा प्रेषितो निजराज्यम्।

भणितोऽमरगुरुः—आर्य! गवेषयित्वा प्रेषय चम्पायां विषेणमहाराजम्। तेन भणितम्—यद्देव आज्ञापयति। अपि च, देव! युष्माकमपि युक्तमेव चम्पागमनम्। तत्र गतः स्वयमेव कुमारं प्रेषयिष्यति महाराजः। सेनकुमारेण भणितम्—आर्य! गच्छामो चम्पाम्, महाराजः पुनर्विषेणः, यस्य तातेनाभिषेकः कृतः इति। मन्त्रिणा भणितम्—यद्देव आज्ञापयति। प्रेषितास्तेन विषेणसमीपं केऽपि पुरुषाः, भणिताश्चैते। वक्तव्यो युष्माभिः कुमारः, यथा देव आज्ञापयति 'एहि पितृपितामहोपार्जितं राज्यं कुरु' इति। गतास्ते विषेणसमीपम्।

कुमारसेनोऽपि अनवरतप्रयाणकैः समागतश्चम्पाम्। परितुष्टाः पौरजनव्रजाः। निर्गताः सम्मुखम्। पूजिताः कुमारेण। विज्ञप्तश्च तैः—देव! प्रविशेति। कुमारेण भणितम्—अप्रविष्टे

राजा के अनुरूप उचित कार्य किया, पुरुषार्थ को नहीं छोड़ा, दीन भाव को प्राप्त नहीं हुए, पूर्वजों की मर्यादा को प्रकाशित किया। मैंने इस राज्य को ले लिया है, तुम्हारी कीर्ति को नहीं, अतः तुम्हें दुःखी नहीं होना चाहिए। विषेण राजा से भी अधिक (प्यारे) तुम मेरे भाई हो। (इस प्रकार) आदरपूर्वक निवास पर ले गये। घावों पर पट्टी बाँधी। पूजा कर अपने राज्य को भेज दिया।

(कुमार ने) अमरगुरु से कहा—'आर्य! ढूँढ़कर चम्पा में विषेण महाराज को भेजो।' उसने कहा—'जो महाराज की आज्ञा। दूसरी बात यह है महाराज कि आपका भी चम्पा जाना उचित ही है। वहाँ पर जाने पर महाराज स्वयं ही कुमार को भेजेंगे।' सेनकुमार ने कहा—'आर्य, चम्पा को चलते हैं, किन्तु महाराज विषेण ही हैं, जिनका पिता जी ने अभिषेक किया है।' मन्त्री ने कहा—'जो महाराज आज्ञा दें।' उसने विषेण के पास कुछ आदमियों को भेजा और इन लोगों से कहा कि आप लोग कुमार से कहिए कि महाराज आज्ञा देते हैं—'आओ, पितृपितामह द्वारा उपार्जित राज्य को करो।' वे विषेण के पास गये।

कुमारसेन भी निरन्तर गमन करते हुए चम्पानगरी में आया। नगरवासियों के समूह आनन्दित हुए। सामने निकले। कुमार ने सम्मान किया। उन्होंने निवेदन किया—'महाराज! प्रवेश कीजिए।' कुमार ने कहा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न जुत्तं मे पविसिउं। तेहि वि य विरत्तचित्तेहिं होऊण विसेणं पइ कुमारसेणस्स महाणुभावयं नाऊण 'अम्हाणं चेव भवियव्वया, जं कुमारो एवं मंतइ' त्ति चिंतिऊण अभिप्पेयं भणियं—देवो चेव बहु जाणइ त्ति। आवासिओ बाहिरियाए। अइक्कंता कइवि वासरा। समागया ते विसेणसमोवमणुपेसिया पुरिसा। निवेइयं च णेहिं अमरगुरुणो, जहा कयंगलाए नयरीय दिट्ठो कुमारो त्ति। विन्नाओ णेणं कुओवि एसो देवपरक्कमो। विवेइओ य से अम्हेहिं अज्जसंदेसओ। तओ दूमिओ विसेणो, पयइविद्दाणं पि मिलाणं से वयणं। पावेण विय गहिओ मच्छरेण। निरुद्धा से भारही। कहकहवि जंपियमणेण। नाहमेवं परभुयबलोवज्जियं करेमि रज्जं। ता गच्छह तुब्भे, न य पुणो वि आगंतव्वं ति। भणिऊण अबहुमाणं च नीसारिया अम्हे। संपइ अज्जो पमाणं ति। अमच्चेण चिंतियं—अभव्वो खु सो इमोए संपयाए, जम्मंतरवेरिओ विय महारायस्स। ता इमं चेव निवेएमि देवस्स त्ति। निवेइयं च णेण। 'निप्फलो मे परिस्समो' त्ति विसण्णो कुमारो। भणियं च णेण—अज्ज, अंधयारनच्चियं खु एयं; विणा ताएण महारायविसेणेण य को गुणो रज्जेणं ति। अमच्चेण भणियं—एवमेयं, तहावि

महाराजविषेणे न युक्तं मया प्रवेष्टुम्। तैरपि च विरक्तचित्तैर्भूत्वा विषेणं प्रति कुमारसेनस्य महानुभावतां ज्ञात्वा 'अस्माकमेव भवितव्यता, यत् कुमार एवं मन्त्रयति' इति चिन्तयित्वाऽभिप्रेतं भणितं 'देव एव बहु जानाति' इति। आवासितो बाहिरिकायाम्। अतिक्रान्ताः कत्यपि वासराः। समागतास्ते विषेणसमीपमनुप्रेषिताः पुरुषाः। निवेदितं च तैरमरगुरवे, यथा कृतङ्गलायां नगर्यां दृष्टः कुमार इति। विज्ञातस्तेन कुतोऽप्येष देवपराक्रमः। निवेदितश्च तस्यास्माभिरार्यसन्देशकः। ततो दूनो विषेणः, प्रकृतिविद्राणमपि (निस्तेजस्कमपि) म्लानं तस्य वदनम्। पापेनेव गृहीतो मत्सरेण। निरुद्धा तस्य भारती। कथंकथमपि जल्पितमनेन—नाहमेवं परभुजबलोपार्जितं करोमि राज्यम्। ततो गच्छत यूयम्, न च पुनरप्यागन्तव्यमिति। भणित्वाऽबहुमानं च निःसारिता वयम्। सम्प्रत्यार्यः प्रमाणम्। अमात्येन चिन्तितम्—अभव्यः खलु सोऽस्याः सम्पदः, जन्मान्तरवैरिक इव महाराजस्य। तत इदमेव निवेदयामि देवस्येति। निवेदितं च तेन। 'निष्फलो मे परिश्रमः' इति विषण्णः कुमारः। भणितं च तेन—आर्य ! अन्धकारनर्तितं खल्वेतत्, विना तातेन महाराजविषेणेन च को गुणो

'महाराज विषेण के प्रवेश न करने पर मेरा प्रवेश करना उचित नहीं है।' उन्होंने भी विरक्त चित्त होकर कुमारसेन की विषेण के प्रति महानुभावता को जानकर 'हमारी ही होनहार है जो कुमार इस प्रकार कह रहे हैं' ऐसा सोचकर इष्ट बात कही—'महाराज ही अधिक जानते हैं।' नगर के बाहरी प्रदेश में ठहरे। कुछ दिन बीत गये। विषेण के पास भेजे गये वे पुरुष आ गये। उन्होंने अमरगुरु से निवेदन किया कि कृतमंगला नगरी में कुमार दिखाई दिये। इन्होंने कहीं से महाराज का पराक्रम जान लिया है। उनसे हम लोगों ने आर्य का सन्देश निवेदन किया। अनन्तर विषेण दुःखी हुआ, स्वभाव से निस्तेज होने पर उसका मुख और भी फीका पड़ गया। पाप के समान ईर्ष्या ने ग्रस लिया। उसकी वाणी रुद्ध हो गयी। उसने जिस किसी प्रकार कहा—'मैं दूसरों की भुजाओं से उपार्जित राज्य नहीं करता हूँ। अतः तुम लोग जाओ, पुनः मत आना।' इस प्रकार कहकर निरादरपूर्वक हमलोगों को निकाल दिया। आप ही प्रमाण हैं।' मन्त्री ने सोचा—वह (राज्य) सम्पदा के योग्य नहीं है मानो महाराज का दूसरे जन्म का बैरी है। तो यही महाराज से निवेदन करता हूँ। मन्त्री ने निवेदन कर दिया। 'मेरा परिश्रम निष्फल हुआ' इस प्रकार कुमार दुःखी हुआ। उसने कहा—'आर्य ! यह तो अन्धकार में नृत्य करने जैसा हुआ, पिता जी और महाराज विषेण के बिना राज्य में कौन-सा गुण है?' मन्त्री ने कहा—'यह ठीक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एसा जीवलोयट्ठइ त्ति। परिच्चयउ विसायं देवो। पयापरिरक्खणं पि फलं चेव महापुरिसाणं ति। कुमारेण भणियं—अज्ज, सपुण्णपरिरक्खियाओ धन्नाओ पयाओ।

एत्थंतरम्मि कुओइ कुमारवुत्तं आयण्णिय 'महापुरिसो खु एसो, उचिओ संजमधुराए, कयं च णेण निरत्थयं अहिगरणं; ता उद्धरेमि एयं संसाराओ' त्ति करुणापवन्नहियओ परियरिओ अणेयसाहूहिं समागओ कुमारस्स चुल्लबप्पो हरिसेणायरिओ त्ति। ठिओ नट्ठसोए काणणे। विन्नाओ लोएण, जहा एसो भयवं हरिसेणरायरिसि त्ति। सवणपरंपराए य समागओ लोयपउत्तिपरियाणणापउत्ताणं सवणगोयरं। गवेसिओ णेहिं जाव दिट्ठो त्ति। तओ निवेइयं पडिहारीए, तीए वि य कुमारसेणस्स। हरिसिओ कुमारो। विइन्नं पारिओसियं पडिहारीए निउत्तपुरिसाण य। भणिओ णेण अमरगुरू—अज्ज, अणब्भा अमयवुट्ठी तायागमणं। तेण भणियं—देव, धन्नो तुमं, भायणं कल्लाणाणं। कुमारेण भणियं—ता एहि, वंदामि तायं, करेमि सफलं जीवलोयं ति। अमच्चेण भणियं—जं देवो आणवेइ। गओ नट्ठसोयं काणणं। दिट्ठो य णेण सारओदयं विय विसुद्धचित्तो विरहिओ मोहतिमिरेणं

राज्येनेति। अमात्येन भणितम्—एवमेतद्, तथाप्येषा जीवलोकस्थितिरिति। परित्यजतु विषादं देवः। प्रजापरिरक्षणमपि फलमेव महापुरुषाणामिति। कुमारेण भणितम्—आर्य! स्वपुण्यपरिरक्षिता धन्याः प्रजाः।

अत्रान्तरे कुतश्चित् कुमारवृत्तान्तमाकर्ण्य 'महापुरुषः खल्वेषः, उचितः संयमधुरः, कृतं च तेन निरर्थकमधिकरणम्, तत उद्धराम्येतं संसाराद्' इति करुणाप्रपन्नहृदयः परिवृतोऽनेकसाधुभिः समागतः कुमारस्य लघुपिता (पितृव्यः) हरिषेणाचार्य इति। स्थितो नष्टशोके कानने। विज्ञातो लोकेन, यथैष भगवान् हरिषेणराजर्षिरिति। श्रवणपरम्परया च समागतो लोकप्रवृत्तिपरिज्ञानप्रयुक्तानां श्रवणगोचरम्। गवेषितस्तैर्यावद् दृष्ट इति। ततो निवेदितं प्रतीहार्या, तयापि च कुमारसेनस्य। हृषितः कुमारः। वितीर्णं पारितोषिकं प्रतीहार्या नियुक्तपुरुषाणां च। भणितस्तेनामरगुरुः—आर्य! अनभ्रा अमृतवृष्टिस्ततातागमनम्। तेन भणितम्—देव! धन्यस्त्वम्, भाजनं कल्याणानाम्। कुमारेण भणितम्—तत एहि, वन्दे तातम्, करोमि सफलं जीवलोकमिति। अमात्येन भणितम्—यद्देव आज्ञापयति। गतो नष्टशोकं काननम्। दृष्टस्तेन शारदोदकमिव विशुद्धचित्तो विरहितो

है, फिर भी यह संसार की स्थिति है। महाराज विषाद छोड़ें। प्रजा की रक्षा भी महापुरुषों का फल ही है।' कुमार ने कहा—'आर्य! अपने ही पुण्यों से रक्षित प्रजा धन्य है।'

इसी बीच कहीं से कुमार के वृत्तान्त को सुनकर 'यह महापुरुष है, संयम का भार धारण करने के योग्य है। उसने निरर्थक निर्णय किया है, अतः उसे संसार से निकालता हूँ—इस प्रकार करुणा से पूर्ण हृदयवाले चाचा हरिषेणाचार्य अनेक साधुओं के साथ कुमार के पास आये। नष्टशोक नामक उद्यान में ठहर गये। लोगों को ज्ञात हुआ कि ये भगवान् हरिषेण राजर्षि हैं। लोक की प्रवृत्ति की जानकारी के लिए प्रयुक्त लोगों के कान में यह बात श्रवण-परम्परा से आयी। उन्होंने राजर्षि की खोज की और उनके दर्शन किये। अनन्तर प्रतीहारी से निवेदन किया। प्रतीहारी ने भी कुमारसेन से निवेदन किया। कुमार हर्षित हुआ। प्रतीहारी तथा नियुक्त पुरुषों को पारितोषिक दिया। कुमार ने अमरगुरु से कहा—'आर्य! चाचा जी का आगमन बिन बादल वर्षा के समान है।' अमरगुरु ने कहा—'महाराज! आप धन्य हैं, कल्याणों के पात्र हैं।' कुमार ने कहा—'तो आओ, तात की वन्दना करें, संसार को सफल बनायें।' मन्त्री ने कहा—'जो महाराज की आज्ञा।' कुमार नष्टशोक उद्यान में गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संगओ नाणसंपयाए निरइयारबंभयारी परिणओ सुद्धभावणाहिं संखविसेसो विय निरंजणो अपडिबद्धो उभयलोएसुं निदंसणं धम्मनिरयाणं चिंतामणी सिस्सवग्गस्स मुत्तिमंतो विय मुत्तिमग्गो भयवं हरिसेणायरिओ त्ति। वंदिओ अच्चंतसोहणं झाणमणुहवंतेणं कुमारेणं। धम्मलाहिओ य णेणं। तओ भयवंतमवलोइऊण रोमंचिओ कुमारो। समागयं आणंदबाहं। भणिओ य भयवया—वच्छ, भावधम्मो विय सयलचेट्ठासुंदरो तुमं, जेण तुह निग्गमणनिव्वेयाइसएण मए पत्तं समणत्तणं। उवाएयं च एयं पयइनिग्गुणे संसारवासम्मि, न पुण किंचि अन्नं। किलेसायासबहुलं खु मणुयाण जीवियं। संपयासंपायणत्थं पि आहोपुरिसियापायं निरत्थयमणुट्ठाणं, जेण परपीडायरी दुहावहा संपया। अयंडमणोरहभंगसंपायणुज्जओ पहवइ विणिज्जियसुरासुरो मच्चू। बहुयाणत्थफलं चेव थेवं पि पमायचेट्ठियं। एत्थ सुगिहीयनामधेयगुरुसाहियं मे सुणसु वत्तयं ति।

अत्थि इहेव जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे उत्तरावहे विसए वद्धणाउरं नाम नयरं, अजियवद्धणो

मोहतिमिरेण सङ्गतो ज्ञानसम्पदा निरतिचारब्रह्मचारी परिणतः शुद्धभावनाभिः शङ्खविशेष इव निरञ्जनोऽप्रतिबद्ध उभयलोकेषु निदर्शनं धर्मनिरतानां चिन्तामणिः शिष्यवर्गस्य मूर्तिमानिव मुक्तिमार्गो भगवान् हरिषेणाचार्य इति। वन्दितोऽत्यन्तशोभनं ध्यानमनुभवता कुमारेण। धर्मलाभितश्च तेन। ततो भगवन्तमवलोक्य रोमाञ्चितः कुमारः। समागत आनन्दवाष्पः। भणितश्च भगवता—वत्स! भावधर्म इव सकलचेष्टासुन्दरस्त्वम्, येन तव निर्गमननिर्वेदातिशयेन मया प्राप्तं श्रमणत्वम्। उपादेयं चैतत् प्रकृतिनिर्गुणे संसारवासे, न पुनः किञ्चिदन्यद्। क्लेशायासबहुलं खलु मनुजानां जीवितम्। सम्पत्सम्पादनार्थमपि आहोपुरुषिकाप्रायं निरर्थकमनुष्ठानम्, येन परपीडाकरी दुःखावहा सम्पद्। अकाण्डमनोरथभङ्गसम्पादनोद्यतः प्रभवति विनिर्जितसुरासुरो मृत्युः। बहुकानर्थफलमेव स्तोकमपि प्रमादचेष्टितम्। अत्र सुगृहीतनामधेयगुरुकथितं मे शृणु वृत्तमिति।

अस्तीहैव जम्बूद्वीपे भारते वर्षे उत्तरापथे विषये वर्धनापुरं नाम नगरम्। अजितवर्धनो राजा।

उसने भगवान् हरिषेणाचार्य को देखा। वे शरत्कालीन जल के समान विशुद्धचित्त थे, मोहान्धकार से रहित थे, ज्ञानसम्पत्ति से युक्त थे, अविचार रहित ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे थे, शुद्ध भावनाओं में परिणत थे, शंख विशेष के समान निरंजन थे, दोनों लोकों से मुक्त थे, धर्म में रत हुए लोगों के उदाहरण थे, शिष्यवर्ग के लिए चिन्तामणि रत्न के समान थे, मानो शरीरधारी मुक्तिमार्ग थे। अत्यन्त शुभध्यान का अनुभव करते हुए कुमार ने वन्दना की। राजर्षि ने धर्मलाभ दिया। अनन्तर भगवान् को देखकर कुमार अत्यन्त रोमांचित हुए, आनन्द के आँसू आ गये। भगवान् ने कहा—'वत्स! भावधर्म के समान समस्त चेष्टाओं में तुम सुन्दर हो, जिससे तुम्हारे निकलने के दुःख की अधिकता से मैंने श्रमण धर्म पाया। स्वभाव से निर्गुण इस संसार-वास में यही उपादेय (ग्रहण करने योग्य) है, अन्य कुछ उपादेय नहीं है। निश्चित रूप से मनुष्यों के जीवन में क्लेश और परिश्रम की बहुलता है। सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए प्रायःकर अभिमान से भरा हुआ कार्य निरर्थक है, क्योंकि सम्पत्ति दूसरों को पीड़ा देनेवाली और दुःख लानेवाली है। असमय में मनोरथ को नष्ट करने के लिए उद्यत मृत्यु सुर और असुरों को भी जीतने में समर्थ है। थोड़ा भी प्रमादभरा कार्य अत्यधिक अनर्थरूप फल देनेवाला होता है। इस विषय में सुगृहीत नामवाले गुरु के द्वारा कहा हुआ वृत्तान्त सुनो—

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष द्वीप में उत्तरापथ देश में 'वर्धनापुर' नामक नगर है। वहाँ का राजा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राया। तत्थ सद्धडो नाम गाहावई होत्था, चंदा य से भारिया, सुओ य से सग्गो। पुव्वकयकम्म-परिणामओ दारिद्दाणि य एयाणि। अन्नया य मरणपज्जवसाणयाए जीवलोयस्स विवन्नो सद्धडो। कयं उद्धदेहियं। अइक्कंतो कोइ कालो। अजीवमाणा य चंदा उयरभरणनिमित्तं परगिहेसु कम्मं करिउमाढत्ता, सग्गो वि अडवीए सागिंधणाइयं आणेउं ति। अइक्कंतो कोइ कालो। अन्नया य आगमणवेलाए चेव सग्गस्स [1]पासंडसेट्ठिगेहे जामाउओ आगओ त्ति। उययाणयणनिमित्तं हक्कारिया चंदा। 'पुत्तो मे भुक्खिओ आगमिस्सइ'त्ति ठविऊण सिक्कए भोयणं साणाइभएणं च बंधिऊण [2]किढियादुवारं गया तत्थ एसा। थेववेलाए य समागओ सग्गो। विमुक्कं सागिंधणं। निरूविया जणणी। जाव नत्थि त्ति खुहापिवासाहिभूयत्तणेण कुविओ एसो। न निरूवियमणेण सिक्कयं। थेववेलाए य वूढे वि पाणिए वावडयाए सेट्ठिमाणुसेहिं न किंचि वि दिन्नं ति पडिवन्ना दीणयाए अवट्ठद्धा महाविसाएणं विद्दाणचित्ता समागया चंदा। तं च तहा पेच्छिऊण कोहवसएणं जंपियं सग्गेणं। तहिं गया चेव सूलियाए भिन्ना तुमं ति। वीसरिया वेला अम्हाणं छुहाभिभूयाणं। तीए वि

तत्र सद्धडो नाम गृहपतिरभवत्। चन्द्रा च तस्य भार्या, सुतश्च तस्य स्वर्गः। पूर्वकृतकर्मपरिणामतो दरिद्राश्चैते। अन्यदा च मरणपर्यवसानतया जीवलोकस्य विपन्नः सद्धडः। कृतमौर्ध्वदेहिकम्। अतिक्रान्तः कोऽपि कालः। आजीवन्ती च चन्द्रा उदरभरणनिमित्तं परगृहेषु कर्म कर्तुमारब्धा, स्वर्गोऽप्यटव्याः शाकेन्धनादिकमानेतुमिति। अतिक्रान्तः कोऽपि कालः। अन्यदा चागमनवेलायामेव स्वर्गस्य पाषण्डश्रेष्ठिगृहे जामातृक आगत इति। उदकानयननिमित्तमाकारिता चन्द्रा। 'पुत्रो मे बुभुक्षित आगमिष्यति' इति स्थापयित्वा शिक्यके भोजनं श्वानादिभयेन च बद्ध्वा किटिकाद्वारं गता तत्रैषा। स्तोकवेलायां च समागतः स्वर्गः। विमुक्तं शाकेन्धनम्। निरूपिता जननी, यावन्नास्तीति क्षुत्पिपासाभिभूतत्वेन कुपित एषः। न निरूपितमनेन शिक्यम्। स्तोकवेलायां च व्यूढेऽपि पानीये व्यापृततया श्रेष्ठिमनुष्यैर्न किञ्चिदपि दत्तमिति प्रतिपन्ना दीनतया अवष्टब्धा महाविषादेन विद्राणचित्ता समागता चन्द्रा। तां च तथा प्रेक्ष्य क्रोधवशगेन जल्पितं स्वर्गेण—तत्र गतैव शूलिकया भिन्ना त्वमिति। विस्मृता वेलाऽस्माकं क्षुदभिभूतानाम्। तयाऽपि कृपणभावेन

अजितवर्धन था। वहाँ पर सद्धट नाम का गृहस्थ हुआ। उसकी पत्नी चन्द्रा और उसका पुत्र 'स्वर्ग' था। पूर्वकृत कर्म के परिणाम से ये दरिद्र थे। एक बार संसार का अन्त मरणरूप में होने के कारण सद्धट मर गया। पारलौकिक क्रियाएँ कीं। कुछ समय बीत गया। पेट भरने के लिए आजीविकार्थ चन्द्रा ने दूसरों के घरों में काम करना आरम्भ किया और स्वर्ग ने भी जंगल से लकड़ी, ईंधन आदि लाना प्रारम्भ किया। कुछ समय बीत गया। एक बार आते समय 'स्वर्ग' के 'पाखण्ड' नामक सेठ के घर जमाई आया। जल लाने के लिए चन्द्रा को बुलाया। 'मेरा पुत्र भूखा आयेगा' अतः सींके में भोजन रखकर कुत्ते आदि के भय से खिड़की के द्वार में बाँध दिया और यह पानी लाने के लिए चली गयी। थोड़ी देर में 'स्वर्ग' आया। लकड़ी, ईंधन को रखा। माता को देखा, वह नहीं थी, अतः भूख-प्यास से व्याकुल होकर वह कुपित हो गया। उसने सींका नहीं देखा। थोड़ी देर में, (चन्द्रा के) पानी लाने में लगी होने पर भी काम में लगे सेठ के मनुष्यों ने कुछ भी नहीं दिया अतः दीनता को प्राप्त होकर, महान् विषाद से घिरकर मलिनचित्त वाली चन्द्रा वापस आयी। उसे वैसा देखकर क्रोधवश स्वर्ग ने कहा—'वहीं जाते ही तुम शूली से भिद गयी थी जो भूख से व्याकुल हमारा समय भूल गयी!' उसने भी असहाय

1. ईगढ—पा. ज्ञा.। 2. कढिया—हे. ज्ञा.। कोटिका खडकीति भाषायां।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किवणभावेण तहा दुक्खपीडियाए जंपियमिणं । तुज्झ पुण छिन्ना हत्थ त्ति, जेण सिक्कयाओ वि गेण्हिऊण न भुंजसि ।

एत्थंतरम्मि एवंविहवयणदुच्चरियपच्चयं बद्धमिमेहि कम्मं । अइक्कंतो कोइ कालो । अन्नया य विचित्तयाए कम्मपरिणामस्स भवियव्वयाए य एएसिं विसिट्ठफलसाहगत्तणेण जीववीरियस्स माणतुंगगणिसमीवे पत्ता इमेहिं जिणधम्मबोही, गहियं सावयत्तणं, पालियं कंचि कालं । पवड्ढमाणसुहपरिणामाण य जाओ चरणपरिणामो । पवन्नाणि पव्वज्जं । पालियं चारित्तं । चरिमकाले य काऊण संलेहणं आगमभणिएण विहिणा चइऊण देहपंजरं समुप्पन्नाणि सुरलोए । तत्थ वि य अहाउयं पालिऊण पढमयरमेव चुओ सग्गदेवो । समुप्पन्नो इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे तामलित्तीए नयरीए कुमारदेवस्स सेट्ठिस्स जुज्जियाए भारियाए कुच्छिंसि पुत्तत्ताए त्ति । जाओ कालक्कमेणं । पइट्ठावियं च से नाम अरुणदेवो त्ति । पत्तो कुमारभावं । एत्थंतरम्मि चुओ चंदाजीवदेवो । समुप्पन्नो पाडलावहे नयरे जसाइच्चसेट्ठिस्स ईलुयाए भारियाए कुच्छिंसि इत्थियत्ताए । जाया

तथा दुःखपीडितया जल्पितमिदम्- तव पुनश्छिन्नौ हस्ताविति, येन शिक्यकादपि गृहीत्वा न भङ्क्षे ।

अत्रान्तरे एवंविधवचनदुश्चरितप्रत्ययं बद्धमाभ्यां कर्म । अतिक्रान्तः कोऽपि कालः । अन्यदा विचित्रतया च कर्मपरिणामस्य भवितव्यतायाश्चैतयोर्विशिष्टफलसाधकत्वेन जीववीर्यस्य मानतुङ्गगणिसमीपे प्राप्ताऽऽभ्यां जिनधर्मबोधिः, गृहीतं श्रावकत्वम्, पालितं कञ्चित्कालम् । प्रवर्धमानशुभपरिणामयोश्च जातश्चरणपरिणामः । प्रपन्नौ प्रव्रज्याम् । पालितं चारित्रम् । चरमकाले च कृत्वा संलेखनामागमभणितेन विधिना त्यक्त्वा देहपञ्जरं समुत्पन्नौ सुरलोके । तत्रापि च यथायुष्कं पालयित्वा प्रथमतरमेव च्युतः स्वर्गदेवः । समुत्पन्न इहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे ताम्रलिप्त्यां नगर्यां कुमारदेवस्य श्रेष्ठिनो युजिकाया भार्यायाः कुक्षौ पुत्रतयेति । जातः कालक्रमेण । प्रतिष्ठापितं च तस्य नाम अरुणदेव इति । प्राप्तः कुमारभावम् । अत्रान्तरे च्युतश्चन्द्राजीवदेवः, समुत्पन्नः पाटलापथे नगरे यशआदित्यश्रेष्ठिन ईलुकाया भार्यायाः कुक्षौ स्त्रीतया । जाता कालक्रमेण । प्रतिष्ठापितं च तस्या

होने तथा दुःख से पीडित होने के कारण यह कहा—'क्या तुम्हारे दोनों हाथ टूट गये थे जो कि छींके से भी लेकर नहीं खा सके ?

इसी बीच इस प्रकार के वचनरूप दुश्चरित के कारण दोनों ने कर्म बाँधा । कुछ समय बीत गया । एक बार कर्म के परिणाम की विचित्रता से इन दोनों की होनहार से लोगों को सामर्थ्य विशिष्ट फल की साधक होने से दोनों ने मानतुंग गणि के समीप जैन धर्म का ज्ञान प्राप्त कर लिया, श्रावकधर्म ग्रहण किया और कुछ समय पाला । दोनों के शुभपरिणामों की वृद्धि होने के कारण चारित्ररूप भाव हुए । दोनों ने दीक्षा ले ली । चारित्र को पाला । अन्त समय सल्लेखना धारण कर शास्त्रोक्त विधि से शरीररूपी पिंजड़े को त्यागकर स्वर्गलोक में उत्पन्न हुए । वहाँ पर आयु पालन कर पहले स्वर्ग का देव च्युत हुआ । इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में 'ताम्रलिप्ती नगरी में 'कुमार देव' सेठ की 'युजिका' नामक पत्नी के गर्भ में पुत्र के रूप में आया । कालक्रम से उत्पन्न हुआ । उसका नाम अरुणदेव रखा गया । कुमारावस्था को प्राप्त हुआ । इसी बीच चन्द्रा का जीव देव च्युत हुआ । पाटलापथ नगर में यशादित्य सेठ की ईलुका पत्नी के गर्भ में स्त्री के रूप में आया । कालक्रम से (वह) उत्पन्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालक्कमेणं। पइट्ठावियं च से नामं देइणि त्ति। पत्ता कुमारिभावं। भवियव्वयानिओगेण दिन्ना अरुणदेवस्स। अवत्ते चेव विवाहे जाणवत्तेण ववहरणनिमित्तं महाकडाहं गओ अरुणदेवो। समागच्छमाणस्स विचित्तयाए कम्मपरिणामस्स विवन्नं जाणवत्तं। तन्नयरवत्थव्वयमहेसरदुइओ फलहएण लंघिऊण जलनिहिं लग्गो समुद्दतीरे। कहाणयविसेसेण समागओ पाडलावहं। भणिओ य महेसरेण—कुमार, एत्थ भवओ ससुरकुलं ति; ता तहिं पविसम्ह। अरुणदेवेण भणियं—अज्ज, न जुत्तो मे एयावत्थगयस्स ससुरकुलपवेसो। महेसरेण भणियं—कुमार, जइ एवं, ता चिट्ठ ताव तुमं एत्थ देवउले, जाव आणेमि हट्टाओ अहं किंचि भोयणजायं ति। पडिस्सुयमरुणदेवेणं। तओ महेसरो पविट्ठो पाडलावहं। नुवन्नो अरुणदेवो तत्थ देवउले। अद्धाणखेएण य समागया से निद्दा।

एत्थंतरम्मि उइण्णं देइणीए पुव्वभवसंचियं 'तुज्झ' पुण छिन्ना हत्थ त्ति, जेण सिक्कयाओ वि गिण्हिऊण सयं न भुंजसि' त्ति एवंविहवयणदुच्चरियपच्चयं संकिलिट्ठकम्मं। भवणुज्जाणसंठिया

नाम देविनीति। प्राप्ता कुमारीभावम्। भवितव्यतानियोगेन दत्ताऽरुणदेवस्य। अवृत्ते एव विवाहे यानपात्रेण व्यवहरणनिमित्तं महाकटाहं गतोऽरुणदेवः। समागच्छतो विचित्रतया कर्मपरिणामस्य विपन्नं यानपात्रम्। तन्नगरवास्तव्यमहेश्वरद्वितीयः फलकेन लङ्घित्वा जलनिधिं लग्नः समुद्रतीरे। कथानकविशेषेण समागतः पाटलापथम्। भणितश्च महेश्वरेण—कुमार! अत्र भवतः श्वसुरकुलमिति, ततस्तत्र प्रविशावः। अरुणदेवेन भणितम्—आर्य! न युक्तो मे एतदवस्थागतस्य श्वसुरकुलप्रवेशः। महेश्वरेण भणितम्—कुमार! यद्येवं ततस्तिष्ठ तावत् त्वमत्र देवकुले यावदानयामि हट्टादहं किञ्चिद् भोजनजातमिति। प्रतिश्रुतमरुणदेवेन। ततो महेश्वरः प्रविष्टः पाटलापथम्। निपन्नो (शयितो) ऽरुणदेवस्तत्र देवकुले। अध्वखेदेन च समागता तस्य निद्रा।

अत्रान्तरे उदीर्णं देविन्या पूर्वभवसञ्चितं 'तव पुनश्छिन्नौ हस्तौ इति, येन शिक्यकादपि गृहीत्वा स्वयं न भुङ्क्षे' इति एवंविधवचनदुश्चरितप्रत्ययं संक्लिष्टकर्म। भवनोद्यानसंस्थिता

हुई। उसका नाम देविनी रखा। वह कुमारीपने को प्राप्त हुई। होनहार के नियोग से अरुणदेव को दी गयी। विवाह न किये ही अरुणदेव व्यापार के लिए जहाज से महाकटाह चला गया। आते समय कर्मपरिणाम की विचित्रता से जहाज टूट गया। उस नगर के वासी महेश्वर के साथ लकड़ी के तख्ते से समुद्र पार कर समुद्र के किनारे जा लगा। कथानक विशेष से पाटलापथ आया। महेश्वरदत्त ने कहा—'कुमार! यहाँ पर आपके श्वसुर का निवास है अतः दोनों वहाँ प्रवेश करें (चलें)।' अरुणदेव ने कहा—'आर्य! इस अवस्था को प्राप्त हुए मुझे श्वसुर के घर में प्रवेश करना उचित नहीं है।' महेश्वर ने कहा—'यदि ऐसा है तो तुम यहाँ देवमन्दिर में ठहरो। जब तक मैं बाजार से कुछ भोजन सामग्री लाता हूँ।' अरुणदेव ने स्वीकार किया। अनन्तर महेश्वरदत्त पाटलापथ में प्रविष्ट हुआ। अरुणदेव वहाँ मन्दिर में सो गया। मार्ग की थकावट के कारण उसे नींद आ गयी।

इसी बीच देविनी का पूर्वभव में संचित किया हुआ, 'क्या तुम्हारे हाथ टूट गये जो कि सींके से भी लेकर स्वयं नहीं खा सकते हो' इस प्रकार के वचनरूप दुश्चरित का कारण पापकर्म उदय में आया। भवन के

१. तं भणियं आसि तुज्झ—पा. आ. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गहिया तक्करेण। दिट्ठं से महामहग्घं माणिक्ककडयजुवलं। अद्धगहियमणेणं जाव अइगाढत्तणेणं न तीरइ गेण्हिउं, कड्ढिया णेण छुरिया। णुज्जियं[1] से वयणं, छिन्ना य हत्था। गेण्हिऊण कडयजुयलं पलाइउमारद्धो। दिट्ठो उज्जाणवालीए। अक्कंदियं च णाए। धाविया दंडवासिया। पलाणो तक्करो। दिट्ठो य दंडवासिएहिं। धाविया एए तक्कराणुसारेण। तक्करो वि दुयगमणखीणसत्ती साससमावूरियाणणो 'न चएमि अओ परं पलाइउं' ति पुव्वभंडियं चेव पविट्ठो तं जिण्णदेवउलं, जत्थ अरुणदेवो त्ति। एत्थंतरम्मि य उइण्णं अरुणदेवस्स पुव्वभवसंचियं, जहा 'तहिं गया चेव सूलियाए भिन्ना तुमं, वीसरिया वेला अम्हाणं छुहाभिभूयाणं' एवंविहवयणदुच्चरियपच्चयं संकिलिट्ठकम्मं। तक्करो वि य 'एस एत्थ उवाओ' त्ति अरुणदेवसमीवे मेल्लिऊण कडयजुवलयसणाहं छुरियं पुव्वभंडियं चेव अहिट्ठिओ अंधयारसंगयं सिहरदेसं। उट्ठिओ अरुणदेवो। दिट्ठमणेण कडयजुवलं छुरिया य। कम्मपरिणइवसेण गहियं च णेण। 'नूणमेयं देवयाविइन्नं' ति संगोवियं उड्ढियाए। गहिया छुरिया। 'एसा पुण कहं' ति निरूवयंतस्स समागया दंडवासिया। ते पेच्छिऊण संखुद्धो अरुणदेवो।

गृहीता तस्करेण। दृष्टं तस्या महामहार्घं माणिक्यकटकयुगलम्। अर्धगृहीतमनेन यावदतिगाढत्वेन न शक्यते ग्रहीतुम्। कृष्टा तेन छुरिका, मुद्रितं तस्या वदनम्, छिन्नौ च हस्तौ। गृहीत्वा च कटकयुगलं पलायितुमारब्धः। दृष्ट उद्यानपाल्या। आक्रन्दितं च तया। धाविता दण्डपाशिकाः। पलायितस्तस्करः। दृष्टश्च दण्डपाशिकैः। धाविता एते तस्करानुसारेण। तस्करोऽपि द्रुतगमनक्षीणशक्तिः श्वाससमापूरिताननो 'न शक्नोम्यतःपरं पलायितुम्' इति पूर्वभाण्डिकमेव प्रविष्टस्तद् जीर्णदेवकुलम्, यत्रारुणदेव इति। अत्रान्तरे चोदीर्णमरुणदेवस्य पूर्वभवसञ्चितम्, यथा 'तत्र गतैव शूलिकया भिन्ना त्वम्, विस्मृता वेलाऽस्माकं क्षुदभिभूतानाम्' एवंविधवचनदुश्चरितप्रत्ययं संक्लिष्टकर्म। तस्करोऽपि च 'एषोऽत्रोपायः' इति अरुणदेवसमीपे मुक्त्वा कटकयुगलसनाथां छुरिकां पूर्वभाण्डिकमेवाधिष्ठितोऽन्धकारसङ्गतं शिखरदेशम्। उत्थितोऽरुणदेवः। दृष्टमनेन कटकयुगलं छुरिका च। कर्मपरिणतिवशेन गृहीतं च तेन। 'नूनमेतद् देवतावितीर्णम्' इति सङ्गोपितमूर्ध्विकायाम्। गृहीता छुरिका। 'एषा पुनः कथम्' इति निरूपयतः समागता दण्डपाशिका। तान् प्रेक्ष्य

उद्यान में स्थित देविनी को चोर ने पकड़ लिया। उसके अत्यधिक कीमती मणिनिर्मित कड़े का जोड़ा देखा। चोर ने आधा ग्रहण किया, अत्यन्त गाढ़ा होने के कारण ले नहीं सका। उसने तलवार खींची, उसके मुँह को ढँक दिया और दोनों हाथ काट डाले। कड़े के जोड़े को लेकर भागने लगा। उद्यानपाली ने देख लिया। वह चिल्लायी। सिपाही दौड़े। चोर भागा। सिपाहियों ने देख लिया। वे चोर के पीछे भागे। चोर भी शीघ्रगति के कारण क्षीणशक्ति वाला होकर श्वास से भरे हुए मुँहवाला हो गया। 'इससे आगे भागने में समर्थ नहीं हूँ' – ऐसा सोचकर आभूषण के साथ ही उस पुराने देवमन्दिर में घुस गया, जहाँ पर कि अरुणदेव था। इसी बीच अरुणदेव का वहाँ जाते ही, 'तुम शूली से भिद गयी थीं जो कि भूख से व्याकुल हमारा समय भूल गयीं'—ऐसे वचन रूप दुश्चरित का कारण, पूर्वभव में संचित बुरा कर्म उदय में आया। चोर भी 'यहाँ यह उपाय है' ऐसा सोचकर अरुणदेव के पास कड़े के जोड़े सहित छुरी को छोड़कर अन्धकार से युक्त शिखर पर जा बैठा। अरुणदेव उठा – इसने कड़े का जोड़ा और छुरी देखी। कर्म के फलवश उसने ग्रहण कर लिया। 'निश्चितरूप से देवी का दिया है'—ऐसा सोचकर पोटली में छुपा लिया। छुरी ली। 'यह छुरी कैसे आयी'— इस प्रकार सोचता

1. णुज्जियं (डे०) मुद्रितम्।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

भणिओ य णेहिं—अरे दुरायार, कहिं वच्चसि । तओ हत्थाओ चेव निवडिया छुरिया । गहिओ दंडवासिएहिं । भणियं च णेण—अज्ज, किं मए कयं । दंडवासिएहिं भणियं—जं देव्वचोइया करेंति; ता समप्पेहि तं कडयजुयलं । अरुणदेवेण भणियं—अज्ज, न याणामि कडयजुयलं ति । तओ कुविया दंडवासिया । ताडिओ य णेहिं । भयाभिभूयस्स अजत्तगोवियं पडियं कडयजुयलं । गहियं दंडवासिएहिं । नियमिओ एसो । नीओ नरवइसमीवं । साहिओ एस वइयरो नरवइस्स सरित्थं पेच्छिऊण अजायसंकेण भणियं राइणा—नेह, सूलाए भिंदह त्ति । तओ नरवइसमाएसाणंतरमेव नीओ वज्झत्थामं ति । भिन्नो सूलियाए ।

एत्थंतरम्मि घेत्तूण भोयणं आगओ महेसरो । निरूवियं देवउलं । न दिट्ठो अरुणदेवो । गवेसिओ आसन्नदेसेसु, तहवि न दिट्ठो त्ति । आउलीहूओ महेसरो । पुच्छिया णेण देवउलसमीवारामवासिणो मालिया—भो, एवंविहो सेट्ठिपुत्तो इमाओ देवउलाओ कुओइ गच्छमाणो न दिट्ठो भवंतेहिं । तेहिं भणियं—अज्ज, न दिट्ठो; गहिओ एत्थ चोरो, संपयं वावाइओ य । ता न याणामो जइ कोउएण

संक्षुब्धोऽरुणदेवः । भणितश्च तैः—अरे दुराचार ! कुत्र व्रजसि । ततो हस्तादेव निपतिता छुरिका । गृहीतो दण्डपाशिकैः । भणितं च तेन—आर्य ! किं मया कृतम् । दण्डपाशिकैर्भणितम्—यद् देवचोदिताः कुर्वन्ति, ततः समर्पय तत्कटकयुगलम् । अरुणदेवेन भणितम्—आर्य ! न जानामि कटकयुगलमिति । ततः कुपिता दण्डपाशिकाः । ताडितश्च तैः । भयाभिभूतस्यायत्नगोपितं पतितं कटकयुगलम् । गृहीतं दण्डपाशिकैः । नियमित एषः । नीतो नरपतिसमीपम् । कथित एष व्यतिकरो नरपतये । सरिक्थं प्रेक्ष्याजातशङ्केन भणितं राज्ञा—नयत, शूलया भिन्देति । ततो नरपतिसमादेशानन्तरमेव नीतो वध्यस्थानमिति । भिन्नः शूलिकया ।

अत्रान्तरे गृहीत्वा भोजनमागतो महेश्वरः । निरूपितं देवकुलम् । न दृष्टोऽरुणदेवः । गवेषित आसन्नदेशेषु, तथापि न दृष्ट इति । आकुलीभूतो महेश्वरः । पृष्टास्तेन देवकुलसमीपारामवासिनो मालिकाः—भो ! एवंविधः श्रेष्ठिपुत्रोऽस्माद् देवकुलात् कुतश्चिद् गच्छन् न दृष्टो भवद्भिः ? तैर्भणितम्—आर्य ! न दृष्टः । गृहीतोऽत्र चौरः, साम्प्रतं व्यापादितश्च । ततो न जानीमो यदि

हुआ जब वह देख रहा था कि तभी सिपाही आ गये । उन्हें देखकर अरुणदेव क्षुब्ध हुआ । सिपाहियों ने कहा—'अरे दुराचारी ! कहाँ जाते हो ?' तब हाथ से छुरी गिर पड़ी । सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया । अरुणदेव ने कहा—'आर्य ! मैंने क्या किया ?' सिपाहियों ने कहा—'जो भाग्य से प्रेरित करते हैं, अतः उस कड़े के जोड़े को सौंप दो ।' अरुणदेव ने कहा—'आर्य ! कड़े के जोड़े का मुझे पता नहीं ।' अनन्तर सिपाही कुपित हुए । उन्होंने मारा । भयभीत होने के कारण बिना प्रयत्न का छिपाया हुआ कड़े का जोड़ा गिर पड़ा । सिपाहियों ने जब्त कर लिया । इसे बाँधा । राजा के पास ले गये । राजा से यह घटना कही । माल के साथ देखकर बिना शंका किये ही राजा ने कहा—'ले जाओ, शूली से भेद डालो ।' अनन्तर राजा के आदेश के तत्काल बाद उसे बध्यस्थान में ले जाया गया और शूली से भेद दिया गया ।

इसी बीच भोजन को लेकर महेश्वर आया । देवमन्दिर में देखा । अरुणदेव दिखाई नहीं दिया । समीप के स्थानों में देखा तो भी नहीं दिखाई दिया । महेश्वर आकुल हो गया । उसने देवमन्दिर के समीप उद्यान में रहनेवाले मालियों से पूछा—'हे (मालियो) ! इस प्रकार का सेठ का पुत्र देवमन्दिर से कहीं जाता हुआ आप लोगों ने तो नहीं देखा ?' उन्होंने कहा—'आर्य, नहीं देखा । यहाँ पर एक चोर पकड़ा गया है और अभी-अभी मार डाला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्थ गओ त्ति। तओ संखुद्धो महेसरो। भणियं च णेण—भद्दा भद्दा, कहिं तं वज्झथामं। साहियं मालिएहिं। विसण्णचित्तो गओ महेसरो। दिट्ठो य णेण सूलियाविभिन्नदेहो दारुणं अवत्थमणुहवंतो अरुणदेवो। 'हा सेट्ठिपुत्त' त्ति भणमाणो निवडिओ महेसरो; मुच्छिओ य एसो। कोउयाणुयंपाहि समासासिओ पेच्छयजणेहिं। पेच्छिओ य र्णेहि—अज्ज, को एसो सेट्ठिपुत्तो त्ति। तओ सगग्गयं भणियं महेसरेण—हन्त, किमेयाए कहाए। निव्वत्तं[1] कहाणयं। एसो खु तामलित्तितिलयभूयस्स पुत्तो कुमारदेवस्स इह नयरवत्थव्वयस्स जामाउओ जसाइच्चस्स वहणभंगेण विउत्तपरियणो अज्जेव इमं नयरमागओ त्ति। भणिओ य मए—कुमार, एत्थ भवओ ससुरकुलं ति; ता तहिं पविसम्ह। तओ जंपियमणेण—अज्ज, न जुत्तो मे एयावत्थगयस्स ससुरकुलपवेसो। मए भणियं—कुमार, जइ एवं, ता चिट्ठ ताव तुमं एत्थ देवउले, जाव आणेमि हट्टाओ अहं किंपि भोयणजायं ति। तओ पडिस्सुयमणेण। गओ य अहयं पावकम्मो। समागओ घेत्तूण भोयणं। निरूवियं देवउलं, जाव न दिट्ठो त्ति। तओ पुच्छिया मालागारा। पिसुणियमणेहिं, जहा 'गहिओ संपयं चेव एत्थ देवउलाओ चोरो वावाइओ य; ता निरूवेहि तत्थ;

कौतुकेन तत्र गत इति। ततः संक्षुब्धो महेश्वरः। भणितं च तेन—भद्र! भद्र! कुत्र तद् वध्यस्थानम्। कथितं मालिकैः। विषण्णचित्तो गतो महेश्वरः। दृष्टस्तेन शूलिकाविभिन्नदेहो दारुणामवस्थामनुभवन्नरुणदेवः। 'हा श्रेष्ठिपुत्र' इति भणन् निपतितो महेश्वरः, मूर्च्छितश्चैषः। कौतुकानुकम्पाभ्यां समाश्वासितः प्रेक्षकजनैः। पृष्टश्च तैः—आर्य! क एष श्रेष्ठिपुत्र इति। ततः सगद्गदं भणितं महेश्वरेण—हन्त किमेतया कथया। निर्वृत्तं कथानकम्। एष खलु ताम्रलिप्तीतिलकभूतस्य पुत्रः कुमारदेवस्येह नगरवास्तव्यस्य जामातृको यशआदित्यस्य वहनभङ्गेन वियुक्तपरिजनोऽद्यैवेदं नगरमागत इति। भणितश्च मया—कुमार! अत्र भवतः श्वसुरकुलमिति, ततस्तत्र प्रविशावः। ततो जल्पितमनेन—आर्य! न युक्तो मे एतदवस्थागतस्य श्वसुरकुलप्रवेशः। मया भणितम्—कुमार! यद्येवं ततस्तिष्ठ तावत् त्वमत्र देवकुले, यावदानयामि हट्टादहं किमपि भोजनजातमिति। ततः प्रतिश्रुतमनेन। गतश्चाहं पापकर्मा। समागतो गृहीत्वा भोजनम्। निरूपितं देवकुलम्, यावन्न दृष्ट इति। ततः पृष्टा मालाकाराः। पिशुनितमेभिः, यथा 'गृहीतः साम्प्रतमेवात्र देवकुलाच्चौरो

गया। अतः नहीं हमें नहीं मालूम। यदि कौतूहल हो तो वहाँ जाओ।' अनन्तर महेश्वर क्षुब्ध हुआ। उसने कहा—'भद्र! भद्र! वह वध्यस्थान कहाँ है? मालियों ने बताया। खिन्नचित्त होता हुआ महेश्वर गया। उसने शूली से भेदे हुए शरीरवाले, भयंकर अवस्था का अनुभव करते हुए अरुणदेव को देखा। 'हाय श्रेष्ठिपुत्र'—ऐसा कहता हुआ महेश्वरदत्त गिर गया। इसे मूर्च्छा आ गयी। कौतूहल और दया से दर्शकों ने आश्वस्त किया और उन्होंने पूछा—'आर्य! यह श्रेष्ठिपुत्र कौन है?' तब गद्गद होकर महेश्वर ने कहा—'खेद है, इस कथा से क्या, कथानक समाप्त हो गया। यह ताम्रलिप्ती के तिलकभूत कुमारदेव का पुत्र और इस नगरवासी यशादित्य का दामाद जहाज टूट जाने के कारण परिजनों से वियुक्त हुआ आज ही इस नगर में आया था। मैंने कहा—कुमार! यहाँ पर तुम्हारे श्वसुर का घर है, अतः वहाँ दोनों प्रवेश करें। तब इसने कहा—इस अवस्था में आये हुए मेरा श्वसुर के घर जाना उचित नहीं है। मैंने कहा—यदि ऐसा है तो तुम यहाँ देवमन्दिर में ठहरो, जब तक मैं बाजार से कुछ भोजन-सामग्री लाता हूँ। अनन्तर इसने स्वीकार किया और मैं पापी चला गया। भोजन लेकर आया। देवमन्दिर में देखा, वहाँ पर दिखाई नहीं दिया। अनन्तर मालियों से पूछा। इन्होंने सूचना दी कि 'अभी

1. निवुत्तं—च।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जइ कोउगेण गओ' त्ति। निरूविओ वज्झथामे। अओ परं 'एस दिट्ठो' त्ति भणिऊण निवडिओ धरणिवट्ठे तत्तवालुयागओ विय मच्छओ तडफडिओ धराए। उट्ठिऊण सिलाओ अप्पाणयं वहिउमाढत्तो त्ति। धरिओ पेच्छयजणेहिं। फुट्टो य एस वइयरो लोए। तओ आयण्णिओ जसाइच्चेण। देइणिं घेत्तूण आगओ एसो। दिट्ठो णेण अरुणदेवो पच्चभिन्नाओ य। 'अहो मे अहन्नय' त्ति मुच्छिओ सह देइणीए। समासासिओ परियणेण। भणियं जसाइच्चेण—कट्ठाणि मे नीसारेह। न सक्कुणोमि एयं सोयसंतावं विसहिउं; ता परिच्चएमि जीवियं ति। सवणपरंपराए एयं सोऊण कुविओ दंडवासियाण राया। भणियमणेहिं—देव, सलोत्तओ एस दिट्ठो, न उण अम्हे जोइणो त्ति। पच्चाइओ णेहिं राया। समागओ जसाइच्चपच्चायणनिमित्तं वज्झत्थामं राया। भणिओ य णेण सेट्ठी—अज्ज, देव्वं एत्थ अवरज्झइ, न उण अम्हाण बुद्धी। ता अलं इमिणा ववसाएणं। एवंविहा देव्वपरिणइ त्ति।[1]

एत्थंतरम्मि 'एयवइयरेणं पडिबुज्झंति एत्थ बहवे पाणिणो' त्ति मुणिऊण समागओ भयवं

व्यापादितश्च, ततो निरूपय तत्र, यदि कौतुकेन गतः' इति। निरूपितो वध्यस्थाने। अतः परं 'एष दृष्टः' इति भणित्वा निपतितो धरणीपृष्ठे तप्तवालुकागत इव मत्स्यो व्याकुलितो धरायाम्। उत्थाय शिलाया आत्मानं घातयितुमारब्ध इति। धृतः प्रेक्षकजनैः। स्फुटितश्चैष व्यतिकरो लोके। ततः आकर्णितो यशआदित्येन। देविनीं गृहीत्वा आगत एषः। दृष्टस्तेनारुणदेवः प्रत्यभिज्ञातश्च। 'अहो मेऽधन्यता' इति मूर्च्छितः सह देविन्या। समाश्वासितः परिजनेन। भणितं यशआदित्येन—काष्ठानि मे निःसारयत। न शक्नोम्येतं शोकसन्तापं विसोढुम्, ततः परित्यजामि जीवितमिति। श्रवणपरम्परयैतच्छ्रुत्वा कुपितो दण्डपाशिकेभ्यो राजा। भणितमेभिः—देव! सलोप्त्रक एष दृष्टः, न पुनर्वयं योगिन इति। प्रत्यायितस्तै राजा। समागतो यशआदित्यप्रत्यायननिमित्तं वध्यस्थानं राजा। भणितश्च तेन श्रेष्ठी—आर्य! दैवमत्रापराध्यति, न पुनरस्माकं बुद्धिः। ततोऽलमनेन व्यवसायेन। एवंविधा दैवपरिणतिरिति।

अत्रान्तरे 'एतद्व्यतिकरेण प्रतिबुध्यन्तेऽत्र बहवः प्राणिनः' इति ज्ञात्वा समागतो भगवान्

यहाँ देवमन्दिर से एक चोर पकड़ा गया और मार डाला गया है, अतः यदि कौतूहल हो तो वहाँ देखो। वध्यस्थान में देखा। अनन्तर यह देखा'—ऐसा कहकर तपी हुई बालू में पड़ी हुई मछली के समान व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर गया। उठकर शिला से अपने को मारना प्रारम्भ किया। दर्शकों ने पकड़ लिया। यह घटना लोक में फैल गयी। यशादित्य ने सुना। देविनी को लेकर वह आया। उसने अरुणदेव को देखा और पहिचान लिया। 'ओह मेरी अधन्यता!' इस प्रकार देविनी के साथ मूर्च्छित हो गया। परिजनों ने आश्वस्त किया। यशादित्य ने कहा 'मेरे लिए लकड़ियाँ लाओ, मैं इस शोक के सन्ताप को सहन नहीं कर सकता, अतः प्राण त्याग करता हूँ।' कानों-कान यह बात सुनकर राजा सिपाहियों पर कुपित हुआ। सिपाहियों ने कहा—'यह चोरी के माल के साथ देखा गया, हम लोग योगी तो नहीं हैं।' उन्होंने राजा को विश्वास दिला दिया। राजा यशादित्य को विश्वास दिलाने के लिए वध्यस्थान में आया। उसने सेठ से कहा—'आर्य! दैव ही अपराध कराता है, न कि हमारी बुद्धि। अतः ऐसा निश्चय मत करो। भाग्य की परिणति ही इस प्रकार की होती है।'

इसी बीच 'इस घटना से यहाँ बहुत से प्राणी प्रतिबोधित होंगे'—ऐसा जानकर मति, श्रुति, अवधि और

1. अत्र 'ओयारिओ सूलियाओ पडिमणुहवंतो अरुणदेवो' इत्यधिकः पाठः—डे. ज्ञा.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउणाणो देवसाहुसमेओ अमरेसरो नाम गणहरो। तप्पहावेण महेसराईणं वियलिओ सोयाणुबंधो। अहो अउव्वदंसणो भयवं पसंतो तियसपूइओ य। जाया धम्मसवणबुद्धी। कयं भयवओ तियसेहिं उचियकरणिज्जं, सोहिओ धरणिभाओ, वरिसियं गंधोदयं, विमुक्कं कुसुमवरिसं, विउव्वियं कंचणपउमं। उवविट्ठो तत्थ भयवं अमरेसरो, पत्थुया धम्मकहा। भणियं च णेण—भो भो देवाणुप्पिया, परिच्चयह मोहनिद्दं, जग्गेह धम्मजागरेणं, परिहरह पाणवहाइए पावट्ठाणे, अंगीकरेह खंतिपमुहे गुणे, उज्झेह भाववेरियं पमायं। पमायवसओ हि जीवो थेवेण वि अणायारदोसेण विवायदारुणाइं पभूयकालवेयणिज्जाइं बंधेइ कम्माइं, तव्विवाएणं च पावेइ सारीरमाणसे दुक्खे, जहा एस अरुणदेवो देइणी य। तओ नरवइपमुहेहिं पुच्छिओ गणहरो—भयवं, किं कयमणेहिं। एत्थंतरम्मि साहियं भयवया नाणसूरेण पुव्वकहियं कहाणयं। अहो एद्दहमेत्तस्स वि दुक्कडस्स ईइसो विवागो त्ति संविग्गा परिसा। मुच्छिओ अरुणदेवो देइणी य। लद्धा चेयणा, समुप्पन्नं जाइसरणं, अवगओ संकिलेसो, आवडिओ सुहपरिणामो। भणियं च णेहिं—भयवं, एवमेयं, जं भयवया आइट्ठं ति।

चतुर्ज्ञानी देवसाधुसमेतोऽमरेश्वरो नाम गणधरः। तत्प्रभावेन महेश्वरादीनां विचलितः शोकानुबन्धः। अहो अपूर्वदर्शनो भगवान् प्रशान्तस्त्रिदशपूजितश्च। जाता धर्मश्रवणबुद्धिः। कृतं भगवतस्त्रिदशैरुचितकरणीयम्, शोभितो धरणीभागः, वृष्टं गन्धोदकम्, विमुक्तं कुसुमवर्षम्, विकुर्वितं काञ्चनपद्मम्। उपविष्टस्तत्र भगवान् अमरेश्वरः, प्रस्तुता धर्मकथा। भणितं च तेन—भो भो देवानुप्रियाः! परित्यजत मोहनिद्राम्, जागृत धर्मजागरेण, परिहरत प्राणवधादिकानि पापस्थानानि, अङ्गीकुरुत क्षान्तिप्रमुखान् गुणान्, उज्झत भाववैरिकं प्रमादम्। प्रमादवशगो हि जीवः स्तोकेनापि अनाचारदोषेण विपाकदारुणानि प्रभूतकालवेदनीयानि बध्नाति कर्माणि, तद्विपाकेन च प्राप्नोति शरीरमानसानि दुःखानि, यथैषोऽरुणदेवो देविनी च। ततो नरपतिप्रमुखैः पृष्टो गणधरः—भगवन्! किं कृतमाभ्याम्। अत्रान्तरे कथितं भगवता ज्ञानसूरेण पूर्वकथितं कथानकम्। अहो एतावन्मात्रस्यापि दुष्कृतस्येदृशो विपाक इति संविग्ना परिषद्। मूच्छितोऽरुणदेवो देविनी च। लब्धा चेतना, समुत्पन्नं जातिस्मरणम्, अपगतः संक्लेशः, आपतितः शुभपरिणामः। भणितं च ताभ्याम्—भगवन्! एवमेतद्, यद् भगवताऽऽदिष्टमिति। संस्मृताऽऽवाभ्यां पूर्वजातिः।

मनःपर्यय—इन चार ज्ञान के धारी अमरेश्वर नाम के गणधर आये। उनके प्रभाव से महेश्वर आदि का शोक दूर हो गया। ओह! भगवान् अपूर्वदर्शी, प्रशान्त और देवों से पूजित हैं। धर्म सुनने की बुद्धि हुई। देवताओं ने भगवान् के योग्य कार्यों को किया, पृथ्वी शोभित हो गयी, गन्धोदक की वर्षा हुई। फूलों की वर्षा की, स्वर्णकमलों की रचना की। वहाँ पर भगवान् अमरेश्वर विराजमान हुए। धर्मकथा प्रस्तुत की। उन्होंने कहा—'हे देवानुप्रियो! मोह-निद्रा को छोड़ो, धर्म जागरण से जागो, प्राणिवध आदि पाप के स्थानों का परिहार करो, क्षमादि प्रमुख गुणों को अंगीकार करो, भावों के वैरी प्रमाद को छोड़ो। प्रमाद के वश होकर जीव थोड़े से भी अनाचार के दोष से परिणामस्वरूप दारुण, बहुत काल तक अनुभव किये जानेवाले कर्मों को बाँधता है और उसके फलस्वरूप शारीरिक और मानसिक दुःखों को पाता है, जिस प्रकार अरुणदेव और देविनी ने प्राप्त किये। तब राजादि प्रमुख पुरुषों ने गणधर से पूछा—'भगवन्! इन दोनों ने क्या किया था?' तब भगवान् ज्ञानसूर्य ने पहिले कहे हुए कथानक को कहा। ओह, इतने से पाप का यह फल होता है!—ऐसा सोचकर सभा भयभीत हुई। अरुणदेव और देविनी मूच्छित हुए। होश आया, जातिस्मरण उत्पन्न हुआ, दुःख दूर हुआ, शुभ परिणाम हुए। उन दोनों ने कहा—'भगवन्! जो भगवान् ने आज्ञा दी यह वैसा ही है। हम दोनों को पूर्वजन्म का स्मरण हो आया। जिन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संभरिया अम्हेहिं पुव्वजाई । पाविया जिणधम्मबोही । एवंविहा कम्मपरिणइ त्ति अवगयं अट्टज्झाणं, समुप्पन्नो संवेगो । ता पच्चक्खेहि भयवं अम्हाणमणसणं ति । अवणेहि जाइजरामरणरोगसोगभयं । भयवया भणियं—अणुरूवमेयं इमाए अवत्थाए । विसुद्धपच्चक्खाणं हि अवणेइ भवपरंपरं, उच्छाएइ दोग्गइं, घडेइ सोग्गईए, साहेइ सुरनरसुहाइं, जणेइ परमनिव्वाणं । तओ नरवइसेट्ठिसंमएण पच्चक्खायमणसणं, अहिणंदिओ णेहिं भयवं अमरेसरो । भणियं च णेहिं—भयवं, सुलद्धं णे माणुसत्तणं, जत्थ तुमं धम्मसारही । विचित्तकम्मपरिणामवसयाणं च जं किंचि वसणमेयं । ता आइसउ भयवं, किं अम्हेहिं कायव्वं ति । भयवया भणियं—कयं कायव्वं । तहावि छड्डेह सव्वभावेसु दुक्खमूलं ममत्तं, भावेह निरवसेसेसु जीवेसु परमपयकारणं मेत्ति, दुगुंछेह सुद्धभावेणं पुव्वदुक्कडाइं, बहुमन्नेह तित्थयरपणीए नाणदंसणचरित्ते, चिंतेह पमायवज्जणेण परमपयसरूवं ति । पडिस्सुयमणेहिं । पारद्धं च एयं जहासत्तीए ।

एत्थंतरम्मि संवेगमागएणं जंपियं नरिंदेणं—भयवं, जइ एद्दहमेत्तस्स वि दुक्कडस्स ईइसो

प्राप्ता जिनधर्मबोधिः । एवंविधा कर्मपरिणतिरित्यपगतमार्तध्यानम्, समुत्पन्नः संवेगः । ततः प्रत्याख्याहि (प्रत्याख्यापय) भगवन् ! आवयोरनशनमिति । अपनय जातिजरामरणरोगशोकभयम् । भगवता भणितम्—अनुरूपमेतदस्या अवस्थायाः । विशुद्धप्रत्याख्यानं हि अपनयति भवपरम्पराम्, उच्छादयति दुर्गतिम्, घटयति सुगत्या, साधयति सुरनरसुखानि, जनयति परमनिर्वाणम् । ततो नरपतिश्रेष्ठिसम्मतेन प्रत्याख्यातमनशनम्, अभिनन्दितस्ताभ्यां भगवानमरेश्वरः । भणितं च ताभ्याम्—भगवन् ! सुलब्धमावयोर्मानुषत्वम्, यत्र त्वं धर्मसारथिः । विचित्रकर्मपरिणामवशगानां च यत् किञ्चिद् व्यसनमेतद् । ततः आदिशतु भगवान्, किमावाभ्यां कर्तव्यमिति । भगवता भणितम्—कृतं कर्तव्यम्, तथापि मुञ्चतं सर्वभावेषु दुःखमूलं ममत्वम्, भावयतं निरवशेषेषु जीवेषु परमपदकारणं मैत्रीम्, जुगुप्सेथां शुद्धभावेन पूर्वदुष्कृतानि, बहु मन्येथां तीर्थंकरप्रणीतानि ज्ञानदर्शनचारित्राणि, चिन्तयतं प्रमादवर्जनेन परमपदस्वरूपमिति । प्रतिश्रुतमाभ्याम् । प्रारब्धं चैतद् यथाशक्ति ।

अत्रान्तरे संवेगमागतेन जल्पितं नरेन्द्रेण, भगवन्—यदि एतावन्मात्रस्यापि दुष्कृतस्येदृशो

धर्म का ज्ञान प्राप्त हुआ । 'कर्म का फल ऐसा होता है'—इस प्रकार आर्तध्यान जाता रहा, विरक्ति उत्पन्न हुई । अनन्तर 'भगवन् ! हम दोनों के अनशन को तुड़वाओ, जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक और भय को दूर करो ।' भगवान् ने कहा —'इस अवस्था के यह अनुरूप है । विशुद्ध त्याग संसार परम्परा का नाश करता है, दुर्गति को नष्ट करता है, सुगति को प्राप्त कराता है, देव और मनुष्य के सुखों का साधन करता है । उत्कृष्ट मोक्ष को उत्पन्न करता है ।' अनन्तर राजा और सेठ की सम्मति से अनशन तोड़ा, उन दोनों का भगवान् अमरेश्वर ने अभिनन्दन किया । उन दोनों ने कहा—'भगवन् ! हम लोगों ने सुन्दर मनुष्यभव पाया जहाँ कि आप जैसे धर्मसारथी हैं । विचित्र कर्म परिणामों के वशीभूत हुए लोगों के लिए यह व्यसन है । अतः भगवान् आज्ञा दें, हम दोनों क्या करें ?' भगवान् ने कहा—'कर्तव्य कर लिया तथापि समस्त पदार्थों में दुःख के मूल ममत्व को त्यागो । सम्पूर्ण जीवों के प्रति मोक्षपद की कारणभूत मैत्री की भावना करो, शुद्धभाव से पहिले किये हुए दुष्कृतों से घृणा करो, तीर्थंकरों के द्वारा प्रणीत सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का आदर करो, प्रमाद छोड़कर मोक्ष के स्वरूप को विचारो ।' इन दोनों ने स्वीकार किया और इसे यथाशक्ति प्रारम्भ कर दिया ।

इसी बीच वैराग्य को प्राप्त राजा ने कहा—'भगवन् ! यदि इतने से ही पाप का ऐसा फल हुआ तो उत्कट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवाओ, ता किं पुण अणुहविस्संति एए उद्दामपमायवसया अणवेक्खियकारिणो अम्हारिसा पाणिणो त्ति। भयवया भणियं—महाराय, ईइसी चेव एसा कम्मपरिणई, एद्दहमेत्तपमायजणियस्स चेव एवमाइयं फलं; अहिययरसंचियस्स उ तिरियनारएसु ति। तत्थ तिव्वाओ विडंबणाओ पहूयकालाओ य। तयवेक्खाए य जं किंचि एयं ति। एएणं चेव कारणेणं जंपियं तिलोयगुरुणा। सुहाहिलासिणा खु थेवो वि वज्जियव्वो पमाओ। अवि य। भक्खियव्वं विसं, संतप्पियव्वो वाही, कीलियव्वं जलणेणं, कायव्वा सत्तुसंगई, वसियव्वं भुयंगेहिं; न उण कायव्वो पमाओ। इहलोयावगारिणो विसाई, उभयलोयावगारी य पमाओ त्ति। अवि य। पमायसामत्थओ, महाराय, परिच्चयंति जीवा सयत्थं, पयट्टंति सरहसमकज्जे. न जोएंति आयइं, न पेच्छंति पत्थुयं[1], न मुणंति गुरुलाघवं, न बहु मन्नंति गुरुं, न भावेंति सुहासियं। तओ य ते बंधिऊण पावकम्मयाइं विवाएण तेसिं नारयाइएसु परमासुहट्ठाणेसु नत्थि तं संकिलेसट्ठाणं, जं न पावेंति त्ति। राइणा भणियं—भयवं, अत्थि उण कोइ उवाओ इमस्स आसेवियस्स। भयवया भणियं—अत्थि। राइणा भणियं—कोइसो। भयवया भणियं—सव्वारंभपरिग्गहचाएण

विपाकस्ततः किं पुनरनुभविष्यन्त्येते उद्दामप्रमादवशगा अनवेक्षितकारिणोऽस्मादृशाः प्राणिन इति। भगवता भणितम्—महाराज! ईदृश्येवैषा कर्मपरिणतिः, एतावन्मात्रप्रमादजनितस्यैव एवमादिकं फलम्, अधिकतरसंचितस्य तु तिर्यङ्नारकयोरिति। तत्र तीव्रा विडम्बनाः प्रभूतकालाश्च। तदपेक्षया च यत्किञ्चिदेतदिति। एतेनैव कारणेन जल्पितं त्रिलोकगुरुणा। सुखाभिलाषिणा खलु स्तोकोऽपि वर्जयितव्यः प्रमादः। अपि च, भक्षयितव्यं विषम्, सन्तप्तव्यो व्याधिः, क्रीडितव्यं ज्वलनेन, कर्तव्या शत्रुसङ्गतिः, वस्तव्यं भुजङ्गैः न पुनः कर्तव्यः प्रमादः। इहलोकापकारिणो विषादयः, उभयलोकापकारी च प्रमाद इति। अपि च, प्रमादसामर्थ्यतो महाराज! परित्यजन्ति जीवाः स्वार्थम्, प्रवर्तन्ते सरभसमकार्ये, न पश्यन्त्यायतिम्, न प्रेक्षन्ते प्रस्तुतम्, न जानन्ति गुरुलाघवम्, न बहु मन्यते गुरुम्, न भावयन्ति सुभाषितम्। ततश्च ते बद्ध्वा पापकर्माणि विपाकेन तेषां नारकादिकेषु परमाशुभ स्थानकेषु नास्ति तत्संक्लेशस्थानम्, यन्न प्राप्नुवन्ति इति। राज्ञा भणितम्—भगवन्! अस्ति पुनः कोऽप्युपायोऽस्यासेवितस्य। भगवता भणितम्—अस्ति। राज्ञा भणितम्—कीदृशः। भगवता

प्रमाद के वश हुए, बिना विचारे कार्य करनेवाले हम जैसे प्राणी क्या अनुभव करेंगे?' भगवान् ने कहा—'महाराज! यह कर्मपरिणति ऐसी ही है, इतने से प्रमाद उत्पन्न होने का इस प्रकार फल है, अत्यधिक संचय करनेवालों का फल तिर्यंच और नरक योनि है। वहाँ एक तो महाकष्ट है और फिर अधिक काल तक इसे सहन करना, उसकी अपेक्षा यह कुछ भी नहीं है, बहुत थोड़ा है। इसी कारण तीनों लोकों के गुरु ने कहा है—'सुख के अभिलाषी को थोड़े से भी प्रमाद से बचना चाहिए।' और भी—विष का भक्षण कर ले, रोग से दुःखी हो ले, अग्नि से खेल ले, शत्रु की संगति कर ले, सर्पों के साथ निवास कर ले, किन्तु प्रमाद न करे। विष आदि तो इस लोक के ही अपकारी हैं, किन्तु प्रमाद उभयलोक का अपकार करनेवाला है। दूसरी बात यह है महाराज! कि प्रमाद की सामर्थ्य से जीव आत्मार्थ को त्याग देते हैं। सरभ के समान कार्य में प्रवर्तते हैं, आगत्ति को नहीं देखते हैं, प्रस्तुत को नहीं देखते हैं, गुरुता लघुता को नहीं जानते हैं, गुरु का आदर नहीं करते हैं और सूक्तियों को नहीं भाते हैं। अनन्तर वे पापकर्मों को बाँधकर उनके फलस्वरूप नरकादि परम अशुभ स्थानों में, (अथवा) ऐसा कोई संक्लेश स्थान नहीं, जिसे ये न प्राप्त करते हों। राजा ने कहा—'इसके न सेवन का कोई उपाय है?' भगवान् ने

१. तत्तं—डे. ज्ञा.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरित्तमेत्तधणेहिं अप्पमायाराहणं ति। अप्पमाओ हि नाम, महाराय, एगंतियं कम्मवाहिओसहं अणिंदियं सव्वलोए, आणंदियं बुहाणं, सव्वस्सं महाणुभावस्स, निप्पच्चवायं उभयलोएसु, उच्छायणं मिच्छत्तस्स, संवड्ढणं नाणपरिणईए, जणयं अप्पमायाइसयस्स, साहणं सयलकल्लाणाणं, निव्वत्तयं परमारोग्गसोक्खस्स। पडिवन्नपमाया खु पाणिणो तयप्पभूइमेव अप्पमायसामत्थेण पवड्ढमाणसंवेगा निरइयारसीलयाए खवेंति महापमायसंचियाइं कम्माइं, अभावओ निमित्तस्स न बंधंति य नवाइं। तओ य, ते देवाणुप्पिया, खविऊण कम्मजालं संपाविऊण केवलं अपुणरागमणं जाइजरामरणरोगसोगरहियं निरुवमसुहसमेयं मोक्खमणुगच्छंति, न सेवंति ते पुणो पमायं ति। राइणा भणियं—भयवं, किन्न पडिवन्नो अप्पमाओ एएहिं, जेण एद्दहमेत्तं पि पमायचेट्ठियं एएसिमेवं परिणयं ति। भयवया भणियं—महाराय, पडिवन्नो; किं तु विसमा कम्मपरिणई; न अप्पमायमेत्तेण निरवसेसा खवीयइ, अवि य अप्पमायाइसएणं, न पडिवन्नो य एसो इमेहिं। अप्पमायमेत्तेण वि य खवियाइं एवंविहाइं

भणितम्—सर्वारम्भपरिग्रहत्यागेन चारित्रमात्रधनैरप्रमादाराधनमिति। अप्रमादो हि नाम महाराज! ऐकान्तिकं कर्मव्याध्यौषधम्, अनिन्दितं सर्वलोके, आनन्दितं बुधानाम्, सर्वस्वं महानुभावस्य, निष्प्रत्यवायमुभयलोकेषु, उत्सादनं मिथ्यात्वस्य, संवर्धनं ज्ञानपरिणत्याः, जनकम-प्रमादातिशयस्य, साधनं सकलकल्याणानाम्, निर्वर्तकं परमारोग्यसौख्यस्य। प्रतिपन्नप्रमादाः खलु प्राणिनस्तत्प्रभृत्येवाप्रमादसामर्थ्येन प्रवर्धमानसंवेगा निरतिचारशीलतया क्षपयन्ति महाप्रमाद-सञ्चितानि कर्माणि, अभावतो निमित्तस्य न बध्नन्ति च नवानि। ततश्च ते देवानुप्रिय! क्षपयित्वा कर्मजालं सम्प्राप्य केवलमपुनरागमनं जातिजरामरणरोगशोकरहितं निरुपमसुखसमेतं मोक्षमनु-गच्छन्ति, न सेवन्ते ते पुनः प्रमादमिति। राज्ञा भणितम्—भगवन्! किन्न प्रतिपन्नोऽप्रमाद एताभ्याम्, येन एतावन्मात्रमपि प्रमादचेष्टितमेतयोरेवं परिणतमिति। भगवता भणितम्—महाराज! प्रतिपन्नः, किन्तु विषमा कर्मपरिणतिः, नाप्रमादमात्रेण निरवशेषा क्षप्यते, अपि चाप्रमादातिशयेन, न प्रतिपन्नश्चैष आभ्याम्। अप्रमादमात्रेणापि च क्षपितान्येवंविधानि बहु-

---

कहा—'है।' राजा ने कहा—'कैसा?' भगवान् ने कहा—'समस्त आरम्भ और परिग्रह का त्यागकर चारित्रमात्र, धनवालों के द्वारा अप्रमाद की आराधना होती है। महाराज! अप्रमाद कर्मरूपी रोग की एकमात्र औषधि है, जो समस्त लोक में अनिन्दित है, विद्वानों को आनन्द देनेवाला है, महानुभाव का सर्वस्व है, दोनों लोकों में निर्दोष है, मिथ्यात्व को नष्ट करनेवाला है, ज्ञानरूप फल को बढ़ाता है, अप्रमाद की अतिशयता का जनक है, समस्त कल्याणों का साधन है और परम आरोग्यरूपी सुख की उत्पत्ति करनेवाला है। अप्रमाद को प्राप्त हुए प्राणी उसी समय से अप्रमाद के सामर्थ्य से परम संवेग को बढ़ाकर, अतिचार (दोष) रहित आचरण से महाप्रमाद द्वारा संचित कर्मों को नष्ट करते हैं और निमित्त (कारण) के अभाव में नये कर्मों को नहीं बाँधते हैं। अनन्तर हे देवानुप्रिय! कर्मसमूह को नाशकर केवलज्ञान प्राप्त कर, जिससे पुनः आगमन नहीं होता ऐसे जन्म, जरा, मरण, रोग और शोक से रहित अनुपम सुख से युक्त मोक्ष को प्राप्त करते हैं, पुनः प्रमाद का सेवन नहीं करते हैं।' राजा ने कहा—'क्या इन दोनों ने अप्रमाद प्राप्त नहीं किया था; जिससे इतनी-सी प्रमाद-चेष्टा का फल इन लोगों को इस प्रकार मिला?' भगवान ने कहा—'महाराज! प्राप्त किया था, किन्तु कर्म का फल भयंकर है, अप्रमाद मात्र से वह सम्पूर्ण नष्ट नहीं होता है अथवा अप्रमाद की अधिकता से इन दोनों ने (कर्म फल) नहीं प्राप्त किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुविहाइं बहुयाइं एएहिं, छिन्नो य पुणो वि एवंविहदुच्चरियहेऊ अणुबंधो सेसकम्मयाणं, भावियं बीयं अप्पमायाइसयस्स। ता धन्नाणि एयाणि। एद्दहमेत्तो चेव एएसिं एस किलेसो। अओ चेव भणियं भयवया विइयसंसारमोक्खसरूवेण पइसमयमेव कायव्वो अप्पमाओ, विसेसेण संभरियव्वाइं पुव्वदुक्कडाइं, संवेगाइसएण निंदियव्वाणि, अप्पणा विसुद्धविरइभावेण निवेइयव्वाणि गुरुणो, निव्वियप्पेण कायव्वं विहिपुव्वयं पच्छित्तं। एवं विवक्खभूयविसिट्ठसुहपरिणामनिंदणाइजलणदड्ढाणं कम्मबीयाणं अप्पमायाइसयसमुब्भूयसुहझाणवणदवाणुप्पत्ताण वा न होइ नियमेण विवागंकुरप्पसूई, न उण सेसयाणं। ता एवं ववत्थिए पत्ते वि अप्पमाए पमायचेट्ठियसंजायकम्मपरिणई अविरुद्ध त्ति। तओ पडिबुद्धो राया। करावियं सव्वबंधणविमोयणाइयं उचियकरणिज्जं। पवन्नो पव्वज्जं सह जसाइच्चमहेसरेहिं। एयं च वइयरमायण्णिऊण संजायपच्छायावो समागओ सो कडयचोरो। निव्वेयसारं भणियं च णेण—भयवं, पावकम्मो अहं। मए कयमिणं निसंसचरियं, नावेक्खिओ उभयलोयसाहारणो धम्मो, बहु मन्निओ अहम्मो, दूसियं माणुसत्तणं, अंगीकया दुक्खपरंपरा। ता

विधानि बहुकान्येताभ्याम्, छिन्नश्च पुनरप्येवंविधदुश्चरितहेतुरनुबन्धः शेषकर्मणाम्, भावितं बीजमप्रमादातिशयस्य। ततो धन्यावेतौ। एतावन्मात्र एवैतयोरेष क्लेशः। अत एव भणितं भगवता विदितसंसारमोक्षस्वरूपेण प्रतिसमयमेव कर्तव्योऽप्रमादः, विशेषेण संस्मर्तव्यानि पूर्वदुष्कृतानि, संवेगातिशयेन निन्दितव्यानि, आत्मना विशुद्धविरतिभावेन निवेदयितव्यानि गुरवे, निर्विकल्पेन कर्तव्यं विधिपूर्वकं प्रायश्चित्तम्। एवं विपक्षभूतविशिष्टशुभपरिणामनिन्दनादिज्वलनदग्धानां कर्मबीजानामप्रमादातिशयसमुद्भूतशुभध्यानवनदवानुप्राप्तानां वा न भवति नियमेन विपाकाङ्कुरप्रसूतिः, न पुनः शेषाणाम्। तत एवं व्यवस्थिते प्राप्तेऽप्यप्रमादे प्रमादचेष्टितसञ्जातकर्मपरिणतिरविरुद्धेति। ततः प्रतिबुद्धो राजा। कारितं सर्वबन्धनमोचनादिकमुचितकरणीयम्। प्रपन्नः प्रव्रज्यां सह यशआदित्यमहेश्वराभ्याम्। एतं च व्यतिकरमाकर्ण्य सञ्जातपश्चात्तापः समागतः स कटकचौरः। निर्वेदसारं भणितं च तेन—भगवन्! पापकर्माऽहम्। मया कृतमिदं नृशंसचरितम्, नापेक्षित उभयलोकसाधारणो धर्मः, बहु मतोऽधर्मः, दूषितं मानुषत्वम्, अङ्गीकृता दुःखपरम्परा।

अप्रमाद मात्र से भी इन दोनों ने इस तरह के अनेक प्रकार के बहुत से कर्मों का नाश किया और इस तरह के दुश्चरित के कारणरूप शेष कर्मों के बन्ध को छेदा है और अप्रमाद के अतिशय के बीज की भावना की।' अनन्तर ये दोनों धन्य हुए। इन दोनों का यह क्लेश इतना ही है। अतएव भगवान् ने कहा है कि संसार और मोक्ष के स्वरूप को जानकर प्रतिसमय अप्रमाद करना चाहिए, पहले किये हुए पापों का विशेष स्मरण रखना चाहिए और वैराग्य की अधिकता से निन्दा करनी चाहिए, अपनी विशुद्ध विरति के भाव से गुरु से निवेदन करना चाहिए, निर्विकल्प रूप से विधिपूर्वक प्रायश्चित्त करना चाहिए। इस प्रकार प्रतिपक्षी विशेष शुभ परिणाम, निन्दनादि की अग्नि में जले हुए कर्मबीज वालों का अप्रमाद की अधिकता से उत्पन्न शुभध्यान रूप वनाग्नि को प्राप्त प्राणियों के नियम से फलरूप (नये) अंकुर की उत्पत्ति नहीं होती है। बचे हुए कर्मों के विषय में ऐसा नहीं है अर्थात् उनका फल तो भोगना ही पड़ता है। ऐसी स्थिति में अप्रमाद को प्राप्त कर लेने पर भी प्रमादचेष्टा से उत्पन्न कर्म का फल अविरुद्ध है।' अनन्तर राजा प्रतिबुद्ध (जागृत) हुआ। समस्त बन्धनों को छुड़ाने आदि योग्य कार्यों को कराया। यशादित्य और महेश्वर के साथ दीक्षा प्राप्त कर ली। इस घटना को सुनकर जिसे पश्चात्ताप उत्पन्न हुआ है ऐसा वह कड़े का चोर आया। विरक्त होकर उसने भगवान् से कहा—'भगवन्! मैंने पापकर्म किया है। मैंने यह नृशंस आचरण किया है। मैंने उभय लोक के लिए समान धर्म की अपेक्षा नहीं की, अधर्म को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किं इमिणा वयणमेत्तफलेणं वायाविंत्थरेणं। भयवं, अवस्समहं पाणे परिच्चएमि। ता एवं ववत्थिए जहाजुत्तमाइससु त्ति। तओ दिन्नो भयवया उवओगो, आहोइओ से नियमकरणाणुबंधी निच्छओ। चिंतियं च णेणं—न तीरए इमो अहिययरगुणभायणं काउं, अक्कंतो मोहपरमबंधुणा सोएण, पणट्ठा सुद्धधीरया, समागयं लोइयसुंदरत्तणं। ता इमं एत्थ पत्तयालं ति। समालोचिऊण साहिओ अणसणविही। पडिवन्नं चोरेण अणसणं। दिन्नो से नमोक्कारो, पडिच्छिओ चोरेण। निंदिओ बहुविहं अप्पा। वंदिओ भयवं। अहाउयक्खएणं च कालगओ अरुणदेवो देइणी य तक्करो य, समुप्पन्नाणि सुरलोए। ता एवं ववत्थिए असाररज्जसंसाहणत्थं महासंगामो त्ति असोहणमणुचिट्ठियं भवया। एवं सोऊण समुप्पन्नचरणपरिणामेण भणियं सेणकुमारेण—भयवं, कुलपरिहवामरिसिएणाणुचिट्ठियमिणं, असुंदरं च त्ति अवगयमियाणिं। सुओ भयवओ सयासे इमस्स उवसमोवाओ। ता किमन्नेण; जइ उचिओ अहं पव्वज्जाए, ता करेह अणुग्गहं, देह मम एयं ति। भयवया भणियं—साहु, भो देवाणुप्पिया, साहु, सोहणमज्झवसियं। हेओ चेव एस संसारो। विवेगसंपन्नो गुरुगुणबहु-

ततः किमनेन वचनमात्रफलेन वाग्विस्तरेण। भगवन्! अवश्यमहं प्राणान् परित्यजामि। तत एवं व्यवस्थिते यथायुक्तमादिशेति। ततो दत्तो भगवता उपयोगः, आभोगितस्तस्य नियमकरणानुबन्धी निश्चयः। चिन्तितं च तेन—न शक्यतेऽयमधिकतरगुणभाजनं कर्तुम्, आक्रान्तो मोहपरमबन्धुना शोकेन, प्रनष्टा शुद्धधीरता, समागतं लौकिकसुन्दरत्वम्। तत इदमत्र प्राप्तकालमिति समालोच्य कथितोऽनशनविधिः। प्रतिपन्नं चौरेणानशनम्। दत्तस्तस्य नमस्कारः। प्रतीष्टश्चौरेण। निन्दितो बहुविधमात्मा। वन्दितो भगवान्। यथायुष्कक्षयेण च कालगतोऽरुणदेवो देविनी च तस्करश्च, समुत्पन्नाः सुरलोके। तत एवं व्यवस्थितेऽसारराज्यसंसाधनार्थं महासंग्राम इत्यशोभनमनुष्ठितं भवता। एवं श्रुत्वा समुत्पन्नचरणपरिणामेन भणितं सेनकुमारेण—भगवन्! कुलपरिभवामर्षितेनानुष्ठितमिदम्, असुन्दरं चेत्यवगतमिदानीम्। श्रुतो भगवतः सकाशेऽस्योपशमोपायः। ततः किमन्येन, यद्युचितोऽहं प्रव्रज्यायास्ततः कुरुतानुग्रहम्, दत्त ममैतामिति। भगवता भणितम्—साधु भो देवानुप्रिय! साधु, शोभनमध्यवसितम्। हेय एवैष संसारः। विवेकसम्पन्नो गुरुगुणबहुमानीति

बहुत माना, मनुष्यभव को दूषित किया, दुःख की परम्परा को अंगीकार किया। अतः वचनमात्र फलवाली इस वाणी के विस्तार से क्या, भगवन्! मैं अवश्य ही प्राणों का परित्याग करता हूँ, तो ऐसी स्थिति में यथायोग्य आदेश दीजिए। अनन्तर भगवान् ने ध्यान लगाया। उसका नियमपूर्वक अपने प्राणों का परित्याग करने सम्बन्धी निश्चय था। भगवान् ने सोचा—इसे अधिक गुण का पात्र नहीं बनाया जा सकता, मोह के परमबन्धु शोक से (यह) आक्रान्त है, शुद्ध धैर्य नष्ट हो गया है, लौकिक सुन्दरता (इसके) आ गयी है। तो 'यहाँ यह मृत्यु आ गयी है'—ऐसा विचारकर अनशन की विधि कही। चोर ने अनशन स्वीकार किया। उसे नमस्कार मन्त्र दिया, चोर ने स्वीकार किया। अनेक प्रकार से अपनी निन्दा की। भगवान् की वन्दना की। आयुकर्म के क्षयानुसार मृत्यु को प्राप्त कर अरुणदेव, देविनी और चोर स्वर्ग में उत्पन्न हुए। तो ऐसी स्थिति में असार राज्य का साधन करने के लिए महासंग्राम कर आपने अशुभ कार्य किया है—ऐसा सुनकर जिसे चारित्ररूप (शुभ) परिणाम उत्पन्न हो गये हैं, ऐसा सेनकुमार बोला—'भगवन्! कुल के पराभव से उत्पन्न रोष के कारण मैंने यह (संग्राम) किया है, यह ठीक नहीं (असुन्दर) है—ऐसा अब मैंने जाना है। भगवान् के ही समीप इसके उपशम का उपाय भी सुना। अतः अन्य से क्या, यदि मैं दीक्षा के योग्य हूँ तो अनुग्रह करो, मुझे दीक्षा दो।' भगवान् ने कहा—'हे देवानुप्रिय! ठीक है, अच्छा निश्चय किया है। यह संसार छोड़ने योग्य ही है। तुम विवेक सम्पन्न हो, गुणों के गौरव से सम्मान

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

माणि त्ति उचिओ तुमं पव्वज्जाए। ता लहुं संपाडेहि समीहियं। पहवइ मणोरहाचलवज्जासणी अणिच्चया। तओ कुमारेण भणिओ अमच्चो—अज्ज, सुयं तए भयवओ वयणमेयं। संपाडेमि अहमेयं किरियाए। हियचिंतओ य मे तुमं। ता अणुमन्नसु तुमं ति। अमच्चेण भणियं—अविग्घं देवस्स। किं तु विन्नवेमि देवं; अट्ठ दिवसाणि इमिणा चेव समुदाचारेण अणुग्गहेउ मं देवो। तओ परिचत्तमेव मए सावज्जं। 'एसो वि चिरयालोवउत्तो सुही होउ' त्ति चिंतिऊण पडिस्सुयं कुमारेण। तओ दवावियममच्चेणाघोसणापुव्वयं महादाणं, कराविया अट्ठाहिया महिमा, ठाविओ रज्जे कुमारपुत्तो अमरसेणो, अहिणंदियाओ पयाओ, सम्माणिया सामंता, निउत्ता महंतया। तओ पसत्थे तिहिकरण-मुहुत्तजोए अणुकूलेणं सउणसंघाएणं पवयणवण्णिएण विहिणा समं संतिमईए अमरगुरुपमुहपहाण-परियणेण य पव्वइओ हरिसेणगुरुसमीवे कुमारो।

अइक्कंतो कोइ कालो। अहिज्जियं सुत्तं, अवहारिओ तयत्थो, आसेविया किरिया। उचिओ जिणकप्पपडिवत्तीए त्ति अणुन्नविय गुरुयणं बहु मन्निओ तेण अहाविहीए पडिवन्नो जिणकप्पं। कहं—

उचितस्त्वं प्रव्रज्यायाः। ततो लघु सम्पादय समीहितम्। प्रभवति मनोरथाचलवज्राशनिरनित्यता। ततः कुमारेण भणितोऽमात्यः—आर्य ! श्रुतं त्वया भगवतो वचनमेतद्। सम्पादयाम्यहमेतां क्रियया। हितचिन्तकश्च मे त्वम्, ततोऽनुमन्यस्व त्वमिति। अमात्येन भणितम्—अविघ्नं देवस्य, किन्तु विज्ञपयामि देवम्, अष्ट दिवसान्यनेन समुदाचारेणानुगृह्णातु मां देवः। ततः परित्यक्तमेव मया सावद्यम्। 'एषोऽपि चिरकालोपयुक्तः सुखी भवतु' इति चिन्तयित्वा प्रतिश्रुतं कुमारेण। ततो दापितममात्येनाघोषणापूर्वकं महादानम्, कारिताऽष्टाहिका महिमा, स्थापितो राज्ये कुमारपुत्रोऽमरसेनः, अभिनन्दिताः प्रजाः, सम्मानिताः सामन्ताः, नियुक्ता महान्तः। ततः प्रशस्ते तिथिकरण-मुहूर्तयोगेऽनुकूलेन शकुनसङ्घातेन प्रवचनवर्णितेन विधिना समं शान्तिमत्या अमरगुरुप्रमुखप्रधान-परिजनेन च प्रव्रजितो हरिषेणगुरुसमीपे कुमारः।

अतिक्रान्तः कोऽपि कालः। अधीतं सूत्रम्, अवधारितस्तदर्थः, आसेविताः क्रियाः। उचितो जिनकल्पप्रतिपत्त्या इत्यनुज्ञाप्य गुरुजनं बहुमानितस्तेन यथा विधि प्रतिपन्नो जिनकल्पम्। कथम्—

युक्त हो, अतः प्रव्रज्या के योग्य हो। अतएव इष्ट कार्य शीघ्र सम्पन्न करो। मनोरथरूपी पर्वत के लिए वज्र के तुल्य अनित्यता सामर्थ्यवाली है। अनन्तर कुमार ने मन्त्री से कहा—'आर्य ! तुमने भगवान् से यह वचन सुना। मैं यह कार्य पूरा करता हूँ। तुम मेरे हितचिन्तक हो अतः तुम अनुमति दो।' मन्त्री ने कहा – 'महाराज को कोई विघ्न नहीं है, किन्तु महाराज से निवेदन करता हूँ कि आठ दिन इस समीचीन आचरण के द्वारा मुझे अनुगृहीत करें।, अनन्तर मैंने पाप छोड़ ही दिया। 'यह भी चिरकाल तक अच्छी तरह सुखी हो' —ऐसा सोचकर कुमार ने स्वीकृति दे दी। अनन्तर घोषणा कराकर मन्त्री के द्वारा महादान दिलवाया, अष्टाह्निक महोत्सव कराया, राज्य पर कुमार के पुत्र अमरसेन को बैठाया, प्रजाओं का अभिनन्दन किया, सामन्तों का सम्मान किया, बड़े पुरुषों को नियुक्त किया। अनन्तर प्रशस्त तिथि, करण और मुहूर्त के योग में अनुकूल शकुनों के साथ शास्त्रों में वर्णित विधि से शान्तिमती के साथ, अमरगुरु प्रमुख प्रधानपरिजनों के साथ कुमार हरिषेण गुरु के पास प्रव्रजित हो गया।

कुछ समय बीता। सूत्र पढ़ा, उसके अर्थ को जाना, क्रियाओं का सेवन किया। 'जिनकल्प की प्राप्ति के योग्य हो' इस प्रकार गुरुजनों से आज्ञा लेकर उनसे सत्कृत हो, विधिपूर्वक जिनकल्प को प्राप्त हुआ। कैसे—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तवेण सुत्तेण अत्थेणं एगंतेण बलेण य ।
तुलणा पंचहा वुत्ता जिणकप्पं पडिवज्जओ ।। ६४५ ।।
पढमा उवस्सयम्मी बीया बाहिं तइया चउक्कम्मि ।
सुन्नहरम्मि चउत्थी तह पंचमिया सुसाणम्मि[1] ।। ६४६ ।।

एवमाइ तुलिऊणं अप्पाणं ।

तओ गामेऽगरायं नगरे पंचराएण विहरमाणो अइक्कंते पहूयकाले समागओ कोल्लाग-सन्निवेसं । ठिओ एगत्थ पडिमाए । दिट्ठो य भट्ठरज्जेणं कइवयपुरिससहाएण परिब्भमंतेण विसेणेण । दुरंतपुव्वकयकम्मदोसेण जाओ[2] य से कोवो । चिंतियं च णेण—अहो मे पावपरिणई, पुणो वि एस दिट्ठो त्ति । अहवा सोहणमिणं, जओ एस एगाई मुक्काउहो विवित्तदेसट्ठिओ य । ता वावाएमि एयं पावकम्मं, पूरेमि अत्तणो मणोरहे । अहवा न जुत्तमेएसिं नियकुलउत्तयाण पुरओ वावायणं ति । ता पुणो वावाइस्सं ति । चिंतिऊण पयट्टो तयासन्नदेवउलसमीवं । [मा वियाणिस्संति 'एएण वावाइयं'ति न साहिउं निययपुरिसाणं गओ तयासन्नमेवावासथामं देवउलं ।] थेववेलाए य अइक्कंतो वासरो,

तपसा सूत्रेण अर्थेन एकान्तेन बलेन च ।
तुलना पञ्चधोक्ता जिनकल्पं प्रतिपद्यमानस्य ।। ६४५ ।।
प्रथमोपाश्रये द्वितोया बहिस्तृतीया चतुष्के ।
शून्यगृहे चतुर्थी तथा पञ्चमी श्मशाने ।।६४६।।

एवमादि तुलयित्वाऽऽत्मानम् ।

ततो ग्रामे एकरात्रं नगरे पञ्चरात्रेण विहरन् अतिक्रान्ते प्रभूतकाले समागतः कोल्लाक-सन्निवेशम् । स्थित एकत्र प्रतिमया । दृष्टश्च भ्रष्टराज्येन कतिपयपुरुषसहायेन परिभ्रमता विषेणेन । दुरन्तपूर्वकृतकर्मदोषेण जातश्च तस्य कोपः । चिन्तितं च तेन—अहो मे पापपरिणतिः, पुनरप्येष दृष्ट इति । अथवा शोभनमिदम्, यत एष एकाकी मुक्तायुधो विविक्तदेशस्थितश्च । ततो व्यापादयाम्येतं पापकर्माणम्, पूरयाम्यात्मनो मनोरथान् । अथवा न युक्तमेतेषां निजकुलपुत्राणां पुरतो व्यापादनमिति । ततः पुनर्व्यापादयिष्ये इति । चिन्तयित्वा प्रवृत्तस्तदासन्नदेवकुलसमीपम् । [मा विज्ञास्यन्ति 'एतेन व्यापादितम्' इति अकथयित्वा निजपुरुषेभ्यो गतस्तदासन्नमेवावासस्थानं

जिनकल्प को प्राप्त हुए की तुलना तप, सूत्र, अर्थ, एकान्त और बल इस प्रकार से पाँच प्रकार की कही गयी है । प्रथम उपाश्रय में, दूसरी बाहर, तीसरी चौराहे पर, चौथी शून्य गृह में तथा पाँचवीं श्मशान में ।।६४५-६४६।।
—इस प्रकार अपने आपको तोलकर ।

अनन्तर गाँव में एकरात्रि, नगर में पाँच रात्रि विहार करते हुए अधिक समय बीत जाने पर कोल्लक सन्निवेश में आये । वहाँ पर प्रतिमायोग से स्थित हो गये । कुछ पुरुषों के साथ भ्रमण करते हुए राज्य से भ्रष्ट हुए कुमार विषेण ने (उन्हें) देखा । कठिनाई से अन्त होनेवाले पूर्वकृत कर्म के दोष से उसे कोप हुआ और उसने सोचा—'ओह ! मेरे पाप का फल, यह पुनः दिखाई दे गया । अथवा यह ठीक है; क्योंकि यह अकेला अस्त्र त्याग किया हुआ और एकान्त स्थान में है । अतः इस पापी को मारता हूँ, अपने मनोरथ को पूर्ण करता हूँ । अथवा अपने कुलपुत्रों के साथ इसको मारना उचित नहीं है । अतः बाद में मार डालूंगा—ऐसा सोचकर समीपवर्ती देवमन्दिर के पास चला गया ['इसने मारा' ऐसा नहीं जानेंगे अतः अपने आदमियों से बिना कहे ही वहाँ समीप के ही देव-

1. मसाणम्मि—डे. ज्ञा. । 2. विविहतवसोसियदेहो वि ए (स) अभिन्नाओ तेण जाओ—पा. ज्ञा. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समागया रयणी। पसुत्तो देवउलपीढियाए विसेणो। अड्ढरत्तसमए य घेत्तूण मंडलग्गं एक्कओ चेव गओ सेणमुणिवरसमीवं। दिट्ठो य णेणं झाणनिच्चलमणो मुणी। वियंभिया से अरई, वड्ढिओ मोहो, अवगया वियारणा, पज्जलिओ को वाणलो, फुरियं दाहिणभुयाए, कड्ढियं मंडलग्गं, भणिओ य भयवं—अरे दुरायार, सुदिट्ठं जीवलोयं करेहि; विवन्नो संपयं मम हत्थाओ। परमज्झाणट्ठियमणेण नायण्णियं भयवया। आयण्णियं च भयवओ गुणाणुराइणीए खेत्तदेवयाए। कुविया एसा विसेणस्स। वाहियमणेण मंडलग्गं भयवओ, अवहडं खेत्तदेवयाए, थंभिओ एसो, भणिओ य णाए—अहो ते पावकम्मया, अहो संकिलेसो, अहो अणज्जत्तणं, अहो विवेयसुन्नया, जो एवं वासीचंदणकप्पस्स भयवओ वि एवं ववससि। ता गच्छ, अदट्ठव्वो तुमं ति। भणिय उत्थंभिओ सदयं देवयाए। तिव्वकसाओदएणं च अवगणिऊण देवयाए[1] वयणं पयट्टो पुणो वि घाइउं भयवंतं। तलप्पहारिओ देवयाए, विणितरुहिरुग्गारं निवडिओ धरणिवट्ठे, मुच्छिओ वियणाए। 'भयवओ उग्गहो' त्ति संखुद्धा देवया। आसासिओ सकरुणं, अवणीओ उग्गहाओ, मुक्को नेऊण वणनिउंजे। तिरोहिया देवया। चिंतियं च णेणं—अहो

देवकुलम्।] स्तोकवेलायां चातिक्रान्तो वासरः, समागता रजनी। प्रसुप्तो देवकुलपीठिकायां विषेणः। अर्धरात्रसमये च गृहीत्वा मण्डलाग्रमेकक एव गतः सेनमुनिवरसमीपम्। दृष्टस्तेन ध्याननिश्चलमना मुनिः। विजृम्भिता तस्यारतिः, वृद्धो मोहः, अपगता विचारणा, प्रज्वलितः कोपानलः, स्फुरितं दक्षिणभुजया, कृष्टं मण्डलाग्रम्, भणितश्च भगवान्—अरे दुराचार! सुदृष्टं जीवलोकं कुरु, विपन्नः साम्प्रतं मम हस्तात्। परमध्यानस्थितमनसा नाकर्णितं भगवता? आकर्णितं च भगवतो गुणानुरागिण्या क्षेत्रदेवतया। कुपितैषा विषेणस्य। वाहितमनेन मण्डलाग्रं भगवतः, अपहृतं क्षेत्रदेवतया। स्तम्भित एषः, भणितश्च तया—अहो ते पापकर्मता, अहो अनार्यत्वम्, अहो विवेकशून्यता, य एवं वासीचन्दनकल्पस्य भगवतोऽपि एवं व्यवस्यसि। ततो गच्छ, अद्रष्टव्यस्त्वमिति। भणित्वोत्तम्भितः सदयं देवतया। तीव्रकषायोदयेन चावगणय्य देवताया वचनं प्रवृत्तः पुनरपि घातयितुं भगवन्तम्। तलप्रहारितो देवतया, विनिर्यद्रुधिरोद्गारं निपतितो धरणीपृष्ठे, मूर्च्छितो वेदनया। 'भगवतोऽवग्रहः' इति संक्षुब्धा देवता। आश्वासितः सकरुणम्। अपनीतोऽवग्रहात्, मुक्तो नीत्वा वननिकुञ्जे।

मन्दिर में चला गया] थोड़ी देर हुई कि दिन बीत गया, रात आयी। देवमन्दिर के चबूतरे पर विषेण सोया। आधी रात के समय तलवार लेकर अकेला ही सेन मुनिवर के पास गया। उसने ध्यान से निश्चल मन वाले मुनि को देखा। उसका क्रोध बढ़ गया, मोह बढ़ा, विचार नष्ट हुआ, क्रोधाग्नि प्रज्वलित हुई, दाहिनी भुजा फड़की, तलवार खींची और भगवान से कहा—'अरे दुराचारी! अच्छी तरह संसार को देख ले, अब तुम मेरे हाथ से मारे गये।' परमध्यान में स्थित मन वाले भगवान् ने नहीं सुना और भगवान् के गुणों की अनुरागी क्षेत्रदेवी ने सुन लिया। यह विषेण पर कुपित हुई। विषेण ने भगवान् के ऊपर तलवार चलायी, क्षेत्रदेवी ने छीन ली। यह स्तम्भित हो गया। क्षेत्रदेवी ने कहा—'तेरा पापकर्म, संक्लेश, अनार्यता तथा विवेकशून्यता आश्चर्यकारक है जो कि ऐसे चन्दन के समान सुगन्धि देनेवाले भगवान् के प्रति भी इस प्रकार का कार्य करता है। अतः जाओ, तुम न दिखाई देने योग्य हो।' ऐसा कहकर दयापूर्वक देवी ने उठा दिया। तीव्रकषाय के उदय से देवी के वचन को न मानकर पुनः भगवान् को मारने के लिए प्रवृत्त हुआ। देवी ने थप्पड़ मार दी। रुधिर का वमन करता हुआ धरती पर गिर गया, वेदना से मूर्च्छित हो गया। भगवान् को बाधा होगी, यह सोचकर वनदेवी क्षुब्ध हुई। करुणायुक्त

१. देवयावयणं—पा, ज्ञा.। अवमन्निऊण देवयं—डे. ज्ञा.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मे पावपरिणई। कहं पुण न एस वावाइओ त्ति। गहिओ अमरिसेण। भावियं रोद्दज्झाणं। बद्धं नरयाउयं, पोसियं अहिणिवेसेण। अइक्कंतो कोइ कालो। अन्नया विउत्ते परियणे वाहिज्जमाणो छुहाए एगाई चेव वच्चमाणो वोप्पिलाडवीए, मज्झभागम्मि गिद्धावयरणनिमित्तं पिच्छसंपायणुज्जएहिं सवरेहिं पयंपमाणो दीणविस्सरं वावाइओ विसेणो। समुप्पन्नो तमाभिहाणाए नरयपुढवीए बावीससागरोवमाऊ नारगो त्ति।

भयवं पि सेणाणगारो विहरिऊण संजमुज्जोएण भाविऊण उवसमसुहं काऊण संलेहणं वंदिऊण वीयराए पडिवज्जिऊणमणसणं काऊण [1]लगंडसाइत्तं आराहिऊण भावणाओ चइऊण देहपंजरं समुप्पन्नो नवमगेवेज्जए तीससागररोवमाऊ देवो त्ति।

॥ समत्तो सत्तमो भवो ॥

तिरोहिता देवता। चिन्तितं च तेन—अहो मे पापपरिणतिः। कथं पुनर्नैष व्यापादित इति। गृहीतोऽमर्षेण। भावितं रौद्रध्यानम्। बद्धं नरकायुः, पोषितमभिनिवेशेन। अतिक्रान्तः कोऽपि कालः। अन्यदा वियुक्ते परिजने बाध्यमानो क्षुधा एकाक्येव व्रजन् वोप्पिलाटव्या मध्यभागे गृध्रावतरणनिमित्तं पिच्छसम्पादनोद्यतैः शबरैः प्रजल्पन् दीनविस्वरं व्यापादितो विषेणः। समुत्पन्नस्तमोऽभिधानायां नरकपृथिव्यां द्वाविंशतिसागरोपमायुर्नारक इति।

भगवानपि सेनानगारो विहृत्य संयमोद्योगेन भावयित्वोपशमसुखं कृत्वा संलेखनां वन्दित्वा वीतरागान् प्रतिपद्यानशनं कृत्वा लगण्डशायित्वं (वक्रकाष्ठमिव शयनं कृत्वा) आराध्य भावनास्त्यक्त्वा देहपञ्जरं समुत्पन्नो नवमग्रैवेयके त्रिंशत्सागरोपमायुर्देव इति।

॥ समाप्तं सप्तमभवग्रहणम् ॥

होकर (विषेण को) आश्वस्त किया। बाधा से दूर किया, वनकुंज में ले जाकर छोड़ दिया। देवी तिरोहित हो गयी। विषेण ने सोचा—ओह मेरे पाप का फल! यह कैसे नहीं मारा गया? क्रुद्ध हुआ। रौद्रध्यान किया। नरक की आयु बाँधी। दुष्ट अभिप्राय से नरकायु का पोषण किया। कुछ समय बीता। एक बार परिजनों के वियुक्त हो जाने पर क्षुधा से पीड़ित अकेला ही भ्रमण करते हुए, दीन स्वर में बोलते हुए विषेण को वोप्पिल अटवी (वन) के मध्य भाग में गीधों के उतरने के लिए पंखों के सम्पादन में उद्यत शबरों ने मार डाला। वह तमः नामक नरक की पृथ्वी में बाईस सागर की आयु वाला नारकी हुआ।

भगवान् सेन मुनि भी संयमपूर्वक विहारकर उपशम सुख की भावना कर, सल्लेखना कर, वीतरागों की वन्दना कर, अनशन को प्राप्त कर, टेढ़ी लकडी के समान शयन कर, भावनाओं की आराधना कर, शरीररूपी पिंजड़े को छोड़कर नवम ग्रैवेयक में तीस सागर की आयु वाले देव हुए।

॥ सातवाँ भव समाप्त ॥

---

१. लगंडं दुःसंस्थितं (वक्रं) काष्ठं तद्वच्छिरः पार्ष्णीनां भूलग्नेन शेरते ये ते लगंडशायिनः, तेषां भावो लगंडशायित्वम् (प्रश्नव्याकरणटीका प. १०७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठमो भवो

वक्खायं जं भणियं सेणविसेणा उ पित्तियसुय त्ति।
गुणचंदवाणमंतर एत्तो एयं पवक्खामि ।।६४७।।

अत्थि इहेव जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे महामहल्लुत्तुंगभवणसिहरुप्पंकनिरुद्धरविरहमग्गा देवउलविहारारामसंगया निच्चुस्सवाणंदपमुइयमहाजणा निवासो तिहुयणसिरीए निदरिसणं देवनयरीए विस्सकम्मविणिम्मिया अओज्झा नाम नयरी। जीए उप्पत्ती विव लायण्णस्स आगरो विव विलासाणं कोसल्लपगरिसो विव पयावइस्स जम्मभूमी विव विम्हयाणं विसुद्धसीलसमायारो इत्थियाजणो। जीए य गुणेगंतपक्खवाई अच्चुयारचरिओ निवासो परमलच्छीए पियंवओ पणइवग्गस्स संपाडओ समीहियाणं पुरिसवग्गो त्ति। तीए य अइसइयपुव्वपत्थिवचरिओ पयावसरिसपसायवसीकयसयलसत्तू, रायसिरीए विय अविउत्तो कित्तीए, नीईए विय अविरहिओ दयाए, अच्चंतपयाहियपीई

व्याख्यातं यद् भणितं सेनविषेणौ पितृव्यसुताविति।
गुणचन्द्रवानव्यन्तरौ इत एतत् प्रवक्ष्यामि ।।६४७।।

अस्तीहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे महामहोत्तुङ्गभवनशिखरोत्पङ्कनिरुद्धरविरथमार्गा देवकुलविहारारामसङ्गता नित्योत्सवानन्दप्रमुदितमहाजना निवासस्त्रिभुवनश्रियो निदर्शनं देवनगर्या विश्वकर्मविनिर्मिता अयोध्या नाम नगरी। यस्यामुत्पत्तिरिव लावण्यस्य आकर इव विलासानां कौशल्यप्रकर्ष इव प्रजापतेः जन्मभूमिरिव विस्मयानां विशुद्धशीलसमाचारः स्त्रीजनः। यस्यां च गुणैकान्तपक्षपाती अत्युदारचरितो निवासः परमलक्ष्म्याः प्रियंवदः प्रणयिवर्गस्य सम्पादकः समीहितानां पुरुषवर्ग इति। तस्यां चातिशयितपूर्वपार्थिवचरितः प्रतापसदृशप्रसादवशीकृतसकलशत्रुः, राजश्रियेवावियुक्तः कीर्त्या, नीत्येवाविरहितो दयया, अत्यन्तप्रजाहितप्रीतिर्मैत्रीबलो नाम राजा।

सेन और विषेण नामक चचेरे भाइयों के विषय में जो कहा गया, उसकी व्याख्या हो चुकी। अब गुणचन्द्र और वाणमन्तर के विषय में यहाँ से कहूँगा ।।६४७।।

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में अयोध्या नामक नगरी है। वहाँ के अत्यधिक ऊँचे भवनों के शिखर-समूह से सूर्य के रथ का मार्ग रुक जाता था। देवमन्दिर, विहार और उद्यानों से वह युक्त थी। नित्य होने वाले उत्सवों के आनन्द से वहाँ लोग बड़े प्रमुदित रहते थे। वह तीनों लोकों की लक्ष्मी का निवास थी (तथा) विश्वकर्मा द्वारा निर्मित देवनगरी का उदाहरण थी, जिसमें विशुद्ध शील और आचार वाली स्त्रियाँ थीं। वे मानो सौन्दर्य की उद्गम, विलासों की खान, प्रजापति के कौशल का प्रकर्ष और विस्मयों की जन्मभूमि थीं। वहाँ गुणों के प्रति असाधारण पक्षपाती, अत्यन्त उदारचरित वाला, परम लक्ष्मी का निवास, प्रिय बोलने वाला और याचकों की कामनाओं को पूर्ण करनेवाला पुरुषवर्ग था। उस नगरी में पूर्वराजाओं के चरित से भी अधिक उत्कृष्ट चरित्र वाला, प्रताप के समान कृपा से जिसने समस्त शत्रुओं को वश में किया था, राजलक्ष्मी के समान कीर्ति से युक्त, नीति के समान दया से युक्त, प्रजा के हित में अत्यन्त प्रीति रखनेवाला मैत्रीबल नामक राजा था। उसकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेत्तीबलो नाम राया। तस्स सयलंतेउरप्पहाणा पउमावई नाम देवी। स (सो)इमोए सह विसय-सुहमणुविसु त्ति। इओ य सो नवमगेवेज्जयनिवासी देवो अहाउयं पालिऊण चुओ समाणो समुप्पन्नो पउमावईए कुच्छिसि। दिट्ठं च णाए सुमिणयम्मि तीए चेव रयणीए पहायसमयम्मि विमलमहा-सलिलपडिहत्थं समद्धासियं नलिणिसंडेणं विरायमाणं विउद्धकमलायरसिरोए हंसकारंडवचक्कवा-ओवसोहियं रुणरुणंतेणं भमरजालेणं समन्नियं कप्पपायवराईए समासन्नदिव्वोववणसोहियं पणच्च-माणं पिव कल्लोललीलाकरेहिं महंतं सरवरं वयणेणमुयरं पविसमाणं ति। पासिऊण य तं सुहविउद्धा एसा। साहिओ य तीए जहाविहिं दइयस्स। हरिसवसपुव्वियपुलएणं भणिया य तेणं—सुंदरि, सयलमेइणीसरनरिंदकमलायरभोयलालसो महारायहंसो ते पुत्तो भविस्सइ। पडिस्सुयं तीए। अहिययरं परितुट्ठा एसा। तओ सविसेसं तिवग्गसंपायणरयाए पत्तो पसूइसमओ। तओ पसत्थतिहिकरण-मुहुत्तजोए सुहंसुहेणं पसूया एसा। दसदिसि उज्जोयंतो सुकुमालपाणिपाओ जाओ से दारओ। निवेइओ राइणो मेत्तीबलस्स पमोयमंजूसाभिहाणाए चेडियाए, जहा 'महाराय, देवी पउमावई दारयं

तस्य सकलान्तःपुरप्रधाना पद्मावती नाम देवी। सोऽनया सह विषयसुखमन्वभूदिति। इतश्च स नवमग्रैवेयकनिवासी देवो यथायुष्कं पालयित्वा च्युतः सन् समुत्पन्नः पद्मावत्याः कुक्षौ। दृष्टं च तया स्वप्ने तस्यामेव रजन्यां प्रभातसमये विमलमहासलिलपरिपूर्णं समध्यासितं नलिनीषण्डेन विराज-मानं विबुद्धकमलाकरश्रिया हंसकारण्डवचक्रवाकोपशोभितं रुणरुणायमानेन भ्रमरजालेन समन्वितं कल्पपादपराज्या समासन्नदिव्योपवनशोभितं प्रनृत्यदिव कल्लोललीलाकरैर्महत् सरोवरं वदनेनोदरं प्रविशदिति। दृष्ट्वा च तत् सुखविबुद्धैषा। कथितश्च तया यथाविधि दयितस्य। हर्षवशपूर्णपुल-केन भणिता च तेन—सुन्दरि! सकलमेदिनीश्वरनरेन्द्रकमलाकरभोगलालसो महाराजहंसस्ते पुत्रो भविष्यति। प्रतिश्रुतं तया। अधिकतरं परितुष्टैषा। ततः सविशेषं त्रिवर्गसम्पादनरतायाः प्राप्तः प्रसूतिसमयः। ततः प्रशस्ततिथिकरणमुहूर्तयोगे सुखसुखेन प्रसूतैषा। दश दिश उद्द्योतयन् सुकुमार-पाणिपादो जातस्तस्या दारकः। निवेदितो राज्ञो मैत्रीबलस्य प्रमोदमञ्जूषाभिधानया चेटिकया, यथा 'महाराज! देवी पद्मावती दारकं प्रसूता' इति। परितुष्टो राजा। दत्तं तस्यै पारितोषिकम्।

समस्त अन्तःपुर में प्रधान पद्मावती नामक रानी थी। वह इसके साथ विषयसुख का अनुभव कर रहा था। इधर वह नवम ग्रैवेयक का निवासी देव आयु पूरी कर च्युत होकर पद्मावती की कुक्षि में उत्पन्न हुआ। पद्मावती ने उसी रात स्वप्न में प्रातः समय स्वच्छ जल से परिपूर्ण, कमलिनी समूह से युक्त, विकसित कमलों के समूह की शोभा से सुशोभित, हंस, कारण्डव तथा चकवों से शोभित, भ्रमरसमूह से गुंजायमान, कल्पवृक्षों की पंक्ति से युक्त, समीपवर्ती दिव्य उद्यान से शोभित, तरंगरूपी हाथों की लीलाओं से मानो नृत्य करता हुआ, एक महान् सरोवर मुख से उदर में प्रवेश करता हुआ देखा। उसे देखकर यह सुखपूर्वक जाग गयी और उसने विधिपूर्वक पति से स्वप्न के विषय में कहा। हर्षवश रोमांचयुक्त होकर उसने कहा—'सुन्दरि! कमलों के समूह (सरोवर, लक्ष्मी) के भोग की लालसा वाले राजहंस के समान समस्त पृथ्वीपतियों का स्वामी तुम्हारा पुत्र होगा।' उसने स्वीकार किया। यह (रानी) अत्यधिक सन्तुष्ट हुई। अनन्तर विशेष रूप से धर्म, अर्थ और काम में रत रहते हुए इसका प्रसूति समय आया। तब प्रशस्त तिथि, करण और मुहूर्त के योग में अत्यधिक सुखपूर्वक इसने प्रसव किया। दसों दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ, सुकुमार हाथ-पैरों वाला उसके बालक हुआ। प्रमोदमंजूषा नामक दासी ने मैत्रीबल से निवेदन किया कि महाराज! देवी पद्मावती ने पुत्र प्रसव किया है। राजा सन्तुष्ट हुआ। दासी को

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

पसूय' त्ति । परितुट्ठो राया । दिन्नं तीए पारिओसियं । कराविय बंधणमोयणाइयं उचियकरणिज्जं । हरिसिओ नयरिजणवओ । ऊसियाओ भवणेसु आणंदधयवडायाओ । कयाओ आययणेसु मणहरविसेस-पूयाओ, पउत्ताइं च पइभवणेसु वज्जंतेणं परमपमोयतूरेणं गिज्जंतेणं जम्ममंगलगेएणं नच्चंतीहिं तरुणरामाहिं पेच्छंतीहिं सहरिसं वुड्ढाहिं पिज्जमाणपवरासवाइं वड्ढमाणहल्लप्फलयाइं उल्लसंतेणं तूरियसंघाएणं फलं पावेंतेणं वेयालियसमूहेणं अच्चुदारविच्छड्डाइं महापमोयपिसुणयाइं ति । उचिय-वेलाए य सव्वभवणेहितो निग्गया नयरिजणवया, पयट्टा य रायभवणसंमुहं । ते य तहा पेच्छिऊण हरिसवसपयट्टपुलओ संभमाइसएण सहरिसनच्चंतवारविलयासमेओ नयरिजणाभिमुहमेव निग्गओ राया । वद्धाविओ पुत्तजम्मब्भुदएणं नयरिजणवएहिं । भणिया य राइणा- तुम्हाणं चेव एसा वुड्ढि त्ति । अहिणंदिऊण सबहुमाणं पेच्छिऊण तेसिं विच्छड्डं सम्माणिऊण जहोचियं पविट्ठो सभवणम्मि । एवं च पइदिणं महंतमाणंदसोक्खमणुहवंतस्स समइच्छिओ पढममासो । पइट्ठावियं नामं दारयस्स 'उचिओ एस एयस्स' कलिऊण पियामहसंतियं गुणचंदो त्ति । सो य विसिट्ठपुण्णफलमणुहवंतो पत्तो कुमारभावं । अच्चंताइसएण गहियाओ कलाओ । तं जहा—लेहं गणियं आलेक्खं नट्टं गीयं वाइयं

कारितं बन्धनमोचनादिकमुचितकरणीयम् । हर्षितो नगरीजनव्रजः । उत्सिता (उद्बद्धा) भवनेषु आनन्दध्वजपताकाः । कृता आयतनेषु मनोहरविशेषपूजाः, प्रयुक्तानि च प्रतिभवनं वाद्यमानेन परम-प्रमोदतूर्येण गीयमानेन जन्ममङ्गलगेयेन नृत्यन्तीभिस्तरुणरामाभिः प्रेक्षमाणाभिः सहर्षं वृद्धाभिः पीयमानप्रवरासवानि वर्धमानत्वराणि उल्लसता तूर्यसङ्घातेन (पुष्पाण्युत्कीरता) फलं प्राप्नुवता वैतालिकसमूहेन अत्युदार विच्छर्दानि (—विभवानि) महाप्रमोदपिशुनकानि वर्धापनकानीति । उचितवेलायां च सर्वभवनेभ्यो निर्गता नगरीजनव्रजाः, प्रवृत्ताश्च राजसम्मुखम । तांश्च तथा प्रेक्ष्य हर्षवशप्रवृत्तपुलकः सम्भ्रमातिशयेन सहर्षनृत्यद्वारवनितासमेतो नगरीजनाभिमुखमेव निर्गतो राजा । वर्धापितः (वर्धितः) पुत्रजन्माभ्युदयेन नगरीजनव्रजैः । भणितश्च राज्ञा—युष्माकमेव एषा वृद्धिरिति । अभिनन्द्य सबहुमानं प्रेक्ष्य तेषां विच्छर्दं (वैभवं) सम्मान्य यथोचितं प्रविष्टः स्वभवनम् । एवं च प्रतिदिनं महद् आनन्दसौख्यमनुभवतः समतिक्रान्तः प्रथममासः । प्रतिष्ठापितं नाम दारकस्य 'उचित एष एतस्य' इति कलयित्वा पितामहसत्कं गुणचन्द्र इति । स च विशिष्टपुण्यफलमनुभवन् प्राप्तः कुमारभावम् । अत्यन्तातिशयेन गृहीताः कलाः । तद्यथा—लेखम्, गणितम्, आलेख्यम्,

---

पारितोषिक दिया । बन्दियों की मुक्ति आदि योग्य कार्य किये । नगर का जन-समूह हर्षित हुआ । भवनों में आनन्द से ध्वज और पताकाएँ बाँधी गयीं । मन्दिरों में विशेष पूजा की, प्रत्येक भवन में अत्यधिक हर्ष के सूचक उत्सव कराये । उस समय अत्यधिक खुशी से बाजे बजाये जा रहे थे, जन्म के मंगल गीत गाये जा रहे थे, तरुणियाँ नाच रही थीं, हर्षपूर्वक वृद्धाएँ देख रही थीं, श्रेष्ठ मद्य पी जा रही थी, उत्सुकता बढ़ रही थी, वाद्य उल्लसित हो रहे थे, (फूल बिखेरे जा रहे थे), वैतालिकों का समूह फल प्राप्त कर रहा था । ऋद्धियाँ अत्यन्त विशाल हो रही थीं । उचित समय पर समस्त भवनों से नगरी का जन-समूह निकला और राजा के सम्मुख चल पड़ा । उन्हें आते हुए देखकर हर्षवश रोमांचित हो राजा अत्यधिक शीघ्रतावश हर्षपूर्वक नृत्य करती हुई वारांगनाओं के साथ नगरी के लोगों के सामने आया । नगरजन ने पुत्रजन्म के अभ्युदय से (राजा को) बधाई दी । राजा ने कहा—'आप लोगों की ही यह वृद्धि है ।' आदरपूर्वक अभिनन्दन कर, उनके वैभव को देखकर, यथोचित सम्मानकर (राजा) अपने भवन में प्रविष्ट हुआ । इस प्रकार प्रतिदिन बड़े आनन्द और सुख का अनुभव करते हुए पहला माह बीत गया । 'यह इसके योग्य है ।' ऐसा मानकर पुत्र का नाम पितामह के समान 'गुणचन्द्र' रखा गया । वह विशिष्ट पुण्य के फल का अनुभव करता हुआ कुमारावस्था को प्राप्त हुआ । अत्यन्त अतिशयता से कलाएँ सीखीं । जैसे—लेख, गणित, चित्रकला,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरगयं पुक्खरगयं समतालं जूयं जणवायं होरा कव्वं दगमट्टियं अट्ठावयं अन्नविही पाणविही सयणविही अज्जा पहेलिया मागहिया गाहा गोइया सिलोगो महुसित्थं गंधजुत्ती आहरणविही तरुणीपडिकम्मं इत्थीलक्खणं पुरिसलक्खणं हयलक्खणं गयलक्खणं गोणलक्खणं कुक्कुडलक्खणं मेंढयलक्खणं चक्कलक्खणं छत्तलक्खणं दंडलक्खणं असिलक्खणं मणिलक्खणं कागणिलक्खणं चम्मलक्खणं चंदचरियं सूरचरियं राहुचरियं गहचरियं सूयाकारं दूयाकारं विज्जागयं मन्तगयं हस्सगयं संभवं चारं पडिचारं वूहं पडिवूहं खंधावारमाणं नगरमाणं वत्थुमाणं खंधावारनिवेसं नगरनिवेसं वत्थुनिवेसं ईसत्थं तत्तप्पवायं आससिक्खं हत्थिसिक्खं मणिसिक्खं धणुव्वेयं हिरण्णवायं सुवण्णवायं मणिवायं धाउवायं बाहुजुद्धं दंडजुद्धं मुट्ठिजुद्धं अट्ठिजुद्धं जुद्धं निजद्धं जुद्धनिजुद्धं सुत्तखेड्डं वट्टखेड्डं वज्झखेड्डं नालियाखेड्डं पत्तच्छेज्जं कडयच्छेज्जं पयरच्छेज्जं सज्जीवं निज्जीवं सउणरुयं चेति। सो य संपत्तविसयपसंगसमओ वि आसन्नयाए सिद्धिभावस्स उवसंतयाए किलिट्ठकम्मुणो अब्भासपरयाए कलाकलावंमि अदंसणयाए कन्नगारूवपगरिसस्स विसयपसंगविमुहो तीए चेव नयरीए

नाट्यम्, गीतम्, वादित्रम्, स्वरगतम्, पुष्करगतम्, समतालम्, द्यूतम्, जनवादम्, होरा, काव्यम्, दकमार्तिकम्, अष्टापदम्, अन्नविधिः, पानविधिः, शयनविधिः, आर्या, प्रहेलिका, मागधिका, गाथा, गीतिः, श्लोकः, मधुसिक्थम्, गन्धयुक्तिः, आभरणविधिः, तरुणीप्रतिकर्म, स्त्रीलक्षणम्, पुरुषलक्षणम्, हयलक्षणं, गजलक्षणम्, गोलक्षणम्, कुर्कुटलक्षणम्, मेषलक्षणं, चक्रलक्षणम्, छत्रलक्षणम् दण्डलक्षणम्, असिलक्षणम्, मणिलक्षणम्, काकिनीलक्षणम्, चर्मलक्षणम् चन्द्रचरितम्, सूरचरितम्, राहुचरितम्, ग्रहचरितम्, सूचाकारम्, दूताकारम्, विद्यागतम्, मन्त्रगतम्, रहस्यगतम्, सम्भवम्, चारम्, प्रतिचारम्, व्यूहम्, प्रतिव्यूहम्, स्कन्धावारमानम्, नगरमानम्, वास्तुमानम्, स्कन्धावारनिवेशम्, नगरनिवेशम्, वास्तुनिवेशम्, इष्वस्त्रम्, तत्त्वप्रवादम्, अश्वशिक्षाम्, हस्तिशिक्षाम्, मणिशिक्षाम्, धनुर्वेदम्, हिरण्यवादम्, सुवर्णवादम्, मणिवादम्, धातुवादम्, बाहुयुद्धम्, दण्डयुद्धम्, मुष्टियुद्धम् अस्थियुद्धम्, युद्धम्, नियुद्धम्, युद्धनियुद्धम्, सूत्रक्रीडाम्, वर्तक्रीडाम्, बाह्यक्रीडाम्, नालिकाक्रीडाम्, पत्रछेद्यम्, कटकछेद्यम्, प्रतरछेद्यम्, सजीवम्, निर्जीवम्, शकुनरुतं चेति। स च सम्प्राप्तविषयप्रसङ्गसमयोऽपि आसन्नतया सिद्धिभावस्य उपशान्ततया क्लिष्टकर्मणोऽभ्यासपरतया कलाकलापेऽदर्शनतया कन्यकारूपप्रकर्षस्य विषयप्रसङ्गविमुखस्तस्यामेव नगर्यामपहसितनन्दनवनेषु-

---

नाट्य, गीत, वादित्र, स्वरगत, पुष्करगत, समताल, द्यूत, जनवाद, होरा, काव्य, दकमार्त्तिक (गीली मिट्टी के बर्तन बनाना), अष्टपदी, अन्नविधि, पानविधि, शयनविधि, आर्या, प्रहेलिका, मागधिका, गाथा, गीति, श्लोक, मधुसिक्थ, गन्धयुक्ति, आभरण विधि, तरुणीप्रतिकर्म, स्त्रीलक्षण, पुरुषलक्षण, गजलक्षण, हस्तिलक्षण, गोलक्षण, कुक्कुटलक्षण, मेषलक्षण (मेढ़ों के लक्षण), चक्रलक्षण, छत्रलक्षण, दण्डलक्षण, असिलक्षण, मणिलक्षण, काकिनी-(कौड़ी) लक्षण, चर्मलक्षण, चन्द्रचरित, सूर्यचरित, राहुचरित, ग्रहचरित, सूचाकार, दूताकार, विद्यागत, मन्त्रगत, रहस्यगत, सम्भव, चार, प्रतिचार, व्यूह (सैन्यविन्यास), प्रतिव्यूह, स्कन्धावार-(छावनी)मान, नगरमान, वास्तुमान, स्कन्धावारनिवेश, नगरनिवेश, वास्तुनिवेश, इष्वस्त्र, तत्त्वप्रवाद, अश्वशिक्षा, हस्तिशिक्षा, मणिशिक्षा, धनुर्वेद, हिरण्यवाद, सुवर्णवाद, मणिवाद, धातुवाद, बाहुयुद्ध, दण्डयुद्ध, मुष्टियुद्ध, अस्थियुद्ध, युद्ध, नियुद्ध (पैदल युद्ध), युद्धनियुद्ध, सूत्रक्रीडा, वर्तक्रीडा, बाह्यक्रीड़ा, नालिकाक्रीडा, पत्रच्छेद्य, कटकच्छेद्य, प्रतरच्छेद्य, सजीव, निर्जीव और शकुनरुत (पक्षियों की बोली)। वह विषयों के प्रसंग का समय प्राप्त करने पर भी सिद्धिभाव की समीपता, बुरे कर्मों की शान्ति, कलाओं के समूह में अभ्यासपरता, कन्याओं के रूपप्रकर्ष में अदर्शनता से, विषयों के प्रसंग से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओहसियनंदणवणेसु उज्जाणेसु कलाकलावब्भासतल्लिच्छो आणंदयंतो गुरुपयाहिययाइं पूरयंतो पणइमणोरहे संवद्धयंतो भिच्चयणसंघायं अणुहवंतो विसिट्ठपुण्णफलाइं सुहंसुहेण अहिवसइ।

इओ य सो विसेणजीवनारओ तओ नरयाओ उव्वट्टिऊण पुणो संसारमाहिंडिय अणंतरभवे तहाविहं किंपि अणुट्ठाणं काऊण समुप्पन्नो वेयड्ढपव्वए रहनेउरचक्कवालउरे नयरे विज्जाहरत्ताए त्ति। कयं से नामं वाणमंतरो त्ति। अइक्कंतो कोइ कालो। अन्नया समागओ अओज्झातिलयभूयं मयणनंदणं नाम उज्जाणं। दिट्ठो य णेण तम्मि चेव उज्जाणे आलेक्खविणोयमणुहवंतो कुमारगुणचंदो त्ति। तं च दट्ठूण उदिण्णपावकम्मो अब्भाससामत्थेणं अकुसलजोयस्स गहिओ परमारईए। चिंतियं च णेणं—को उण एसो मह दुक्खहेऊ। अहवा किमणेण जाणिएणं; वावाएमि एयं दुरायारं ति। कसायकलुसियमई गओ तस्स समीवं। जाव न चएति तस्सोग्गहं अइक्कमिउं, तओ चिंतियमणेणं—इहट्ठिओ चेव अदिस्समाणो विज्जासत्तीए भेसेमि भीसणसद्देणं। तओ सयमेव जीवियं परिच्चइस्सइ। कओ णेण वज्जप्पहारफुट्टंतगिरिसद्दभीसणो महाभेरवसद्दो। न संखुद्धो कुमारो।

द्यानेषु कलाकलापाभ्यासतत्पर आनन्दयन् गुरुप्रजाहृदयानि पूरयन् प्रणयिमनोरथान् संवर्धयन् भृत्यजनसङ्घातमनुभवन् विशिष्टपुण्यफलानि सुखसुखेनाधिवसति।

इतश्च स विषेणजीवनारकस्ततो नरकादुद्वृत्य पुनः संसारमाहिण्डयानन्तरभवे तथाविधं किमप्यनुष्ठानं कृत्वा समुत्पन्नो वैताढ्यपर्वते रथनूपुरचक्रवालपुरे नगरे विद्याधरतयेति। कृतं तस्य नाम वानमन्तर इति। अतिक्रान्तः कोऽपि कालः। अन्यदा समागतोऽयोध्यातिलकभूतं मदननन्दनं नामोद्यानम्। दृष्टश्च तेन तस्मिन्नेवोद्याने आलेख्यविनोदमनुभवन् कुमारगुणचन्द्र इति। तं च दृष्ट्वोदीर्णपापकर्माऽभ्याससामर्थ्येनाकुशलयोगस्य गृहीतः परमारत्या। चिन्तितं च तेन—कः पुनरेष मम दुःखहेतुः। अथवा किमनेन ज्ञातेन, व्यापादयाम्येतं दुराचारमिति। कषायकलुषितमतिर्गतस्तस्य समीपम्, यावन्न शक्नोति तस्यावग्रहमतिक्रमितुम्। ततश्चिन्तितमनेन—इहस्थित एवादृश्यमानो विद्याशक्त्या भीषये (भापये) भीषणशब्देन। ततः स्वयमेव जीवितं परित्यक्ष्यति। कृतस्तेन वज्रप्रहारस्फुटद्गिरिशब्दभीषणो महाभैरवशब्दः। न संक्षुब्धः कुमारः। ईषत् संक्षुब्धा अपि धीरिता

विमुख होकर उसी नगरी में, नन्दनवन पर हँसनेवाले उद्यानों में कलाओं के समूह के अभ्यास में तत्पर रहकर, माता-पिता और प्रजाओं के हृदयों को आनन्दित करता हुआ, याचकों के मनोरथ को पूर्ण करता हुआ, सेवक-समूह की वृद्धि करता हुआ, विशिष्ट पुण्यों के फल का अनुभव करता हुआ अत्यधिक सुख से रह रहा था।

इधर वह विषेण का जीव नारकी उस नरक से निकलकर पुनः संसार में भ्रमण कर उसी प्रकार के किसी अनुष्ठान को कर, वैताढ्यपर्वत के रथनूपुर चक्रवालपुर नगर में विद्याधर के रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम वानमन्तर रखा गया। कुछ समय बीत गया। एक बार वह अयोध्या के तिलकभूत मदननन्दन नामक उद्यान में आया। उसने उस उद्यान में चित्रकला के विनोद का अनुभव करते हुए कुमार गुणचन्द्र को देखा। उसे देखकर, जिसके पापकर्म का उदय हुआ है और अभ्यास की सामर्थ्य से जिसका अशुभयोग आया है—ऐसे, उस (वानमन्तर) को उत्कृष्ट अरति ने जकड़ लिया। उसने सोचा—मेरे दुःख का कारण यह कौन है? अथवा इसकी जानकारी से क्या, इस दुराचारी को मार डालता हूँ। कषाय से कलुषित होते हुए उसके समीप गया, उसके आश्रय को लाँघने में समर्थ नहीं हुआ। अनन्तर उसने सोचा—यहीं रुककर अदृश्य रहकर विद्या की शक्ति से भीषण शब्द से डराऊँगा, तब अपने आप ही प्राण त्याग देगा। उसने वज्र के प्रहार से पहाड़ के टूटने के समान भयानक शब्द

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ईसि संखुद्धा वि विहीरऊण धीरविया वयंसया। अहिययरं कुविओ वाणमंतरो। चिंतियं च णेणं—अहो से दुरायारस्स धीरया, अहो अवज्जा ममोवरिं। ता दंसेमि से अत्तणो परक्कमं, निवाडेमि एयं महल्लं कंचणपायवं। तओ णेण संचुण्णियंगुवंगो नीसंसयं चेव न हविस्सइ त्ति। सयराहमेव पाडिओ कंचणपायवो। कुमारपुण्णप्पहावेण निवडिओ अन्नत्थ। न छिक्को वि सपरिवारो कुमारो। दूमिओ वाणमंतरो। चिंतियं च णेण—अहो से महापावस्स सामत्थं ति। अहिययरं संकिलिट्ठो चित्तेणं। एत्थंतरम्मि कुओइ समागओ गमणरई नाम खेत्तवालवाणमंतरो। तं च दट्ठूण थेवयाए सत्तस्स अप्पयाए विज्जाबलस्स पलाणो विज्जाहरवाणमंतरो। कुमारो वि उचियसमए पविट्ठो नयरिं।

इओ य उत्तरावहे विसए संखउरे पट्टणे संखायणो नाम राया। कंतिमई से भारिया। धूया य से रयणवई नाम। सा य रूवाइसएण मुणीण वि मणहारिणी कलावियक्खणत्तेण असरिसी अन्नकन्नयाण। तओ विसण्णा से जणणी। न इमीए तिहुयणे वि उचियपुरिसरयणं तक्केमि। अहवा बहुरयणभरिया भयवई मेइणी। ता निरूवावेमि ताव नियनिउणपुरिसेहिं, को उण इमीए रूवविन्ना-

वयस्याः। अधिकतरं कुपितो वानमन्तरः। चिन्तितं च तेन—अहो तस्य दुराचारस्य धीरता, अहो अवज्ञा ममोपरि। ततो दर्शयाम्यात्मनः पराक्रमम्, निपातयाम्येतं महान्त काञ्चनपादपम्। ततस्तेन सञ्चूर्णिताङ्गोपाङ्गो निःसंशयमेव न भविष्यतीति। शीघ्रमेव पातितः काञ्चनपादपः। कुमारपुण्यप्रभावेण च निपतितोऽन्यत्र। न स्पृष्टोऽपि सपरिवारः कुमारः। दूनो वानमन्तरः। चिन्तितं च तेन—अहो तस्य महापापस्य सामर्थ्यमिति। अधिकतरं संक्लिष्टश्चित्तेन। अत्रान्तरे कुतश्चित्समागतो गमनरतिर्नाम क्षेत्रपालवानमन्तरः। तं च दृष्ट्वा स्तोकतया सत्त्वस्याल्पतया विद्याबलस्य पलायितो विद्याधरवानमन्तरः। कुमारोऽप्युचितसमये प्रविष्टो नगरीम्।

इतश्चोत्तरापथे विषये शङ्खपुरे पत्तने शाङ्खायनो नाम राजा। कान्तिमती तस्य भार्या। दुहिता च तस्या रत्नवती नाम। सा च रूपातिशयेन मुनीनामपि मनोहारिणी कलाविचक्षणत्वेनासदृशी अन्यकन्यकानाम्। ततो विषण्णा तस्या जननी। नास्यास्त्रिभुवनेऽप्युचितपुरुषरत्नं तर्कये। अथवा बहुरत्नभृता भगवती मेदिनी। ततो निरूपयामि तावन्निजनिपुणपुरुषैः, कः पुनस्या रूप-

किया। कुमार क्षुब्ध नहीं हुआ। जो थोड़े से क्षुब्ध हुए थे ऐसे मित्रों को धैर्य बँधाया। वानमन्तर और अधिक कुपित हुआ। उसने सोचा—इस दुराचारी की धीरता आश्चर्यमय है। ओह! इसने अवज्ञा की, अतः अपना पराक्रम दिखाता हूँ, इस पर बहुत बड़ा स्वर्णवृक्ष गिराता हूँ। उससे जिसके अंगोपांग चूर्णचूर्ण हो गये हैं—ऐसा वह पुनः नहीं होगा अर्थात् मर जायेगा। शीघ्र ही स्वर्णवृक्ष गिराया। कुमार के पुण्य के प्रभाव से वह दूसरी जगह गिरा। कुमार को परिवार सहित उस वृक्ष ने छुआ भी नहीं। वानमन्तर (और) दुःखी हुआ। उसने सोचा—इस महापापी की सामर्थ्य आश्चर्यमय है! वानमन्तर का चित्त अत्यधिक दुःखी हुआ। इसी बीच कहीं से गमनरति नामक क्षेत्रपाल वानमन्तर आया। उसे देखकर शक्ति की कमी तथा विद्याबल की अल्पता के कारण वानमन्तर विद्याधर भाग गया। कुमार भी उचित समय पर नगरी में प्रविष्ट हुआ।

इधर उत्तरापथ देश के शंखपुर पत्तन में शांखायन नामक राजा था। कान्तिमती उसकी स्त्री थी। उसकी पुत्री का नाम रत्नवती था। वह रूप की अधिकता के कारण मुनियों के मन को हरने वाली थी तथा कला में विचक्षण होने के कारण अन्य कन्याओं से असाधारण थी। अतः उसकी माता दुःखी थी। 'तीनों लोकों में भी इसके योग्य कोई पुरुषरत्न नहीं है'—ऐसा अनुमान करती हूँ अथवा पृथ्वी बहुत रत्नों से भरी हुई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णेहिं उचिओ, जओ आसन्नो से विवाहसमओ त्ति। चिंतिऊण पेसिया दिसोदिसं रायउत्तरूवविन्नाण-परियाणणनिमित्तं वियड्ढा नियपुरिसा। भणिया य एए—आणेयव्वा तुब्भेहिं रयणवईरूवजोग्गा रायउत्तपडिच्छंदया कलाकोसल्लपिसुणयं च किंचि अच्चब्भुयं ति। [जं देवी आणवेइ त्ति] गया दिसोदिसं। दिट्ठा य णेहिं बहवे रायउत्ता, न उण रयणवईरूवजोग्ग त्ति। तहावि जे मणागं सुंदरयरा, ते आलिहिया तेहिं। गहियं च कलाकोसल्लपिसुणयं पत्तच्छेज्जाइ। समागया अन्ने अओज्झाउरिं। दिट्ठो य तेहिं राहावेहेण धणुव्वेयमब्भसंतो गुणचंदो। विम्हिया चित्तेण। पविट्ठो नयरिं कुमारो। चिंतियं च णेहिं—अहो से रूवं, अहो कलापगरिसो। सव्वहा अणुरूवो एस रायधूयाए। किं तु न तीरए एयस्स संपुण्णपडिच्छंदयालिहणं, विसेसओ सइदंसणम्मि। जंपियं चित्तमइणा—अरे भूसणय, दिट्ठं तए अच्छरियं। तेण भणियं—सुट्ठु दिट्ठं, किं तु विसण्णो अहं। चित्तमइणा भणियं—अरे केण कज्जेण। भूसणेण भणियं—असमत्थो जेण देवीसंदेसयं संपाडेउं। चित्तमइणा भणियं—'कहं विय'। भूसणेण भणियं—अरे कहमम्हेहिं एयस्स पडिच्छंदओ लिहिउं तीरइ त्ति। चित्तमइणा

विज्ञानैरुचितः, यत आसन्नस्तस्या विवाहसमय इति। चिन्तयित्वा प्रेषिता दिशि दिशि राजपुत्ररूप-विज्ञानपरिज्ञाननिमित्तं विदग्धा निजपुरुषाः। भणिताश्चैते—आनेतव्या युष्माभी रत्नवतीरूपयोग्या राजपुत्रप्रतिच्छन्दकाः कलाकौशल्यपिशुनकं च किञ्चिदत्यद्भुतमिति। (यद् देव्याज्ञापयतीति) गता दिशि दिशि। दृष्टाश्च तैर्बहवो राजपुत्राः, न पुना रत्नवतीरूपयोग्या इति। तथापि ये मनाक् सुन्दरतरास्ते आलिखितास्तैः। गृहीतं च कलाकौशल्यपिशुनकं पत्रच्छेद्यादि। समागता अन्येऽयोध्या-पुरीम्। दृष्टस्तैः राधावेधेन धनुर्वेदमभ्यस्यन् गुणचन्द्रः। विस्मिताश्चित्तेन। प्रविष्टो नगरीं कुमारः। चिन्तितं च तैः—अहो तस्य रूपम्, अहो कलाप्रकर्षः। सर्वथाऽनुरूप एष राजदुहितुः। किन्तु न शक्यते एतस्य सम्पूर्णप्रतिच्छन्दकालेखनम्, विशेषतः सकृद्दर्शने। जल्पितं चित्रमतिना—अरे भूषणक! दृष्टं त्वयाऽऽश्चर्यम्। तेन भणितम्—सुष्ठु दृष्टम्, किन्तु विषण्णोऽहम्। चित्रमतिना भणितम्—अरे केन कार्येण। भूषणेन भणितम्—असमर्थो येन देवीसन्देशं सम्पादयितुम्। चित्रमतिना भणितम्—'कथमिव'। भूषणेन भणितम्—अरे कथमावाभ्यामेतस्य प्रतिच्छन्दको लिखितुं शक्यते इति। चित्र-

---

अतः अपने निपुण आदमियों द्वारा दिखलाती हूँ कि इसके रूप और विज्ञान की अपेक्षा कौन योग्य है। क्योंकि विवाह का समय निकट है—ऐसा सोचकर प्रत्येक दिशा में राजपुत्रों के रूप और ज्ञान को जानने के लिए अपने आदमी भेजे और इन लोगों से कहा—'तुम लोग रत्नवती के रूप के योग्य राजपुत्र के कला-कौशल को सूचित करनेवाले कुछ अत्यन्त अद्भुत चित्र लाओ।' (महारानी जो आज्ञा दें---ऐसा कहकर) प्रत्येक दिशा में राजपुरुष गये। उन्होंने बहुत से राजपुत्रों को देखा किन्तु रत्नवती के रूप के योग्य कोई नहीं था। जो भी (उनमें) अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर थे उनको लिख लिया—उनके चित्र बना लिये और उनकी पत्रच्छेद्यादि कलाकौशल सम्बन्धी निपुणता को भी देखा-परखा। कुछ लोग अयोध्यापुरी आये। उन लोगों ने राधावेध से धनुर्वेद का अभ्यास करते हुए गुणचन्द्र को देखा। उनका चित्त विस्मित हुआ। कुमार नगरी में प्रविष्ट हुआ। उन्होंने सोचा—इसका रूप और कला का प्रकर्ष आश्चर्यमय है। यह राजपुत्री के सर्वथा योग्य है किन्तु इसके समान चित्र नहीं बना सकते हैं, विशेषतः एक बार दर्शन में (तो यह सम्भव नहीं)। चित्रमति ने कहा—'अरे भूषणक! तूने आश्चर्य देखा?' उसने कहा—'भली प्रकार देखा, किन्तु मैं खिन्न हूँ।' चित्रमति ने कहा—'अरे किस बात से खिन्न हो?' भूषण ने कहा—'क्योंकि महारानी के सन्देश को पूरा करने में असमर्थ हूँ।' चित्रमति ने कहा—'कैसे?' भूषण ने कहा—'अरे, हम दोनों इसका चित्र कैसे बना सकते हैं?' चित्रमति ने कहा—'अरे, यह

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

भणियं –अरे सव्वसाहारणो एस विसाओ, अन्नेणावि एस न तीरए चेव। भूसणेण भणियं—किं अम्हाण सेसचिंताए, निउत्ता एत्थ अम्हे। चित्तमइणा भणियं –अरे उवसप्पम्ह ताव एयं। तओ अणवरयदंसणेण रायधूयपडिच्छंदयं पिव किंचिसाहम्मेण लिहिस्सामो एयपडिच्छंदयं ति। भूसणेण भणियं—जुत्तमेयं, ता कहं पुण एस दट्ठव्वो त्ति। चित्तमइणा भणियं—अरे रयणवइरूवमभिलिहिय चित्तयरदारयववएसेण पेच्छामु एयं ति। भूसणेण भणियं—अरे साहु साहु, सोहणो एस उवाओ। एवं च कए समाणे 'रायधूयाए उवरि केरिसो एसो' त्ति एयं पि विन्नायं भविस्सइ त्ति। मंतिऊण पविट्ठा नयरिं। आलिहिओ अहिमयपडो। घेत्तूण तं गया कुमारभवणं। भणिओ य पडिहारो—भो महापुरिस, चित्तयरदारया अम्हे अत्थिणो कुमारदंसणस्स। पडिहारेण भणियं—चिट्ठह ताव तुब्भे, निवेएमि कुमारस्स। निवेइयं पडिहारेण। समाइट्ठं च णेण, जहा पविसंतु त्ति। पविट्ठा चित्तमइ-भूसणा। पणमिओ कुमारो। 'उवविसह' त्ति भणियमणेण। 'पसाओ' त्ति भणिऊण उवविट्ठा एए।

उवणीओ य अह पडो हरिसियवयणेहि तेहि सपणामं।
भणियं च देव अम्हे संखउराओ इहं आया ॥६४८॥

मतिना भणितम् –अरे सर्वसाधारण एष विषादः, अन्येनाप्येष न शक्यते एव। भूषणेन भणितम्—किमावयोः शेषचिन्तया, नियुक्तावत्रावाम्। चित्रमतिना भणितम्—अरे उपसर्पावस्तावदेतम्। ततोऽनवरतदर्शनेन राजदुहितृप्रतिच्छन्दकमिव किञ्चित्साधर्म्येण लिखिष्याव एतत्प्रतिच्छन्दकमिति। भूषणेन भणितम्—युक्तमेतत्, ततः कथं पुनरेष द्रष्टव्य इति। चित्रमतिना भणितम्—अरे रत्नवतीरूपमभिलिख्य चित्रकरदारकव्यपदेशेन प्रेक्षावहे एतमिति। भूषणेन भणितम्—अरे साधु साधु, शोभन एष उपायः। एवं च कृते सति 'राजदुहितुरुपरि कीदृश एषः' इत्येतदपि विज्ञातं भविष्यतीति। मन्त्रयित्वा प्रविष्टौ नगरीम्। आलिखितोऽभिमतपटः। गृहीत्वा तं गतौ कुमारभवनम्। भणितश्च प्रतीहारः—भो महापुरुष! चित्रकरदारकावावामर्थिनौ कुमारदर्शनस्य। प्रतीहारेण भणितम्—तिष्ठत तावद् युवाम्, निवेदयामि कुमारस्य। निवेदितं प्रतीहारेण। समादिष्टं च तेन—यथा प्रविशतमिति। प्रविष्टौ चित्रमतिभूषणौ। प्रणतः कुमारः। 'उपविशतम्' इति भणितमनेन। 'प्रसादः' इति भणित्वोपविष्टावेतौ।

उपनीतश्चाथ पटो हर्षितवदनाभ्यां ताभ्यां सप्रणामम्।
भणितं च देव! आवां शङ्खपुरादिहायातौ॥ ६४८॥

विषाद तो सभी के लिए सामान्य है, दूसरा भी इस कार्य को नहीं कर सकता।' भूषण ने कहा—'हम दोनों को शेष चिन्ता से क्या, हम इस कार्य में लगने हैं।' चित्रमति ने कहा—'अरे, इस कार्य को आगे बढ़ायें। अनन्तर निरन्तर देखकर राजपुत्री के चित्र की कुछ समानता से इसका चित्र बनायें।' भूषण ने कहा—'यह ठीक है, तो इसे पुनः कैसे देखें?' चित्रमति ने कहा—'अरे, रत्नवती का चित्र बनाकर चित्रकार के बहाने इसे देखेंगे।' भूषण ने कहा –'अरे ठीक है, ठीक है, यह उपाय ठीक है। इस उपाय से राजपुत्री के प्रति यह (इसका अभिप्राय) कैसा है—यह भी ज्ञात हो जायेगा।' ऐसी सलाह कर दोनों नगरी में प्रविष्ट हुए। इष्ट चित्रपट बनाया। उसे लेकर कुमार के भवन में गये। प्रतीहार से कहा—'हे महापुरुष! चित्रकार के लड़के हम दोनों कुमार के दर्शन के इच्छुक हैं।' द्वारपाल ने कहा—'तो ठहरो, आप दोनों के विषय में कुमार से निवेदन करता हूँ।' द्वारपाल ने निवेदन किया। कुमार ने आज्ञा दी कि प्रवेश करने दो। चित्रमति और भूषण प्रविष्ट हुए। कुमार को नमस्कार किया। बैठो—इसने कहा। (आपकी) कृपा—कहकर ये दोनों बैठ गये।

उन दोनों ने हर्षितमुख होकर चित्रपट लेकर प्रणामपूर्वक कहा—'महाराज! हम दोनों शंखपुर से यहाँ आये हैं॥६४८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवं गुणाण निलयं पणईयणवच्छलं च मुणिऊण ।
ता अम्हे कयउण्णा जेहि तुमं अज्ज दिट्ठो सि ॥६४९॥
सयलपुहईए नाहो तं नरवर तहवि भणिमो एवं ।
अम्हाण तुमं नाहो निब्भरभत्तीपहावेणं ॥६५०॥
ता देज्जह आणत्ति चित्तकलाए सगुणलवं अम्हे ।
जाणामो परमेसर इय भणिउं लज्जिया जाया ॥६५१॥
अह तं दट्ठूण पडं पीइभरिज्जंतलोयणजुएण ।
भणियं गुणचंदेणं अहो कलालवगुणो तुब्भं ॥६५२॥
जइ एस कलाए लवो ता संपुण्णा उ केरिसी होइ ।
सुंदरअसंभवो च्चिय अओ वरं चित्तयम्मस्स ॥६५३॥
अम्हेहि अदिट्ठउव्वो अन्नेहि वि नूणमेत्थ लोएहिं ।
एवंविहो सुरूवो रेहानासो न दिट्ठो त्ति ॥६५४॥
जइ वि य रेहानासो पत्तेयं होइ सुंदरो कहवि ।
तहवि समुदायसोहा न एरिसो होइ अन्नस्स ॥६५५॥

देवं गुणानां निलयं प्रणयिजनवत्सलं च ज्ञात्वा ।
तत आवां कृतपुण्यौ याभ्यां त्वमद्य दृष्टोऽसि ॥ ६४९ ॥
सकलपृथिव्या नाथस्त्वं नरवर ! तथापि भणाव एवम् ।
आवयोस्त्वं नाथो निर्भरभक्तिप्रभावेण । ६५० ॥
ततो दत्ताज्ञप्ति चित्रकलायां स्वगुणलवमावाम् ।
जानीवः परमेश्वर ! इति भणित्वा लज्जितौ जातौ ॥ ६५१ ॥
अथ तं दृष्ट्वा पटं प्रीतिभ्रियमाणलोचनयुगेन ।
भणितं गुणचन्द्रेण अहो कलालवगुणो युवयोः ॥ ६५२ ॥
यद्येष कलाया लवस्ततः सम्पूर्णा तु कीदृशी भवति ।
सौन्दर्यासम्भव एव अतः परं चित्रकर्मणः ॥ ६५३ ॥
अस्माभिरदृष्टपूर्वोऽन्यैरपि नूनमत्र लोकैः ।
एवंविधः सुरूपो रेखान्यासो न दृष्ट इति ॥ ६५४ ॥
यद्यपि च रेखान्यासः प्रत्येकमपि सुन्दरः कथमपि ।
तथापि समुदायशोभा नेदृशी भवत्यन्यस्य ॥ ६५५ ॥

महाराज को गुणों का भवन और याचकजनों का प्रेमी जानकर हम दोनों ने बड़े पुण्य से आपको आज देखा है । हे नरश्रेष्ठ ! आप समस्त पृथ्वी के नाथ हैं तथापि इस प्रकार कहते हैं कि अत्यधिक भक्ति के प्रभाव से हम दोनों के आप नाथ हैं । अतः हे परमेश्वर, आज्ञा दो । हम दोनों के पास चित्रकला का लेश है' ऐसा कहकर दोनों नम्र हो गये । अनन्तर उस वस्त्र को देखकर प्रीति से भरे हुए नेत्रवाले गुणचन्द्र ने कहा—'ओह ! आप दोनों के पास कला-गुण का लेश (बहुत थोड़ी मात्रा) है । यदि यह कला का लेश है तो सम्पूर्ण कैसा होता है ? इससे उत्कृष्ट चित्रकर्म का सौन्दर्य असम्भव है । हम लोगों ने और दूसरों ने भी निश्चित रूप से इस लोक में इस प्रकार के अच्छे रूपवाला रेखांकन नहीं देखा है । यद्यपि प्रत्येक का रेखांकन किसी प्रकार (किसी विशेष गुण की अपेक्षा) सुन्दर होता है तथापि दूसरे चित्रकारों के चित्र की सम्पूर्ण रूप से शोभा इस प्रकार नहीं होती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एसा विसालनयणा दाहिणकरधरियरम्मसयवत्ता।
रूवि व्व मयणघरिणी चित्तगया हरइ चित्ताइं ॥६५६॥
जइ पुण मणुयसुरासुरलोएसु हविज्ज एरिसी कावि।
विग्गहवई सुरूवा निज्जियरइलच्छिलावण्णा ॥ ६५७॥
ता नसिऊण इमीए मयणो नियकज्जभारमुद्दामं।
हेलाविणिज्जियजओ भुवणम्मि सुवेज्ज वीसत्थो ।।६५८॥
ता अइसयकोसल्लं तुम्हाण इमं दढं महं चित्तं।
अवहरइ अहियउव्वं निउणगुणा कं च न हरंति ॥६५९॥
एवं पयंपिरम्मि गुणचंदे तेहि निउणपुरिसेहि।
भणियं न एत्थ अम्हं अइसयनिउणत्तणं नाह ॥६६०॥
अइसयनिउणत्तं पुण एत्थं सुण भयवओ पयावइणो।
जेण जयसुंदरमिणं लडहं रूवं विणिम्मवियं ॥६६१॥
अम्हेहि लिहियमेत्तं नरवर ! दट्ठूण किमिह निउणत्तं।
अम्हाण रूवसोहं संपुण्णमणालिहंताणं ॥६६२॥

एषा विशालनयना दक्षिणकरधृतरम्यशतपत्रा।
रूपिणीव मदनगृहिणी चित्रगता हरति चित्तानि ॥ ६५६ ॥
यदि पुनर्मनुजसुरासुरलोकेषु भवेदीदृशी काऽपि।
विग्रहवती सुरूपा निर्जितरतिलक्ष्मीलावण्या ॥ ६५७ ॥
ततो न्यस्यास्यां मदनो निजकार्यभारमुद्दामम् ॥
हेलाविनिर्जितजगद् भुवने स्वप्याद् विश्वस्तः ॥ ६५८ ॥
ततोऽतिशयकौशल्यं युवयोरिदं दृढं मम चित्तम्।
अपहरत्यधिकापूर्वं निपुणगुणाः कं च न हरन्ति ॥ ६५९ ॥
एवं प्रजल्पति गुणचन्द्रे ताभ्यां निपुणपुरुषाभ्याम्।
भणितं नात्रावयोरतिशयनिपुणत्वं नाथ ॥ ६६० ॥
अतिशयनिपुणत्वं पुनरत्र शृणु भगवतः प्रजापतेः।
येन जगत्सुन्दरमिदं रम्यं रूपं विनिर्मितम् ॥ ६६१ ॥
आवाभ्यां लिखितमात्रं नरवर ! दृष्ट्वा किमिह निपुणत्वम्।
आवयो रूपशोभां सम्पूर्णामनालिखतोः ॥ ६६२ ॥

है। यह विशाल नयनोंवाली, दायें हाथ में रमणीय कमल को धारण किये हुए, शरीरधारी कामदेव की पत्नी (रति) जैसी चित्रित होकर चित्त को हर रही है। यदि शरीरधारिणी, अच्छे रूपवाली, रति लक्ष्मी के लावण्य को जीतनेवाली, सुर और असुरों में भी ऐसी कोई हो तो संसार में कामदेव ने विश्वस्त होकर अपने आप इस पर अपने उत्कृष्ट कार्यभार को रखकर खेल ही खेल में जगत् को जीत लिया। अतः आप दोनों की यह अतिशय कुशलता मेरे चित्त को निश्चय ही अपूर्व रूप से अत्यधिक हर रही है। निपुणता रूप-गुण वाले किसको (किसके मन को) नहीं हरते हैं?' गुणचन्द्र के ऐसा कहने पर उन दोनों निपुण पुरुषों ने कहा—'नाथ ! यहाँ पर हम लोगों की अतिशय निपुणता नहीं है। अतिशय निपुणता तो यहाँ भगवान् प्रजापति की सुनो, जिसने संसार में सुन्दर ऐसे रमणीय रूप को निर्मित किया है। जब आप उसे देखेंगे तो पायेंगे कि हम दोनों ने कितना-सा चित्र-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इय तव्वयणं सोउं हरिसियवयणेण तो कुमारेणं।
भणियं तुब्भेहि कहिं एयं आलोइयं रूवं ॥६६३॥
संसारसारभूयं नयणमणाणंदयारयं परमं।
तिहुयणविम्हयजणणं विहिणो वि अउव्वनिम्माणं ॥६६४॥
भणियं च तेहिं नरवर! सुण संखउरम्मि गुणनिहाणम्मि।
दरियारिमद्दणरई राया संखायणो नाम ॥६६५॥
तस्सेसा गुणखाणी ओहामियतियससुंदरिविलासा।
धूया पाणब्भहिया रयणवई नाम नामेण ॥६६६॥
अम्हेहि वम्महमहे दिट्ठा एस त्ति कन्नया नाह।
नयराओ निक्खमंती दिव्वं जंपाणमारूढा ॥ ६६७॥
धरियधवलायवत्ता सहियणपरिवारिया विसालच्छी।
उज्जाणं गंतुमणा दाहिणकरनिमियसयवत्ता ॥६६८॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा हर्षितवदनेन ततः कुमारेण।
भणितं युष्माभ्यां कुत्रैतदालोकितं रूपम् ॥ ६६३ ॥
संसारसारभूतं नयनमनआनन्दकारकं परमम्।
त्रिभुवनविस्मयजननं विधेरपि अपूर्वनिर्माणम् ॥ ६६४ ॥
भणितं च ताभ्यां नरवर! श्रृणु शङ्खपुरे गुणनिधाने।
दृप्तारिमर्दनरतो राजा शङ्खायनो नाम ॥ ६६५ ॥
तस्यैषा गुणखानि लंघूकृतत्रिदशसुन्दरीविलासा।
दुहिता प्राणाभ्यधिका रत्नवती नाम नाम्ना ॥ ६६६ ॥
आवाभ्यां मन्मथमहे दृष्टैषेति कन्यका नाथ ॥
नगराद् निष्क्रामन्ती दिव्यं जम्पानमारूढा ॥ ६६७ ॥
धृतधवलातपत्रा सखीजनपरिवृता विशालाक्षी ॥
उद्यानं गन्तुमना दक्षिणकरन्यस्तशतपत्रा ॥ ६६८ ।'

नैपुण्य दिखलाया है। सम्पूर्ण रूप और शोभा का चित्रण हम लोगों ने नहीं किया है।' इस प्रकार उनके वचन सुनकर हर्षित मुखवाले कुमार ने कहा—'आप दोनों ने इस रूप को कहाँ देखा? संसार का सारभूत, नेत्रों को और मन को उत्कृष्ट आनन्द देनेवाला, तीनों लोकों को विस्मय उत्पन्न करनेवाला यह ब्रह्मा का (कोई) अपूर्व ही निर्माण है।' उन दोनों ने कहा—'नरश्रेष्ठ! सुनो—गुणों के निधान शंखपुर में गर्वीले शत्रुओं के मर्दन में जिसको रति है—ऐसे शंखायन नाम के राजा हैं। उनकी यह गुणों की खान, देवांगनाओं के विलासों को तिरस्कृत करने वाली, प्राणों से भी अधिक प्यारी रत्नवती नामक पुत्री है। मदनमहोत्सव पर हम दोनों ने, दिव्य पालकी पर आरूढ़ होकर नगर से निकलती हुई इस कन्या को देखा है। विशाल नेत्रोंवाली वह सफेद छत्र को धारण किये हुए सखियों के साथ उद्यान को जा रही थी। दायें हाथ में उसने कमल ले रखा था ॥६४९-६६८॥

---

१. लहुइअं ओहामियं तुलियं (पाइल, ५३९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अम्हेहि तओ हुलियं गेहं गंतूणमह पडं घेत्तुं।
लिहिया मुद्धमयच्छी दंसणमणुसम्भरंतेहिं ॥६६९॥
न य तीए सुंदरत्तं रूवस्साराहियं इहम्हेहिं।
मन्ने न विस्सयम्मो वि अवितहं तं खमो लिहिउं ॥६७०॥
दट्ठुं पि जं न नज्जइ अबुहेहिं साहिउं च वायाए।
दिट्ठं पि चित्तयम्मे तं आराहिज्जए कह णु ॥६७१॥
सोऊण इमं वयणं गुणचंदो मयणगोयरं पत्तो।
रायाणुभावओ च्चिय आलंबणपगरिसाओ य ॥६७२॥
गूहंतेण तहावि य नियमागारमह जंपियं तेग।
भण भो वित्थुयबुद्धी अन्नं पसिणोत्तरं किंचि ॥६७३॥
जं आणवेइ देवो भणिउं परिओसवियसियच्छेण।
अणुसरिऊणमिणं तो पढियं पसिणोत्तरं तेण ॥६७४॥
किं देंति कामिणीओ ? के हरपणया ? कुणंति किं भुयगा ? कं च मऊहेहि ससी धवलेइ ?

आवाभ्यां ततः शीघ्रं गेहं गत्वाऽथ पटं गृहीत्वा।
लिखिता मुग्धमृगाक्षी दर्शनमनुस्मरद्भ्याम् ॥ ६६९ ॥
न तस्याः सुन्दरत्वं रूपस्याराधितमिहावाभ्याम्।
मन्ये न विश्वकर्माऽप्यवितथं तत् क्षमो लिखितुम् ॥ ६७० ॥
दृष्ट्वाऽपि यन्न ज्ञायतेऽबुधैः कथयितुं च वाचा।
दृष्टमपि चित्रकर्मणि तदाराध्यते कथं नु ॥ ६७१ ॥
श्रुत्वेदं वचनं गुणचन्द्रो मदनगोचरं प्राप्तः।
राजानुभावत एव आलम्बनप्रकर्षाच्च ॥ ६७२ ॥
गूहता तथापि च निजमाकारमथ जल्पितं तेन।
भण भो विस्तृतबुद्धे ! अन्यत् प्रश्नोत्तरं किञ्चित् ॥ ६७३ ॥
यदाज्ञापयति देवो भणित्वा परितोषविकसिताक्षेण।
अनुस्मृत्येदं ततः पठितं प्रश्नोत्तरं तेन ॥ ६७४ ॥
किं ददति कामिन्यः, के हरप्रणताः, कुर्वन्ति किं भुजगाः ? कं च मयूखैः शशी धवल-

तब हम दोनों ने शीघ्र जाकर वस्त्र लेकर दर्शन का स्मरण करते हुए, मृग जैसी भोली-भाली आँखोंवाली (इस कन्या को) चित्रित किया। हम दोनों ने उसके रूप की सुन्दरता की यहाँ आराधना नहीं की। मैं मानता हूँ कि विश्वकर्मा भी पूरी तरह से उसे चित्रित नहीं कर सकता है। देखकर भी जिसे अविद्वान् लोग नहीं जान सकते और (जिसका) वाणी से कथन नहीं कर सकते, चित्र में देखी हुई उसकी आराधना कैसे की जा सकती है ?' इस वचन को सुनकर आलम्बन की प्रकर्षता और राजकीय सामर्थ्य के कारण गुणचन्द्र काम-मार्ग को प्राप्त हो गया। तथापि अपने आकार को छिपाकर उसने कहा—'हे विस्तृत बुद्धिवाले ! कुछ अन्य प्रश्नोत्तर करो।' अनन्तर 'महाराज जो आज्ञा दें'—ऐसा कहकर सन्तोष से विकसित नेत्रोंवाले उसने स्मरण कर प्रश्नोत्तर पढ़ा ॥६६९-६७४॥

'कामिनियाँ (स्त्रियाँ) क्या देती हैं ? शिव को नमस्कार कौन करता है ? साँप (भोगी) क्या करते हैं ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिग्घमेवोवलहिऊण भणियं कुमारेणं—'नहंगणाभोयं'। चित्तमइणा भणियं—अहो देवस्स लहण-वेगो। कुमारेण भणियं—पढसु किंचि अन्नं ति। विसालबुद्धिणा पढियं—

किं होइ रहस्स वरं ? बुद्धिपसाएण को जणो जियइ ?
किं च कुणंती बाला नेउरसद्दं पयासेइ ? ॥६७५॥

ईसि विहसिऊण भणियं कुमारेण—'चक्कमंती'। 'अहो अइसओ' त्ति जंपियं भूसणेण। भणियं च णेण—देव, मए वि किंचि पसिणोत्तरं चिंतियमासि, तं सुणाउ देवो। कुमारेण भणियं—'पढसु' त्ति। पढियं भूसणेण—

किं पियह ? किं च गेण्हह पढमं कमलस्स ? देह किं रिवुणो ?
नववहुरमियं भण किं ? उवहसरं केरिसं वक्कं ? ॥६७६॥

दमइमहो (?) का दिज्जइ परलोए ? का दड्ढा वाणरेण ? कं जाइ वहू ? अमियमहणम्मि

यति ? शीघ्रमेवोपलभ्य भणितं कुमारेण—"नहंगणाभोयं"। नखम्, गणाः, भोगम्, (फणाम्), नभोङ्गणाभोगम्—नभोङ्गणविस्तारम्। चित्रमतिना भणितम्—अहो ! देवस्य लभनवेगः (लब्धि-वेगः)। कुमारेण भणितम्—पठ किमप्यन्यदिति। विशालबुद्धिना पठितम्—

किं भवति रथस्य वरं, बुद्धिप्रसादेन को जनो जीवति।
किं च कुर्वती बाला नूपुरशब्दं प्रकाशयति ॥ ६७५ ॥

ईषद् विहस्य भणितं कुमारेण—"चक्कमंती"। (चक्रम्, मन्त्री, चङ्क्रममाणा) 'अहो अतिशयः' इति जल्पितं भूषणेन। भणितं च तेन—देव ! मयाऽपि किञ्चित् प्रश्नोत्तरं चिन्तित-मासीत्, तच्छृणोतु देवः। कुमारेण भणितं—'पठ' इति। पठितं भूषणेन—

किं पिबत, किं च गृह्णीत प्रथमं कमलस्य दत्त किं रिपोः।
नववधूरतं भण किं, उपधास्वरं कीदृशं वक्रम् ॥ ६७६ ॥

दमइमहो (?) का दीयते परलोके ? का दग्धा वानरेण ? कं याति वधूः ? अमृतमथने नष्टाः

चन्द्रमा किरणों से किसे धवल बनाता है ?' शीघ्र ही कुमार ने ग्रहण कर कहा—'नहंगणाभोयं' अर्थात् नख, गण, भोग (फण) और आकाश रूपी आँगन के विस्तार को। अर्थात् स्त्रियाँ नखक्षत करती हैं, शिव को उनके गण नमस्कार करते हैं, भोगी भोग करते हैं अथवा साँप फन फैलाते हैं तथा चन्द्रमा अपनी किरणों से आकाशरूपी आँगन के विस्तार को धवल बनाता है।' चित्रमति ने कहा—'कुमार की प्राप्ति (उत्तर ढूंढ़ने) का वेग आश्चर्य-युक्त है !' कुमार ने कहा—'अन्य कुछ पढ़ो।' विशालबुद्धि ने पढ़ा—

'रथ में कौन श्रेष्ठ होता है ? बुद्धि से प्राप्त कृपा के द्वारा कौन मनुष्य जीवित रहता है और बाला क्या करती हुई नूपुर के शब्द प्रकट करती है ?' ॥६७५॥

कुछ मुस्कुराकर कुमार ने कहा—'चक्कमंती'—चक्र, मन्त्री और गमन करती हुई। अर्थात् रथ में श्रेष्ठ चक्र होता है, बुद्धि से प्राप्त कृपा के द्वारा मन्त्री जीवित रहता है और बाला गमन करती हुई नूपुर के शब्द को प्रकट करती है।' 'ओह ! अतिशय है'—ऐसा भूषण ने कहा और वह बोला—'महाराज ! मैंने भी कुछ प्रश्नोत्तर सोचे थे, उन्हें महाराज सुनिए।' कुमार ने कहा—'पढ़ो'। भूषण ने पढ़ा—

'क्या पिया जाता है ? कमल का पहले क्या पकड़ा जाता है ? शत्रु को क्या दिया जाता है ? नव वधू में रत कौन है ? कहो, उपधा स्वर वाला वाक्य कैसा होता है ?' ॥६७६॥

'दूसरे लोगों को कौन दी जाती है ? वानर ने किसे जलाया ? वधू कहाँ जाती है ? अमृतमन्थन के समय नष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नट्ठा सुरासुरा केरिसे व्व दसदिसिहुत्ता ? किं इच्छइ सयलं चिय तेलोक्कं ? केरिसं च जुवईहि सया दाविज्जइ नियवयणं ?

कुमारेण भणियं—'पुणो पढसु' त्ति। पढियं भूसणेण। अणंतरमेव लहिऊण भणियं कुमारेण—'कण्णालंकारमणहरं सविसेसं'। चित्तमइणा भणियं—अहो देवस्स बुद्धिपगरिसो, जमेयं लद्धं ति। देव, महंतो एयस्स एत्थ अहिमाणो आसि, न लद्धं च एयमन्नेणं। भूसणेण भणियं—अरे, तुज्झं पि अज्ज अहिमाणो अवेइ। कुमारेण भणियं—'कहं विय'। भूसणेण भणियं—देव, एएण वि एवंविहं चेव चिंतियं। कुमारेण भणियं—'पढसु' त्ति। पढियं चित्तमइणा—के कढिणा नरिंद ? का कसणा ? तेओ कासु सासओ ? उच्छू केरिस व्व ? के य अरहिया ? का उयहिगामिणी ? के धणुपरसुनहरमायाविसवसविसयप्पहाणया जाणसु ?

सुरासुरा कीदृशे इव दशदिगभिमुखाः ? किमिच्छति सकलमेव त्रैलोक्यं कीदृशं च युवतिभिः सदा दर्श्यते निजवदनम् ?

कुमारेण भणितं 'पुनः पठ' इति। पठितं भूषणन। अनन्तरमेव लब्ध्वा भणितं कुमारेण—'कन्नालङ्कारमणहरं सविसेसं'। कं (जलं) नालं, कार—(तिरस्कारः) मनोहरं, सविशेषम्। कन्या—लङ्का—रमणगृहं सविषे [अमृतमथने]. शं (सुखं), अलङ्कारमनोहरं सविशेषम्। चित्रमतिना भणितम्—अहो देवस्य बुद्धिप्रकर्षः, यदेतल्लब्धमिति। देव ! महानेतस्यात्राभिमान आसीद्, न लब्धं चैतदन्येन। भूषणेन भणितम्—अरे तवाप्यद्याभिमानोऽपैति। कुमारेण भणितम्—'कथमिव'। भूषणेन भणितम्—देव ! एतेनाप्येवंविधमेव चिन्तितम्। कुमारेण भणितं 'पठ' इति। पठितं चित्रमतिना—के कठिना नरेन्द्र ? का कृष्णा ? तेजः कासु शाश्वतम् ? इक्षुः कीदृशीव, के च अर्हा ? का उदधिगामिनी ? कान् धनुः-परशु-नखर-माया-विष-वसा-विषयप्रधानान् जानीहि ?

सुर और असुर कैसे दश दिशाओं की ओर अभिमुख हुए ? समस्त त्रिलोक क्या चाहता है ? युवतियाँ सदा अपना मुख कैसा दिखलाती हैं ?'

कुमार ने कहा -'पुनः पढ़ो।' भूषण ने पढ़ा। अनन्तर ग्रहण कर कुमार ने कहा—'कन्नालंकारमणहर सविसेसं'। जल, नाल, तिरस्कार, मनोहर, सविशेष—कन्या, लंका, रमणगृह, सविष होने पर, सुख, अलंकार से विशेष मनोहर। अर्थात् जल पिया जाता है। कमल का पहले 'नाल' (कमलदण्ड) पकड़ा जाता है। शत्रु को तिरस्कार दिया जाता है। नववधू में मनोहर रत हैं। उपधा का स्वर विशेष होता है। कन्या दी जाती है। वानर ने लंका जलायी। वधू रमणगृह को जाती है। अमृतमन्थन के समय क्षीरसागर के द्वारा विष उगलने या क्षीरसागर के विषयुक्त होने पर सुर और असुर दश दिशाओं की ओर अभिमुख हुए। त्रिलोक सुख (शं) सुख चाहता है। युवतियाँ अपना मुख सदा 'अलंकार से विशेष मनोहर' दिखलाती हैं।

चित्रमति ने कहा—'महाराज की बुद्धि का प्रकर्ष आश्चर्यमय है; जो कि इसे पा लिया। महाराज ! इसका (मेरा) इस विषय में बड़ा अभिमान था, इसे दूसरे ने नहीं पाया अर्थात् मेरे इन प्रश्नों का उत्तर दूसरा नहीं दे पाया।' भूषण ने कहा—'अरे ! तेरा भी आज अभिमान दूर होता है।' कुमार ने कहा—'कैसे ?' भूषण ने कहा—'महाराज ! इसने भी इसी प्रकार सोचा था !' कुमार ने कहा—'पढ़ो !' चित्रमति ने पढ़ा—'राजन् ! क्या कठिन है ? कौन काली है ? किसमें तेज शाश्वत है ? ईख कैसी होती है ? कौन मूल्यवान् हैं ? कौन समुद्र तक जाती है ? किन्हें धनुष, परशु, नख, माया, विष, वसा, विषयप्रधान जानें ?'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुमारेण भणियं—'पुणो पढसु' त्ति। पढियं चित्तमइणा। अणंतरमेव लहिऊण भणियं कुमारेण—'पत्थरामसीहासुरसप्पवराहलावया'। भूसणेण भणियं—अहो अच्छरीयं, नज्जइ देवेण चेव कियं ति। विम्हिया चित्तमइभूसणा। भणिओ कुमारेण धणदेवाहिहाणो भंडारिओ—भो धणदेव, देहि एयाण दीणारलक्खं ति। धणदेवेण भणियं—जं देवो आणवेइ। चिंतियं च णेण—अहो मुद्धया कुमारस्स। अलक्खं दाणमेव नत्थि। नूणं न याणइ एसो, किंपमाणो लक्खो। ता इमं एत्थ पत्तयालं। संपाडेमि एयमेएसिं कुमारपुरओ चेव, जेण विन्नायलक्खमहापमाणो न पुणो वि थेवकज्जे एवमाणवेइ त्ति। चिंतिऊण आणाविओ तेण तत्थेव दीणारलक्खो, पुंजिओ कुमारपुरओ। भणियं कुमारेण—भो धणदेव, किमेयं ति। धणदेवेण भणियं—देव, एसो सो दीणारलक्खो, जो पसाईकओ देवेण एएसिं चित्तयरदारयाणं। कुमारेण चिंतियं—हंत किमेयं अज्ज संपयादंसणं। नूणं

कुमारेण भणितं—'पुनः पठ' इति। पठितं चित्रमतिना। अनन्तरमेव लब्ध्वा भणितं कुमारेण—'पत्थरामसीहासुरसप्पवराहलावया'। [प्रस्तरा:-मषी-ईहा-सुरसप्रवरा-हला-आपगा। 'पत्थ'—पार्थः (अर्जुनः), रामः—परशुरामः, 'सीह' सिंहः, (माया-प्रधानः) असुरः, 'सप्प' सर्पः विष-प्रधानः, 'वराह' वराहः वसाप्रधानः, 'लावया' विषप्रधाना लावकपक्षिणः।] भूषणेन भणितम्—अहो आश्चर्यम्, ज्ञायते देवेनैव कियदिति। विस्मितौ चित्रमतिभूषणौ। भणितः कुमारेण धनदेवाभिधानो भाण्डागारिकः—भो धनदेव! देहि एताभ्यां दीनारलक्षमिति। धनदेवेन भणितम्—यद् देव आज्ञापयति। चिन्तितं च तेन—अहो मुग्धता कुमारस्य, अलक्षं दानमेव नास्ति। नूनं न जानात्येषः, किंप्रमाणं लक्षम्। तत इदमत्र प्राप्तकालम्। सम्पादयाम्येतदेताभ्यां कुमारपुरत एव, येन विज्ञातलक्षमहाप्रमाणो न पुनरपि स्तोककार्ये एवमाज्ञापयतीति। चिन्तयित्वा आनायितं तेन तत्रैव दीनारलक्षम्, पुञ्जितं कुमारपुरतः। भणितं कुमारेण—भो धनदेव! किमेतदिति। धनदेवेन भणितम्—देव! एतद् तद् दीनारलक्षम्, यत् प्रसादीकृतं देवेनैतयोश्चित्रकरदारकयोः। कुमारेण चिन्ति-

---

कुमार ने कहा—'पुनः पढ़ो।' चित्रमति ने पढ़ा। शीघ्र ही प्राप्तकर (जानकर) कुमार ने कहा—'पत्थरामसीहासुरसप्पवराहलावया'। पत्थर, स्याही, इच्छाएँ, मीठे रस से भरी हुई, हल, नदी, पार्थ, परशुराम, सिंह, असुर, सर्प, शूकर और लावक। तात्पर्य यह कि पत्थर कठिन होता है। स्याही काली होती है। इच्छाओं का तेज शाश्वत है अर्थात् संसार में इच्छाओं का तेज सदा रहता है। ईख मीठे रस से भरी रहती है। हल मूल्यवान् है। समुद्र तक नदी जाती है। धनुषप्रधान अर्जुन था। परशुराम परशुप्रधान था अर्थात् परशुराम सदा फरसा लिये रहते थे। सिंह नखप्रधान होता है। असुर मायाप्रधान होते हैं। सर्प विषप्रधान होते हैं। शूकर चर्बीप्रधान होते हैं (शूकर में चर्बी बहुत होती है)। लावक पक्षी विषयप्रधान होता है।' भूषण ने कहा—'ओह! आश्चर्य है। महाराज ने ही कितना जान लिया!' चित्रमति और भूषण दोनों विस्मित हुए। कुमार ने धनदेव नामक भण्डारी से कहा—'हे धनदेव! इन दोनों को एक लाख दीनारें दे दो।' धनदेव ने कहा—'महाराज की जैसी आज्ञा।' उसने सोचा—ओह! कुमार का भोलापन, बिना लाख का (कोई) दान ही नहीं है। निश्चित रूप से यह नहीं जानते हैं, लाख कितना होता है। तो यहाँ अवसर आया है। इन दोनों को कुमार के सामने देता हूँ, जिससे एक लाख का महाप्रमाण जानकर पुनः थोड़े से कार्य पर ऐसी आज्ञा न दें—ऐसा सोचकर उसने वहीं कुमार के सामने एक लाख दीनारों का ढेर लगा दिया। कुमार ने कहा—'धनदेव! यह क्या है?' धनदेव ने कहा—'महाराज! ये वह एक लाख दीनार हैं जो कि महाराज ने प्रसन्न होकर उन दोनों चित्रकार लड़कों को दिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पभूओ खु एस एयस्स पडिहायइ, ता मं सुहित्तणेण कि न पडिबोहिऊण एयप्पयंसणेण नियत्तेइ इमाओ सपरिगप्पियमहादाणाओ, नेच्छइ य मज्झ संपयापरिब्भंसं ति। अहो मूढया धणदेवस्स, जस्स एगंतबज्झे अणाणुगामिए सह जीवेणं साहारणे अग्गितक्कराईणं पयाणमेत्तफले परमत्थओ अवयारकारए पयारंतरेण अत्थे वि पडिबंधो त्ति। केत्तिओ वा एस लक्खो। न खलु एएण एत्थं पि जम्मे एए वि चित्तयरदारया परिमिएण वि वएण एयनिमित्तं पि असंकिलेसभाइणो होंति। न य असंपयाणेणं अपरिब्भंसो संपयाए, अवि य पुण्णसंभारेण। खीणे य पुण्णसंभारे अदिज्जमाणा वि अन्नेसिं अपरिभुज्जमाणा वि अत्तणा गोविज्जमाणा वि पच्छन्ने रक्खिज्जमाणा वि महापयत्तेणं असंसयं न जायइ। किं वा दाणपरिभोगरहियाए अणुवयारिणीए उभयलोएसु ओहसणिज्जाए पंडियजणाणं अवित्तीकम्मारयमेत्ताए तत्तचिंतासु केवलाणत्थफलाए सव्वहा सन्नासकप्पाए त्ति। ता पडिबोहइस्सं अहमिणं पत्थावेणं। इमं पुण एत्थ पत्तयालं, जमन्नमवि लक्खं एएसिं दवावेमि; एसो वि एयस्स पडिवोहणोवाओ चेव त्ति। चिंतिऊण भणियं च णेणं—अज्जधणदेव, किमेसो लक्खो त्ति। धणदेवेण

तम् – हन्त किमेतदद्य सम्पद्दर्शनम्। नूनं प्रभूतं खल्वेतद् एतस्य प्रतिभाति, ततो मां सुहृत्त्वेन प्रतिबोध्य एतत्प्रदर्शनेन निवर्तयत्यस्मात् स्वपरिकल्पितमहादानात्, नेच्छति च मम सम्पत्परिभ्रंशमिति। अहो मूढता धनदेवस्य, यस्यैकान्तबाह्येऽनानुगामिके सह जीवेन साधारणेऽग्नितस्करादीनां प्रदानमात्रफले परमार्थतोऽपकारकारके प्रकारान्तरेण अर्थेऽपि प्रतिबन्ध इति। कीयाद् वैतद् लक्षम्। न खल्वेतेन अत्रापि जन्मनि एतावपि चित्रकरदारकौ परिमितेनापि व्ययेन एतन्निमित्तमप्यसंक्लेशभाजौ भवतः। न चासम्प्रदानेनापरिभ्रंशः सम्पदः, अपि च पुण्यसम्भारेण। क्षीणे च पुण्यसम्भारे अदीयमाना अप्यन्येषामपरिभुज्यमाना अप्यात्मना गोप्यमाना अपि प्रच्छन्ने रक्ष्यमाणा अपि महाप्रयत्नेनासंशयं न जायते। किंवा दानपरिभोगरहितयाऽनुपकारिण्योभयलोकेषूपहसनीयया पण्डितजनानामवृत्तिकर्मकारकमात्रया तत्त्वचिन्तासु केवलानर्थफलया सर्वथा संन्यासकल्पयेति। ततः प्रतिबोधयिष्याम्यहमिदं प्रस्तावेन। इदं पुनरत्र प्राप्तकालम्, यदन्यदपि लक्षमेतयोर्दापयामि, एषोऽप्येतस्य प्रतिबोधनोपाय एवेति। चिन्तयित्वा भणितं च तेन—आर्यधनदेव! किमेतद् लक्षमिति। धनदेवेन

हैं।' कुमार ने सोचा—खेद है, आज यह क्या सम्पत्ति देखी? निश्चित रूप से यह इसे अधिक लग रही है, अतः मेरे सुहृत् होने के कारण इसके प्रदर्शन द्वारा मुझे प्रतिबोधित कर अपने संकल्पित इस महादान से (वह मुझे) रोक रहा है. यह मेरी सम्पत्ति का नाश नहीं चाहता है। ओह, धनदेव की मूढ़ता जो कि बाहर विशेष रूप से जीव का अनुगामी नहीं होता है (साथ नहीं जाता है), जो अग्नि और चोरों के लिए समान है, दान करना मात्र ही जिसका फल है, परमार्थ रूप से जो अपकार करनेवाला है उस धन पर भी प्रकारान्तर से (दूसरे प्रकार से) रोक लगा रहा है? अथवा यह लाख कितना-सा है। इससे इसी जन्म में भी ये दोनों चित्रकार लड़के परिमित मात्रा में व्यय करने पर भी इस धन के कारण सुखी नहीं हो सकते हैं। न देने पर सम्पत्ति नष्ट न हो - ऐसा नहीं है, अपितु पुण्य के संचय से सम्पत्ति नष्ट नहीं होती है। पुण्य का समूह नष्ट हो जाने पर दूसरों को न देने, अपने आप भोग न करने, छिपाने, गुप्त स्थान में रक्षा करने तथा महाप्रयत्न करने पर भी निःसन्देह रूप से यह नहीं रहती है। अथवा दान और उपभोग से रहित, उपकार न करने से दोनों लोकों में उपहास के योग्य, पण्डित जनों के समान आचरण करने मात्र से तत्त्व-चिन्ताओं में केवल अनर्थ फल देनेवाले और सर्वथा संन्यास के समान इस सम्पदा से क्या (लाभ)। अतः इस प्रस्ताव से मैं सम्बोधित करूँगा। यह समय है कि मैं इन दोनों को एक लाख और दूं। यह भी इसके प्रतिबोधन का उपाय है—ऐसा सोचकर उसने कहा—'आर्य धनदेव! क्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भणियं—देव, एसो त्ति। कुमारेण भणियं—अलं दोण्हमेयमेत्तेणं; ता अन्नं पि देहि त्ति। धणदेवेण भणियं—जं देवो आणवेइ। विम्हिया चित्तमइभूसणा, चिंतियं च णेहिं—'अहो उदारया आसयस्स'। निवडिऊण चलणेसु नेयावियं नियमावासं।

एत्थंतरम्मि समागओ मज्झण्हसमओ। पढियं कालनिवेयएण—

मज्झत्थो च्चिय पुरिसो होइ दढं उवरि सव्वलोयस्स।
एवं कहयंतो विय सूरो नहमज्झमारूढो ॥६७७॥
वारविलासिणिसत्थो तुरियं देवस्स मज्जणनिमित्तं।
[1]हक्खुत्तकणयकलसो मज्जणभूमिं समालियइ ॥६७८॥

एवं सोऊण उट्ठिओ कुमारो, गओ मज्जणभूमिं। मज्जिओ अणेगेहिं गंधोदएहिं। कयं करणिज्जसेसं। रयणवइसाहिलासो य ठिओ विचित्तसयणिज्जे। चिंतियं च णेणं। अहो से रूवं संखायणनरिंदधूयाए। कन्नया य एसा। ता अविरुद्धो संपओओ इमीए त्ति। चिंतयंतस्स समागया

भणितम्—देव ! एतदिति। कुमारेण भणितम्—अल द्वयोरेतन्मात्रेण, ततोऽन्यदपि देहीति। धनदेवेन भणितम्—यद् देव आज्ञापयति। विस्मितौ चित्रमतिभूषणौ। चिन्तितं च ताभ्याम्—अहो उदारताऽऽशयस्य। निपत्य चरणयोर्नायितं निजमावासम्।

अत्रान्तरे समागतो मध्याह्नसमयः। पठितं कालनिवेदकेन—

मध्यस्थ इव पुरुषो भवति दृढमुपरि सर्वलोकस्य।
एवं कथयन्निव सूरो नभोमध्यमारूढः॥ ६७७॥
वारविलासिनीसार्थस्त्वरितं देवस्य मज्जननिमित्तम्।
उत्क्षिप्तकनककलशो मज्जनभूमिं समालियते ॥ ६७८॥

एवं श्रुत्वोत्थितः कुमारः, गतो मज्जनभूमिम्। मज्जितोऽनेकैर्गन्धोदकैः। कृतं करणीयशेषम्। रत्नवतोसाभिलाषश्च स्थितो विचित्र-शयनीये। चिन्तितं च तेन—अहो तस्या रूपं शाङ्खायननरेन्द्र-दुहितुः। कन्या चैषा, ततोऽविरुद्धः सम्प्रयोगोऽनयेति। चिन्तयतः समागताऽऽस्थानिकावेला। स्थित

यह एक लाख है ?' धनदेव ने कहा—'महाराज ! यह एक लाख है !' कुमार ने कहा—'इन दोनों को इतना-सा देना ठीक नहीं है अतः इतना ही और दे दो।' धनदेव ने कहा—'महाराज की जैसी आज्ञा।' चित्रमति और भूषण विस्मित हुए। उन दोनों ने सोचा—भावों की उदारता आश्चर्यमय है ! दोनों (चित्रकार) चरणों में पड़कर धन को अपने डेरे पर ले गये।

इसी बीच मध्याह्न समय आया। समय का निवेदन करनेवाले ने कहा—

'मध्यस्थपुरुष के समान दृढ़तापूर्वक सब लोक के ऊपर होता है' ऐसा कहता हुआ मानो सूर्य आकाश के मध्य में आरूढ़ हो गया है। वारांगनाएँ महाराज के स्नान के लिए सुवर्ण-कलशों को उठाकर शीघ्र ही स्नानभूमि को जा रही हैं ॥६७७-६७८॥

यह सुनकर कुमार उठा, स्नानभूमि में गया, अनेक प्रकार की गन्ध से युक्त जल में स्नान किया। शेष कार्यों को किया और रत्नवती की अभिलाषा सहित विचित्र शय्या पर बैठ गया। उसने सोचा—इस शांखायन राजा की पुत्री का रूप आश्चर्यमय है। चूँकि यह कन्या (कुँवारी) है अतः इसके साथ संयोग विरुद्ध नहीं है—

---

1. हक्खुत्त (दे.) उत्क्षिप्त, उत्पाटित।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्थाइयावेला। ठिओ अत्थाइयाए। समागया विसालबुद्धिप्पमुहा वयंसया—पत्थुओ चित्तयम्मविणोओ। आलिहिओ कुमारेण सुविहत्तुज्जलेणं वण्णयकम्मेण अलक्खिज्जमाणेहिं गुलियावएहिं अणुरूवाए सुहुमरेहाए पयडदंसणेण निन्नुन्नयविभाएणं विसुद्धाए वट्टणाए उचिएणं भूसणकलावेणं अहिणवनेहूसुयत्तणेणं परोप्परं हासुप्फुल्लबद्धदिट्ठी आरूढपेम्मत्तणेणं लंघिओचियनिवेसो विज्जाहरसंघाडओ त्ति। एत्थंतरम्मि समागया चित्तमइभूसणा। दिट्ठो य णेहिं गुलियावावडग्गहत्थो तं चेव विज्जाहरसंघाडयं पुलोएमाणो कुमारो त्ति। पणमिऊण सहरिसं भणियं च णेहिं—देव, किमेयं ति। तओ ईसि विहसियसणाहं 'निरूवेह तुब्भे सयमेव' त्ति भणिऊण समप्पिया चित्तवट्टिया। निरूविया चित्तमइभूसणेहिं। विम्हिया एए। भणियं च णेहिं—अहो देवस्स सव्वत्थ अप्पडिहयं परमेसरत्तणं। देव, अउव्वा एसा चित्तयम्मविच्छित्ती साहेइ विय नियभावं फुडवयणेहिं। चित्तयम्मे देव, दुक्करं भावाराहणं। पसंसंति य इणमेव एत्थ आयरिया। अहिणवनेहूसुयत्तणेण वि य परोप्परं हासुप्फुल्लबद्धदिट्ठित्तणं तहा आरूढपेम्मत्तणेण वि य लंघिओचियनिवेसयं च एत्थ असाहियं पि देव जाणंति

आस्थानिकायाम्। समागता विशालबुद्धिप्रमुखा वयस्याः। प्रस्तुतश्चित्रकर्मविनोदः। आलिखितः कुमारेण सुविभक्तोज्ज्वलेन वर्णककर्मणाऽलक्ष्यमाणैर्गुलिकाव्रजैरनुरूपया सूक्ष्मरेखया प्रकटदर्शनेन निम्नोन्नतविभागेन विशुद्धया वर्तनया उचितेन भूषणकलापेन अभिनवस्नेहोत्सुकत्वेन परस्परं हास्योत्फुल्लबद्धदृष्टिरारूढप्रेमत्वेन लङ्घितोचितनिवेशो विद्याधरसङ्घाटक इति। अत्रान्तरे समागतौ चित्रमतिभूषणौ। दृष्टश्च ताभ्यां गुलिकाव्यापृताग्रहस्तस्तमेव विद्याधरसङ्घाटकं प्रलोकयन् कुमार इति। प्रणम्य सहर्षं भणितं च ताभ्याम्—देव! किमेतदिति। तत ईषद्विहसितसनाथं 'निरूपयतं युवां स्वयमेव' इति भणित्वा समर्पिता चित्रपट्टिका। निरूपिता चित्रमतिभूषणाभ्याम्। विस्मितावेतौ। भणितं च ताभ्याम्—अहो देवस्य सर्वत्राप्रतिहतं परमेश्वरत्वम्। देव! अपूर्वैषा चित्रकर्मविच्छित्तिः कथयतीव निजभावं स्फुटवचनैः। चित्रकर्मणि देव! दुष्करं भावाराधनम्। प्रशंसन्ति चेदमेवात्राचार्याः। अभिनवस्नेहोत्सुकत्वेनापि च परस्परं हास्योत्फुल्लबद्धदृष्टित्वं तथाऽऽरूढप्रेमत्वेनापि च लङ्घितोचितनिवेशकं चात्राकथितमपि देव! जानन्ति बालका अपि,

ऐसा विचार कर रहा था कि सभा का समय हो गया। सभा में बैठा। विशालबुद्धि प्रमुख मित्र आये। चित्रकर्म का विनोद प्रस्तुत हुआ। कुमार ने एक विद्याधर का जोड़ा चित्रित किया। भलीभाँति विभाग होने के कारण वह उज्ज्वल था, रँगाई के कारण गुलिकाएँ (रँगाई का एक विशेष द्रव्य) दिखाई नहीं पड़ रही थीं, अनुरूप सूक्ष्म रेखाएँ थीं। उसके निम्न और उन्नत विभाग प्रकट रूप से दर्शित हो रहे थे। रंगों से विशुद्ध था, उचित आभूषणों के समूह से युक्त था, नूतन स्नेह व उत्सुकता के कारण परस्पर हास्य के विकास से जिनकी दृष्टि बँधी हुई थी, प्रेमारूढ़ता के कारण जिसमें योग्य सन्निवेश को भी लंघित कर दिया गया था। इसी बीच चित्रमति और भूषण दोनों आ गये। उन दोनों ने गुलिका (रँगाई का एक विशेष द्रव्य) में जिसकी हथेलियाँ व्याप्त थीं, ऐसे कुमार को—उसी विद्याधर के जोड़े को देखते हुए—देखा। प्रणाम कर हर्षपूर्वक उन दोनों ने कहा—'महाराज, यह क्या!' तब मुस्कुराकर, 'तुम दोनों स्वयं देखो'—ऐसा कहकर चित्रपट समर्पित कर दिया। चित्रमति और भूषण ने देखा। उन दोनों ने कहा—'ओह! महाराज का परमेश्वरपना सब जगह बेरोक-टोक है। महाराज! यह अपूर्व चित्रकर्म की रचना स्पष्ट वचनों में अपने भावों को कह रही है। महाराज! चित्र बनाने में भावों की आराधना करना कठिन है। चित्रकला में आचार्य लोग इसी की प्रशंसा करते हैं। नये स्नेह की उत्सुकता होने पर भी परस्पर हास्य के विकास से बद्धदृष्टिवाले तथा प्रेम में आरूढ़ होने पर भी लंघन के योग्य सजावट को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बालया वि, किमंग पुण इयरे जणा । एवं च देव चित्तसत्थे पढिज्जइ । जहा विणा चरियाइणा अहियारेण जहा कहंचि किल जारिसयभावजुत्तं चित्तयम्मं निप्फज्जइ, तारिसयभावसंपत्ती नियमेण चित्तयारिणो । ता देव, आसन्नो देवस्स पियदंसणेणं ईइसो भावो त्ति निवेइयं देवस्स । ईसि विहसियं कुमारेण ।

एत्थंतरम्मि समागओ संझासमओ । पढियं कालनिवेयएण—

संझाए बद्धराओ व्व दिणयरो तुरियमत्थसिहरम्मि ।
संकेयगठाणं पिव सुरगिरिगुंजं समल्लियइ ॥६७९॥
वित्थरइ कुसुमगंधो अणहं विज्जंति मंगलपईवा ।
पूइज्जइ रइणाहो रामाहिं रमणभवणेसु ॥६८०॥

एयमायण्णिऊण 'गुरुचलणवंदणासमओ' त्ति उट्ठिओ कुमारो, गओ जणणिजणयाण सयासं । वंदिया तेसिं चलणा । बहुमन्निओ णेहिं । ठिओ कंचि कालं गुरुसमीवे । उचियसमएणं च गओ वासगेहं । अणुसरंतस्स रयणवईरूवं वोलिए उचियसमए समागया निद्दा । पहायसमए य दिट्ठो णेण

किमङ्ग पुनरितरे जनाः । एवं च देव ! चित्रशास्त्रे पठ्यते, यथा विना चरितादिना अधिकारेण यथाकथञ्चित् किल यादृशभावयुक्तं चित्रकर्म निष्पद्यते तादृशभावसम्पत्तिर्नियमेन चित्रकारिणः । ततो देव ! आसन्नो देवस्य प्रियदर्शनेन ईदृशो भाव इति निवेदितं देवस्य । ईषद् विहसितं कुमारेण ।

अत्रान्तरे समागतः सन्ध्यासमयः । पठितं कालनिवेदकेन—

सन्ध्यायां बद्धराग इव दिनकरस्त्वरितमस्तशिखरे ।
संकेतस्थानमिव सुरगिरिकुञ्जं समालीयते ॥ ६७९ ॥
विस्तीर्यते कुसुमगन्धोऽनघं दीयन्ते मङ्गलप्रदीपाः ।
पूज्यते रतिनाथो रामाभी रमणभवनेषु ॥ ६८० ॥

एवमाकर्ण्य 'गुरुचरणवन्दनासमयः' इत्युत्थितः कुमारः, गतो जननीजनकयोः सकाशम् । वन्दितौ तयोश्चरणौ । बहुमतस्ताभ्याम् । स्थितः कञ्चित् कालं गुरुसमीपे । उचितसमयेन च गतो वासगेहम् । अनुस्मरतो रत्नवतीरूपं व्यतिक्रान्ते उचितसमये समागता निद्रा । प्रभातसमये च

महाराज, बिना कहे बालक भी जानते हैं, दूसरे मनुष्यों की तो बात ही क्या है । महाराज ! चित्रशास्त्र में ऐसा पढ़ा जाता है कि चरितादि अधिकार के बिना जो कुछ, जैसे भावों से युक्त चित्रकर्म प्रकट होता है, वैसी भाव-सम्पत्ति निश्चित रूप से चित्रकार की होती है । अतः महाराज ! महाराज के प्रियदर्शन से ऐसा भाव आया इसलिए महाराज से निवेदन किया ।' कुमार कुछ मुस्कुराया ।

इसी बीच सन्ध्या का समय आया । समयनिवेदकों ने पढ़ा—

सन्ध्या के प्रति राग में बद्ध हुए के समान सूर्य शीघ्र ही अस्ताचल के शिखर पर सुमेरुपर्वत के कुंजों में लीन हो रहा है, निष्पाप फूलों का गन्ध फैल रहा है, मंगल दीपक जलाये जा रहे हैं, रमणभवनों में स्त्रियों द्वारा कामदेव की पूजा की जा रही है ॥ ६७९-६८० ॥

यह सुनकर 'माता-पिता के चरणों की वन्दना का समय है'—ऐसा कहकर कुमार उठा । माता-पिता के पास गया । उन दोनों के चरणों की वन्दना की । दोनों ने सम्मान दिया । कुछ समय तक माता-पिता के पास बैठा । उचित समय पर निवासगृह गया । रत्नवती के रूप का स्मरण करते हुए उचित समय बीत जाने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुमिणओ। जहा किल उवणीया केणावि सोमरूवेण दिव्वकुसुममाला। भणियं च णेण—अहिमया एसा कुमारस्स; ता गिण्हउ इमं कुमारो। गहिया य णेण, घेत्तूण निहिया कंठदेसे।

एत्थंतरम्मि पहयाइं पाहाउयतूराइं। विउद्धो कुमारो। पढियं कालनिवेयएण—

अह निण्णासियतिमिरो विओयविहुराण चक्कवायाण।
संगमकरणेक्करसो वियम्भिओ अरुणकिरणोहो ॥६८१॥
पवियसियकमलवयणा महुयरगुंजंतबद्धसंगीया।
पवणधुय[1]पत्तहत्था जाया सुहदंसणा नलिणी ॥६८२॥

एयं सोऊण हरिसिओ चित्तेण। चिंतियं च णेण—भवियव्वं रयणवईलाहेण। न एस सुमिणओ अन्नहा परिणमइ, उववूहिओ पाहाउयतूरेणं, नियमिओ मंगलसद्देहिं, पहाए य दिट्ठो। ता आसन्नफलेण इमिणा होयव्वं ति। चिंतिऊण उट्ठिओ सयणीयाओ, कयं गुरुचलणवंदणाइआवस्सयं। ठिओ अत्थाइयाए। समागया विसालबुद्धिप्पमुहा वयंसया। समारद्धा गूढचउत्थयगोट्ठी। पढियं

दृष्टस्तेन स्वप्नः। यथा किलोपनीता केनापि सौम्यरूपेण दिव्यकुसुममाला। भणितं च तेन—अभिमतैषा कुमारस्य, ततो गृह्णात्विमां कुमारः। गृहीता चानेन, गृहीत्वा निहिता कण्ठदेशे।

अत्रान्तरे प्रहतानि प्राभातिकतूर्याणि। विबुद्धः कुमारः। पठितं कालनिवेदकेन—

अथ निर्णाशिततिमिरो वियोगविधुराणां चक्रवाकानाम्।
सङ्गमकरणैकरसो विजृम्भितोऽरुणकिरणौघः ॥ ६८१ ॥
प्रविकसितकमलवदना मधुकरगुञ्जद्बद्धसङ्गीता।
पवनधूतपत्रहस्ता जाता शुभदर्शना नलिनी ॥ ६८२ ॥

एवं श्रुत्वा हर्षितश्चित्तेन। चिन्तितं च तेन—भवितव्यं रत्नवतीलाभेन। नैष स्वप्नोऽन्यथा परिणमति, उपबृंहितः प्राभातिकतूर्येण, नियमितो मङ्गलशब्दैः, प्रभाते च दृष्टः। तत आसन्नफलेनानेन भवितव्यमिति। चिन्तयित्वोत्थितः शयनीयात्, कृतं गुरुचरणवन्दनाद्यावश्यकम्। स्थित आस्थानिकायाम्। समागता विशालबुद्धिप्रमुखा वयस्याः। समारब्धा गूढचतुर्थकगोष्ठी। पठितं

पर नींद आ गयी। प्रातःकाल उसने स्वप्न देखा कि कोई सौम्य रूपवाला दिव्य फूलों की माला लाया और उसने कहा—यह कुमार के अनुरूप है, अतः कुमार इसे ग्रहण करें। इसने ग्रहण किया (और) लेकर गले में डाल ली।

तभी प्रातःकालीन वाद्य बजने लगे। कुमार जागा। समयनिवेदक ने पढ़ा—

अब अन्धकार को नाश करने वाला, वियोग से पीड़ित चकवों के मिलाने में एकरस अरुण की किरणों का समूह बढ़ गया है। विकसित कमलमुखवाली, गुंजार करते हुए भौंरों से बद्ध संगीतवाली और वायु के द्वारा हिलाये गये पत्ते रूपी हाथोंवाली कमलिनी (अब) शुभ दर्शनवाली हो गयी है ॥६८१-६८२॥

यह सुनकर (उसका) चित्त हर्षित हुआ और उसने सोचा—रत्नवती की प्राप्ति होनी चाहिए। प्रातःकालीन वाद्यों से (बढ़ाया गया), मंगल शब्दों से नियमित किया गया और प्रातःकाल देखा गया यह स्वप्न अन्यथा परिणमित नहीं होता है, अतः इस स्वप्न का फल निकट होना चाहिए—ऐसा सोचकर शय्या से उठा। माता-पिता के चरणों की वन्दना आदि आवश्यक कार्य किये। सभा में आकर बैठा। विशालबुद्धि प्रमुख मित्र

---

१. -धुयपल्लवकरा—पा. ज्ञा.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विसालबुद्धिणा।

सुरयमणस्स रइहरे नियंबभमिरं बहु धुयकरग्गा। तक्खणवुत्तविवाहा। कुमारेण भणियं— पुणो पढसु त्ति। पढियं विसालबुद्धिणा। तओ कुमारेण ईसि विहसिऊण भणियं—वरयस्स करं निवारेइ।

विसालबुद्धिणा भणियं—अहो देवेण लद्धं ति। चित्तमइणा पढियं। भावियरइसाररसा समाणिउं मुक्कबहलसिक्कारा। न तरइ विवरीयरयं। कुमारेण भणियं—पुणो पढसु त्ति। पढियं चित्तमइणा। लद्धं कुमारेण। भणियं च णेण—'णियंबभारालसा सामा'। भूसणेण पढियं। विउलम्मि मउलियच्छी घणवीसम्भस्स सामली[1] सुइरं। विवरीयसुरयसुहिया। कुमारेण भणियं— पुणो पढसु त्ति। पढियं भूसणेण। लद्धं कुमारेणं। भणियं च णेण—वीसमइ उरम्मि रमणस्स।

विशालबुद्धिना।

सुरतमनसो रतिगृहे नितम्बभ्रमन्तं वधू धुतकराग्रा। तत्क्षणवृत्तविवाहा। कुमारेण भणितं—पुनः पठेति। पठितं विशालबुद्धिना। ततः कुमारेण ईषद् विहस्य भणितम्—'वरस्य करं निवारयति'।

विशालबुद्धिना भणितम्—अहो देवेन लब्धमिति। चित्रमतिना पठितम्—भावितरतिसार-रसा भुक्त्वा मुक्तबहलसीत्कारा। न शक्नोति विपरीतरतम्। कुमारेण भणितम्—पुनः पठेति। पठितं चित्रमतिना। लब्धं कुमारेण। भणितं च तेन—'नितम्बभारालसा श्यामा'। भूषणेन पठितम्—विपुले मुकुलिताक्षिर्घनविश्रम्भस्य श्यामा सुचिरम्। विपरीतसुरतसुखिता। कुमारेण भणितम्—पुनः पठेति। पठितं भूषणेन। लब्धं कुमारेण। भणितं च तेन—'विश्राम्यत्युरसि[2] रमणस्य'।

आये। गूढ़ चतुर्थक गोष्ठी आरम्भ हुई। विशालबुद्धि ने पढ़ा—

'कामदेव के रतिगृह में नितम्ब को घुमाती हुई वधू हथेलियों को कँपा रही है। तभी विवाह हो गया।' कुमार ने कहा—'फिर से पढ़ो।' विशालबुद्धि ने पढ़ा। अनन्तर कुमार ने कुछ हँसकर कहा—'वर के हाथ को रोक रही है।'

> सुरयमणस्स रइहरे नियंबभमिरं बहु धुयकरग्गा।
> तक्खणवुत्तविवाहा '**वरयस्स करं निवारेइ**'॥

विशालबुद्धि ने कहा—'आश्चर्य है, महाराज ने पा लिया!' चित्रमति ने पढ़ा—'अनुभूत रति के साररूप रस का भोग कर अत्यधिक सी-सी आवाज छोड़ती हुई, विपरीत रति नहीं कर सकती।' कुमार ने कहा—'पुनः पढ़ो।' चित्रमति ने पढ़ा। कुमार ने पा लिया (समझ लिया) और उसने कहा—'नितम्ब के भार से अलसायी हुई युवती अर्थात् उपर्युक्त विशेषणों से युक्त 'नितम्ब के भार से अलसायी हुई युवती' विपरीत रति नहीं कर सकती।

> भावियरइसाररसा समाणिउं मुक्कबहलसिक्कारा।
> न तरइ विवरीयरयं '**णियंबभारालसा सामा**'॥

भूषण ने पढ़ा—'विस्तृत नेत्रों को मूँदकर देर तक अत्यधिक विश्राम कर विपरीत सम्भोग से सुखी।' कुमार ने कहा—'पुनः पढ़ो।' भूषण ने पढ़ा। कुमार ने पा लिया—'पति के वक्षःस्थल पर विश्राम करती है।'

> विउलम्मि मउलियच्छी घणवीसम्भस्स सामली सुइरं।
> विवरीय सुरयसुहिया '**वीसमइ उरम्मि रमणस्स**'।

---

1. सामिणि—डे, ज्ञा.। 2. विपरीतसुरतसुखिता मुकुलिताक्षिः श्यामा घनविश्रम्भस्य रमणस्य विपुले उरसि सुचिरं विश्राम्यति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं च जाव कंचि वेलं चिट्ठंति, तावागंतूण निवेइयं पडिहारेण। कुमार, आसपरिवाहण-निमित्तं वाहयालिं पउट्टो देवो कुमारं सद्दावेइ त्ति। कुमारेण भणियं—जं ताओ आणवेइ त्ति। उट्ठिऊण परियणसमेओ निग्गओ भवणाओ। आरूढो जच्चवोल्लाहं; मिलिओ रायमग्गे नरवइस्स, गओ वाहयालिं। वाहिया बहवे वल्हीयतुरुक्कवज्जराइया आसा। उचियसमएण पविट्ठो नयरिं। कयं करणिज्जसेसं। एवं च विसिट्ठविणोएण सह चित्तमइभूसणेहिं अइच्छिया कइवि दियहा। अन्नया य काऊण रयणवईरूवगुणकित्तणं निब्भरुक्कंठापराहीणयाए अच्चंतलालसेणं तीए दंसणम्मि 'एवं पि ताव पेच्छामि' त्ति समत्थिऊण निययहियएणं समालिहिया चित्तवट्टियाए रयणवई। पुलोइया सिणेहसारं अणिमिसलोयणेण, लिहिया य हिट्ठे गाहा—

हियए वि ठियं बालं पेच्छह दिट्ठं पि चित्तयम्मम्मि।
इच्छइ तहावि दट्ठुं समूसुओ अंतरप्पा मे ॥६८३॥

एत्थंतरम्मि समागया चित्तमइभूसणा। 'कुमारवल्लह' त्ति न धरिया पडिहारेण। पविट्ठा

एवं च यावत् काञ्चित् वेलां तिष्ठन्ति तावदागत्य निवेदितं प्रतीहारेण कुमार! अश्व-परिवाहननिमित्तं वाह्यालिं प्रवृत्तो देवः कुमारं शब्दाययति इति। कुमारेण भणितम्—यत् तात आज्ञापयतीति। उत्थाय परिजनसमेतो निर्गतो भवनात्। आरूढो जात्यवोल्लाहम्। मिलितो राजमार्गे नरपतेः, गतो वाह्यालिम्। वाहिता बहवो वाल्हीकतुरुष्कवज्जरादिका अश्वाः। उचित-समयेन प्रविष्टो नगरीम्। कृतं करणीयशेषम्। एवं च विशिष्टविनोदेन सह चित्रमतिभूषणाभ्यां गताः कत्यपि दिवसाः। अन्यदा च कृत्वा रत्नवतीरूपगुणकीर्तनं निर्भरोत्कण्ठापराधीनतया अत्यन्तलालसेन तस्या दर्शने 'एवमपि तावत्प्रेक्षे' इति समर्थ्य निजहृदयेन समालिखिता चित्रपट्टि-कायां रत्नवती। प्रलोकिता स्नेहसारमनिमिषलोचनेन। लिखिता चाधो गाथा—

हृदयेऽपि स्थितां बालां पश्यत दृष्टामपि चित्रकर्मणि।
इच्छति तथापि द्रष्टुं समुत्सुकोऽन्तरात्मा मे॥ ६८३॥

अत्रान्तरे समागतौ चित्रमतिभूषणौ। 'कुमारवल्लभौ' इति न धृतौ प्रतीहारेण। प्रविष्टौ

इस प्रकार जब कुछ समय बीत गया तब द्वारपाल ने आकर निवेदन किया—'कुमार! घोड़े को चलाने के लिए अश्वशाला में गये हुए महाराज कुमार को बुला रहे हैं।' कुमार ने कहा—'महाराज की जैसी आज्ञा।' उठकर परिजनों के साथ भवन से निकला। नवीन वोल्लाह अश्व पर सवार हुआ। राजमार्ग पर राजा से मिला, अश्वशाला में गया। बहुत से बाल्हीक, तुरुष्क, वज्जरादिक घोड़े चलाये। उचित समय पर नगर में प्रविष्ट हुआ। शेष कार्यों को किया। इस प्रकार चित्रमति और भूषण दोनों के साथ कुछ दिन बीत गये। एक बार रत्नवती के गुणों का कीर्तन कर अत्यधिक उत्कण्ठा से पराधीन होने के कारण तथा उसके दर्शन की अत्यधिक लालसा होने से—'अच्छा, यह भी देखता हूँ'—ऐसा अपने मन से समर्थन कर चित्रपट्टिका पर रत्नवती चित्रित कर दी। (उसे) स्नेह से भरे हुए निर्निमेष नेत्रों से देखा और नीचे गाथा लिख दी—

'देखो, हृदय में स्थित युवती को चित्र में भी देख लिया तो भी मेरी उत्सुक अन्तरात्मा (प्रत्यक्ष) देखने की इच्छा कर रही है।' ॥६८३॥

इसी बीच चित्रमति और भूषण आये। ये दोनों कुमार के प्रिय हैं, अतः द्वारपाल ने नहीं रोका। दोनों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुमारसमीवं। दिट्ठा चित्तवट्टिया। 'देव, किमेयं' ति जंपियमणेहिं। ईसि हसिऊण भणियं कुमारेण—तुब्भं वयपडिच्छंदयालिहणं ति। तेहिं भणियं—देव, महापसाओ त्ति। तओ घेत्तूण निरूविया चित्तवट्टिया। विम्हिया एए। वाचिया गाहा। चिंतियं च णेहिं—धन्ना खु सा रायधूया, जा कुमारेणावि एवं बहु मन्निज्जइ। अहवा किमेत्थ अच्छरियं, विसओ खु सा एवंविहाए बहुमाणणाए। ता इमं एत्थ पत्तयालं, जं सिग्घमेव एयं देवीए निवेइज्जइ त्ति चिंतिऊण भणियं चित्तमइणा—देव, अउव्वो एस पडिच्छंदओ। अहो इयमेत्थ अच्छरियं, जमदिट्ठं पि नाम एवमाराहिज्जइ! भूसणेण भणियं—देव, एरिसा चेव सा रायधूया, न किंचि अन्नारिसं। धन्ना य सा, जा देवेण एवं बहु मन्निज्जइ।

एत्थंतरम्मि पविट्ठो पडिहारो। भणियं च णेण—कुमार, समागओ देवसंतिओ विस्सभूई नाम गंधव्विओ कुमारदंसणसुहमणुहविउमिच्छइ। कुमारेण भणियं—'पविसउ त्ति। गओ पडिहारो। पविट्ठो विस्सभूई। पणमिऊण कुमारं भणियं च णेण—देवो आणवेइ। 'अत्थि अम्हाणं पत्थुए गंधव्ववियारे सरे विब्भमो त्ति; तमागंतूणमवणेउ कुमारो'। तओ ईसि विहसिऊण जंपियं कुमारेण।

कुमारसमीपम्। दृष्टा चित्रपट्टिका। 'देव! किमेतद्' इति जल्पितमाभ्याम्। ईषद् हसित्वा भणितं कुमारेण—युवयोर्व्रतप्रतिच्छन्दालेखनमिति। तैर्भणितम्—देव! महाप्रसाद इति। ततो गृहीत्वा निरूपिता चित्रपट्टिका। विस्मितावेतौ। वाचिता गाथा। चिन्तितं च ताभ्याम्। धन्या खलु सा राजदुहिता, या कुमारेणाप्येवं बहु मन्यते। अथवा किमत्राश्चर्यम्, विषयः खलु सा एवंविधबहुमाननायाः। तत इदमत्र प्राप्तकालम्, यच्छीघ्रमेवैतद् देव्यै निवेद्यते इति चिन्तयित्वा भणितं चित्रमतिना—देव! अपूर्व एष प्रतिच्छन्दकः। अहो इदमत्राश्चर्यम्, यददृष्टमपि नाम एवमाराध्यते। भूषणेन भणितम—देव! ईदृश्येव सा राजदुहिता, न किञ्चिदन्यादृशम्। धन्या च सा, या देवेनैवं बहु मन्यते।

अत्रान्तरे प्रविष्टः प्रतीहारः। भणितं च तेन—कुमार! समागतो देवसत्को विश्वभूतिर्नाम गान्धर्विकः कुमारदर्शनसुखमनुभवितुमिच्छति। कुमारेण भणितम्—'प्रविशतु' इति। गतः प्रतीहारः। प्रविष्टो विश्वभूतिः। प्रणम्य कुमारं भणितं च तेन—'देव आज्ञापयति, अस्त्यस्माकं प्रस्तुते गान्धर्वविचारे स्वरे विभ्रम इति, तमागत्यापनयतु कुमारः'। तत ईषद् विहस्य जल्पितं कुमारेण—अहो

कुमार के पास प्रविष्ट हुए। दोनों ने चित्रपट्टिका को देखा। 'महाराज! यह क्या है?' ऐसा उन दोनों ने कहा। कुछ मुस्कराकर कुमार ने कहा—'आप दोनों के बनाये हुए चित्र के समान चित्र है।' उन्होंने कहा—'महाराज! आपकी बड़ी कृपा।' अनन्तर लेकर चित्रपट्टिका देखी। ये दोनों विस्मित हुए। गाथा बाँची। उन दोनों ने सोचा—वह राजपुत्री धन्य है, जिसे कुमार भी इस प्रकार सम्मान देते हैं। अथवा इसमें आश्चर्य क्या है, वह इस प्रकार के सम्मान की विषय है। तो अब समय आ गया है कि शीघ्र ही इसे महारानी से निवेदन करें। ऐसा सोचकर चित्रमति ने कहा—'देव! यह अपूर्व प्रतिलिपि है। ओह! यह बड़ा आश्चर्य है कि न देखे हुए की भी इस प्रकार आराधना हो रही है।' भूषण ने कहा—'महाराज! वह राजपुत्री ऐसी ही है, किसी और तरह की नहीं। वह धन्य है, जिन्हें महाराज भी इस प्रकार सम्मान देते हैं?'

इसी बीच द्वारपाल प्रविष्ट हुआ। उसने कहा—'कुमार! महाराज का विश्वभूति नाम का गायक आया हुआ है। कुमार के दर्शनसुख का अनुभव करने की इच्छा कर रहा है।' कुमार ने कहा—'प्रवेश करे।' द्वारपाल चला गया। विश्वभूति ने प्रवेश किया और कुमार को प्रणाम कर बोला—'महाराज आज्ञा देते हैं कि संगीत के विषय में हम लोगों को स्वर का भ्रम है, उसे कुमार आकर दूर करें।' अनन्तर कुछ हँसकर कुमार ने कहा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहो तायस्स अवच्चम्मि बहुमाणो। विस्सभूइणा भणियं—कुमार, गुणा एत्थ बहुमाणहेयवो, न अवच्चमेत्तं। चित्तमइभूसणेहिं भणियं—एवमेयं, सयलगुणपगरिसो कुमारो त्ति। तओ 'जं ताओ आणवेइ' त्ति भणिऊण उट्ठिओ कुमारो, गओ नरिंदभवणं।

इयरे वि चित्तमइभूसणा विम्हिया कुमारविन्नाणाइसएण गया सभवणं। भणिओ य चित्तमई भूसणेण—अरे चित्तमइ, संपन्नमम्हाण समीहियं। ता इमं एत्थ पत्तयालं। आलिहिऊण जहाविन्नाण-विहवेण कुमाररूवं असंसिऊण कुमारस्स दुयं गच्छम्ह, जेण दट्ठूण कुमाररूवाइसयं चिय इमस्स विन्नाणाइसयं च देवी लहुं संजोएइ रायधूयं कुमारेण सह। एवं च कए समाणे सा चेव रायधूया सयलगुणसंजुया महादेवी संजायइ त्ति। चित्तमइणा भणियं—अरे भूसणय, संसिऊण कुमारस्स गच्छंताणं को दोसो त्ति। भूसणेण भणियं—अरे पत्थुयविघाओ, जओ न पेसेइ लहुं अम्हे कुमारो त्ति। चित्तमइणा भणियं—अरे अत्थि एयं, ता एवं करेम्ह। आलिहिओ कुमारो। तओ घेत्तण तं कुमारालिहियचित्तवट्टियादुयं च घेत्तूण निग्गया अओज्झाओ। गया कालक्कमेण संखउरं। पविट्ठा निययभवणेसु। बीयदियहे य गया देवीभवणं। दिट्ठा णेहिं देवी। साहिओ धणुव्वेयगुणणाइओ

तातस्यापत्ये बहुमानः। विश्वभूतिना भणितम्—कुमार! गुणा अत्र बहुमानहेतवः, नापत्यमात्रम्। चित्रमतिभूषणाभ्यां भणितम्—एवमेतद्, सकलगुणप्रकर्षः कुमार इति। ततो 'यत् तात आज्ञापयति' इति भणित्वोत्थितः कुमारः, गतो नरेन्द्रभवनम्।

इतरावपि चित्रमतिभूषणौ विस्मितौ कुमारविज्ञानातिशयेन गतौ स्वभवनम्। भणितश्च चित्रमतिर्भूषणेन—अरे चित्रमते! सम्पन्नमावयोः समीहितम्। तत इदमत्र प्राप्तकालम्। आलिख्य यथाविज्ञानविभवं कुमाररूपमशंसित्वा कुमारस्य द्रुतं गच्छावः, येन दृष्ट्वा कुमाररूपातिशयमेवास्य विज्ञानातिशयं च देवी लघु संयोजयति राजदुहितरं कुमारेण सह। एवं च कृते सति सैव राजदुहिता सकलगुणसंयुता महादेवी सञ्जायते इति। चित्रमतिना भणितम्—अरे भूषणक! शंसित्वा कुमारं गच्छतोः को दोष इति। भूषणेन भणितम्—अरे! प्रस्तुतविघातः, यतो न प्रेषयति लघु आवां कुमार इति। चित्रमतिना भणितम—अरे अस्त्येतद्, तत एवं कुर्वः। आलिखितः कुमारः। ततो गृहीत्वा तं कुमारालिखितचित्रपट्टिकाद्विकं च गृहीत्वा निर्गतावयोध्यायाः। गतौ कालक्रमेण शङ्खपुरम्। प्रविष्टौ निजभवनेषु। द्वितीयदिवसे च गतौ देवीभवनम्। दृष्टा ताभ्यां देवी। कथितो

'ओह! पिताजी का अपनी सन्तान के प्रति सम्मान।' विश्वभूति ने कहा—'महाराज! गुण ही यहाँ पर सम्मान के कारण हैं, सन्तान मात्र नहीं।' चित्रमति और भूषण ने कहा—'सच है, कुमार में समस्त गुणों की चरमसीमा है।' अनन्तर 'पिताजी की जैसी आज्ञा'—कहकर कुमार उठ गया, राजभवन में गया।

चित्रमति और भूषण भी कुमार के ज्ञान की अधिकता से विस्मित होकर अपने भवन को चले गये। चित्रमति से भूषण ने कहा—'चित्रमति! हम दोनों का इष्टकार्य सम्पन्न हो गया। तो अब समय आ गया है। वैभव और ज्ञान के अनुरूप कुमार के रूप का चित्रण कर कुमार से बिना कहे ही दोनों शीघ्र चलें, जिससे इस कुमार के रूप की इस अतिशयता और ज्ञान की अतिशयता को देखकर महारानी राजपुत्री को शीघ्र ही कुमार से मिला दें। ऐसा करने पर वह राजपुत्री समस्त गुणों से युक्त महादेवी हो जाएँगी।' चित्रमति ने कहा—'हे भूषणक! कुमार से कहकर जाने में क्या दोष है?' भूषण ने कहा—'अरे! विघ्न आ जायेगा; क्योंकि हम दोनों को कुमार शीघ्र नहीं भेजेंगे।' चित्रमति ने कहा—'यह ठीक है, अतः ऐसा (ही) करें।' कुमार का चित्र बनाया। अनन्तर उसे और कुमार के द्वारा बनायी हुई चित्रपट्टिका (दोनों) को लेकर वे दोनों अयोध्या से निकल पड़े। दोनों कालक्रम से शंखपुर पहुँचे। अपने भवनों में प्रविष्ट हुए और दूसरे दिन महारानी के भवन में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गंधव्वसरसंसयावणोयणपज्जवसाणो कुमारसंतिओ सयलवुत्तंतो। दंसिओ से कुमारो कुमारालिहिय-चित्तवट्टियादुयं च। तओ सपरिओसं निरूविऊण कुमाररूवं कलाकोसल्लं च परितुट्ठा एसा। दवावियं चित्तमइभूसणाण पारिओसियं। पुणो वि निरूविओ कुमारो देवीए। चिंतियं च णाए—अहो से रूवसंपया, अहो अवत्थाणगरुओ संठाणविसेसो। तओ अइसयकोउएण अजायसंतोसाए[1] कुमारदंसणस्स निरूवियाओ अन्नाओ वि चित्तवट्टियाओ। 'अहो से रूवपगरिसाणुरूवो विन्नाणपगरिसो' त्ति विम्हिया देवी। वाचिया य णाए सा [2]धूयापडिच्छंदयहेट्ठओ कुमारलिहिया गाहा। हरिसिया चित्तेण। चिंतियं च तीए—धन्ना खु मे धूया जा कुमारेण [3]एवमहिलसीयइ। पेसिओ य णाए मयणमंजुयाहत्थम्मि कुमारपडिच्छंदओ रयणवईए। भणिया य एसा—हला, भणाहि मे जायं, जहा लहुं एयं सिक्खेहि। गया मयणमंजुया। दिट्ठा रयणवई। उवणीया चित्तवट्टिया। भणियं रयण-वईए—हज्जे किमेयं ति। तीए भणियं—भट्टिदारिए, पेसिओ खु एस पडिच्छंदओ देवीए, आणत्तं च तीए, जहा लहुं सिक्खाहि एयं ति। रयणवईए भणियं—हला, को उण एस आलिहिओ।

धनुर्वेदगुणनादिको गान्धर्वस्वरसंशयापनोदनपर्यवसानः कुमारसत्कः सकलवृत्तान्तः। दर्शितस्तस्याः कुमारः कुमारालिखितचित्रपट्टिकाद्विकं च। ततः सपरितोषं निरूप्य कुमाररूपं कलाकौशल्यं च परितुष्टैषा। दापितं चित्रमतिभूषणाभ्यां पारितोषिकम्। पुनरपि निरूपितः कुमारो देव्या। चिन्ततं च तया—अहो तस्य रूपसम्पद्, अहो अवस्थानगुरुकः संस्थानविशेषः। ततोऽतिशयकौतुकेनाजात-सन्तोषया कुमारदर्शनस्य निरूपितेऽन्येऽपि चित्रपट्टिके। 'अहो तस्य रूपप्रकर्षानुरूपो विज्ञानप्रकर्षः' इति विस्मिता देवी। वाचिता च तया सा दुहितृप्रतिच्छन्दकाधः कुमारलिखिता गाथा। हर्षिता चित्तेन। चिन्तितं च तया—धन्या खलु मे दुहिता, या कुमारेणैवमभिलष्यते। प्रेषितश्च तया मदनमञ्जुलाहस्ते कुमारप्रतिच्छन्दको रत्नवत्याः। भणिता चैषा—सखि ! भण मे जाताम्, यथा लघ्वेतं शिक्षस्व। गता मदनमञ्जुला। दृष्टा रत्नवती। उपनीता चित्रपट्टिका। भणितं रत्नवत्या—सखि ! किमेतदिति। तया भणितम्—भर्तृदारिके ! प्रेषितः खल्वेषः प्रतिच्छन्दको देव्या, आज्ञप्तं च तया, यथा लघु शिक्षस्वैतमिति। रत्नवत्या भणितम्—सखि ! कः पुनरेष आलिखितः।

गये। उन दोनों ने महारानी के दर्शन किये। धनुर्वेद के गुण से लेकर संगीतशास्त्र के अनुसार स्वर के विषय में संशय हो जाने पर उसके दूर करने तक का कुमार का वृत्तान्त कहा। महारानी को कुमार का चित्र और कुमार के द्वारा बनायी हुई चित्रपट्टिका को दिखाया। अनन्तर सन्तोष के साथ कुमार के रूप और कलाकौशल को देखकर यह सन्तुष्ट हुई। चित्रमति और भूषण को पारितोषिक दिलाया। महारानी ने कुमार को पुनः देखा और उसने सोचा—कुमार की रूपसम्पत्ति आश्चर्यजनक है। ओह, कितनी जबर्दस्त आकृति विशेष है ! अत्यधिक कौतूहल के कारण जिसे सन्तोष नहीं हुआ है ऐसी महारानी ने कुमार के दर्शन सम्बन्धी दूसरी भी चित्रपट्टिका देखी। उसके रूप की परमसीमा के अनुरूप ज्ञान का प्रकर्ष है—ऐसा सोचकर महारानी विस्मित हुई। महारानी ने पुत्री के चित्र के नीचे कुमार के द्वारा लिखी हुई वह गाथा बाँची। चित्त में हर्षित हुई और उसने सोचा—मेरी पुत्री धन्य है जो कि कुमार के द्वारा इस प्रकार अभिलषित है। उसने (महारानी ने) मदनमंजुला के हाथ कुमार का चित्र रत्नवती के पास भेजा और कहा—'सखी ! मेरी पुत्री से कहो कि शीघ्र ही इसका अभ्यास करो।' मदनमंजुला चली गयी। रत्नवती को देखा। चित्रपट्टिका लायी। रत्नवती ने कहा—'सखी ! यह क्या है ?' उसने कहा—'स्वामिपुत्री ! इस चित्र को देवी ने भेजा है और उन्होंने आज्ञा दी है—शीघ्र ही इसका अभ्यास करो।' रत्नवती ने कहा—'यह

1. संजायसंतोसाए—डे. ज्ञा.। 2. धूयपडि—क। 3. °मभिलसीयइ त्ति—डे. ज्ञा.।

मयणमंजुयाए भणियं—न याणामि निस्संसयं। एत्तियं पुण तक्केमि, एस भयवं पुरंदरो। रयणवईए भणियं—हला, सहस्सलोयणदूसिओ खु एसो सुणीयइ। मयणमंजुयाए भणियं—जइ एवं; ता नारायणो। रयणवईए भणियं—हला, सो वि न एवं कणयावयायच्छवी। मयणमंजुयाए भणियं—जइ एवं, ता सव्वजणमणाणंदयारी चंदो। रयणवईए भणियं—हला, न सो वि एवं निक्कलंको। मयणमंजुयाए भणियं—ता कामदेवो भविस्सइ। रयणवईए भणियं—हला, कुओ तस्स वि हु हरहुंकारहुयवहसिहापयं गयस्स ईइसो लायण्णसोहावयारो। मयणमंजुयाए भणियं—जइ एवं, ता सयमेव निरूवेउ भट्टिदारिया। तओ चिरं निज्झाइओ रयणवईए। भणियं च णाए—हला, तक्केमि न एस अमाणुसो। जओ पवड्ढमाणवयविसेसस्स पुव्वरूवं पिव इमं लक्खीयइ, अवट्ठियवयविसेसा य अमाणुसा। तहा निमेसोचियं इमस्स निद्धं लोयणजुयलं, अणिमिसं च एयममाणुसाणं। मयणमंजुयाए भणियं—सुट्ठु जाणियं भट्टिदारियाए। एवमेयं, न संदेहो त्ति। अहं पुण तक्केमि, भट्टिदारियाए चेव एसो वरो भविस्सइ। एत्थंतरम्मि नियकज्जसंगयं जंपियं सिद्धाएसपुरोहिएण—को एत्थ संदेहो, असंसयं भविस्सइ। एयं सोऊण हरिसिया रयणवई। भणियं

मदनमञ्जुलया भणितम्—न जानामि निःसंशयम्। एतावत् पुनः तर्कयामि, एष भगवान् पुरन्दरः। रत्नवत्या भणितम्—सखि! सहस्रलोचनदूषितः खल्वेष श्रूयते। मदनमञ्जुलया भणितम्—यद्येवं ततो नारायणः। रत्नवत्या भणितम्—सखि! सोऽपि नैवं कनकावदातच्छविः। मदनमञ्जुलया भणितम्—यद्येवं ततः सर्वजनमनआनन्दकारी चन्द्रः। रत्नवत्या भणितम्—सखि! न सोऽप्येवं निष्कलङ्कः। मदनमञ्जुलया भणितम्—ततः कामदेवो भविष्यति। रत्नवत्या भणितम्—सखि! कुतस्तस्यापि खलु हरहुङ्कारहुतवहशिखापदं गतस्येदृशो लावण्यशोभावतारः। मदनमञ्जुलया भणितम्—यद्येवं ततः स्वयमेव निरूपयतु भर्तृदारिका। ततश्चिरं निध्यातो (अवलोकितः) रत्नवत्या। भणितं च तया—सखि! तर्कयामि नैषोऽमानुषः। यतो प्रवर्धमानवयोविशेषस्य पूर्वरूपमिवेदं लक्ष्यते, अवस्थितवयोविशेषाश्चामानुषाः। तथा निमेषोचितमस्य स्निग्धं लोचनयुगलम्, अनिमिषं चेतदमानुषाणाम्। मदनमञ्जुलया भणितम्—सुष्ठु ज्ञातं भर्तृदारिकया, एवमेतद् न सन्देह इति। अहं पुनः तर्कयामि, भर्तृदारिकाया एवैष वरो भविष्यति। अत्रान्तरे निजकार्यसङ्गतं जल्पितं सिद्धादेशपुरोहितेन। कोऽत्र सन्देहः, असंशयं भविष्यति। एतच्छ्रुत्वा हर्षिता रत्नवती।

कौन चित्रित है?' मदनमंजुला ने कहा—'निश्चित रूप से नहीं जानती हूँ। पुनः यह सोचती हूँ कि यह भगवान् इन्द्र हैं।' रत्नवती ने कहा—'सखी! इन्द्र तो हजार नेत्रों से दूषित हैं, यह सुना जाता है।' मदनमंजुला ने कहा—'यदि ऐसा है तो नारायण हैं।' रत्नवती ने कहा—'उनकी भी इस प्रकार स्वर्ण के समान उज्ज्वल छवि नहीं है।' मदनमंजुला ने कहा—'यदि ऐसा है तो समस्त लोगों के मन को आनन्द देनेवाला चन्द्र है।' रत्नवती ने कहा—'वह भी इस प्रकार निष्कलंक नहीं।' मदनमंजुला ने कहा—'तो कामदेव होगा।' रत्नवती ने कहा—'शिव की हुंकार से अग्नि की ज्वाला में जल गये हुए उस कामदेव के लावण्य-शोभा का ऐसा अवतार कहाँ?' मदनमंजुला ने कहा—'यदि ऐसा है तो स्वामिपुत्री, स्वयं ही देखिए।' अनन्तर रत्नवती ने बहुत देर तक देखा। उसने कहा 'सखी! (मैं) सोचती हूँ, यह अमानुष नहीं है; क्योंकि अवस्था विशेष से बढ़ता हुआ यह पूर्वरूप-सा दिखाई देता है; जबकि अमानुषों की अवस्था विशेष स्थिर रहती है। तथा इसका सुन्दर नेत्रयुगल निमेष योग्य है; जबकि अमानुष निमेषरहित होते हैं।' मदनमंजुला ने कहा—'स्वामिपुत्री ने ठीक जाना, यह ऐसा ही है, इसमें सन्देह नहीं। पुनः मैं अनुमान करती हूँ कि यह स्वामिपुत्री का ही वर होगा।' इस बीच अपने कार्य में लगे हुए सिद्धादेश पुरोहित ने कहा—'इसमें क्या सन्देह, निश्चित ही होगा।' यह सुनकर रत्नवती हर्षित हुई। अनन्-

मयणमंजुयाए भट्टिदारियाए सुयं सिद्धाएसवयणं । तओ हरिसपराहीणयाए ईसि विहसिएण बहु मन्निऊण तीए वयणं समारद्धा पुलोइउं । भणिया य चित्तसुंदरी—हला, उवणेहि मे चित्तवट्टियं वट्टियासमुग्गयं च, जेण संपाडेमि अंबाए सासणं त्ति । 'जं भट्टिदारिया आणवेइ' त्ति जंपिऊण संपाडियमिणं चित्तसुंदरीए । समारद्धा एसा समालिहिउं । तओ महया अहिणिवेसेण निरूविउं पुणो पुणो तहारूवो चेवालिहिओ तीए पडिच्छंदओ । भणिया य मयणमंजुया—हला, उवणेहि एयमंबाए, भणाहि य अंबं 'किमेस आराहिओ न व' त्ति । मयणमंजुयाए भणियं—जं भट्टिदारिया आणवेइ । गया मयणमंजुया । विन्नत्ता य णाए देवी—भट्टिणि, भट्टिदारिया रयणवई विन्नवेइ 'निरूवेह एयं चित्तपडिच्छंदयं, किमेस आराहिओ न व' त्ति । समप्पिया चित्तवट्टिया, गहिया देवीए । निरूविऊण चिंतियमिमीए—अहो मे धूयाए चित्तयम्मचउरत्तणं । सोहणयरो खु एसो पडिच्छंदयाओ । आणाविया य णाए कुमारलिहिया रयणवइचित्तवट्टिया, आसन्नीकया कुमारपडिच्छंदयस्स, जाव 'अच्चंताणुरूवं मिहुणयं'ति हरिसिया देवी । भणियं च णाए—हला मयणमंजुए, भणाहि मे जायं, जहा सुट्ठु आराहिओ, अन्नं च; सव्वकालमेव तुमं एयाराहणपरा

भणितं मदनमञ्जुलया—भर्तृदारिकया श्रुतं सिद्धादेशवचनम् ? ततो हर्षपराधीनतया ईषद् विहसितेन बहु मत्वा तस्या वचनं समारब्धा प्रलोकितुम् । भणिता च चित्रसुन्दरी—सखि ! उपनय मे चित्रपट्टिकां वर्तिकासमुद्गकं च, येन सम्पादयाम्यम्बायाः शासनमिति । 'यद् भर्तृदारिकाऽऽज्ञापयति' इति जल्पित्वा सम्पादितमिदं चित्रसुन्दर्या । समारब्धैषा समालिखितुम् । ततो महताऽभिनिवेशेन निरूप्य पुनः पुनस्तथारूप एवालिखितस्तया प्रतिच्छन्दकः । भणिता च मदनमञ्जुला, सखि ! उपनयैतमम्बायाः, भण चाम्बां 'किमेष आराधितो न वा' इति । मदनमञ्जुलया भणितम्—यद् भर्तृदारिकाऽऽज्ञापयति । गता मदनमञ्जुला । विज्ञप्ता च तया देवी—भट्टिनि ! भर्तृदारिका रत्नवती विज्ञपयति 'निरूपयैतं चित्रप्रतिच्छन्दकं, किमेष आराधितो न वा' इति । समर्पिता चित्रपट्टिका, गृहीता देव्या । निरूप्य चिन्तितमनया—अहो मे दुहितुश्चित्रकर्मचतुरत्वम् । शोभनतरः खल्वेष प्रतिच्छन्दकात् । आनायिता च तया कुमारलिखिता रत्नवतीचित्रपट्टिका, आसन्नीकृता कुमारप्रतिच्छन्दकस्य, यावद् 'अत्यन्तानुरूपं मिथुनकम्' इति हर्षिता देवी । भणितं च तया—सखि मदनमञ्जुले ! भण मे जाताम्, यथा सुष्ठु आराधितः । अन्यच्च सर्वकालमेव त्वमेतदाराधनपरा

मंजुला ने स्वामिपुत्री से कहा—'सिद्धादेश के वचनों को सुना ?' अनन्तर हर्ष से पराधीन होकर कुछ मुस्कराकर उसके वचनों का आदर कर देखने लगी और चित्रसुन्दरी से बोली—'सखी ! मेरे लिए चित्रपट्टिका और कूची का डिब्बा ले आओ; जिससे माता की आज्ञा पूरी करूँ ।' 'जो स्वामिपुत्री आज्ञा दें'—ऐसा कहकर इसे चित्रसुन्दरी ने पूर्ण किया । स्वामिपुत्री ने चित्र बनाना आरम्भ कर दिया । अनन्तर बड़ी एकाग्रता से पुनः पुनः देखकर उसी का चित्र बना दिया और मदनमंजुला से कहा—'सखी ! इसे माता जी के पास ले जाओ और उनसे पूछो कि इसमें सफलता पायी या नहीं ?' मदनमंजुला ने कहा—'स्वामिपुत्री जैसी आज्ञा दें ।' मदनमंजुला चली गयी और महारानी से निवेदन किया—'स्वामिनि ! स्वामिपुत्री रत्नवती निवेदन करती हैं कि इस चित्र के सादृश्य को देखो, इसमें सफलता मिली अथवा नहीं ?' ऐसा कहकर चित्रपट्टिका समर्पित कर दी । महारानी ने ले ली । देखकर उस (महारानी) ने सोचा—'ओह मेरी पुत्री की चित्रकारी में कुशलता ! यह (उस) चित्र से भी अधिक सुन्दर है । उसने कुमार के द्वारा चित्रित रत्नवती वाली चित्रपट्टिका मँगायी और कुमार के चित्र के समीप रखा । जोड़ा अत्यन्त अनुरूप था, अतः महारानी हर्षित हुई और उसने कहा—'सखी मदनमंजुला ! मेरी पुत्री से कहो कि बहुत अच्छी सफलता प्राप्त की । दूसरी बात यह है कि सब समय तुम इसकी आराधना में रत होओ'—यही

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

हवेज्जसु त्ति; एयं च ते पारिओसियं, तुमं पि एएण एवं चेवाराहिय त्ति; निरूवेहि एयस्स चित्तकोसल्लं ति। भणिऊण समप्पियं से चित्तवट्टियादुयं। 'जं मए वियप्पियं, तं तह' त्ति हरिसिया मयणमंजुया। गया रयणवईसमीवं। भणियं च णाए—भट्टिदारिए, परितुट्ठा ते देवी; भणियं च णाए, जहा सुट्ठु आराहिओ त्ति। पेसियं च ते पारिओसियं। तं पुण न अन्नपारिओसियप्पयाणमंतरेण समप्पिउं जुज्जइ। रयणवईए भणियं—हला, देस्सामि ते पारिओसियं। पेच्छामि ताव, किं पुण अंबाए पेसियं पारिओसियं। मयणमंजुयाए भणियं—जं भट्टिदारिया आणवेइ। उवणीया से कुमारलिहिया चित्तवट्टिया। दिट्ठा [1]रयणवईए। चिंतियं च णाए—हंत अहं पिव एत्थ आलिहिय त्ति। [2]भणियं च णाए—हला मयणमंजुए, किमेयं ति। तीए भणियं—भट्टिदारिए, देवीए जहा सुट्ठु आराहिओ त्ति आणवेऊण पुण इमं आणत्तं; "अन्नं च, सव्वकालमेव तुमं एयाराहणपरा हवेज्जासु त्ति; एयं च ते पारिओसियं; तुमं पि एएण एवं चेवाराहिय त्ति निरूवेहि एयस्स चित्तकोसल्लं ति," तहा जं मए तक्कियं, 'भट्टिदारियाए एसो वरो हविस्सइ,' तं तह त्ति तक्केमि।

भवेरिति, एतच्च ते पारितोषिकम्। त्वमपि एतेनैवमेवाराधितेति, निरूपयैतस्य चित्रकौशल्यमिति। भणित्वा समर्पितं तस्याश्चित्रपट्टिकाद्विकम्। 'यन्मया विकल्पितं तत्तथा' इति हर्षिता मदनमञ्जुला। गता रत्नवतीसमीपम्। भणितं च तया—भर्तृदारिके! परितुष्टा ते देवी, भणितं च तया, यथा सुष्ठु आराधित इति। प्रेषितं च ते पारितोषिकम्। तत्पुनर्नान्यपारितोषिकप्रदानमन्तरेण समर्पितुं युज्यते। रत्नवत्या भणितम्—सखि! दास्यामि ते पारितोषिकम्। प्रेक्षे तावत् किं पुनरम्बया प्रेषितं पारितोषिकम्। मदनमञ्जुलया भणितम्—यद् भर्तृदारिकाऽऽज्ञापयति। उपनीता तस्याः कुमारलिखिता चित्रपट्टिका। दृष्टा रत्नवत्या। चिन्तितं च तया—हन्त अहमिवात्रालिखितेति। भणितं च तया—सखि मदनमञ्जुले! किमेतदिति। तया भणितम्—भर्तृदारिके! देव्या यथा सुष्ठु आराधित इत्याज्ञाप्य पुनरिदमाज्ञप्तम्, अन्यच्च सर्वकालमेव त्वमेतदाराधनपरा भवेरिति, एतच्च ते पारितोषिकम्, त्वमप्येतेनैवमेवाराधितेति निरूपयैतस्य चित्रकौशल्यमिति। तथा यन्मया तर्कितं 'भर्तृदारिकाया एष वरो भविष्यति' तत्तथेति तर्कयामि।

मेरा तुम्हारे लिए पारितोषिक है। तुम भी इसी से ही इस प्रकार सफल हो गयी। देखो इसकी चित्रकला की कुशलता।' ऐसा कहकर उसे दोनों चित्र पट्टिकाएँ दे दीं। 'जो मैंने सोचा था वह वैसा ही हुआ'—इस प्रकार मदनमंजुला हर्षित हुई। (वह) रत्नवती के पास गयी। उसने कहा—'स्वामिपुत्री! आप पर महारानी प्रसन्न हैं। उन्होंने कहा है कि आपने अच्छी सफलता पायी और आपको पारितोषिक भेजा है। उसे अन्य पारितोषिक दिये बिना देना ठीक नहीं है।' रत्नवती ने कहा - 'सखी! मैं तुम्हें पारितोषिक दूंगी। देखूं, माता ने क्या पारितोषिक भेजा।' मदनमंजुला ने कहा—'स्वामिपुत्री जैसी आज्ञा दें।' उसने कुमार के द्वारा बनायी हुई चित्रपट्टिका उसके सामने रख दी। रत्नवती ने देखा और उसने सोचा हाय, मैं ही मानो यहाँ चित्रित की गयी हूँ! उसने कहा—'सखी मदनमंजुला, यह क्या?' उसने कहा—'स्वामिपुत्री! महारानी ने 'बहुत अच्छी सफलता प्राप्त की'—ऐसा कहकर पुनः यह आज्ञा दी। दूसरी बात यह कि 'सदैव तुम इसकी आराधना में रत रहो - यह तुम्हारा पारितोषिक है, तुम भी इसी से सफल हो गयी।' अतः इसकी चित्र कुशलता को देखो तथा जो मैंने सोचा था कि स्वामिपुत्री का यह वर होगा वह वैसा ही है—ऐसा मैं अनुमान करती हूँ।' तब अत्यन्त अभिलाषा युक्त होकर पुनः चित्र की

---

१ रयणवईए निरूविया य। दिट्ठं उप्फुल्ललोयणाए चित्तवट्टियादुयं। चिंतियं—डे. ज्ञा.। २ सवियक्कं चिंतिऊण भणियं—डे. ज्ञा.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तओ अच्चंतसाहिलासं पुणो चित्तपडगिइं पुलोइय वाचिऊण य गाहं हरिसवसुव्वेल्लपुलयाए' जंपियं रयणवईए—हला मयणमंजुए, किमहं एसा आलिहिय त्ति अणुहरइ चित्तपडगिई। तओ अच्चंतं निरूविऊण भणियं मयणमंजुयाए। सुट्ठु अणुहरइ त्ति। न नज्जइ, किं भट्टिदारिया आलिहिया, किं वा भट्टिदारियाए चेव एत्थ पडिबिंबं संकंतं ति। तओ हरिसिया रयणवई। भणियं च णाए—को उण एसो भविस्सइ। मयणमंजुयाए भणियं–तक्केमि, कोइ महाणुभावो भट्टिदारियाणुराई सयलकलारयणायरो रायउत्तो भविस्सइ। रयणवईए भणियं—हला, न कयाइ अहमणेण दिट्ठा, ता कहं ममाणुराइ त्ति। मयणमंजुयाए भणियं—भट्टिदारिए, तक्केमि, तुमं पि इमिणा एमेव चित्तयम्मगया दिट्ठ त्ति। रयणवईए भणियं--हला, किं चित्तयम्मगयदिट्ठाए वि अणुराओ होइ? मयणमंजुयाए भणियं—होइ आगिइविसेसओ न उण सव्वत्थ। रयणवईए भणियं—कहं विय। मयणमंजुयाए भणियं—जहा भट्टिदारियाए इमम्मि। तओ ईसि विहसिऊण नीससियमिमीए। मयणमंजुयाए भणियं--सामिणि, मा संतप्प। 'अवस्सं सामिणी इमिणा संजुज्जइ' त्ति साहेइ विय मे हिययं। रयणवईए चिंतियं—कुणो मे एत्तिया भागधेया। दुल्लहो खु चिंतामणी मंदउण्णाणं।

ततोऽत्यन्तसाभिलाषं पुनश्चित्रप्रतिकृतिं प्रलोक्य वाचयित्वा च गाथां हर्षवशप्रसृतपुलकया जल्पितं रत्नवत्या—सखि मदनमञ्जुले! किमहमेषाऽऽलिखितेति अनुहरति चित्रप्रकृतिः। ततोऽत्यन्तं निरूप्य भणितं मदनमञ्जुलया--सुष्ठु अनुहरतीति। न ज्ञायते किं भर्तृदारिकाऽऽलिखिता, किं वा भर्तृदारिकाया एवात्र प्रतिबिम्बं संक्रान्तमिति। ततो हर्षिता रत्नवती। भणितं च तया—कः पुनरेष भविष्यति। मदनमञ्जुलया भणितम्—तर्कयामि कोऽपि महानुभावो भर्तृदारिकानुरागी सकलकलारत्नाकरो राजपुत्रो भविष्यति। रत्नवत्या भणितम्—सखि! न कदाचिदहमनेन दृष्टा, ततः कथं ममानुरागीति। मदनमञ्जुलया भणितम्—भर्तृदारिके! तर्कयामि, त्वमप्यनेन एवमेव चित्रकर्मगता दृष्टेति। रत्नवत्या भणितम्–सखि! किं चित्रकर्मगतदृष्टायामप्यनुरागो भवति? मदनमञ्जुलया भणितम्—भवत्याकृतिविशेषतः, न पुनः सर्वत्र। रत्नवत्या भणितम्—कथमिव? मदनमञ्जुलया भणितम्–यथा भर्तृदारिकाया अस्मिन्। तत ईषद् विहस्य निःश्वस्तमनया। मदनमञ्जुलया भणितम्–स्वामिनि! मा सन्तप्यस्व, 'अवश्यं स्वामिनी अनेन संयुज्यते' इति कथयतीव मे हृदयम्। रत्नवत्या चिन्तितम्—कुतो मे एतावन्ति भागधेयानि। दुर्लभः खलु चिन्ता-

---

प्रतिकृति देखकर और गाथा बाँचकर हर्षवश रोमांचित हो रत्नवती ने कहा—'सखी मदनमंजुला, यह मैं चित्रित की गयी हूँ? चित्र की प्रतिकृति में ऐसा सादृश्य है?' तब ध्यान से देखकर मदनमंजुला ने कहा—'एकदम सादृश्य है। स्वामिपुत्री चित्रित की गयी हैं अथवा स्वामिपुत्री का ही प्रतिबिम्ब इसमें आ गया है—यह नहीं ज्ञात होता है।' तब रत्नवती हर्षित हुई। उसने कहा—'फिर यह कौन होगा?' मदनमंजुला ने कहा—'अनुमान करती हूँ स्वामिपुत्री का अनुरागी, समस्त कलाओं का सागर कोई राजपुत्र होना चाहिए।' रत्नवती ने कहा—'सखी! इसने मुझे कभी नहीं देखा अतः कैसे मेरा अनुरागी है?' मदनमंजुला ने कहा—'स्वामिपुत्री! अनुमान करती हूँ कि तुम्हें भी इसने इसी प्रकार चित्र में देखा।' रत्नवती ने कहा—'क्या चित्र में देखी हुई के प्रति भी अनुराग हो जाता है?' मदनमंजुला ने कहा—'आकृतिविशेष से अनुराग हो जाता है, सब जगह नहीं।' रत्नवती ने कहा—'कैसे?' मदनमंजुला ने कहा—'जैसे स्वामिनी का इस राजपुत्र के प्रति।' तब मुस्कराकर इसने लम्बी सांस ली। मदनमंजुला ने कहा—'स्वामिनि! दुःखी मत होओ, अवश्य ही स्वामिनी इससे मिलेंगी, ऐसा मानो मेरा हृदय कह रहा है।' रत्नवती ने सोचा—मेरे इतने भाग्य कहाँ? मन्द पुण्यवालों के लिए चिन्तामणि दुर्लभ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एत्थंतरम्मि फुरियं से वामलोयणेणं, आयण्णिओ पुण्णाहघोसो। परिउट्ठा चित्तेणं। चिंतियं च णाए—अवि नाम एयमवि एवं हवेज्ज त्ति। एत्थंतरम्मि समागया पियमेलियाहिहाणा चेडी। भणियं च णाए—भट्टिदारिए, देवी आणवेइ, जहा 'आसन्ना भोयणवेला, ता आवस्सयं करेहि' त्ति। तओ 'जं अंबा आणवेइ' त्ति भणिऊण कुमारमणुसरंता[1] उट्ठिया रयणवई। कयं गुरुदेवयाइयं निच्चयम्मं। भुत्तं च विहिणा। गहिओ कुमारपडिच्छंदओ। अहो सोहणो अंगविन्नासो, मणोहरा धीरललियया सलोणा दिट्ठी, अइप्पगब्भो भावो, अच्चुयारं सत्तं, गंभीरगरुओ अवत्थाणो। अहो ईइसो वि पुरिसविसेसो हवइ त्ति अच्छरियं। एवं च कुमारगुणुक्कित्तणपराए अइक्कंता कइवि वासरा।

इओ य तच्चित्तवट्टियादंसणविणोएण कुमारगुणचंदस्स वि एवमेव त्ति। विन्नाओ य एस वइयरो कुओइ मेत्तीबलेण। 'उचिया चेव संखायणनरिंदधूया कुमारस्स' त्ति चिंतिऊण पेसिया तेण तीए पहाणकोसल्लियसमेया[2] पहाणवरगा।

भणिर्मन्दपुण्यानाम्। अत्रान्तरे स्फुरितं तस्या वामलोचनेन, आकर्णितः पुण्याहघोषः (मङ्गलशब्दः)। परितुष्टा चित्तेन। चिन्तितं च तया—अपि नाम एतदपि एवं भवेदिति। अत्रान्तरे समागता प्रियमेलिकाभिधाना चेटी। भणितं च तया—भर्तृदारिके! देव्याज्ञापयति, यथा 'आसन्ना भोजनवेला, तत आवश्यकं कुरु' इति। ततो 'यदम्बाऽऽज्ञापयति' इति भणित्वा कुमारमनुस्मरन्त्युत्थिता रत्नवती। कृतं गुरुदेवादिकं नित्यकर्म। भुक्तं च विधिना। गृहीतः कुमारप्रतिच्छन्दकः। अहो शोभनोऽङ्गविन्यासः, मनोहरा धीरललितका सलावण्या दृष्टिः, अतिप्रगल्भो भावः, अत्युदारं सत्त्वम्, गम्भीरगुरुकमवस्थानम्। अहो ईदृशोऽपि पुरुषविशेषो भवतीत्याश्चर्यम्। एवं च कुमारगुणोत्कीर्तनपराया अतिक्रान्ताः कत्यपि वासराः।

इतश्च तच्चित्रपट्टिकादर्शनविनोदेन कुमारगुणचन्द्रस्याप्येवमेवेति। विज्ञातश्चैष व्यतिकरः कुतश्चिद् मैत्रीबलेन। 'उचितैव शाङ्खायननरेन्द्रदुहिता कुमारस्य' इति चिन्तयित्वा प्रेषितास्तेन तस्यै [2]प्रधानप्राभृतसमेताः प्रधानवरकाः।

है। इसी बीच उसकी बायीं आँख फड़की। मंगल शब्द सुनाई पड़ा। (वह) चित्त से सन्तुष्ट हुई और उसने सोचा—हो सकता है, इसकी भी ऐसी ही अवस्था हो। इसी बीच प्रियमेलिका नामक दासी आयी और उसने कहा—'स्वामिपुत्री! महारानी आज्ञा देती हैं कि भोजन का समय समीप है, अतः आवश्यक कार्य करें।' तदनन्तर 'माता जी की जैसी आज्ञा'—ऐसा कहकर कुमार का स्मरण करती हुई रत्नवती उठी। गुरु-देव आदि सम्बन्धी नित्यकर्मों को किया और विधिपूर्वक भोजन किया। कुमार के चित्र को लिया। ओह, अंगों का विन्यास सुन्दर है। दृष्टि मनोहर, धीरललित और लावण्ययुक्त है। भाव अति प्रौढ़ है। सत्त्व अत्यन्त श्रेष्ठ है। आकृति गम्भीर और गौरवयुक्त है। ओह! ऐसा भी पुरुष विशेष होता है! आश्चर्य है। इस प्रकार कुमार के गुणों के कीर्तन में लगी हुई उसके कुछ दिन बीत गये।

इधर उस चित्रपट्टिका के दर्शन के विनोद से कुमार गुणचन्द्र की भी इसी प्रकार दशा हुई। कहीं से यह वृत्तान्त मैत्रीबल को ज्ञात हुआ। शांखायन राजा की पुत्री योग्य ही है—ऐसा सोचकर उसने उसके पास प्रधान उपहारों के साथ प्रमुख बहुमूल्य पात्रों को भेजा।

---

१. -णुसरंतीए कयं—डे. ज्ञा. पा. ज्ञा.। २. कोसल्लिय (दे.) प्राभृतम्, उपहार इति यावत्।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

इओ य कुमारपडिच्छंदयमेत्तदंसणपरा 'न एयमंतरेण अणुबंधो मुणोयइ' त्ति उव्विग्गा रयणवई। परिचत्तमिमोए रायकन्नगोचियं करणिज्जं। समद्धासिया अरईए, गहिया रणरणएणं, अंगीकया सुन्नयाए, पडिवन्ना वियारेहिं, ओत्थया मयणजरएण। तओ सा 'सीसं मे दुक्खइ' त्ति साहिऊण सहियणस्स उवगया सयणिज्जं। तत्थ उण पवड्ढमाणाए वियंभियाए अणवरयमुव्वत्त-माणेणमगेणं आपंडुरएहिं गंडपासएहिं बप्फपज्जाउलाए दिट्ठीए अलद्धासासवीसंभं जाव थेववेलं चिट्ठइ, ताव हरिसवसुप्फुल्ललोयणा समागया मयणमंजुया। भणियं च णाए—भट्टिदारिए, चिर जीवसु त्ति। पुण्णा ते मणोरहा। जं मए तक्कियं, तं तहेव जायं ति। रयणवईए भणियं—हला, किं तयं तक्कियं, किं वा तहेव जायं ति। मयणमंजुयाए भणियं—भट्टिदारिए एयं तक्कियं, जहा एसो चित्तपडिच्छंदओ भट्टिदारियाए चेव वरो भविस्सइ त्ति, जाव तं तहेव जायं ति। तओ कडिसुत्तयं दाऊण भणियं रयणवईए—'हला, कहं विय'। मयणमंजुयाए भणियं—सुण। अत्थि अहं इओ भट्टिदारियासमोवाओ देवीसयासं गया, जाव पप्फुल्लवयणपंकया सह चित्तमइभूसणेहिं मंतयंती

इतश्च कुमारप्रतिच्छन्दकदर्शनपरा 'नैतदन्तरेण अनुबन्धो ज्ञायते' इत्युद्विग्ना रत्नवती। परित्यक्तमनया राजकन्यकोचितं करणीयम्। समध्यासिताऽरत्या, गृहीता रणरणकेन (औत्सुक्येन), अङ्गीकृता शून्यतया, प्रतिपन्ना विकारैः अवस्तृता मदनज्वरेण। ततः सा 'शीर्षं मे दुःखयति' इति कथयित्वा सखीजनस्योपगता शयनीयम्। तत्र पुनः प्रवर्धमानया विजृम्भिकयाऽनवरतमुद्वर्तमाने-नाङ्गेन आपाण्डुराभ्यां गण्डपार्श्वाभ्यां बाष्पपर्याकुलया दृष्ट्याऽलब्धाश्वासविश्रम्भं यावत् स्तोकवेलां तिष्ठति, तावद् हर्षवशोत्फुल्ललोचना समागता मदनमञ्जुला। भणितं च तया—भर्तृदारिके! चिरं जीवेति। पूर्णास्ते मनोरथाः। यन्मया तर्कितं तत्तथैव जातमिति। रत्नवत्या भणितम्—हला! किं तत्तर्कितम्, किं वा तथैव जातमिति। मदनमञ्जुलया भणितम्—भर्तृदारिके! एतत्तर्कितं यथैष चित्रप्रतिच्छन्दको भर्तृदारिकाया एव वरो भविष्यतीति, यावत तत्तथैव जातमिति। ततः कटिसूत्रं दत्त्वा भणितं रत्नवत्या—'हला! कथमिव'। मदनमञ्जुलया भणितम्—शृणु। अस्म्यहमितो भर्तृदारिकासमीपाद् देवीसकाशं गता, यावत्प्रफुल्लवदनपङ्कजा

इधर कुमार के चित्र का दर्शन करने में संलग्न रत्नवती—'इसके बिना (कोई) सम्बन्ध ज्ञात नहीं होता'—यह सोचकर उद्विग्न हो गयी। उसने राजकन्या के योग्य कार्य को छोड़ दिया। (वह) अरति से अध्यासित हो गयी, उत्सुकता ने (उसे) ग्रहण कर लिया, शून्यता ने अंगीकार कर लिया। (वह) विकार को प्राप्त हुई, कामज्वर ने (उसे) ढक लिया। अनन्तर वह 'मेरा सिर दुःखता है'—ऐसा सखीजनों से कहकर शय्या को प्राप्त हो गयी। वहाँ पर बार-बार जँभाई लेती, निरन्तर अंगों को हिलाती-डुलाती, कुछ-कुछ पीले गालों के प्रान्त भाग से युक्त, आँसुओं से व्याप्त नेत्रों वाली, श्वास के विश्राम को न प्राप्त कर जब थोड़ी देर बैठी हुई थी तभी हर्षवश, जिसके नेत्र विकसित थे ऐसी, मदनमंजुला आ गयी। उसने कहा—'स्वामिपुत्री! चिरकाल तक जिओ। आपके मनोरथ पूर्ण हुए। जो मैंने अनुमान किया था, वह वैसा ही हुआ।' रत्नवती ने कहा—'सखी! वह क्या अनुमान किया था अथवा क्या वैसा ही हुआ?' मदनमंजुला ने कहा—'स्वामिपुत्री! यह अनुमान किया था कि इस चित्र के समान अथवा जिसका यह चित्र है वही स्वामिपुत्री का वर होगा, वह वैसा ही हुआ।' तब कटिसूत्र देकर रत्नवती ने कहा—'सखी! कैसे?' मदनमंजुला ने कहा—'सुनो मैं यहाँ स्वामिपुत्री के पास से महारानी के समीप गयी थी, मैंने विकसित मुखकमलवाली महारानी को चित्रमति और भूषण के साथ विचार करते हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिट्ठा मए देवी। भणियं च णाए—हला मयणमंजुए, भणाहि मे जायं रयणवइं, जहा 'पुण्णा मे मणोरहा तुह भागधेएहिं, दिन्ना तुमं पणयपत्थणामहग्घं अओज्झासामिणो महारायमेत्तीबलसुयस्स कुमारगुणचंदस्स'। रयणवईए भणियं—हला, किमिमिणा असंबद्धेण। मयणमंजुयाए भणियं—भट्टिदारिए, नेयमसंबद्धं, कहावसाणं पि ताव सुणेउ भट्टिदारिया। तओ देवीए भणियं—'आराहिओ तए एस चित्तयम्मेण; परितुट्ठो य भयवं पयावई; जेण सो चेव ते 'अकयन्नकन्नारायदारियापरिग्गहो भत्ता विइण्णो' त्ति। एयं सोऊण हरिसिया रयणवई। दिन्नं मयणमंजुयाए नियया हरणं। चिंतियं च सहरिसं 'कहं सो चेव एसो गुणचंदो' त्ति। अहो जहत्थमभिहाणं। अवगओ विय मे संतावो, तस्स गेहिणीसद्देण समागओ मुत्तिमंतो विय परिओसो। मयणमंजुयाए भणियं—भट्टिदारिए, तओ देवीए भणियं, 'ता एहि, मज्जिऊण गुरुदेवए वंदसु' त्ति। रयणवईए भणियं—जं अंबा आणवेइ। मज्जिऊण महाविभूईए वंदिया देवगुरवो। काराविय महारायसंखायणेण महादाणाइयं उचियकरणिज्जं 'ठिइ' त्ति काऊण।

सह चित्रमतिभूषणाभ्यां मन्त्रयमाणा दृष्टा मया देवी। भणितं च तया—हला मदनमञ्जुले! भण मे जातां रत्नवतीम्, यथा 'पूर्णा मे मनोरथास्तव भागधेयैः, दत्ता त्वं प्रणयप्रार्थनामहार्घमयोध्यास्वामिने महाराजमैत्रीबलसुताय कुमारगुणचन्द्राय। रत्नवत्या भणितम्—सखि! किमनेनासम्बद्धेन। मदनमञ्जुलया भणितम्—भर्तृदारिके! नेदमसम्बद्धम्, कथावसानमपि तावत् शृणोतु भर्तृदारिका। ततो देव्या भणितम्—'आराधितस्त्वयैष चित्रकर्मणा, परितुष्टश्च भगवान् प्रजापतिः, येन स एव तेऽकृतान्यकन्याराजदारिकापरिग्रहो भर्ता वितीर्ण इति।' एतच्छ्रुत्वा हृष्टा रत्नवती। दत्तं मदनमञ्जुलायै निजाभरणम्। चिन्तितं च सहर्षं 'कथं स एवैष गुणचन्द्रः' इति। अहो यथार्थमभिधानम्। अपगत इव मे सन्तापः, तस्य गेहिनीशब्देन समागतो मूर्तिमानिव परितोषः। मदनमञ्जुलया भणितम्—भर्तृदारिके! ततो देव्या भणितं 'तत एहि, मज्जित्वा गुरुदैवतान् वन्दस्व' इति। रत्नवत्या भणितम्—यदम्बाऽऽज्ञापयति। मज्जित्वा महाविभूत्या वन्दिता देवगुरवः, कारितं महाराजशाङ्खायनेन महादानादिकमुचितकरणीयं 'स्थितिः' इति कृत्वा।

देखा। महारानी ने कहा—सखी मदनमंजुला! मेरी पुत्री रत्नवती से कहो कि तुम्हारे भाग्य से मेरे मनोरथ पूर्ण हो गये। अयोध्या के स्वामी महाराज मैत्रीबल द्वारा पुत्र कुमार गुणचन्द्र के लिए तुम्हारे प्रणय की प्रार्थना की गयी है।' रत्नवती ने कहा—'इस असम्बद्ध (बातचीत) से क्या?' मदनमंजुला ने कहा—'स्वामिपुत्री! यह असम्बद्ध नहीं है, स्वामिपुत्री कथा की समाप्ति भी सुनिए। अनन्तर महारानी ने कहा—'तुमने चित्र की आराधना की, और भगवान् प्रजापति सन्तुष्ट हो गये, जिससे जिसने अन्य कन्या को राजरानी नहीं बनाया है—ऐसे उसी कुमार को पति के रूप में दे दिया।' यह सुनकर रत्नवती सन्तुष्ट हुई। मदनमंजुला को अपना आभरण दिया और हर्षपूर्वक सोचने लगी—कैसे यह वही गुणचन्द्र है? ओह, यथार्थ नाम है। मेरा दुःख मानो दूर हो गया, उसके गृहिणी शब्द से मानो शरीरधारी सन्तोष आ गया। मदनमंजुला ने कहा—'स्वामिपुत्री! अनन्तर महारानी ने कहा—तो आओ, स्नान कर माता-पिता और देवताओं की वन्दना करो।' रत्नवती ने कहा—'माता जी की आज्ञा।' स्नान कर माता-पिता और गुरुओं की महान् विभूति के साथ वन्दना की। महाराज शांखायन ने 'मर्यादा' मानकर महादानादि योग्य कार्य किये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अइक्कंतेसु कइवयदिणेसु महया बलसमुदएणं पहाणरिद्धीए संगया सहियाहिं अहिट्ठिया जणणीए अओज्झानयरिमेव विवाहनिमित्तं पेसिया रयणवइ त्ति। पत्ता य माससेत्तेणं कालेणं। निवेइया महारायमंत्तीबलस्स। परितुट्ठो एसो। कारावियमणेण बंधणमोयणाइयं करणिज्जं। कया उचियपडिवत्ती। गणाविओ वारिज्जदियहो। समाइट्ठा पउरमहंतया, जहा 'कुमारविवाहाणुरूवं सव्वं करेह' त्ति। कयं च णेहिं पुव्वकम्मनिव्वत्तियं चेव सव्वं। समारद्धाओ हट्टभवणसोहाओ, दवावियं पाउलाण दविणजायं, भंडारपत्तयं वाइऊण कड्ढियाइं पहाणाहरणाइं, निरूवियं देवंगाइ-चेलं, सज्जाविया पहाणवेयंडा, भूसावियाओ आसमंदुराओ, कड्ढाविया धयमालोवसोहिया रहा, दवावियं नयरचच्चरेसु तंबोलपडलाइयं। तओ पसत्थे तिहिकरणमुहुत्तजोए पसाहिओ वरनेवच्छेणं सुणेंतो गेयमंगलसद्दं पेच्छंतो पहट्ठपरियणं नमंतो गुरुदेवे थुव्वंतो बंदिलोएण पहाणसंवच्छरियवयणओ समारूढो धवलकरिवरं कुमारो। ठिआ य से मग्गओ विसालबुद्धिप्पमुहा वयंसया। तओ वज्जंतेणं मंगलतूरेणं पणच्चमाणीहिं वारविलयाहिं रहवराइगयरायलोयपरियरिओ अहिणंदिज्जमाणो

अतिक्रान्तेषु कतिपयदिनेषु महता बलसमुदायेन प्रधानऋद्धया सङ्गता सखीभिरधिष्ठिता जनन्या अयोध्यानगरीमेव विवाहनिमित्तं प्रेषिता रत्नवतीति। प्राप्ता च मासमात्रेण कालेन। निवेदिता महाराजमैत्रीबलस्य। परितुष्ट एषः। कारितमनेन बन्धनमोचनादिक करणीयम्। कृतोचितप्रतिपत्तिः। गणितो विवाहदिवसः। समादिष्टाः पौरमहान्तः, 'यथा कुमारविवाहानुरूपं सर्वं कुरुत' इति। कृतं च तैः पूर्वकर्मनिर्वर्तितमेव सर्वम्। समारब्धा हट्टभवनशोभाः, दापितं याचकानां द्रविणजातम्, भाण्डागारपत्रं वाचयित्वा कृष्टानि प्रधानाभरणानि, निरूपितं देवाङ्गादिचेलम्, सज्जिताः प्रधानहस्तिनः, भूषिता अश्वमन्दुराः कर्षिता ध्वजमालोपशोभिता रथाः, दापितं नगरचत्वरेषु ताम्बूलपटलादिकम्। ततः प्रशस्ततिथिकरणमुहूर्तयोगे प्रसाधितो (अलंकृतो) वरनेपथ्येन शृण्वन् गेयमङ्गलशब्दं प्रेक्षमाणः प्रहृष्टपरिजनं नमन् गुरुदेवान् स्तूयमानो बन्दिलोकेन प्रधानसांवत्सरिकवचनतः समारूढो धवलकरिवरं कुमारः। स्थिताश्च तस्य मार्गतो (पृष्ठतः) विशालबुद्धिप्रमुखा वयस्याः। ततो वाद्यमानेन मङ्गलतूर्येण प्रनृत्यन्तीभिर्वारवनिताभी रथवरादिगत-

कुछ दिन बीत जाने पर बड़ी सेना के साथ प्रधानऋद्धि से युक्त होकर, सखियों के साथ, माता से अधिष्ठित होकर रत्नवती को विवाह के लिए अयोध्या ही भेजा गया। एक मास में आ गयी। महाराज मैत्रीबल से निवेदन किया गया। वह (मैत्रीबल) सन्तुष्ट हुआ। इसने बन्दियों को छोड़ना आदि योग्य कार्य किये। उचित जानकारी प्राप्त की। विवाह का दिन गिना। नगर के बड़े लोगों को आदेश दिया कि कुमार के विवाह के अनुरूप सब करो। उन्होंने पहले के सभी कार्यों को पूर्ण किया। बाजार के भवनों की शोभा आरम्भ हुई। याचकों को धन दिलाया, भण्डारी के पत्र बाँचकर प्रधान आभरणों को निकाला, देवांगादि वस्त्रों को देखा, प्रधान हाथी सजाये गये, घुड़शालाएँ भूषित की गयीं, ध्वज और माला से शोभित रथ निकाले गये। नगर के चौराहों पर पान आदि दिलाये गये। अनन्तर प्रधान ज्योतिषी के वचनानुसार उत्तम तिथि, करण और मुहूर्त के योग में कुमार सफेद श्रेष्ठ हाथी पर आरूढ़ हुआ। उस समय वह उत्तम पोशाक से अलंकृत था, गाने योग्य मंगल शब्द सुन रहा था, हर्षित परिजनों को देख रहा था, माता-पिता और देवों को नमस्कार कर रहा था। बन्दीजन उसकी स्तुति कर रहे थे। उसके पीछे विशालबुद्धि प्रमुख मित्र बैठे थे। अनन्तर वह रत्नवती के जनवासे में पहुँचा। उस समय मंगल वाद्य बजाये जा रहे थे, वारांगनाएँ नृत्य कर रही थीं। श्रेष्ठ रथ पर बैठे हुए राजाओं से वह घिरा हुआ था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पउररामायणेण महया विमद्देण पत्तो रयणवइजन्नावासयं। ओइण्णो करिवराओ। पउत्तो कंचण-मुसलताडणाइलक्खणो विही। पवेसिओ वहुयाहरयं। दिट्ठा य णेण चित्तयम्मबिंबं पि ओहसंती रूवाइसएण रइं पि विसेसयंती मणहरविलासेहिं ईसि पलंबाहरा चक्कवायमिहुणसरिसेणं थणजुयलेण तिवलीतरंगसोहियमुट्ठिगेज्झमज्झा असोयपल्लवागारेहिं करेहिं विच्छिण्णनियंबबिंबा थलकमला-णुगारिणा चलणजुयलेण सव्वागारदंसणीया सव्वंगमद्धासिया मयणेण कुंडमिवामयस्स रासी विय सुहाणं निहाणमिव रईए आगरो विय आणंदरयणाणं मुणीण वि मणहारिणिं अवत्थमणुहवंती रयणवइ त्ति। हरिसिओ चित्तेणं। कयं च णेण सिद्धाएसवयणाओ पाणिग्गहणं। भमियाइं मंडलाइं, पउत्तो आयारो, संपाडिया जणोवयारा। तओ तं घेत्तूण गओ नियभवणं। कयं उचियकरणिज्जं। अइक्कंता काइ वेला मणहरविणोएणं। पढियं कालपाढएणं—

अह हिंडिऊण दियहं भुवणुज्जोयणसमत्तवावारो।
अवररयणायरं मज्जिउं व तुरियं गओ सूरो॥ ६८४॥

राजलोकपरिवृतोऽभिनन्द्यमानः पौररामाजनेन महता विमर्देन (सङ्घर्षेण) प्राप्तो रत्नवती जन्यावासम्। अवतीर्णः करिवरात्। प्रयुक्तः काञ्चनमुशलताडनादिलक्षणो विधिः। प्रवेशितो वधूगृहम्। दृष्टा च तेन चित्रकर्मबिम्बमप्युपहसन्ती रूपातिशयेन रतिमपि विशेषयन्ती मनोहरविलासैरीषत्प्रलम्बाधरा चक्रवाकमिथुनसदृशेन स्तनयुगलेन त्रिवलीतरङ्गशोभितमुष्टिग्राह्यमध्या अशोकपल्लवाकाराभ्यां कराभ्यां विस्तीर्णनितम्बबिम्बा स्थलकमलानुकारिणा चरणयुगलेन सर्वाकारदर्शनीया सर्वाङ्गमध्यासिता मदनेन कुण्डमिवामृतस्य राशिरिव सुखानां निधानमिव रत्या आकर इव आनन्दरत्नानां मुनीनामपि मनोहारिणीमवस्थामनुभवन्ती रत्नवतीति। हृष्टश्चित्तेन। कृतं च तेन सिद्धादेशवचनात्पाणिग्रहणम्। भ्रान्तानि मण्डलानि, प्रयुक्त आचारः, सम्पादिता जनोपचाराः। ततस्तां गृहीत्वा गतो निजभवनम्। कृतमुचितकरणीयम्। अतिक्रान्ता कापि वेला मनोहरविनोदेन। पठितं कालपाठकेन—

अथ हिण्डित्वा दिवसं भुवनोद्द्योतनसमाप्तव्यापारः।
अपररत्नाकरं मज्जितुमिव त्वरितं गतः सूरः॥६८४॥

नगर की स्त्रियाँ उसका अभिनन्दन कर रही थीं। बहुत अधिक भीड़ हो रही थी। (वह) श्रेष्ठ हाथी से उतरा। स्वर्णमयी मूसल से मारने आदि लक्षणों वाली विधि प्रयुक्त हुई। वधू-गृह में (उसे) प्रवेश कराया गया। उसने इस प्रकार की अवस्था का अनुभव करती हुई रत्नवती को देखा। वह अपनी रूपातिशयता के कारण चित्र में बनाये हुए बिम्ब का उपहास कर रही थी। मनोहर विलासों के कारण वह रति से भी विशिष्ट लग रही थी। उसके अधर कुछ-कुछ लटके हुए थे। चकवे के जोड़े के समान स्तनयुगल से वह युक्त थी। त्रिवली की तरंगों से शोभित उसका मध्यभाग मुट्ठी से ग्रहण करने योग्य था। अशोक के कोमल पत्ते के आकार वाले उसके दोनों हाथ थे। उसके नितम्बबिम्ब विस्तृत थे। उसके चरणयुगल स्थलकमल का अनुकरण करनेवाले थे। समस्त आकारों में वह दर्शनीय थी। कामदेव उसके सभी अंगों में अधिष्ठित था। वह मानो अमृत की कुण्ड थी, सुखों की राशि थी, रति का निधान थी, आनन्द के रत्नों का खजाना थी, मुनियों के लिए भी मनोहर थी। (कुमार) मन ही मन हर्षित हुआ। उसने सिद्धादेश के वचनों के अनुसार पाणिग्रहण किया। फेरे हुए, आचार प्रयुक्त हुआ, जनोपचार सम्पादित हुए। अनन्तर रत्नवती को लेकर अपने भवन में गया। योग्य कार्यों को किया। मनोहर विनोद के साथ कुछ समय बीता। कालपाठक ने पढ़ा—

अब दिनभर घूमकर संसार को प्रकाशित करने के कार्य को समाप्त कर मानो, दूसरे समुद्र में स्नान करने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिवसविरमम्मि जाया मउलावियकमललोयणा नलिणी ।
अइदूसहसूरविओयजणियपसरंतमुच्छ व्व ॥६८५॥
अत्थमियम्मि दिणयरे दइयम्मि व वड्ढियाणुरायम्मि ।
रयणिवहू सोएण व तमेण तुरियं तओ गहिया ॥६८६॥
अवहत्थियमित्ते दुज्जणे व पत्ते पओससमयम्मि ।
चक्काइं भएण व विहडियाइ अन्नोन्ननिरवेक्खं ॥६८७॥
आसन्नचंदपिययमसमागमाए व नहयलसिरीए ।
दियहसिरिमाणजणयं गहियं वरतारयाहरणं ॥६८८॥
पुव्वदिसावहुवयणं तोसेण व नियसमागमकएणं ।
उज्जोवंतो जोण्हानिवहेण समुग्गओ चंदो ॥६८९॥
माणंसिणीण माणो मयलंछणचंदिमाए छिप्पंतो ।
अगणिय सहिउवएसं नट्ठो घणतिमिरनिवहो व्व ॥६९०॥

दिवसविरमे जाता मुकुलितकमललोचना नलिनी ।
अतिदुःसहसूरवियोगजनितप्रसरन्मूर्च्छेव ॥६८५॥
अस्तमिते दिनकरे दयिते इव वर्धितानुरागे ।
रजनीवधूः शोकेनेव तमसा त्वरितं ततो गृहीता ॥६८६॥
अपहस्तितमित्रे दुर्जने इव प्राप्ते प्रदोषसमये ।
चक्रवाका भयेनेव विघटिता अन्योन्यनिरपेक्षम् ॥६८७॥
आसन्नचन्द्रप्रियतमसमागमयेव नभस्तलश्रिया ।
दिवसश्रीमानजनकं गृहीतं वरतारकाभरणम् ॥६८८॥
पूर्वदिग्वधूवदनं तोषणेव निजसमागमकृतेन ।
उद्द्योतयन् ज्योत्स्नानिवहेन समुद्गतश्चन्द्रः ॥६८९॥
मनस्विनीनां मानो मृगलाञ्छनचन्द्रिकया स्पृश्यमानः ।
अगणयित्वा सख्युपदेशं नष्टो घनतिमिरनिवह इव ॥६९०॥

के लिए सूर्य शीघ्र ही चल दिया है। दिन की समाप्ति होने पर कमल के समान नेत्रवाली कमलिनी मुकुलित हो गयी है। मानो सूर्य के अत्यन्त दुःसह वियोग में उत्पन्न मूर्च्छा का ही प्रभाव हो गया है। पतिरूप सूर्य के अस्त हो जाने पर उसके प्रति बढ़े हुए अनुरागवाली रात्रिरूपी वधू शोक के कारण मानो अन्धकार के द्वारा शीघ्र ही ग्रहण कर ली गयी है। मित्र के हराये जाने पर, दुर्जन के समान सन्ध्याकाल के प्राप्त होने पर मानो भय से ही चकवे एक-दूसरे से अलग हो गये हैं। आकाशतल की लक्ष्मी ने समीपवर्ती चन्द्ररूप प्रियतम के समागम से ही दिवसलक्ष्मी के मान के जनक श्रेष्ठ तारारूपी आभरण को ग्रहण कर लिया है। अपने समागम से उत्पन्न सन्तोष से ही मानो पूर्व दिशारूपी वधू के मुख को चाँदनी के समूह से प्रकाशित करता हुआ चन्द्रमा उदित हो गया है। चन्द्रमा की चाँदनी से स्पृष्ट हुआ मानवती स्त्रियों का मान सखी के उपदेश को न मानकर घने अन्धकार-समूह के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुव्वदिसाए निवडिया ससिसंगाणंदबाहबिंदु व्व ।
जाया कज्जलकलुसा तमभरिया धरणिविवरोहा ॥६९१॥
मयणधणुजीवरावो व्व मणहरो तुरियखलणगमणेण ।
अहिसारियाण नेउरचलवलयरवो पवित्थरिओ ॥६९२॥
उल्लसियरिक्खरयणं वियंभिउद्दामवारुणीगंधं ।
जायं मियंकसुहयं भुवणं खीरोयमहणं व ॥६९३॥
एवंविहे पओसे सविसेसं सज्जियं महारम्भं ।
हरिसियमणो कुमारो समागओ नवर वासहरं ॥६९४॥
ओहामियसुरसुंदरिरूवाए वहूए सपरिवाराए ।
पप्फुल्लवयणकमलाए सेवियं सुरविमाणं व ॥६९५॥
निउणेहिं कंचि कालं गमिउं हिट्ठाउ हासखेड्डेहिं ।
अविसज्जियाउ वहुयाए निग्गयाओ सहीओ से ॥६९६॥

पूर्वदिशि निपतिताः शशिसङ्गानन्दबाष्पबिन्दव इव ।
जाताः कज्जलकलुषाः तमोभृता धरणीविवरौघाः ॥६९१॥
मदनधनुर्जीवाराव इव मनोहरस्त्वरितस्खलनगमनेन ।
अभिसारिकाणां नूपुरचलवलयरवः प्रविस्तृतः ॥ ६९२॥
उल्लसितऋक्षरत्नं विजृम्भितोद्दामवारुणीगन्धम् ।
जातं मृगाङ्कसुभगं भुवनं क्षीरोदमथनमिव ॥६९३॥
एवंविधे प्रदोषे सविशेषं सज्जितं महारम्भम् ।
हृष्टमनाः कुमारः समागतो नवरं वासगृहम् ॥६९४॥
तुलितसुरसुन्दरीरूपया वध्वा सपरिवारया ।
प्रफुल्लवदनकमलया सेवितं सुरविमानमिव ॥६९५॥
निपुणैः कञ्चित्कालं गमयित्वा हृष्टा हास्यखेलैः ।
अविसर्जिता वध्वा निर्गताः सख्यस्तस्याः ॥६९६॥

समान नष्ट हो गया है। पूर्व दिशा में पड़े हुए चन्द्रमा के मिलन से उत्पन्न आनन्द के आँसुओं के समान काजल से कलुषित पृथ्वी के छिद्रों के समूह अन्धकार से भरे हुए हो गये हैं। कामदेव के धनुष की प्रत्यंचा के शब्द के समान मनोहर तथा लड़खड़ाने वाली शीघ्र गति से युक्त अभिसारिकाओं के चंचल नूपुरों और कड़ों का शब्द फैल गया है। जिसमें नक्षत्ररूपी रत्न सुशोभित हो रहे हैं, उत्कट मदिरा की गन्ध जहाँ बढ़ रही है, ऐसा संसार क्षीर-सागर के मन्थन के समान चन्द्रमा से सुन्दर हो गया है। ऐसे प्रदोषकाल में प्रसन्नमन कुमार गुणचन्द्र विशेषरूप से बड़े-बड़े दृश्य जहाँ सजाये गये हैं ऐसे वासगृह (शयनगृह) में आया ॥६८४-६९४॥ वह वासगृह देवांगना के रूप के समान खिले हुए मुखकमल वाली सपरिवार वधू से सेवित देवविमान के समान था। निपुण हँसी और खेलों से हर्षित हो कुछ समय बिताकर बिना विदा किये ही उसकी सखियाँ निकल गयीं। स्नेह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्नोन्नमंगमंगेण पेल्लिउं नेहपरिणइवसेण ।
सुत्तं वरवहुमिहुणं जहासुहं निहुयनीसासं ॥६९७॥
ताव य कुपुरिसरिद्धि व्व झिज्जिउं तुरियमेव आढत्ता ।
रयणी सरिसित्थीण वि अणवेक्खियपिययमविओयं ॥६९८॥
पच्चूसमारुएण व नीओ नहकोट्टिमाउ अवरंतं ।
तारानिवहो सुपओसरइयसियकुसुमपयरो व्व ॥६९९॥
दियहपियविरहकायररामायणजणियहियनिव्वेयं ।
भुवणम्मि मुहलकुक्कुडवंदिणसद्दो पवित्थरिओ ॥७००॥
होंतनिसावहुदूसहविओयचिंताउलो व्व निसिणाहो ।
जाओ भुवणुज्जोयणनियकज्जनियत्तवावारो ॥७०१॥
चालियलवंगचंदणनमेरुसुरदारुगंधसंवलिओ ।
अवहियसुरयायासं विलयाण वियंभिओ पवणो ॥७०२॥

अन्योन्यमङ्गमङ्गेन पीडयित्वा स्नेहपरिणतिवशेन ।
सुप्तं वरवधूमिथुनं यथासुखं निभृतनिःश्वासम् ।६९७॥
तावत्कुपुरुषऋद्धिरिव क्षेतुं त्वरितमेवारब्धा ।
रजनी सदृशस्त्रीणामप्यनपेक्षितप्रियतमवियोगम् ॥६९८॥
प्रत्यूषमारुतेनेव नीतो नभःकुट्टिमादपरान्तम् ।
तारानिवहः सुप्रदोषरचितसितकुसुमप्रकर इव ॥६९९॥
दिवसप्रियविरहकातररामाजनजनितहृदयनिर्वेदम् ।
भुवने मुखरकुर्कुटवन्दिशब्दः प्रविस्तृतः ॥७००॥
भविष्यन्निशावधूदुःसहवियोगचिन्ताकुल इव निशानाथः ।
जातो भुवनोद्योतननिजकार्यनिवृत्तव्यापारः ॥७०१॥
चालितलवङ्गचन्दननमेरुसुरदारुगन्धसंवलितः ।
आहृतसुरतायासं वनितानां विजृम्भितः पवनः ॥७०२॥

की परिणतिवश एक-दूसरे के अंग को अंग से दबाकर वर-वधू का जोड़ा सुखपूर्वक निःश्वासों से भरा हुआ सो गया। कुपुरुष की ऋद्धि नष्ट करने के लिए ही मानो समान स्त्रियों के प्रियतमों के वियोग की अपेक्षा न करती हुई रात्रि शीघ्र ही आरम्भ हुई। सुप्रभात में रचित श्वेतपुष्पों के समूह के समान तारागण मानो प्रातःकाल की वायु से ही आकाश रूपी फर्श के छोर तक ले जाये गये। दिन में प्रिय विरह से दुःखी स्त्रियों के हृदय में विरक्ति उत्पन्न करनेवाली आवाज कर रहे मुर्गे रूपी बन्दियों का शब्द लोक में फैल गया। रात्रिरूपी वधू के कठिनाई से सहे जानेवाले भावी वियोग की चिन्ता से आकुल के समान चन्द्रमा मानो संसार को प्रकाशित करने के अपने कार्य से निवृत्त व्यापारवाला हो गया। लौंग, चन्दन, नमेरु और देवदारु की गन्ध से युक्त पवन स्त्रियों के सुरतकालीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खेड्डमहिसारियाओ वियड्ढपिययमकयं भरंतीओ।
नियगेहाइ सहरिसं गयाउ रोमंचियंगीओ ॥७०३॥

उज्झियताराहरणा पुव्वदिसा मच्छरेण वायंबा।
जाया अवरदिसामुहलग्गं दट्ठूण व मियंकं ॥७०४॥

उययधराहरसिहरं सूरो अह वियडतुंगमारूढो।
आरत्तमंडलो तिमिरनिवहसंजायरोसो व्व ॥७०५॥

घडियाइ विसमविहडियविओयदुक्खाइं चक्कवायाइं।
दुहियमह कं व न कुणइ उयओ सुहियं सुमित्तस्स ॥७०६॥

पवियसियकमलनयणा महुयरगुंजंतबद्धसंगीया।
पवणधुयपत्तहत्था जाया सुहदंसणा नलिणी ॥७०७॥

कुमारगुणचंदो वि य उचिए रयणिविरामसमए गीयमंगलुम्मीसेण पहाउयतूरसद्देण विबोहिओ समाणो काऊण तक्खणोचियमावस्सयं उचियवेलाए चेव निग्गओ उज्जाणदंसणवडियाए। ठिओ

क्रीडामभिसारिका विदग्धप्रियतमकृतां स्मरन्त्यः।
निजगेहानि सहर्षं गता रोमाञ्चिताङ्ग्यः ॥७०३॥

उज्झिततारा भरणा पूर्वदिग् मत्सरेणवाताम्रा।
जाताऽपरदिग्मुखलग्नं दृष्टेव मृगाङ्कम् ॥७०४॥

उदयधराधरशिखरं सूरोऽथ विकटतुङ्गमारूढः।
आरक्तमण्डलस्तिमिरनिवहसञ्जातरोष इव ॥७०५॥

घटिता विषमविघटितवियोगदुःखाः चक्रवाकाः।
दुःखितमथ कमिव न करोति उदयः सुखितं सुमित्रस्य ॥७०६॥

प्रविकसितकमलनयना मधुकरगुञ्जद्बद्धसङ्गीता।
पवनधूतपत्रहस्ता जाता शुभदर्शना नलिनी ॥७०७॥

कुमारगुणचन्द्रोऽपि च उचिते रजनीविरामसमये गीतमङ्गलोन्मिश्रेण प्राभातिकतूर्यशब्देन विबोधितः सन् कृत्वा तत्क्षणोचितमावश्यकमुचितवेलायामेव निर्गत उद्यानदर्शनोद्देशेन। स्थितस्तत्र

श्रम को दूर करता हुआ बहने लगा। रोमांचित अंगोंवाली अभिसारिकाएँ विदग्ध प्रियतमों के द्वारा की हुई क्रीड़ा का स्मरण करती हुई हर्षपूर्वक अपने घरों को चली गयीं। पश्चिम दिङ्मुख में लगे हुए चन्द्रमा को देखकर ही मानो द्वेषवश कुछ-कुछ ताम्रवर्ण वाली पूर्वदिशा तारारूप आभूषणों को छोड़ने लगी। अन्धकार समूह के प्रति रोष उत्पन्न हुए के समान कुछ-कुछ लालवर्ण वाले मण्डल से युक्त सूर्य उदयाचल के अत्यन्त ऊँचे शिखर पर आरूढ़ हो गया। विषम वियोग से दुःखी चकवे मिल गये। सुमित्र (सूर्य) का उदय किस दुःखित (प्राणी) को सुखी नहीं करता? विकसित कमलरूप नेत्रोंवाली, गुंजार करते हुए भौरों से संगीत को बद्ध करनेवाली और वायु के द्वारा हिलाये गये पत्तेरूपी हाथोंवाली कमलिनी शुभदर्शन वाली हो गयी ॥६९५-७०७॥

कुमार गुणचन्द्र भी रात्रि के विराम का समय होने पर मंगल गीतों से मिले हुए प्रातःकालीन वाद्यों के शब्द से जागकर; उस समय करने योग्य सभी आवश्यक क्रियाओं को करके उद्यान को देखने के उद्देश्य से निकले।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्थ मणोहारिणा विणोएण कंचि कालं। तओ पविट्ठो नयरिं। कयं उचियकरणिज्जं। एवं च पइदिणं रयणवईए सह पवड्ढमाणाणुरायं सोक्खमणुहवंतस्स अइक्कंतो कोइ कालो।

अन्नया राइणो मेत्तीबलस्स विरुद्धो पच्चंतवासी विग्गहो नाम राया। पेसिओ णेण तस्सुवरिं विक्खेवो। दप्पुद्धुरत्तणेण अकयथाणपयाणाइनीइमग्गो सम्ममवगच्छिऊण अवसरविइण्णविग्गहेण पराइओ विग्गहेणं। जाणावियमिणं राइणो मेत्तीबलस्स। कुविओ राया, सयमेव पयट्टो अमरिसेणं। विन्नत्तो कुमारेण। ताय, न खलु केसरी सियाले कमं विहेइ। सियालप्पाओ विग्गहो। ता अलं तम्मि संरंभेण। आणवेउ मं ताओ, जेण पावेइ सो तायकोवाणलपयंगत्तणं ति। राइणा भणियं--जइ एवं, ता गेण्हिऊण मग्गासन्नसंठिए नरवई लहुं गच्छसु। कुमारेण भणियं – महापसाओ। अलं च तन्निमित्तं खेइएहिं सेसनरवईहिं। खुद्दो खु सो तवस्सी। ता अलं तम्मि संकाए त्ति। भणिऊण अहासन्निहियसेन्नसंगओ 'अलं तायपरिहवलेससवणे अणवणीए एयम्मि विसयसेवणाए वि' मोत्तूण रयणवइं गओ विग्गहोवरिं विग्गहेण कुमारो। पत्तो य माससेत्तेण कालेण तस्स विसयं। विग्गहो

मनोहारिणा विनोदेन कञ्चित्कालम्। ततः प्रविष्टो नगरीम्। कृतमुचितकरणीयम्। एवं च प्रतिदिनं रत्नवत्या सह प्रवर्धमानानुरागं सौख्यमनुभवतोऽतिक्रान्तः कोऽपि कालः।

अन्यदा राज्ञो मैत्रीबलस्य विरुद्धः प्रत्यन्तवासी विग्रहो नाम राजा, प्रेषितस्तेन तस्योपरि विक्षेपः, दर्पोद्धुरत्वेन अकृतस्थानप्रयाणादिनीतिमार्गः सम्यगवगत्यावसरवितीर्णविग्रहेण पराजितो विग्रहेण। ज्ञापितमिदं राज्ञो मैत्रीबलस्य। कुपितो राजा, स्वयमेव प्रवृत्तोऽमर्षेण। विज्ञप्तः कुमारेण —तात! न खलु केसरी शृगाले क्रमं विदधाति। शृगालप्रायो विग्रहः। ततोऽलं तस्मिन् संरम्भेण। आज्ञापयतु मां तातः, येन प्राप्नोति स तातकोपानलपतङ्गत्वमिति। राज्ञा भणितम्—यद्येवं ततो गृहीत्वा मार्गासन्नसंस्थितान् नरपतीन् लघु गच्छ। कुमारेण भणितम्—महाप्रसादः। अलं च तन्निमित्तं खेदितैः शेषनरपतिभिः। क्षुद्रः खलु स तपस्वी। ततोऽलं तस्मिन् शङ्कयेति। भणित्वा यथासन्निहितसैन्यसङ्गतः 'अलं तातपरिभवलेशश्रवणेऽनपनीते एतस्मिन् विषयसेवनयाऽपि' इति मुक्त्वा रत्नवतीं गतो विग्रहोपरि विग्रहेण कुमारः। प्राप्तश्च मासमात्रेण कालेन तस्य विषयम्। विग्रहोऽपि

मनोहर विनोदों के साथ वहाँ कुछ समय तक ठहरे। अनन्तर नगर में प्रविष्ट हुए। योग्य कार्यों को किया। इस प्रकार रत्नवती के साथ प्रतिदिन बढ़ते हुए अनुरागवाले सुख का अनुभव करते हुए (कुमार का) कुछ समय बीत गया।

एक बार सीमा पर रहनेवाला 'विग्रह' नामक राजा मैत्रीबल के विरुद्ध हो गया। उसने उसके ऊपर सेना भेज दी। घमण्ड से भरे हुए होने के कारण स्थानगमन आदि नीतिमार्ग का आचरण किये बिना ही अवसर जानकर सेना भेजकर, विग्रह ने पराजित कर दिया। राजा मैत्रीबल को इसकी सूचना दी गयी। राजा कुपित हुआ। क्रोधवश (वह) स्वयं ही चल पड़ने को तैयार हुआ। कुमार ने कहा—'पिताजी! सिंह सियार के प्रति गमन नहीं करता। राजा विग्रह सियार के समान है। अतः उससे युद्ध करना व्यर्थ है। पिताजी, आप मुझे आज्ञा दीजिए; जिससे वह पिताजी की क्रोधाग्नि में पतंगेपन को प्राप्त हो।' राजा ने कहा—'यदि ऐसा है तो समीपवर्ती मार्ग में स्थित राजाओं को साथ लेकर शीघ्र जाओ।' कुमार ने कहा—'बड़ी कृपा। उसके लिए शेष राजाओं को कष्ट देना व्यर्थ है। वह बेचारा क्षुद्र है, अतः उसके विषय में शंका न करें'—ऐसा कहकर ठहरायी हुई सेना के साथ 'पिताजी के अपमान रूपी क्लेश को दूर किये बिना यह विषय-सेवन व्यर्थ है', ऐसा सोचकर, रत्नवती को छोड़कर कुमार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि य 'कुमारो सयमागओ' त्ति वियाणिऊण समस्सिओ दुग्गं। ठिओ रोहगसंजत्तीए। रोहिओ कुमारेण। बिइयदियहे य उक्कडयाए अमरिसस्स अणब्भत्थयाए नीईणं भिच्चयाए विग्गहस्स सन्निहिययाए सामिणो अलियणियाववएसेण असाहिऊण कुमारस्स समारद्धो समंतहरो (समरो)। पयट्टमाओहणं। विसमयाए दुग्गस्स पीडिज्जमाणं पि कुमारसेन्नं अभग्गमाणपसरं ति अहिययरमाढत्तं जुज्झिउं। जाओ महासंगामो। वियाणिओ कुमारेण। निसामिओ णेणं। नियत्तियं कहकहवि सेन्नं। भणिया य रायउत्ता—अजुत्तमिमं अयत्तसज्झे पओयणे अत्ताणमायासिउं। समस्सिओ ताव एसो दुग्गं। रोहियं चिमं अम्हेहिं। न एत्थ अवसरो पलाइयव्वस्स। इट्ठा य मे कुलउत्तया, न बहुमओ तेसिं नासो। सामो य पढमो नीईणं। अप्पो य एसो विग्गहो भुत्तो य ताएणं ठिओ संबंधिपक्खे। ता न जुत्तमेयम्मि एगपए पोरुसं दंसेउ। आढत्तो य अविणयनासणोवाओ। अओ मम सरीरदोहयाए साविया तुब्भे, जहा पुणो वि एरिसं न कायव्वं ति। तेहिं भणियं—जं देवो आणवेइ। विसालबुद्धिणा उवलद्धो विसओ। विइण्णाइं गामागरमडंबाइं रायपुत्ताणं। निरुद्धाइं गाढगुम्मयाइं,

---

च 'कुमारः स्वयमागतः' इति विज्ञाय समाश्रितो दुर्गम्। स्थितो रोधकसंयात्रया। रुद्धः कुमारेण। द्वितीयदिवसे च उत्कटतयाऽमर्षस्य, अनभ्यस्ततया नीतीनां, भृत्यतया विग्रहस्य, सन्निहिततया स्वामिनो अपितनिजव्यपदेशेन अकथयित्वा कुमारं समारब्धः समरः। प्रवृत्तमायोधनम्। विषमतया दुर्गस्य पीडयमानमपि कुमारसैन्यमभग्नमानप्रसरमित्यधिकतरमारब्धं योद्धुम्। जातो महासंग्रामः। विज्ञातः कुमारेण। निशामितस्तेन। निवर्तितं कथंकथमपि सैन्यम्। भणिताश्च राजपुत्राः। अयुक्तमिदमयत्नसाध्ये प्रयोजने आत्मानमायासयितुम्। समाश्रितस्तावदेष दुर्गम्। रुद्धं चेदमस्माभिः। नात्रावसरः पलायितव्यस्य। इष्टाश्च मे कुलपुत्रकाः, न बहुमतस्तेषां नाशः। साम च प्रथमं नीतीनाम्, अल्पश्चैष विग्रहो भुक्तश्च तातेन स्थितः सम्बन्धिपक्षे। ततो न युक्तमेतस्मिन्नेकपदे पौरुषं दर्शयितुम्। आरब्धश्च अविनयनाशनोपायः। अतो मम शरीरद्रोहतया शापिता यूयम्, यथा पुनरपीदृशं न कर्तव्यमिति। तैर्भणितम्—यद् देव आज्ञापयति। विशालबुद्धिनोपलब्धो विषयः। वितीर्णानि ग्रामाकरमडम्बानि राजपुत्राणाम्। निरुद्धानि गाढगुल्मकानि, निरुद्धश्च पर्यवहारः।

राजा विग्रह के ऊपर गया। एक माह में उसके देश में पहुँच गया। विग्रह ने भी 'कुमार स्वयं आये हुए हैं'—ऐसा जानकर दुर्ग का आश्रय ले लिया। तैयारी करता हुआ ठहरा रहा। कुमार ने रोका। दूसरे दिन क्रोध की उत्कटता, नीतियों की अनभ्यस्तता, विग्रह का सेवकपना, स्वामी की समीपता और अपना व्यवहार अर्पित करने से कुमार से बिना कहे ही युद्ध आरम्भ हो गया। योद्धा प्रवृत्त हो गये। दुर्ग की विषमता से पीड़ित होने पर भी कुमार की सेना विस्तार न तोड़ते हुए अधिक तेज युद्ध करने लगी। भीषण संग्राम हुआ। कुमार ने जाना। उसने रोका। जिस किसी प्रकार सेना को रोका। राजपुत्रों से कहा—'बिना प्रयत्न के साध्य इस प्रयोजन में अपने को कष्ट देना ठीक नहीं है। इसने दुर्ग का आश्रय कर लिया और इसे हमने रोक लिया है। अब भागने का यहाँ मौका नहीं है। मुझे कुलपुत्र इष्ट हैं, उनका नाश ठीक नहीं है। नीतियों में पहली नीति सामनीति है। यह राजा विग्रह छोटा है। पिता जी द्वारा खिलाया जाकर सम्बन्धी पक्ष में स्थित है। अतः एक बार पौरुष दिखाएँ तो भी ठीक नहीं है। अविनय के नाश का उपाय आरम्भ हुआ है अतः मेरे शरीर के द्रोह की आप लोगों को शपथ, आप लोग पुनः ऐसा न करें।' उन्होंने कहा—महाराज जैसी आज्ञा दें। विशालबुद्धि ने देश पा लिया। राजपुत्रों को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निरुद्धो य पज्जोहारो। अइक्कंता कइवि दियहा।

एत्थंतरम्मि कहंचि परिब्भमंतो समागओ तमुद्देसं वाणमंतरो। दिट्ठो य णेण वाह्यालीगओ कुमारो। गहिओ कसाएहिं। चिंतियं च णेण – एसो सो दुरायारो। अहो से धीरगरुयया, न तीरए एस अम्हारिसेहिं वावाइउं। आढत्तं च णेण इमं दुग्गं। ता एयसामिणो सहायत्तणेण अवगरेमि एयस्स त्ति। चिंतिऊण दिट्ठो य णेण पासायतलसंठिओ विग्गहो। बहुमन्निओ विग्गहेणं। भणियं च णेण—किमत्थं पुण भवं इहागओ त्ति। वाणमंतरेण भणियं—तुह सहायनिमित्तं। वेरिओ वि य मे एस दुरायारगुणचंदो, न सक्कुणोमि एयस्स उययं पेच्छिउं। अद्धवावाइओ य छुट्टो महं एस अओज्झाए सनिओगवावडत्तणेण। न दिट्ठो अंतराले, दिट्ठो य संपयं मलयपत्थिएण। ता अलं ताव मम मलयगमणेणं। समाणेमि अंतरे भवओ विग्गहं ति। विग्गहेण भणियं—जइ एवं, ता थेवमियं कारणं। किं बहुणा जंपिएणं। नेहि मं अज्ज रयणीए गुणचंदसमीवं, जेण अज्जेव समाणेमि विग्गहं ति। वाणमंतरेण भणियं—सायत्तमेयं, तओ पयंगवित्तिकालो चेव एसो त्ति। संपहारिऊण सह पहाणपरियणेणं ठिओ गमणसज्जो विग्गहो। अइक्कंतो वासरो, समागया मज्झरयणी। भणियं

अतिक्रान्ताः कत्यपि दिवसाः।

अत्रान्तरे कथंचित् परिभ्रमन् समागतस्तमुद्देशं वानमन्तरः। दृष्टश्च तेन वाह्यालीगतः कुमारः। गृहीतः कषायैः। चिन्तितं च तेन—एष स दुराचारः, अहो तस्य धीरगुरुकता, न शक्यते एषोऽस्मादृशैर्व्यापादयितुम्। आरब्धं चानेनेदं दुर्गम् (ग्रहीतुम्)। तत एतत्स्वामिनः सहायत्वेनापकरोम्येतमिति। चिन्तयित्वा दृष्टश्च तेन प्रासादतलसंस्थितो विग्रहः। बहुमतो विग्रहेण। भणितं च तेन—किमर्थं पुनर्भवान् इहागत इति। वानमन्तरेण भणितम्—तव सहायनिमित्तम्। वैरिकोऽपि च मे एष दुराचारगुणचन्द्रः, न शक्नोम्येतस्योदयं प्रेक्षितुम्। अर्धव्यापादितश्च छुटितो ममैषोऽयोध्यायां स्वनियोगव्यापृतत्वेन। न दृष्टोऽन्तराले, दृष्टश्च साम्प्रतं मलयप्रस्थितेन। ततोऽलं तावन्मम मलयगमनेन। समाप्नोम्यन्तरे भवतो विग्रहमिति। विग्रहेण भणितम्—यद्येवं ततः स्तोकमिदं कारणम्। किं बहुना जल्पितेन। नय मामद्य रजन्यां गुणचन्द्रसमीपम्, येनाद्यैव समाप्नोमि विग्रहमिति। वानमन्तरेण भणितम्—स्वायत्तमेतत्। ततः पतङ्गवृत्तिकाल एव एष इति सम्प्रधार्य सह प्रधानपरिजनेन स्थितो गमनसज्जो विग्रहः। अतिक्रान्तो वासरः, समागता मध्यरजनी। भणितं

ग्राम, आकर और मडम्बों में फैला दिया। सघन झाड़ियों में छिप गये। रसद रोक दी। कुछ दिन बीत गये।

इसी बीच किसी प्रकार घूमते हुए उस स्थान पर वानमन्तर आया। उसने अश्वक्रीडनक भूमि में कुमार को देखा। कषायों ने उसे जकड़ लिया और उसने सोचा—यह वही दुराचारी है। ओह! इसकी धीरता और महानता, यह हम जैसों के द्वारा नहीं मारा जा सकता। इसने इस दुर्ग को लेना आरम्भ किया है। अतः इस दुर्ग के स्वामी की सहायता कर इसका अपकार करता हूँ—ऐसा सोचकर उसने महल के तल पर स्थित विग्रह के दर्शन किये। विग्रह ने उसका सत्कार किया और उससे कहा—'आप यहाँ किसलिए आये हैं?' वानमन्तर ने कहा—'तुम्हारी सहायता के लिए। यह दुराचारी गुणचन्द्र मेरा वैरी है, इसका उदय नहीं देख सकता हूँ। अपने कार्य में लगे होने के कारण अयोध्या में इसे मैंने अधमरा ही छोड़ दिया था। बीच में नहीं दिखाई दिया, इस समय मलय को जाते हुए दिखाई दिया। अतः मेरा मलय को जाना व्यर्थ है। इस बीच आपके युद्ध को समाप्त करता हूँ।' विग्रह ने कहा—'यदि ऐसा है तो यह कारण थोड़ा है। अधिक कहने से क्या, आज रात्रि में मुझे गुणचन्द्र के पास ले चलो, जिससे आज ही युद्ध समाप्त कर दूँ।' वानमन्तर ने कहा—'यह तो अपने अधीन बात है।' अनन्तर यह विग्रह पतंग के आचरण के समय ही प्रधान परिजनों के साथ निश्चयकर जाने के लिए तैयार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाणमंतरेणं –'एस देसयालो' त्ति । अप्पपंचमो उच्चलिओ विग्गहो । विज्जापहावेण नीओ वाणमंतरेण पवेसिओ गुणचंदवासभवणे । दिट्ठो य णेण पसुत्तो कुमारो । भणिओ य धीरगरुयं—भो भो गुणचंद, मए सह विग्गहं काऊण वीसत्थो सुवसि । ता उट्ठेहि संपयं, करेहि हत्थियारं ति । 'साहु साहु, भो विग्गह, साहु, सोहणो ते ववसाओ' त्ति भणमाणो उट्ठिओ कुमारो । गहियमणेण खग्गं । एत्थंतरम्मि इमं वइयरमायण्णिऊण धाविया अंगरक्खा, निवारिया कुमारेण । भणिया य णेण—भो भो साविया मम सरीरदोहयाए; न एत्थ अन्नेण पहरियव्वं । किं न आवज्जिया तुब्भे इमस्स इमिणा ववसाएण । ता तुब्भे चेव एत्थ विग्गहसहासया, विग्गहो उण ममं सह इमेण । एत्थंतरम्मि वाणमंतरेण 'अरे खुद्दपुरिस, कीइसो तुह इमिणा विग्गहो' त्ति भणमाणेण समाहओ खग्गलट्ठीए कुमारो । 'हण हण' त्ति भणमाणो य सपरियणो उवट्ठिओ विग्गहो । छूढाइं ओहरणाइं । सिक्खाइसएण पायं वंचियाइं कुमारेण । जाओ य से भासुरभावो । तओ उक्कडयाए पुण्णस्स पगिट्ठयाए वीरियपरिणईए दुप्पधरिसयाए सामिभावस्स हीणयाए विग्गहादीणं केसरिकिसोरएण विय भिंदिऊण गयपीढं विक्खिविय विग्गहपुरिसे 'उवयारि' त्ति अदाऊण खग्गप्पहारं केसायड्ढणेण पाडिओ

वानमन्तरेण –एष देशकाल इति । आत्मपञ्चमम उच्चलितो विग्रहः । विद्याप्रभावेण नीतो वानमन्तरेण प्रवेशितो गुणचन्द्रवासभवने । दृष्टश्च तेन प्रसुप्तः कमारः । भणितश्च धीरगुरुकम् । भो भो गुणचन्द्र! मया सह विग्रहं कृत्वा विश्वस्तः स्वपिषि । तत उत्तिष्ठ साम्प्रतम, कुरु युद्धम् । 'साधु साधु भो विग्रह ! साधु, शोभनस्ते व्यवसायः' इति भणन्नुत्थितः कुमारः । गृहीतमनेन खड्गम् । अत्रान्तरे इमं व्यतिकरमाकर्ण्य धाविता अङ्गरक्षकाः, निवारिताः कुमारेण । भणिताश्च तेन—भो भोः शापिता मम शरीरद्रोहतया, नात्रान्येन प्रहर्तव्यम् । किं नावर्जिता यूयमस्य नेन व्यवसायेन ? ततो यूयमेवात्र विग्रहसभासदः, विग्रहः पुनर्मम सहानेन । अत्रान्तरे वानमन्तरेण 'अरे क्षुद्रपुरुष ! कीदृशस्तवानेन विग्रहः' इति भणता समाहतः खड्गयष्ट्या कुमारः । 'जहि जहि' इति भणंश्च सपरिजन उपस्थितो विग्रहः । क्षिप्तानि प्रहरणानि, शिक्षातिशयेन प्रायो वञ्चितानि कुमारेण, जातश्च तस्य भासुरभावः । तत उत्कटतया पुण्यस्य प्रकृष्टतया वीर्यपरिणत्या दुष्प्रधर्षतया स्वामिभावस्य हीनतया विग्रहादीनां केसरिकिशोरकेणेव भित्त्वा गजपीठं विक्षिप्य (दूरीकृत्य) विग्रहपुरुषान् 'उपकारी' इत्यदत्त्वा खड्ग-

---

हो गया । दिन बीत गया । मध्यरात्रि आयी । वानमन्तर ने कहा –'यह देश और काल है ।' चार अन्य लोगों के साथ विग्रह चल पड़ा । विद्या के प्रभाव से वानमन्तर ले गया और गुणचन्द्र के वासभवन में प्रवेश करा दिया । उसने कुमार को सोते हुए देखा । धीरता और भारीपन से उसने कहा – 'रे रे गुणचन्द्र ! मेरे साथ विग्रह कर विश्वस्त होकर सो रहे हो ? अतः अब उठो, युद्ध करो ।' 'हे विग्रह ! ठीक है, तुम्हारा निश्चय ठीक है'—ऐसा कहकर कुमार उठा । उसने तलवार ली । तभी इस घटना को सुनकर अंगरक्षक दौड़े आये । कुमार ने (उन्हें) रोका और उनसे कहा—'हे हे ! तुम्हें मेरे शरीर के द्रोह की शपथ है, यहाँ अन्य कोई प्रहार न करे । क्या आप लोग इसके इस निश्चय से मना नहीं कर दिये गये हो ? अतः आप लोग ही अब लड़ाई के समासद हो । लड़ाई इसके साथ मेरी है ।' इसी बीच वानमन्तर ने—'अरे क्षुद्रपुरुष ! तुम्हारी इसके साथ लड़ाई कैसी ?' ऐसा कहते हुए तलवार से कुमार पर प्रहार किया । 'मारो-मारो', ऐसा परिजनों द्वारा कहते हुए विग्रह उपस्थित हुआ । शस्त्र फेंके । शिक्षा के अतिशय से कुमार ने बचाव कर लिया और उसका तेज उत्पन्न हुआ । अनन्तर पुण्य की उत्कटता, शक्ति-परिणति की प्रकृष्टता, स्वामीपने की दुष्प्रधर्षता तथा विग्रहादि की हीनता के कारण सिंह के बच्चे द्वारा हाथी की पीठ का भेदन करने के समान, विग्रह के पुरुषों को दूर कर 'उपकारी है' अतः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विग्गहो । कओ से उवरि पाओ । एत्थंतरम्मि कुमारपरियणेण पाडिया विग्गहपुरिसा; 'जयइ कुमारो' त्ति समुद्धाइओ कलयलो । पणट्ठो वाणमंतरो । चिंतियं च णेण—अहो से पावकम्मस्स अणाउलत्तणं, अहो माहप्पपगरिसो, अहो [1]कयन्नुया, अहो एगसारत्तणं; अहो मे अहन्नया, जमेवमवि एसो न वावाइओ त्ति । ता इमं एत्थ ताव पत्तयालं, जमओज्झाउरिं गंतूण निवेएमि एयस्स विणिवायं, जणेमि एयपरियणस्स सोयं । एवमवि कए समाणे अवगयं चेव एयस्स त्ति । चिंतिऊण पयट्टो अओज्झाभंतरेण ।

इओ य 'उट्ठेहि भो महापुरिस उट्ठेहि, कुणसु हत्थियारं' त्ति भणिऊण मुक्को कुमारेण विग्गहो । न उट्ठिओ एसो । भणियं च णेण – देव, कीइसं देवेण सह हत्थियारकरणं । अजुत्तमेयं पुव्विं पि, विसेसओ संपयं । विणिज्जिओ अहं देवेण । पत्ते वि वावायणे 'न वावाइओ' त्ति । अहिययरं वावाइयो त्ति । ता किं इमिणा असिलिट्ठचेट्ठिएणं । कुमारेण भणियं—उचियमेयं तुह महाणुभावयाए । अहवा किमेत्थ अच्छरीयं, ईइसा चेव महावीरा हवंति । विग्गहेण भणियं—देव, कीइसा मम महाणु-

---

प्रहारं केशाकर्षणेन पातितो विग्रहः । कृतस्तस्योपरि पादः । अत्रान्तरे कुमारपरिजनेन पातिता विग्रहपुरुषाः । 'जयति कुमारः' इति समुद्धावितः कलकलः । प्रनष्टो वानमन्तरः । चिन्तितं च तेन—अहो अस्य पापकर्मणोऽनाकुलत्वम्, अहो माहात्म्यप्रकर्षः, अहो कृतज्ञता, अहो एकसारत्वम्, अहो मेऽधन्यता, यदेवमप्येष न व्यापादित इति । तत इदमत्र प्राप्तकालम्, यदयोध्यापुरीं गत्वा निवेदयाम्येतस्य विनिपातम्, जनयाम्येतत्परिजनस्य शोकम् । एवमपि कृते सति अपकृतमेवैतस्येति चिन्तयित्वा प्रवृत्तोऽयोध्यामन्तरेण ।

इतश्च 'उत्तिष्ठ भो महापुरुष ! उत्तिष्ठ, कुरु युद्धम्' इति भणित्वा मुक्तः कुमारेण विग्रहः । नोत्थित एषः । भणितं च तेन—देव ! कीदृशं देवेन सह युद्धकरणम् । अयुक्तमेतत्पूर्वमपि, विशेषतः साम्प्रतम् । विनिर्जितोऽहं देवेन । प्राप्तेऽपि व्यापादने 'न व्यापादितः' इति अधिकतरं व्यापादित इति । ततः किमनेनाश्लिष्टचेष्टितेन । कुमारेण भणितम्—उचितमेतत् तव महानुभावतायाः । अथवा किमत्राश्चर्यम् । ईदृशा एव महावीरा भवन्ति । विग्रहेण भणितम्—देव ! कीदृशा मम महानुभावता

तलवार का प्रहार न कर, बाल खींचकर विग्रह को गिरा दिया । उस पर पैर रखा । इसी बीच कुमार के परिजनों ने विग्रह के पुरुषों को गिरा दिया । 'कुमार की जय हो' ऐसा कोलाहल उठा । वानमन्तर अन्तर्धान हो गया और उसने सोचा – ओह उस पापी की अनाकुलता, ओह माहात्म्य की चरमसीमा, ओह कृतज्ञता, ओह अद्वितीय शक्ति, मैं अधन्य हूँ जो कि इस प्रकार भी यह नहीं मारा गया । तो अब समय आ गया है कि अयोध्यापुरी जाकर इसके मरण का निवेदन करता हूँ और इसके परिजनों को शोक उत्पन्न करता हूँ– ऐसा करने पर इसका अपकार ही है—यह सोचकर अयोध्या के समीप आया ।

इधर 'हे महापुरुष ! उठो, युद्ध करो'—ऐसा कहकर कुमार ने विग्रह को छोड़ दिया । वह नहीं उठा । उसने (विग्रह ने) कहा –'महाराज ! महाराज के साथ कैसा युद्ध ! यह पहले भी अयुक्त था, विशेष रूप से इस समय । मुझे महाराज ने जीत लिया । मार पाने पर भी मारा नहीं—अतः अत्यधिक मार दिया । फिर इस घनिष्ठ सम्बन्ध की चेष्टा से क्या लाभ !' कुमार ने कहा—'यह तुम्हारी महानुभावता के अनुरूप है । अथवा इसमें क्या आश्चर्य, महावीर ऐसे ही होते हैं ।' विग्रह ने कहा—'महाराज ! मेरी महानुभावता और महावीरता

---

१. कम्मपन्नया—डे. ज्ञा. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावया महावीरया य; किं वा इयाणिं बहुणा जंपिएणं। विन्नवेमि देवं। देउ देवो समाणत्ति नियनरिंदाणं, वावाएंतु मं एए, पेक्खउ य देवो ममावि काउरिसचेट्ठियं ति। कुमारेण भणियं—सोहणो काउरिसो, जो एवमज्झवसइ पसुत्तं च सत्तुं विणा पहारेण बोहेइ। ता किं एइणा असंबद्धपलावेणं। दिन्ना तए मम पसुत्तावावायणेण पाणा, मए वि भवओ एस विसओ त्ति। गच्छउ भवं। विग्गहेण भणियं—जइ एवं, ता अन्नं पि देवं जाएमि। कुमारेण भणियं—साहीणं भवओ; जं मए आयत्तं ति। विग्गहेण भणियं—करेउ देवो पसायं मम ओलग्गाए। कुमारेण भणियं—'मा एवं भण; तायभिच्चो तुमं मम जेट्ठभाउगो। ता जइ भवओ वि बहुमयं, ता तायसयासं चेव गच्छसु त्ति। पडिवन्नं विग्गहेण। काराविय च णेण वद्धावणयं ति। तद्दियहमेव उक्कोट्टियं दुग्गं। पयट्टो सह विग्गहेण-मओज्झाउरिं कुमारो।

एत्थंतरम्मि समागओ तत्थ भयवं समतणमणिमुत्तलेट्ठुकंचणो दयालू सव्वजीवेसु अणुवगियपरहियरओ विसुद्धेहिं चउहिं नाणेहिं 'पडिबोहसमओ गुणचंदस्स' त्ति वियाणिऊण समन्निओ

महावीरता च, किंवेदानीं बहुना जल्पितेन, विज्ञपयामि देवम्। ददातु देवः समाज्ञप्तिं निजनरेन्द्राणाम्, व्यापादयन्तु मामेते, प्रेक्षतां च देवो ममापि कापुरुषचेष्टितमिति। कुमारेण भणितम्—शोभनः कापुरुषः, य एवमध्यवस्यति, प्रसुप्तं च शत्रुं बिना प्रहारेण बोधयति। ततः किमेतेनासंबद्धप्रलापेन। दत्तास्त्वया मम प्रसुप्ताव्यापादनेन प्राणाः, मयाऽपि भवत एष विषय इति। गच्छतु भवान्। विग्रहेण भणितम्—यद्येवं ततोऽन्यदपि देव याचे। कुमारेण भणितम्—स्वाधीनं भवतः, यन्मयाऽऽयत्तमिति। विग्रहेण भणितम्—करोतु देवः प्रसादं मम [2]सेवायाः। कुमारेण भणितम्—मेवं भण, तातभृत्यस्त्वं मम ज्येष्ठभ्रातृकः। ततो यदि भवतोऽपि बहुमतं ततः तातसकाशमेव गच्छेति। प्रतिपन्नं विग्रहेण। कारितं च तेन वर्धापनकमिति। तद्दिवसे एव [3]उद्वेष्टितं दुर्गम्। प्रवृत्तः सह विग्रहेणायोध्यापुरीं कुमारः।

अत्रान्तरे समागतस्तत्र भगवान् समतृणमणिमुक्तालेष्ठुकाञ्चनो दयालुः सर्वजीवेषु अनुपकृतपरहितरतो विशुद्धैश्चतुर्भिर्ज्ञानैः 'प्रतिबोधसमयो गुणचन्द्रस्य' इति विज्ञाय समन्वितो लब्धि-

---

कैसी? अथवा इस समय अधिक कहने से क्या, महाराज से निवेदन करता हूँ। महाराज अपने राजाओं को आज्ञा दें कि ये मुझे मार डालें, महाराज! मुझ कायर पुरुष की चेष्टा भी देखिए!' कुमार ने कहा—'अच्छा कायर पुरुष है जो यह निश्चय करता है और सोये हुए शत्रु पर प्रहार न कर, (पहले उसे) जगाता है! अतः इस असम्बद्ध प्रलाप से क्या, सोते हुए मुझे न मारकर तुमने मेरे प्राण दे दिये, मेरा भी आपके प्रति यह विषय है। आप जाइए।' विग्रह ने कहा—'यदि ऐसा है तो महाराज दूसरी भी याचना करता हूँ।' कुमार ने कहा—'आप स्वाधीन हैं, जो मेरे अधीन है (उसे अवश्य दूंगा)।' विग्रह ने कहा—'महाराज! मेरी सेवा के लिए कृपा करें।' कुमार ने कहा—'ऐसा मत कहो, तुम पिताजी के सेवक हो, मेरे बड़े भाई। अतः यदि आपको इष्ट हो, तो पिताजी के पास चलें।' विग्रह ने स्वीकार किया। उसने उसी दिन महोत्सव कराया। उसी दिन दुर्ग खोल दिया। विग्रह के साथ कुमार अयोध्यापुरी को चल दिया।'

इसी बीच भगवान् विजयधर्म नामक आचार्य आये। वे तृण, मणि, मोती, ढला और स्वर्ण में समदृष्टि रखने वाले थे, समस्त जीवों के प्रति दयालु थे, बिना उपकार किये ही दूसरों के हित में रत रहते थे, चार ज्ञानों

---

१. मा एवं मा एवं—डे. ज्ञा। २. ओलग्गा (दे.) सेवा, भक्तिः। ३. उक्कोट्टियं (दे) उद्वेष्टितम्, रोधरहितमित्यर्थः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लद्धिमंतसाहूहिं पुव्वपरियायमिहिलाहिवो विजयधम्मो नामायरिओ त्ति। ठिओ गुणसंभवाहिहाणे उज्जाणे। दिट्ठो कुमारपरियणेणं। निवेइयं कुमारस्स। देव, महातवस्सी इओ नाइदूरे तवोवणे चिट्ठइ। एयं सोऊण देवो पमाणं ति। महातवस्सि त्ति हरिसिओ कुमारो। गओ तस्स वंदणनिमित्तं सह विग्गहेण पहाणपरियणेण य।

दिट्ठो य णेण तद्दिवसमेव गुणसंभवम्मि उज्जाणे।
धम्मो व मुत्तिमंतो आयरिओ विजयधम्मो त्ति ॥७०८॥
सुमणाणंदियविबुहो बहुसउणनिसेविओ अमयसारो।
चत्तभवखीरसायरनिलयरई तियसविडवो व्व ॥७०९॥

मत्साधुभिः पूर्वपर्यायमिथिलाधिपो विजयधर्मो नामाचार्य इति। स्थितो गुणसम्भवाभिधाने उद्याने। दृष्टः कुमारपरिजनेन। निवेदितं कुमारस्य—देव! महातपस्वी इतो नातिदूरे तपोवने तिष्ठति। एतच्छ्रुत्वा देवः प्रमाणमिति। महातपस्वीति हृष्टः कुमारः। गतस्तस्य वन्दननिमित्तं सह विग्रहेण प्रधानपरिजनेन च।

दृष्टस्तेन तद्दिवसे एव गुणसम्भवे उद्याने।
धर्म इव मूर्तिमान् आचार्यो विजयधर्म इति ॥७०८॥
सुमनसाऽऽनन्दितविबुधो बहुशकुन (सगुण) निषेवितोऽमृतसारः।
त्यक्तभवक्षीरसागरनिलयरतिस्त्रिदशविटप इव ॥७०९॥

[आचार्यपक्षे सुमनसा—प्रशस्तमनसा आनन्दिता विबुधाः पण्डिता येन, बहुसगुणैः—बहुभिर्गुणवद्भिः पुरुषैर्निषेवितः, त्यक्ता भवक्षीरसागरस्य निलये रतिर्येन, अमृतं मोक्षस्तदेव सारो यस्य। कल्पवृक्षपक्षे—सुमनसा पुष्पेण आनन्दिता विबुधा देवा येन बहवः शकुनाः—पक्षिणस्तैर्निषेवितः, अमृतो रसस्तेन सारः, भव इव क्षीरसागरः, विस्तीर्णत्वात्' त्यक्ता भवक्षीरसागरस्य निलये रतिर्येन]

से विशुद्ध थे, 'गुणचन्द्र के प्रतिबोध का समय है'—ऐसा जानकर लब्धियुक्त साधुओं के साथ पहली अवस्था के मिथिला के राजा, विजयधर्म आचार्य आये। कुमार के परिजनों ने देखा। कुमार से निवेदन किया—'महाराज! यहाँ से पास में ही तपोवन में महातपस्वी विराजमान हैं।' यह कहकर महाराज प्रमाण हैं। 'महातपस्वी'—यह सुनकर कुमार हर्षित हुआ। उनकी वन्दना के लिए वह विग्रह और प्रधान परिजनों के साथ गया।

उसने उसी दिन गुणसम्भव उद्यान में शरीरधारी धर्म के समान विजयधर्म आचार्य को देखा। उन्होंने अच्छे मन से विद्वानों (देवताओं) को आनन्दित किया था, मोक्ष ही उनका सार था, बहुत गुणवान् पुरुषों से वे सेवित थे, संसाररूपी क्षीरसागर में निवास करने की आसक्ति को उन्होंने त्याग दिया था। इस प्रकार वे कल्पवृक्ष के समान थे, क्योंकि कल्पवृक्ष भी पुष्पों से युक्त होता है, उससे देवगण आनन्दित होते हैं, बहुत से पक्षिगणों से वह सेवित होता है, रस से वह साररूप रहता है, संसार के समान क्षीरसागर में निवास करने की आसक्ति को उन्होंने छोड़ दिया है।॥७०८-७०९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उयहि व्व धीरगरुओ सूरो व्व पणासियाखिलतमोहो ।
चंदो व्व सोमलेसो जिणिदवयणं व अकलंको ॥७१०॥

भवठिइनिसाए जेण य वियलियतावेण भव्वकमलाणं ।
निण्णासिओ असेसो अउव्वसूरेण तमनिवहो ॥७११॥

दट्ठूण य तं जाओ सुहपरिणामो दढं कुमारस्स ।
परिचितियं च णेणं अहो णु खलु एस कयउण्णो ॥७१२॥

जो सव्वसंगचाई जो परपीडानियत्तवावारो ।
जो परहियकरणरई जो संसाराउ निव्विन्नो ॥७१३॥

ता वंदामि अहमिणं भयवंतं तह य पज्जुवासामि ।
साहूण दंसणं पि हु नियमा दुरियं पणासेइ ॥७१४॥

एवं च चितिऊणं विहिणा सह विग्गहेण तो भयवं ।
अहिवंदिओ य णेणं आयरिओ सपरिवारो त्ति ॥७१५॥

उदधिरिव धीरगुरुकः सूर इव प्रणाशिताखिलतम ओघः ।
चन्द्र इव सौम्यलेश्यो जिनेन्द्रवचनमिवाकलङ्कः ।७१०॥

भवस्थितिनिशायां येन च विगलिततापेन भव्यकमलानाम ।
निर्णाशितोऽशेषोऽपूर्वसूरेण तमोनिवहः ॥७११॥

दृष्ट्वा च तं जातः शुभपरिणामो दृढं कुमारस्य ।
परिचिन्तितं च तेन अहो नु खल्वेष कृतपुण्यः ॥७१२॥

यः सर्वसङ्गत्यागी यः परपीडानिवृत्तव्यापारः ।
यः परहितकरणरतिर्यः संसाराद् निर्विण्णः ॥७१३॥

ततो वन्देऽहमिमं भगवन्तं तथा च पर्युपासे ।
साधूनां दर्शनमपि खलु नियमाद् दुरितं प्रणाशयति ॥७१४॥

एवं च चिन्तयित्वा विधिना सह विग्रहेण ततो भगवान् ।
अभिवन्दितश्च तेन आचार्यः सपरिवार इति ॥७१५॥

जैसे समुद्र धीर और गम्भीर होता है, उसी प्रकार वे धीर और गम्भीर थे। जिस प्रकार सूर्य अन्धकार समूह को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार उन्होंने पापों को नष्ट कर दिया था। चन्द्रमा जिस प्रकार सौम्य प्रवृत्ति वाला होता है, उसी प्रकार वे भी सौम्यवृत्ति वाले थे। जिनेन्द्र भगवान् के वचन जिस प्रकार निष्कलंक होते हैं, उसी प्रकार वे भी निष्कलंक थे। वे ऐसे अपूर्व सूर्य थे, जिसने संसार की स्थितिरूप रात्रि में भव्यजीवरूप कमलों का सन्ताप गलाकर समस्त अज्ञान अन्धकार का नाश कर दिया था। उन्हें देखकर कुमार का अत्यधिक शुभभाव हुआ। उसने सोचा ओह! ये पुण्यवान हैं जिन्होंने समस्त आसक्तियों का त्याग कर दिया है, जो दूसरों को पीड़ा पहुँचाने के कार्य से अलग हैं, जिनकी दूसरों का हित करने में रुचि है तथा जो संसार से उदासीन हैं—ऐसे इन भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ, उपासना करता हूँ। 'साधुओं का दर्शन भी नियम से पापों को नष्ट कर देता है' यह सोचकर विधिपूर्वक विग्रह के साथ उस कुमार ने सपरिवार भगवान् आचार्य की वन्दना की ॥७१०-७१५॥

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

तेण वि य धम्मलाहो तस्स कओ मोक्खसोक्खलाहस्स ।
जो निरुवमसुहकारणमउव्वचिंतामणीकप्पो ॥७१६॥

उवविससु त्ति य भणिओ गुरुणा चरणंतिए तओ तस्स ।
उवविट्ठो उ कुमारो विग्गहपरिवारपरियरिओ ॥७१७॥

एत्थंतरम्मि सहसा गयणाओ दिव्वरूवसंपन्नो ।
तत्थागओ पहट्ठो जुइमं विज्जाहरकुमारो ॥७१८॥

अह वंदिऊण य गुरुं भणियमणेण भयवं महंतं मे ।
कोड्डं कुह वुत्तंते कहिओ जो संपयं तुमए ॥ ७१९॥

कणगउरसामिणो तम्मि चेव नयरे दढप्पहारिस्स ।
मग्गपडिवत्तिमाई इहभवपज्जायपज्जंतो ॥ ७२०॥

ओहेण मए एसो तन्नयरजणाउ(ण) विम्हयं दट्ठुं ।
ते पुच्छिऊण नाओ तओ य अहमागओ इहयं ॥७२१॥

तेनापि च धर्मलाभस्तस्य कृतो मोक्षसौख्यलाभस्य ।
यो निरुपमसुखकारणमपूर्वचिन्तामणिकल्पः ॥७१६॥

उपविशेति च भणितो गुरुणा चरणान्तिके ततस्तस्य ।
उपविष्टस्तु कुमारो विग्रहपरिवारपरिकरितः ॥७१७॥

अत्रान्तरे सहसा गगनाद दिव्यरूपसंपन्नः ।
तत्रागतो प्रहृष्टो द्युतिमान् विद्याधरकुमारः ॥७१८॥

अथ वन्दित्वा गुरुं भणितमनेन भगवान् ! महद् मे ।
कुतूहलं तव वृत्तान्ते कथितो यः साम्प्रतं त्वया ॥७१९॥

कनकपुरस्वामिनस्तस्मिन्नेव नगरे दृढप्रहारिणः ।
मार्गप्रतिपत्त्यादिरिहभवपर्यायपर्यन्तः ॥ ७२०॥

ओघेन मयैष तन्नगरजनाद् (नां) विस्मयं दृष्ट्वा ।
तान् पृष्ट्वा ज्ञातस्ततश्चाहमागत इह ॥७२१॥

आचार्य ने भी उसे धर्मलाभ दिया जो मोक्षसुखरूपी लाभ और अनुपम सुख का कारण अपूर्व चिन्तामणि रत्न के सदृश है। गुरु ने कहा—'बैठो', तो विग्रह के परिवार से घिरा हुआ कुमार (गुरु के) चरणों के पास बैठ गया। इसी बीच आकाश से दिव्यरूप से सम्पन्न हर्षित द्युतिमान् विद्याधर कुमार वहाँ आया। अनन्तर गुरु की वन्दना कर इसने कहा—'भगवन् ! आपके वृत्तान्त में मुझे बड़ा कौतूहल है, जो कि इस समय आपने कहा है। उसी नगर पर दृढ़ प्रहार करनेवाले कनकपुर के स्वामी के मार्गदर्शन से, इस भव की पर्यायपर्यन्त सम्पूर्ण रूप से उस नगर के लोगों के विस्मय को देखकर मैंने उनसे पूछा और उनसे जानकर मैं यहाँ आया हूँ। तो यदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता जइ न अन्तरायं जायइ अन्नस्स कुसलजोयस्स ।
साहेहि तओ भयवं तं मज्झमणुग्गहट्ठाए ॥७२२॥

भणियमह कुमारेणं अम्ह वि भयवं अणुग्गहो एस ।
कीरउ इमस्स वयणं अहवा भयवं पमाणं ति ॥ ७२३॥

तो जंपियं भयवया निसुणह जइ तुब्भ एत्थ कोड्डं ति ।
मग्गपडिवत्तिमाई सुंदर जो मज्झ वुत्तंतो ॥७२४॥

अत्थि इह भरहवासे मिहिला नयरी जणम्मि विक्खाया ।
तीए अहमासि राया नामेणं विजयधम्मो त्ति ॥७२५॥

इट्ठा य अग्गमहिसी देवी नामेण चंदधम्म त्ति ।
सा अन्नया य सहसा इत्थीरयणं ति काऊणं ॥७२६॥

मंतविहाणनिमित्तं हरिया केणावि मंतसिद्धेण ।
अंतेउरमज्झगया मह हिययमयाणमाणेण ॥७२७॥

कहिओ य मज्झ एसो वुत्तंतो कहवि विजयदेवीए ।
सोऊण य मोहाओ गओमि अहयं महामोहं ॥ ७२८ ॥

ततो यदि नान्तराय जायतेऽन्यस्य कुशलयोगस्य ।
कथय ततो भगवन् ! तं ममानुग्रहार्थम् ॥ ७२२॥

भणितमथ कुमारेण अस्माकमपि भगवन् ! अनुग्रह एषः ।
क्रियतामस्य वचनमथवा भगवान् प्रमाणमिति ॥ ७२३॥

ततो जल्पितं भगवता निश्रृणुत यदि युष्माक मत्र कुतूहलमिति ।
मार्गप्रतिपत्यादिः सुन्दर ! यो मम वृत्तान्तः ॥७२४॥

अस्तीह भरतवर्षे मिथिला नगरी जने विख्याता ।
तस्यामहमासं राजा नाम्ना विजयधर्म इति ॥७२५॥

इष्टा चाग्रमहिषी देवी नाम्ना चन्द्रधर्मेति ।
साऽन्यदा च सहसा स्त्रीरत्नमिति कृत्वा ॥७२६॥

मन्त्रविधाननिमित्तं हृता केनापि मन्त्रसिद्धेन ।
अन्तःपुरमध्यगता मम हृदयमजानता ॥७२७॥

कथितश्च ममैष वृत्तान्तः कथमपि विजयदेव्या ।
श्रुत्वा च मोहाद् गतोऽस्मि अहं महामोहम् ॥७२८॥

दूसरे शुभकार्य मे विघ्न न हो तो भगवन्, मुझ पर अनुग्रह करने के लिए कहिए ।' ॥७१६-७२॥२

अनन्तर कुमार ने कहा—'भगवन् ! हमारा भी यही अनुग्रह है, इसके वचन पूर्ण करो अथवा भगवान् प्रमाण हैं अर्थात् जैसा आप चाहें वैसा करें ।' अनन्तर भगवान ने कहा—'तुम लोगों को इस विषय में यदि कौतूहल है तो मार्गदर्शनादि से सुन्दर जो मेरा वृत्तान्त है, उसे सुनो । इस भारतवर्ष में लोगों मे विख्यात 'मिथिला' नगरी है । उसका मैं विजयधर्म नामक राजा था । मुझे चन्द्रधर्मा नामक पटरानी इष्ट थी । एक बार यकायक—'स्त्रीरत्न है'—ऐसा मानकर मेरे हृदय को न जानते हुए किसी मन्त्रसिद्ध करनेवाले ने मन्त्र के विधान के लिए (उसे) अन्तःपुर के मध्य से हर लिया । मुझे यह वृत्तान्त किसी प्रकार विजयदेवी ने कहा । सुनकर मैं मोह से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिवीजिऊण य तओ चंदणरससित्ततालियंटेहिं ।
पडिबोहिओ म्हि दुक्खंसवेविरं वारविलयाहिं ॥ ७२९ ॥

गहिओ य महादुक्खेण तह जहा विक्खिउं पि न चएमि ।
तह दुक्खत्तस्स य मे बोलीणा तिण्णिऽहोरत्ता ॥ ७३० ॥

नवरं चउत्थदियहे समागओ तिव्वतवपरिक्खीणो ।
भूइपसाहियदेहो जडाधरो मंतसिद्धो त्ति । ७३१ ॥

भणियं च णेण नरवइ कज्जेण विणाउलो तुमं कीस ।
मंतविहाणनिमित्तं नणु जाया तुह मए नीया ॥ ७३२ ॥

कप्पो य तत्थ एसो जेण तुमं जाइओ न तं पढमं ।
न य तीए सीलभेओ जायइ देहस्स पीडा वा ॥ ७३३ ॥

ता मा संतप्प दढं छम्मासा आरओ तुमं तीए ।
जुज्जिहसि नियमओ इय भणिऊणमदंसणो जाओ ॥ ७३४ ॥

परिवीज्य च ततश्चन्दनरससिक्ततालवृन्तैः ।
प्रतिबोधितोऽस्मि दुःखांशवेपमानं वारवनिताभिः ॥७२९॥

गृहीतश्च महादुःखेन तथा यथा वीक्षितुमपि न शक्नोमि ।
तथा दुःखार्तस्य मे गतानि त्रीण्यहोरात्राणि ॥७३०॥

नवरं चतुर्थदिवसे समागतस्तीव्रतपःपरिक्षीणः ।
भूतिप्रसाधितदेहो जटाधरो मन्त्रसिद्ध इति ॥ ७३१॥

भणितं च तेन नरपते ! कार्येण विनाऽऽकुलः त्वं कस्मात् ।
मन्त्रविधाननिमित्तं ननु जाया तव मया नीता ॥७३२॥

कल्पश्च तत्र एष येन त्वं याचितो न तां प्रथमम् ।
न च तस्याः शीलभेदो जायते देहस्य पीडा वा ॥ ७३३॥

ततो मा संतप्यस्व दृढं षण्मासादारतः (षण्मासात्पूर्वे) त्वं तया ।
योक्ष्यसे नियमत इति भणित्वाऽदर्शनो जातः ॥ ७३४॥

महामोह (मूर्च्छा) को प्राप्त हो गया। अनन्तर पंखों से हवा कर, चन्दन के रस से सींचकर, दुःखों के अंश से काँपती हुई वारांगनाओं ने मुझे प्रतिबोधित किया। मुझे महादुःख ने उस प्रकार जकड़ लिया कि मैं देख भी नहीं सकता था। उस प्रकार के दुःख से आर्त्त (दुःखी) हुए मेरे तीन दिन-रात बीत गये। चौथे दिन तीव्र तप के कारण दुर्बल शरीर में भस्म लगाये हुए वह जटाधारी मन्त्रसिद्ध करनेवाला आया और उसने कहा—'राजन् ! कार्य के बिना तुम क्यों आकुल हो ? मन्त्र के विधान के लिए मैं आपकी पत्नी ले गया था। यह प्रस्ताव है कि आप उसे पहिले न माँगें। उसका शील-भेद नहीं होगा और न ही शरीर को पीड़ा होगी। अतः अत्यधिक दुःखी मत होओ, मैं छह माह से पहले उससे अवश्य मिला दूँगा' – ऐसा कहकर वह अदृश्य हो गया। ॥७२९-७३४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहमवि य गओ मोहं तहेव आसासिओ परियणेण ।
हा देवि दीहविरहो कत्थ तुमं देहि पडिवयणं ॥७३५॥
मोहवसयाण जे जे आलावा होंति तम्मि कालम्मि ।
परिचत्तरज्जकज्जो ठिओ अहं तत्थ विलवंतो ॥७३६॥
दट्ठूण भवणवावीरयाइ बिलसंतहंसमिहुणाइं ।
परियणपीडाजणयं मोहं बहुसो गओ अहयं ॥७३७॥
किं बहुणा निरयसमं मज्झ तया दुक्खमणुहवंतस्स ।
वोलीणा पलिओवमतुल्ला मासा कहवि पंच ॥७३८॥
कइवयदिणेहि नवरं मुक्को अनिमित्तमेव दुक्खेण ।
परियणहिययाणंदं जाओ य महापमोओ मे ॥७३९॥
जाया य मह चिंता अन्नो विय मज्ज अंतरप्पा मे ।
जाओ पसन्नचित्तो ता किं पुण कारणं एत्थ ॥७४०॥

अहमपि च गतो मोहं तथैवाश्वासितः परिजनेन ।
हा देवि ! दीर्घविरहः कुत्र त्वं देहि प्रतिवचनम् ॥ ७३५॥
मोहवशगानां ये ये आलापा भवन्ति तस्मिन् काले ।
परित्यक्तराज्यकार्यः स्थितोऽहं तत्र विलपन् ॥७३६॥
दृष्ट्वा भवनवापीरतानि विलसद्हंसमिथुनानि ।
परिजनपीडाजनकं मोहं बहुशो गतोऽहम् ॥७३७॥
किं बहुना निरयसमं मम तदा दुःखमनुभवतः ।
गताः पल्योपमतुल्या मासाः कथमपि पञ्च ॥७३८॥
कतिपयदिवसैर्नवरं मुक्तोऽनिमित्तमेव दुःखेन ।
परिजनहृदयानन्दं जातश्च महाप्रमोदो मे ॥७३९॥
जाता च मम चिन्ताऽन्य इव ममान्तरात्मा मे ।
जातः प्रसन्नचित्तस्ततः किं पुनः कारणमत्र ॥७४०॥

मैं भी परिजनों द्वारा आश्वासन दिये जाने पर मोह को प्राप्त हो गया। हाय महारानी ! विरह लम्बा है, तुम कहाँ हो ? उत्तर दो। उस समय मोह के वशीभूत हुए प्राणियों के जो आलाप होते हैं वहाँ पर विलाप करते हुए मैंने राज्यकार्य छोड़ दिया। भवन की बावड़ी में रत हंसों के जोड़ों को देखकर परिजनों को पीड़ा देनेवाली मूर्च्छा को मैं कई बार प्राप्त हुआ। अधिक कहने से क्या, तब नरक के समान दुःख का अनुभव करते हुए, पल्य के समान पाँच मास किसी प्रकार बीत गये। कुछ दिनों में, बिना कारण ही मैं दुःख से मुक्त हो गया। परिजनों के हृदय को आनन्द देनेवाले, मुझे बहुत हर्ष हुआ। मैं सोचने लगा कि मेरी अन्तरात्मा अन्य के समान प्रसन्नचित्त हो गयी है, इसका कारण क्या है ?॥७३५-७४०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एत्थंतरम्मि सहसा सिट्ठं पवियसियलोयणजुएण।
वद्धावएण मज्झं जहागओ देव तित्थयरो ॥७४१॥
सोऊण इमं वयणं [1]हरिसवसपयट्टपयडपुलएणं।
वद्धावयस्स रहसा दाऊण जहोचियं किंपि ॥७४२॥
गंतूण भूमिभायं थेवं पुरओ जिणस्स काऊण।
तत्थेव नमोक्कारं परियरिओ रायवंद्रेहिं ॥७४३॥
दाऊण य आणत्तिं करेह करितुरयजुग्गजाणाइं।
सयराहं सज्जाइं वच्चामो जिणवरं नमिउं ॥७४४॥
भूसेह य अप्पाणं वत्थाहरणेहिं परमरम्मेहिं।
सयमवि य जिणसयासं जाओ अह गमणजोग्गो त्ति ॥७४५॥
भुवणगुरुणो वि ताव य पारद्धं तियसनाहभणिएहिं।
देवेहिं समोसरणं नयरीए उत्तरदिसाए ॥७४६॥

अत्रान्तरे सहसा शिष्टं प्रविकसितलोचनयुगेन।
वर्धापिकेन मम यथाऽऽगतो देव ! तीर्थंकरः ॥७४१॥
श्रुत्वेदं वचनं हर्षवशप्रवृत्तप्रकटपुलकेन।
वर्धापिकस्य रभसा दत्त्वा यथोचितं किमपि ॥ ७४२॥
गत्वा भूमिभागं स्तोकं पुरतो जिनस्य कृत्वा।
तत्रैव नमस्कारं परिकरितो राजवन्द्रैः ॥७४३॥
दत्त्वा चाज्ञप्तिं कुरुत करितुरगयुग्ययानानि।
शीघ्रं सज्जानि, व्रजामो जिनवरं नन्तुम् ॥७४४॥
भूषयतात्मानं वस्त्राभरणैः परमरम्यैः।
स्वयमपि च जिनसकाशं जातोऽथ गमनयोग्य इति ॥७४५॥
भुवनगुरुणोऽपि तावच्च प्रारब्धं त्रिदशनाथभणितैः।
देवैः समवसरणं नगर्या उत्तरदिशि ॥७४६॥

इसी बीच विकसित नेत्रयुगलवाले वर्धापिक (बधाई देनेवाले) ने यकायक कहा—'महाराज, तीर्थंकर देव आये हैं।' यह वचन सुन हर्षवश जिसे रोमांच हो आया है, ऐसा मैंने वर्धापिक को शीघ्र ही यथायोग्य कुछ देकर, सामने थोड़ी दूर जाकर, वहीं भगवान् जिनेन्द्र की दिशा में नमस्कार किया और राजाओं को आज्ञा दी कि हाथी, घोड़े और जोड़ेवाले वाहनों को शीघ्र तैयार करो। जिनवर की वन्दना के लिए जाएँगे। अपने आपको परम रमणीय वस्त्राभरणों से भूषित कर स्वयं भी वह जिनेन्द्र के समीप जाने के लिए तैयार हो गया। संसार के गुरु को इन्द्र के द्वारा कहे हुए देवों ने नगर की उत्तरदिशा में समवसरण की रचना प्रारम्भ कर दी। वायुकुमारों ने स्वयं नन्दनवन

1. -वसुभिन्नपयड—पा. ज्ञा.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाउकुमारेहि सयं चालियनंदणवणेण पवणेण ।
जोयणमेत्ते खेत्ते अवहरिओ रेणुतणनिवहो ।।७४७।।
मेहकुमारेहि तओ सुरहिजलं सीयलं पवुट्ठं ति ।
उउदेवेहि य सहसा दसद्धवण्णाइ कुसुमाइ ।।७४८।।
पायारो रयणमओ निम्मविओ कप्पवासिदेवेहिं ।
बीओ य कंचणमओ जोइसियसुरेहि सयराहं ।।७४९।।
तइओ कलहोयमओ निम्मविओ भवणवासिदेवेहिं ।
वन्तरसुरेहि य कयं एक्केक्के तोरणाईयं ।।७५०।।
मज्झे असोयरुक्खो गंधायड्डियभमंतभमरउलो ।
कुसुमभरनिमियडालो निम्मविओ वंतरसुरेहिं ।।७५१।।
सीहासणं च तस्स य रयणमयमहो य पायपीढं तु ।
विविहमणिरयणखचियं तेहि चिय भत्तिजुत्तेहिं ।।७५२।।

वायुकुमारैः स्वयं चालितनन्दनवनेन पवनेन ।
योजनमात्रे क्षेत्रे अपहृतो रेणुतृणनिवहः ।।७४७।।
मेघकुमारैस्ततः सुरभिजलं शीतलं प्रवृष्टमिति ।
ऋतुदेवैश्च सहसा दशार्धवर्णानि कुसुमानि ।। ७४८।।
प्राकारो रत्नमयो निर्मितः कल्पवासिदेवैः ।
द्वितीयश्च काञ्चनमयो ज्योतिष्कसुरैः शीघ्रम् ।।७४९।।
तृतीयः कलधौतमयो निर्मितो भवनवासिदेवैः ।
व्यन्तरसुरैश्च कृतमेकैकस्मिन् तोरणादिकम् ।।७५०।।
मध्येऽशोकवृक्षो गन्धाकृष्टभ्रमद्भ्रमरकुलः ।
कुसुमभरन्यस्तशाखो निर्मितो व्यन्तरसुरैः ।।७५१।।
सिंहासनं च तस्य च रत्नमयमधश्च पादपीठं तु ।
विविधमणिरत्नखचितं तैरेव भक्तियुक्तैः ।।७५२।।

की हवा चलायी । योजन मात्र पृथ्वी की धूलि और तृण-समूह हरण कर लिया । तदनन्तर मेघकुमार देवों ने सुगन्धित शीतल जल और पाँच रंगों के ऋतु के फूलों को यकायक बरसाया । कल्पवासी देवों ने रत्नमय प्राकार निर्मित किया । ज्योतिषी देवों ने शीघ्र ही दूसरे स्वर्णमय प्राकार की रचना की । भवनवासी देवों ने तीसरे रजतमय प्राकार की रचना की । व्यन्तर देवों ने एक-एक में तोरणादि की रचना की । मध्य में अशोकवृक्ष था, जिसकी गन्ध से आकृष्ट होकर भौरों का समूह मँडरा रहा था । उसमें फूलों के समूह से युक्त शाखाओं की व्यन्तर देवों ने रचना की । उन्हीं भक्त देवों ने भगवान् का रत्नमय सिंहासन और नीचे अनेक प्रकार के मणिरत्नों

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

पडिबुद्धकुंदधवलं मणहरविलसंतमोत्तिओऊलं ।
छत्तत्तयं च गुरुणो तिहुयणनाहत्तणुप्फालं ॥७५३॥
हेममयचित्तदंडे पवणपणच्चंतधयवडसणाहे ।
गयणतलमणुलिहंते निम्मविए सीहचक्कधए ॥७५४॥
हंसउलपण्डुराओ गयणम्मि कयाउ चामराओ य ।
जलहरथणियसराओ मणहरसुरदुंदुहीओ य ॥७५५॥
तरुणरविमंडलनिहं निमियं वरकणयपोंडरीयम्मि ।
पुरओ य धम्मचक्कं निम्मवियं वंतरसुरेहिं ॥७५६॥
भामंडलं च वियडं निम्मवियं दित्तदिणयरच्छायं ।
तेहिं चिय जयगुरुणो रूवं तवतेयचंदं व ॥७५७॥
इय तियसेहिं विरइए तिहुयणनाहस्स अह समोसरणे ।
पुव्वद्दारेण तओ तत्थ पविट्ठो जिणो भयवं ॥७५८॥

प्रतिबुद्धकुन्दधवलं मनोहरविलसन्मौक्तिकावचूलम् ।
छत्रत्रयं च गुरोस्त्रिभुवननाथत्वसूचकम्[1] ॥७५३॥
हेममयचित्रदण्डः पवनप्रनृत्यद्ध्वजपटसनाथः ।
गगनतलमनुलिखन् निर्मितः सिंहचक्रध्वजः ॥७५४॥
हंसकुलपाण्डुराणि गगने कृतानि चामराणि च ।
जलधरस्तनितस्वरा मनोहरसुरदुन्दुभयश्च ॥७५५॥
तरुणरविमण्डलनिभं न्यस्तं वरकनकपुण्डरीके ।
पुरतश्च धर्मचक्रं निर्मितं व्यन्तरसुरैः ॥७५६॥
भामण्डलं च विकटं निर्मितं दीप्तदिनकरच्छायम् ।
तैरेव जगद्गुरुणो रूपं तपःतेजोचन्द्रमिव ॥७५७॥
इति त्रिदशैर्विरचिते त्रिभुवननाथस्याथ समवसरणे ।
पूर्वद्वारेण ततस्तत्र प्रविष्टो जिनो भगवान् ॥७५८॥

से खचित पैर रखने का पीढ़ा (पादपीठ) बनाया। खिले हुए कुन्द के फूल के समान सफेद, मनोहर, शोभायमान मोतियों के गुच्छों से युक्त तीन छत्र भगवान् के तीनों भुवनों के स्वामीपने के सूचक थे। स्वर्ण के अद्भुत दण्ड वाला, वायु के द्वारा नचाये हुए ध्वजपट से युक्त आकाशतल को छूता हुआ सिंह और चक्र से युक्त ध्वज निर्मित किया। हंसों के समूह के समान श्वेतवर्ण चँवर आकाश में लटकाये और मेघ की ध्वनि के समान स्वरवाले मनोहर नगाड़े निर्मित किये। तरुण सूर्यमण्डल के सदृश श्रेष्ठ स्वर्णकमल पर सामने व्यन्तरदेवों ने धर्मचक्र की रचना की। उन्हीं व्यन्तरदेवों ने जगद्गुरु भगवान् की तपस्या के तेजसमूह के समान सूर्य की आभा से देदीप्यमान विकट भामण्डल बनाया। इस प्रकार देवों द्वारा रचित तीनों भुवनों के स्वामी के समवसरण में

१. उप्फाल (दे.) सूचकम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काऊण नमोक्कारं तित्थस्स पयाहिणं च उवविट्ठो।
पुव्वाभिमुहो तहियं पडिपुण्णो सारयससि व्व ।। ७५९।।
सेसेसु वि तिसु पासेसु भयवओ तत्थ तिण्णि पडिमाओ।
देवेहि निम्मियाओ जिणबिंबसमाउ दिव्वाओ ।।७६०।।
इंदा य विमलचामरमणहरपरिभूसिएक्ककरकमला।
उभओ पासेसु ठिया जिणाण वेउव्वियसरीरा ।।७६१।।
सीहासणम्मि विमले दाहिणपुव्वेण नाइदूरम्मि।
तित्थयरस्स निसण्णो मुणिनमिओ गणहरो जेट्ठो ।।७६२।।
पुव्वद्दारेण पविसिय मुणिणो तह कप्पवासिदेवीओ।
अज्जाउ ट्ठंति तहिं नमिउं अग्गेयदिसिभाए ।।७६३।।
दाहिणदारेणं पविसिऊणमह दाहिणावरविभाए।
भवणवणजोइसाणं देवीउ ठियाउ अइनिहुयं ।।७६४।।

कृत्वा नमस्कारं तीर्थस्य प्रदक्षिणां चोपविष्टः।
पूर्वाभिमुखस्तत्र प्रतिपूर्णः शारदशशीव ।।७५९।।
शेषेष्वपि त्रिषु पार्श्वेषु भगवतस्तत्र तिस्रः प्रतिमाः।
देवैर्निर्मिता जिनबिम्बसमा दिव्याः ।।७६०।।
इन्द्रौ च विमलचामरमनोहरपरिभूषितैककरकमलौ।
उभयोः पार्श्वयोः स्थितौ जिनानां विकुर्वितशरीरौ ।।७६१।।
सिंहासने विमले दक्षिणपूर्वेण नातिदूरे।
तीर्थंकरस्य निषण्णो मुनिनतो गणधरो ज्येष्ठः ।।७६२।।
पूर्वद्वारेण प्रविश्य मुनयस्तथा कल्पवासिदेव्यः।
आर्यास्तिष्ठन्ति तत्र नत्वा आग्नेयदिग्भागे ।।७६३।।
दक्षिणद्वारेण प्रविश्याथ दक्षिणापरविभागे।
भवनवनज्योतिष्काणां देव्यः स्थिता अतिनिभृतम् ।।७६४।।

पूर्वद्वार से जिनेन्द्र भगवान् प्रविष्ट हुए। नमस्कार कर और तीर्थ की प्रदक्षिणा कर शरत्कालीन पूर्ण चन्द्रमा के समान पूर्वाभिमुख होकर बैठ गये। भगवान् के शेष तीनों बाजुओं में (तीनों ओर) देवों ने जिनबिम्ब के समान दिव्य तीन प्रतिमाएँ निर्मित कीं। दोनों इन्द्र एक एक हस्तकमल में स्वच्छ चँवरों से मनोहर शोभावाले होकर जिनेन्द्र भगवान् के दोनों ओर शरीर की विक्रिया कर खड़े हो गये। तीर्थंकर के समीप ही दक्षिण-पूर्व दिशा में स्वच्छ सिंहासन पर मुनियों के द्वारा नत ज्येष्ठ गणधर बैठ गये। पूर्व के द्वार से मुनि तथा कल्पवासी देवियाँ प्रविष्ट हुईं। वहाँ पर आग्नेय दिशा में नम्रीभूत आर्याएँ बैठी थीं। दक्षिण द्वार से प्रविष्ट होकर दक्षिण-पश्चिम भाग में भवनवासी और ज्योतिषी देवों की देवियाँ अत्यन्त शान्त बैठी थीं। पश्चिम द्वार से प्रविष्ट होकर पश्चिमोत्तर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवरद्दारेणं पविसिऊणमवरुत्तरेण निसण्णा ।
जोइसिया वंतरिया देवा तह भवणवासी य ॥ ७६५॥

उत्तरदारेणं पविसिऊण पुव्वुत्तरेण उ निसण्णा ।
वेमाणिया सुरवरा नरनारिगणा य संविग्गा ॥ ७६६॥

अहिनउलमयमयाहिवकुक्कुडमज्जारमाइया सव्वे ।
ववगयभया निसण्णा पायारवरंतरे बीए ॥ ७६७॥

तियसेहि वि जाणाइं मणिरयणविहूसियाइ रम्माइं ।
ठवियाइ मणहराइं पायारवरंतरे तइए ॥७६८॥

एवं च निरवसेसं सिट्ठं तत्तो समागएण महं ।
कल्लाणएण नवरं देवी तत्थेव दिट्ठ त्ति ॥ ७६९॥

तत्तो य संपयट्टो जिणवंदणवत्तियाए सयराहं ।
सिंगारियमुत्तुंगं धवलगइंदं समारूढो ॥७७०॥

अपरद्वारेण प्रविश्यापरोत्तरेण निषण्णाः ।
ज्योतिष्का व्यन्तरा देवा तथा भवनवासिनश्च ॥७६५॥

उत्तरद्वारेण प्रविश्य पूर्वोत्तरेण तु निषण्णाः ।
वैमानिकाः सुरवरा नरनारीगणाश्च संविग्नाः ॥७६६॥

अहिनकुल-मृगमृगाधिप-कुर्कुटमार्जारादयः सर्वे ।
व्यपगतभया निषण्णाः प्राकारवरान्तरे द्वितीये ॥७६७॥

त्रिदशैरपि यानानि मणिरत्नविभूषितानि रम्याणि ।
स्थापितानि मनोहराणि प्राकारवरान्तरे तृतीये ॥७६८॥

एवं च निरवशेषं शिष्टं ततः समागतेन मम ।
कल्याणकेन नवरं देवी तत्रैव दृष्टेति ॥७६९॥

ततश्च संप्रवृत्तो जिनवन्दनप्रत्ययं शीघ्रम् ।
शृङ्गारितमुत्तुङ्गं धवलगजेन्द्रं समारूढः ॥ ७७०॥

दिशा में ज्योतिषी, व्यन्तर तथा भवनवासी देव बैठे थे। उत्तर द्वार से प्रविष्ट होकर पूर्वोत्तर दिशा में वैमानिक देव और नरनारीगण (संसार से) विरक्त होकर बैठे थे। सर्प-नेवला, मृग-सिंह, मुर्गा-बिल्ली आदि सब भयरहित होकर दूसरे श्रेष्ठ प्राकार के मध्य बैठे थे। देवों ने भी मणि और रत्नों से विभूषित रमणीय यान तीसरे उत्तम प्राकार के बीच रखे थे। इस प्रकार सब शालीन था।

अनन्तर मेरे आने पर शुभयोग से वहीं देवी दिखाई दी। तब मैं जिनवन्दना के लिए शीघ्र ही श्रृंगार किये हुए ऊँचे सफेद हाथी पर आरूढ़ हुआ। वाद्यों से दिशाओं को पूर्ण करता हुआ, पालकियों से युक्त उत्तम रथों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तूररवफुण्णदिसं दिट्ठो नयरीउ निग्गओ नवरं।
जंपाणजुग्गरहवरगएहिं राईहिं परियरिओ ॥७७१॥
थेवमिह भूमिभायं तुरियं गंतूण करिवराउ अहं।
ओइण्णो तियसकयं दट्ठूण महासमोसरणं ॥७७२॥
हरिसवसपुलइयंगो तत्थ पविट्ठो य परियणसमेओ।
दारेण उत्तरेणं दिट्ठो य जिणो जयक्खाओ ॥७७३॥
दट्ठूण य जिणयंदं हरिसवसुल्लसियबहलरोमंचो।
धरणिनिमिउत्तमंगो इय नाहं थुणिउमाढत्तो ॥७७४॥
जय तिहुयणेक्कमंगल जय नरवर लच्छिवल्लह जिणिंद।
जय तवसिरिसंसेविय जय दुज्जयनिज्जियाणंग ॥७७५॥
जय घोरजियपरोसह जय लडहभुयंगसुंदरीनमिय।
जय सयलमुणियतिहुयण जय सुरकयसुहसमोसरण ॥७७६॥

तूर्यरवापूर्णदिग् दृष्टो नगरीतो निर्गतो नवरम्।
जम्पानयुग्यरथवरगतै राजभिः परिकरितः ॥७७१॥
स्तोकमिह भूमिभागं त्वरितं गत्वा करिवरादहम्।
अवतीर्णस्त्रिदशकृतं दृष्ट्वा महासमवसरणम् ॥७७२॥
हर्षवशपुलकिताङ्गस्तत्र प्रविष्टश्च परिजनसमेतः।
द्वारेणोत्तरेण दृष्टश्च जिनो जगत्ख्यातः ॥७७३॥
दृष्ट्वा च जिनचन्द्रं हर्षवशोल्लसितबहलरोमाञ्चः।
धरणीन्यस्तोत्तमाङ्ग इति नाथं स्तोतुमारब्धः ॥७७४॥
जय त्रिभुवनैकमङ्गल जय नरवर लक्ष्मीवल्लभ जिनेन्द्र।
जय तपःश्रीसंसेवित जय दुर्जयनिर्जितानङ्ग ॥७७५॥
जय घोरजितपरिषह जय लटभ (सुन्दर) भुजङ्गसुन्दरीनत।
जय सकलज्ञातत्रिभुवन जय सुरकृतशुभसमवसरण ॥७७६॥

पर सवार हुए राजाओं से घिरा हुआ नगर से निकला। यह भूमि थोड़ी है अतः देवों द्वारा बनाये हुए विशाल समवसरण को देखकर हाथी से शीघ्र ही नीचे उतरा और हर्षवश पुलकित अंगोंवाला होकर परिजनों के साथ वहाँ उत्तरद्वार से प्रविष्ट हुआ और संसार में प्रसिद्ध जिनेन्द्रदेव के दर्शन किये। जिनेन्द्र को देखकर हर्षवश जिसे अत्यधिक रोमांच हो आया है, ऐसा मैं पृथ्वी पर मस्तक रख स्वामी की इस प्रकार स्तुति करने लगा— 'हे तीनों भुवनों के अद्वितीय मंगल (आपकी) जय हो, हे लक्ष्मीपति नरश्रेष्ठ जिनेन्द्र ! (आपकी) जय हो, हे तपरूप लक्ष्मी से सेवित (आपकी) जय हो, हे दुर्जेय काम को जीतनेवाले (आपकी) जय हो, घोर परीषहों को जीतनेवाले ! (आपकी) जय हो, सुन्दर नागकन्या द्वारा नत (आपकी) जय हो, देवों द्वारा (जिसके लिए) शुभ समवसरण की रचना की गयी है (ऐसे आपकी) जय हो। हे भव्यकमलों के लिए सूर्य (आपकी) जय हो, असुरेन्द्र,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जय भवियकमलदिणयर जय असुरनरामरीसपणिवइय ।
जय तिहुयणचिंतामणि जय जीवपयासियसुहम्म ॥ ७७७॥
जय संसारुत्तारय जय जिण गयरागरोसरयनिवह ।
जय सयलजीववच्छल जय मुणिवइ परमनीसंग ॥७७८॥
जय रागसोगवज्जिय जय जय नीसेसबंधणविमुक्क ।
जय भयवं अपुणब्भव जय निरुवमसोक्खसंपत्त ॥७७९॥
जय गुणरहिय महागुण जय परमाणु जय गुरु अणंत ।
जय जय नाह सयंभुव जय सुहुमनिरंजण मुणीस ॥७८०॥
इय थोऊण सहरिसं जिणयंदपरमभत्तिसंजुत्तो ।
गणहरपमुहे य तओ नमिऊण साहुणो सव्वे ॥७८१॥
तियसाईए य तहिं नमिऊण जहारिहे सए ठाणे ।
उवविट्ठो भुवणगुरुं नमिऊण पुणो सपरिवारो ॥७८२॥

जय भविकमलदिनकर जय असुरनरामरेशप्रणिपतित ।
जय त्रिभुवनचिन्तामणे जय जीवप्रकाशितसुधर्म ॥७७७॥
जय संसारोत्तारक जय जिन गतरागरोषरजोनिवह ।
जय सकलजीववत्सल जय मुनिपते परमनिःसङ्ग ॥७७८॥
जय रागशोकवर्जित जय जय निःशेषबन्धनविमुक्त ।
जय भगवन् अपुनर्भव जय निरुपमसौख्यसम्प्राप्त ॥७७९॥
जय गुणरहित महागुण जय परमाणो जय गुरो अनन्त ।
जय जय नाथ स्वयम्भूः जय सूक्ष्मनिरञ्जन मुनीश ॥७८०॥
इति स्तुत्वा सहर्षं जिनचन्द्रपरमभक्तिसंयुक्तः ।
गणधरप्रमुखांश्च ततो नत्वा साधून् सर्वान् ॥७८१॥
त्रिदशादिकांश्च तत्र नत्वा यथार्हे स्वके स्थाने ।
उपविष्टो भुवनगुरुं नत्वा पुनः सपरिवारः ॥७८२॥

नरेन्द्र और देवेन्द्र द्वारा नमस्कृत (आपकी) जय हो, तीनों लोकों के चिन्तामणिस्वरूप (आपकी) जय हो, जीवों के लिए सुधर्म का प्रकाश करनेवाले (आपकी) जय हो, संसार से पार लगानेवाले (आपकी) जय हो, राग और क्रोधरूपी रजसमूह से मुक्त जिन (आपकी) जय हो, समस्त प्राणियों के प्रति स्नेह करनेवाले (आपकी) जय हो, परम निरासक्त मुनिपति (आपकी) जय हो, राग-शोक से रहित (आपकी) जय हो, हे समस्त बन्धनों से मुक्त (आपकी) जय हो, पुनर्जन्म से रहित (आपकी) जय हो, अनुपम सुख को प्राप्त (आपकी) जय हो, गुण रहित होते हुए भी महागुणवाले (आपकी) जय हो, हे परमाणु (आपकी) जय हो, हे अनन्त (आपकी) जय हो, हे स्वयम्भूनाथ जय हो, जय हो, हे सूक्ष्मनिरंजन मुनीश्वर (आपकी) जय हो'—इस प्रकार हर्षसहित परमभक्ति से युक्त हो जिनचन्द्र को नमस्कार कर, अनन्तर गणधर प्रमुख सभी साधुओं को और देवतादि को नमस्कार कर, सपरिवार पुनः भुवनगुरु को नमस्कार कर वह अपने स्थान पर बैठ गया । ॥७४१-७८२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अह भयवं पि जिणवरो नियठाणठियाण सव्वसत्ताण।
भवजलहिपोयभूयं इय धम्मं कहिउमाढत्तो ॥७८३॥

जीवो अणाइनिहणो पवाहओऽणाइकम्मसंजुत्तो।
पावेण सया दुहिओ सुहिओ उण होइ धम्मेण ॥७८४॥

धम्मो चरित्तधम्मो सुयधम्माओ[1] तओ य नियमेण।
कसच्छेयतावसुद्धो सो च्चिय कणयं व विन्नेओ ॥७८५॥

पाणवहाईयाणं पावट्ठाणाण जो उ पडिसेहो।
झाणज्झयणाईणं जो य विही एस धम्मकसो ॥७८६॥

बज्झाणुट्ठाणेणं जेण न वाहिज्जइ तयं नियमा।
संभवइ य परिसुद्धं सो उण धम्मम्मि छेओ त्ति ॥७८७॥

जीवाइभाववाओ बंधाइपसाहओ इह तावो।
एएहि सुपरिसुद्धो धम्मो धम्मत्तणमुवेइ ॥७८८॥

अथ भगवानपि जिनवरो निजस्थानस्थितानां सर्वसत्त्वानाम्।
भवजलधिपोतभूतमिति धर्मं कथयितुमारब्धः ॥७८३॥

जीवोऽनादिनिधनः प्रवाहतोऽनादिकर्मसंयुक्तः।
पापेन सदा दुःखितः सुखितः पुनर्भवति धर्मेण ॥७८४॥

धर्मश्चारित्रधर्मः श्रुतधर्मात् ततश्च नियमेन।
कषच्छेदतापशुद्धः स एव कनकमिव विज्ञेयः ॥७८५॥

प्राणवधादिकानां पापस्थानानां यस्तु प्रतिषेधः।
ध्यानाध्ययनादीनां यश्च विधिरेष धर्मकषः ॥७८६॥

बाह्यानुष्ठानेन येन न बाध्यते तन्नियमात्।
सम्भवति च परिशुद्धं स पुनर्धर्मे छेद इति ॥७८७॥

जीवादिभाववादो बन्धादिप्रसाधक इह तापः।
एतैः सुपरिशुद्धो धर्मो धर्मत्वमुपैति ॥७८८॥

अनन्तर भगवान् जिनवर ने भी अपने (-अपने) स्थान पर स्थित समस्त प्राणियों को संसाररूपी सागर के लिए जहाज के तुल्य धर्म का कथन प्रारम्भ किया। जीव अनादिनिधन है, प्रवाह से अनादिकालीन कर्मों से संयुक्त है, पाप से सदा दुःखी और धर्म से सुखी होता है। चारित्रधर्म धर्म है, श्रुतरूपी धर्म से नियमपूर्वक उसे कसौटी पर कसे गये तथा अग्नि में शुद्ध स्वर्ण के समान जानना चाहिए। प्राणिवध आदि पापस्थानों का जो निषेध है और ध्यान, अध्ययन आदि की जो विधि है - यही धर्म की कसौटी है। बाह्यानुष्ठान से जो बाधित नहीं होता है और उस नियम से परिशुद्ध हो सकता है वह धर्म का भेद है। जीवादि पदार्थ से युक्त बन्धादि को सजानेवाला इस संसार में दुःखी होता है। इनसे सुपरिशुद्ध धर्म धर्मपने को प्राप्त करता है।

---

१. सुयधम्मो—उ पा. ज्ञा.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एएहि जो न सुद्धो अन्नयरम्मि व न सुट्ठु निव्वडिओ।
सो तारिसओ धम्मो नियमेण फले विसंवयइ ॥ ७८९॥
एसो य उत्तिमो जं पुरिसत्थो एत्थ वंचिओ नियमा।
वंचिज्जइ सयलेसुं कल्लाणेसुं न संदेहो ॥७९०॥
एत्थ य अवंचिओ ण हि वंचिज्जइ तेसु जेण तेणेसो।
सम्मं परिक्खियव्वो [1]बुहेहिमइनिउणदिट्ठीए ॥७९१॥
सुहुमो असेसविसओ सावज्जे जत्थ अत्थि पडिसेहो।
रायाइविउडणसहं झाणाइ य एस कससुद्धो ॥७९२॥
अह मणवइकाएहिं परस्स पोडा दढं न कायव्वा।
झाएयव्वं च सया रागाइविपक्खजालं तु ॥७९३॥
थूलो न सव्वविसओ सावज्जे जत्थ होइ पडिसेहो।
रागाइविउडणसहं न य झाणाइ वि तयासुद्धो ॥७९४॥

एतैर्यो न शुद्धोऽन्यतरस्मिन् वा न सुष्ठु निर्वृत्तः।
स तादृशो धर्मो नियमेन फले विसंवदति ॥॥७८९॥
एष चोत्तमो यत् पुरुषार्थोऽत्र वञ्चितो नियमात्।
वञ्च्यते सकलेषु कल्याणेषु न सन्देहः ॥७९०॥
अत्र चावञ्चितो न हि वञ्च्यते तेषु येन तेनैषः।
सम्यक् परीक्षितव्यो बुधैरतिनिपुणदृष्टया ॥७९१॥
सूक्ष्मोऽशेषविषयः सावद्ये यत्रास्ति प्रतिषेधः।
रागादिविकुटनसहं ध्यानादि चैव कषशुद्धः ॥७९२॥
यथा मनोवचःकायैः परस्य पीडा दृढ न कर्त्तव्या।
ध्यातव्यं च सदा रागादिविपक्षजालं तु ॥९९३॥
स्थूलो न सर्वविषयः सावद्ये यत्र भवति प्रतिषेधः।
रागादिविकुटनसहं न च ध्यानाद्यपि तदशुद्धः ॥७९४॥

इनसे जो शुद्ध नहीं है अथवा जो भलीप्रकार परपदार्थों से निवृत्त नहीं है वैसा धर्म नियम से फल में धोखा देता है। जो उत्तम पुरुषार्थ (मोक्ष) है इससे वंचित हुआ इस संसार में समस्त कल्याणों से वंचित होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। मोक्षपुरुषार्थ से वंचित न हुआ सब कल्याणों से वंचित नहीं होता। अतः विद्वानों को अतिनिपुण दृष्टि से भलीभाँति परीक्षा करनी चाहिए। सम्पूर्ण विषय सूक्ष्म है। सावद्य (पापयुक्त) पदार्थों का जो निषेध है वह रागादि को नष्ट करने में समर्थ है। यह ध्यानादि की कसौटी पर शुद्ध होता है। मन, वचन और काय मे दृढ़तापूर्वक दूसरे को पीड़ा नहीं पहुँचानी चाहिए और रागादि से युक्त विपक्षियों का सदा ध्यान रहना चाहिए। जहाँ पर सावद्य का निषेध होता है वह सब विषय स्थूल नहीं है, वह रागादि को नष्ट

---

१. बुद्धीए—हे. ज्ञा.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह पंचहि बहुएहि वि एगा हिंसा मुसं विसंवाए।
इच्चाइ झाणम्मि य झाएयव्वं अगाराई ।।७६५।।

सइ अप्पमत्तयाए संजमजोएसु विविहभेएसु।
जा धम्मियस्स वित्ती एयं बज्झं अणुट्ठाणं ।।७६६।।

एएण न वाहिज्जइ संभवइ य तं दुगं पि नियमेण।
एएण जो विसुद्धो सो खलु छेएण सुद्धो त्ति।। ७६७।।

जह पंचसु समिईसुं तीसु य गुत्तीसु अप्पमत्तेणं।
सव्वं चिय कायव्वं जइणा सइ काइगाई वि ।।७६८।।

जे खलु पमायजणया वसहाई ते वि वज्जणीया उ।
महुयरवित्तीए तहा पालेयव्वो य अप्पाणो ।।७६९।।

जत्थ उ पमत्तयाए संजमजोएसु विविहभेएसु।
नो धम्मियस्स वित्ती अणणुट्ठाणं तयं होइ ।।८००।।

यथा पञ्चभिर्बहुभिरपि एका हिंसा मृषा विसंवादः ।
इत्यादि ध्याने च ध्यातव्यमगारादि ।।७९५।।

सदाऽप्रमत्ततया संयमयोगेषु विविधभेदेषु।
या धार्मिकस्य वृत्तिरेतद् बाह्यमनुष्ठानम् ।।७९६।।

एतेन न बाध्यते सम्भवति च तद् द्विकमपि नियमेन।
एतेन यो विशुद्धः स खलु छेदेन शुद्ध इति ।।७९७।।

यथा पञ्चसु समितिषु तिसृषु च गुप्तिषु अप्रमत्तेन।
सर्वमेव कर्तव्यं यतिना सदा कायिकाद्यपि ।।७९८।।

ये खलु प्रमादजनका आवसथादयस्तेऽपि वर्जनीयास्तु।
मधुकरवृत्त्या तथा पालयितव्यश्चात्मा ।।७९९।।

यत्र तु प्रमत्ततया संयमयोगेषु विविधभेदेषु।
नो धार्मिकस्य वृत्तिरननुष्ठानं तद् भवति ।।८००।।

करने में समर्थ है और ध्यानादि से भी वह अशुद्ध नहीं होता है। पाँच अथवा अनेक पापों में से एक हिंसा (अथवा) झूठ धोखा देता है इत्यादि, गृहस्थ को यह सदा ध्यान में रखना चाहिए। सतत अप्रमादी होकर संयम और योग के विविध भेदों के प्रति जो धार्मिक का आचरण है, यह बाह्य अनुष्ठान है। बाह्यानुष्ठान से संयम और योग का नियम से कोई विरोध नहीं है। इससे जो विशुद्ध है वह देह से शुद्ध है। यति को कायिक दृष्टि से सदा पाँच समितियों और तीन गुप्तियों में अप्रमादी होकर सभी का पालन करना चाहिए और जो प्रमाद के जनक उपाश्रय आदि हैं, उन्हें भी छोड़ना चाहिए। भ्रमरवृत्ति से अपना पालन करना चाहिए। संयम और योग के विविध भेदों में प्रमाद के कारण जहाँ धार्मिक का आचरण नहीं है वह अनुष्ठान नहीं होता है। इससे (अनुष्ठान से) जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एएणं बाहिज्जइ संभवइ य तं दुगं न नियमेणं ।
एएण जो समेओ सो उण छेएण नो सुद्धो ।। ८०१।।

जह देवाणं संगीयगाइकज्जम्मि उज्जमो जइणो ।
कंदप्पाईकरणं असब्भवयणाभिहाणं च ।८०२।।

तह अन्नधम्मियाणं उच्छेओ भोयणं गिहे गमणं ।
असिधारगाइ एयं पावं बज्झं अणुट्ठाणं ।।८०३।।

जीवाइभाववाओ जो दिट्ठेट्ठा[इ] नो खलु विरुद्धो ।
बंधाइसाहगो तह एत्थ इमो होइ तावो त्ति ।।८०४।।

एएण जो विसुद्धो सो खलु तावेण होइ सुद्धो त्ति ।
एएणं चासुद्धो असुद्धओ होइ नायव्वो ।।८०५।।

संतासंते जीवे निच्चाणिच्चे य णेगधम्मे य ।
जह सुहबंधाइया जुज्जंति न अन्नहा नियमा ।।८०६।।

एतेन बाध्यते सम्भवति च तद् द्विकं न नियमेन ।
एतेन यः समेतः स पुनश्छेदेन नो शुद्धः ।।८०१।।

यथा देवानां संगीतकादिकार्ये उद्यमो यतेः ।
कन्दर्पादिकरणमसभ्यवचनाभिधानं च ।। ८०२।।

तथाऽन्यधार्मिकाणामुच्छेदो (मुद्वेगो) भोजनं गृहे गमनम् ।
असिधारकाद्येतत् पापं बाह्यमनुष्ठानम् ।।८०३।।

जीवादिभाववादो यो दृष्टेष्टाभ्यां नो खलु विरुद्धः ।
बन्धादिसाधकस्तथा अत्रायं भवति ताप इति ।।८०४।।

एतेन यो विशुद्धः स खलु तापेन भवति शुद्ध इति ।
एतेन चाशुद्धोऽशुद्धको भवति ज्ञातव्यः । ८०५।।

सदसति जीवे नित्यानित्ये चानेकधर्मे च ।
यथा सुखबन्धादिका युज्यन्ते नान्यथा नियमात् ।। ८०६।।

बाधित हो सकता है वह उन दो—संयम और योग—का नियम से पालन नहीं करता है। इससे जो युक्त है अर्थात् जो संयम और योग से रहित है वह छेद से शुद्ध नहीं हो पाता है। जैसे देवादि की संगीतकार्य में रुचि होती है उसी प्रकार यति का कामी होना, असत्य वचन बोलना, भोजनगृह में जाने के लिए अन्य धार्मिकों को उद्विग्न करना, तलवार धारण करना—ये पापकारक बाह्य अनुष्ठान हैं। जो जीवादि तत्त्वों की श्रद्धा रखने वाला है वह निश्चित रूप से प्रत्यक्ष और आगम का विरोधी नहीं है। बन्धादि के साधक पदार्थ वगैरह रखने से उसे संताप होता है। इससे जो विशुद्ध है वह सन्ताप से शुद्ध (मुक्त) हो जाता है। इससे जो अशुद्ध है, वह अशुद्ध है—ऐसा जानना चाहिए। सत्-असत्, नित्य-अनित्य और अनेक धर्मवाले प्राणी में सुख बन्धादि का योग होता है, अन्य किसी नियम से अर्थात् एकान्त नित्य अथवा एकान्त अनित्य आदि से सुख बन्धादि का योग नहीं होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संतस्स सरूवेणं परुवेणं तहा असंतस्स।
हंदि विसिट्ठत्तणओ होंति विसिट्ठा सुहाईया ॥८०७॥

इहरा सत्तामेत्ताइभावओ कह विसिट्ठया तेसिं।
तदभावम्मि तदत्थो हंदि पयत्तो महामोहो ॥८०८॥

निच्चो वेगसहावो सहावभूयम्मि कह नु सो दुक्खे।
तस्सुच्छेयनिमित्तं असंभवाओ पयट्टेज्जा ॥८०९॥

एगंताणिच्चो वि य संभवसमणंतरं अभावाओ।
परिणामिहेउविरहा असंभवाओ य तस्स त्ति ॥८१०॥

न विसिट्ठकज्जभावो अणईयविसिट्ठकारणत्तम्मि।
एगंतभेयवक्खे नियमा तह भेयपक्खे य ॥८११॥

पिंडो पडो व्व न घडो तप्फलमणईयपिंडभावाओ।
तदईयत्ते तस्स उ तह भावादन्नयाइत्तं ॥८१२॥

सतः स्वरूपेण पररूपेण तथाऽसतः।
हन्दि (सत्यं) विशिष्टत्वाद् भवन्ति विशिष्टानि सुखादीनि ॥८०७॥

इतरथा सत्तामात्रादिभावतः कथं विशिष्टता तेषाम्।
तदभावे तदर्थो हन्दि (सत्यं) प्रयत्नो महामोहः ॥८०८॥

नित्यो वैकस्वभावः स्वभावभूते कथं नु स दुःखे।
तस्योच्छेदनिमित्तमसम्भवात् प्रवर्तेत ॥८०९॥

एकान्तानित्योऽपि च सम्भवसमनन्तरमभावाद्।
परिणामिहेतुविरहादसम्भवाच्च तस्येति ॥८१०॥

न विशिष्टकार्यभावोऽनतीतविशिष्टकारणत्वे।
एकान्तभेदपक्षे च नियमात्तथाऽभेदपक्षे च ॥८११॥

पिण्डः पट इव न घटस्तत्फलमनतीतपिण्डभावात्।
तदतीतत्वे तस्य तु तथा भावादन्यतादित्वम् ॥८१२॥

है। वस्तु स्वरूप से सत् है, पररूप से असत् है। सत्य की विशिष्टता से सुखादि विशिष्ट होते हैं। दूसरे प्रकार से पदार्थ को सत्ता मात्र माननेवालों में विशिष्टता कैसे हो सकती है? अनेक धर्म न मानकर उस पदार्थ के सत्य को जानना महामोह है। नित्य और एक स्वभाववाली आत्मा मानने पर दुःख होने पर उस(दुःख) के नाश का प्रयत्न करना असम्भव है। वस्तु को एकान्त रूप से अनित्य मानोगे तो उत्पत्ति के बाद ही उसका अभाव हो जायेगा। एकान्तभेद-पक्ष अथवा एकान्त-अभेद-पक्ष में परिणामी कारण के बिना वह वस्तु असम्भव हो जायेगी। विशिष्ट कारण विद्यमान न होने पर विशिष्ट कार्य नहीं होता है। पिण्ड पट के समान घट नहीं है; क्योंकि पिण्ड पदार्थ वर्तमान है। पिण्ड पर्याय के अतीत हो जाने पर वह पर्याय अन्य हो जाती है। इसी प्रकार अपनी

---

१. सुहदुक्खे—पा. ज्ञा.।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

एवंविहो उ अप्पा मिच्छत्तादीहि बंधए कम्मं।
सम्मत्ताईएहि य मुच्चइ परिणामभावाओ ॥८१३॥
सकडुवभोगे चेवं कहचिदेगाहिगरणभावाओ।
इहरा कत्ता भोत्ता उभयं वा पावइ सया वि ॥८१४॥
वेदेइ जुवाणकयं वुड्ढो चोराइफलमिह कोइ।
न य सो तओ न अन्नो पच्चक्खाइप्पसिद्धीओ ॥८१५॥
न य नाणन्नो सोऽहं किं पत्तो पावपरिणइवसेण।
अणुहवसंधाणाओ लोगागमसिद्धिओ चेव ॥८१६॥
इय मणुयाइभवकयं वेयइ देवाइभवगओ अप्पा।
तस्सेव तहा भावा सव्वमिणं होइ उववन्नं ॥८१७॥
एगंतेण उ निच्चोऽणिच्चो वा कह नु वेयए सकडं।
एगसहावत्तणओ तदणंतरनासओ चेव ॥८१८॥

एवंविधस्त्वात्मा मिथ्यात्वादिभिर्बध्नाति कर्म।
सम्यक्त्वादिभिश्च मुच्यते परिणामभावात् ॥८१३॥
सकृदुपभोगे एवं कथञ्चिदेकाधिकरणभावात्।
इतरथा कर्ता भोक्ता उभयं वा प्राप्नोति सदाऽपि ॥ ८१४॥
वेदयते युवकृतं वृद्धश्चौरादिफलमिह कोऽपि।
न च स ततो नान्यः प्रत्यक्षादिप्रसिद्धितः ॥८१५॥
न च नानन्यः सोऽहं किं प्राप्तः पापपरिणतिवशेन।
अनुभवसन्धानाद् लोकागमसिद्धित एवम् ॥८१६॥
इति मनुजादिभवकृतं वेदयते देवादिभवगत आत्मा।
तस्यैव तथा भावात् सर्वमिदं भवत्युपपन्नम् ॥८१७॥
एकान्तेन तु नित्योऽनित्यो वा कथं नु वेदयते स्वकृतम्।
एकस्वभावत्वात् तदनन्तरनाशत एव ॥८१८॥

आत्मा मिथ्यात्वादि से कर्म बाँधती है और सम्यक्त्वादि परिणामों के सद्भाव से (कर्मों से) मुक्त हो जाती है। एक बार उपभोग करने पर कथंचित् अधिकरण एक होने से दूसरे प्रकार से सदा कर्तापन, भोक्तापन अथवा दोनों पाता है। इस संसार में कोई व्यक्ति युवावस्था में की हुई चोरी आदि के फल को वृद्धावस्था में भोगता है। ऐसा भी नहीं है कि वह पहले से भिन्न न हो; क्योंकि प्रत्यक्षादि के भेद से सिद्ध है (कि पहले वह जवान था, अब बुड्ढा है)। ऐसी बात भी नहीं है कि वह वही न हो, क्योंकि अनुभव से यह पाया जाता है कि वह व्यक्ति सोचता है कि मैंने पाप के फलस्वरूप क्या प्राप्त किया है। लोक और आगम से भी यह सिद्ध होता है। इस प्रकार आत्मा मनुष्यादि भवों में किये हुए कर्मों को देवादि भवों में भोगती है। उसके उसी (उपर्युक्त) स्वभाव के कारण यह ठीक होता है अर्थात् इसकी सिद्धि ठीक प्रकार से होती है। एकान्त नित्य अथवा अनित्य मानो तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवसरीराणं पि हु भेयाभेओ तहोवलंभाओ।
मुत्तामुत्तत्तणओ छिक्कम्मि पवेयणाओ य ॥८१९॥
उभयकडोभयभोगा तदभावाओ य होइ नायव्वो।
बंधाइविसयभावा तेसिं तह संभवाओ य ॥८२०॥
एत्थ सरीरेण कडं पाणवहासेवणाए जं कम्मं।
तं खलु चित्तविवागं वेएइ भवंतरे जीवो ॥८२१॥
न उ तं चेव सरीरं नरगाइसु तस्स तह अभावाओ।
भिन्नकडवेयणम्मि य अइप्पसंगो बला होइ ॥८२२॥
एवं जीवेण कयं कूरमणपयट्टेण जं कम्मं।
तं पइ रोद्दविवागं वेएइ भवंतरसरीरं ॥८२३॥
न उ केवलओ जीवो तेण विमुक्कस्स वेयणाभावे।
न य सो चेव तयं खलु लोगाइविरोहभावाओ ॥८२४॥

जीवशरीरयोरपि खलु भेदाभेदस्तथैवोपलम्भात्।
मुक्तामुक्तत्वात् स्पृष्टे प्रवेदनातश्च ॥८१९॥
उभयकृतोभयभोगात् तदभावाच्च भवति ज्ञातव्यः।
बन्धादिविषयभावात् तेषां तथा सम्भवाच्च ॥८२०॥
अत्र शरीरेण कृतं प्राणवधासेवनया यत्कर्म।
तत् खलु चित्रविपाकं वेदयते भवान्तरे जीवः ॥८२१॥
न तु तदेव शरीरं नरकादिषु तस्य तथाऽभावात्।
भिन्नकृतवेदने चातिप्रसंगो बलाद् भवति ॥८२२॥
एवं जीवेन कृतं क्रूरमनःप्रवृत्तेन यत्कर्म।
तत्प्रति रौद्रविपाकं वेदयते भवान्तरशरीरम् ॥८२३॥
न तु केवलो जीवस्तेन विमुक्तस्य वेदनाभावे।
न च स एव तत्खलु लोकादिविरोधभावात् ॥८२४॥

अपने किये हुए कर्मों को कैसे भोगेगा ? क्योंकि वह एक स्वभाव वाली है। कर्मों के फल को भोगते समय उसके एक स्वभाव का नाश हो जायेगा। जीव और शरीर का भेदाभेद भी मुक्त और अमुक्त होने तथा स्पर्श होने और अनुभव होने से प्राप्त होता है। दोनों के द्वारा किये हुए पारस्परिक भोग, उनका अभाव, बन्धादि विषयों का सद्भाव और उनकी उत्पत्ति से प्राप्त हुआ जानना चाहिए। इस शरीर के द्वारा किया गया प्राणि-बधादि सेवन रूप जो कर्म है उसका विचित्र फल दूसरे भव में जीव भोगता है। वही शरीर नरकादि में नहीं है; क्योंकि वैसे शरीर का वहाँ अभाव है। किये हुए कर्म से भिन्न का फल भोगना मानने पर बलात् अतिप्रसंग दोष होता है। इस प्रकार जीव क्रूर मन से प्रवृत्त होकर जो कर्म करता है, उसका भयंकर परिणाम दूसरे भव के शरीर में भोगता है। वेदनीय कर्म से रहित हुआ केवली उसके फल को नहीं भोगता है। लोकादि के विरोधी भाव होने

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

एवं चिय देहवहे उवयारे वा वि पुण्णपावाइं।
इहरा घडाइभंगाइनायओ नेव जुज्जंति ॥८२५॥
तयभिन्नम्मि य नियमा तन्नासे तस्स पावइ नासो।
इहपरलोगाभावा बंधादीणं अभावाओ ॥८२६॥
देहेणं देहम्मि य उवघायाणुग्गहाइ बंधादी।
न पुण अमुत्तो मुत्तस्स अप्पणो कुणइ किंचिदवि ॥८२७॥
अकरेंतो य न बज्झइ अइप्पसंगा सदेव भावाओ।
तम्हा भेयाभेए जीवसरीराण बंधाई ॥८२८॥
मोक्खो वि य बद्धस्सा तयभावे स कह कीस वा न सया।
किं वा हेऊहि तहा कहं व सो होइ पुरिसत्थो ॥८२९॥
तम्हा बद्धस्स तओ बंधो वि अणाइमं पवाहेण।
इहरा तदभावम्मी पुव्वं चिय मोक्खसंसिद्धी ॥८३०॥

एवमेव देहवधे उपकारे वाऽपि पुण्यपापे।
इतरथा घटादिभङ्गादिज्ञातत नैव युज्येते ॥८२५॥
तदभिन्ने च नियमात् तन्नाशे तस्य प्राप्नोति नाशः।
इहपरलोकाभावात् बन्धादीनामभावात् ॥८२६॥
देहेन देहे चोपघातानुग्रहादिबन्धादयः।
न पुनरमूर्त्तो मूर्तस्यात्मनः करोति किञ्चिदपि ॥८२७॥
अकुर्वंश्च न बध्यतेऽतिप्रसङ्गात् सदैव भावात्।
तस्माद् भेदाभेदे जीवशरीरयोर्बन्धादिः ॥८२८॥
मोक्षोऽपि च बद्धस्य तदभावे स कथं कस्माद्वा न सदा।
किं वा हेतुभिस्तथा कथं वा स भवति पुरुषार्थः ॥८२९॥
तस्माद् बद्धस्य ततो बन्धोप्यनादिमान् प्रवाहेण।
इतरथा तदभावे पूर्वमेव मोक्षसंसिद्धिः ॥८३०॥

के कारण उसे वह पाप नहीं लगता। इस प्रकार देह का वध होने अथवा उसका उपकार होने पर भी उसे पुण्य और पाप की प्राप्ति युक्त नहीं है। जैसे घटादि के नाश से पुण्य-पाप की प्राप्ति नहीं होती। शरीर और आत्मा के एक होने अथवा मिली-जुली स्थिति होने पर शरीर का नाश होने पर कथंचित् आत्मा का नाश होता है। यदि बन्धादि को नहीं मानोगे तो इहलोक और परलोक का अभाव हो जायेगा। तथा देह से देह का उपघात, अनुग्रह एवं बन्धादि होते हैं। अमूर्त आत्मा का मूर्त कुछ भी (उपकार वगैरह) नहीं करता है। न करता हुआ विद्यमान होने से सदैव अतिप्रसंग दोष से युक्त नहीं होता है। अतः भेदाभेद मानने पर जीव और शरीर के बन्धादि हैं। मोक्ष भी बद्ध का होता है, सदैव से मोक्ष नहीं है। बन्धन न हो तो मोक्ष कैसे और किससे होगा? अथवा किस हेतु से (अथवा) कैसे मोक्ष पुरुषार्थ होगा? अतः बद्ध का बन्ध भी प्रवाह से अनादि है। यदि ऐसा नहीं मानोगे, भिन्न प्रकार से मानोगे तो पहले ही मोक्ष की सिद्धि हो जाना चाहिए॥ ७८३-८३०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणुभूयवत्तमाणो बंधो कयगत्तणाइमं कह नु ।
जह उ अईओ कालो तहाविहो तह पवाहेण ॥८३१॥
दीसइ कम्मोवचओ संभवई तेण तस्स विगमो वि ।
कणगमलस्स य तेण उ मुक्को मुक्को त्ति नायव्वो ॥८३२॥
एमाइभाववाओ जत्थ तओ होइ तावसुद्धो त्ति ।
एस उवाएओ खलु बुद्धिमया धीरपुरिसेण ॥८३३॥
एयस्स उवायाणं काउं आसेविऊण भावेण ।
पत्ता अणंतजीवा सासयसोक्खं लहुं मोक्खं ॥८३४॥
ता पडिवज्जह सम्मं धम्ममिणं भावओ मए भणियं ।
अच्चंतदुल्लहं खलु करेह सफलं मणुयजम्मं । ८३५॥
इय भणिऊण जाए तुण्हिक्के तक्खणं जिणवरम्मि ।
परिसा कयंजलिउडा धणियं परिओसमावन्ना ॥८३६॥

अनुभूतवर्तमानो बन्धः कृतकत्वानादिमान् कथं नु ।
यथा त्वतीतः कालस्तथाविधस्तथा प्रवाहेण ॥८३१॥
दृश्यते कर्मोपचयः सम्भवति तेन तस्य विगमोऽपि ।
कनकमलस्य च तेन तु मुक्तो मुक्त इति ज्ञातव्यः ॥ ८३२॥
एवमादिभाववादो यत्र ततो भवति तापशुद्ध इति ।
एष उपादेयः खलु बुद्धिमता धीरपुरुषेण ॥८३३॥
एतस्योपादानं कर्तुमासेव्य भावेन ।
प्राप्ता अनन्ता जीवा शाश्वतसौख्यं लघु मोक्षम् ॥८३४॥
ततः प्रतिपद्यध्वं सम्यग् धर्ममिमं भावतो मया भणितम ।
अत्यन्तदुर्लभं खलु कुरुत सफलं मनुजजन्म ॥८३५॥
इति भणित्वा जाते तूष्णिके तत्क्षणं जिनवरे ।
परिषत् कृताञ्जलिपुटा गाढं परितोषमापन्ना ॥ ८३६॥

शंका—अनुभव किया हुआ और वर्तमान बन्ध कृतक होने से अनादि कैसे है ? समाधान—जैसे अतीत और वर्तमान समय का प्रवाह चला आ रहा है उसी प्रकार से कर्मों का बन्ध अनादि है। देखा जाता है कि कर्मों की वृद्धि सम्भव है अतः उसका नाश भी सम्भव है। जैसे स्वर्ण मल से मुक्त होकर ही मुक्त कहा जाता है उसी प्रकार जीव भी कर्म-बन्धन से मुक्त होकर मुक्त कहलाता है। जैसे सोना अग्नि में शुद्ध होता है उसी प्रकार जीव भी ध्यानाग्नि आदि के द्वारा शुद्ध हो जाता है—ऐसा बुद्धिमान् और धीर पुरुष को निश्चित रूप से ग्रहण करना चाहिए। सेवन करने के भाव से इसे ग्रहण कर अनन्त जीव शाश्वत सुखवाले मोक्ष को शीघ्र प्राप्त हुए हैं। अतः मेरे द्वारा कहे गये इस धर्म को भलीप्रकार से भावपूर्वक प्राप्त करो और अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य-जन्म को निश्चित रूप से सफल करो। ऐसा कहकर उसी क्षण जिनवर के मौन हो जाने पर सभा अंजलि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धरणिनमिउत्तिमंगा इच्छामो सासणं ति जंपंती ।
उन्नामियमुहकमला पुणो वि ठाणं गया नियथं ॥८३७॥
तत्थ य केइ पवन्ना सम्मत्तं देसविरइवयमन्ने ।
अन्ने उ चत्तसंगा जाया समणा समियपावा ॥८३८॥
एत्थंतरम्मि य मए दिट्ठा देवी तहिं समोसरणे ।
जाया य मज्झ चिंता हंत कुओ एत्थ देवि त्ति ॥८३९॥
सरियं च मन्तसिद्धस्स तं मए पुव्वमंतियं वयणं ।
परिचिंतियं च एत्थं पुच्छामि जिणं नियाणं ति ॥८४०॥
किं पुण मए कयं परभवम्मि जस्सेरिसो विवागो त्ति ।
देवीविरहम्मि दढं अणुहूयं दारुणं दुक्खं ॥८४१॥
परिपुच्छिओ य एयं नमिऊण मए जिणो निरवसेसं ।
पुव्वकयकम्मदोसं तओ वि इय कहिउमाढत्तो ॥८४२॥

धरणीनतोत्तमाङ्गा इच्छामः शासनमिति जल्पन्ती ।
उन्नामितमुखकमला पुनरपि स्थानं गता निजकम् ॥८३७॥
तत्र च केऽपि प्रपन्नाः सम्यक्त्वं देशविरतिव्रतमन्ये ।
अन्ये तु त्यक्तसङ्गा जाताः श्रमणाः शमितपापाः ॥८३८॥
अत्रान्तरे च मया दृष्टा देवी तत्र समवसरणे ।
जाता च मम चिन्ता हन्त कुतोऽत्र देवीति ॥८३९॥
स्मृतं च मन्त्रसिद्धस्य तन्मया पूर्वमन्त्रितं वचनम् ।
परिचिन्तितं चात्र पृच्छामि जिनं निदानमिति ॥८४०॥
किं पुनर्मया कृतं परभवे यस्येदृशो विपाक इति ।
देवीविरहे दृढमनुभूतं दारुणं दुःखम् ॥८४१॥
परिपृष्टश्चैनद् नत्वा मया जिनो निरवशेषम् ।
पूर्वकृतकर्मदोषं ततोऽपीति कथयितुमारब्धः ॥८४२॥

बाँधकर सन्तोष को प्राप्त हुई। पृथ्वी पर सिर रखकर 'शासन की इच्छा करते हैं'—ऐसा कहती हुई सभा मुखकमल को ऊँचा कर पुनः अपने स्थान चली गयी। वहाँ पर कुछ लोग सम्यक्त्व को प्राप्त हुए, कुछ लोग देशविरतिव्रत को प्राप्त हुए। दूसरे पापों को शान्त कर परिग्रह त्यागकर श्रमण हो गये। इसी बीच वहाँ समवसरण में मैंने महारानी को देखा और मुझे चिन्ता हुई कि हन्त ! देवी यहाँ कहाँ से ? मन्त्रसिद्ध करनेवाले का पहले कहा हुआ वह वचन मुझे याद आया और मैंने सोचा कि मैं यहाँ जिनेन्द्र भगवान् से कारण पूछूंगा कि मैंने परभव में क्या किया था जिसका ऐसा फल हुआ कि महारानी के विरह से अत्यन्त दारुण दुःख का अनुभव किया। मैंने जिनेन्द्र को नमस्कार कर सम्पूर्ण रूप से यह पूर्वकृत कर्म का दोष पूछा। अनन्तर उन्होंने कहना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्थि इहेव गिरिवरो जम्बुद्दीवम्मि भारहे वासे।
विंझो[1] त्ति सिहरसंचयपज्जलियमहोसहिसणाहो ॥ ८४३॥
दरियगयदलियपरिणयहरियंदणसुरहिपसरियामोओ।
फलपुट्ठतरुवरट्ठियविहंगणविरुयसद्दालो ॥८४४॥
नामेण सिहरसेणो तत्थ तुमं आसि सबरराओ त्ति।
बहुसत्तघायणरओ अच्चतविसयगिद्धो य ॥८४५॥
तत्थ अणेगाणि तुमे वराहवसपसयहरिणजुयलाइं।
रण्णे विओइयाइं भीयाइ सुहाभिलासीणि ॥८४६॥
देवी वि य ते एसा तुह जाया आसि सिरिमई नाम।
वक्कलदुगुल्लवसणा गुंजाफलमालियाहरणा ॥८४७॥
स तुमं इमीए सद्धिं सच्छंदं गिरिनिउंजदेसेसु।
विसयसुहमणुहवंतो चिट्ठसि काले निदाहम्मि ॥८४८॥

अस्तीहैव गिरिवरो जम्बूद्वीपे भारते वर्षे।
विन्ध्य इति शिखरसंचयप्रज्वलितमहौषधिसनाथः ॥ ८४३॥
दृप्तगजदलितपरिणतहरिचन्दनसुरभिप्रसृतामोदः।
फलपुष्टतरुवरस्थितविहङ्गगणविरुतशब्दवान् ॥८४४॥
नाम्ना शिखरसेनस्तत्र त्वमासीः शबरराज इति।
बहुसत्त्वघातनरतोऽत्यन्तविषयगृद्धश्च ॥८४५॥
तत्रानेकानि त्वया वराहवृषपसयहरिणयुगलानि।
अरण्ये वियोजितानि भीतानि सुखाभिलाषीणि ॥८४६॥
देव्यपि च ते एषा तव जायाऽऽसीत् श्रीमती नाम।
वल्कलदुकूलवसना गुञ्जाफलमालिकाभरणा ॥८४७॥
स त्वमनया सार्धं स्वच्छन्दं गिरिनिकुञ्जदेशेषु।
विषयसुखमनुभवन् तिष्ठसि काले निदाघे ॥८४८॥

प्रारम्भ किया—इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में शिखरों के समूह से देदीप्यमान महौषधियों से युक्त विन्ध्य नामक पर्वत है। वह गर्वीले हाथियों द्वारा तोड़े गये पके हरिचन्दन की सुगन्धित के विस्तार से सुगन्धित है, फलों से पुष्ट श्रेष्ठ वृक्षों पर स्थित पक्षीगणों के शब्दों से शब्दायमान है। वहाँ पर तुम अनेक प्राणियों की हिंसा में रत और विषयों के प्रति अत्यन्त आसक्त शिखरसेन नाम के शबर-नरेश थे। उस जंगल में तुमने भयभीत और सुख के अभिलाषी शूकर, साँड़, पसय (मृगविशेष) और हरिणों के जोड़ों को अलग किया। यह महारानी भी तुम्हारी श्रीमती नामक स्त्री थी। वह वल्कल (पेड़ की छाल के वस्त्र) और रेशमीवस्त्र धारण करती थी, गुंजाफल की माला उसका आभूषण थी। तुम इसके साथ स्वच्छन्द रूप से ग्रीष्म ऋतु में पर्वतीय निकुंजों में

१. विज्झो त्ति—डे. ज्ञा, पा. ज्ञा.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एत्थंतरम्मि एक्को गच्छो साहूण पहपरिब्भट्ठो।
परिखीणो हिंडंतो तं देसं आगओ नवरं ॥८४९॥

दट्ठूण साहुगच्छं अणुकंपा तुह मणम्मि उप्पन्ना।
हा किं भमंति एए अइविसमे विंझकंतारे ॥८५०॥

गंतूण पुच्छिया ते किं हिंडह एत्थ विंझरण्णम्मि।
साहूहि तओ भणियं सावय पंथाउ पब्भट्ठा ॥ ८५१॥

भणिओ य सिरिमईए तं सामि महातवस्सिणो एए।
उत्तारेहि सपुण्णे भीमाओ विंझरण्णाओ ॥८५२॥

पीणेहि य फलमूलाइएहि अइविसमतवपरिक्खीणे।
नूणं निहाणलम्भो एस तुह पणामिओ विहिणा ॥८५३॥

इय भणिएण ससंभमहरिसवसपयट्टपयडपुलएणं।
उवणीयाइ सविणयं [1]पेसलफलमूलकंदाइं ॥८५४॥

अत्रान्तरे एको गच्छः साधूनां पथपरिभ्रष्टः।
परिक्षीणो हिण्डमानस्तं देशमागतो नवरम् ॥८४९॥

दृष्ट्वा साधुगच्छमनुकम्पा तव मनस्युत्पन्ना।
हा किं भ्रमन्त्येते अतिविषमे विन्ध्यकान्तारे ॥८५०॥

गत्वा पृष्टास्ते किं हिण्डथ्वमत्र विन्ध्यारण्ये।
साधुभिस्ततो भणित श्रावक! पथः प्रभ्रष्टाः ॥८५१॥

भणितश्च श्रीमत्या त्वं स्वामिन्! महातपस्विन एतान्।
उत्तारय सपुण्यान् भीमाद् विन्ध्यारण्यात् ॥८५२॥

प्रीणय च फलमूलादिभिरतिविषमतपःपरिक्षीणान्।
नूनं निधानलाभ एष तवार्पितो विधिना ॥८५३॥

इति भणितेन ससम्भ्रमहर्षवशप्रवृत्तप्रकटपुलकेन।
उपनीतानि सविनयं पेशलफलमूलकन्दानि ॥८५४॥

विषयसुख का अनुभव करते हुए रहते थे। इसी बीच साधुओं का एक समूह (गच्छ) रास्ता भूलकर अत्यन्त दुर्बल हुआ, भटकते हुए उस स्थान पर आया। साधुसमूह को देखकर तुम्हारे मन में दया उत्पन्न हुई। हाय! ये अत्यन्त भयंकर विन्ध्याचल के जंगल में क्यों भ्रमण कर रहे हैं? जाकर उनसे पूछा कि इस विन्ध्यारण्य में आप लोग क्यों घूम रहे हैं? तब साधुओं ने कहा कि हे श्रावक! हम रास्ता भूल गये हैं। श्रीमती ने तुमसे कहा—स्वामी! इन उत्तम पुण्यवाले महान् तपस्वियों को भयंकर विन्ध्यारण्य से उतारो। अत्यन्त विषम तप से दुर्बल हुए इन्हें फल मूलादि से तृप्त करो। तुम्हारी इस प्रकार की दान देने की विधि से निश्चित रूप से सम्पत्ति का लाभ होगा। इस प्रकार से कहा गया वह शबरराज शीघ्र ही हर्षवश रोमांचित होता हुआ विनयपूर्वक

---

१. पसल—डे. ज्ञा. पा. ज्ञा.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहूहि तओ भणियं सावय नेयाणि कप्पणिज्जाणि।
अम्हाण जिणवरेहिं जम्हा समए निसिद्धाणि ॥८५५॥
भणियं तुमए तह वि य तुब्भेहि अणुग्गहो उ कायव्वो।
अन्नहकएण गाढं निव्वेओ होइ अम्हाणं ॥८५६॥
परियाणिऊण भावं नवरं सद्धालुयाण गुणजुत्तं।
तेहिं अणुग्गहत्थं कज्जं हिययम्मि काऊणं ॥८५७॥
साहूहि तओ भणियं जइ एवं विगयवण्णगंधाइं।
ता अम्ह देह नवरं फलाइ चिरकालगहियाइं ॥८५८॥
इय भणिएणं तुमए सिग्धं गिरिकंदराउ घेत्तूण।
पडिलाहिया तवस्सी परिणयफलमूलकंदेहिं ॥८५९॥
पंथम्मि पाडिया तह जायासहिएण सुद्धभावेण।
मन्नंतेण कयत्थं अप्पाणं जीवलोगम्मि ॥८६०॥

साधुभिस्ततो भणितं श्रावक! नैतानि कल्पनीयानि।
अस्माकं जिनवरैर्यस्मात्समये निषिद्धानि ॥८५५॥
भणितं त्वया तथापि च युष्माभिरनुग्रहस्तु कर्तव्यः।
अन्यथाकृतेन गाढं निर्वेदो भवति अस्माकम् ॥८५६॥
परिज्ञाय भावं नवरं श्रद्धालुकानां गुणयुक्तम्।
तैरनुग्रहार्थं कार्यं हृदये कृत्वा ॥८५७॥
साधुभिस्ततो भणितं यद्येवं विगतवर्णगन्धानि।
ततोऽस्माकं दत्त नवरं फलानि चिरकालगृहीतानि ॥८५८॥
इति भणितेन त्वया शीघ्रं गिरिकन्दराद् गृहीत्वा।
प्रतिलाभिताः तपस्विनः परिणतफलमूलकन्दैः ॥८५९॥
पथि पातितास्तथा जायासहितेन शुद्धभावेन।
मन्यमानेन कृतार्थमात्मानं जीवलोके ॥८६०॥

सुन्दर कन्दमूल-फल ले आया। तब साधुओं ने कहा—'हे श्रावक! इन्हें ग्रहण नहीं करेंगे, क्योंकि हमारे जिनवरों ने शास्त्रों में इनका निषेध किया है।' तुमने कहा—'तो भी आप लोग अनुग्रह करें, यदि अनुग्रह नहीं करेंगे तो हम लोगों को अत्यधिक दुःख होगा।' श्रद्धालुओं के गुणयुक्त भावों को जानकर उन पर अनुग्रह करने का मन में निश्चय कर साधुओं ने कहा—'यदि ऐसा है तो हम लोगों को वर्ण और गन्ध से रहित बहुत पहले ग्रहण किये गये फलों को दो। ऐसा कहे जाने पर तुमने शीघ्र ही पर्वतीय गुफा से पके फल, मूल और कन्द लेकर तपस्वियों को प्राप्त कराये तथा अपने को संसार में कृतार्थ मानते हुए पत्नी सहित तुमने शुद्ध भाव से मुनियों को रास्ते में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेहि वि य तुज्झ धम्मो कहिओ जिणदेसिओ सुसाहूहिं ।
पडिवन्ना इय तुब्भे कम्मोवसमेण तं धम्मं ॥८६१॥

दिन्नो य नमोक्कारो सासयसिवसोक्खकारणब्भूओ ।
भत्तिभरोणयवयणेहि सो य तुब्भेहि गहिओ त्ति ॥८६२॥

मुणिऊण तह य तुब्भं जम्मं कम्माणुहावचरियं च ।
साहूहि समाइट्ठं कायव्वमिणं ति तुब्भेहि ॥ ८६३॥

पक्खस्सेगदिणम्मी आरंभं वज्जिऊण सावज्जं ।
पइरिक्कसंठिएहिं अणुसरियव्वो नमोक्कारो ॥८६४॥

तम्मि य दिणम्मि तुब्भं जइ वि सरीरविणिवायणं कोइ ।
चिंतेज्ज तह करेज्ज व तहावि तुब्भेहि खमियव्वं ॥८६५॥

एवं सेवंताणं तुब्भं जिणभासियं इमं धम्मं ।
अचिरेण होहिइ धुवं मणहरसुरसोक्खसंपत्ती ॥८६६॥

तैरपि च तव धर्मः कथितो जिनदेशितः सुसाधुभिः ।
प्रतिपन्नाविति युवां कर्मोपशमेन तं धर्मम् ॥८६१॥

दत्तश्च नमस्कारः शाश्वतशिवसौख्यकारणभूतः ।
भक्तिभरावनतवदनाभ्यां स च युवाभ्यां गृहीत इति ॥८६२॥

ज्ञात्वा तथा च युवयोर्जन्म कर्मानुभावचरितं च ।
साधुभिः समादिष्टं कर्तव्यमिदमिति युवाभ्याम् ॥ ८६३॥

पक्षस्यैकदिने आरम्भं वर्जयित्वा सावद्यम् ।
प्रतिरिक्तसंस्थिताभ्यामनुस्मर्तव्यो नमस्कारः ॥८६४॥

तस्मिश्च दिने युवयोर्यद्यपि शरीरविनिपातनं कोऽपि ।
चिन्तयेत् तथा कुर्याद्वा तथापि युष्माभ्यां क्षन्तव्यम् ॥८६५॥

एवं सेवमानयोर्युवयोर्जिनभाषितमिमं धर्मम् ।
अचिरेण भविष्यति ध्रुवं मनोहरसुरसौख्यसम्पत्तिः ॥८६६॥

पहुँचा दिया। उन अच्छे साधुओं ने भी तुम्हें जिनदेशित धर्म कहा। तुम दोनों ने कर्मों के उपशम से उस धर्म को प्राप्त किया। शाश्वत मोक्षरूपी सुख के कारणभूत नमस्कार को कर भक्ति के आधिक्य से अवनत मुखवाले तुम दोनों ने वह धर्म ग्रहण किया। तुम दोनों के जन्म, कर्म, प्रभाव और चरित जानकर साधुओं ने तुम दोनों को कर्त्तव्य का उपदेश दिया—'पक्ष (पन्द्रह दिन) के एक दिन सावद्य आरम्भ का त्यागकर एकान्त स्थान में बैठकर नमस्कार मंत्र का स्मरण करना। उस दिन तुम दोनों के शरीर का कोई घात सोचे या कर दे तो भी तुम दोनों उसे क्षमा कर देना। इस प्रकार जिनेन्द्र कथित धर्म का सेवन करने पर तुम दोनों को शीघ्र ही मनोहर देव-सुखों की प्राप्ति निश्चित रूप से होगी।' तुम दोनों ने भी भक्तिपूर्वक उत्तम साधुओं के वचन सुनकर 'ऐसा ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुब्भेहि वि भत्तीए सोऊणविण सुसाहुवयणं ति ।
एवं ति अब्भुवगयं गएहि साहूहि चिण्णं च ।।८६७।।
तह चेव कंचि कालं अन्नोन्नवड्ढमाणसड्ढेहिं ।
अह अन्नया य तुब्भं पोसहपडिम पवन्नाणं ।।८६८।।
तुंगम्मि विंझसिहरे गयकुंभत्थलवियारणेक्करसो ।
धुयपिंगकेसरसढो दरियमइंदो समल्लीणो ।
तं दट्ठूणं तुमए तब्भीयं सिरिमइं नि ऊण ।।८६९।।
वामकरगोयरत्थं गहियं कोदण्डमुद्दामं ।।८७०।।
भणियं च भीरु मा भायसु ति एयस्स मं समल्लीणा ।
एसो हु पसवराया ममेक्कसरवायसज्झो त्ति ।। ८७१।।
तो सिरिमईए भणियं एवं एयं नि कोऽत्थ संदेहो ।
किं त गुरुवयणमेयं पामुक्कं होइ अम्हेहि ।।८७२।।

युवाभ्यामपि भक्त्या श्रुत्वेदं सुसाधुवचनमिति ।
एवमित्यभ्युपगतं गतेषु साधुषु चीर्णं च ।।८६७।।
तथैव कञ्चित् कालमन्योन्यवर्धमानश्रद्धाभ्याम् ।
अथान्यदा च युवयोः पोषधप्रतिमां प्रपन्नयोः ।।८६८।।
तुङ्गे विन्ध्यशिखरे गजकुम्भस्थलविदारणैकरसः ।
धुतपिङ्गकेसरसटो दृप्तमृगेन्द्रः समालीनः ।।८६९।।
तं दृष्ट्वा त्वया तद्भीतां श्रीमतीं दृष्ट्वा ।
वामकरगोचरस्थं गृहीतं कोदण्डमुद्दामम् ।।८७०।।
भणितं च भीरु ! मा बिभीहीति एतस्माद् मां समालीना ।
एष खलु मृगराजो ममैकशरपातसाध्य इति ।।८७१।।
ततः श्रीमत्या भणितं एवमेतदिति कोऽत्र सन्देहः ।
किन्तु गुरुवचनमेतत् प्रमुक्तं भवत्याभ्याम् ।।८७२।।

करेंगे'—कहकर स्वीकार किया। साधु चले गये। तुम दोनों ने (धर्म का) पालन किया। इस प्रकार एक दूसरे के प्रति श्रद्धा बढ़ाते हुए तुमने कुछ समय बिताया। अनन्तर एक बार तुम दोनों ने प्रोषधोपवास प्रतिमा धारण की। तब ऊँचे विन्ध्याचल के शिखर पर हाथी के गण्डस्थल को चीरने में एक मात्र रसवाला, गर्दन के उज्ज्वल तथा पीले बालोंवाला एक गर्वीला सिंह मिला। तुमने उसे देखकर और उससे भयभीत श्रीमती को देखकर बायें हाथ में (बायीं ओर) स्थित उत्कट धनुष को लिया और कहा—'अरी डरपोक ! मत डरो, यह मुझे मिला है, यह सिंह मेरे एक बाण के द्वारा मारा जाकर साध्य है।' अनन्तर श्रीमती ने कहा—'यह ठीक है, इसमें सन्देह क्या है ! किन्तु इससे हम लोग गुरु के वचनों को छोड़ देंगे, क्योंकि गुरुओं ने कहा था कि तुम दोनों के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जम्हा गुरूहि भणियं सरीरविणिवायणं पि तब्भाए।
जइ कोइ तम्मि दियहे करेज्ज तुब्भेहि खमियव्वं ॥८७३॥

ता कह गुरूण वयणं सुमरंतेहि गुणभूसियं नाह।
परलोयबंधुभूयं कीरइ विवरीयमम्हेहिं ॥८७४॥

अह मोत्तूण धणुवरं तुमए तो सिरिमई इमं भणिया।
सच्चं गुरूण वयणं कह कीरइ अन्नहा सुयणु ॥८७५॥

तुह नेहमोहिएणं मए वि एयमिह ववसियं आसि।
ता अलमेएण पिए गुरुवयणे आयरं कुणसु ॥८७६॥

एत्थंतरम्मि रुंजियसद्देण नहंगणं स पूरेंतो।
महिदिन्नतलपहारो उवट्ठिओ तुज्झ सीहो त्ति ॥८७७॥

परिचिंतियं च तुमए गुरूवएसपरिवालणानिहसो।
उवयारि च्चिय एसो अम्हाणं पसवनाहो त्ति ॥८७८॥

यस्माद् गुरुभिर्भणित शरीरविनिपातनमपि युवयोः।
यदि कोऽपि तस्मिन् दिवसे कुर्याद् युवाभ्यां क्षन्तव्यम् ॥८७३॥

ततः कथं गुरूणां वचनं स्मरद्भ्यां गुणभूषितं नाथ।
परलोकबन्धुभूतं क्रियते विपरीतमावाभ्याम् ॥७७४॥

अथ मुक्त्वा धनुर्वरं त्वया ततः श्रीमतीदं भणिता।
सत्यं गुरूणां वचनं कथं क्रियतेऽन्यथा सुतनु ! ॥८७५॥

तव स्नेहमोहितेन मयाऽप्येतदिह व्यवसितमासीद्।
ततोऽलमेतेन प्रिये ! गुरुवचने आदरं कुरु ॥८७६॥

अत्रान्तरे गुञ्जितशब्देन नभोङ्गणं स पूरयन्।
महीदत्ततलप्रहार उपस्थितस्तव सिंह इति ॥८७७॥

परिचिन्तितं च त्वया गुरूपदेशपरिपालनानिकषः।
उपकार्येव एष आवयोः मृगनाथ इति ॥८७८॥

शरीर का कोई उस दिन घात भी करे तो भी तुम दोनों उसे क्षमा कर देना। अतः हे नाथ ! परलोक के बन्धुभूत और गुणों से भूषित गुरु के वचन को स्मरण करते हुए हम दोनों विपरीत (आचरण) कैसे कर सकते हैं ?' इसके बाद श्रेष्ठ धनुष को छोड़कर तुमने श्रीमती से यह कहा – 'हे सुन्दरी ! सचमुच गुरुओं के वचन अन्यथा कैसे कर सकते हैं ? मैंने भी तुम्हारे स्नेह से मोहित होकर यह निश्चय किया था। अतः हे प्रिये, इससे बस ! अर्थात् इसे मारना व्यर्थ है, गुरुवचनों के प्रति आदर करो।' इसी बीच भयंकर गर्जन के शब्द से आकाश रूपी आँगन को व्याप्त करता हुआ वह सिंह अपने तलुए से पृथ्वी पर प्रहार करता हुआ तुम्हारे पास आया और तुमने सोचा कि गुरु के उपदेश का पालन करने के लिए कसौटी के तुल्य यह सिंह हम दोनों का उपकारी ही है ॥८३१-८७८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इय चिंतितो य तुमं नहरेहि वियारिओ सुतिक्खेहिं।
कुविएण अकुवियमणो जायासहिओ मइंदेण ॥८७९॥

अहियासिओ य तुमए जायासहिएण सो उवसग्गो।
जो कुपुरिसाण सावय अच्चत्थं दुरहियासो त्ति ॥८८०॥

चइऊण तओ देहं विसुद्धचित्ताइ दो वि समकालं।
सोहम्मे उववन्नाइ इड्ढिमंताइ सयराहं॥ ८८१॥

पलिओवमाउयाइं तत्थ य भोए जहिच्छिए भोत्तुं।
खीणाउयाइ तत्तो चइऊण इहेव दीवम्मि ॥८८२॥

जायाइ जत्थ जह वा संजोयं सुंदरं च पत्ताइं।
जह पाविओ य दुक्खं विरसं तह संपयं सुणसु ॥८८३॥

अवरविदेहे खेत्ते चक्कउरं नाम पुरवरं रम्मं।
उत्तुंगधवलपायारमंडियं तियसनयरं व ॥८८४॥

इति चिन्तयंश्च त्वं नखरैर्विदारितः सुतीक्ष्णैः।
कुपितेनाकुपितमना जायासहितो मृगेन्द्रेण ॥८७९॥

अध्यासितश्च (सोढश्च) त्वया जायासहितेन स उपसर्गः।
यः कापुरुषाणां श्रावक! अत्यर्थं दुरध्यास इति ॥८८०॥

त्यक्त्वा ततो देहं विशुद्धचित्तौ द्वावपि समकालम्॥
सौधर्मे उपपन्नौ ऋद्धिमन्तौ शीघ्रम्॥८८१॥

पल्योपमायुष्कौ तत्र च भोगान् यथेप्सितान् भुक्त्वा।
क्षीणायुष्कौ ततश्च्युत्वा इहैव द्वीपे॥८८२॥

जातौ यत्र यथा वा संयोगं सुन्दरं च प्राप्तौ।
यथा प्राप्तश्च दुःखं विरसं तथा साम्प्रतं शृणु॥८८३॥

अपरविदेहे क्षेत्रे चक्रपरं नाम पुरवरं रम्यम्।
उत्तुङ्गधवलप्राकारमण्डितं त्रिदशनगरमिव॥८८४॥

जब तुम ऐसा सोच ही रहे थे, कि कोपरहित मनवाले तुम्हें पत्नी सहित सिंह ने क्रोधाभिभूत हो तीक्ष्ण नाखूनों से चीर डाला। तुमने पत्नी सहित उस उपसर्ग को सहन किया जो हे श्रावक! कायर पुरुषों के लिए अत्यन्त कठिन है। अनन्तर शरीर त्याग कर शुद्धि मनवाले तुम दोनों एक ही समय सौधर्म स्वर्ग में ऋद्धिधारी देव हुए। पल्योपम आयुवाले तुम दोनों वहाँ पर यथेष्ट भोग भोगकर, आयु क्षीण होने पर वहाँ से च्युत होकर, इस द्वीप में उत्पन्न हुए, जहाँ पर सुन्दर संयोग को पाकर भी जिस प्रकार कठिन दुःख को तुमने प्राप्त किया उसे भी इस समय सुनें॥८७९-८८३॥

पश्चिम विदेहक्षेत्र में चक्रपुर नाम का सुन्दर नगर था, जो कि ऊँचे शुभ्र आकार से मण्डित होकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्थासि पत्थिवो वासवो व्व चरपुरिसलोयणसहस्सो ।
सइ वड्ढियविसयसुहो नामेणं कुरुमियंको त्ति ॥८८५॥
तस्सासि अग्गमहिसी देवी नामेण बालचंद त्ति ।
तीसे गब्भम्मि तुमं चइऊण सुहम्मि उववन्नो ॥८८६॥
देवी वि य ते रन्नो सालस्स सुभूसणस्स गेहम्मि ।
उववन्ना कयउण्णा कुरुमइदेवीए कुच्छिसि ॥८८७॥
ताण बहुएहि दोण्ह वि मणोरहसएहि दिणे पसत्थम्मि ।
जायाइ तया तुब्भे रूवाइगुणेहि कलियाइं ॥८८८॥
तत्थ य समरमियंको नामं तुह ठावियं गुरुयणेण ।
देवीए वि य नामं असोयदेवि त्ति संगीयं ॥८८९॥
कालेण दोण्णि वि तओ सयलकलागहणदुव्वियड्ढाइं ।
कुसुमाउहवरभवणं जोव्वणमह तत्थ पत्ताइं ॥८९०॥

तत्रासीत् पार्थिवो वासव इव चरपुरुषलोचनसहस्रः ।
सदा वर्धितविषयसुखो नाम्ना कुरुमृगाङ्क इति ॥८८५॥
तस्यासीदग्रमहिषी देवी नाम्ना बालचन्द्रेति ।
तस्या गर्भे त्वं च्युत्वा सुखेनोपपन्नः ॥८८६॥
देव्यपि च ते राज्ञः सालस्य सुभूषणस्य गेहे ।
उपपन्ना कृतपुण्या कुरुमतीदेव्याः कुक्षौ ॥८८७॥
तयोर्बहुभिर्द्वयोरपि मनोरथशतैः दिने प्रशस्ते ।
जातौ तदा युवां रूपादिगुणैः कलितौ ॥८८८॥
तत्र च समरमृगाङ्को नाम तव स्थापितं गुरुजनेन ।
देव्या अपि च नाम अशोकदेवीति संगीतम् ॥८८९॥
कालेन द्वावपि ततः सकलकलाग्रहणदुर्विदग्धौ ।
कुसुमायुधवरभवनं यौवनमथ तत्र प्राप्तौ ॥८९०॥

देवनगर के समान मालूम पड़ता था। वहाँ पर इन्द्र के समान गुप्तचर रूप हजार नेत्रोंवाला, सदैव विषयसुख को बढ़ानेवाला, 'कुरुमृगांक' नाम का राजा था। उसकी पटरानी बालचन्द्रा नाम की महारानी थी। तुम च्युत होकर उसके गर्भ में सुखपूर्वक आये। तुम्हारी देवी भी राजा के साले सुभूषण के घर पुण्यवती कुरुमती देवी के उदर में आयी। तुम दोनों उन दोनों के सैकड़ों-सैकड़ों मनोरथों से शुभ दिन में उत्पन्न हुए। अनन्तर तुम दोनों रूप और गुणों से युक्त हुए। वहाँ पर माता-पिता ने तुम्हारा नाम समरमृगांक और देवी का नाम अशोकदेवी रखा। समय पाकर तुम दोनों समस्त कलाओं के ग्रहण करने में निपुण हुए। पश्चात् कामदेव के श्रेष्ठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिन्ना असोयदेवी तइया तुज्झं सुभूसणनिवेण।
परिणीया य तए वि य सुपसत्थविवाहजोएण ॥८९१॥

भुंजंताण पयामं विसयसुहं नवर वच्चए कालो।
तुम्हाण सपरिओसं अन्नोन्नं बद्धरायाणं ॥८९२॥

अह अन्नया पिया ते पलियं दट्ठूण जायसंवेओ।
दाऊण तुज्झ रज्जं देवीए समं स पव्वइओ ॥८९३॥

जाओ य तुमं राया निज्जियनियमंडलो सरज्जम्मि।
चिट्ठसि विसयपसत्तो भुंजंतो मणहरे भोए ॥८९४॥

अह तिरिय[1]विसंजोयणनिद्दयतग्घायजणियकम्मस्स।
एत्थंतरम्मि विरसो सावय जाओ विवाओ त्ति ॥८९५॥

आसि तहिं चिय विजए[2] भंभानयरम्मि सिरिबलो राया।
तेण सह तुज्झ जाओ अणिमित्तो विग्गहो कहवि ॥८९६॥

दत्ता अशोकदेवी तदा तव सुभूषणनृपेण।
परिणीता च त्वयाऽपि च सुप्रशस्तविवाहयोगेन ॥८९१॥

भुञ्जतोः प्रकामं विषयसुखं नवरं व्रजति कालः।
युवयोः सपरितोषमन्योन्यं बद्धरागयोः ॥८९२॥

अथान्यदा पिता ते पलितं दृष्ट्वा जातसंवेगः।
दत्त्वा तव राज्यं देव्या समं स प्रव्रजितः ॥८९३॥

जातश्च त्वं राजा निर्जितनिजमण्डलः स्वराज्ये।
तिष्ठसि विषयप्रसक्तो भुञ्जन् मनोहरान् भोगान् ॥८९४॥

अथ तिर्यग्विसंयोजननिर्दयतद्घातजनितकर्मणः।
अत्रान्तरे विरसः श्रावक! जातो विपाक इति ॥८९५॥

आसीत्तत्रैव विजये भंभानगरे श्रीबलो राजा।
तेन सह तव जातोऽनिमित्तो विग्रहः कथमपि ॥८९६॥

निवास यौवन को प्राप्त हुए। तब सुभूषण राजा ने तुम्हें अशोकदेवी दी। तुमने भी उसे शुभविवाह के योग में विवाहा। सन्तोषसहित परस्पर राग में बँधे हुए, इच्छानुसार विषयसुख को भोगते हुए तुम दोनों का समय बीता। तदनन्तर तुम्हारे पिता पके हुए बाल को देखकर विरक्त हो गये और तुम्हें राज्य दे महारानी के साथ प्रव्रजित हो गये। अपने मण्डल को जीते हुए तुम अपने राज्य पर राजा के रूप में विराजमान हुए और विषयों में अनुरक्त हो मनोहर भोगों को भोगते हुए रहने लगे। इसके बाद तिर्यंचों का वियोग और निर्दयतापूर्वक उनका घात करने के दुष्ट कर्मों का फल इसी बीच, हे श्रावक, तुम्हारे उदय में आया। उसी देश के भम्भानगर में श्रीबल नाम का राजा था। उसके साथ तुम्हारा बिना कारण ही किसी प्रकार युद्ध हुआ। तुम्हारे जो प्रधान योद्धा थे वे

१. -विजोयण—डे. ज्ञा.। २. चियवि समल्लीए पं'भानयरंमि—डे. ज्ञा.।

तुह जे पहाणजोहा ते सव्वे सिरिबलं समल्लीणा ।
अब्भुवगओ तुमाए तेण समं तह वि संगामो ।।८९७।।

जाए य तम्मि तइया महाविमद्देण सिरिबलेण तुमं ।
वावाइओ सि सावय विणिहयनियसेन्नसेसेण ।।८९८।।

मरिऊण य उववन्नो रोद्दज्झाणेण नवर निरयम्मि ।
सत्तरससागराऊ नेरइओ कम्मदोसेण ।।८९९।।

सोऊण तुज्झ मरणं असोयदेवी वि उवगया मोहं ।
[1]हित्थेण परियणेणं नवरं आसासिया संती ।।९००।।

रोद्दज्झाणोवगया काऊणं धम्मविग्घमच्चत्थं ।
तुह नेहमोहियमई नियाणमेवं महापावं ।।९०१।।

राया समरमियंको उप्पन्नो नवर जत्थ ठाणम्मि ।
तत्थेव मंदभग्गा जाएज्ज अहं पि नियमेण ।।९०२।।

तव ये प्रधानयोधास्ते सर्वे श्रीबलं समालीनाः ।
अभ्युपगतस्त्वया तेन समं तथापि संग्रामः ।। ८९७।।

जाते च तस्मिन् तदा महाविमर्देन श्रीबलेन त्वम् ।
व्यापादितोऽसि श्रावक ! विनिहतनिजसैन्यशेषेण ।।८९८।।

मृत्वा चोपपन्नो रौद्रध्यानेन नवरं निरये ।
सप्तदशसागरायुर्नैरयिकः कर्मदोषेण ।।८९९।।

श्रुत्वा तव मरणमशोकदेव्यपि उपगता मोहम् ।
त्रस्तेन परिजनेन नवरमाश्वासिता सती ।।९००।।

रौद्रध्यानोपगता कृत्वा धर्मविघ्नमत्यर्थम् ।
तव स्नेहमोहितमतिर्निदानमेवं महापापम् ।।९०१।।

राजा समरमृगाङ्क उत्पन्नो नवरं यत्र स्थाने ।
तत्रैव मन्दभाग्या जायेयाहमपि नियमेन ।।९०२।।

सब श्रीबल से मिल गये तथापि तुमने उसके साथ संग्राम किया । तब हे श्रावक ! संग्राम होने पर महान् योद्धा श्रीबल के द्वारा तुम मारे गये, तुम्हारी शेष सेना भी मारी गयी। रौद्र ध्यान के कारण मरकर कर्म के दोष से प्रथम नरक में सत्रह सागर की आयु वाले नारकी हुए । तुम्हारे मरण को सुनकर महारानी भी मूर्च्छा को प्राप्त हुई । मात्र दुःखी परिजनों से वह होश में लायी गयी । तदनन्तर रौद्रध्यान को प्राप्त कर धर्म में अत्यधिक विघ्न कर तुम्हारे स्नेह से मोहित बुद्धिवाली उसने इस प्रकार के महापापी निदान को किया, 'राजा समरमृगांक जिस स्थान में उत्पन्न हुआ है एक मात्र उसी स्थान में मन्दभाग्य वाली मैं भी नियम से उत्पन्न होऊँ ।' अनन्तर अग्नि

---

1. दित्थेण—डे. ज्ञा. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो हुयवहं पविट्ठा किलिट्ठचित्ता य नवर मरिऊण ।
जत्थेव तुमं नरए इमी वि तत्थेव उववन्ना ॥६०३॥
सत्तरससागराऊ गमिओ दुक्खेण कहवि तुब्भेहिं ।
तत्थ अहाउयकालो निच्चुव्विग्गेहि भीएहिं ॥६०४॥
उव्वट्टिऊण य तुमं निरयाओ पुक्खरद्धभरहम्मि ।
जाओ सि गहवइसुओ [1]वेण्णाए दरिद्दगेहम्मि ॥६०५॥
एसा वि तुज्झ जाया तत्थेव य भारहम्मि वासम्मि ।
जाया दरिद्दधूया नवरं तुज्झं सजाईए ॥६०६॥
कालेण दोण्णि वि तओ तुब्भे अह जोव्वणं उवगयाइं ।
जाओ य कहवि नवरं तत्थ वि तुम्हाण वीवाहो ॥६०७॥
नेहवसेण य तुब्भे तत्थ वि दारिद्दुक्खविमुहाइं ।
चिट्ठह जहासुहेणं अन्नोन्नं बद्धरायाइं ॥६०८॥

ततो हुतवहं प्रविष्टा क्लिष्टचित्ता च नवरं मत्वा ।
यत्रैव त्वं नरके इयमपि तत्रैवोपपन्ना ॥६०३॥
सप्तदशसागरायुर्गमितो दुःखेन कथमपि युवाभ्याम् ।
तत्र यथायुःकालो नित्योद्विग्नाभ्यां भीताभ्याम् ॥६०४॥
उद्वर्त्य च त्वं निरयात् पुष्करार्धभरते ।
जातोऽसि गृहपतिसुतो वेण्णायां दरिद्रगेहे ॥६०५॥
एषापि तव जाया तत्रैव च भारते वर्षे ।
जाता दरिद्रदुहिता नवरं तव सजात्या ॥६०६॥
कालेन द्वावपि ततो युवामथ यौवनमुपगतौ ।
जातश्च कथमपि नवरं तत्रापि युवयोर्विवाहः ॥६०७॥
स्नेहवशेन च युवां तत्रापि दारिद्र्यदुःखविमुखौ ।
तिष्ठथो यथासुखेनान्योन्यं बद्धरागौ ॥६०८॥

में प्रविष्ट होकर दुःखीमन अकेली मरकर जिस नरक में तुम थे उसी नरक में यह भी उत्पन्न हुई। तुम दोनों ने जिस किसी प्रकार सत्रह सागर की आयु बितायी। वहाँ पर नित्य उद्विग्न और भयभीत रहकर आयु पूरी कर तुम दोनों ने मरण प्राप्त किया और तुम नरक से निकलकर पुष्करार्द्ध भरत की वेण्णा नगरी में गृहपति दरिद्र के घर पुत्र उत्पन्न हुए। यह तुम्हारी पत्नी भी उसी भारतवर्ष में तुम्हारी सजातीय दरिद्रपुत्री हुई। समय पाकर तुम दोनों युवा हुए और यौवनावस्था को प्राप्त तुम दोनों का वहाँ किसी प्रकार विवाह भी हो गया। स्नेह के वश वहाँ भी तुम दोनों दरिद्रता के दुःख से विमुख होकर सुखपूर्वक रहकर एक दूसरे के प्रति राग में बँधे

---

१. बिन्नाए—पा. ज्ञा.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अह अन्नहा य दिट्ठा नियए गेहम्मि अच्छमाणेहिं।
तुब्भेहि साहुणीओ समुयाणकए पविट्ठाओ ॥९०९॥
दट्ठूण तओ ताओ सद्धासंवेगपयडपुलएहिं।
पडिलाहियाउ फासुयभिक्खादाणेण विहिपुव्वं ॥९१०॥
कत्थ ट्ठियाउ तुब्भे इय पुट्ठाओ य ताहि वि य सिट्ठं।
वसुसेट्ठिघरसमीवे पडिस्सए नयरमज्झम्मि ॥९११॥
घेत्तूण फुल्लनियरं वासरविरमम्मि तो पयट्टाइं।
पुव्वकहियं सहरिसं पडिस्सयं भत्तिजुत्ताइं॥९१२॥
पत्ताइं च कमेणं पइसमयं वड्ढमाणसद्धाइं।
दिट्ठा य तत्थ गणिणी सुपसंता सुव्वया नाम ॥९१३॥
पुरओ संठियपोत्थयनिविट्ठदिट्ठी नमंततणुनाला।
लोयणभमरभरोणयसुवयणकमला कमलिणि व्व ॥९१४॥

अथान्यदा च दृष्टा निजे गेहे आसीनाभ्याम्।
युवाभ्यां साध्व्यः समुदानकृते प्रविष्टाः ॥९०९॥
दृष्ट्वा ततस्ताः श्रद्धासंवेगप्रकटपुलकाभ्याम्।
प्रतिलाभिताः प्रासुकभिक्षादानेन विधिपर्वम् ॥९१०॥
कुत्र स्थिता यूयमिति पृष्टाश्च ताभिरपि शिष्टम्।
वसुश्रेष्ठिगृहसमीपे प्रतिश्रये नगरमध्ये ॥९११॥
गृहीत्वा पुष्पनिकरं वासरविरमे ततः प्रवृत्तौ।
पूर्वकथितं सहर्षं प्रतिश्रयं भक्तियुक्तौ ॥९१२॥
प्राप्तौ च क्रमेण प्रतिसमयं वर्धमानश्रद्धौ।
दृष्टा च तत्र गणिनी सुप्रशान्ता सुव्रता नाम ॥९१३॥
पुरतः संस्थितपुस्तकनिविष्टदृष्टिर्नमत्तनुनाला।
लोचनभ्रमरभरावनतसुवदनकमला कमलिनीव ॥९१४॥

होकर रहते थे। इसके बाद एक दिन तुम दोनों को अपने घर में बैठे देखकर आहार के लिए साध्वियाँ प्रविष्ट हुईं। अनन्तर उन्हें देखकर श्रद्धा और वैराग्य के कारण जिन्हें रोमांच प्रकट हुए हैं ऐसे तुम दोनों ने विधिपूर्वक प्रासुक भिक्षा (आहार) का दान दिया। 'आप सब कहाँ ठहरी हैं?'—ऐसा पूछने पर उन्होंने भी कहा कि नगर के बीच में वसु श्रेष्ठि के घर के पास प्रतिश्रय (आश्रम) में ठहरी हुई हैं। अनन्तर दिन की समाप्ति होने पर भक्ति से युक्त हो हर्षपूर्वक फूलों को लेकर तुम दोनों पहले कहे हुए आश्रम में गये। प्रति समय क्रमशः बढ़ती हुई श्रद्धा वाले तुम दोनों वहाँ पहुँचे, वहाँ सुप्रशान्त सुव्रता नामक गणिनी के दर्शन किये। वह गणिनी सामने रखी हुई पुस्तक पर दृष्टि लगाये हुई थीं, उनका शरीररूपी कमलदण्ड कुछ झुका हुआ था, नेत्ररूपी भौंरों के भार से अवनत मुखकमल वाली कमलिनी के समान वह मालूम पड़ रही थीं, कमल के पत्तों से भी अधिक कोमल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वित्थिण्णमहत्थाइं ठियाइं एक्कारसं पि अंगाइं ।
कमलदलकोमलम्मि वि जीए जीहाए अग्गम्मि ॥६१५॥
सा वंदिया य नवरं गणिणी तुब्भेहि विम्हियमणेहिं ।
करयलकयंजलिउडं हरिसवसुब्भिन्नपुलएहिं ॥६१६॥
तीए वि धवलपडंतरविणिग्गउत्ताणिएक्ककरकमलं ।
अद्धुन्नामियवयणाए भणियं धम्मलाहो त्ति ॥६१७॥
भणियाणि य जिणयंदे वंदह काऊण कुसुमवुट्ठि ति ।
पुरओ जिणाण जेणं मुच्चह संसारवासाओ ॥६१८॥
काऊण कुसुमवुट्ठि गंधड्ढं कुट्टिमम्मि जिणयंदे ।
अह वंदिऊण य तओ गणिणीसमीवे निसण्णाइं ॥६१९॥
गणिणीए तओ भणियं निम्मलपरिगिणितदसणकिरणोहं ।
परिवसह कत्थ तुब्भे इहेव इय जंपमाणेहिं ॥६२०॥

विस्तीर्णमहार्थानि स्थितानि एकादशापि अङ्गानि ।
कमलदलकोमलेऽपि यस्या जिह्वाया अग्रे ॥६१५॥
सा वन्दिता च नवरं गणिनी युवाभ्यां विस्मितमनोभ्याम् ।
करतलकृताञ्जलिपुटं हर्षवशोद्भिन्नपुलकाभ्याम् ॥६१६॥
तयाऽपि धवलपटान्तरविनिर्गतोत्तानितैककरकमलम् ।
अर्धोन्नामितवदनया भणितं धर्मलाभ इति ॥६१७॥
भणितौ च जिनचन्द्रान् वन्देथां कृत्वा कुसुमवृष्टिमिति ।
पुरतो जिनानां येन मुच्येयाथां संसारवासाद् ॥६१८॥
कृत्वा कुसुमवृष्टिं गन्धाढ्यां कुट्टिमे जिनचन्द्रान् ।
अथ वन्दित्वा च ततो गणिनीसमीपे निषण्णौ ॥६१९॥
गणिन्या ततो भणितं निर्मलपरिगच्छद्दशनकिरणौघम् ।
परिवसथः कुत्र युवामिहैवेति जल्पतोः ॥६२०॥

जिनके जीभ के अग्रभाग में विस्तृत महान् अर्थवाले ग्यारह अंग विराजमान थे। विस्मित-मन तुम दोनों ने हर्षवश रोमांचित हो हथेलियों की अंजलि बाँधकर गणिनी की वन्दना की । उन्होंने भी श्वेत वस्त्र से बाहर निकाले गये एक हस्तकमल को ऊपर उठाकर और मुँह को आधा ऊँचा कर धर्मलाभ दिया और तुम दोनों से कहा कि फूलों की वर्षा कर सामने स्थित जिनचन्द्र (और) जिनों की वन्दना करो जिससे संसारवास से मुक्त हो जाओ। इसके बाद गन्ध से व्याप्त फूलों की वर्षा कर जिनचन्द्रों की वन्दना कर तुम दोनों फर्श पर गणिनी के पास बैठ गये। तदनन्तर जिनके दाँतों से निर्मल किरणें निकल रही थीं ऐसी गणिनी ने कहा—'आप दोनों कहाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुब्भेहि साहुणीए जीए दिट्ठाइ गोयरगयाए।
भणियं अज्जेवम्हे वसहि पुट्ठाउ एएहि ।। ६२१।।
गोयरगयाउ धणियं सद्धावंताइ तह य एयाइं ।
तित्थयरवंदणत्थं भत्तीए इहागयाइं ति ।।६२२।।
गणिणीए तओ भणियं साहु कयं धम्मनिहियचित्ताइं।
ज एत्थ आगयाइं किच्चमिणं नवर भवियाण ।।६२३।।
जम्हा जयम्मि सरणं धम्मं मोत्तूण नत्थि जीवाणं।
सारीरमाणसेहिं दुक्खेहि अहिद्दुयाणं ति ।। ६२४।।
न य सो तीरइ काउं जहट्ठिओ वज्जिऊण मणुयत्तं।
तं पुण चलं असारं सुविणयमाइंदजालसमं ।।६२५।।
लद्धूण माणुसत्तं धम्मं न करेइ जो विसयलुद्धो।
दहिऊण चंदणं सो करेइ अंगारवाणिज्जं ।।६२६।।

युवयोः (सतोः) साध्व्या यया दृष्टौ गोचरगतया।
भणितमद्यैव वयं वसतिं पृष्टा एताभ्याम् ।।६२१।।
गोचरगता गाढं श्रद्धावन्तौ तथा चैतौ।
तीर्थकरवन्दनार्थं भक्त्या इहागताविति ।।६२२।।
गणिन्या ततो भणितं साधु कृतं धर्मनिहितचित्तौ।
यदत्रागतौ कृत्यमिदं नवरं भविकानाम् ।।६२३।।
यस्माद् जगति शरणं धर्मं मुक्त्वा नास्ति जीवानाम्।
शारीरमानसैर्दुःखैरभिद्रुतानामिति ।।६२४।।
न च स शक्यते कर्तुं यथास्थितो वर्जित्वा मनुजत्वम्।
तत्पुनश्चलमसारं स्वप्नमृगेन्द्रजालसमम् ।।६२५।।
लब्ध्वा मानुषत्वं धर्मं न करोति यो विषयलुब्धः।
दग्ध्वा चन्दनं स करोत्यङ्गारवाणिज्यम् ।।६२६।।

रहते हैं ?' तुम दोनों ने जब कहा कि यहीं रहते हैं तो जिस साध्वी ने मार्ग बतलाया था उसने कहा—'आज ही हम लोगों से इन दोनों ने वसति (आश्रम) के विषय में पूछा था। मार्ग ज्ञात कर और अत्यधिक श्रद्धावान् होकर ये दोनों तीर्थंकर की वन्दना के लिए भक्तिपूर्वक यहाँ आये हैं।' अनन्तर गणिनी ने कहा—'ठीक किया जो कि धर्म को अपने चित्त में रखकर आप दोनों यहाँ आये। यह भव्यजनों के योग्य कार्य है; क्योंकि इस संसार में शारीरिक और मानसिक दुःखों से पीड़ित जीवों को धर्म को छोड़कर (अन्य कोई) शरण नहीं है। वह धर्म मनुष्य भव को छोड़कर (अन्य भवों में) यथायोग्य रीति से नहीं साधा जा सकता है। यह मनुष्य-भव चंचल और असार है, स्वप्नवत् और मृगेन्द्रजाल के समान है। विषय का लोभी जो मनुष्यभव पाकर धर्म नहीं करता है वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धम्मेण सयलभावा सुहावहा होंति जीवलोयम्मि।
धम्मेण सासयसुहं लब्भइ अचिरेण परमपयं ॥६२७॥
सो उण वियलियराएहि भावओ जिणवरिंदचंदेहिं।
होइ परिचिंतिएहि वि अलाहि किं ता पुलइएहिं ॥६२८॥
ता सुट्ठु कयं एयं जं दट्ठुं आगयाइ जिणयंदे।
जिणसाहुदंसणाइं[1] हंदि वियारेंति दुरियाइं ॥६२९॥
कहिओ य तीए धम्मो तुब्भेहि वि नवर सुद्धचित्तेहिं।
पडिवन्नो जिणभणिओ कया य महुमंसविरई य ॥६३०॥
गमिऊण कंचि कालं नमिऊण जिणे सुसाहुणीओ य।
गेहमह पत्थियाइं भणियाणि य नवर गणिणीए ॥६३१॥
एज्जह इह पइदियहं एवं चिय तह सुणेज्जह य धम्मं।
दुक्खविरेयणभूयं पन्नत्तं वीयरागेहिं ॥६३२॥

धर्मेण सकलभावाः सुखावहा भवन्ति जीवलोके।
धर्मेण शाश्वतसुखं लभ्यतेऽचिरेण परमपदम् ॥६२७॥
स पुनर्विगलितरागैर्भावितो जिनवरेन्द्रचन्द्रैः।
भवति परिचिन्तितैरपि अलं किं तावत् प्रलोकितैः ॥६२८॥
ततः सुष्ठु कृतमेतद् यद् द्रष्टुमागतौ जिनचन्द्रान्।
जिनसाधुदर्शनानि किल विदारयन्ति दुरितानि ॥६२९॥
कथितश्च तया धर्मो युवाभ्यामपि नवरं शुद्धचित्ताभ्याम्।
प्रतिपन्नो जिनभणितः कृता च मधुमांसविरतिश्च ॥६३०॥
गमयित्वा कंचित्कालं नत्वा जिनान् साध्वीश्च।
गृहमथ प्रस्थितौ भणितौ नवरं गणिन्या ॥६३१॥
एतमिह प्रतिदिवसमेवमेव तथा शृणुतं च धर्मम्।
दुःखविरेचनभूतं प्रज्ञप्तं वीतरागैः ॥६३२॥

चन्दन को जलाकर कोयले का व्यापार करता है। धर्म से संसार में सभी पदार्थ सुखकर होते हैं। धर्म से शीघ्र ही शाश्वत सुखवाला परमपद (मोक्ष) प्राप्त होता है। वह धर्म वीतरागी जिनेन्द्रों का भावपूर्वक भलीभाँति स्मरण मात्र करने से होता है, दर्शन करने की तो बात ही क्या। अतः ठीक किया जो आप दोनों जिनचन्द्रों के दर्शन के लिए आये। जिनेन्द्र भगवान और साधुओं के दर्शन निश्चित रूप से पापों को नष्ट करते हैं। गणिनी ने शुद्धचित्तवाले तुम दोनों को धर्मोपदेश दिया। जिनप्रोक्त वह धर्मोपदेश दोनों ने स्वीकार कर लिया और मधु तथा मांस का त्याग किया। कुछ समय बिताकर जिनेन्द्र और सुसाध्वी को नमस्कार करने के बाद दोनों ने घर को प्रस्थान किया। गणिनी ने दोनों से कहा—यहाँ पर इस धर्म को प्रतिदिन सुनो (क्योंकि इसे) वीतरागों ने दुःख को नष्ट

1. दंसणाहि हंदि वियारेहि दुरियाइं—पा. ज्ञा.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पडिवज्जिऊण य तओ गणिणीवयणं गयाणि नियगेहं।
हिट्ठहिययाइ धणियं धम्मम्मि कयाणुरायाइं ॥६३३॥

कइवयदिणेसु य तहा जायाइं परमभत्तिजुत्ताइं।
उक्किट्ठसावयाइं विसयसुहनियत्तचित्ताइं ॥६३४॥

अणुवालिऊण पवरं सावयधम्मं अहाउयं जाव।
मरिऊण बंभलोए कप्पम्मि तओऽववन्नाइं ॥६३५॥

आउं च तत्थ तुब्भं अहेसि सत्ताहियाइ अयराइं।
तत्तो चइऊण इह नरवइगेहेसु जायाइं ॥६३६॥

तिव्वं च सवरजम्मे कम्मं तुमए कयं इमीए वि।
अणुमोइयं ति तस्स उ परिणामो निरयवासम्मि ॥६३७॥

अणुहूओ चिय तुब्भेहि तह य भरहम्मि खुद्दमणुयभवे।
तक्कम्मसेसयाए अणुहूयमिणं तए दुक्खं ॥६३८॥

प्रतिपद्य च ततो गणिनीवचनं गतौ निजगेहम्।
हृष्टहृदयौ गाढं धर्मे कृतानुरागौ ॥६३३॥

कतिपयदिनेषु च तथा जातौ परमभक्तियुतौ।
उत्कृष्टश्रावकौ विषयसुखनिवृत्तचित्तौ ॥६३४॥

अनुपाल्य प्रवरं श्रावकधर्मं यथायुर्यावत्।
मृत्वा ब्रह्मलोके कल्पे तत उपपन्नौ ॥६३५॥

आयुश्च तत्र युवयोरासीत् सप्ताधिकान्यतराणि।
ततश्च्युत्वा इह नरपतिगृहयोर्जातौ ॥६३६॥

तीव्रं च शबरजन्मनि कर्म त्वया कृतमनयाऽपि।
अनुमोदितमिति तस्य तु परिणामो निरयवासे ॥६३७॥

अनुभूत एव युवाभ्यां तथा च भरते क्षुद्रमनुजभवे।
तत्कर्मशेषतयाऽनुभूतमिदं त्वया दुःखम् ॥६३८॥

करनेवाला कहा है। अनन्तर गणिनी के वचनों को स्वीकार कर दोनों अपने घर गये। हर्षित हृदय हो तुम दोनों ने धर्म में अत्यधिक अनुराग किया तथा कुछ दिनों में विषय-सुख से निवृत्तचित्त वाले होकर परमभक्ति से युक्त हो तुम दोनों उत्कृष्ट श्रावक हो गये। पश्चात् आयुपर्यन्त उत्कृष्ट श्रावक-धर्म का पालन कर मरकर ब्रह्मलोक नामक स्वर्ग में उत्पन्न हुए। तुम दोनों की आयु वहाँ सात सागर से अधिक थी। वहाँ से च्युत होकर दोनों यहाँ राजा के घर उत्पन्न हुए। शबरजन्म में तुमने जो तीव्र कर्म किया था और इसने जो अनुमोदन किया था उसका परिणाम नरकवास तथा क्षुद्र मनुष्यभव में भोगा ही। उस कर्म के शेष रह जाने से तुमने इस दुःख का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता मुणिऊण विवायं एवंविहमेत्थ पावकम्माणं।
तह जयह जहा पावह एण्हि पि पुणो न दुक्खाइं ॥६३९॥

इय कहियम्मि नियाणे सवित्थरे तत्थ लोयनाहेण।
पडिरुद्धमोहपसरं जाओ मे परमसंवेगो ॥६४०॥

भणिओ य तिहुयणगुरू भयवं सिवसोक्खकारणं परमं।
गेण्हामि तुह समीवे पव्वज्जं तुम्ह वयणेण ॥६४१॥

देवीए परियणेण य एवं बहु मन्निऊण मे वयणं।
विन्नत्तो इणमेव उ नियकज्जकएण भुवणगुरू ॥६४२॥

भणियं च भुवणगुरुणा अहासुहं मा करेह पडिबंधं।
भवगहणम्मि असारे किच्चमिणं नवर भवियाण ॥६४३॥

सोऊण इमं वयणं भावेण पवज्जिऊण सयराहं।
काऊण लोयमग्गं पडिवन्नं दव्वओ ताहे ॥६४४॥

ततो ज्ञात्वा विपाकमेवंविधमत्र पापकर्मणाम्।
तथा यतेथां यथा प्राप्नुतमिदानीमपि पुनर्न दुःखानि ॥६३९॥

इति कथिते निदाने सविस्तरे तत्र लोकनाथेन।
प्रतिरुद्धमोहप्रसरं जातो मे परमसंवेगः ॥६४०॥

भणितश्च त्रिभुवनगुरुर्भगवन् ! शिवसौख्यकारणं परमम्।
गृह्णामि तव समीपे प्रव्रज्यां युष्माकं वचनेन ॥६४१॥

देव्या परिजनेन चैवं बहु मत्वा मे वचनम्।
विज्ञप्त इदमेव तु निजकार्यकृते भुवनगुरुः ॥६४२॥

भणितं भुवनगुरुणा यथासुखं मा कुरुत प्रतिबन्धम्।
भवगहनेऽसारे कृत्यमिदं नवरं भविकानाम् ॥६४३॥

श्रुत्वेदं वचनं भावेन प्रव्रज्य शीघ्रम्।
कृत्वा लोकमार्गं प्रतिपन्नं द्रव्यतस्तदा ॥६४४॥

अनुभव किया। अतः इस प्रकार के पापकर्मों का फल जानकर वैसा यत्न करो, जिससे अब भी पुनः दुःख न हो। इस प्रकार लोकनाथ भगवान् जिनेन्द्र ने विस्तृत रूप से जब निदान कहा तो मोह का विस्तार रुक जाने के कारण मुझे अत्यधिक विरक्ति उत्पन्न हुई। और तीनों लोकों के गुरु भगवान् से मैंने कहा कि आपके वचन से आपके ही समीप मोक्षसुख की कारणभूत उत्तम दीक्षा को लेता हूँ। मेरे वचनों का आदर कर महारानी और परिजनों ने भी मेरे कार्य के विषय में जगद्गुरु से यही निवेदन किया। जगद्गुरु ने कहा कि जिससे सुख हो (ऐसे कार्य में) रुकावट नहीं करना चाहिए; क्योंकि असार गहन भव में यह भव्य जीवों के करने योग्य कार्य है। इस वचन को सुनकर शीघ्र ही भावपूर्वक प्रव्रजित होकर लोकमार्गानुसार द्रव्यरूप से दीक्षा ग्रहण की। यह मेरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एसो मे वुत्तंतो कणयउरे साहिओ मए रन्नो।
मग्गपडिवत्तिमादी इहभवपज्जायपज्जंतो ॥ ६४५॥

एयं सोऊण समुप्पन्नो सव्वेसि संवेओ। चिंतियं च णेहि—एवं विवागदारुणं मोहचेट्ठियं; अक्खयं च जाणवत्तं भवसमुद्दे गुरुवयणनिच्छओ त्ति। वंदिओ भयवं, 'अणुग्गहिया अम्हे भयवया नियवुत्तंतकहणेणं' अहिणंदिओ सबहुमाणं, करयलकयंजलिउडं विन्नत्तो गुणचंदेण—भयवं, जाणिओ मए भयवओ पहावेण जहट्ठिओ धम्मो, पणट्ठा मिच्छावियप्पा, संजाया भयवंतचलणाराहणिच्छा, ता देहि ताव मे गिहिधम्मोचियाइं वयाइं। विग्गहेण भणियं—भयवं, ममावि। दिन्नाइं भयवया सावयवयाइं। गहियाइं जहाविहीए। जाया भावसावया। भत्तिबहुमाणेहिं वंदिओ भयवं, धम्मलाहिऊण भणिया य णेणं—कुमार, वियाणिऊण भवओ पडिबोहसमयं रायउराओ अहं एत्थ आगओ, संपन्नं च मे जहाहिलसियं। ता तहिं चेव गच्छामि। चिट्ठंति तत्थ मह दंसणूसुया बहवे साहुणो। पुणो अओज्झाए मज्झ भवया(विया) दंसणं। सव्वहा दढव्वएण होयव्वं। कुमारेण भणियं—जं भयवं

एष मे वृत्तान्तः कनकपुरे कथितो मया राज्ञः।
मार्गप्रतिपत्त्यादिरिहभवपर्यायपर्यन्तः ॥६४५॥

एतच्छ्रुत्वा समुत्पन्नः सर्वेषां संवेगः। चिन्तितं च तैः, एवं विपाकदारुणं मोहचेष्टितम्, अक्षतं च यानपात्रं भवसमुद्रे गुरुवचननिश्चय इति। वन्दितो भगवान्, 'अनुगृहीता वयं भगवता निजवृत्तान्तकथनेन' अभिनन्दितः सबहुमानम्, करतलकृताञ्जलिपुटं विज्ञप्तो गुणचन्द्रेण, भगवन्! ज्ञातो मया भगवतः प्रभावेण यथास्थितो धर्मः, प्रनष्टा मिथ्याविकल्पाः, संजाता भगवच्चरणाराधनेच्छा, ततो देहि तावन्मे गृहिधर्मोचितानि व्रतानि। विग्रहेण भणितम्—भगवन्! ममापि। दत्तानि भगवता श्रावकव्रतानि। गृहीतानि यथाविधि। जाता भावश्रावकाः। भक्तिबहुमानाभ्यां वन्दितो भगवान्। धर्मलाभयित्वा भणिताश्च तेन—कुमार! विज्ञाय भवतः प्रतिबोधसमयं राजपुरादहमत्रागतः। सम्पन्नं च मे यथाऽभिलषितम्। ततस्तत्रैव गच्छामि। तिष्ठन्ति तत्र मम दर्शनोत्सुका बहवः साधवः। पुनरयोध्यायां मम भविता दर्शनम्। सर्वथा दृढव्रतेन भवितव्यम्। कुमारेण

वृत्तान्त है जो कनकपुर में मैंने राजा से कहा था। मार्ग दिखलाने से लेकर इस भव की अवस्था पर्यन्त (यह मेरा वृत्तान्त है)।' ॥८८४-६४५॥

यह सुनकर सभी को वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने सोचा कि मोह की चेष्टा इस प्रकार परिणाम में भयंकर है। संसाररूपी समुद्र में गुरु-वचनों के अनुसार निश्चय करना अक्षय जहाज के समान है, ऐसा सोचकर भगवान् की वन्दना की। भगवान् के द्वारा अपना वृत्तान्त कहे जाने से हम लोग अनुगृहीत हैं—इस प्रकार आदरपूर्वक अभिनन्दन किया। गुणचन्द्र ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—'भगवन्! मैंने भगवान् के प्रभाव से सही धर्म जाना, मिथ्याविकल्प नष्ट हुए, भगवान् के चरणों की आराधना की इच्छा उत्पन्न हुई अतः मुझे गृहस्थ धर्म के योग्य व्रतों को दीजिये।' विग्रह ने कहा—'भगवन्! मुझे भी (श्रावक के व्रत) दीजिये।' भगवान् ने श्रावक के व्रत दिये। विधिपूर्वक व्रत ग्रहण किये। भावपूर्वक श्रावक हो गये। भक्ति और आदरपूर्वक भगवान् की वन्दना की। धर्मलाभ देकर (भगवान् ने) उससे कहा—'कुमार! आपके प्रतिबोधन का समय जानकर राजपुर से मैं यहाँ आया और मेरा अभीष्ट कार्य सम्पन्न हो गया। अतः वहीं जाता हूँ। वहाँ पर मेरे दर्शन के इच्छुक बहुत से साधु बैठे हैं। अयोध्या में पुनः मेरे दर्शन होंगे। सर्वथा दृढ़व्रत वाले होओ।' कुमार ने कहा—'जो भगवान् आज्ञा दें।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आणवेइ। आगासगमणेण समं सेससाहूहिं पयट्टो गुरू। वंदिओ कुमारविग्गहेहिं पुलइओ य भत्ति-निब्भरेहिं। अदंसणीहूए य वंदिऊण परमभत्तीए पयट्टा अओज्झाउरिं।

इओ य तद्दियहमेव गओ अओज्झं वाणंतरो। कया णेग कुमारपरियणासन्ने कवडवत्ता, जहा 'विग्गहेण वावाइओ कुमारो' त्ति। समागया एसा सवणपरंपराए मेत्तीबलकण्णगोयरं, न सद्दहिया य णेण, सुया रयणवईए। मुच्छिया एसा, समासासिया परियणेण। निवेइयं च रन्नो। समागओ राया, बाहोल्ललोयणं चलणेसु निवडिऊण विन्नत्तो रयणवईए – ताय, अणुजाणाहि मं मंदभाइणिं, पविसामि जलणं, परिच्चयामि एए अज्जउत्ताकुसलसवणे वि संठिए निल्लज्जपाणे, पावेमि लहुं सुरलोयसंठियं अज्जउत्तं। राइणा भणियं—अविहवे, अलमिमिणा सोएण। असद्दहणीयमेयं। न खलु केसरी गोमाउणा वावाइज्जइ। समाइट्ठो कुमारस्स सिद्धाएसेण तुह पुत्तजम्मो; अवितहाएसो य सिद्धाएसो। अणाउलं च मे हिययं। दिट्ठो य मए कुसलसुविणओ। कुमारमंतरेण न जाया उप्पाया। अविवन्ना य तुह अविहवासिरी। ता न एयममंगलं एवं हवइ। जम्मंतरवेरिएण केणावि एसा कवडवत्ता कया भविस्सइ।

भणितम्—यद् भगवान् आज्ञापयति। आकाशगमनेन समं शेषसाधुभिः प्रवृत्तो गुरुः। वन्दितः कुमार-विग्रहाभ्यां प्रलोकितश्च भक्तिनिर्भराभ्याम्। अदर्शनीभूते च वन्दित्वा परमभक्त्या प्रवृत्तौ अयोध्यापुरीम्।

इतश्च तद्दिवस एव गतोऽयोध्यां वानमन्तरः। कृताऽनेन कुमारपरिजनासन्ने कपटवार्ता, यथा 'विग्रहेण व्यापादितः कुमारः' इति। समागतैषा श्रवणपरम्परया मैत्रीबलकर्णगोचरम्, न श्रद्धिता च तेन। श्रुता रत्नवत्या। मूर्च्छितैषा, समाश्वासिता परिजनेन। निवेदितं च राज्ञः। समागतो राजा, बाष्पार्द्रलोचनं चरणयोर्निपत्य विज्ञप्तो रत्नवत्या—तात! अनुजानीहि मां मन्दभागिनीम्, प्रविशामि ज्वलनम्, परित्यजाम्येतानार्यपुत्राकुशलश्रवणेऽपि संस्थितान् निर्लज्जप्राणान्, प्राप्नोमि लघु सुरलोकसंस्थितमार्यपुत्रम्। राज्ञा भणितम्—अविधवे! अलमनेन शोकेन, अश्रद्धानीयमेतद्। न खलु केसरी गोमायुना व्यापाद्यते। समादिष्टः कुमारस्य सिद्धादेशेन तव पुत्रजन्म, अवितथादेशश्च सिद्धादेशः। अनाकुलं च मे हृदयम्। दृष्टश्च मया कुशलस्वप्नः। कुमारमन्तरेण न जाता उत्पाताः। अविपन्ना च तवाविधवाश्रीः। ततो नैतदमङ्गलमेवं भवति। जन्मान्तरवैरिकेन

आकाशगमन से शेष साधुओं के साथ गुरु चले गये। कुमार और विग्रह ने नमस्कार किया और भक्ति से भरे हुए होकर (उन्हें) देखा। उनके दृष्टि से ओझल हो जाने पर परमभक्ति से वन्दना कर दोनों अयोध्यापुरी आ गये।

इधर उसी दिन वानमन्तर अयोध्या गया। इसने कुमार के परिजनों के समीप कपटवार्ता की कि 'विग्रह ने कुमार को मार डाला।' कानों-कान यह बात मैत्रीबल ने सुनी, उसने विश्वास नहीं किया। रत्नवती ने सुनी। यह (रत्नवती) मूर्च्छित हो गई, परिजनों ने सान्त्वना दी और राजा से निवेदन किया। राजा आया। (तब) आँखों में आँसू भरकर चरणों में गिरकर रत्नवती ने निवेदन किया—'तात! मुझ मन्दभागिनी को आज्ञा दो, अग्नि में प्रवेश करूँगी, आर्यपुत्र का अकुशल सुनने पर भी स्थित इन निर्लज्ज प्राणों का परित्याग करूँगी और शीघ्र ही देवलोक में स्थित आर्यपुत्र को प्राप्त करूँगी।' राजा ने कहा—'सौभाग्यवती! इस शोक से बस अर्थात् यह शोक करना व्यर्थ है, यह बात विश्वास करने के योग्य नहीं है। निश्चित रूप से सिंह सियार के द्वारा नहीं मारा जाता है। सिद्धादेश ने कुमार का तुम्हारे पुत्र-जन्म कहा है और सिद्धादेश सत्यवचनवाले हैं। मेरा हृदय आकुल नहीं है। मैंने शुभस्वप्न देखा है। कुमार के मध्य उत्पात नहीं हुए। तुम्हारी सौभाग्यलक्ष्मी जीवित है। अतः यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता परिच्चय तुमं इणमसव्ववसायं। अहावि कहंचि अचिंतसामत्थयाए देव्वस्स इयमेवं चेव, तओ सव्वेसिं चेव अम्हाणमियं पत्तकालं। कीस तुमं आउला। पेसिओ य मए अज्ज पवणगइनामो लेहवाहओ। सो अवस्सं पंचदियहब्भंतरे आगच्छइ। तओ समागए तम्मि जहाजुत्तं करेस्सामो। न ताव अंतरे संतप्पियव्वं ति। रयणवईए भणियं—जं ताओ आणवेइ। तहावि विन्नवेमि तायं। तायाएसेण करेमि अहं संतियम्मं, देमि महादाणं, पूएमि देवयाओ, परिच्चएमि अज्जउत्तकुसलपउत्तिकालादारओ आहारगहणं ति। राइणा भणियं—करेहि वच्छे, न एत्थ दोसो त्ति। रयणवईए भणियं—ताय, महापसाओ। तओ 'अविहवा हवसु' त्ति भणिऊण गओ मेत्तीबलो। पारद्धं च णाए जहोचियं संतियम्मं। दिट्ठा य सव्वसंपया संपूयणगयाए वियारभूमिपडिणियत्ता अइक्कल्लणाए आगिईए परिचत्ता वियारेहिं संगया नाणजोएण समद्धासिया तवसिरीए गहिया उवसमेण परिणया भावणाए परियरिया साहुणीहिं विग्गहवई विय चरणसंपया सेयवियाहिवस्स धूया कोसलाहिवस्स पत्ती गिहत्थपरियाएण सुसंगया नाम गणिणी। तं च दट्ठूण पणट्ठो विय रयणवईए सोओ, आणंदिया चित्तेण

केनापि एषा कपटवार्ता कृता भविष्यति। ततः परित्यज त्वमिममसद्व्यवसायम्। अथापि कथञ्चिदचिन्त्यसामर्थ्यतया दैवस्येदमेवमेव, ततः सर्वेषामेवास्माकमिदं प्राप्तकालम्। कस्मात् त्वमाकुला। प्रेषितश्च मयाऽद्य पवनगतिनामा लेखवाहकः। सोऽवश्यं पञ्चदिवसाभ्यन्तरे आगच्छति। ततः समागते तस्मिन् यथायुक्तं करिष्यामः। न तावदन्तरे सन्तप्तव्यमिति। रत्नवत्या भणितम्—यत् तात आज्ञापयति, तथापि विज्ञपयामि तातम्। तातादेशेन करोम्यहं शान्तिकर्म, ददामि महादानम्, पूजयामि देवताः, परित्यजाम्यार्यपुत्रकुशलप्रवृत्तिकालादारत आहारग्रहणमिति। राज्ञा भणितम्—कुरु वत्से! नात्र दोष इति। रत्नवत्या भणितम्—तात! महाप्रसादः। ततः 'अविधवा भव' इति भणित्वा गतो मैत्रीबलः। प्रारब्धं च तया यथोचितं शान्तिकर्म। दृष्टा च सर्वसम्पदा सम्पूजनगतया विचारभूमिप्रतिनिवृत्ता अतिकल्याण्याऽऽकृत्या परित्यक्ता विकारैः संगता ज्ञानयोगे समध्यासिता तपःश्रिया गृहीता उपशमेन परिणता भावनया परिकरिता साध्वीभिर्विग्रहवतीव चरणसम्पद् श्वेतविकाधिपस्य दुहिता कोशलाधिपस्य पत्नी गृहस्थपर्यायेण सुसङ्गता नाम गणिनी। तां च दृष्ट्वा

इस प्रकार का अमंगल नहीं हो सकता है। दूसरे जन्म के किसी वैरी ने यह कपटवार्ता की होगी। अतः तुम इस असत्कार्य को छोड़ो। फिर कथंचित् दैव की सामर्थ्य से यह ऐसा ही हो तो हम सभी की ही मृत्यु उपस्थित हुई है। तुम आकुल क्यों हो? मैंने आज पवनगति नाम का लेखवाहक भेजा है। वह अवश्य ही पाँच दिन में आ जायेगा। अनन्तर, उसके आ जाने पर, योग्य कार्य करेंगे। बीच में दुःखी नहीं होना चाहिए।' रत्नवती ने कहा—'जो पिताजी की आज्ञा, तथापि पिताजी से निवेदन करती हूँ कि पिताजी के आदेश से मैं शान्तिकर्म करती हूँ, महादान देती हूँ, देवताओं की पूजा करती हूँ। आर्यपुत्र की कुशलता आने तक मैं आहार लेने का परित्याग करती हूँ।' राजा ने कहा—'पुत्री करो, इसमें दोष नहीं है।' रत्नवती ने कहा—'पिताजी, बहुत बड़ी कृपा की।' अनन्तर 'सौभाग्यवती होओ' ऐसा कहकर मैत्रीबल चला गया। रत्नवती ने यथायोग्य शान्तिकर्म आरम्भ किया तब समस्त सम्पदाओं के साथ पूजन करते हुए गृहस्थ अवस्था में श्वेतविका के राजा की पुत्री, कोशलराज की पत्नी सुसंगता नामक गणिनी को देखा। वह विचार की भूमि से लौटी हुई थीं, उनकी आकृति अत्यन्त कल्याणमय थी, विकारों ने उन्हें छोड़ दिया था, ज्ञानयोग से वह युक्त थीं, तपरूप लक्ष्मी से समन्वित थीं, उपशम ने उन्हें ग्रहण कर लिया था, भावना के द्वारा वह परिणत थीं, साध्वियाँ उन्हें घेरे हुए थीं। (इस प्रकार) मानो वह

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

उल्लसियं अत्तवीरियं, वियंभिओ धम्मववसाओ। चिंतियं च णाए—अहो भयवईए रूवसंपया, अहो विसयविराओ, अहो परिच्छेयकुसलया, अहो कयत्थत्तणं ति। ता धन्ना अहं, जीए मए अच्चंतं अउव्वदंसणा संपिंडिया विय गुणसमिद्धी विग्गहवई विय सव्वसंपया दंसणमेत्तेणावि पावनासणी भयवई दिट्ठ त्ति। पवड्ढमाणसुहज्झाणसंगयाए य गंतूण सविणयं गणिणीसमीवं वंदिया गणिणी। धम्मलाहिया य णाए। पुणो य सायरं वंदिऊण जंपियं रयणवईए—भयवइ, 'दुहियसत्तवच्छला तुमं' ति विन्नवेमि भयवइं। जइ न कोइ विरोहो, ता करेहि मे पसायं गेहागमणेण ति। अच्चंतदुक्खिया अहं, जाओ य मे ईसि दुक्खोवसमो तुह दंसणेणं, वियंभिओ पमोओ, विइयधम्मसत्था य भयवई। ता इच्छामि तुह समीवे किंचि सोउं ति। गणिणीए भणियं—धम्मसीले, धम्मदेसणानिमित्तं नत्थि विरोहो, किं तु रक्खियव्वं सेसजणापत्तियाइ। रयणवईए भणियं—भयवइ, धम्मसद्धापरो मे गुरुयणो, न तत्थ अप्पत्तियाइ संभवइ। गणिणीए भणियं—जइ एवं, ता तुमं पमाणं ति। रयणवईए भणियं—भयवइ, महापसाओ। ता एहि, गच्छम्ह। गया सह रयणवईए गणिणी, पविट्ठा रयणवइगेहं। कओ य णाए संभमा-

---

प्रनष्ट इव रत्नवत्याः शोकः, आनन्दिता चित्तेन, उल्लसितमात्मवीर्यम्, विजृम्भितो धर्मव्यवसायः। चिन्तितं च तया—अहो भगवत्या रूपसम्पद्, अहो विषयविरागः, अहो परिच्छेदकुशलता, अहो कृतार्थत्वमिति। ततो धन्याऽहम्, यया मयाऽत्यन्तमपूर्वदर्शना सम्पिण्डितेव गुणसमृद्धिः, विग्रहवतीव सर्वसम्पद्, दर्शनमात्रेणापि पापनाशनी भगवती दृष्टेति। प्रवर्धमानशुभध्यानसङ्गतया च गत्वा सविनयं गणिनीसमीपं वन्दिता गणिनी। धर्मलाभिता च तया। पुनश्च सादरं वन्दित्वा जल्पितं रत्नवत्या—'भगवति! दुःखितसत्त्ववत्सला त्वम्' इति विज्ञपयामि भगवतीम्। यदि न कोऽपि विरोधः, ततः कुरु मे प्रसादं गृहागमनेनेति। अत्यन्तदुःखिताऽहम्, जातश्च मे ईषद् दुःखोपशमस्तव दर्शनेन, विजृम्भितः प्रमोदः, विदितधर्मशास्त्राश्च भगवती। तत इच्छामि तव समीपे किञ्चित् श्रोतुमिति। गणिन्या भणितम्—धर्मशीले! धर्मदेशनानिमित्तं नास्ति विरोधः, किन्तु रक्षितव्यं शेषजनाप्रीत्यादि। रत्नवत्या भणितम्—भगवति! धर्मश्रद्धापरो मे गुरुजनः, न तत्राप्रीत्यादि सम्भवति। गणिन्या भणितम्—यद्येवं ततस्त्वं प्रमाणमिति। रत्नवत्या भणितम्—भगवति! महाप्रसादः। तत एहि, गच्छावः। गता सह रत्नवत्या गणिनी, प्रविष्टा रत्नवतीगृहम्। कृतश्च तया सम्भ्रमातिशये-

---

शरीरधारिणी चारित्र-सम्पदा थीं। उन्हें (गणिनी को) देखकर रत्नवती का शोक मानो नष्ट हो गया, चित्त आनन्दित हुआ, आत्मशक्ति विकसित हुई, धर्म का निश्चय बढ़ा और उसने (रत्नवती ने) सोचा—'ओह! भगवती की रूपसम्पदा, ओह विषयों के प्रति विराग, ओह जानने की कुशलता, ओह कृतार्थता। अतः मैं धन्य हूँ जो मैंने अत्यन्त अपूर्व दर्शनवाली, गुणों की समृद्धि के पिण्ड के समान, शरीरधारिणी समस्त सम्पदाओं के समान, दर्शनमात्र से पाप को नाश करनेवाली भगवती को देखा। बढ़े हुए शुभध्यान से युक्त हो विनयपूर्वक जाकर गणिनी को नमस्कार किया। उन्होंने (गणिनी ने) धर्मलाभ दिया। पुनः सादर नमस्कार कर रत्नवती ने कहा—'भगवती! आप दुःखी प्राणियों के प्रति स्नेह रखनेवाली हैं, अतः भगवती से निवेदन कर रही हूँ, यदि कोई विरोध न हो तो भगवती घर पधारने की कृपा करें। मैं अत्यन्त दुःखी हूँ और आपके दर्शन से मेरा दुःख कुछ शान्त हुआ है, हर्ष बढ़ा है तथा भगवती धर्मशास्त्रों की ज्ञाता हैं अतः आपके समीप कुछ सुनना चाहती हूँ।' गणिनी ने कहा—'धर्मशीले! धर्मोपदेश के लिए विरोध नहीं है; किन्तु दूसरे लोगों की अप्रीति आदि से रक्षा करना।' रत्नवती ने कहा—'भगवती! मेरे माता-पिता धर्म के प्रति श्रद्धावान् हैं अतः वहाँ अप्रीति की सम्भावना नहीं है।' गणिनी ने कहा—'यदि ऐसा है तो तुम प्रमाण हो।' रत्नवती ने कहा—'भगवती! बड़ी कृपा की। तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसएणमुचिओवयारो। उवविट्ठा गणिणी पुरओ य से सपरियणा रयणवइ त्ति।

गणिणीए भणियं—वच्छे, संसारसमावन्ना खु पाणिणो सव्वे दुक्खतरुबीयजम्मसंगया अहिहवीयंति अणुसमयं जराए, उत्थारिज्जंति मोहतिमिरेण, बाहिज्जंति विसयतण्हाए, कयत्थिज्जंति इंदिएहिं, पच्चंति काहग्गिणा, अवट्ठभंति माणपव्वएणं, मोहिज्जंति मायाजालियाए, पलाविज्जंति लोहसायरेण खंडिज्जंति इट्ठविओएहिं, भमाडिज्जंति कालपरिणईए, कवलिज्जंति मच्चुण त्ति। परमत्थओ न केइ सुहिया मोत्तूण तप्पडिवक्खुज्जए महाणुभावे। ते उण, जहा केइ महावाहिगहिया पीडिज्जमाणा महावेयणाए समावन्ननिव्वेया गवेसिऊण कुसलवेज्जं निवेइऊण अप्पाणयं तस्स वयणेण पडिवन्ना जहुत्तकिरियं बाहिज्जमाणा वि तव्वेयणाए विमुच्चमाणा वाहिणा अंतो—आरोग्गलाहधिईए अगणेमाणा तं बज्झदुक्खं ईसि अविमुक्का वि वाहिणा संजायविमोक्खनिच्छयमई आरोग्गसमेया विय न खलु नो सुहिया ववहारेण; तहा जे इमे भयवंतो मुणिवरा ते संसारमहावाहिगहिय त्ति पीडिज्जमाणा जम्माइमहावेयणाए समावन्ननिव्वेया गवेसिऊण भावओ

नोचितोपचारः। उपविष्टा गणिनी, पुरतश्च तस्याः सपरिजना रत्नवती ति।

गणिन्या भणितम्—वत्से! संसारसमापन्नाः खलु प्राणिनः सर्वे दुःखतरुबीजजन्मसङ्गता अभिभूयन्तेऽनुसमयं जरया, आक्रम्यन्ते मोहतिमिरेण, बाध्यन्ते विषयतृष्णया, कदर्थ्यन्ते इन्द्रियैः, पच्यन्ते क्रोधाग्निना, अवष्टभ्यन्ते मानपर्वतेन, मुह्यन्ते मायाजालिकया, प्लाव्यन्ते लोभसागरेण, खण्ड्यन्ते इष्टवियोगैः, भ्राम्यन्ते कालपरिणत्या, कवल्यन्ते मृत्युनेति। परमार्थतो न केऽपि सुखिता मुक्त्वा तत्प्रतिपक्षोद्यतान् महानुभावान्। ते पुनर्यथा केऽपि महाव्याधिगृहीता पीड्यमाना महावेदनया समापन्ननिर्वेदा गवेषयित्वा कुशलवैद्यं निवेद्यात्मानं तस्य वचनेन प्रतिपन्ना यथोक्तक्रियां बाध्यमाना अपि तद्वेदनया विमुच्यमाना व्याधिना अन्त आरोग्यलाभधृत्याऽगणयन्तो तद् बाह्यदुःखमीषदविमुक्ता अपि व्याधिना संजातविमोक्षनिश्चयमतिरारोग्यसमेता इव न खलु न सुखिता व्यवहारेण, तथा ये इमे भगवन्तो मुनिवरास्ते संसारमहाव्याधिगृहीता इति पीड्यमाना जन्मादिमहावेदनया

आओ चलें।' गणिनी रत्नवती के साथ गयीं और रत्नवती के घर में प्रविष्ट हुई। उसने (रत्नवती ने) घबड़ाहट की अधिकता से योग्य सेवा की। गणिनी बैठीं और उनके सामने ही परिजनों के साथ रत्नवती भी बैठ गयी।

गणिनी ने कहा—पुत्री! संसार में आये हुए सभी प्राणी दुःख रूपीवृक्ष के बीजस्वरूप जन्म से युक्त होकर प्रति समय बुढ़ापे से आक्रान्त होते हैं, मोहरूपी अन्धकार से आक्रान्त होते हैं, विषय तृष्णा से बाधित होते हैं, इन्द्रियों से तिरस्कृत होते हैं, क्रोधरूपी अग्नि से पकाये जाते हैं, मानरूपी पर्वत से रोके जाते हैं, मायाजाल से मोहित होते हैं, लोभ-सागर से आप्लावित होते हैं, इष्ट वियोगों से खण्डित होते हैं, काल की परिणति से भ्रमित होते हैं और मृत्यु के द्वारा ग्रास बनाये जाते हैं। संसार के विरोधी मोक्षमार्ग में उद्यत महानुभावों को छोड़कर यथार्थ रूप से कोई भी सुखी नहीं है। वे जैसे कोई महारोग से ग्रसित होकर पीड़ित होते हुए महावेदना से विरक्ति प्राप्त करते हैं और कुशलवैद्य को खोजकर (उससे) अपना निवेदन करते हैं और फिर कहे हुए वैद्य के वचनानुसार उसकी क्रिया को प्राप्त करते हैं, तब फिर उस वेदना से बाधा किये जाते हुए भी व्याधि से मुक्त हुए अन्त में आरोग्य-लाभ होने के धैर्य के कारण उस बाह्य दुःख को दुःख न मानकर रोग से कुछ अविमुक्त होने पर भी वे छुटकारे का निश्चय करते हैं—इस तरह वे निश्चित रूप से आरोग्ययुक्त के समान व्यवहार से सुखी नहीं होते हैं, ऐसा नहीं है अर्थात् व्यवहार से वे सुखी होते हैं। उसी प्रकार जो भगवान् मुनिश्रेष्ठ हैं वे संसार रूपी महारोग से गृहीत हैं अतः जन्मादि वेदना से पीड़ित हो विरक्ति प्राप्त करते हैं तब भाव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुसलवेज्जं भयवंतं वोयरायं तदुवएसमुट्ठियं वा गुरुं निवेइऊणमप्पाणयं तस्स वयणेण पडिवन्ना सव्वदुक्खनिवारणि संजमकिरियं वाहिज्जमाणा वि परीसहोवसग्गवेयणाए विमुच्चमाणा महामोह-वाहिणा अंतो – पसमारोग्गलाभधिईए अगणेमाणा तं परीसहादिबज्झदुक्खं ईसि अविमुक्का वि संकिलेसवाहिणा परमगुरुवीयरागाणासेवणाए संजायविमोक्खनिच्छमई सयलाबाहाखयसमुब्भूयपरम-पणिहाणभावारोग्गसमेया वोयराया विय न खलु नो सुहिया निच्छएण। जओ पणट्ठं तेसिं मोह-तिमिरं,आविब्भूयं सम्मनाणं, नियत्तो असग्गहो, परिणयं संतोसामयं, अवगया असक्किरिया, तुट्टपाया भववल्ली, थिरोहूयं झाणरयणं, आसन्नं परमसिवसुहं। ता एवं परमत्थचिंताए थेवा एत्थ सुहिया बहवे उण दुक्खिय त्ति। लोयदिट्ठीए उ वच्छे अन्नारिसे सुहदुक्खे। लोएहिं जम्मजरामरणघत्था वि पाणिणो आहाराइसंपत्तिमेत्तेण कूरवाहसरगोयरगया विय हरिणया जवसाइसंपत्तीए चेव सुहिय त्ति वुच्चंति, अन्नहा दुक्खिया। ण य इमं दिट्ठिमहिगिच्च तुह दुक्खियत्ते कारणमवगच्छामि। साहेहि

समापन्ननिर्वेशं गवेषयित्वा भावतः कुशलवैद्यं भगवन्तं वीतरागं तदुपदेशसमुत्थितं वा गुरुं निवेद्या-त्मानं तस्य वचनेन प्रतिपन्नाः सर्वदुःखनिवारणीं संयमक्रियां बाध्यमाना अपि परिषहोपसर्गवेदनया विमुच्यमाना महामोहव्याधिना अन्त उपशमारोग्यलाभधृत्याऽगणयन्तस्तं परिषहादिबाह्यदुःख-मीषदविमुक्ता अपि संक्लेशव्याधिना परमगुरुवीतरागाज्ञासेवनया सञ्जातविमोक्षनिश्चयमतिः सकलाबाधाक्षयसमुद्भूतपरमप्रणिधानभावारोग्यसमेता वीतरागा इव न खलु नो सुखिता निश्चयेन। यतः प्रनष्टं तेषां मोहतिमिरम्, आविर्भूतं सम्यग्ज्ञानम्, निवृत्तोऽसद्ग्रहः, परिणतं संतोषामृतम्, अपगताऽसत्क्रिया, त्रुटितप्राया भववल्ली, स्थिरीभूतं ध्यानरत्नम्, आसन्नं परमशिवसुखम्। तत एवं परमार्थचिन्तायां स्तोका अत्र सुखिता बहवः पुनर्दुःखिता इति। लोकदृष्ट्या तु वत्से! अन्यादृशे सुखदुःखे, लोकैर्जन्मजरामरणग्रस्ता अपि प्राणिन आहारादि-सम्प्राप्तिमात्रेण क्रूरव्याधशरगोचरगता इव हरिणका यवसादिसम्प्राप्त्यैव सुखिता इत्युच्यन्ते, अन्यथा दुःखिताः। न चेमां दृष्टिमधिकृत्य तव दुःखितत्वे कारणमवगच्छामि। कथय वा यद्यकथनीयं न

पूर्वक कुशल वैद्य भगवान् वीतराग को खोजकर अथवा वीतराग भगवान् के उपदेश से पूर्णरीति से आरोग्यलाभ किये हुए गुरु से अपना निवेदन करते हैं और तब उनके वचनों के अनुसार समस्त दुःखों का निवारण करने वाली संयम-क्रिया को प्राप्त करते हैं। परिषह, उपसर्ग और वेदना से बाधित किए जाते हुए भी महामोहरूपी व्याधि से मुक्त होकर अन्त में आरोग्यलाभ होने के धैर्य से उस बाह्य परिषहादि दुःख को न मानते हुए भी संक्लेश रूप व्याधि से परमगुरु वीतराग की आज्ञा का सेवन कर मोक्ष के निश्चय की बुद्धि करते हैं और फिर समस्त बाधाओं के क्षय से उत्पन्न परम समाधिभाव रूप आरोग्य से युक्त होकर वीतरागों के निश्चय से समान सुखी न हों—ऐसा नहीं है अर्थात् सुखी होते ही हैं; क्योंकि उनका मोहरूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है, मिथ्या-ज्ञान छूट जाता है। सन्तोषरूपी अमृत पूर्णवृत्ति को प्राप्त हो जाता है, असत्क्रियाएँ दूर हो जाती हैं, संसार-रूपी लता प्रायः टूट जाती है, ध्यानरूपी रत्न स्थिर हो जाता है, उत्कृष्ट मोक्षरूपी सुख समीपवर्ती होता है। अतः इस संसार में इस प्रकार के परमार्थ की चिन्ता करनेवाले सुखी कम हैं और दुःखी ज्यादा हैं। हे बेटी! लौकिक दृष्टि से तो सुख और दुःख दोनों अन्य ही प्रकार के होते हैं। इस संसार में ही लोग जन्म, बुढ़ापा और मरण से ग्रस्त हुए प्राणियों को आहारादि की प्राप्ति मात्र से ही उसी प्रकार सुखी कहते हैं, जिस प्रकार दुष्ट बहेलिया के बाण का लक्ष्य बने हुए हरिणों को जौ आदि की प्राप्ति सुख मानी जाती है, नहीं तो वे दुःखी कहे जाते हैं। इस दृष्टि से मैं तुम्हारे दुःख का कारण नहीं जानती हूँ अथवा यदि अकथनीय न हो तो कहो। [रत्नवती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा, जइ अकहणीयं न होइ। गुणचंदपडिबद्धं साहियं रयणवईए। भणियं च णाए—भयवइ, जहा तए समाइट्ठं, तहेव परमत्थो। तहावि अज्जउत्ताकुसलसुमरणमवि पीडेइ मं मंदभाइणि। गणिणीए भणियं—वच्छे, न तस्स संपयमकुसलं ति, धीरा होहि। रयणवईए भणियं—कहं भयवई वियाणइ। गणिणीए भणियं—तुह सरविसेसाओ। रयणवईए भणियं—कीइसो मज्झ सरविसेसो। गणिणीए भणियं—जारिसो अविहवाए परमाणंदजोए भत्तुणो हवइ। रयणवईए भणियं—भयवइ, न तए कुप्पियव्वं, भणामि किंचि अहमाउलयाए। गणिणीए भणियं—वच्छे, अकोवणो चेव तस्सिजणो होइ, किमेत्थमब्भत्थणाए। रयणवईए भणियं—भयवइ, जइ एवं ता को एत्थ पच्चओ, जं भयवईए आइट्ठं ति। गणिणीए भणियं—वच्छे, अलमेत्थ पच्चएण। न य वीयरागवयणमन्नहा होइ। वीयरागवयणं च सरमंडलं। तदाएसेण य जंपियमिणं, न उण अन्नहा; तहावि एसो एत्थ पच्चओ त्ति सिग्घं तुहाव-गमणनिमित्तं भणामि किंचि अहयं। न तए खिज्जियव्वं। रयणवईए भणियं—आणवेउ भयवई। गणिणीए भणियं—सुण, एवं विहसरवईए नारीए गुज्झपएसे मसो हवइ त्ति सरमंडले पढियं। एत्थ

भवति। [रत्नवत्या भणितं—किं भगवत्या अप्यकथनीयं वस्त्वस्ति इति] गुणचन्द्रप्रतिबद्धं कथितं रत्नवत्या। भणितं च तया—भगवति! यथा त्वया समादिष्टं तथैव परमार्थः तथाप्यार्यपुत्राकुशलस्मरणमपि पीडयति मां मन्दभागिनीम्। गणिन्या भणितम्—वत्से! न तस्य साम्प्रतमकुशलमिति, धीरा भव। रत्नवत्या भणितम्—कथं भगवती विजानाति। गणिन्या भणितम्—तव स्वरविशेषात्। रत्नवत्या भणितम्—कीदृशो मम स्वरविशेषः। गणिन्या भणितम्—यादृशोऽविधवायाः परमानन्दयोगे भर्तुर्भवति। रत्नवत्या भणितम्—भगवति! न त्वया कुपितव्यम्, भणामि किञ्चिदहमाकुलतया। गणिन्या भणितम्—वत्से! अकोपन एव तपस्विजनो भवति, किमत्राभ्यर्थनया। रत्नवत्या भणितम्—भगवति! यद्येवं ततः कोऽत्र प्रत्ययः, यद् भगवत्याऽऽदिष्टमिति। गणिन्या भणितम्—वत्से! अलमत्र प्रत्ययेन। न च वीतरागवचनमन्यथा भवति। वीतरागवचनं स्वरमण्डलम्, तदादेशेन च जल्पितमिदम्, न पुनरन्यथा, तथाप्येषोऽत्र प्रत्यय इति शीघ्रं तवावगमननिमित्तं भणामि किञ्चिदहम्, न त्वया खेत्तव्यम्। रत्नवत्या भणितम्—आज्ञापयतु भगवती। गणिन्या भणितम्—शृणु, एवंविधस्वरवत्या नार्या गुह्यप्रदेशे मषो भवतीति स्वरमण्डले पठितम्। अत्र च त्वं प्रमाणमिति। रत्नवत्या भणितम्—

ने कहा—क्या भगवती से भी कोई अकथनीय वस्तु है?] रत्नवती ने गुणचन्द्र के विषय में कहा। उसने [रत्नवती ने] कहा—'भगवती! जैसा आपने उपदेश दिया, वैसा ही परमार्थ है तथापि आर्यपुत्र के अकुशल का स्मरण भी मुझ मन्दभाग्यवाली को पीडित करता है।' गणिनी ने कहा—'पुत्री! इस समय उनका अकुशल नहीं है, धीर होओ।' रत्नवती ने कहा—'भगवती कैसे जानती हैं?' गणिनी ने कहा—'तुम्हारे स्वर विशेष से!' रत्नवती ने कहा—'मेरा स्वर विशेष कैसा है?' गणिनी ने कहा—'जैसा पति के परम आनन्द के योग में सौभाग्यवती का होता है।' रत्नवती ने कहा—'भगवती! आप कुपित न हों, मैं कुछ आकुलता से कह रही हूँ।' गणिनी ने कहा—'पुत्री! तपस्वीजन क्रोध न करनेवाले ही होते हैं। इस विषय में प्रार्थना से क्या।' रत्नवती ने कहा—'भगवती! यदि ऐसा है तो भगवती ने जो कहा उसमें क्या प्रमाण है?' गणिनी ने कहा—'इसमें प्रमाण की क्या बात है? वीतराग के वचन अन्यथा नहीं होते हैं। वीतराग का वचन स्वरसमूह है, उसके आदेश से ही यह कहा, दूसरे प्रकार से नहीं, तो भी यह प्रमाण है, शीघ्र ही तुम्हारे आने के विषय में मैं कुछ कहती हूँ, तुम खेद मत करो। रत्नवती ने कहा—'जो भगवती आज्ञा दें।' गणिनी ने कहा—'सुनो। इस प्रकार के स्वरवाली स्त्री के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

य तुमं पमाणं ति । रयणवईए भणियं—एवमेयं; किं तु मरिसेउ भयवई, जं मए आउलाए वियप्पियं। गणिणीए भणियं—न एत्थ दोसो, नेहाउला हि पाणिणो एवंविहा चेव हवंति । किं तु तए वि मरिसियव्वं, जं मए तुह सिग्घपडिवत्तिनिमित्तमेवं जंपियं ति । रयणवईए भणियं—भयवइ, अणुग्गहे का मरिसावणा । अवणीओ मम महासोओ भयवईए इमिणा जंपिएण । किं तु पुच्छामि भगवइं, कस्स उण कम्मस्स ईइसो महारोद्दो विवाओ त्ति । गणिणीए भणियं—वच्छे, थेवस्स अन्नाणचेट्ठियस्स । कीइसी वा इमस्स रोद्दया । सुण, थेवेण कम्मुणा जं मए पावियं ति । रयणवईए भणियं—भयवइ, महंतो मे अणुग्गहो; दढमवहिय म्हि । गणिणीए भणियं—अत्थि कोसलाहिवो नरसुंदरो नाम राया । तस्साहमिमं जम्मपरियायं पडुच्च धम्मपत्ती अहेसि । सो य एगया गओ आसवाहणियाए । अवहिओ दप्पियतुरएण विच्छूढो महाडवीए । दिट्ठा य णेण मज्झण्हदेसयाले तीए महाडवीए एगम्मि वणनिउंजे अउव्वदसणा इत्थिया । भणिओ य तीए—महाराय, सागयं, उवविससु त्ति । राइणा भणियं—कासि तुमं को वा एस पएसो त्ति । तीए भणियं—मणोहरा नाम जक्खिणी अहं, विंझरण्णं च एयं । राइणा

एवमेतद्, किन्तु मर्षयतु भगवती, यन्मयाऽऽकुलया विकल्पितम् । गणिन्या भणितम्—नात्र दोषः, स्नेहाकुला हि प्राणिन एवंविधा एव भवन्ति । किंतु त्वयापि मर्षयितव्यम्, यन्मया तव शीघ्रप्रतिपत्तिनिमित्तमेवं जल्पितमिति । रत्नवत्या भणितम्—भगवति ! अनुग्रहे का मर्षणा । अपनीतो मम महाशोको भगवत्याऽनेन जल्पितेन । किन्तु पृच्छामि भगवतीम्, कस्य पुनः कर्मण ईदृशो महारौद्रो विपाक इति । गणिन्या भणितम्—वत्से ! स्तोकस्याज्ञानचेष्टितस्य । कीदृशी वाऽस्य रौद्रता । शृणु, स्तोकेन कर्मणा यन्मया प्राप्तमिति । रत्नवत्या भणितम्—भगवति ! महान्मेऽनुग्रहः, दृढमवहिताऽस्मि । गणिन्या भणितम्—अस्ति कोशलाधिपो नरसुन्दरो नाम राजा । तस्याहमिमं जन्मपर्यायं प्रतीत्य धर्मपत्न्यासीद् । स चैकदा गतोऽश्ववाहनिकया । अपहृतो दर्पिततुरगेन विक्षिप्तो महाटव्याम् । दृष्टा च तेन मध्याह्नदेशकाले तस्या महाटव्या एकस्मिन् वननिकुञ्जेऽपूर्वदर्शना स्त्री । भणितश्च तया—महाराज ! स्वागतम्, उपविशेति । राज्ञा भणितम्—काऽसि त्वम्, को वा एष प्रदेश इति । तया भणितम्—मनोहरा नाम यक्षिण्यहम्, विन्ध्यारण्यं

गुह्यस्थान में मष होता है—ऐसा स्वरमण्डल में पढ़ा था। यहाँ पर तुम प्रमाण हो।' रत्नवती ने कहा—'ठीक है, किन्तु भगवती क्षमा करें जो कि मैंने आकुल होने के कारण संशय किया।' गणिनी ने कहा—'इसमें दोष नहीं है, स्नेहाकुल प्राणी निश्चित रूप से ऐसे ही होते हैं किन्तु तुम भी क्षमा करना जो कि शीघ्र जानकारी के लिए ऐसा कहा।' रत्नवती ने कहा—'भगवती ! अनुग्रह में क्षमा की क्या बात है ! भगवती ने इस कथन से मेरा महाशोक दूर कर दिया, किन्तु भगवती से पूछती हूँ कि किस कर्म का यह इस प्रकार का महाभयंकर फल है।' गणिनी ने कहा—'पुत्री ! थोड़ी-सी अज्ञान चेष्टा का यह फल है। इसकी भयंकरता कैसी ? सुनो, थोड़े-से कर्म से जो मैंने पाया।' रत्नवती ने कहा—'भगवती मेरे ऊपर यह आपकी बहुत बड़ी कृपा होगी, मैं अत्यधिक सावधान हूँ।' गणिनी ने कहा—कोशल देश का नरसुन्दर नाम का राजा था। उसकी मैं इस जन्म की धर्मपत्नी थी। एक बार वह घोड़े पर सवार होकर गया, अभिमानी घोड़ा (उसे) हर ले गया और महावन में छोड़ दिया। उस राजा ने मध्याह्नकाल में उस महावन के एक निकुंज में एक अपूर्वदर्शनवाली स्त्री देखी। स्त्री ने कहा—'महाराज ! स्वागत है, बैठो।' राजा ने कहा—'तुम कौन हो ? यह कौन-सा स्थान है ?' उसने कहा—'मैं मनोहरा नामक यक्षिणी हूँ और यह विन्ध्यवन है।' राजा ने कहा—'तुम यहाँ अकेली क्यों हो ?' उस यक्षिणी ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भणियं - कीस तुमं एत्थ एगागिणी । तीए भणियं—अहं खु नंदणाओ मलयं गया आसि सह पिययमेण । तओ आगच्छमाणीए इह पएसे निमित्तमंतरेण कुविओ मे पिययमो, गओ य मं उज्झिऊं । अओ एयाइणि त्ति । राइणा भणियं—न सोहणमणुचिट्ठियं दुवेहि पि तुब्भेहि । तीए भणियं - कहं विय । राइणा भणियं—जमुज्झिया पिययमेणं, तुमं पि जं तेण सह न गय त्ति । तीए भणियं —अलं तेणमविसेसन्नुणा । राइणा भणियं—भद्दे, न एस धम्मो सईण । तीए भणियं—कीइसं तस्स सइत्तणं, जो अणुरत्तं जणं परिच्चयइ । राइणा भणियं—भद्दे, कोऽणुरत्तं विणा दोसेण परिच्चयइ । तीए भणियं — जो अयाणुओ । एवं च भणिऊण सविलासमवलोइउं पवत्ता । अवहीरिया राइणा । मोहदोसेण विगयलज्जं भणियं च णाए—महाराय, इयाणि चेव जंपियं तए, जहा 'कोऽणुरत्तं विणा दोसेण परिच्चयइ' । अणुरत्ता य अहं भवओ । ता कीस तुमं अवहीरेसि । राइणा भणियं—भद्दे, मा एवं भण; परित्थिया तुमं । तीए भणियं—महाराय, पुरिसस्स सव्वा परा चेव इत्थिया होइ । राइणा भणियं — किमिमिणा जाइवाएण; परिच्चय इमं परलोयविरुद्धमालावं । तीए भणियं—अलियवयणं पि य परलोय-

---

चैतत् । राज्ञा भणितम्—कस्मात्त्वमत्रैकाकिनी । तया भणितम्—अहं खलु नन्दनाद् मलयं गताऽऽसीत् सह प्रियतमेन । तत आगच्छन्त्या इह प्रदेशे निमित्तमन्तरेण कुपितो मे प्रियतमः, गतश्च मामुज्झित्वा, अत एकाकिनीति । राज्ञा भणितम्—न शोभनमनुष्ठितं द्वाभ्यामपि युवाभ्याम् । तया भणितम्—कथमिव । राज्ञा भणितम्—यदुज्झिता प्रियतमेन, त्वमपि यत्तेन सह न गतेति । तया भणितम्—अलं तेनाविशेषज्ञेन । राज्ञा भणितम्—भद्रे ! नैष धर्मः सतीनाम् । तया भणितम्—कीदृशं तस्य सतीत्वं (सत्त्वम्), योऽनुरक्तं जनं परित्यजति । राज्ञा भणितम्—भद्रे ! कोऽनुरक्तं विना दोषेण परित्यजति । तया भणितम्—योऽज्ञायकः । एवं च भणित्वा सविलासमवलोकितुं प्रवृत्ता । अवधीरिता राज्ञा । मोहदोषेण विगतलज्जं भणितं च तया—महाराज ! इदानीमेव जल्पितं त्वया, यथा 'कोऽनुरक्तं विना दोषेण परित्यजति' । अनुरक्ता चाहं भवतः । ततः कस्मात्त्वमवधीरयसि । राज्ञा भणितम्—भद्रे ! मैवं भण, परस्त्री त्वम् । तया भणितम्—महाराज ! पुरुषस्य सर्वा परैव स्त्री भवति । राज्ञा भणितम्—किमनेन जातिवादेन, परित्यजेमं परलोकविरुद्धमालापम् । तया भणितम्—अलीकवचनमपि च परलोकविरुद्धमेव । राज्ञा भणितम्—किं मयाऽलीकं जल्पित-

---

कहा - 'मैं नन्दन वन से प्रियतम के साथ मलयवन जा रही थी । इस स्थान पर आकर बिना कारण ही मेरे प्रियतम कुपित हो गये और मुझे छोड़कर चले गये अतः एकाकिनी हूँ ।' राजा ने कहा—'आप दोनों ने ठीक नहीं किया ।' उस यक्षिणी ने कहा —'कैसे ?' राजा ने कहा—'जो प्रियतम से छोड़ी जाकर भी तुम उसके साथ नहीं गयीं । उसने कहा—'उस अविशेषज्ञ के साथ जाना व्यर्थ है ।' राजा ने कहा—'भद्रे ! यह सतियों का धर्म नहीं है ।' उसने कहा—'उसका सतीत्व कैसा जो अनुरक्त जन को त्याग देता है ?' राजा ने कहा—'अनुरक्त को बिना दोष के कौन त्यागता है ?' उस यक्षिणी ने कहा—'जो अज्ञानी होता है'— ऐसा कहकर सविलास देखने लगी । राजा ने उसकी अवज्ञा कर दी । मोह के दोष से लज्जा छोड़कर उसने कहा—'महाराज ! अभी अभी आपने कहा था कि 'कौन अनुरक्त व्यक्ति को बिना दोष के त्यागता है' और मैं आप पर अनुरक्त हूँ तथा आप क्यों तिरस्कार कर रहे हैं ?' राजा ने कहा—'भद्रे ! ऐसा मत कहो, तुम परस्त्री हो ।' उसने कहा -'महाराज ! पुरुष के लिए तो सभी परस्त्री हैं ।' राजा ने कहा—'इस प्रकार के जातिवाद से क्या, परलोक विरोधी इस बात को छोड़ो ।' उसने कहा —'झूठ बोलना भी परलोक के विरुद्ध है ।' राजा ने कहा—'मैंने क्या झूठ बोला ?' उसने कहा कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विरुद्धमेव। राइणा भणियं—किं मए अलियं जंपियं ति। तीए भणियं—जहा 'कोऽणुरत्तं विणा दोसेण परिच्चयइ'। राइणा भणियं—किमेत्थ अलियं ति। तीए भणियं—जं परिच्चयसि मं अणुरत्तं ति। राइणा भणियं—नाणुरत्ता तुमं, जेण मं अहिए निउंजसि। अओ चेव न दोसवज्जिया, जेण न परलोयं अवेक्खसि। तीए भणियं—किमिमिणा जंपिएण। जइ न माणेसि मं, तओ अहं नियमेण भवंतं वावाएमि। राइणा भणियं—भद्दे, को तए वावाईयइ। जो रंडाए पुरिसो वावाइज्जइ, तस्स जलंजलिदाणं पि न जुज्जइ त्ति। तओ पउट्ठा विय पहाविया रायसम्मुहं। हुंकारिया य णेण। जाया अद्दंसणा। तओ किमिमीए त्ति पयट्टो राया सनयराभिमुहं। समागओ थेवं भूमिभागं, जाव अयण्डम्मि चेव निवडिओ कंचणपायवो। न लग्गो राइणो। जोइयं च णेणोवरिहुत्तं। दिट्ठा य सा गयणमज्झे। भणियं च णाए—अरे दुरायार, केत्तिए वारे एवं छुट्टिहिसि। राइणा भणियं—आ पावे, अगोयरत्था तुमं; अन्नहा अवस्समहं तुमं निग्गहेमि। अदंसणीहूया एसा। देव्वजोएण तुरयमग्गाणुलग्गेण दिट्ठो निथसेन्नेण समागओ राया सनयरं। कयं वद्धावणयं। 'सव्वत्थावीसत्थो चिट्ठइ' त्ति पुच्छियं मए 'अज्जउत्त; किं निमित्तं'। तेण

मिति। तया भणितम्—यथा 'कोऽनुरक्तं विना दोषेण परित्यजति'। राज्ञा भणितम्—किमत्रालीकमिति। तया भणितम्—यत् परित्यजसि मामनुरक्तामिति। राज्ञा भणितम्—नानुरक्ता त्वम्, येन मामहिते नियोजयसि। अत एव न दोषवर्जिता, येन न परलोकमपेक्षसे। तया भणितम्—किमनेन जल्पितेन। यदि न मानयसि मां ततोऽहं नियमेन भवन्तं व्यापादयामि। राज्ञा भणितम्—भद्रे! कस्त्वया व्यापाद्यते। यो रण्डया पुरुषो व्यापाद्यते तस्य जलाञ्जलिदानमपि न युज्यते इति। ततः प्रद्विष्टेव प्रधाविता राजसम्मुखम्। हुंकारिता च तेन। जाताऽदर्शना। ततः किमनयेति प्रवृत्तो राजा स्वनगराभिमुखम्। समागतः स्तोकं भूमिभागम्, यावदकाण्डे एव निपतितः काञ्चनपादपः। न लग्नो राज्ञः। दृष्टं च तेनोपरिसम्मुखम्। दृष्टा च सा गगनमध्ये। भणितं चानया—अरे दुराचार! कियतो वारान् एवं छुटिष्यसि। राज्ञा भणितम्—आः पापे! अगोचरस्था त्वम्, अन्यथाऽवश्यमहं त्वां निगृह्णामि। अदर्शनीभूतैषा। दैवयोगेन तुरगमार्गानुलग्नेन दृष्टो निजसैन्येन समागतो राजा स्वनगरम्। कृतं वर्धापनकम्। 'सर्वत्राविश्वस्तस्तिष्ठति' इति पृष्टं मया 'आर्यपुत्र! किं निमित्तम्।'

'कौन अनुरक्त जन को बिना दोष के त्यागता है ?' राजा ने कहा—'यहाँ झूठ क्या है ?' उसने कहा—'जो कि मुझ अनुरक्ता को त्याग रहे हो।' राजा ने कहा—'तुम अनुरक्ता नहीं हो, क्योंकि मुझे अहित में नियुक्त कर रही हो। अतएव दोष से रहित नहीं हो। इसी से तुम परलोक की अपेक्षा नहीं करती हो।' उसने कहा—'इस बात से क्या, यदि नहीं मानते हो तो मैं निश्चित रूप से तुम्हें मार डालूँगी।' राजा ने कहा—'भद्रे! कौन तुम्हारे द्वारा मारा जाता है ? जो पुरुष रण्डा के द्वारा मारा जाता है उसके लिए जलांजलि देना भी ठीक नहीं है।' इसके बाद वह यक्षिणी मानो द्वेषी हो राजा के सामने दौड़ी। राजा ने हुंकार की। वह अदृश्य हो गयी। अनन्तर इससे क्या, ऐसा सोचकर राजा अपने नगर की ओर चल पड़ा। थोड़ी दूर आया कि असमय में ही स्वर्ण वृक्ष गिर पड़ा। राजा को नहीं लगा। उसने ऊपर की ओर देखा, वह यक्षिणी आकाश में दिखाई दी। यक्षिणी ने कहा—'अरे दुराचारी! कितने बार इस प्रकार छूटोगे ?' राजा ने कहा—'अरी पापिन! तू अदृश्य हो जा नहीं तो मैं तुझे अवश्य ही पकड़ लूँगा।' यह अदृश्य हो गयी। भाग्य से घोड़े के पीछे लगी हुई अपनी ही सेना ने राजा को अपने नगर की ओर आता हुआ देखा। उत्सव किया। 'सभी जगह बिना विश्वास के ही चले जाते हैं' अतः मैंने पूछा—'आर्यपुत्र! किस कारण गये थे।' राजा ने कहा—'कुछ नहीं।' मैंने कहा—'हाय!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भणियं—न किंचि। मए भणियं—हा कहं न किंचि; कहिं अज्जउत्तो, कहमीइसी अवीसत्थय त्ति। ता साहेहि कारणं, पज्जाउलं मे हियय ति। तेण भणियं—अलं पज्जाउलयाए। निब्बंधपुच्छिएण साहिओ मणोहराजक्खिणिवुत्तंतो। मए भणियं—अज्जउत्त, कह णु एयं, अहिणिविट्ठा खु एसा। राइणा भणियं—देवि, थेवमियं कारणं। किं तीए अहिणिवेसेण। जइ पावेमि तं हत्थगहणे संपयं, ता तह कयत्थेमि, जहा छड्डेइ अहिणिवेसं ति। अन्नया य 'वासभवणत्थो राय' त्ति सोऊण पयट्टा अहं वासभवणं। गया एगं कच्छंतरं, जाव दिट्ठो मए राया मम समाणरूवाए इत्थियाए सह सयणीयमुवगओ त्ति। तओ 'हा किमेयं' ति संखुद्धा अहं, नियत्तमाणी य दिट्ठा राईणा। भणियं च णेण—आ पावे, कहिं नियत्तसि। मुणिओ ते मायापओओ। देवि, पेच्छ पावाए धट्ठत्तणं ति। भणिऊण धाविओ मम पिट्ठओ। वेवमाणसरीरा गहियाहमणेण केसेसु। संभमाउलं जंपियं मए—अज्जउत्त, किमेयं ति। तेणावहीरिऊण मज्झ वयणं समाहूया सा इत्थिया। देवि, पेच्छ पावाए मायाचरियं। जारिसं तए मंतियं ति, तारिसं चेव इमीए संपाडियं। कओ किल तुह संतिओ वेसो। तीए भणियं—अज्जउत्त, अलमिमीए दंसणेण, निव्वासेहि एयं महापावं ति। तओ राइणा सद्दाविया अट्ठपाहरिया। समागया

तेन भणितम्—न किञ्चिद्। मया भणितम्—हा कथं न किञ्चित्, कुत्रार्यपुत्रः, कथमीदृश्यविश्वस्ततेति। ततः कथय कारणम्, पर्याकुलं मे हृदयमिति। तेन भणितम्—अलं पर्याकुलतया। निर्बन्धपृष्टेन कथितो मनोहरायक्षिणीवृत्तान्तः। मया भणितम्—आर्यपुत्र! कथं न्वेतत्, अभिनिविष्टा खल्वेषा। राज्ञा भणितम्—देवि! स्तोकमिदं कारणम्। किं तस्या अभिनिवेशन। यदि प्राप्नोमि तां हस्तग्रहणे साम्प्रतं ततस्तथा कदर्थयामि यथा मुञ्चत्यभिनिवेशमिति॥ अन्यदा च 'वासभवनस्थो राजा' इति श्रुत्वा प्रवृत्ताऽहं वासभवनम्। गतैकं कक्षान्तरम्, यावत् दृष्टो मया राजा मम समानरूपया स्त्रिया सह शयनीयमुपगत इति। ततो 'हा किमेतद्' इति संक्षुब्धाऽहम्। निवर्तमाना च दृष्टा राज्ञा। भणितं च तेन—आः पापे! कुत्र निवर्तसे, ज्ञातस्तव मायाप्रयोगः। देवि! पश्य पापाया धृष्टत्वमिति। भणित्वा धावितो मम पृष्ठतः। वेपमानशरीरा गृहीताऽहमनेन केशेषु। सम्भ्रमाकुलं जल्पितं मया—आर्यपुत्र! किमेतदिति। तेनावधीर्य मम वचनं समाहूता सा स्त्री। देवि! पश्य पापाया मायाचरितम्। यादृशं त्वया मन्त्रितमिति, तादृशमेवानया सम्पादितम्। कुतः किल तव सत्को वेशः। तया भणितम्—आर्यपुत्र! अलमस्या दर्शनेन, निर्वासयैतां महापापामिति। ततो

कैसे कुछ नहीं, आर्यपुत्र कहाँ गये थे? ऐसा अविश्वास कैसे? अतः कारण कहो, मेरा हृदय व्याकुल है।' उन्होंने कहा—'व्याकुल मत होओ।' आग्रहपूर्वक पूछने पर मनोहर यक्षिणी का वृत्तान्त कहा। मैंने कहा—'आर्यपुत्र वह कैसे, यह अनुरक्त थी?' राजा ने कहा—'देवि! यह थोड़ा-सा कारण है, उसकी अनुरक्ति से क्या? यदि उसे हाथ से इस समय पकड़ लूँ तो वैसा तिरस्कृत करूँ कि वह अनुरक्ति छोड़ दे।' एक बार राजा शयनगृह में हैं—ऐसा सुनकर मैं शयनगृह में गयी। एक कमरे के बीच गयी कि मैंने राजा को मेरे ही समान रूपवाली स्त्री के साथ शय्या पर देखा। अनन्तर हाय यह क्या—इस प्रकार मैं क्षुब्ध हुई। लौटते हुए राजा ने देखा और उसने कहा—'अरी पापिन! कहाँ लौटी जा रही है, तुम्हारे माया प्रयोग को जान लिया है। देवि! पापिन की धृष्टता को देख ऐसा कहकर मेरे पीछे दौड़ा। काँपते हुए शरीरवाली मैं इसके द्वारा बालों से पकड़ ली गयी। घबड़ाहट से आकुलित होकर मैंने कहा—'आर्यपुत्र! यह क्या?' राजा ने मेरे वचनों का तिरस्कार कर उस स्त्री को बुलाया—'महारानी! देखो उस पापिनी का मायाचरित। जैसा तुमने कहा था वैसा ही इसने किया। तुम्हारे समान उसका वेश कहाँ?' उसने कहा—'आर्यपुत्र! इसका दर्शन व्यर्थ है, इस महापापिनी को निकाल दो।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहवे। भणिया य णेण—भो भो एयं देवीरूवधारिणि दुट्ठजक्खिणि कयत्थिऊण निद्दयं लहुं निव्वासेह। तओ तेहिं 'जं देवो आणवेइ' त्ति भणिऊण पुव्ववेरिएहिं विय 'आ पावे, आ पावे' त्ति भणमाणेहिं गहिया अहं केणावि केसेसु, अवरेण उत्तरीए, अन्नेण बाहाहिं, कयत्थिया नरवइपुरओ, नीणिया बाहिं। तत्थ वि य अहिययरं कयत्थिऊण, जहा काइ दुट्ठसीला निव्वासीयइ, तहा निव्वासिय म्हि। विमुक्का नयरकाणणसमीवे। भणिया य णेहिं—आ पावे, जइ पुणो रायभवणं पविससि, तओ मुया अम्हाण हत्थओ त्ति। नियत्ता रायपुरिसा। तओ चिंतियं मए—हंत किमेयं ति। अहो मे पावपरिणई, पेच्छ किं (मे) पावियं ति। अहो णु खलु निरवराहा वि पाणिणो पुव्वदुच्चरिएहिं एयं कयत्थिज्जंति। ता अलं मे जीविएण, वावाएमि अत्ताणयं। न अन्नो वावायणोवाओ त्ति गंतूणमेयमदूरोवलक्खिज्जमाणपव्वयं भंजेमि अत्ताणयं ति पयट्टा गिरिसंमुहं, पत्ता य महया परिकिलेसेण। समाढत्ता य आरुहिउं। दिट्ठा गिरिगुहागएहिं साहूहिं। समागओ य तओ अणेयगुणरयणभूसिओ दिप्पमाणो तवतेएण सुट्ठिओ परलोयपक्खे वच्छलो दुहियसत्ताणं समुप्पन्नदिव्वनाणो देसओ संसाराडवीए चिंतामणी समीहियसुहस्स

राज्ञा शब्दायिता अष्टप्राहरिकाः। समागता बहवः। भणिताश्च तेन—भो भो! एतां देवीरूपधारिणीं दुष्टयक्षिणीं कदर्थयित्वा निर्दयं लघु निर्वासयत। ततस्तैः 'यद् देव आज्ञापयति' इति भणित्वा पूर्ववैरिकैरिव 'आः पापे आः पापे' इति भणद्भिः गृहीताऽहं केनापि केशेषु, अपरेणोत्तरीये, अन्येन बाह्वोः, कदर्थिता नरपतिपुरतः। नीता बहिः। तत्रापि चाधिकतरं कदर्थयित्वा यथा काऽपि दुष्टशीला निर्वास्यते तथा निर्वासिताऽस्मि। विमुक्ता नगरकाननसमीपे। भणिता च तैः आः पापे! यदि पुना राजभवनं प्रविशसि ततो मृताऽस्माकं हस्तत इति। निवृत्ता राजपुरुषाः। ततश्चिन्तितं मया—हन्त किमेतदिति। अहो मे पापपरिणतिः, पश्य किं प्राप्तमिति। अहो नु खलु निरपराधा अपि प्राणिनः पूर्वदुश्चरितैरेवं कदर्थ्यन्ते। ततोऽलं मे जीवितेन। व्यापादयाम्यात्मानम्। नान्यो व्यापादनोपाय इति गत्वा एतमदूरोपलक्ष्यमाणपर्वतं भनज्मि आत्मानमिति प्रवृत्ता गिरिसम्मुखम्। प्राप्ता च महता परिक्लेशेन। समारब्धा चारोढुम्। दृष्टा गिरिगुहागतैः साधुभिः। समागतस्ततोऽनेकगुणरत्नभूषितो दीप्यमानो तपस्तेजसा, सुस्थितः परलोकपक्षे वत्सलो दुःखितसत्त्वानां समुत्पन्नदिव्यज्ञानो देशकः संसाराटव्यां चिन्तामणिः समीहितसुखस्यानेकसाधुपरिवृतः सुगृहीतनामा

अनन्तर राजा ने आठ प्रहरियों को बुलाया। बहुत से आ गये। (उनसे) राजा ने कहा—'हे हे! इस महारानी का रूप धारण करनेवाली उस दुष्ट यक्षिणी को तिरस्कार कर शीघ्र ही निर्दयतापूर्वक निकाल दो।' अनन्तर जो महाराज आज्ञा दें'—ऐसा कहकर मानो पूर्ववैरियों के समान उन्होंने अरी पापिन! अरी पापिन! ऐसा कहते हुए किसी ने मेरे बाल पकड़े, किसी ने उत्तरीय (ओढ़नी, दुपट्टा) पकड़ा, किसी दूसरे ने दोनों भुजाएँ पकड़ीं (और) राजा के सामने तिरस्कार किया। बाहर ले गये। वहाँ भी अत्यधिक तिरस्कार कर जैसे कोई दुराचारिणी स्त्री निकाली जाती है उसी प्रकार मुझे निकाल दिया। नगर के वन के समीप मुझे छोड़ दिया गया और उन्होंने कहा—'अरी पापिन! यदि फिर से राजभवन में प्रवेश करोगी तो हमारे हाथ से मारी जाओगी।' राजपुरुष लौट गये। अनन्तर मैंने सोचा—'हाय! यह क्या? ओह! मेरे पाप का फल, देखो क्या पाया! ओह निपराध भी प्राणी पहले के दुश्चरितों के कारण इस प्रकार तिरस्कृत होते हैं। अतः मेरा जीना व्यर्थ है। मैं अपने आपको मारती हूँ। मारने का अन्य कोई उपाय नहीं है अतः इस समीप से दिखाई देनेवाले पर्वत पर जाकर अपने आपको गिराती हूँ—ऐसा सोचकर पर्वत के सम्मुख गयी। बड़े क्लेश से पहुँची। चढ़ना आरम्भ किया। पर्वतीय गुफा में आये हुए साधुओं ने मुझे देखा। अनन्तर अनेक गुणरूपी रत्नों से भूषित, तप के तेज से देदीप्यमान, परलोक पक्ष में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणेयसाहुपरियरिओ सुगिहीयनामो भयवं गुरु त्ति। तं च दट्ठूण अवगओ विय मे किलेसो, समद्धासिया विय धम्मेण। वंदिओ सविणयं, धम्मलाहिया य णेण भणिया सबहुमाणं - वच्छे सुसंगए, न तए संतप्पियव्वं। ईइसो एस संसारो, आवयाभायणं खु एत्थ पाणिणो; अहिहूया महामोहेण न पेच्छंति परमत्थं, न सुणंति [1]परममित्ताणं वयणं, पयट्टंति अहिएसु, बंधंति तिव्वकम्मयाइं, विउडिज्जंति तेहिं, न छुट्टंति पुव्वदुक्कडाणं विणा वीयरागवयणकरणेणं ति। तओ मए भणियं - भयवं एवमेयं; अह किं पुण मए कयं पावकम्मं, जस्स ईइसो विवाओ त्ति। भयवया भणियं - वच्छे सुण जस्स विवागसेसमेयं। मए भणियं—भयवं, अवहिय म्हि। भयवया भणियं - वच्छे, सुण।

अत्थि इहेव भारहे वासे उत्तरावहे विसए बंभउरं नाम नयरं। तत्थ बंभसेणो नाम नरवई अहेसि। तस्स बहुमओ विउरो नाम माहणो, पुरंदरजसा से भारिया। ताणं तुमं इओ अईयनवमभवम्मि चंदजसाहिहाणा धूया अहेसि त्ति, वल्लहा जणणिजणयाणं। जिणवयणभावियत्तणेण ताणि

भगवान् गुरुरिति। तं च दृष्ट्वाऽपगत इव मे क्लेशः, समध्यासितेव धर्मेण। वन्दितः सविनयम्, धर्मलाभिता च तेन भणिता सबहुमानम्—वत्से सुसङ्गते! न त्वया सन्तप्तव्यम्। ईदृश एष संसारः, आपद्भाजनं खल्वत्र प्राणिनः, अभिभूता महामोहेन न पश्यन्ति परमार्थम्, न शृण्वन्ति परममित्राणां वचनम्, प्रवर्तन्ते अहितेषु, बध्नन्ति तीव्रकर्माणि, विकुटचन्ते (विडम्ब्यन्ते) तैः, न छुटचन्ते पूर्वदुष्कृतेभ्यो विना वीतरागवचनकरणेनेति। ततो मया भणितम्—भगवन्! एवमेतद्, अथ किं पुनर्मया कृतं पापकर्म, यस्येदृशो विपाक इति। भगवता भणितम्— वत्से! शृणु, यस्य विपाकशेषमेतद्। मया भणितम्—भगवन्! अवहिताऽस्मि। भगवता भणितम्—वत्से! शृणु।

अस्ति इहैव भारतवर्षे उत्तरापथे विषये ब्रह्मपुरं नाम नगरम्। तत्र ब्रह्मसेनो नाम नरपतिरासीत्। तस्य बहुमतो विदुरो नाम ब्राह्मणः, पुरन्दरयशास्तस्य भार्या। तयोस्त्वमितोऽतीतनवमभवे चन्द्रयशोऽभिधाना दुहिता आसीदिति, वल्लभा जननीजनकयोः। जिनवचनभावितत्वेन तौ

भलीभाँति स्थित, दुःखित प्राणियों के प्रति प्रेम करनेवाले, जिन्हें दिव्यज्ञान उत्पन्न हुआ था, संसाररूपी वन में में जो रास्ता दिखानेवाले थे, इष्ट सुखों के लिए जो चिन्तामणि थे (तथा) अनेक साधुओं से घिरे हुए थे ऐसे सुगृहीत नाम वाले भगवान् गुरु आये। उन्हें देखकर मानो मेरा क्लेश दूर हो गया। धर्म में मानो स्थित हो गयी। (मैंने) विनयपूर्वक (उनकी) वन्दना की और उन्होंने धर्मलाभ देकर सम्मानपूर्वक कहा - 'पुत्री सुसंगता, तुम दुःखी मत होओ, यह संसार ऐसा ही है, यहाँ प्राणी आपत्ति के पात्र होते हैं, महामोह से अभिभूत होते हैं, परमार्थ को नहीं देखते हैं, परम (हितैषी) मित्रों के वचन नहीं सुनते हैं, अहित में प्रवृत्त होते हैं, तीव्र कर्मों को बाँधते हैं, उन कर्मों के द्वारा नष्ट किये जाते हैं, वीतराग के वचनों का पालन किये बिना पूर्वजन्म के पापों से नहीं छूटते हैं।' अनन्तर मैंने कहा—'भगवन्! यह ठीक है (मैं पूछती हूँ कि) मैंने कौन-सा पापकर्म किया, जिसका ऐसा फल मिला?' भगवान् ने कहा—'पुत्री! सुनो, जिसका यह सम्पूर्ण फल है।' मैंने कहा—'भगवन्! सावधान हूँ।' भगवान् ने कहा—'पुत्री! सुनो—

इसी भारतवर्ष के उत्तरापथ देश में ब्रह्मपुर नाम का नगर है। वहाँ पर ब्रह्मसेन नाम का राजा था। उस राजा के द्वारा सम्मानित विदुर नाम का ब्राह्मण था। उसकी पुरन्दरयशा पत्नी थी। उन दोनों के इससे पहले के नवें भव में तुम चन्द्रयशा नाम की माता-पिता की प्यारी पुत्री थी। जिनवचनों के प्रति श्रद्धा रखने के कारण

---

१. धम्ममित्ताणं वयणाइं—पा. ज्ञा.।

Jain Education International　　　For Private & Personal Use Only　　　www.jainelibrary.org

देसंति ते धम्मं, निवारेंति अहियाओ। अणाइभवभावणादोसेण बालयाए य न परिणमइ ते सम्मं। समुप्पन्ना य ते पीई जसोदाससेट्ठिभारियाए बंधुसुंदरीए सह। सा य अइसंकिलिट्ठचित्ता संसाराहिणंदिणी गिद्धा कामभोएसु निरवेक्खा परलोयमग्गे। तओ वारिया तुमं जणणिजणएहिं। वच्छे, अलमिमीए सह संगेण, पावमित्तथाणीया खु एसा, पडिसिद्धो य भयवया पावमित्तसंगो। न पडिवन्नं च तं तए गुरुवयणं। अन्नया गया तुमं बंधुसुंदरिसमीवं। दिट्ठा विमणदुम्मणा बंधुसुंदरी। भणिया य एसा—हला, कीस तुमं विमणदुम्मण त्ति। तीए भणियं—पियसहि, विरत्तो मे भत्ता गाढरत्तो मइरावईए, अजायपुत्तभंडा य अहयं। ता न याणामो, कहं भविस्सइ त्ति दढं विसण्ण म्हि। तए भणियं—अलं विसाएण, उवाए जत्तं कुणसु त्ति। तीए भणियं—न याणामि एत्थुवायं, सुयं च मए, अत्थि इह उप्पला नाम परिव्वाइया, सा एवंविहेसु कुसला, न य णे तं पेक्खिउं अवसरो त्ति। तए भणियं—कहिं सा परिवसइ, साहेहि मज्झ; अहं तमाणेमि त्ति। साहियं बंधुसुंदरीए, जहा किल पुव्वबाहिरियाए। तओ गया तुमं, दिट्ठा परिव्वाइया। बंधुसुंदरी तुमं दट्ठुमिच्छइ त्ति भणिऊण

दिशतस्ते धर्मम्, निवारयतोऽहितात्। अनादिभवभावनादोषेण बालतया च न परिणमति ते सम्यक्। समुत्पन्ना च ते प्रीतिर्यशोदासश्रेष्ठिभार्यया बन्धुसुन्दर्या सह। सा चातिसंक्लिष्टचित्ता संसाराभिनन्दिनी गृद्धा कामभोगेषु निरपेक्षा परलोकमार्गे। ततो वारिता त्वं जननीजनकाभ्याम्। वत्से! अलमनया सह सङ्गेन, पापमित्रस्थानीया खल्वेषा, प्रतिषिद्धश्च भगवता पापमित्रसङ्गः। न च प्रतिपन्नं तत् त्वया गुरुवचनम्। अन्यदा गता त्वं बन्धुसुन्दरीसमीपम्। दृष्टा विमनोदुर्मना बन्धुसुन्दरी। भणिता चैषा—हला! कस्मात् त्वं विमनोदुर्मना इति। तया भणितम्—प्रियसखि! विरक्तो मे भर्ता गाढरक्तो मदिरावत्याम्। अजातपुत्रभाण्डा चाहम्। ततो न जानामि, कथं भविष्यति इति दृढं विषण्णाऽस्मि। त्वया भणितम्—अलं विषादेन, उपाये यत्नं कुर्विति। तया भणितम्—न जानाम्यत्रोपायम्, श्रुतं च मया, अस्तीह उत्पला नाम परिव्राजिका, सा चैवंविधेषु कुशला, न चास्माकं तां प्रेक्षितुमवसर इति। त्वया भणितम्—कुत्र सा परिवसति, कथय मम, अहं तामानयामीति। कथितं बन्धुसुन्दर्या, यथा किल पूर्वबाहिरिकायाम्। ततो गता त्वम्, दृष्टा परि-

---

उन दोनों ने तुझे धर्मोपदेश दिया, अहित से रोका। अनादि संसार के प्रति श्रद्धा के दोष से अज्ञान के कारण तेरी ठीक परिणति नहीं हुई। तेरी 'यशोदास' सेठ की पत्नी बन्धुसुन्दरी के साथ प्रीति उत्पन्न हो गयी। वह यशोदास सेठ की पत्नी संसार का अभिनन्दन करनेवाली, कामभोगों में आसक्त और परलोक के मार्ग से निरपेक्ष थी। अतः तुम्हें माता-पिता ने रोका—'पुत्री! इसकी संगति मत करो, यह पापी मित्र के स्थान पर है और भगवान् ने पापी मित्रों का साथ करने का निषेध किया है।' माता-पिता के उन वचनों को तूने नहीं माना। एक बार तुम बन्धुसुन्दरी के पास गयीं। बन्धुसुन्दरी को दुःखीमन देखा। इसने कहा—सखी! तुम क्यों दुःखी मन हो? उसने कहा—'प्रियसखी! मेरे पति (मुझसे) विरक्त होकर मदिरावती के प्रति अत्यधिक आसक्त हैं। मेरे न तो पुत्र है और न धन; अतः नहीं जानती हूँ, कैसे (क्या) होगा? अतः अत्यधिक दुःखी हूँ। तुमने कहा—विषाद मत करो, उपाय की कोशिश करो।' उसने कहा—मैं इस विषय में उपाय नहीं जानती हूँ, किन्तु मैंने सुना है कि यहाँ उत्पला नाम की परिव्राजिका हैं। वह ऐसे कार्यों में कुशल हैं और मेरे पास उनके दर्शन का मौका नहीं है: (तब) तुमने कहा—वह कहाँ रहती हैं? मुझसे कहो, मैं उन्हें लाती हूँ। बन्धुसुन्दरी से कहा कि वह परिव्राजिका पूर्व की ओर बाहर रहती हैं। अनन्तर तुम गयीं, परिव्राजिका के दर्शन किये। बन्धुसुन्दरी तुम्हें देखने की इच्छा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आणिया तुमए, आणिऊण गया तुमं सगिहं। पूइया सा बंधुसुंदरीए, साहिओ से नियवुत्तंतो। भणियं परिव्वाइयाए— अविहवे, धीरा होहि। थेवमेयं कज्जं। करेमि अहमेत्थ जोयं, जेण सो तीसे पओसमावज्जइ त्ति। बंधुसुंदरीए भणियं—भयवइ, अणुग्गिहीय म्हि। गया परिव्वाइया, कओ य णाए जसोदाससेट्ठिणो मइरावइं पइ विद्देसणजोओ। पउत्तो विहिणा। अचिंतसामत्थयाए ओसहीणं विचित्तयाए कम्मपरिणामस्स विरत्तो तीए सेट्ठी। परिचत्ता मइरावई, गहिया सोएण। एयनिमित्तं च बद्धं तए किलिट्ठकम्मं। परिवालिऊण अहाउयं मया समाणी तक्कम्मदोसेणेव समुप्पन्ना करेणुयत्ताए अप्पिया जूहाहिवस्स; गहिया वारिमज्झे। तओ तत्थ महंतं किलेसमणुहविय मया समाणी तक्कम्मदोसेणेव समुप्पन्ना वाणरित्ताए त्ति। तत्थ वि य अच्चंतमप्पिया जूहाहिवस्स। विच्छूढा जूहाओ गहिया जरठकुरेण, निबद्धा लोहसंकलाए। महादुक्खपीडिया अहाउयं पालिऊण मया समाणी तक्कम्मदोसेणेव समुप्पन्ना कुक्कुरित्ताए। तत्थ वि य रिउकाले वि अणहिमया सव्वकुक्कुराणं कीडानियरखयविणट्ठदेहा महंतं किलेसमणुहविय मया समाणी तक्कम्मदोसेणेव समुप्पन्ना मज्जारि-

त्रजिका। 'बन्धुसुन्दरी त्वां द्रष्टुमिच्छति' इति भणित्वाऽऽनीता त्वया, आनीय गता त्वं स्वगृहम्। पूजिता सा बन्धुसुन्दर्या। कथितस्तस्य निजवृत्तान्तः। भणितं च परिव्राजिकया— अविधवे! धीरा भव, स्तोकमात्रं कार्यम्। करोम्यहमत्र योगं येन स तस्याः प्रद्वेषमापद्यते इति। बन्धुसुन्दर्या भणितम्—भगवति! अनुगृहीताऽस्मि। गता परिव्राजिका, कृतश्च तया यशोदासश्रेष्ठिनः मदिरावतीं प्रति विद्वेषणयोगः, प्रयुक्तो विधिना। अचिन्त्यसामर्थ्यतयौषधीनां विचित्रतया कर्मपरिणामस्य विरक्तस्तस्यां श्रेष्ठी। परित्यक्ता मदिरावती, गृहीता शोकेन। एतन्निमित्तं च बद्धं त्वया क्लिष्टकर्म। परिपाल्य यथायुष्कं मृता सती तत्कर्मदोषेणैव समुत्पन्ना करेणतया अप्रिया यूथाधिपस्य, गृहीता वारिमध्ये। ततस्तत्र महान्तं क्लेशमनुभूय मृता सती तत्कर्मदोषेणैव समुत्पन्ना वानरीतयेति। तत्रापि चात्यन्तमप्रिया यूथाधिपस्य। विक्षिप्ता यूथाद् गृहीता जरत्ठक्कुरेण, निबद्धा लोहशृंखलया। महादुःखपीडिता यथाऽऽयुः पालयित्वा मृता सती तत्कर्मदोषेणैव समुत्पन्ना कुर्कुरीतया। तत्रापि च ऋतुकालेऽपि अनभिमता सर्वकुर्कुराणां कीटनिकरक्षतविनष्टदेहा महान्तं क्लेशमनुभूय मृता सती तत्कर्मदोषेणैव समुत्पन्ना मार्जारीतयेति। तत्रापि चामनोरमा सर्वमार्जाराणां

करती हूँ—ऐसा कहकर तुम (उन्हें) ले आयीं और लाकर अपने घर गयीं। उनकी बन्धुसुन्दरी ने पूजा की। उनसे अपना वृत्तान्त कहा। परिव्राजिका ने कहा—सौभाग्यवती! धीर होओ, थोड़ा-सा कार्य है। मैं यहाँ ऐसा योग (एक विशेष प्रकार का चूर्ण) बनाती हूँ, जिससे वह उसके प्रति द्वेष करने लगेगा। बन्धुसुन्दरी ने कहा—भगवती! मैं अनुगृहीत हूँ। परिव्राजिका गयी, उसने यशोदास सेठ का मदिरावती के प्रति द्वेष का योग बनाया (और) विधिपूर्वक प्रयोग किया। औषधियों की अचिन्त्य सामर्थ्य (और) कर्मों के परिणाम की विचित्रता से सेठ उससे विरक्त हो गया। मदिरावती छोड़ दी गयी और उसे शोक ने जकड़ लिया। इस कारण तुमने क्लिष्ट कर्म बाँधा। आयु पालन कर मृत हो उसी कर्म के दोष से ही हथिनी के रूप में उत्पन्न हुई और यूथाधिप (हाथियों के झुण्ड के स्वामी) की तुम अप्रिय बनी। हाथी को पकड़ने के लिए बनाये गये गड्ढे में गिर गयीं। वहाँ पर अत्यधिक क्लेश का अनुभव कर मरकर उसी कर्म के दोष से वानरी हुई। वहाँ पर भी झुण्ड के स्वामी की अत्यन्त अप्रिय थी। झुण्ड से अलग होने के कारण बूढ़े ठाकुर ने पकड़ लिया और लोहे की साँकल से बाँधा। महादुःख से पीड़ित होकर आयु पालन कर मरकर उसी दोष से ही कुत्ती के रूप में उत्पन्न हुई। उस जन्म में भी ऋतुकाल में समस्त कुत्तों के द्वारा न चाही जाकर कीड़ों के समूह द्वारा क्षत-विक्षत देहवाली हो महान् क्लेश का अनुभव कर मरकर उसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गत्ताए त्ति। तत्थ वि य अमणोरमा सव्वमज्जाराणं गेहाणलदड्ढदेहा अहाउयक्खए मरिऊण तक्कम्मदोसेणेव समुप्पन्ना चक्कवाइयत्ताए त्ति। तत्थ वि सया पिययमपरिवज्जिया किलेससंपाइयवित्ती महंतं दुक्खमणुहविय मया समाणी तक्कम्मदोसेणेव समुप्पन्ना चंडालइत्थियत्ताए त्ति। तत्थ वि य दढं अमणोरमा पिययमस्स मयणदुक्खपीडिया अहाउयक्खएण मरिऊण तक्कम्मदोसेणेव समुप्पन्ना सबरइत्थियत्ताए। तत्थ वि य अमणोरमा सव्वसबराण विच्छूढा जेहिं पल्लीओ परिब्भमंती य विसमसज्झकंतारे किलेससंपाइयसरीरट्ठिई परिक्खीणकाया अद्धाणपडिवन्नपहपरिभट्ठेहिं दिट्ठा तुमं साहूहिं, ते वि य तुमाए त्ति। ते य दट्ठूण समुप्पन्नो ते पमोओ। पुच्छिया य जेहिं —धम्मसीले को उण इमो पएसो केदूरे वा इओ वत्तणि त्ति। तए सबहुमाणमाइक्खियं—सज्झकंतारमेयं, इओ नाइदूरे वत्तणी। साहूहिं भणियं—धम्मसीले, कयरीए दिसाए वत्तणी। तए भणियं—अवरमग्गेण इओ वोलिऊण इमं तरुलयागहणं। अहवा एह, अहं चेव दंसेमि त्ति। दंसिया वत्तणी। चिंतियं च सुद्धचित्ताए—अहो इमे अमच्छरिया पियभासिणो पसंतरूवा अभिगमणीया; धन्नाणमेवंविहेहिं सह

गेहानलदग्धदेहा यथायुष्कक्षये मृत्वा तत्कर्मदोषेणैव समुत्पन्ना चक्रवाकीतयेति। तत्रापि सदा प्रियतमपरिवर्जिता क्लेशसम्पादितवृत्तिर्महान्तं दुःखमनुभूय मृता सती तत्कर्मदोषेणैव समुत्पन्ना चाण्डालस्त्रीकतयेति। तत्रापि च दृढममनोरमा प्रियतमस्य मदनदुःखपीडिता यथाऽऽयुःक्षयेण मृत्वा तत्कर्मदोषेणैव समुत्पन्ना शबरस्त्रीकतयेति। तत्रापि चामनोरमा सर्वशबराणां विक्षिप्ता तैस्पल्लीतः परिभ्रमन्ती च विषमसह्यकान्तारे क्लेशसम्पादितशरीरस्थितिः परिक्षीणकायाऽध्वप्रतिपन्नपथपरिभ्रष्टैर्दृष्टा त्वं साधुभिः, तेऽपि च त्वयेति। तांश्च दृष्ट्वा समुत्पन्नस्ते प्रमोदः। पृष्टा च तैः—धर्मशीले! कः पुनरयं प्रदेशः कियद्दूरे वा इतो वर्तनीति। त्वया सबहुमानमाख्यातम्—सह्यकान्तारमेतद्, इतो नातिदूरे वर्तनी। साधुभिः भणितम्—धर्मशीले! कतरस्यां दिशि वर्तनी। त्वया भणितम्—अपरमार्गेण इतो व्यतिक्रम्येदं तरुलतागहनम्। अथवा एत्व, अहमेव दर्शयामीति। दर्शिता वर्तनी। चिन्तितं च शुद्धचित्तया। अहो इमेऽमात्सर्याः प्रियभाषिणः प्रशान्तरूपा अभिगमनीयाः,

---

कर्म के दोष से बिल्ली हुई। उस जन्म में भी सब बिलावों के द्वारा न चाही जाकर घर में आग लग जाने से शरीर जल जाने पर आयु क्षय होने पर मरकर उसी कर्म के दोष से ही चकवी के रूप में उत्पन्न हुई। उस जन्म में भी सदा प्रियतम के द्वारा छोड़ी जाकर क्लेश से जीविकोपार्जन कर बड़े दुःख का अनुभव कर मरकर उसी कर्म के दोष से ही चाण्डाल की स्त्री हुई। उस जन्म में भी प्रियतम के द्वारा अत्यधिक अमनोरम होकर कामदुःख से पीडित हो आयुक्षय हो जाने पर मरकर उसी कर्म के दोष से ही शबर की स्त्री के रूप में उत्पन्न हुई। उस जन्म में भी समस्त शबरों के लिए अमनोरम होती हुई शबरस्वामी के द्वारा त्यागी जाकर हिमालय के भयंकर जंगल में भ्रमण करती हुई क्लेश से शरीर की स्थिति बनाये रखी। तू क्षीणकाय हो गयी तथा रास्ते में रास्ता भूले हुए साधुओं ने तुझे देखा, तूने भी उन्हें देखा। उन्हें देखकर तुझे हर्ष हुआ। उन साधुओं ने पूछा—धर्मशीले! यह कौन प्रदेश है? अथवा यहाँ से रास्ता कितनी दूर है? तूने आदरपूर्वक कहा—यह हिमालय का वन है, यहाँ से पास में ही रास्ता है। साधुओं ने कहा—रास्ता किस दिशा में है? तूने कहा—'इन भयंकर वृक्षों और लताओं को लाँघकर पश्चिम में है अथवा आओ' मैं ही दिखा दूँ, ऐसा कहकर रास्ता दिखा दिया और शुद्ध चित्त से सोचा—ओह! ये द्वेषरहित, प्रियभाषी, शान्तरूप और समीप में रहने योग्य हैं। वे पुरुष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संगमो भवइ। एवं विसुद्धचिंतणेण खविओ कम्मसंघाओ आसगलियं बोधिबीयं। एत्थंतरम्मि धम्मलाहिया साहूहिं सुहयरपरिणामा य पडिया तेसिं चलणेसु। एत्थंतरम्मि अप्पारंभपरिग्गहत्तणेण सहावमद्दवज्जवयाए साहुसन्निहिसामत्थओ सुद्धभावयाए य बद्धं सुमाणुसाउयं। गया भयवंतो साहुणो। गएसु वि य न तुट्टो ते तयणुसरणसंगओ सुहभावाणुबंधो। अहाउयपरिक्खएणं च मया समाणी तक्कम्मदोससेससंगया चेव समुप्पन्ना सेयवियाहिवस्स धूय त्ति। पत्तवया य परिणीया कोसलाहिवेण; तक्कम्मसेसयाए य जक्खिणीरूवविप्पलद्धेण कयत्थाविया णेणं। ता एवं वच्छे दुट्ठ-परिव्वाइयाहवणकम्मविवागसेसमेयं ति।

एयमायण्णिऊण अवगयं चिय मे मोहतिमिरं, जाओ भवविराओ, उप्पन्नं जाइसरणं, वड्ढिओ संवेगो। वंदिऊण भणिओ भयवं गुरू—भयवं, एवमेयं; अह कया उण तक्कम्मविवाओ नीसेसी-भविस्सइ। भयवया भणियं—वच्छे, इमिणा अहोरत्तेण। मए भणियं—भयवं, कया कहं वा तं जक्खिणिं वियाणिस्सइ अज्जउत्तो। भयवया भणियं—वच्छे, अज्जेव रयणीए तुह सहावासरिसयाए

धन्यानामेवंविधैः सह संगमो भवति। एवं विशुद्धचिन्तनेन क्षपितः कर्मसंघातः, प्रादुर्भूतं बोधिबीजम्। अत्रान्तरे धर्मलाभिता साधुभिः शुभतरपरिणामा च पतिता तेषां चरणेषु। अत्रान्तरे अल्पारम्भपरिग्रहत्वेन स्वभावमार्दवार्जवतया साधुसन्निधिसामर्थ्यतः शुद्धभावतया बद्धं सुमानुषायुष्कम्। गता भगवन्तः साधवः। गतेष्वपि च न त्रुटितस्तव तदनुस्मरणसंगतः शुभभावानुबन्धः। यथाऽऽयुःपरिक्षयेण च मृता सती तत्कर्मदोषशेषसंगतैव समुत्पन्ना श्वेतविकाधिपस्य दुहितेति। प्राप्तवयाश्च परिणीता कोशलाधिपेन। तत्कर्मशेषतया च यक्षिणीरूपविप्रलब्धेन कदर्थितास्तेन। तत एवं वत्से! दुष्टपरिव्राजिकाह्वनकर्मविपाकशेषमेतदिति।

एतदाकर्ण्य अपगतमिव मे मोहतिमिरम्, जातो भवविरागः, उत्पन्नं जातिस्मरणम्, वर्द्धितः संवेगः। वन्दित्वा भणितो भगवान् गुरुः—भगवन्! एवमेतद्। अथ कदा पुनः तत्कर्मविपाको निःशेषीभविष्यति। भगवता भणितम्—वत्से! अनेनाहोरात्रेण। मया भणितम्—भगवन्! कदा कथं वा तां यक्षिणीं विज्ञास्यत्यार्यपुत्रः। भगवता भणितम्—वत्से! अद्यैव रजन्यां तव

धन्य हैं जिनका ऐसे साधुओं से समागम होता है। इस प्रकार के विशुद्ध चित्त से कर्मसमूह नष्ट कर डाला, ज्ञानबीज उत्पन्न हुआ। इसी बीच साधुओं ने धर्मलाभ दिया। अत्यधिक शुभ परिणामों वाली होकर तू उनके चरणों में गिर गयी। इसी बीच थोड़ा आरम्भ और परिग्रह, स्वभाव की मृदुता और सरलता, साधुओं के सामीप्य का प्रभाव तथा शुद्ध भावों की परिणति के कारण उस शबरी ने अच्छी मनुष्य आयु बांधी। भगवान् साधु चले गये। उनके चले जाने पर भी उनके स्मरण से युक्त शुभभावों का वह प्रभाव नहीं छूटा। यथायोग्य आयु का क्षय कर मरकर उस शेष कर्म के दोष के साथ ही श्वेतविका के राजा की पुत्री हुई। युवावस्था प्राप्त होने पर कोशलाधिप ने विवाहा, उस कर्म के शेष होने के कारण यक्षिणी के रूप से ठगे गये राजा ने तुम्हारा तिरस्कार किया। अतः हे पुत्री! इस प्रकार दुष्ट परिव्राजिका को बुलाने के कर्म का यह शेष फल है।'

यह सुनकर मानो मेरा मोहरूपी अन्धकार नष्ट हो गया, संसार से विराग हो गया, जातिस्मरण हो गया, विरक्ति बढ़ी। वन्दना कर भगवान गुरु से कहा—'भगवन्! यह ठीक है, (कृपया यह बतलाइए) वह कर्म का फल कब पूरा होगा?' भगवान् ने कहा—'पुत्री! इसी दिन-रात में।' मैंने कहा—'भगवन्! कब और कैसे आर्यपुत्र उस यक्षिणी को जानेंगे?' भगवान् ने कहा—'आज ही रात तुम्हारे स्वभाव की असदृशता के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समुप्पन्नासंको निवेइऊण मंतिणो तक्कयवीयरायपडिमालंघणपओएण नीसंसयं वियाणिऊण, जहा न एसा देवि त्ति; तओ 'हण हण' त्ति भणमाणो खग्गं गहेऊण उट्ठिओ राया, जाव तक्खणं अदंसणा जाय त्ति। मए भणियं—भयवं, न तीए किंचि अकुसलं करिस्सइ अज्जउत्तो। भयवया भणियं—वच्छे, न हि, किं तु कयत्थिया तुमं ति अहियं संतप्पिस्सइ। मए भणियं—भयवं को एत्थ दोसो अज्जउत्तस्स, कम्मपरिणई एस त्ति। भयवया भणियं—वच्छे, एवमेयं; तहावि मोहदोसेण दढं संतप्पिस्सइ महाराओ। सुए आगमिस्सइ इहइं, पेक्खिस्सइ तुमं। तओ सह तए अच्चंतसुहिओ हविस्सइ त्ति वियाणिऊण न तए संतप्पियव्वं। मए भणियं—भयवं, अवगओ मे संतावो तुह दंसणेण, विरत्तं च मे चित्तं भवचारगाओ। ता किं महारायागमणेण। पुणो वि विओगावसाणा संगमा। कीइसं च जरामरणपीडियाणं सुहियत्तणं। भयवया भणियं—वच्छे, एवमेयं, किं तु सह तए अच्चंतसुहिओ हविस्सइ त्ति। भणियं मए—अच्चंतसुहिओ जीवो न वीयरायवयणाणुट्ठाणमंतरेण हवइ। तओ भयवया भणियं—सह तए जराइदोसनिग्घायणसमत्थं दुक्करं काउरिसाण वीयरागवयणाणुट्ठाणं

स्वभावासदृशतया समुत्पन्नाशङ्को निवेद्य मन्त्रिणस्तत्कृतवीतरागप्रतिमालङ्घनप्रयोगेण निःसंशयं विज्ञाय 'यथा न एषा देवी' इति। ततो 'जहि जहि' इति भणन् खड्गं गृहीत्वा उत्थितो राजा, यावत् तत्क्षणमदर्शना जातेति। मया भणितम्—भगवन्! न तस्याः किञ्चिदकुशलं करिष्यति आर्यपुत्रः। भगवता भणितम्—वत्से! नहि, किन्तु कदर्थिता त्वमित्यधिकं सन्तप्स्यति। मया भणितम्—भगवन्! कोऽत्र दोष आर्यपुत्रस्य, कर्मपरिणतिरेषेति। भगवता भणितम्—वत्से, एवमेतत् तथापि मोहदोषेण दृढं सन्तप्स्यति महाराजः। श्व आगमिष्यतीह, प्रेक्षिष्यते त्वाम्। ततः सह त्वयाऽत्यन्तसुखितो भविष्यति इति विज्ञाय न त्वया सन्तप्तव्यम्। मया भणितम्—भगवन्! अपगतो मे सन्तापस्तव दर्शनेन। विरक्तं च मे चित्तं भवचारकात्। ततः किं महाराजागमनेन। पुनरपि वियोगावसानाः संगमाः। कीदृशं च जरामरणपीडितानां सुखितत्वम्। भगवता भणितम्—वत्से! एवमेतद्, किन्तु सह त्वयाऽत्यन्तसुखितो भविष्यतीति। भणितं मया—अत्यन्तसुखितो जीवो न वीतरागवचनानुष्ठानमन्तरेण भवति। ततो भगवता भणितम्—सह त्वया जरादि-

---

कारण उत्पन्न आशंकावाले राजा मन्त्रियों से निवेदन कर यक्षिणी के द्वारा वीतराग की प्रतिमा के लाँघने के प्रयोग से निःसन्देह रूप से जानकर कि यह महारानी नहीं है, अतः 'मारो मारो' कहता हुआ तलवार लेकर राजा उठेगा कि तत्क्षण वह अदृश्य हो जायेगी।' मैंने कहा—'भगवन्! उसका आर्यपुत्र कुछ अकुशल तो नहीं करेंगे?' भगवान् ने कहा—'पुत्री! नहीं, किन्तु तुम्हारा तिरस्कार करने से अत्यधिक दुःखी होंगे।' मैंने कहा—'भगवन्, इसमें आर्यपुत्र का क्या दोष है, यह कर्म का फल है।' भगवान् ने कहा—'यह ठीक है तथापि मोह के दोष से राजा अत्यधिक दुःखी होंगे। कल यहाँ आयेंगे, तुम्हें देखेंगे। उनके साथ तुम अत्यन्त सुखी होगी—ऐसा जानकर तुम्हें कुपित नहीं होनी चाहिए।' मैंने कहा—'भगवन्! आपके दर्शन से मेरा दुःख दूर हो गया। मेरा चित्त संसार-रूपी कारागृह से विरक्त हो गया है। अतः महाराज के आने से क्या, संयोग का अन्त तो पुनः वियोग ही होगा। जरा और मरण से पीड़ित लोगों का सुख कैसा!' भगवान् ने कहा—'पुत्री! यह ठीक है, किन्तु तुम्हारे साथ (वे) अत्यन्त सुखी होंगे।' मैंने कहा—'वीतराग के वचनों का पालन किये बिना जीव अत्यन्त सुखी नहीं होता है।' अनन्तर भगवान् ने कहा—'तुम्हारे साथ जरादि दोषों का नाश करने में समर्थ और कायरपुरुषों के लिए

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

करइस्सइ। एएण कारणेण अच्चंतसुहिओ होहि त्ति। भणिऊण तुण्हिक्को ठिओ भयवं। एयमायण्णिऊण 'अहो धन्नो महाराओ' त्ति हरिसिया अहं। हिययत्थं वियाणिऊण भणिया य भयवया—वच्छे, तुमं पि गेण्हाहि ताव सव्वमंतपरममंतं अइदुल्लहं जोवलोए विणासणं भयाणं साहणं परमपयस्स पूयणिज्जं सयाणं अचिंतसत्तिजुत्तं गाहगं सयलगुणाणं उवमाईयकल्लाणकारणं भयवया वीयरागेण पणीयं पंचनमोक्कारं ति। मए भणियं—भयवं, अणुग्गिहीय म्हि। भयवया भणियं—ठायसु मे वामपासे पुव्वाहिमुह त्ति। ठिया ईसि अवणया, वंदिओ भयवं। कयं भयवया परमगुरुसरणं। तओ उवउत्तेण अक्खलियाइगुणसमेओ दिन्नो नमोक्कारो, पडिच्छिओ मए सुद्धभावाइसएण। तयणंतरं च पणट्ठमिव भवभयं, समागयं विय मुत्तिसुहं ति। भयवया भणियं—वच्छे, इणमेव अणुसरंतीए गमेयव्वा तए इमाए एगपासट्ठियाए गिरिगुहाए रयणी, न बीहियव्वं च। संपयं गच्छामि अहयं, सुए पुणो अम्हाणं दंसणं ति। मए भणियं—भयवं, अणुग्गिहीय म्हि। गओ भयवं।

नमोक्कारपराए य परमपमोयसंगयाए थेववेला विय अइक्कंता रयणी। पहायसमए य आस-

दोषनिर्घातनसमर्थं दुष्करं कापुरुषाणां वीतरागवचनानुष्ठानं करिष्यति। एतेन कारणेनात्यन्तसुखितो भविष्यति इति। भणित्वा तूष्णिकः स्थितो भगवान्। एतदाकर्ण्य 'अहो धन्यो महाराजः' इति हृष्टाऽहम्। हृदयस्थं विज्ञाय भणिता च भगवता—वत्से! त्वमपि गृहाण तावत् सर्वमन्त्रपरममन्त्रमतिदुर्लभं जीवलोके विनाशनं भयानां साधनं परमपदस्य पूजनीयं सतामचिन्त्यशक्तियुक्तं ग्राहकं सकलगुणानामुपमातीतकल्याणकारणं भगवता वीतरागेण प्रणीतं पञ्चनमस्कारमिति। मया भणितम्—भगवन्! अनुगृहीताऽस्मि। भगवता भणितम्—तिष्ठ मे वामपार्श्वे पूर्वाभिमुखेति। स्थिता ईषदवनता। वन्दितो भगवान्। कृतं भगवता परमगुरुस्मरणम्। तत उपयुक्तेनास्खलितादिगुणसमेतो दत्तो नमस्कारः। प्रतीप्सितो मया शुद्धभावातिशयेन। तदनन्तरं च प्रनष्टमिव भवभयम्, समागतमिव मुक्तिसुखमिति। भगवता भणितम्—वत्से! इममेवानुसरन्त्या गमयितव्या त्वयाऽस्यामेकपार्श्वस्थितया गिरिगुहायां रजनी, न भेतव्यं च। साम्प्रतं गच्छाम्यहम्, श्वः पुनरस्माकं दर्शनमिति। मया भणितम्—भगवन्! अनुगृहीताऽस्मि। गतो भगवान्।

नमस्कारपरायाश्च परमप्रमोदसंगतायाः स्तोकवेलेवातिक्रान्ता रजनी। प्रभातसमये चाश्व-

दुष्कर ऐसे वीतराग के वचनों का वे पालन करेंगे, इस कारण अत्यन्त सुखी होंगे'—यह कहकर भगवान् मौन हो गये। यह सुनकर 'ओह महाराज धन्य हैं' यह कहकर मैं हर्षित हुई। हृदय की स्थिति को जानकर भगवान् ने कहा—'पुत्री, तुम भी सब मन्त्रों में उत्कृष्ट मन्त्र, संसार में अत्यन्त दुर्लभ, भयों का नाशक, मोक्षपद का साधक, सज्जनों द्वारा पूजनीय, अचिन्त्यशक्ति से युक्त, समस्त गुणों का ग्राहक, जिसकी उपमा नहीं दी जा सकती, ऐसे कल्याणकारक भगवान् वीतराग द्वारा प्रणीत पंचनमस्कार मन्त्र को ग्रहण करो।' मैंने कहा—'भगवन्। मैं अनुगृहीत हूँ।' भगवान ने कहा—'मेरी बायीं तरफ पूर्व की ओर मुख करके बैठो।' कुछ सिर झुकाकर मैं बैठ गयी। भगवान् की वन्दना की। भगवान् ने परमगुरु का स्मरण किया। तब उन्होंने अस्खलित आदि गुणों से युक्त नमस्कार मन्त्र दिया। मैंने शुद्ध भावों के अतिशय से स्वीकार किया। अनन्तर संसार का भय मानो नष्ट हो गया, मुक्तिरूपी सुख का समागम हुआ। भगवान् ने कहा—'पुत्री! इसी का स्मरण करते हुए तुम इस पर्वत की गुफा के एक ओर स्थित हो, रात्रि बिताओ और डरना मत। अब मैं जाता हूँ, कल पुनः हमारा दर्शन होगा।' मैंने कहा—'भगवन्! मैं अनुगृहीत हूँ।' भगवान् चले गये।

नमस्कार मंत्र का जाप करते हुए अत्यधिक हर्ष से युक्त मेरी थोड़े से ही समय में रात्रि व्यतीत हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहणेण अन्नेसणत्थं समागओ राया। पत्ता य णे समीवे कइवि आसवारा। दिट्ठा य णेहिं, हरिसनिब्भरेहिं साहिया राइणो। आगओ मे समीवं राया। बाहोल्ललोयणेणं भणियं च णेणं—देवि, न मे कुप्पियव्वं, अन्नाणमेत्थमवरज्झइ। मए भणियं—अज्जउत्त, को एत्थ अवसरो कोवस्स; नियदुच्चरियविवागसेसमेयं। राइणा भणियं—देवि, अहमेत्थ निमित्तं। मए भणियं—अज्जउत्त, जम्मंतरे विओयपडिबद्धनियदुच्चरियसामत्थेण पहूययरमणुभूयं, तत्थ किं तुमं निमित्तं ति। सव्वहा मए कओ एस दोसो त्ति। राइणा भणियं—देवि, सामन्नेण वियाणामि अहमिणं, जमणादी संसारो कम्मवसगा य पाणिणो। देवो उण विसेसपरिन्नाणसंगया विय मंतेइ। मए भणियं—अज्जउत्त, एवं। राइणा भणियं—देवि कहं विय। साहिओ मए मरणववसायगुरुदंसणाइओ नमोक्कारलाहपज्जवसाणो परिकहियवुत्तंतो। 'अहो भयवओ नाणाइसओ' त्ति विम्हिओ राया। 'अहो असारया संसारस्स, एद्दहमेत्तस्स वि दुक्कडस्स ईइसो विवाओ' त्ति संविग्गो राया। भणियं च णेण—देवि, केदूरे इओ भयवं गुरु त्ति। मए भणियं—अज्जउत्त, इओ थोवंतरे। राइणा भणियं—ता एहि, गच्छम्ह

साधनेनान्वेषणार्थं समागतो राजा। प्राप्ताश्च मे समीपे कत्यप्यश्ववाराः। दृष्टाश्च तैः, हर्षनिर्भरैः कथिता राज्ञः। आगतो मे समीपं राजा। बाष्पार्द्रलोचनेन भणितं च तेन—देवि! न मे कुपितव्यम्, अज्ञानमत्रापराध्यति। मया भणितम्—आर्यपुत्र! कोऽत्रावसरः कोपस्य, निजदुश्चरितविपाकशेषमेतद्। राज्ञा भणितम्—देवि! अहमत्र निमित्तम्। मया भणितम्—आर्यपुत्र! जन्मान्तरे वियोगप्रतिबद्धनिजदुश्चरितसामर्थ्येन प्रभूततरमनुभूतम्, तत्र किं त्वं निमित्तमिति। सर्वथा मया कृत एष दोष इति। राज्ञा भणितम्—देवि! सामान्येन विजानाम्यहमिदम्, यदनादिः संसारः कर्मवशगाश्च प्राणिनः। देवो पुनर्विशेषपरिज्ञानसंगतेव मन्त्रयति। मया भणितम्—आर्यपुत्र! एवम्। राज्ञा भणितम्—देवी कथमिव। कथितो मया मरणव्यवसायगुरुदर्शनादिको नमस्कारलाभपर्यवसानः परिकथितवृत्तान्तः। 'अहो भगवतो ज्ञानातिशयः' इति विस्मितो राजा। 'अहो असारता संसारस्य, एतावन्मात्रस्यापि दुष्कृतस्येदृशो विपाकः' इति संविग्नो राजा। भणितं च तेन—देवि! कियद्दूरे भगवान् गुरुरिति। मया भणितम्—आर्यपुत्र! इतः स्तोकान्तरे। राज्ञा भणितम्—तत एहि,

---

गयी। प्रातःकाल घोड़े से (मुझे) खोजने के लिए राजा आये। कुछ अश्वारोही मेरे समीप आये। उन्होंने हर्षित हो (मुझे) देखा और राजा से कहा। राजा मेरे पास आये। आँसुओं से आर्द्र नेत्रवाले उन्होंने कहा—'महारानी! मुझ पर कुपित न हों, अज्ञान ने यहाँ अपराध कराया है।' मैंने कहा—'आर्यपुत्र! यहाँ क्रोध का क्या अवसर, अपने दुश्चरित का यह शेष फल था।' राजा ने कहा—'महारानी! इसमें मैं निमित्त हुआ।' मैंने कहा—'आर्यपुत्र! दूसरे जन्म में वियोग कराने सम्बन्धी अपने दुश्चरित की सामर्थ्य से मैंने अत्यधिक (फल) अनुभव किया। वहाँ पर आप कैसे निमित्त हो सकते हैं? सर्वथा मेरे द्वारा किया हुआ ही यह दोष है।' राजा ने कहा—'महारानी! सामान्य रूप से मैं यह जानता हूँ कि संसार अनादि है और प्राणी कर्मों के वश में है। पुनः महारानी मानो विशेष ज्ञान से युक्त हो कह रही हैं।' मैंने कहा—'आर्यपुत्र! ऐसा ही है।' राजा ने कहा—'महारानी, कैसा?' मैंने मरण का निश्चय और गुरुदर्शन आदि से नमस्कार-प्राप्तिपर्यन्त (बात) बतलायी। 'भगवान् के ज्ञान की अधिकता आश्चर्यमय है'—ऐसा कहकर राजा विस्मित हुआ। ओह, संसार की असारता! इतने से दुष्कृत का ऐसा फल हुआ! इस प्रकार राजा भयभीत हुए और उन्होंने कहा—'महारानी! भगवान् गुरु कितनी दूर हैं?' मैंने कहा—'आर्यपुत्र! यहाँ से थोड़ी दूर हैं।' राजा ने कहा—'तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भयवंतदंसणवडियाए। मए भणियं—अज्जउत्त, जुत्तमेयं ति। गओ मं घेत्तूण सह परियणेण राया। दिट्ठो भयवं, वंदिओ हरिसियमणेण, धम्मलाहिओ भयवया। भणियं च णेण–भयवं, साहिओ ममं भयवंतदंसणाइओ सयलवुत्तंतो देवीए। जाओ य मे संतासो, 'अहो एद्दहमेत्तस्स वि दुक्कडस्स ईइसो विवाओ' त्ति। अणेयदुक्कडसमन्निओ य अहयं। ता न याणामो, किमेत्थ कायव्वं ति। भयवया भणियं—महाराय सुण, जमेत्थ कायव्वं। राइणा भणियं–आणवेउ भयवं। भयवया भणियं—सुप्पणिहाणं वट्टमाणसयलसावज्जजोयविरमणं संविग्गयाए अईयपडिक्कमणं अच्चंतमणियाणमणागयपच्चक्खाणं ति। एवं च कए समाणे महंतकुसलासयभावेण महामेहवुट्ठिहयाणि विय खुद्दजलणुद्दित्तयाइं पसमंति दुक्कडाइं। तओ वित्थरइ कुसलासओ, उल्लसइ जीववीरियं, विसुज्झए अंतरप्पा, परिणमइ अप्पमाओ, नियत्तए मिच्छावियप्पणं, अवेइ कम्माणुबंधो, खिज्जइ भवसंतती, पाविज्जइ परमपयं। तत्थ उण सव्वकालं न होंति दुक्कडजोया, अच्चंतियं च निरुवमसुहं। ता इमं कायव्वं। राइणा भणियं–भयवं, एवमेयं, अणुग्गिहीओ अहं भयवया, कुसलजोएण करेमि भयवओ आणं ति।

गच्छावो भगवद्दर्शननिमित्तम्। मया भणितम्—आर्यपुत्र! युक्तमेतदिति। गतो मां गृहीत्वा सह परिजनेन राजा। दृष्टो भगवान्, वन्दितः हर्षितमनसा, धर्मलाभितो भगवता। भणितं च तेन—भगवन्! कथितो मम भगवद्दर्शनादिकः सकलवृत्तान्त एव देव्या। जातश्च मे सन्त्रासः, 'अहो एतावन्मात्रस्यापि दुष्कृतस्येदृशो विपाक इति। अनेकदुष्कृतसमन्वितश्चाहम्। ततो न जानीमः किमत्र कर्तव्यमिति। भगवता भणितम्—महाराज! शृणु, यदत्र कर्तव्यम्। राज्ञा भणितम्—आज्ञापयतु भगवान्। भगवता भणितम्—सुप्रणिधानं वर्तमानसकलसावद्ययोगविरमणं संविग्नतयाऽतीतप्रतिक्रमणमत्यन्तमनिदानमनागतप्रत्याख्यानमिति। एवं च कृते सति महाकुशलाशयभावेन महामेघवृष्टिहतानीव क्षुद्रज्वलनोद्दीप्तानि प्रशाम्यन्ति दुष्कृतानि। ततो विस्तीर्यते कुशलाशयः, उल्लसति जीववीर्यम्, विशुद्धयत्यन्तरात्मा, परिणमत्यप्रसादः, निवर्तते मिथ्याविकल्पनम्, अपैति कर्मानुबन्धः, क्षीयते भवसन्ततिः, प्राप्यते परमपदम्। तत्र पुनः सर्वकालं न भवन्ति दुष्कृतयोगाः, आत्यन्तिकं च निरुपमसुखम्। तत इदं कर्तव्यम्। राज्ञा भणितम्—भगवन्! एवमेतद्, अनुगृहीतोऽस्म्यहं भगवता,

---

आओ, भगवान् के दर्शन के लिए चलें।' मैंने कहा—'आर्यपुत्र! ठीक है।' राजा मुझे लेकर परिजनों के साथ गये। भगवान् के दर्शन किये, हर्षित मन से वन्दना की, भगवान् ने धर्मलाभ दिया। राजा ने कहा—'भगवन्! भगवान् के दर्शन आदि समस्त वृत्तान्त को महारानी ने मुझे बता दिया है। मुझे भय उत्पन्न हुआ है; ओह! इतने से दुष्कृत का इतना फल हुआ और मैं अनेक दुष्कृतों से युक्त हूँ, अतः नहीं जानता हूँ, यहाँ क्या करना चाहिए?' भगवान् ने कहा—'यहाँ जो करना चाहिए सुनो।' राजा ने कहा—'भगवान् आज्ञा दें।' भगवान् ने कहा—'सम्यक् समाधि, वर्तमान के सभी सावद्ययोग (पापयुक्त कार्यों के संयोग) का त्याग, भयभीत होकर पहले किये हुए कार्यों का प्रतिक्रमण, अत्यन्त रूप से निदान न करना और भविष्य में किये जानेवाले दुष्कर्मों का त्याग करना—ऐसा करने पर महाशुभ आशयवाले भावों से, जिस प्रकार महामेघ की वर्षा से क्षुद्र प्रदीप्त अग्नि ताडित होकर शान्त हो जाती है, उसी प्रकार दुष्कर्म भी शान्त हो जाते हैं। अनन्तर शुभ भावों का विस्तार होता है, आत्मशक्ति विकसित होती है, अन्तरात्मा शुद्ध होती है, अप्रमाद पूर्ण वृद्धि को प्राप्त होता है, मिथ्या विकल्प दूर हो जाता है, कर्मबन्ध छूट जाता है, संसार परम्परा क्षीण हो जाती है। मोक्ष की प्राप्ति होती है। फिर वहाँ दुष्कर्मों का योग (बन्ध) कभी भी नहीं होता है और आत्यन्तिक अनुपम सुख की उपलब्धि होती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भणिऊण पुलइया अहं भणिया य—देवि, दुल्लहो भयवंततुल्लो धम्मसारही। उवाएओ य सव्वहा धम्मो, सव्वमन्नं संकिलेसकारणं। न होइ धम्मो गुरुमंतरेण, ता संपाडेमि भयवओ आणं ति। मए भणियं—अज्जउत्त, जुत्तमेयं। तओ दयावियं राइणा महादाणं, कारावियाा अट्ठाहियामहिमा सम्माणिया पउरजणवया, ठाविओ रज्जे सुरसुंदरो नाम जेट्ठपुत्तो। तओ अणेयसामंतामच्चपरियओ सह मए सयलंतेउरेण य सुगिहीयनामधेयगुरुसमीवे सुत्तभणिएण विहिणा पवड्ढमाणेणं सुहपरिणा-मेणं पव्वइओ राया। ता एवं, वच्छे, थेवेण कम्मुणा इयं मए पावियं ति। अओ अवगच्छामि; थेवस्स अन्नाणचेट्ठियस्स, वच्छे, एसो विवाओ, पहूयस्स उ तिरियाइएसु हवइ। एवं च कम्मपरिणईए समा-वडियाए वि अस्सा उदए पुव्वकडमेयं ति न संतप्पियव्वं जाणएण। एयमायण्णिऊण आविब्भूय-सम्मत्तदेसविरइपरिणामाए जंपियं रयणवईए। भयवइ, महंतं दुक्खमणुभूयं भयवईए। अहवा ईइसो एस संसारो। सव्वहा कयत्था भयवई, जा समुत्तिण्णा इमाओ किलेसजंबालाओ। अहं पि धन्ना चेव, जीए मए तुमं दिट्ठा। न अप्पपुण्णाणं चिंतामणिरयणसंपत्ती हवइ। ता आइसउ भयवई, जं मए

कुशलयोगेन करोमि भगवत आज्ञामिति। भणित्वा दृष्टाऽहं भणिता च—देवि! दुर्लभो भगवत्तुल्यो धर्मसारथिः। उपादेयश्च सर्वथा धर्मः, सर्वमन्यत् संक्लेशकारणम्। न भवति धर्मो गुरुमन्तरेण, ततः सम्पादयामि भगवत आज्ञामिति। मया भणितम्—आर्यपुत्र! युक्तमेतद्। ततो दापितं राज्ञा महा-दानम्, कारितोऽष्टाह्निकामहिमा, सन्मानितः पौरजनव्रजाः, स्थापितो राज्ये सुरसुन्दरो नाम ज्येष्ठ-पुत्रः। ततोऽनेकसामन्तामात्यपरिवृतः सह मया सकलान्तःपुरेण च सुगृहीतनामधेयगुरुसमीपे सूत्र-भणितेन विधिना प्रवर्धमानेन शुभपरिणामेन प्रव्रजितो राजा। तत एवं वत्से! स्तोकेन कर्मणेदं मया प्राप्तमिति। अतोऽवगच्छामि स्तोकस्याज्ञानचेष्टितस्य वत्से! एष विपाकः, प्रभूतस्य तु तिर्यगादि-केषु भवति। एवं कर्मपरिणतौ समापतितायामपि अस्या उदये 'पूर्वकृतमेतद्' इति न सन्तप्तव्यं ज्ञायकेन। एवमाकर्ण्याविर्भूतसम्यक्त्वदेशविरतिपरिणामया जल्पितं रत्नवत्या—भगवति! महद् दुःखमनुभूतं भगवत्या। अथवेदृश एष संसारः। सर्वथा कृतार्था भगवती, या समुत्तीर्णाऽस्माद् क्लेश-जम्बालाद्। अहमपि धन्यैव, यया मया त्वं दृष्टा। नाल्पपुण्यानां चिन्तामणिरत्नसम्प्राप्तिर्भवति।

है। अतः यह करना चाहिए।' तब राजा ने कहा—'भगवन्! ठीक है, भगवान् से मैं अनुगृहीत हूँ, शुभयोग से भगवान् की आज्ञा का पालन करूँगा'—ऐसा कहकर (राजा ने) मुझे देखा और कहा—'महारानी! भगवान् के समान सारथी दुर्लभ है। सब प्रकार से धर्म ग्रहण करने योग्य है और अन्य सब दुःख का कारण है। गुरु के बिना धर्म नहीं होता है अतः भगवान् की आज्ञा पूर्ण करता हूँ।' मैंने कहा—'आर्यपुत्र! ठीक है।' अनन्तर महादान दिलाया, आष्टाह्निक महोत्सव कराया, नगरनिवासियों का सम्मान किया, राज्य पर सुरसुन्दर नामक बड़े पुत्र को बैठाया। अनन्तर अनेक सामन्त और आमात्यों से युक्त हो मेरे और समस्त अन्तःपुर के साथ सुगृहीत नामवाले गुरु के पास सूत्रकथित विधिपूर्वक बढ़े हुए शुभ परिणामों से राजा प्रव्रजित हो गये। तो इस प्रकार पुत्री, थोड़े से कर्म से मैंने यह पाया। अतः जानती हूँ पुत्री! कि थोड़ी-सी अज्ञान-चेष्टा का यह फल होता है और भी अधिक अज्ञान चेष्टा का फल तिर्यंच आदि गतियों में गमन होता है। इस प्रकार कर्मों की परिणति के उदय में आने पर 'यह पहले का किया हुआ (कर्म) है'—ऐसा सोचकर ज्ञानी को दुःखी नहीं होना चाहिए।' ऐसा सुनकर उत्पन्न सम्यक्त्व रूप देशविरति के परिणामोंवाली रत्नवती ने कहा—'भगवती! भगवती ने बहुत दुःख भोगा। अथवा यह संसार ही ऐसा है। भगवती सब प्रकार से कृतार्थ हैं जो कि इस क्लेशरूपी जाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायव्वं ति । तओ वियाणिऊण तीए भावं साहिओ सावयधम्मो गणिणीए । 'एयमहं चएमि काउं' त्ति हरिसिया रयणवई । नमोक्कारपुव्वयं सिद्धंतविहाणेण गहियाइं अणुव्वयगुणव्वयसिक्खावयाइं । वंदिया गणिणी, पुच्छिया रयणवईए । भयवइ, 'कोइसो मज्झ सरविसेसो' त्ति पुच्छियाए जं तए समाणत्तं 'जारिसो परमानंदजोए भत्तुणो हवइ' त्ति ता कोइसो अज्जउत्तस्स परमाणंदजोओ, किं सुयं कुओइ अज्जउत्तेण वीयरायवयणं । गणिणीए भणियं—वच्छे, एवमहं तक्केमि । एत्थंतरम्मि गुलुगुलियं गंधहत्थिणा, समाहयं संझामंगलतूरं, पढियं च बंदिणा—

धम्मोदएण तं नत्थि जं न होइ त्ति सुंदरं लोए ।
इय जाणिऊण सुंदरि संपइ धम्मं दढं कुणसु ॥६४६॥

ढोइयाणि य से नंदाभिहाणाए भंडारिणीए महानायगसंजुयाणि कडयाणि, समागओ सियकुसुमहत्थो पुरोहिओ । भणियं च णेण—देवि, देवगुरुवंदणसमओ वट्टइ त्ति । हरिसिया रयणवई । चिंतियं च णाए—न एत्थ संदेहो, अणुकूलो सउणसंघाओ त्ति सम्ममायण्णियं वीयरागवयणं

तत आदिशतु भगवती, यन्मया कर्तव्यमिति । ततो विज्ञाय तस्या भावं कथितः श्रावकधर्मो गणिन्या । 'एतमहं शक्नोमि कर्तुम्' इति हर्षिता रत्नवती । नमस्कारपूर्वकं सिद्धान्तविधानेन गृहीतानि अणुव्रतगुणव्रतशिक्षाव्रतानि । वन्दिता गणिनी । पृष्टा रत्नवत्या—भगवति ! 'कीदृशो मम स्वरविशेषः' इति पृष्टया यत्त्वया समाज्ञप्तं 'यादृशः परमानन्दयोगे भर्तुर्भवति' इति । ततः कीदृश आर्यपुत्रस्य परमानन्दयोगः, किं श्रुतं कुतश्चिदार्यपुत्रेण वीतरागवचनम् । गणिन्या भणितम्—वत्से ! एवमहं तर्कये । अत्रान्तरे गुलुगुलितं गन्धहस्तिना, समाहतं सन्ध्यामङ्गलतूर्यम्, पठितं च वन्दिना—

धर्मोदयेन तन्नास्ति यन्न भवतीति सुन्दरं लोके ।
इति ज्ञात्वा सुन्दरि ! सम्प्रति धर्मं दृढं कुरु ॥६४६॥

ढौकिते च तस्या नन्दाभिधानया भाण्डागारिण्या महानायकसंयुक्ते (महामध्यमणिसंयुक्ते) कटके, समागतः सितकुसुमहस्तः पुरोहितः । भणितं च तेन—देवि ! देवगुरुवन्दनसमयो वर्तते इति । हर्षिता रत्नवती । चिन्तितं च तया—नात्र सन्देहः अनुकूलः शकुनसंघात इति सम्यगाकर्णितं वीत-

---

से निकल गयीं । मैं भी धन्य ही हूँ जो कि मैंने आपके दर्शन पाये । अल्पपुण्यवालों को चिन्तामणि रत्न की प्राप्ति नहीं होती है अतः भगवती, मेरा जो कर्तव्य हो उसकी आज्ञा दें ।' अनन्तर उसके भाव को जानकर गणिनी ने गृहस्थ धर्म कहा । 'यह मैं करने में समर्थ हूँ'—इस प्रकार रत्नवती हर्षित हुई । नमस्कारमन्त्रपूर्वक सैद्धान्तिक विधि से अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रत ग्रहण किये । गणिनी की वन्दना की । रत्नवती ने पूछा—'भगवती ! 'मेरा स्वरविशेष कैसा है ?'—ऐसा पूछे जाने पर जो आपने आज्ञा दी थी कि पति के परम आनन्द के योग में जैसा (स्वर) होता है । अतः आर्यपुत्र का कैसा परम आनन्द का योग है ? क्या कहीं से आर्यपुत्र ने वीतराग के वचनों को सुना है ?' गणिनी ने कहा—'ऐसा मैं सोचती हूँ । इसी बीच मदयुक्त हाथी ने शब्द किया, सन्ध्याकालीन मंगल वाद्य बजे और बन्दी ने पढ़ा—

धर्म के उदय से वहाँ नहीं है जो कि लोक में सुन्दर न हो, ऐसा जानकर सुन्दरी ! इस समय अत्यधिक रूप से या भली प्रकार धर्म (धर्माचरण) करो ॥६४६॥

उसकी नन्दा नामक भण्डारिन मध्य में जड़े हुए महामणियोंवाले दो कड़े लायी, हाथ में सफेद फूल लिये पुरोहित आया और उसने कहा—'महारानी ! देव-गुरु की वन्दना का समय है ।' रत्नवती हर्षित हुई । उसने

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

अज्जउत्तेण, पाविथं पावियव्वं, उवलद्धो सिद्धिमग्गो। कहं च अन्नहा परमाणंदसद्दो सुयदेवयाकप्पाए भयवईए मुहाओ निक्खमइ। अब्भहियजायहरिसाए वंदिया गणिणी, भणिया य सविणयं—भयवइ, किं कप्पइ एत्थ भयवईए रयणीए चिट्ठिउं, न हि। गणिणीए भणियं—धम्मसीले, जत्थ तुमं, तत्थ नत्थि विरोहो। तहावि गच्छामि ताव संपयं। अदूरे चेव अम्हाण पडिस्सओ। ता पुणो आगमिस्सामि त्ति। रयणवईए भणियं—भयवइ अणुग्गहो। वंदिऊणमब्भुट्ठिया गणिणी। अणुव्वइया य णाए। वंदिऊण य नियत्ता उचियदेसाओ। कयं पओसकरणिज्जं। नमोक्कारपराए य अइगया रयणी। पहाए य आउच्छिऊण ससुरमणुन्नाया य णेण गया गणिणीसमीवं। वंदिया गणिणी। सुआ धम्मदेसणा। समागया सगिहं। बीयदियहे धम्माणुरायओ सगिहत्थियाए चेव समागया गणिणी। एवं पइदिणं गणिणीपज्जुवासणपराए अइक्कंता चत्तारि दिवसा। समागओ पंचमे दिणे कुमारो। निवेइओ चंदसुंदरीए गणिणीसमीवसंठियाए रयणवईए, जहा 'देवि न अन्नहा भयवईवयणं ति; समागओ ते हिययणंदणो'। एयमायण्णिऊण परितुट्ठा रयणवई। दिन्नं तीए पारिओसियं।

रागवचनमार्यपुत्रेण, प्राप्तं प्राप्तव्यम्, उपलब्धः सिद्धिमार्गः। कथं चान्यथा परमानन्दशब्दः श्रुतदेवताकल्पाया भगवत्या मुखान्निष्क्रामति। अभ्यधिकजातहर्षया वन्दिता गणिनी, भणिता च सविनयम्। भगवति! किं कल्पतेऽत्र भगवत्या रजन्यां स्थातुं, न हि। गणिन्या भणितम्—धर्मशीले! यत्र त्वं तत्र नास्ति विरोधः। तथाऽपि गच्छामि तावत् साम्प्रतम्। अदूरे एवास्माकं प्रतिश्रयः। ततः पुनरागमिष्यामीति। रत्नवत्या भणितम्—भगवति! अनुग्रहः। वन्दित्वाऽभ्युत्थिता गणिनी। अनुव्रजिता च तया। वन्दित्वा च निवृत्तोचितदेशात्। कृतं प्रदोषकरणीयम्। नमस्कारपरायाश्चातिगता रजनी। प्रभाते चापृच्छ्य श्वसुरमनुज्ञाता च तेन गता गणिनीसमीपम्। वन्दिता गणिनी। श्रुता धर्मदेशना। समागता स्वगृहम्। द्वितीयदिवसे धर्मानुरागतः स्वगृहस्थिताया एव समागता गणिनी। एवं प्रतिदिवसं गणिनीपर्युपासनपराया अतिक्रान्ताश्चत्वारो दिवसाः। समागतः पञ्चमे दिने कुमारः। निवेदितश्चन्द्रसुन्दर्या गणिनीसमीपसंस्थिताया रत्नवत्याः, यथा 'देवि! नान्यथा भगवतीवचनमिति, समागतस्ते हृदयनन्दनः।' एवमाकर्ण्य परितुष्टा रत्नवती। दत्तं तस्याः पारितोषिकम्।

सोचा—इसमें सन्देह नहीं कि शकुन अनुकूल हैं, अतः आर्यपुत्र ने वीतराग के वचन भली प्रकार सुने हैं, प्राप्त करने योग्य वस्तु प्राप्त की है, सिद्धि का मार्ग पाया है। अन्यथा परमानन्द का शब्द श्रुतदेवता के समान भगवती के मुख से कैसे निकलता? अत्यधिक हर्ष से युक्त हो गणिनी की वन्दना की और विनयपूर्वक कहा—'भगवती! भगवती यहाँ रात्रि में ठहरेंगी अथवा नहीं?' गणिनी ने कहा—'धर्मशीले! जहाँ तुम हो, वहाँ विरोध नहीं है, तथापि इस समय मैं जा रही हूँ। हमारा आश्रम पास में ही है। अतः पुनः आऊँगी।' रत्नवती ने कहा—'भगवती! अनुग्रह किया' (ऐसा कहकर) वन्दना की। गणिनी उठीं और रत्नवती उनके पीछे चली। वन्दना कर (रत्नवती) योग्य स्थान से लौट आयी। सन्ध्या के योग्य कार्यों को किया। नमस्कार मन्त्र का पाठ करते हुए रात बीती। प्रातःकाल श्वसुर से पूछकर और उनसे अनुमति प्राप्त कर गणिनी के पास गयी। गणिनी की वन्दना की। धर्मोपदेश सुना। अपने घर आयी। दूसरे दिन धर्मानुराग से जब वह अपने घर में थी, तभी गणिनी आयीं। इस प्रकार प्रतिदिन गणिनी की उपासना में तत्पर रहते हुए चार दिन बीत गये। पाँचवें दिन कुमार आया। चन्द्रसुन्दरी ने गणिनी के समीप स्थित रत्नवती से निवेदन किया कि 'देवि! भगवती के वचन झूठे नहीं थे, तुम्हारे हृदय को आनन्द देनेवाला आ गया।' यह सुनकर रत्नवती सन्तुष्ट हुई। (उसने) उसे पारितोषिक दिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एत्थंतरम्मि कुमारो वि सह विग्गहेण दट्ठूण नरवइं साहिऊण विग्गहवुत्तंतं राइणो सबहुमाणं सम्माणिओ णेण समागओ रयणवइसमीवं। दट्ठूण य 'कहं कयत्था चेव देवी सगया गणिणीए' त्ति हरिसिओ चित्तेणं। वंदिया णेण गणिणी। धम्मलाहिओ गणिणीए। भणियं कुमारेण—भयवइ, पेच्छ मम पुण्णोदयं, जेण पडिबोहिओ अहं भयवया सुगिहीयनामधेएण गुरुणा बीयहिययभूया य मे तए देवि त्ति; दिट्ठा य भवसयदुल्लहदसणा भयवई। गणिणीए भणियं—कुमार, नत्थि असज्झं कुसलाणुबंधिपुण्णोदयस्स। एएण पाणिनो पावंति सुहपरंपराए मुत्तिसुहं पि, किमंग पुण अन्नं। कुमारेणं भणियं—एवमेयं। जइ वि पुण्णपावक्खएण मुत्ती, तहावि तस्स कुसलाणुबंधिपुण्णमेव कारणं। न कुसलाणुबंधिपुण्णविवागमंतरेण तारिसा भावा लब्भंति, जारिसेसु पुण्णपावक्खयनिमित्तकुसलजोयाराहणं ति। गणिणीए भणियं—साहु, सम्ममवधारियं कुमारेण। अहवा न एत्थ अच्छरीयं। निमित्तमेत्त चेव देसणा तत्तोवलंभे कुसलाणं। एवं च धम्मकहावावारेण कंचि वेलं गमेऊण गया गणिणी पडिस्सयं। अन्नोन्नधम्मसंपत्तीए य परितुट्ठं मिहुणयं। भुत्तुत्तरकालं च साहिओ परोप्पर-

अत्रान्तरे कुमारोऽपि सह विग्रहेण दृष्ट्वा नरपतिं कथयित्वा विग्रहवृत्तान्तं राज्ञः सबहुमानं सम्मानितस्तेन समागतो रत्नवतीसमीपम्। दृष्ट्वा च 'कथं कृतार्था एव देवी संगता गणिन्या' इति हर्षितश्चित्तेन। वन्दिता तेन गणिनी। धर्मलाभितो गणिन्या। भणितं कुमारेण। भगवति! पश्य मम पुण्योदयम्, येन प्रतिबोधितोऽहं भगवता सुगृहीतनामधेयेन गुरुणा द्वितीयहृदयभूता च मे त्वया देवीति, दृष्टा च भवशतदुर्लभदर्शना भगवती। गणिन्या भणितम्—कुमार! नास्त्यसाध्यं कुशलानुबन्धिपुण्योदयस्य। एतेन प्राणिनः प्राप्नुवन्ति सुखपरम्परया मुक्तिसुखमपि, किमङ्ग पुनरन्यद्। कुमारेण भणितम्—एवमेतद्। यद्यपि पुण्यपापक्षयेण मुक्तिः, तथाऽपि तस्य कुशलानुबन्धिपुण्यमेव कारणम्। न कुशलानुबन्धिपुण्यविपाकमन्तरेण तादृशा भावा लभ्यन्ते, यादृशेषु पुण्यपापक्षयनिमित्तकुशलयोगाराधनमिति। गणिन्या भणितम्—साधु, सम्यगवधारितं कुमारेण। अथवा नात्राश्चर्यम्। निमित्तमात्रमेव देशना तत्त्वोपलम्भे कुशलानाम्। एवं च धर्मकथाव्यापारेण कांचिद् वेलां गमयित्वा गता गणिनी प्रतिश्रयम्। अन्योऽन्यधर्मसम्प्राप्त्या च परितुष्टं मिथुनकम्। भक्तो-

इसी बीच विग्रह के साथ राजा को देखकर, राजा से विग्रह का वृत्तान्त कहकर आदरपूर्वक उनसे सम्मानित होकर कुमार रत्नवती के पास आया और देखकर कि गणिनी के साथ देवी कैसी कृतार्थ है, इस प्रकार चित्त से हर्षित हुआ। उसने गणिनी की वन्दना की। गणिनी ने धर्मलाभ दिया। कुमार ने कहा—'मेरे पुण्योदय को देखो कि मुझे भगवान सुगृहीत नामवाले गुरु ने प्रतिबोधित किया और मेरे दूसरे हृदय के समान देवी को आपने प्रतिबोधित किया और सैकड़ों भवों में दुर्लभ दर्शनवाली भगवती को देखा।' गणिनी ने कहा—'कुमार! शुभ परिणामवाले पुण्योदय के लिए कुछ भी असाध्य नहीं है। इससे प्राणी सुख की परम्परा से मुक्ति-सुख को भी पाते हैं, अन्य की तो बात ही क्या।' कुमार ने कहा—'यह सच है। यद्यपि पुण्य और पाप के क्षय से मुक्ति होती है तथापि मुक्ति का कारण शुभ परिणामवाला पुण्य ही है। शुभ परिणामवाले पुण्यफल के बिना वैसे पदार्थ प्राप्त नहीं होते, जैसे पुण्य और पाप के नष्ट होने के कारणभूत पुण्य योग की आराधना से प्राप्त होते हैं। गणिनी ने कहा—'ऐसा ही है, कुमार ने ठीक निश्चय किया अथवा इसमें आश्चर्य नहीं है। पुण्यवालों को तत्त्व की प्राप्ति उपदेश के निमित्त मात्र ही है।' इस प्रकार धर्मकथा द्वारा कुछ समय बिताकर गणिनी आश्रम (प्रतिश्रय) में चली गयीं। परस्पर धर्म की प्राप्ति से दोनों सन्तुष्ट हुए। भोजन करने के बाद इन दोनों ने आपस में धर्म का वृत्तान्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निमेहिं धम्मवुत्तंतो। गयाइं गणिणीसमीवं, सुया धम्मदेसणा। समागयाणि उचियसमएण। एवं च पइदिणं धम्मजोगाराहणपराण अइक्कंतो कोइ कालो। भावियाणि धम्मे। कालक्कमेणेव समुप्पन्नो रयणवईए पुत्तो। नत्तुयमुहदंसणकयत्थत्तणेणं च कुमारं रज्जे अहिसिंचिय पव्वइओ मेत्तीबलो। कुमारो वि जाओ महाराओ त्ति। तस्स य धम्मगुणप्पहावेण अणुरत्तसामंतमंडलं रहियं कंटएहिं अलंकियं रज्जगुणेण समद्धासिअं लच्छीए निच्चपमुइयजणं सुट्ठियाए तिवग्गणीईए सयलजणपससणिज्जं देवगुरुपज्जुवासणपरयाए रज्जमणुपालेंतस्स अइक्कंतो कोइ कालो।

अन्नया समागओ जलयकालो, ओत्थरियमंबरं जलहरेहिं, पवाइया कलंबवाया, वियंभिओ गज्जियरवो, उल्लसिया बलायपंती, विप्फुरिया विज्जुलेहा, हरिसिया बप्पीहया, जायं पवरिसणं, पणच्चिया सिहंडिणो, पणट्ठा रायहंसा, पव्वालिया वसुमई, भरिया कुसारा, पवत्तो दद्दुररवो, उब्भिन्ना कंदला, उक्कंठियाओ पहियजायाओ, निव्वुयं गोमाहिसक्कं। पवड्ढमाणाणुबंधे य जलयकाले सरसरियापूरदंसणत्थं समं अहासन्निहियपरियणेण निग्गओ राया। दिट्ठा सरिया कट्ठतणकलि-

---

तत्कालं च कथितः परस्परमाभ्यां धर्मवृत्तान्तः। गतौ गणिनीसमीपम्, श्रुता धर्मदेशना। समागतौ उचितसमयेन। एवं च प्रतिदिनं धर्मयोगाराधनपरयोरतिक्रान्तः कोऽपि कालः। भावितौ धर्मे। कालक्रमेणैव समुत्पन्नो रत्नवत्याः पुत्रः। नप्तृमुखदर्शनकृतार्थत्वेन च कुमारं राज्येऽभिषिच्य प्रव्रजितो मैत्रीबलः। कुमारोऽपि जातो महाराज इति। तस्य च धर्मगुणप्रभावेनानुरक्तसामन्तमण्डलं रहितं कण्टकैरलंकृतं राज्यगुणेन समध्यासितं लक्ष्म्या नित्यप्रमुदितजनं सुस्थितया त्रिवर्गनीत्या सकलजनप्रशंसनीयं देवगुरुपर्युपासनपरतया राज्यमनुपालयतोऽतिक्रान्तः कोऽपि कालः।

अन्यदा समागतः जलदकालः, अवस्तृतमम्बरं जलधरैः, प्रवाताः कदम्बवाताः, विजृम्भितो गर्जितरवः, उल्लसिता बलाकापङ्क्तिः, विस्फुरिता विद्युल्लेखाः, हर्षिताश्चातकाः, जातं प्रवर्षणम्, प्रनर्तिताः शिखण्डिनः, प्रनष्टा राजहंसा, प्लाविता वसुमती, भृताः कासाराः, प्रवृत्तो दर्दुररवः, उद्भिन्नाः कन्दलाः, उत्कण्ठिताः पथिकजायाः, निर्वृतं गोमाहिषचक्रम्। प्रवर्धमानानुबन्धे च जलदकाले सरःसरित्पूरदर्शनार्थं समं यथासन्निहितपरिजनेन निर्गतो राजा। दृष्टा सरित् काष्ठतृणकलि-

---

कहा। दोनों गणिनी के पास गये। धर्मोपदेश सुना। योग्य समय पर वापस आये। इस प्रकार प्रतिदिन धर्मयोग की आराधना-परायण होते हुए दोनों का कुछ समय बीत गया। दोनों ने धर्मभाव रखा। कालक्रम से रत्नवती के पुत्र उत्पन्न हुआ। पौत्र के मुख-दर्शन से कृतार्थ होकर कुमार का राज्य पर अभिषेक कर मैत्रीबल प्रव्रजित हो गया। कुमार भी महाराज हो गये। धर्मगुण के प्रभाव से अनुरक्त समस्त सामन्त समूहवाले, कण्टकों से रहित, राज्यगुण से अलंकृत, लक्ष्मी से अधिष्ठित, प्रतिदिन लोगों को प्रमुदित करते हुए, धर्म, अर्थ और काम की सुस्थिर नीति से लोगों द्वारा प्रशंसनीय, देव और गुरु के उपासना-परायण होकर राज्य का पालन करते हुए (उनका) कुछ समय बीत गया।

एक बार वर्षाकाल आया। मेघों ने आकाश को आच्छादित कर लिया। हवा के झोंके चले। गर्जन का शब्द बढ़ा। बगुलों की पंक्तियाँ हर्षित हुईं। बिजली चमकने लगी। पपीहे हर्षित हुए। खूब वर्षा हुई। मोरों ने नृत्य किया। राजहंस दिखाई नहीं पड़े। पृथ्वी जल से भर गयी, तलैयाँ भर गयीं, मेंढकों का शब्द होने लगा। अंकुर फूट पड़े। पथिकों की स्त्रियाँ उत्कण्ठित हो गयीं। गाय और भैंसों का समूह शान्त हुआ। वर्षा बढ़ने पर तालाब और नदियों की बाढ़ देखने के लिए समीपवर्ती परिजनों के साथ राजा निकला। लकड़ी, तृण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेण पूरिया जलोहेण वित्थरंती सव्वओ, निवाडयंती कूलाणि, विणासयंती आरामे, कलुसयंती अप्पाणयं, संगया कूरजलयरेहिं, रहिया बुहजणसेवणिज्जेण जलेण, अहिट्ठिया कल्लोलेहिं, वज्जिया मज्जायाए, अच्चंतभीसणेणं महावत्तसंघाएणं बालाइभयजणणि त्ति। तं च कंचि वेलं पुलइय पविट्ठो नयरिं राया। अइक्कंता कइइ दियहा। सरयसमए आसपरिवाहणनिमित्तं वाहियालिं गच्छमाणेण पुणो पयइभावट्ठिया संगया सच्छोदएण वज्जिया कूरजलयरेहिं विसिट्ठजणोवभोयसंपायणसमत्था स च्चेव दिट्ठ त्ति। तं च दट्ठूण सुमरियपुव्ववुत्तंतस्स राइणो तहाकम्मपरिणइवसेण समुप्पन्नो संवेओ। चिंतियं च णेण—अहो णु खलु असारो बज्झरिद्धिवित्थरो, सपरावगारओ य परमत्थेण। एसेव सरिया एत्थ निदंसणं ति। जहा इमा वित्थरंती सव्वओ अप्पपरावगारिणी पुव्वोवलद्धवुत्तंतेण, तहा पुरिसो वि वित्थरंतो बज्झवित्थरेण; सो खलु महारंभपरिग्गहयाए निवाडेइ सुहभावकूलाणि, विणासेइ धम्मचरणारामे, कलुसेइ कम्मुणा अप्पाणयं, संजुज्जए कूरसत्तेहिं, विउज्जए निरीहसाहुजणेण, सेविज्जए उम्मायकल्लोलेहिं, वज्जिज्जए किच्चमज्जायाए। एवं च महामोहावत्तमज्झवत्ती

लेन पूरिता जलौघेन विस्तृण्वती सर्वतः, कूलानि निपातयन्ती, विनाशयन्त्यारामान्, कलुषन्त्यात्मानम्, संगता क्रूरजलचरः, रहिता बुधजनसेवनीयेन जलेन, अधिष्ठिताः कल्लोलैः, वर्जिता मर्यादया, अत्यन्तभीषणेन महावर्तसंघातेन बालादिभयजननीति। तां च कांचिद् वेलां दृष्ट्वा प्रविष्टो नगरीं राजा। अतिक्रान्ता कतिचिद् दिवसाः। शरत्समये अश्वपरिवाहननिमित्तं वाह्यालिं (अश्वखेलनभूमिं) गच्छता पुनः प्रकृतिभावस्थिता संगता स्वच्छोदकेन वर्जिता क्रूरजलचरैर्विशिष्टजनोपभोगसम्पादनसमर्था सैव दृष्टेति। तां च दृष्ट्वा स्मृतपूर्ववृत्तान्तस्य राज्ञः तथाकर्मपरिणतिवशेन समुत्पन्नः संवेगः। चिन्तितं च तेन—अहो नु खल्वसारो बाह्यऋद्धिविस्तारः, स्वपरापकारकश्च परमार्थेन। एषैव सरिदत्र निदर्शनमिति। यथेयं विस्तृण्वती सर्वत आत्मपरापकारिणी पूर्वोपलब्धवृत्तान्तेन; तथा पुरुषोऽपि विस्तृण्वन् बाह्यविस्तारेण; सः खलु महारम्भपरिग्रहतया निपातयति शुभभावकूलानि, विनाशयति धर्मचरणारामान्, कलुषयति कर्मणाऽऽत्मानम्, संयुज्यते क्रूरसत्त्वैः, वियुज्यते निरीहसाधुजनेन, सेव्यते उन्मादकल्लोलैः, वर्ज्यते कृत्यमर्यादया। एवं च महामोहावर्तमध्यवर्ती निरर्थि-

---

और कीचड़ से भरी हुई जलवाली नदी को देखा। वह चारों ओर फैली हुई थी। किनारों को गिरा रही थी। उद्यानों का विनाश कर रही थी। अपने आपको कलुषित (कीचड़ से युक्त) कर रही थी। क्रूर जलचरों से युक्त थी। विद्वानों के द्वारा सेवन करने योग्य जल से रहित थी। बड़ी-बड़ी भयंकर भँवरों के समूह से बच्चों आदि को भय उत्पन्न कर रही थी। उसे कुछ समय देख कर राजा नगरी में प्रविष्ट हुआ। कुछ दिन बीत गये। शरत्काल में घोड़े को चलाने के लिए अश्वक्रीडा-भूमि में जाते हुए पुनः स्वाभाविक रूप में स्थित, स्वच्छ जल से युक्त, क्रूर जलचरों से रहित, विशिष्ट लोगों के उपभोग को पूर्ण करने में समर्थ वही नदी दिखाई दी। उसे देखकर, जिसे पूर्ववृत्तान्त याद आ गया है, ऐसे राजा को कर्म की परिणतिवश विरक्ति उत्पन्न हो गयी। उसने सोचा—ओह! बाह्य ऋद्धि का विस्तार असार है और यथार्थ रूप से अपना और दूसरे का अपकारक है। यही नदी यहाँ दृष्टान्त है। जैसे यह नदी पूर्व उपलब्ध वृत्तान्त से विस्तृत होती हुई सभी ओर से अपना अपकार करने वाली थी, उसी प्रकार पुरुष भी बाह्य विस्तार से (अपना) विस्तार करता हुआ अपना अपकारी है। वह मनुष्य महान् आरम्भ और परिग्रह से शुभभाव रूपी किनारों को गिराता है, धर्मपालन रूप उद्यानों का विनाश करता है। अपने आपको कर्मों से कलुषित करता है, क्रूर प्राणियों से युक्त होता है, निरीह साधुओं से वियुक्त होता है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निरत्थियाए अहोपुरिसियाए अवियारिऊण परमत्थं, अणालोचिऊण आयइं, अपेच्छिऊण तस्स भंगुरत्तं, माइंदयालविब्भमे तम्मि असइ पत्ते वि अपरिचिए अवयारए नियमेण अच्चंतगिद्धो सपरावयारए त्ति । रहिओ य णेणं, जहा इमो सरिया पयइभावे वट्टमाणी सोहणा, तहा पुरिसो वि विज्जमाणे विवेए निरत्थयपरिकिलेसरहिओ संगओ सुद्धासएण वज्जिओ पावमित्तेहिं जीवलोओव-यारोवभोयसंपायणसमत्थो हवइ, अविज्जमाणे अवायगमणपडिबंधे बज्झविहवविरथरभावो उण विवेइणो वि महंतं परलोयंतरायं निबंधणं मिच्छाहिमाणस्स उच्छायणं चित्तनिव्वुईए संपायणं परि-किलेसाण पणासणं नाणपरिणईए वेरियं संतोसामयस्स बंधवं असव्ववसायाणं अयाणयं वियंभसुहस्स वियाणयं कवडनीईणं वज्जियं कुसलजोएण संगयं पावाणुमईए । तहा जइ वि केसिंचि दव्वोवयार-संपायणसमत्थमेयं, तहावि तरो; तओ न अन्नपीडाए विणा परमत्थओ सो वि संभवई । पहाणो य भावोवयारो न यापरिचत्तारंभपरिग्गहो सव्वहा तं संपाडेइ । जुत्तं च मणुयभावे तस्स संपायणं, किमन्नेण निरत्थएणं ति । चिंतयंतस्स समुप्पन्नो सयलदुक्खविउडणेक्कपच्चलो कुसलपरिणामो ।

कयाऽऽहोपुरुषिकयाऽविचार्य परमार्थमनालोच्यायतिम्, अप्रेक्ष्य तस्य भङ्गुरत्वम्:, मायेन्द्रजालविभ्रमे तस्मिन्नसकृत् प्राप्तेऽपि अपरिचितेऽपकारके नियमेनात्यन्तगृद्धः स्वपरापकारक इति । रहितश्च तेन यथेयं सरित् प्रकृतिभावे वर्तमाना शोभना, तथा पुरुषोऽपि विद्यमाने विवेके निरर्थकपरिक्लेशरहितः संगतः शुद्धाशयेन वर्जितः पापमित्रैर्जीवलोकोपकारोपभोगसम्पादनसमर्थो भवति, अविद्यमानेऽपाय-गमनप्रतिबन्धे: बाह्यविभवविस्तारभावः पुनर्विवेकिनोऽपि महान् परलोकान्तरायः, निबन्धनं मिथ्या-भिमानस्य उच्छादनं चित्तनिर्वृतेः, सम्पादनं परिक्लेशानां, प्रणाशनं ज्ञानपरिणतेः, वैरिकः सन्तोषा-मृतस्य, बान्धवोऽसद्व्यवसायानाम्, अज्ञायको विश्रम्भसुखस्य, विज्ञायकः कपटनीतीनाम्, वर्जितः कुशलयोगेन, संगतः पापानुमत्या । तथा यद्यपि केषांचिद् द्रव्योपकारसम्पादनसमर्थमेतद्, तथापीत्वरः, ततो नान्यपीडया विना परमार्थतः सोऽपि सम्भवति । प्रधानश्च भावोपकारः, न चापरित्यक्तारम्भ-परिग्रहः सर्वथा तं सम्पादयति । युक्तं च मनुजभावे तस्य सम्पादनम् । किमन्येन निरर्थकेनेति । चिन्तयतः समुत्पन्नः सकलदुःखविकुटनैकप्रत्यलः कुशलपरिणामः । प्रवर्धमानशुभपरिणामश्च

उन्मादरूपी तरंगों से सेवित होता है, कर्त्तव्य की मर्यादा को छोड़ देता है। इस प्रकार महामोहरूपी भँवरों के मध्य में होकर निरर्थक अभिमान के कारण परमार्थ का विचार न कर, भावीफल का विचार न कर, उसकी नश्वरता को न देख, मायामयी इन्द्रजाल के सदृश भ्रमरूप उस फल को बार-बार प्राप्त करता है, फिर भी उसके अपकार से अपरिचित हो, नियम से अत्यन्त आसक्त हुआ अपना और दूसरे का अपकारी होता है। विस्तार से रहित जैसे यह नदी स्वाभाविक स्थिति में विद्यमान होकर सुन्दर है, उसी प्रकार पुरुष विवेक के विद्यमान होने पर निरर्थक क्लेश से रहित हो, शुद्ध आशय से युक्त हो, पापी मित्रों से रहित हो संसार के उपकार और उपभोग का सम्पादन करने में समर्थ होता है। बाह्य वैभव के विस्तार के भावरूपी सर्वनाश पर प्रतिबन्ध न होने से विवेकी व्यक्ति के भी परलोक (-गमन) में बहुत बड़ा विघ्न होता है, मिथ्या अभिमान का बन्धन होता है, चित्त की शान्ति का नाश होता है, क्लेशों का सम्पादन होता है, ज्ञानरूप फल का विनाश होता है। वह सन्तोष रूपी अमृत का वैरी हो जाता है, असत्कर्मों का बन्धु बन जाता है, विश्वास रूप सुख को न जाननेवाला हो जाता है, कपटनीतियों का जानकार होता है, शुभयोग से रहित होता है और पाप की अनुमति से युक्त होता है। यद्यपि किन्हीं-किन्हीं को धन आदि देकर उपकार करने में यह समर्थ होता है, तथापि निष्ठुर होता है, अतः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पवड्ढमाणसुहपरिणामो य नियत्तो राया। साहिओ णेण एस वइयरो रयणवईसहियाण मंतीणं। भणियं च णेहि—देव, एवमेयं, न अन्नह त्ति। करेउ समीहियं देवो। अलं एत्थ कालक्खेवेण। अइचंचला जीवलोयट्ठिई, मुहुत्तमेत्तं पि य तं पसंसिज्जए जं परमत्थसाहणपराणं। तओ 'किच्चमेयं' ति चिंतिऊण राइणा दवावियमाघोसणापुव्वयं महादाणं, काराविया सव्वाययणेसु पूया, सम्माणियाओ पयाओ, निवेसिओ रज्जे धिइबलो।

तओ य पउत्तिपुरिसेहिंतो कासियाविसयसंठियं वियाणिऊण भयवंतं विजयधम्मायरियं पहाणसामंतामच्चसंगओ समं रयणवईए पयट्टो गुरुसमीवं राया। पत्तो कालक्कमेण। दिट्ठो वाणारसीनयरिसंठिओ भयवं विजयधम्मो। वंदिओ पहट्ठवयणकमलेणं। धम्मलाहिओ गुरुणा, पुच्छिओ आगमणपओयणं। साहियं राइणा। परितुट्ठो गुरू, उववूहिओ य णेण। तओ पसत्थेण तिहिकरणमुहुत्तजोएण वाणारसीनयरिसामिणा संपाडियमहादव्वोवयारो समं पुव्वभणियपरियणेणं महाविभूईए विसुज्झमाणेण परिणामेणं संजायचरणपरिणामो पव्वइओ राया।

निवृत्तो राजा। कथितस्तेनैष व्यतिकरो रत्नवतीसहितानां मन्त्रिणाम्। भणितं च तैः- देव! एवमेतद्, नान्यथेति। करोतु समीहितं देवः। अलमत्र कालक्षेपेण। अतिचञ्चला जीवलोकस्थितिः, मुहूर्तमात्रमपि च तत् प्रशस्यते यत् परमार्थसाधनपराणाम्। ततः 'कृत्यमेतद्' इति चिन्तयित्वा राज्ञा दापितमाघोषणापूर्वकं महादानम्, कारिता सर्वायतनेषु पूजा, सन्मानिताः प्रजाः, निवेशितो राज्ये धृतिबलः।

ततश्च प्रवृत्तिपुरुषैः काशीविषयसंस्थितं विज्ञाय भगवन्तं विजयधर्माचार्यं प्रधानसामन्तामात्यसङ्गतः समं रत्नवत्या प्रवृत्तो गुरुसमीपं राजा। प्राप्तः कालक्रमेण। दृष्टो वाराणसीनगरीसंस्थितो भगवान् विजयधर्मः। वन्दितः प्रहृष्टवदनकमलेन। धर्मलाभितो गुरुणा, पृष्ट आगमनप्रयोजनम्। कथितं राज्ञा। परितुष्टो गुरुः। उपबृंहितश्चानेन। ततः प्रशस्तेन तिथिकरणमुहूर्तयोगेन वाराणसीनगरीस्वामिना सम्पादितमहाद्रव्योपचारः समं पूर्वभणितपरिजनेन महाविभूत्या विशुध्यमानेन परिणामेन सञ्जातचरणपरिणामः प्रव्रजितो राजा।

दूसरे को पीड़ा दिये बिना वह उपकार भी सम्भव नहीं होता है। भाव उपकार ही प्रधान है अतः बिना आरम्भ और परिग्रह का त्याग किये सब प्रकार से उसका सम्पादन नहीं करता है, जबकि मनुष्यत्व में उसका सम्पादन करना युक्त है, अन्य निरर्थक से क्या। ऐसा विचार करते हुए (उसके) समस्त दुःखों को नष्ट करने में एकमात्र समर्थ शुभ परिणाम उत्पन्न हुआ। बढ़े हुए शुभ परिणामोंवाला यह राजा वहाँ से लौट आया। उसने इस घटना को रत्नवती सहित मन्त्रियों से कहा। उन्होंने कहा—'महाराज! यह सही है, अन्यथा नहीं है। महाराज इष्टकार्य करें। इस विषय में विलम्ब न करें।' संसार की स्थिति अत्यन्त चंचल है, मुहूर्तमात्र के लिए भी जो परमार्थ-साधन में रत हैं, उनको प्रशस्त होती है। अतः यह करणीय है—ऐसा सोचकर राजा ने घोषणा कराकर महादान दिलाया, सभी आयतनों में पूजा करायी, प्रजाओं का सम्मान किया, राज्य पर धृतिबल को बैठाया।

अनन्तर गुप्तचरों से भगवान् विजयधर्माचार्य को काशी देश में स्थित जानकर प्रधान सामन्त, मन्त्री और रत्नवती के साथ राजा गुरु के पास चल दिया। कालक्रम से पहुँचा। वाराणसी में स्थित भगवान् विजयधर्म को देखा। हर्षित मुखकमल हो वन्दना की। गुरु ने धर्मलाभ दिया, आने का प्रयोजन पूछा। राजा ने बताया, गुरु सन्तुष्ट हुए। उन्होंने बधाई दी। अनन्तर उत्तम तिथि, करण और मूहूर्त में वाराणसी नरेश द्वारा महान् द्रव्य से सेवित होकर परिजनों के साथ महाविभूति से युक्त हो विशुद्धभाव से चारित्ररूप परिणामवाला राजा प्रव्रजित हो गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अइक्कंतो कोइ कालो। अहिज्जियं सुत्तं, अब्भत्थो किरियाकलावो। उचियसमए य जाया से इच्छा 'पवज्जामि अहयं एगल्लविहारपडिमं'। पुच्छिओ गुरू, अणुन्नाओ य णेणं[1]। कया सत्ताइतुलणा। निव्वूढेण पवन्नो सिद्धंतविहिणा एगल्लविहारपडिमं ति। निरइयारकप्पेण य विहरमाणस्स अइक्कंतो कोइ कालो।

अन्नया य गओ कोल्लागसन्निवेसं ठिओ य तत्थ पडिमाए[2]। दिट्ठो मलयपत्थिएणं वाणमंतरेण। जाओ से कोवो। चिंतियं च णेणं—पेच्छ सो पावो पावपरिणईए कोइसो जाओ त्ति। वावाएमि संपयं, एसो य एत्थुवाओ। एवं चेव संठियस्स मुएमि उवरिं महामहंति सिलं ति। तीए संचुण्णियंगुवंगो वज्जपहारभिन्नो विय गिरी सयसक्करो गमिस्सइ। वावाइए य एयम्मि कयत्थो अहं, सफलं विज्जाबलं। ता लहुं समीहियं करेमि त्ति। चिंतिऊण अइरोद्दज्झाणसंगएणं अदूरदेसवत्तिगिरिवराओ गहिया महासिला, उप्पइऊण दूरमंबरं भयवओ उवरिं मुक्का य णेण। पीडिओ तीए भयवं काएण, न उण भावेण। निरूविओ वाणमंतरेण। जाव 'न वावाइओ' त्ति,

अतिक्रान्तः कोऽपि कालः। अधीतं सूत्रम्, अभ्यस्तः क्रियाकलापः। उचितसमये च जाता तस्येच्छा 'प्रपद्येऽहमेककविहारप्रतिमाम्'। पृष्टो गुरुः, अनुज्ञातश्च तेन। कृता सत्त्वादितुलना। निर्व्यूढेन प्रपन्नः सिद्धान्तविधिना एककविहारप्रतिमामिति। निरतिचारकल्पेन च विहरतोऽतिक्रान्तः कोऽपि कालः।

अन्यदा च गतः कोल्लाकसन्निवेशम्, स्थितश्च तत्र प्रतिमया। दृष्टो मलयप्रस्थितेन वानमन्तरेण। जातस्तस्य कोपः। चिन्तितं च तेन—पश्य स पापः पापपरिणत्या कीदृशो जात इति। व्यापादयामि साम्प्रतम्, एष चात्रोपायः। एवमेव संस्थितस्य मुञ्चाम्युपरि महामहतीं शिलामिति। तया सञ्चूर्णिताङ्गोपाङ्गो वज्रप्रहारभिन्न इव गिरिः शतशर्करो गमिष्यति। व्यापादिते चैतस्मिन् कृतार्थोऽहम्, सफलं विद्याबलम्। ततो लघु समीहितं करोमीति। चिन्तयित्वाऽतिरौद्रध्यानसङ्गतेनादूरदेशवर्तिगिरिवराद् गृहीता महाशिला, उत्पत्य दूरमम्बरं भगवत उपरि मुक्ता च तेन। पीडितस्तया भगवान् कायेन, न पुनर्भावेन। निरूपितो वानमन्तरेण। यावद् 'न व्यापादितः' इति कुपितो

कुछ समय बीता। सूत्र पढ़ा, क्रियाओं के समूह का अभ्यास किया। उचित समय पर उसकी इच्छा हुई—मैं एकाकी विहार करने की प्रतिमा प्राप्त करूँ। गुरु से पूछा। उन्होंने अनुमति दे दी। सत्त्वादि तुलना की। पूर्णतया देखकर सैद्धान्तिक विधि से अकेले विहार करने की प्रतिमा को प्राप्त हुआ। निरतिचार रूप से विहार करते हुए कुछ समय बीत गया।

एक बार कोल्लाक सन्निवेश में गया और वहाँ प्रतिमा-योग से स्थित हो गया। मलय की ओर जाते हुए वानमन्तर ने देखा। उसे क्रोध उत्पन्न हुआ और उसने सोचा—देख, वह पापी पाप के फलस्वरूप कैसा हो गया। अब मारता हूँ, यह यहाँ उपाय है। इस प्रकार स्थित (इसके) ऊपर बहुत बड़ी शिला छोड़ता हूँ। उस शिला से अंगोपांगों के चूर्ण हो जाने पर वज्र के प्रहार से टूटे हुए पर्वत के समान (इसके) सैकड़ों टुकड़े हो जायेंगे। इसके मर जाने पर मैं कृतार्थ हो जाऊँगा, मेरा विद्यावल सफल हो जायेगा। अतः शीघ्र ही इष्ट कार्य करता हूँ—ऐसा सोचकर अत्यन्त रौद्र ध्यान से युक्त हो समीपवर्ती पर्वत से बहुत बड़ी शिला ली, दूर आकाश में ले जाकर भगवान् के ऊपर छोड़ दी। उसने भगवान् को शरीर से पीड़ित किया, भाव से नहीं। वानमन्तर ने देखा—'नहीं

१. गुरुणा—पा. ज्ञा.। २. विवित्तपएसे पडिमाए—पा. ज्ञा.।

कुविओ वाणमंतरो। चिंतियं च णेण—अहो से महापावस्स सामत्थं, अहो जीवणसत्ती, अहो ममोवरि अवन्ना, अहो परलोयपक्खवाओ। ता तहा करेमि, जहा सव्वं से अवेइ। गहिया महल्लयरी सिला, विमुक्का तहेव। पीडिओ तीए वि भयवं काएण, न उण भावेण। निरूविओ वाणमंतरेण। जाव न वावाइओ त्ति। अन्ना विमुक्का, तीए वि न वावाइओ त्ति। विसण्णो वाणमंतरो। चिंतियं च णेण—न एस महापावो वावाइउं तीरइ। ता करेमि से धम्मंतरायं। विडंबेमि लोए। कंचि गेहं मुसिऊण मुएमि एयसमीवे मोसं, पयासेमि य लोए, जहा इमिणा महापावेण इयमणुचिट्ठियं ति। एवं च कए समाणे पाविस्सइ महापावो महइं कयत्थणं ति। चिंतिऊण संपाडियमणेणं। साहियं दंडवासियाणं। गया दंडवासिया[1]। दिट्ठो णेहिं भयवं। जाओ तेसिं वियप्पो। अहो इमस्स पसन्ना मुत्ती, तवसोसियं सरीरं, उवभोयरहिओ[2] आगारो, अणाउलं चित्तं। ता कहं एस एवं करिस्सइ। अहवा विचित्ता गई कवडाण। ता निरूवेमो ताव मोसं। निरूविओ निउंजदेसे दिट्ठो य णेहिं। समुप्पन्ना संका। पुच्छिओ भयवं। जाव न जंपइ त्ति, ताडिओ एक्केण। तहावि न जंपइ त्ति। कूरयाए हरि-

वानमन्तरः। चिन्तितं च तेन—अहो तस्य महापापस्य सामर्थ्यम्, अहो जीवनशक्तिः, अहो ममोपर्यवज्ञा, अहो परलोकपक्षपातः। ततस्तथा करोमि यथा सर्वं तस्यापैति। गृहीता महत्तरी शिला, विमुक्ता तथैव। पीडितस्तयाऽपि भगवान् कायेन, न पुनर्भावेन। निरूपितो वानमन्तरेण। यावन्न व्यापादित इति। अन्या विमुक्ता, तयाऽपि न व्यापादित इति। विषण्णो वानमन्तरः। चिन्तितं च तेन—नैष महापापो व्यापादयितुं शक्यते। ततः करोमि तस्य धर्मान्तरायम्। विडम्बयामि लोके। किंचिद् गेहं मुषित्वा मुञ्चाम्येतत्समीपे मोषम्, प्रकाशे च लोके, यथाऽनेन महापापेनेदमनुष्ठितमिति। एवं च कृते सति प्राप्स्यति महापापो महती कदर्थनामिति। चिन्तयित्वा सम्पादितमनेन। कथितं दण्डपाशिकानाम्। गता दण्डपाशिकाः। दृष्टस्तैर्भगवान्। जातस्तेषां विकल्पः। अहो अस्य प्रसन्ना मूर्तिः, तपःशोषितं शरीरम्, उपभोगरहित आकारः, अनाकुलं चित्तम्। ततः कथमेष एवं करिष्यति। अथवा विचित्रा गतिः कपटानाम्। ततो निरूपयामः तावन्मोषम्। निरूपितो निकुञ्जदेशे, दृष्टश्च तैः। समुत्पन्ना शङ्का। पृष्टो भगवान्। यावन्न जल्पतीति ताडित एकेन। तथापि न जल्पतीति। क्रूरतया

मरा है।' अतः वानमन्तर कुपित हुआ और उसने सोचा—ओह! उस महापापी की सामर्थ्य, ओह जीवनशक्ति, ओह मेरे प्रति अवज्ञा, ओह परलोक के प्रति पक्षपात! अतः वैसा करता हूँ, जिससे सब नष्ट हो जाय। उसने और भी बड़ी शिला ली और उसी प्रकार छोड़ी। उससे भी भगवान् काय से पीड़ित हुए, भाव से नहीं। वानमन्तर ने देखा—नहीं मरा है। अन्य शिलाएँ छोड़ीं तो भी नहीं मरा। वानमन्तर खिन्न हुआ और उसने सोचा—इस महापापी को नहीं मारा जा सकता अतः उसके धर्म में विघ्न करता हूँ। संसार में उपहास कराऊँगा। घर से कुछ चुराकर इसके समीप में चुरायी हुई वस्तु को छोड़ूँगा और संसार में प्रकट कर दूँगा कि इस महापापी ने यह किया है अर्थात् इसने चोरी की है। ऐसा करने पर महापापी अत्यधिक तिरस्कार पायेगा। ऐसा सोचकर इसने (वैसा ही) किया। सिपाहियों से कहा। सिपाही गये। उन्होंने भगवान् को देखा। उन्होंने सोचा—ओह इसकी प्रसन्न मूर्ति, तप से सुखाया हुआ शरीर, उपभोगरहित आकार और आकुलतारहित चित्त! अतः यह ऐसा कैसे करेगा? अथवा कपटियों की गति विचित्र है। अतः चुरायी हुई वस्तु को देखता हूँ। निकुंज भाग में देखा, उन्हें दिखाई दी। शंका उत्पन्न हुई। भगवान् से पूछा। नहीं बोले। एक ने मारा तो भी नहीं बोले। क्रूर स्वभाव

1. 'मुयामि समीवं, इत्यधिकः पाठः—पा. ता.। 2. उवभोगपरिभोगरहिओ—डे. ज्ञा.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिओ वाणमंतरो। बद्धं निरयाउयं, निकाचियं रोद्दज्झाणाहिणिवेसेण। चिंतियं दंडवासिएहिं—किमम्हाणमेइणा, राइणो साहेमो त्ति। साहियं वीससेणराइणो। समागओ राया। दिट्ठो णेण भयवं, पच्चभिन्नाओ य। वंदिओ परमभत्तीए। भणिया दंडवासिया भो भो न तुब्भेहिं भयवओ किंचि पडिकूलमासेवियं ति। दंडवासिएहिं भणियं—न किंचि तारिसं। राइणा भणियं—भो एस भयवं अम्हाण सामी महारायगुणचंदो निरुवसग्गं महिं पालिऊण सयलसंगचाई संपत्तज्झाणजोओ अपडिबद्धो सव्वभावेसु विहियाणुट्ठाणसंपायणपरो एगल्लविहारसेवणेण करेइ सफलं मणुयत्तणं ति। दंडवासिएहिं भणियं—देव, धन्नो खु एसो। खामिओ तेहिं। राइणा भणियं—केण तुम्हाण एयं साहियं। दंडवासिएहिं भणियं—देव, इहेव सो चिट्ठइ त्ति। राइणा भणियं—कहिं कहिं, आणेह सिग्घं। एयं सोऊण अदंसणीभूओ वाणमंतरो। न दिट्ठो दंडवासिएहिं, भणियं च णेहिं—देव, संपयं चेव दिट्ठो, इयाणिं न दीसइ त्ति। राइणा भणियं—भो जइ एवं, ता अमाणुसो सो भयवओ उवसग्गकारी भविस्सइ। ता अलं तेण किलिट्ठसत्तेण। निवेएह तुब्भे अंतेउराणं सयलजणवयस्स य, जहा

हर्षितो वानमन्तरः। बद्धं नरकायुः, निकाचितं रौद्रध्यानाभिनिवेशेन। चिन्तितं दण्डपाशिकैः—किमस्माकमेतेन, राज्ञः कथयाम इति। कथितं विष्वक्सेनराजस्य। समागतो राजा। दृष्टस्तेन भगवान्, प्रत्यभिज्ञातश्च। वन्दितः परमभक्त्या। भणिता दण्डपाशिकाः। भो भो न युष्माभिर्भगवतः किंचित् प्रतिकूलमासेवितमिति। दण्डपाशिकैर्भणितम्—न किंचित् तादृशम्। राज्ञा भणितम्—भो एष भगवान् अस्माकं स्वामी महाराजगुणचन्द्रो निरुपसर्गां महीं पालयित्वा सकलसङ्गत्यागी सम्प्राप्तध्यानयोगोऽप्रतिबद्धः सर्वभावेष विहितानुष्ठानसम्पादनपर एककविहारसेवनेन करोति सफलं मनुजत्वमिति। दण्डपाशिकैर्भणितम्—देव! धन्यः खल्वेषः। क्षामितस्तैः। राज्ञा भणितम्—केन युष्माकमेतत् कथितम्। दण्डपाशिकैर्भणितम्—देव! इहैव स तिष्ठतीति। राज्ञा भणितम्—कुत्र कुत्र, आनयत शीघ्रम्। एतच्छ्रुत्वाऽदर्शनीभूतो वानमन्तरः। न दृष्टः दण्डपाशिकैः, भणितं च तैः—देव! साम्प्रतमेव दृष्टः, इदानीं न दृश्यते इति। राज्ञा भणितम्—भो यद्येवं ततोऽमानुषः स भगवत उपसर्गकारी भविष्यति। ततोऽलं तेन क्लिष्टसत्त्वेन। निवेदयत यूयमन्तःपुराणां सकलजनव्रजस्य च,

---

वाला होने के कारण वानमन्तर हर्षित हुआ। अत्यधिक रौद्रध्यान की आसक्ति के कारण नरक की आयु बाँधी। सिपाहियों ने सोचा—हम लोगों को इससे क्या, राजा से कहते हैं। विष्वक्सेन राजा से कहा। राजा आया। उसने भगवान् को देखा और पहचान लिया। परमभक्ति से युक्त हो वन्दना की। सिपाहियों से कहा—'रे सिपाहियो! तुम लोगों ने कुछ प्रतिकूल कार्य तो नहीं किया?' सिपाहियों ने कहा—'वैसा कुछ नहीं किया।' राजा ने कहा—'अरे यह भगवान् हमारे स्वामी महाराज गुणचन्द्र निर्विघ्न पृथ्वी का पालन कर, समस्त परिग्रहों का त्याग कर, ध्यान योग को पा, समस्त पदार्थों के प्रति निरासक्त हो, विहित अनुष्ठान के सम्पादन में रत रहते हुए, अकेले विहार करने का सेवन करते हुए मनुष्यत्व सफल कर रहे हैं।' सिपाहियों ने कहा—'महाराज! ये धन्य हैं।' उन्होंने क्षमा माँगी। राजा ने कहा—'तुम लोगों से यह किसने कहा?' सिपाहियों ने बताया—'महाराज! वह यहीं बैठा है।' राजा ने कहा—'कहाँ है, कहाँ है? जल्दी लाओ।' यह सुन वानमन्तर अदृश्य हो गया। सिपाहियों को दिखाई नहीं पड़ा। उन्होंने (आकर) कहा—'महाराज! अभी-अभी दिखाई दिया था, अब नहीं दिखाई पड़ रहा है।' राजा ने कहा—'अरे ऐसा है तो अमानुष होगा, उसने भगवान् पर उपसर्ग किया होगा। अतः उस विरोधी प्राणी से बस करो (अर्थात् उसका खोजना व्यर्थ है)। तुम सब अन्तःपुर के समस्त जन से कहो

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

'समागओ भयवं तुम्हाण परमसामी, ठिओ उत्तमवए मुत्तिमंतो विय धम्मो, पावपसमणो दंसणेण, वंदणिज्जो सयाणं, निबंधणं परमनिव्वुईए महारायगुणचंदो; ता एह, तं अत्तणोऽणुग्गहट्ठाए भत्ति-विहवाणुरूवेणमुवयारेण वंदह त्ति। दंडवासिएहिं भणियं—जं देवो आणवेइ। गया दंडवासिया। निवेइयं रायसासणं अंतेउरजणाणं। आणंदिया एए, पयट्टा भयवंतवंदणवडियाए, पत्ता महाविच्छड्डेण। पूइओ भयवं वंदिओ हरिसनिब्भरेहिं, थुओ संतगुणदीवणाए। विम्हिया तस्स दंसणेणं।

एत्थंतरम्मि निवेइयं राइणो सिलावडणनिग्घायमोहपडिबुद्धेणं कट्ठवाहएणं, जहा 'महाराय, एयस्स भयवओ उवरि केणावि गयणचारिणा विमुक्का महंती सिला; न चालिओ भयवं तओ विभागाओ; तन्निवडणनिग्घायओ समागया मे मुच्छा; तओ परं न याणामि, किं कयं तेण भयवओ; एत्तियं पुण जाणामि, एयं पि सिलादुयं तेणेव महापावकम्मेण मुक्कं' ति। एयं सोऊण उव्विग्गा अंतेउरजणा। पीडिओ राया, भणियं च णेण—अहो महादुक्खमणुहूयं भयवया, अहो किलिट्ठत्तणं खुड्डजीवाणं, अहो विवेयसुन्नया, अहो जहन्नत्तणं, अहो निसंसया, अहो अलोइयत्तं, अहो गुणपओसो,

---

यथा 'समागतो भगवान् युष्माकं परमस्वामी, स्थित उत्तमव्रते मूर्तिमानिव धर्मः, पापप्रशमनो दर्शनेन, वन्दनीयः सताम्, निबन्धनं परमनिर्वृतेर्महाराजगुणचन्द्रः, तत एत, तमात्मनोऽनुग्रहार्थं भक्ति-विभवानुरूपेणोपचारेण वन्दध्वमिति। दण्डपाशिकैर्भणितम्—यद् देव आज्ञापयति। गता दण्ड-पाशिकाः। निवेदितं राजशासनमन्तःपुरजनानाम्। आनन्दिता एते, प्रवृत्ता भगवद्वन्दनप्रत्ययं, प्राप्ता महाविच्छर्देण। पूजितो भगवान् वन्दितो हर्षनिर्भरैः, स्तुतः सद्गुणदीपनया। विस्मितास्तस्य दर्शनेन।

अत्रान्तरे निवेदितं राज्ञः शिलापतननिर्घातमोहप्रतिबुद्धेन काष्ठवाहकेन, यथा 'महाराज! एतस्य भगवत उपरि केनापि गगनचारिणा विमुक्ता महती शिला, न चालितो भगवान् ततो विभागात्, तन्निपतननिर्घाततः समागता मे मूर्च्छा, ततः परं न जानामि, किं कृतं तेन भगवतः, एतावत् पुनर्जानामि, एतदपि शिलाद्विकं तेनैव पापकर्मणा मुक्तमिति। एतच्छ्रुत्वोद्विग्ना अन्तःपुरजनाः। पीडितो राजा, भणितं च तेन—अहो महादुःखमनुभूतं भगवता, अहो क्लिष्टत्वं क्षुद्रजीवानाम्, अहो विवेकशून्यता, अहो जघन्यत्वम्, अहो नृशंसता, अहो अलौकिकत्वम्, अहो गुणप्रद्वेषः, अहो अकल्याण-

---

कि तुम्हारे परमस्वामी आये हैं, मूर्तिमान धर्म के समान उत्तम व्रत में स्थित हैं, (उनके) दर्शन से पाप शान्त हो जाता है। सज्जनों के द्वारा वे वन्दनीय हैं, परम शान्ति से युक्त (वे) महाराज गुणों में चन्द्रमा के समान (गुणचन्द्र) हैं। अतः आओ, अपने अनुग्रह के लिए भक्ति और वैभव के अनुरूप सेवा कर उनकी वन्दना करो। सिपाहियों ने कहा—'महाराज की जैसी आज्ञा।' सिपाही चले गये। राजा की आज्ञा को अन्तःपुर में निवेदन किया। ये लोग आनन्दित हुए, भगवान् की वन्दना के लिए चल पड़े। बड़े वैभव के साथ आये, भगवान् की पूजा की, हर्ष से भरकर वन्दना की, सद्गुणों का प्रकाशन कर स्तुति की, उनके दर्शन से विस्मित हुए।

इसी बीच शिला के गिरने की कड़क से मूर्च्छित होकर होश में आये हुए लकड़ी ढोनेवाले ने राजा से निवेदन किया—'महाराज! आकाश में गमन करनेवाले किसी ने भगवान् के ऊपर यह बहुत बड़ी शिला छोड़ी, फिर भी भगवान् को उस स्थान से विचलित नहीं कर सका। उस (शिला) के गिरने की कड़क से मुझे मूर्च्छा आ गयी, अतः नहीं जानता हूँ, उसने भगवान् का क्या किया? इतना जानता हूँ कि ये दोनों शिलाएँ उसी पापी ने छोड़ी हैं।' यह सुनकर अन्तःपुर के लोग उद्विग्न हो गये। राजा को पीड़ा हुई। उसने कहा—'ओह! भगवान् ने महादुःख भोगा। क्षुद्र जीवों का विरोध आश्चर्यमय है। ओह विवेकशून्यता! ओह नीचता! ओह नृशंसता!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहो अकल्लाणभायणया, अहो कम्मपरिणामसामत्थं, जेण भयवओ वि परिचत्तसव्वसंगस्स सव्वभावसमभाववत्तिणो सयलजणोवयारनिरयस्स अप्पडिबद्धविहारिणो एवमुवसग्गकरणं ति। सव्वहा नत्थि नामाकरणिज्जं मोहपरतंताणं। एवं विलविऊण 'अहो भयवओ वि उवसग्गो' त्ति गहिओ महासोएण। तं च तहाविहं वियाणिऊण अभिप्पेयज्झाणसमत्तीए अणाढविऊणमन्नज्झाणं ओसरिऊण कायचेट्ठं भणियं भयवया—महाराय, अलमेत्थ सोएण। सकयकम्मफलमेयं, केत्तियं वा इमं। अणादिकम्मसंताणवसवत्तिणो जीवस्स दुक्खरूवो चेव संसारो।

अन्नं च सुणसु जीवा सकम्मपरिणामओ विचित्ताइं।
सारीरमाणसाइं दुक्खाइ भमंति भुंजंता ॥ ६४७ ॥
जेणेव उ संसारे जम्मजरामरणरोगजणियाइं।
पियविरहपरब्भत्थणहीणजणोमाणणाइं च ॥ ६४८ ॥
तेणेव उ सप्पुरिसा किलेसबहुलस्स भवसमुद्दस्स।
धणियं विरत्तभावा धम्मतरुवरं पवज्जंति ॥ ६४९ ॥

भाजनता, अहो कर्मपरिणामसामर्थ्यम्, येन भगवतोऽपि परित्यक्तसर्वसङ्गस्य सर्वभावसमभाववर्तिनः सकलजनोपकारनिरतस्याप्रतिबद्धविहारिण एवमुपसर्गकरणमिति। सर्वथा नास्ति नामाकरणीयं मोहपरतन्त्राणाम्। एवं विलप्य 'अहो भगवतोऽप्युपसर्गः' इति गृहीतो महाशोकेन। तं च तथाविधं विज्ञायाभिप्रेतध्यानसमाप्तौ अनारभ्यान्यध्यानमुपसृत्य कायचेष्टां भणितं भगवता—महाराज! अलमत्र शोकेन, स्वकृतकर्मफलमेतत्, कियद् वेदम्। अनादिकर्मसन्तानवशवर्तिनो जीवस्य दुःखरूप एव संसारः।

अन्यच्च शृणु जीवाः स्वकर्मपरिणामतो विचित्राणि।
शारीरमानसानि दुःखानि भ्रमन्ति भुञ्जानाः ॥६४७॥
येनैव तु संसारे जन्मजरामरणरोगजनितानि।
प्रियविरहपराभ्यर्थनहीनजनावमाननानि च ॥६४८॥
तेनैव तु सत्पुरुषाः क्लेशबहुलस्य भवसमुद्रस्य।
गाढं विरक्तभावा धर्मतरुवरं प्रपद्यन्ते ॥६४९॥

ओह अलौकिकता! ओह गुणों के प्रति द्वेष और अकल्याणपात्रता! ओह कर्मों के फल की सामर्थ्य जो कि समस्त परिग्रहों का त्याग किये हुए, सभी पदार्थों में समान दृष्टि रखनेवाले, समस्त मनुष्यों के उपकार में निरत, एकलविहारी भगवान् पर भी इस प्रकार का उपसर्ग हुआ! मोह से परतन्त्र हुए प्राणियों के लिए सर्वथा कुछ अकरणीय नहीं है—इस प्रकार विलाप कर 'ओह भगवान् का उपसर्ग' इस प्रकार अत्यधिक शोकग्रस्त हो गया। उसे उस प्रकार जानकर, इष्ट ध्यान की समाप्ति होने पर दूसरे ध्यान का आरम्भ न कर, शरीर की चेष्टाओं के समीप जाकर भगवान् ने कहा—'महाराज! इस विषय में शोक मत करो, यह अपने किये हुए कर्मों का फल है। अथवा यह कितना-सा है, अनादि कर्मरूप सन्तति के वशवर्ती प्राणी का संसार ही दुःखरूप है।

दूसरी बात भी है, सुनो—

इस संसार में अपने ही कर्मों के फलस्वरूप जीव जन्म, बुढ़ापा और मरणरूपी रोगों से उत्पन्न प्रियविरह, दूसरों से याचना, हीनजनों के द्वारा किये हुए निरादररूप विचित्र शारीरिक और मानसिक दुःखों को भोगते हुए जिससे भ्रमण करते हैं, उसी से सज्जन पुरुष क्लेश की बहुलतावाले संसार-समुद्र में अत्यधिक विरक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मत्तमूलमंतं महंतसुयनाणबद्धखंधिल्लं ।
छट्ठट्ठमाइवित्थियपवरतवचरित्तसाहालं ॥ ६५० ॥
सीलंगवरट्ठारससहस्सघणपत्तबहलछाइल्लं ।
तियसिंदमणुयबहुविहपायडरुइररिद्धिकुसुमालं ॥ ६५१ ॥
अव्वाबाहुप्पेहडनिरुवमखयरहियभुवणमहिएणं ।
मुणिजणकमणिज्जेणं सिवसोक्खफलेण फलवंतं ॥ ६५२ ॥
जिणजलयकेवलामलजलधारानिवहरुइरसिच्चंतं ।
विविहमुणिविहगसेवियमणुदियहमछिन्नसंताणं ॥ ६५३ ॥
ते उण तियसविलासिणिमुहपंकयभमरभावमणुहविउं ।
धम्मतरुकुसुमभूयं पावंति फलं पि मुत्तिसुहं ॥६५४ ॥
काउरिसा उण बंधवनेहक्खयलक्खणिच्चवेहीण ।
मूढा तुच्छाण कए दढं किलिस्संति भोयाण ॥ ६५५ ॥

सम्यक्त्वमूलवन्तं महाश्रुतज्ञानबद्धस्कन्धवन्तम् ।
षष्ठाऽष्टमादिविस्तृतप्रवरतपश्चारित्रशाखावन्तम् ॥६५०॥
शीलाङ्गवराष्टादशसहस्रघनपत्रबहलच्छायावन्तम् ।
त्रिदशेन्द्रमनुजबहुविधप्रकटरुचिरऋद्धिकुसुमवन्तम् ॥६५१॥
अव्याबाधोद्भटनिरुपमक्षयरहितभुवनमहितेन ।
मुनिजनकमनीयेन शिवसौख्यफलेन फलवन्तम् ॥६५२॥
जिनजलदकेवलामलजलधारानिवहरुचिरसिच्यमानम् ।
विविधमुनिविहगसेवितमनुदिवसमच्छिन्नसन्तानम् ॥६५३॥
ते पुनस्त्रिदशविलासिनीमुखपङ्कजभ्रमरभावमनुभूय ।
धर्मतरुकुसुमभूतं प्राप्नुवन्ति फलमपि मुक्तिसुखम् ॥६५४॥
कापुरुषाः पुनर्बान्धवस्नेहक्षयलक्ष्यनित्यवेधिनाम् ।
मूढास्तुच्छानां कृते दृढं क्लिश्यन्ति भोगानाम् ॥६५५॥

भावों से युक्त हो धर्मरूपी श्रेष्ठ वृक्ष का सुदृढ़ आश्रय लेते हैं। सम्यक्त्व उस वृक्ष का मूल है। महान् श्रुतज्ञान उसका स्कन्ध है, वह षष्ठाष्टमादि विस्तृत और उत्कृष्ट तप से युक्त चारित्ररूपी शाखाओं वाला है, शील के श्रेष्ठ अठारह हजार भेदरूपी घने पत्तों से अत्यधिक छाया वाला है, देवेन्द्र और मनुष्यों में अनेक प्रकार से प्रकट सुन्दर ऋद्धिरूपी फूलोंवाला है, अव्याबाध, सर्वोत्तम, निरुपम, क्षयरहित, संसार के द्वारा प्रशंसनीय, मुनिजनों के लिए सुन्दर लगनेवाले मोक्षसुखरूपी फल से फलवाला है, जिनेन्द्र भगवान्‌रूपी मेघ की केवलज्ञानरूपी स्वच्छ और सुन्दर जलधाराओं के समूह से सींचा जाता है, अनेक प्रकार के मुनिरूपी पक्षियों से सेवित है, प्रतिदिन उसकी परम्परा का छेद नहीं होता है। वे मुनिजन धर्मवृक्ष के फूलरूप देवांगनाओं के मुखकमलों के, भ्रमरों के समान भावों का अनुभव कर मुक्तिसुखरूप फल भी पाते हैं। मूर्ख कायरपुरुष बान्धवों के स्नेह का क्षय करने रूप लक्ष्य के लिए नित्य छेदनेवाले तुच्छ भोगों के लिए अत्यधिक दुःखी होते हैं और नीचजनों की सेवा, अनेक तरह के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नीयजणपज्जुवासणमणभिमयाणेयवेसकरणं च ।
उब्भडसमरपवेसं नियबंधवघायणं चेव ॥ ९५६ ॥
वित्थिण्णजलहितरणं सब्भावियमित्तवंचणं तह य ।
तं नत्थि जं न बहुसो करेंति विसयाहिलासेण ॥ ९५७ ॥
तह वि य पुव्वज्जियविविहकम्मपरिणामओ उ संपत्ती ।
परिणामदारुणेहि वि न होइ भोएहि सव्वेहि ॥ ९५८ ॥
पेच्छंता वि य घणियं विज्जुलयाडोवचंचलं जीयं ।
अयरामरं व मुणिऊण तहवि अप्पाणयं मूढा ॥ ९५९ ॥
कामं विसयासेवणपमुहेहि सकम्मरुक्खमूलाइं ।
कलसेहि[1] सिंचिऊणं फलाइ परिणामविरसाइं ॥ ९६० ॥
निरयगमणाइयाइं भुंजंता णेयभेयभिन्नाइं ।
हिंडंति अकयपुण्णा घोरे संसारकंतारे ॥ ९६१ ॥

नीचजनपर्युपासनमनभिमतानेकवेशकरणं च ।
उद्भटसमरप्रवेशं निजबान्धवघातनं चैव ॥९५६॥
विस्तीर्णजलधितरणं सद्भावितमित्रवञ्चनं तथा च ।
तन्नास्ति यन्न बहुशः कुर्वन्ति विषयाभिलाषेण ॥९५७॥
तथाऽपि च पूर्वाजितविविधकर्मपरिणामतस्तु सम्प्राप्तिः ।
परिणामदारुणैरपि न भवति भोगैः सर्वैः ॥९५८॥
पश्यन्तोऽपि च गाढं विद्युल्लताटोपचञ्चलं जीवितम् ।
अजरामरमिव ज्ञात्वा तथाऽप्यात्मानं मूढाः ॥९५९॥
कामं विषयासेवनप्रमुखैः स्वकर्मवृक्षमूलानि ।
कलशैः सिक्त्वा फलानि परिणामविरसानि ॥९६०॥
निरयगमनादिकानि भुञ्जाना अनेकभेदभिन्नानि ।
हिण्डन्ते अकृतपुण्या घोरे संसारकान्तारे ॥९६१॥

अमान्य वेषों को बनाना, प्रचण्ड युद्ध में प्रवेश करना, अपने ही बान्धवों का घात करना, विस्तृत समुद्र तैरना, सद्भाव रखनेवाले मित्रों को धोखा देना तथा अन्य ऐसा कार्य नहीं है जो विषयाभिलाषा से ये न करते हों। तथापि पूर्वोपार्जित अनेक प्रकार के कर्मों के फलस्वरूप परिणाम में होने पर भी सभी भोगों की प्राप्ति नहीं होती है। जीवन को विद्युल्लता के समान अत्यन्त चंचल देखते हुए भी मूढ़ लोग अपने आपको अजर-अमर के समान जानकर, अपने कर्मरूपी वृक्ष की जड़ों को विषयसेवनरूप प्रमुख कलशों से सींचकर, परिणाम में नीरस और अनेक भेदों से युक्त नरकादि गमनों को भोगते हैं और पुण्य न कर संसाररूपी गहनवन में भटकते रहते हैं। सो हे सौम्य !

---

1. कमुतेहि—डे. ज्ञा. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता एवंविहरूवे संसारे पयइनिग्गुणे सोम।
कम्मवसयाणमेवंविहाइ को पुच्छए इहइं ॥९६२॥

नरएसु कम्मवसएण दारुणं सुणसु जं मए दुक्खं।
पत्तं अणंतखुत्तो परिब्भमंतेण संसारे॥ ९६३॥

अपइट्ठाणे नरए तेत्तीसं सागराइ अणवरयं।
वज्जसिलापउमेसुं भिन्नो उप्फिडणपडणेहिं॥ ९६४॥

सीमंतयम्मि य तहा पक्को निरयग्गिसंपलित्तासु।
कंदूसु य कुम्भीसु य लोहकवल्लीसु य घणासु॥ ९६५॥

सेसेसु वि नरएसुं पव्वयजंतेहि करगएहिं च।
वहिओ म्हि मंदभग्गो अन्नेहि य तिव्वसत्थेहिं॥ ९६६॥

भिन्नो खइयो य अहं अइरोद्दतिसूलवज्जतुंडेहिं।
तत्तजुयरहवरेसु य भिन्नच्छो वाहिओ बहुसो॥ ९६७॥

तत एवंविधरूपे संसारे प्रकृतिनिर्गुणे सौम्य।
कर्मवशगानामेवंविधानि कः पृच्छतीह॥९६२॥

नरकेषु कर्मवशगेन दारुणं शृणु यन्मया दुःखम्।
प्राप्तमनन्तकृत्वः परिभ्रमता संसारे। ९६३॥

अप्रतिष्ठाने नरके त्रयस्त्रिशतं सागरान् अनवरतम्।
वज्रशिलापद्मेषु भिन्न उत्स्फटनपतनैः॥९६४॥

सीमन्तके च तथा पक्वो निरयाग्निसम्प्रदीप्तासु।
कन्दूषु च कुम्भीषु च लोहकटाहीषु च घनासु॥९६५॥

शेषेष्वपि नरकेषु पर्वतयन्त्रैः करपत्रैश्च।
वधितोऽस्मि मन्दभाग्योऽन्यैश्च तीव्रशस्त्रैश्च॥९६६॥

भिन्नः खादितश्चाहमतिरौद्रत्रिशूलवज्रतुण्डैः।
तप्तयुगरथवरेषु च भिन्नाक्षो[1] वाहितो बहुशः॥९६७॥

स्वभाव से निर्गुण इस संसार में कर्म के वशीभूत इस प्रकार के दुःखों को कौन पूछता है ? कर्म के वश संसार में भ्रमण करते हुए नरकों में जो मैंने अनन्त दारुण दुःख प्राप्त किये हैं, उन्हें सुनो—अप्रतिष्ठान नरक में तेतीस सागर तक निरन्तर वज्रशिलारूप कमलों पर पटककर भेदा गया, सीमन्तक नरक में जलती हुई नरकाग्नि में पतीली, हाँडी तथा घने लोहे के कड़ाहों में पकाया गया। शेष नरकों में भी मन्दभाग्य मैं पर्वतयन्त्रों, आरियों तथा अन्य तीक्ष्ण अस्त्रों द्वारा वध किया गया। अति भयंकर त्रिशूलों और वज्र की नोकों द्वारा भेदकर मैं (कई बार) खाया गया। अनेक बार आँखें फोड़कर तपाये हुए जुओं वाले रथों पर मैं बैठाया गया। वहाँ पर

---

1. भिन्नचो—डे, ज्ञा.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कप्पेऊण य सहसा तिलं तिलं तत्थ निरयपालेहिं ।
परिहिंसादोसेण कओ बलि फुरफुरंतोऽहं ॥ ९६८ ॥
उक्खणिऊण य जीहं विरस बोल्लाविओ बला भीओ ।
अलियवयणदोसेणं दुक्खत्तो कंठगयपाणो ॥ ९६९ ॥
असिचक्कभिन्नदेहो बहुसो परदव्वहरणदोसेणं ।
विक्खित्तो छेत्तूणं दिसोदिसं गिद्धवंद्रेण ॥ ९७० ॥
परदारगमणदोसेण सिंबलिं निरयजलणपज्जलियं ।
अवगूहावियपुव्वो जंतेसु य पीडिओ[1] घणियं ॥ ९७१ ॥
वायस[2]सुणहयंढिकाइएहिं करुणं समारडंतो य ।
खइओ बहुएहिं दढं परिग्गहारम्भदोसेणं ॥ ९७२ ॥
उक्कत्तिऊण बहुसो विरसाइ खाविओ समंसाइ ।
मंसम्मि लोलुयत्तणदोसेण आमपक्काइं ॥ ९७३ ॥

कल्पयित्वा च सहसा तिलं तिलं तत्र निरयपालैः ।
परिहिंसादोषेण कृतो बलि स्फुरन्नहम् ॥९६८॥
उत्खाय च जिह्वां विरसं वादितो बलाद् भीतः ।
अलीकवचनदोषेण दुःखार्तः कण्ठगतप्राणः ॥९६९॥
असिचक्रभिन्नदेहो बहुशः परद्रव्यहरणदोषेण ।
विक्षिप्तश्छित्त्वा दिशि दिशि गृध्रवृन्देण ॥९७०॥
परदारगमनदोषेण शाल्मलिं निरयज्वलनप्रज्वलितम् ।
अवगूहितपूर्वो यन्त्रेषु च पीडितो गाढम् ॥९७१॥
वायसशुनकढंकादिभिः करुणं समारटंश्च ।
खादितो बहुभिर्दृढं परिग्रहारम्भदोषेण ॥९७२॥
उत्कर्त्य बहुशो विरसानि खादितः स्वमांसानि ।
मांसे लोलुपत्वदोषेण आमपक्वानि ॥९७३॥

नरकपालों ने परहिंसा के दोष से एकाएक कांपते हुए मुझे तिल-तिल काटकर मेरी बलि दी है। झूठ बोलने के दोष से, दुःख से आर्त कण्ठगत प्राणवाले तथा डरे हुए मेरी जीभ उखाड़कर जबरदस्ती खराब शब्द कराया गया। दूसरे के धन का अपहरण करने के दोष से अनेक बार तलवार और चक्र से भिदा हुआ शरीरवाला मैं गृध्रसमूह द्वारा छेदा जाकर दिशा-दिशा में बिखेर दिया गया। परस्त्री-गमन के दोष से, नरक की आग से पहले से ही प्रज्वलित शाल्मली वृक्ष से (मेरा) आलिंगन कराया गया और यन्त्रों से (आलिंगन कराकर) अत्यधिक पीड़ित किया गया। परिग्रह और आरम्भ के दोष से करुण शब्द करते हुए कौआ, कुत्ता तथा ढंकादि से अनेक बार भरपूर खाया गया। मांस में अतिलोलुपता के दोष से नीरस तथा कच्चे-पक्के अपने ही मांस को अनेक बार

---

1. पीलिओ—पा. ज्ञा.। 2. —सुणयढेकंकाइएहिं—पा. ज्ञा.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तह पाइओ रसंतो तत्ताइ तउयतंबसीसाइं ।
संडासधरियमुहो मज्जरसासंगदोसेणं ॥ ९७४ ॥
तिरिएसु वि संसारे असइं पत्ताइ तिव्वदुक्खाइं ।
वहवाहणनेलंछणदहणंकणभेयभिन्नाइं ॥ ९७५ ॥
मणुएसु वि य नराहिव ! परवसदारिद्दपंडगादीणि ।
एवं न किंचि एय ति चयसु निक्कारणं सोयं ॥ ९७६ ॥

राइणा भणियं—भयवं, असोयणिज्जो तुमं, कओ तए सफलो मणुयजम्मो, पत्तं विवेयाउहं, निउत्तो ववसाओ, थिरीकओ अप्पा, विजिओ भावसत्तू, वसीकया तवसिरी, उज्झिओ पमाओ, वोलियं भवगहणं, पत्तप्पाओ मोक्खो त्ति। सोयणिज्जो उण सो किलिट्ठसत्तो, जो भयवओ उवसग्गकारि त्ति। भयवया भणियं—महाराय, ईइसो एस संसारो; ता किमन्नचिंताए, अप्पाणयं चिंतेहि। राइणा भणियं—आइसउ भयवं, कस्स उण समीवे अहं सयलसंगचायं करेमि। भयवया भणियं—भयवओ विजयधम्मगुरुणो त्ति। पडिस्सुयं राइणा, अणुचिट्ठियं विहाणेण। विहरिओ भयवं।

तथा पायितो रसन् तप्तानि त्रपुताम्रसीसानि ।
संदंशधृतमुखो मद्यरसासङ्गदोषेण ॥९७४॥
तिर्यक्ष्वपि संसारेऽसकृत्प्राप्तानि तीव्रदुःखानि ।
बधवाहननिर्लाञ्छनदहनाङ्कनभेदभिन्नानि ॥९७५॥
मनुजेष्वपि च नराधिप ! परवशदारिद्र्यपण्डगादीनि ।
एवं न किञ्चिदेतदिति त्यज निष्कारणं शोकम् ॥९७६॥

राज्ञा भणितम्—भगवन् ! अशोचनीयस्त्वम्, कृतस्त्वया सफलं मनुजजन्म, प्राप्तं विवेकायुधम्, नियुक्तो व्यवसायः, स्थिरीकृत आत्मा, विजितो भावशत्रुः, वशीकृता तपःश्रीः, उज्झितो प्रमादः, अतिक्रान्तं भवगहनम्, प्राप्तप्रायो मोक्ष इति । शोचनीयः पुनः स क्लिष्टसत्त्वः, यो भगवत उपसर्गकारीति । भगवता भणितम्—महाराज ! ईदृश एष संसारः, ततः किमन्यचिन्तया, आत्मानं चिन्तय । राज्ञा भणितम्—आदिशतु भगवान्, कस्य पुनः समीपेऽहं सकलसङ्गत्यागं करोमि । भगवता भणितम्—भगवतो विजयधर्मगुरोरिति । प्रतिश्रुतं राज्ञा, अनुष्ठितं विधानेन । विहृतो भगवान् ।

काटकर खिलाया गया । मद्यरस के प्रति आसक्ति के दोष से सँडासी से मुँह में डालकर तपाये हुए राँगे, ताँबे तथा शीशे का रस पिलाया गया । इस संसार में वध, वाहन, छेदन, जलाना, अंकन, भेदनरूप भेदवाले तीव्र दुःखों को अनेक बार तिर्यंचगतियों में भी प्राप्त किया और मनुष्य भवों में भी । हे राजन्, दूसरे के वश में होना, दरिद्रता तथा नपुंसक होना आदि दुःखों को भोगा । यह तो कुछ नहीं है अतः निष्कारण शोक छोड़ो ।' ॥९४७-९७६॥

राजा ने कहा—'भगवन् ! आप शोक करने के योग्य नहीं हैं, आपने मनुष्यजन्म को सफल कर दिया । विवेकरूपी आयुध को पा लिया, कार्य नियुक्त कर लिया, आत्मा को स्थिर कर लिया, भावरूप शत्रु को जीत लिया, प्रमाद को छोड़ दिया, तपरूप लक्ष्मी को वश में कर लिया, गहन संसार को लाँघ लिया और मोक्ष को लगभग पा लिया । वह विरोधी प्राणी शोक करने के योग्य है जिसने भगवान् पर उपसर्ग किया ।' भगवान् ने कहा—'महाराज ! यह संसार ऐसा ही है अतः अन्य की चिन्ता से क्या, अपने विषय में सोचो ।' राजा ने कहा—'भगवन्, आदेश दीजिए मैं किसके पास समस्त परिग्रहों का त्याग करूँ ?' भगवान् ने कहा—'भगवान् विजय धर्म गुरु के पास समस्त परिग्रहों का त्याग कीजिए ।' राजा ने स्वीकार किया और विधिपूर्वक अनुष्ठान किया ।-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अइक्कंतो कोइ कालो।

इओ य वाणमंतरस्स खीणप्पाए इहभवाउए उदयाभिमुहीहूयं रिसिवहपरिणामसंचियं असुहकम्मं, समुप्पन्नो तिव्वो वाही उवहयाइ इंदियाइं, पणट्ठो नियसहावो, उइण्णा असुहवेयणा। तओ य उवयरिज्जमाणो पसिद्धोवक्कमेण सहावविवरीययाए अहिययरमक्कंदमाणो अइनिउणवेज्जवयणेण अप्पसिद्धोवक्कमेण विट्ठाइविट्टालणाइकंटयसयणीयसंगओ महामोहगमणेण परिचत्तकंदसद्दो गमिऊण कंचि कालं अइरोद्दज्झाणदोसेण मओ समाणो समुप्पन्नो महातमाहिहाणाए निरयपुढवीए तेत्तीससागरोवमाऊ नारगत्ताए त्ति।

भयवं पि विहरिऊण विसुद्धविहारेण सेविऊण परमसंजमं खविऊण कम्मरासिं काऊण भावसंलेहणं भाविऊण भावणाओ खामिऊण सव्वजीवे गंतूण पहाणथंडिल वंदिऊण वीयरागे रुंभिऊण चेट्ठाओ काऊण महापयत्तं पवन्नो पायवोवगमणं ति। अणुपालिऊण तमेगंतनिरइयारं वंदिज्जमाणो मुणिगणेहिं

अतिक्रान्तः कोऽपि कालः।

इतश्च वानमन्तरस्य क्षीणप्राये इहभवायुषि उदयाभिमुखीभूतं ऋषिवधपरिणामसंचितमशुभकर्म, समुत्पन्नस्तीव्रो व्याधिः, उपहतानीन्द्रियाणि, प्रनष्टो निजस्वभावः, उदीर्णाऽशुभवेदना। ततश्चोपचर्यमाणः प्रसिद्धोपक्रमेण स्वभावविपरीततयाऽधिकतरमाक्रन्दन् अतिनिपुणवैद्यवचनेनाप्रसिद्धोपक्रमेण विष्टादिविट्टालनादि (अस्पृश्यपरिलेपन)-कण्टकशयनीयसङ्गतो महामोहगमनेन परित्यक्ताक्रन्दशब्दो गमयित्वा कंचिद् कालमतिरौद्रध्यानदोषेण मृतः सन् समुत्पन्नो महातमोऽभिधानायां निरयपृथिव्यां त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुर्नारकत्वेनेति।

भगवानपि विहृत्य विशुद्धविहारेण सेवित्वा परमसंयमं क्षपयित्वा कर्मराशिं कृत्वा भावसंलेखनां भावयित्वा भावनाः क्षामयित्वा सर्वजीवान् गत्वा प्रधानस्थण्डिलं वन्दित्वा वीतरागान् रुद्ध्वा चेष्टाः कृत्वा महाप्रयत्नं प्रपन्नः पादपोपगमनमिति। अनुपाल्य तदेकान्तनिरतिचारं वन्द्य-

---

भगवान् विहार कर गये। कुछ समय बीत गया।

इधर इस भव की आयु लगभग क्षीण होने पर, ऋषि के वधरूप परिणामों से अशुभ कर्मों का संचय करने के कारण वानमन्तर को तीव्र रोग उत्पन्न हो गया, इन्द्रियाँ विनष्ट हो गयीं, अपना स्वभाव खो गया, अशुभ वेदना उदीर्ण हुई। अनन्तर प्रसिद्ध उपक्रमों से उपचार किया जाता हुआ, स्वभाव की विपरीतता से अत्यधिक चीखता हुआ, अत्यन्त निपुण वैद्य के वचनों से अप्रसिद्ध उपक्रम के द्वारा विष्टा, बीट आदि अस्पृश्य लेपन तथा काँटों की शय्या से युक्त हो अत्यधिक मूर्च्छित हो चीखना छोड़कर, कुछ समय बिताकर, अत्यन्त रौद्रध्यान के दोष से मरकर 'महातम' नामक नरक की पृथ्वी में तेतीस सागर की आयुवाले नारकी के रूप में उत्पन्न हुआ।

भगवान् भी विहार कर विशुद्ध विहार से परम संयम का सेवन कर, कर्मराशि का क्षय कर, भावपूर्वक सल्लेखना धारण कर, भावनाओं का चिन्तन कर, समस्त जीवों को क्षमाकर, प्रधान स्थण्डिल जाकर, वीतरागों की वन्दना कर, चेष्टाओं को रोककर, महाप्रयत्न कर समाधिमरण को प्राप्त हुए। उस (समाधिमरण) का अत्यन्त रूप से निरतिचार पालन कर मुनिजनों द्वारा वन्दित हो, लोगों से पूज्य हो, अप्सराओं द्वारा गाये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूइज्जमाणो लोएण उवगिज्जमाणो अच्छराहिं थुव्वमाणो देवसंघाएण चइऊण देहं समुप्पन्नो सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे तेत्तीससागरोवमाऊ देवत्ताए त्ति।

॥ समत्तो अट्ठमो भवो ॥

मानो मुनिगणैः पूज्यमानो लोकेनोपगीयमानोऽप्सरोभिः स्तूयमानो देवसंघातेन त्यक्त्वा देहं समुत्पन्नः सर्वार्थसिद्धे महाविमाने त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुर्देवत्वेनेति।

॥ समाप्तोऽष्टमभवः ॥

जाकर, देवसमूह द्वारा स्तुत हो, देह त्याग कर सर्वार्थसिद्धि नामक विमान में तेतीस सागर की आयुवाले देव के रूप में उत्पन्न हुए।

॥ आठवाँ भव समाप्त ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ नवमो भवो ॥

गणचंदवाणमंतर जं भणियमिहासि तं गयमियाणिं।
वोच्छामि जमिह सेसं गुरूवएसाणुसारेणं ॥ ६७७ ॥

अत्थि इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे उत्तुंगभवणसंरुद्धरविरहमग्गा माणिक्कमुत्ताहिरण्ण-धन्नाउलरुंदहट्टमग्गा सुसन्निविट्ठतियचउक्कचच्चरा देवउलविहारारामममंडिया उज्जेणी नाम नयरी।

जा तिलयकयच्छाया वियड्ढवेसाहिराममुहकमला।
पायारेण पिएण व पिय व्व गाढं समवगूढा ॥ ६७८ ॥
अथिरत्तणकुविएण व दट्ठूणं कहवि महियलोइण्णा।
फलिहारज्जुनिबद्धा तिहुयणरिद्धि व्व जा विहिणा ॥ ६७९ ॥

गुणचन्द्रवानमन्तरयोर्यद् भणितमिहासीत् तद्गतमिदानीम्।
वक्ष्ये यदिह शेषं गुरूपदेशानुसारेण ॥ ६७७ ॥

अस्तीहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे उत्तुङ्गभवनसंरुद्धरविरथमार्गा माणिक्यमुक्ताहिरण्य-धान्याकुलविस्तीर्णहट्टमार्गा सुसन्निविष्टत्रिकचतुष्कचत्वरा देवकुलविहारारामममण्डिता उज्जयिनी नाम नगरी।

या तिलककृतच्छाया विदग्धवेश्या (वेषा)-भिराममुखकमला।
प्राकारेण प्रियेणेव प्रियेव गाढं समवगूढा ॥ ६७८ ॥
अस्थिरत्वकुपितेनेव दृष्ट्वा कथमपि महीतलावतीर्णा।
परिखारज्जुनिबद्धा त्रिभुवनऋद्धिरिव या विधिना ॥ ६७९ ॥

गुणचन्द्र तथा वानमन्तर के विषय में जो कहा गया था वह बीत गया। अब जो शेष है उसे गुरु के उपदेश के अनुसार कहता हूँ ॥६७७॥

इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में उज्जयिनी नामक नगरी थी। वहाँ के ऊँचे-ऊँचे भवनों से सूर्य के रथ के मार्ग रोके जाते थे। वहाँ के बाजारों के विस्तृत मार्ग मणि, मोती, स्वर्ण तथा धान्यों से व्याप्त थे। वहाँ तिराहों और चौराहों पर भलीप्रकार चबूतरे बनाये गये थे तथा वह नगरी मन्दिरों, विहारों और उद्यानों से मण्डित थी।

जो (नगरी) तिलक वृक्षों के द्वारा छाया प्रदान किये हुए (स्त्री-पक्ष में—तिलक के द्वारा कान्तियुक्त) चतुर, वेश्या (अथवा विदग्ध वेशवाली स्त्री) के मुख के समान कमलों से युक्त; प्राकार के द्वारा उस प्रकार आलिंगित थी, जिस प्रकार प्रिय के द्वारा प्रिया का आलिंगन किया जाता है; जो तीनों भुवनों की ऋद्धि के समान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वो जीए सुरूवो सव्वो गुणरयणभूसिओ निच्चं।
सव्वो सुवित्थयधणो सव्वो धम्मुज्जुओ लोओ॥ ९८०॥

रेहंति जीए सीमा सरेहिं नलिणीवणेहि य सराइं।
कमलेहि य नलिणीओ कमलाइ य भमरवंद्रेहिं॥ ९८१॥

तीए य राया पणयारिवंद्रसामन्नसयलविहवो वि।
नवरमसामन्नजसो नामेणं पुरिससीहो त्ति॥ ९८२॥

कित्ति व्व तस्स जाया निम्मलवंसुब्भवाऽकलंका य।
सव्वंगसुंदरी सुंदरि त्ति नामेण ससिवयणा॥ ९८३॥

धम्मत्थभग्गपसरं तीए सह सोक्खमणुहवंतस्स।
पणइयणकयाणंदं वोलीणो कोइ कालो त्ति॥ ९८४॥

इओ य सो सव्वट्ठसिद्धमहाविमाणवासी देवो अहाउयमणुपालिऊण तओ चुओ समाणो

सर्वो यस्यां सुरूपः सर्वो गुणरत्नभूषितो नित्यम्।
सर्वः सुविस्तृतधनः सर्वो धर्मोद्यतो लोकः॥ ९८०॥

राजन्ति यस्यां सीमा सरोभिर्नलिनीवनैश्च सरांसि।
कमलैश्च नलिन्यः कमलानि च भ्रमरवन्द्रैः॥ ९८१॥

तस्यां च राजा प्रणतारिवन्द्रसामान्यसकलविभवोऽपि।
नवरमसामान्ययशा नाम्ना पुरुषसिंह इति॥ ९८२॥

कीर्तिरिव तस्य जाया निर्मलवंशोद्भवाऽकलङ्का च।
सर्वाङ्गसुन्दरी सुन्दरीति नाम्ना शशिवदना॥ ९८३॥

धर्मार्थाभग्नप्रसरं तया सह सौख्यमनुभवतः।
प्रणयिजनकृतानन्दमतिक्रान्तः कोऽपि काल इति॥ ९८४॥

इतश्च स सर्वार्थसिद्धमहाविमानवासी देवो यथाऽऽयुष्कमनुपाल्य ततश्च्युतः सन् समुत्पन्नः

थी, जिसे ब्रह्मा ने अस्थिर रूप से (थोड़े समय के लिए) कुपित होकर ही किसी प्रकार पृथ्वीतल पर उतरी हुई देखकर परिखारूपी रस्सी से बाँध दिया था; जिस (नगरी) में सभी मनुष्य सुन्दर रूपवाले थे, सभी नित्यरूप से गुणरूपी रत्नों से विभूषित थे, सभी के पास विस्तृत धन था और सभी लोग धर्म में उद्यत थे। जिसकी सीमा तालाब, कमलिनी, वनों से युक्त तडागों से तथा कमल, कमलिनी और भौंरों के समूह से युक्त कमलों से शोभायमान थी, उस नगरी में शत्रुओं से नमस्कृत और समस्त वैभवों में सामान्य होने पर भी असामान्य यशवाला पुरुषसिंह नाम का राजा था। निर्मल वंश में उत्पन्न, कलंकरहित, सर्वांग सुन्दरी, चन्द्रमुखी 'सुन्दरी' नाम की (उसकी) पत्नी थी, जो कीर्ति के समान थी। धर्म और अर्थ के विस्तार को नष्ट न करते हुए प्रणयीजनों के योग्य आनन्द पाते हुए, उसके साथ सुख का अनुभव करते हुए उसका कुछ समय बीत गया॥९७८-९८४॥

इधर वह सवार्थसिद्धि नामक महाविमान का निवासी देव आयु पूरी कर, वहाँ से च्युत होकर, 'सुन्दरी' के गर्भ में आया। उसने (सुन्दरी ने) उसी रात में प्रातःकालीन बेला में स्वप्न में सूर्य को मुख से उदर में प्रवेश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समुप्पन्नो संदरीए कुच्छिसि। दिट्ठो य तीए सुविणयम्मि तीए चेव रयणीए पहायसमयम्मि पणासयंतो तिमिरं मंडयंतो नहसिरिं विबोहयंतो कमलायरे पगासयंतो जीवलोयं वंदिज्जमाणो लोएहिं थुव्वमाणो रिसिगणेहिं उवगिज्जमाणो किन्नरेहिं अग्घिज्जमाणो लच्छीए अच्चंतपसंतमंडलो निबंधणं सव्वकिरियाण चूडामणी उदयधराहरस्स सव्वुत्तमतेयरासी दिणयरो वयणेणमुयरं पविसमाणो त्ति। पासिऊण य तं सुहविउद्धा। सिट्ठो य तीए जहाविहिं दइयस्स। हरिसवसुब्भिन्नपुलएणं भणिया य तेणं-- देवि, तेल्लोक्कविक्खाओ ते पुत्तो भविस्सइ। तओ सा 'एवं' ति भत्तारवयणमहिणंदिऊण हरिसिया चित्तेण। तओ विसेसओ तिवग्गसंपायणरयाए संपाडियसयलमणोरहाए अभग्गमाणपसरं पुण्णहलमणुहवंतीए पत्तो पसूइसमओ। तओ पसत्थे तिहिकरणमुहुत्तजोए विणा परिकिलेसेण पसूया एसा। जाओ से दारओ। निवेइओ राइणो पुरिससीहस्स हरिसनिब्भराए सिद्धिमइनामाए सुंदरिचेडियाए। परितुट्ठो राया। दिन्नं सिद्धिमईए पारिओसियं। भणिया य पडिहारी; जहा समाइससु णं मम वयणेण जहासन्निहिए पडिहारे, जहा 'मोयावेह मम रज्जे कालघंटापओएण सव्वबंधणाणि,

सुन्दर्याः कुक्षौ। दृष्टश्च तया स्वप्ने तस्यामेव रजन्यां प्रभातसमये प्रणाशयन् तिमिरं मण्डयन् नभःश्रियं विबोधयन् कमलाकरान् प्रकाशयन् जीवलोकं वन्द्यमानो लोकैः स्तूयमान ऋषिगणैरुपगीयमानः किन्नरैरर्घ्यमानो लक्ष्म्याऽत्यन्तप्रशान्तमण्डलो निबन्धनं सर्वक्रियाणां चूडामणिरुदयधराधरस्य सर्वोत्तमतेजोराशिर्दिनकरो वदनेनोदरं प्रविशन्निति। दृष्ट्वा च तं सुखविबुद्धा। शिष्टश्च तया यथाविधि दयितस्य। हर्षवशोद्भिन्नपुलकेन भणिता च तेन--देवि! त्रैलोक्यविख्यातस्ते पुत्रो भविष्यति। ततः सा 'एवम्' इति भर्तृवचनमभिनन्द्य हर्षिता चित्तेन। ततो विशेषतस्त्रिवर्गसम्पादनरतायाः सम्पादितसकलमनोरथाया अभग्नमानप्रसरं पुण्यफलमनुभवन्त्याः प्राप्तः प्रसूतिसमयः। ततः प्रशस्ते तिथिकरणमुहूर्तयोगे विना परिक्लेशेन प्रसूतैषा जातस्तस्य दारकः। निवेदितो राज्ञः पुरुषसिंहस्य हर्षनिर्भरया सिद्धिमतीनामया सुन्दरीचेटिकया। परितुष्टो राजा। दत्तं सिद्धिमत्यै पारितोषिकम्। भणिता च प्रतीहारी, यथा समादिश तद् मम वचनेन यथासन्निहितान् प्रतीहारान् यथा मोचयत मम राज्ये कालघण्टाप्रयोगेण सर्वबन्धनानि, दापयत घोषणापूर्वकमनपेक्षितानुरूपं

करते हुए देखा। वह अन्धकार को नष्ट कर रहा था, आकाश-लक्ष्मी का मण्डन कर रहा था, कमलों के समूह को जाग्रत् कर रहा था, संसार को प्रकाशित कर रहा था। लोग उसकी वन्दना कर रहे थे, ऋषिगण स्तुति कर रहे थे, किन्नर गान कर रहे थे, लक्ष्मी अर्घ्य दे रही थी। वह अत्यन्त शान्त परिवेशवाला था, समस्त क्रियाओं का कारण था, उदयाचल का चूडामणि था तथा सर्वोत्तम तेजराशि था। उसे देखकर (वह) सुखपूर्वक जाग उठी। उसने विधिपूर्वक पति से निवेदन किया। हर्षवश जिसे रोमांच प्रकट हो रहा था, ऐसे उसने (राजा ने) उससे कहा--'देवी! तीनों लोकों में विख्यात तुम्हारा पुत्र होगा।' अनन्तर पति के वचनों का 'अच्छा!' इस प्रकार अभिनन्दन कर चित्त से हर्षित हुई। अनन्तर विशेष रूप से धर्म, अर्थ और काम में रत रहते हुए समस्त मनोरथों को सम्पादित कर, जिसके विस्तार को नष्ट नहीं किया जा सकता है, ऐसे पुण्य के फल का अनुभव करते हुए (उसका) प्रसव का समय आया। अनन्तर शुभ तिथि, करण और मुहूर्त के योग में बिना क्लेश के इसने प्रसव किया। उसके पुत्र उत्पन्न हुआ। हर्ष से भरी हुई सिद्धिमती नामक सुन्दरी की दासी ने राजा पुरुषसिंह से निवेदन किया। राजा सन्तुष्ट हुआ। (उसने) सिद्धिमती को पारितोषिक दिया और प्रतीहारी से कहा कि मेरे कथनानुसार समीपवर्ती प्रतीहारों को आज्ञा दो कि समय (सूचक) घण्टा बजाकर मेरे राज्य के समस्त बन्दियों को छोड़

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दवावेह घोसणापुव्वयं अणवेक्खियाणुरूवं महादाणं, विसज्जावेह पउमरायपमुहाणं नरवईणं मम पुत्त-जम्मपउत्ति, निवेएह देवीपुत्तजम्मब्भुदयं पउराणं, कारवेह अयालछणब्भूयं नयरमहूसवं' ति। समाइट्ठा य तीए जहाइट्ठं पडिहारा। अणुचिट्ठियं रायसासणं पडिहारेहिं।

कारावियं च तेहिं बहुविहवरतूरजणियनिग्घोसं।
लीलाविलासविब्भममग्गपणच्चंतजुवइजणं ॥ ९८५ ॥

वेल्लहलबाहुलइयाविलोलवलउल्लसंतझंकारं।
हेलुच्छलंतकरकमलधरियविमलवरद्धंतं ॥ ९८६ ॥

कप्पूरकुंकुमुप्पंकपंकपूरियनहंगणाभोयं।
बहलमयणाहिकद्दमखुप्पंतपडंतनायरयं ॥ ९८७ ॥

करकलियकणयसिंगयसलिलपहारुल्लसंतसिक्कारं।
मयवसविसंखलुच्छलियगीयलयजणियजणहासं ॥ ९८८ ॥

महादानम्, विसर्जयत पद्मराजप्रमुखानां नरपतीनां मम पुत्रजन्मप्रवृत्तिम्, निवेदयत देवीपुत्रजन्माभ्युदय पौराणाम्। कारयताकालक्षणोद्भूतं नगरमहोत्सवमिति। समादिष्टाश्च तया यथाऽऽदिष्टं प्रतीहाराः। अनुष्ठितं राजशासनं प्रतीहारैः।

कारितं च तैर्बहुविधवरतूर्यजनितनिर्घोषम्।
लोलाविलासविभ्रममार्गप्रनृत्यद्युवतिजनम् ॥ ९८५ ॥

कोमलबाहुलतिकाविलोलवलयोल्लसद्झंकारम्।
हेलोच्छलत्करकमलधृतविमलवर्तुलान्तम् (?) ॥ ९८६ ॥

कर्पूरकुङ्कुमोत्पङ्कपङ्कपूरितनभोऽङ्गणाभोगम्।
बहलमृगनाभिकर्दममज्जत्पतद्नागरकम् ॥ ९८७ ॥

करकलितकनकशृङ्गसलिलप्रहारोल्लसत्सीत्कारम्।
मदवशविशृङ्खलोच्छलितगीतलयजनितजनहासम् ॥ ९८८ ॥

दिया जाय, घोषणापूर्वक अनपेक्षित अनुरूप महादान दिलाओ, पद्मराज प्रमुख राजाओं को मेरे पुत्रजन्म का समाचार भिजवा दो, नागरिकों को महारानी के पुत्रजन्मरूप अभ्युदय का निवेदन करो। असामयिक रूप से प्रकट नगर-महोत्सव को कराओ। जैसा आदेश दिया था वह प्रतीहारों को बतला दिया गया। प्रतीहारों ने राजा की आज्ञा को पूर्ण किया।

प्रतीहारों ने अनेक प्रकार के उत्कृष्ट वाद्यों से उत्पन्न निर्घोष कराया। लीलाओं के विलास के विभ्रम से मार्ग में युवतियाँ नाचने लगीं। उन युवतियों के कोमल बाहुरूपी लताओं के चंचल कड़ों से झंकार प्रकट हो रही थी। अनायास ही उछाले हुए हस्तकमलों पर वे स्वच्छ गेंदों को उछाल रही थीं। उस समय कपूर और केसर की उठी हुई धूलि आकाशरूपी आँगन के विस्तार को पूर्ण कर (भर) रही थी (अथवा आकाशरूपी स्त्री के शरीर को व्याप्त कर रही थी), अत्यधिक कस्तूरी की कीचड़ में फिसलते हुए नागरिक गिर रहे थे, सुन्दर हाथों में स्थित सोने के सींगों द्वारा जल के प्रहार करने से सी-सी की ध्वनि उठ रही थी, मदवश और विश्रृंखल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लीलालसविसमचलंतललियपयरणरणंतमंजीरं ।
चलमेहलाकलावुल्लसंतकलकिंकिणिकलावं ।। ९८९ ।।
अन्नोन्नसमुक्खित्तुत्तरीयदीसंतथणयवित्थारं ।
हलहलयमिलियनायरयलोयरुद्धंतसंचारं ।। ९९० ।।
तूरियजणाणमणवरयचित्तखिप्पंतमहरिहाभरणं ।
विजियसुरलोयविहवं वद्धावणयं मणभिरामं ।। ९९१ ।।

आणंदिया पउरजणवया । संपाडियं वद्धावणाइयं उचियकरणिज्जं । एवं च पइदिणं महंतमाणंदसोक्खमणुहवंतस्स समइच्छिओ पढमो मासो । पइट्ठावियं नामं दारयस्स 'उचिओ एस एयस्स' त्ति कलिऊण सुमिणयदंसणेण पियामहसंतियं समराइच्चो त्ति ।

एत्थंतरम्मि सो वि वाणमंतरजीवो नारओ तओ नरयाओ उव्वट्टिऊण नाणाविहतिरिएसु आहिंडिऊण पाविऊण दुक्खाइं तहाकम्मपरिणइवसेण गोमाउअत्ताए मरिऊण इमीए चेव नयरीए पाणवाडयम्मि गंठिगाभिहाणस्स पाणस्स जक्खदेवाभिहाणाए भारियाए कुच्छिंसि समुप्पन्नो सुय-

---

लीलालसविषमचलल्ललितपदरणरणन्मञ्जीरम् ।
चलमेखलाकलापोल्लसत्कलकिङ्किणीकलापम् ।। ९८९ ।।
अन्योऽन्यसमुत्क्षिप्तोत्तरीयदृश्यमानस्तनविस्तारम् ।
कौतुकमिलितनागरलोकरुध्यमानसञ्चारम् ।। ९९० ।।
तौर्यिकजनानामनवरतचित्रक्षिप्यमानमहार्हाभरणम् ।
विजितसुरलोकविभवं वर्धापनकं मनोऽभिरामम् ।। ९९१ ।।

आनन्दिताः पौरजनव्रजाः । सम्पादितं वर्धापनकादिकमुचितकरणीयम् । एवं च प्रतिदिनं महदानन्दसौख्यमनुभवतः समतिक्रान्तः प्रथमो मासः । प्रतिष्ठापितं नाम दारकस्य 'उचित एष एतस्य' इति कलित्वा स्वप्नदर्शनेन पितामहसत्कं समरादित्य इति ।

अत्रान्तरे सोऽपि मानमन्तरजीवो नारकस्ततो नरकादुद्वृत्य नानाविधतिर्यक्ष्वाहिण्ड्य प्राप्य दुःखानि तथाकर्मपरिणतिवशेन गोमायुकतया मृत्वाऽस्यामेव नगर्यां प्राणवाटके ग्रन्थिकाभिधानस्य प्राणस्य यक्षदेवाभिधानाया भार्यायाः कुक्षौ समुत्पन्नः सुततयेति । जातः कालक्रमेण प्रतिष्ठापितं

होकर उछाले हुए गीतों की लय लोगों में हँसी उत्पन्न कर रही थी । लीला से थके होने के कारण विषम गति वाले सुन्दर पैरों के घुँघरू रुनझुन शब्द कर रहे थे । चंचल मेखलाओं पर क्षुद्र घण्टिकाएँ सुशोभित हो रही थीं । एक-दूसरे पर उत्तरीय फेंकने से (युवतियों के) स्तनों का विस्तार दिखलाई पड़ रहा था । कौतूहल से इकट्ठे हुए नागरिकों से मार्ग रुक गया था । बाजे बजानेवालों पर निरन्तर अनेक कीमती आभूषण न्यौछावर किये जा रहे थे । (इस प्रकार) स्वर्ग के वैभव को जीतने वाला, मनोभिराम महोत्सव हो रहा था ।।९८५-९९१।।

नागरिकों का समूह आनन्दित हुआ । बधाई आदि योग्य कार्यों का सम्पादन किया । इस प्रकार प्रतिदिन महान् आनन्द और सुख का अनुभव करते हुए पहला मास समाप्त हुआ । यह इसके योग्य है---ऐसा मानकर स्वप्न के दर्शनानुसार शिशु का नाम पितामह के सदृश समरादित्य रखा गया ।

इसी बीच वह वानमन्तर का जीव नारकी भी उस नरक से निकलकर अनेक तिर्यंच योनियों में भ्रमण कर, दुःखों को प्राप्त कर वैसे कर्मों के वश सियार के रूप में मरकर इसी नगरी के प्राणवाटक में ग्रन्थिक नाम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्ताए त्ति। जाओ कालक्कमेण। पइट्ठावियं से नामं गिरिसेणो त्ति। सो य कुरूवो जडमई दुक्खिओ दरिद्दो त्ति दुक्खेण कालं गमेइ।

समराइच्चो य विसिट्ठं पुण्णफलमणुहवंतो पुव्वभवसुकयवासणागुणेण बालभावे वि अबालभावचरिओ सयलसत्थकलासंपत्तिसुंदरं पत्तो कुमारभावं। पुव्वभवब्भासेण अणुरत्तो सत्थेसु चिंतए अहिणिवेसेण, उप्पेक्खए चित्तभावे, निरूवेई सम्मं, घडेइ तत्तजत्तीए, भावए समभावेण, वड्ढए सद्धाए, पउंजए गोयरम्मि, गच्छए संवेयं। एवं च सत्थसंगयस्स तत्तभावणाणुसरणबलेणं जायं जाइसरणं। न विन्नायं जणेण। तओ सो अब्भत्थयाए कुसलभावस्स पहीणयाए कम्मुणो विसुद्धयाए नाणस्स हेययाए विसयाणं उवाएययाए पसमस्स अविज्जमाणयाए दुक्कडाणं उक्कडयाए जीववीरियस्स आसन्नयाए सिद्धिसंपत्तीए न बहु मन्नए रायलच्छि, न उज्जओ सरीरसक्कारे, न कीलए चित्तकीलाहिं, न सेवए गामधम्मे, केवलं भवविरत्तचित्तो सुहज्झाणजोएणं काल गमेइ त्ति।

तं च तहाविहं दट्ठूण समुप्पन्ना पुरिससीहस्स चिंता। अहो णु खलु एस कुमारो अणन्नसरिसे

तस्य नाम गिरिषेण इति। स च कुरूपो जडमतिर्दुःखितो दरिद्र इति दुःखेन कालं गमयति।

समरादित्यश्च विशिष्ट पुण्यफलमनुभवन् पूर्वभवसुकृतवासनागुणेन बालभावेऽप्यबालभावचरितः सकलशास्त्रकलासम्पत्तिसुन्दरं प्राप्तः कुमारभावम्। पूर्वभवाभ्यासेनानुरक्तः शास्त्रेषु चिन्तयत्यभिनिवेशेन, उत्प्रेक्षते चित्रभावान्, निरूपयति सम्यक्, घटयति तत्त्वयुक्त्या, भावयति समभावेन, वर्धते श्रद्धया, प्रयुङ्क्ते गोचरे, गच्छति संवेगम्। एवं च शास्त्रसंगतस्य तत्त्वभावनानुसरणबलेन जातं जातिस्मरणम्। न विज्ञातं जनेन। ततः सोऽभ्यस्ततया कुशलभावस्य प्रहीनतया कर्मणः विशुद्धतया ज्ञानस्य हेयतया विषयाणामुपादेयतया प्रशमस्याविद्यमानतया दुष्कृतानामुत्कटतया जीववीर्यस्यासन्नतया सिद्धिसम्प्राप्तेर्न बहु मन्यते राजलक्ष्मीम्, नोद्यतः शरीरसत्कारे न क्रीडति चित्रक्रीडाभिः, न सेवते ग्रामधर्मान्, केवलं भवविरक्तचित्तः शुभध्यानयोगेन कालं गमयतीति।

तं च तथाविधं दृष्ट्वा समुत्पन्ना पुरुषसिंहस्य चिन्ता। अहो नु खल्वेष कुमारोऽनन्यसदृशोऽपि

वाले चाण्डाल (प्राण) की यक्षदेवा नाम की पत्नी के गर्भ में पुत्र के रूप में आया। कालक्रम से जन्म हुआ। उसका नाम गिरिषेण रखा गया। वह कुरूप, जड़बुद्धि और दरिद्र था अतः दुःखित होकर समय बिता रहा था।

समरादित्य पूर्वभव के संस्कारों के गुण से पुण्य के फल का अनुभव करता हुआ, बालक होने पर भी अबाल होने का आचरण करता हुआ समस्त शास्त्र और कलाओं की सम्पत्ति से सुन्दर कुमारपने को प्राप्त हुआ। पूर्वभव के अभ्यास से वह शास्त्रों में अनुरक्त रहकर अविरल चिन्तन करता रहता था, अनेक प्रकार के भावों का अनुमान करता था, भली प्रकार देखता था, तात्त्विक युक्तियों का मेल कराता था, समभाव से भावना करता था, श्रद्धा से बढ़ता था अर्थात् उसकी आस्था बढ़ रही थी, मार्ग का प्रयोग करता था और विरक्ति मार्ग पर गमन कर रहा था। इस प्रकार शास्त्र से युक्त तात्त्विक भावना के अनुसरण के बल से (उसे) जातिस्मरण हो गया। लोगों को (यह) ज्ञात नहीं हुआ। अनन्तर वह शुभभावों के अभ्यास, कर्म की हीनता, ज्ञान की विशुद्धता, विषयों की हेयता, शान्ति की उपादेयता, पापों की अविद्यमानता, जीव की शक्ति की उत्कटता और सिद्धि की प्राप्ति की समीपता के कारण राजलक्ष्मी का आदर नहीं करता था, शरीर के सत्कार में उद्यत नहीं था, अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं को नहीं करता था, इन्द्रियों के विषयों का सेवन नहीं करता था, केवल संसार से विरक्तचित्त होकर शुभ ध्यान के योग से ही समय बिताता था।

उसे उस प्रकार देखकर पुरुषसिंह को चिन्ता हुई। ओह! यह कुमार चित्त में अनन्य सदृश होने, रूप में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि चित्ते सुंदरो वि रूवेण पत्ते वि पढमजोव्वणे संगओ वि कलाहिं पेच्छंतो वि रायकन्नयाओ निरुवहओ वि देहेण जुत्तो वि इंदियसिरीए रहिओ वि मुणिदंसणेणं न छिप्पए जोव्वणवियारेहिं, न पेच्छए अद्धच्छिपेच्छिएण, न जंपए खलियवयणेहिं, न सेवए गेयाइकलाओ, न बहु मन्नए भूसणाइं, न घेप्पए मएण, न मुच्चए अज्जवयाए, न पत्थए विसयसोक्खं। ता किं पुण इमं ति। पुण्णसंभारजुत्तो य एसो, जेण दिट्ठो देवीए एयसंभवकाले पसत्थसुविणओ; गब्भसंगए एयम्मि नत्थि ज मे न संजायं। अओ भवियव्वमेयस्स महापइट्ठाए, पावियव्वमेयसंबंधेणमम्हेहिं पारत्तियं। ता एस एत्थुवाओ। करेमि से दुल्ललियगोट्ठिसंगए निम्माए कलाहिं वियक्खणे रइकीलासु आराहए परचित्तस्स अद्धासिए मयणेण विसिट्ठकुलसमुप्पन्ने पहाणमित्ते। तओ तेसिं संसग्गीए संपाडिस्सइ मे परमपमोयं ति। चिंतिऊण कया कुमारस्स दुल्ललियगोट्ठीचूडामणिभूया मुत्तिमंता विय महुमयणदोगुंदुगाई असोयकामंकुरललियंगयप्पमुहा पहाणमित्ता। भणिया य राइणा—तहा तुब्भेहिं जइयव्वं, जहा कुमारो विसिट्ठ-

---

चित्ते सुन्दरोऽपि रूपेण प्राप्तेऽपि प्रथमयौवने संगतोऽपि कलाभिः पश्यन्नपि राजकन्यका निरूपहतोऽपि देहेन युक्तोऽपीन्द्रियश्रिया रहितोऽपि मुनिदर्शनेन न स्पृश्यते यौवनविकारैः, न प्रेक्षतेऽर्धाक्षिप्रेक्षितेन, न जल्पति स्खलितवचनैः, न सेवते गेयादिकलाः, न बहु मन्यते भूषणानि, न गृह्यते मदेन, न मुच्यते आर्जवतया, न प्रार्थते विषयसौख्यम्। ततः किं पुनरिदमिति। पुण्यसम्भारयुक्तश्चैषः, येन दृष्टो देव्या एतत्सम्भवकाले प्रशस्तस्वप्नः, गर्भसङ्गते चैतस्मिन् नास्ति यन्मे न सञ्जातम्। अतो भवितव्यमेतस्य महाप्रतिष्ठया, प्राप्तव्यमेतत्सम्बन्धेनास्माभिः पारत्रिकम्। तत एषोऽत्रोपायः। करोमि तस्य दुर्ललितगोष्ठीसङ्गतानि निर्मातानि (निपुणानि) कलाभिर्विचक्षाणि रतिक्रीडासु आराधकानि परचित्तस्याध्याश्रितानि मदनेन विशिष्टकुलसमुत्पन्नानि प्रधानमित्राणि। ततस्तेषां संसर्गेण सम्पादयिष्यति मे परमप्रमोदमिति। चिन्तयित्वा कृतानि कुमारस्य दुर्ललितगोष्ठीचूडामणिभूतानि मूर्तिमन्तीव मधुमदनदोगुन्दकादीनि अशोककामाङ्कुरललिताङ्गप्रमुखानि प्रधानमित्राणि। भणितानि राज्ञा तथा युष्माभिर्यतितव्यं यथा कुमारो विशिष्टलोकमार्गं प्रपद्यते।

सुन्दर होने, कुमारावस्था प्राप्त होने, कलाओं से युक्त होने, राजकन्याओं को देखने, शरीर के निरुपहत होने, इन्द्रिय-लक्ष्मी से युक्त होने, मुनिदर्शन से रहित होने पर भी यौवन के विकारों से स्पृष्ट नहीं होता है। अधखुली आँखों से नहीं देखता है, स्खलित वचन नहीं बोलता है, गाने योग्य आदि कलाओं का सेवन नहीं करता है, भूषणों का आदर नहीं करता है, मद से गृहीत नहीं होता है, आर्जव (सरलता) को नहीं छोड़ता है और विषय-सुखों की प्रार्थना नहीं करता है। अतः यह क्या, यह पुण्य के भार से युक्त है; क्योंकि महारानी ने इसके उत्पन्न होने के समय में शुभ स्वप्न देखा था और गर्भ से युक्त होने पर वह कोई पदार्थ नहीं, जिसकी मुझे उपलब्धि नहीं हुई हो या जो पूरा नहीं हुआ हो। अतः इसकी महाप्रतिष्ठा होनी चाहिए, इसके सम्बन्ध में हमें पारलौकिक गति (सद्गति) प्राप्त करनी चाहिए। अतः यहाँ उपाय है। मैं (अब) उसके ललित गोष्ठियों से युक्त, कलाओं में विलक्षण, रतिक्रीड़ाओं में निपुण, दूसरे के चित्त की आराधना करने वाले, काम से अधिष्ठित तथा विशिष्ट कुलों में उत्पन्न ऐसे प्रधान मित्र बनाता हूँ। उनके संसर्ग से मुझे अत्यधिक प्रमोद होगा—ऐसा सोचकर प्रधान मित्रों को बनाया। राजा ने अशोक, कामांकुर, ललितांग प्रमुखों को कुमार का प्रधानमित्र बनाया। ये मित्र ललित गोष्ठी के चूड़ामणि थे और शरीरधारी वसन्त, कामदेव या उत्तम जाति के देव (के समान) थे। राजा ने उनसे कहा कि तुम लोगों को उस प्रकार का यत्न करना चाहिए जिससे कुमार विशिष्ट लौकिक मार्ग को प्राप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोयमग्गं पवज्जइ । तेहिं भणियं—जं देवो आणवेइ ।

अइक्कंता कइइ दियहा । उवगया वीसत्थयं । आढत्तो य णेहिं महुरोवक्कमेण कुमारो, गायंति मणहरं, पढंति गाहाओ, पुच्छंति वोणापओए, पसंसंति नाडयाइं; वियारेंति कामसत्थं, दसेंति चित्ताइं, वण्णेंति सारसमिहुणयाइं, निंदंति चक्काइं, कुणंति इत्थिकहं, दंसेंति सरवराइं, कारेंति जलकोडं, निवेसंति उज्जाणेसु, पसाहिंति सुंदरं, कोलंति डोलाहिं, रएंति कुसुमसत्थरे, थुणंति विसमबाणं ति । कुमारो उण पवड्ढमाणसंवेओ 'अहो एएसिं मूढया ! कहं पुण एए पडिबोहियव्व' त्ति उवायचितापरो उवरोहसीलयाए पडिकूलमभणमाणो चिट्ठइ । एवं च अइक्कंतो कोइ कालो । तेसिं पडिबोहणत्थं तु किंचि नाडयपेच्छणाइ अब्भुवगयं कुमारेण, वड्ढिया पीई, नीया य परमवीसत्थयं ।

अन्नया य 'एस एत्थ विसयाहिओ उवाओ' त्ति मंतिऊण परोप्परं कओ असोएण कामसत्थ-पसंगो । भणियं च णेण--भो किपरं पुण इमं कामसत्थं । कामंकुरेण भणियं—भो किमेत्थ पुच्छियव्वं; अविगलतिवग्गसाहणपरं ति । कामसत्थभणियपओयन्नुणो हि पुरिसस्स सदारचित्ताराहण-

---

तैर्भणितम्—यद् देव आज्ञापयति ।

अतिक्रान्ताः कतिचिद् दिवसाः । उपगता विश्वस्तताम् । आरब्धश्च तैर्मधुरोपक्रमेण कुमारः, गायन्ति मनोहरम्, पठन्ति गाथाः, पृच्छन्ति वीणाप्रयोगान्, प्रशंसन्ति नाटकानि, विचारयन्ति कामशास्त्रम्, दर्शयन्ति चित्राणि, वर्णयन्ति सारसमिथुनकानि, निन्दन्ति चक्रवाकान्, कुर्वन्ति स्त्रीकथाम्, दर्शयन्ति सरोवराणि, कारयन्ति जलक्रीडाम्, निवेशयन्त्युद्यानेषु, प्रसाधयन्ति सुन्दरम्, क्रीडयन्ति दोलाभिः, रचयन्ति कुसुमस्रस्तरान्, स्तुवन्ति विषमबाणमिति । कुमारः पुनः प्रवर्धमानसंवेगः 'अहो एतेषां मूढता, कथं पुनरेते प्रतिबोधितव्याः' इत्युपायचिन्तापर उपरोधशीलतया प्रतिकूलमभणन् तिष्ठति । एवं चातिक्रान्तः कोऽपि कालः । तेषां प्रतिबोधनार्थं तु किञ्चिद् नाटकप्रेक्षणाद्यभ्युपगतं कुमारेण, वृद्धा प्रीतिः, नीताश्च परमविश्वस्तताम् ।

अन्यदा च 'एषोऽत्र विषयाधिक उपायः' इति मन्त्रयित्वा परस्परं कृतोऽशोकेन कामशास्त्र-प्रसङ्गः । भणितं च तेन—भोः किं परं पुनरिदं कामशास्त्रम् । कामाङ्कुरेण भणितम्—भोः ! किमत्र प्रष्टव्यम्, अविकलत्रिवर्गसाधनपरमिति । कामशास्त्रभणितप्रयोगज्ञस्य हि पुरुषस्य स्वदारचित्तारा-

---

करें । उन्होंने कहा—जो महाराज आज्ञा दें ।

कुछ दिन बीत गये । (वे मित्र) विश्वस्तता को प्राप्त हुए । उन्होंने कुमार के प्रति मधुर उपक्रम आरम्भ किये । वे मनोहर गाते थे, गाथाएँ पढ़ते थे, वीणा के प्रयोग पूछते थे, नाटकों की प्रशंसा करते थे, कामशास्त्र पर विचार करते थे, चित्र दिखलाते थे, सारस के जोड़ों का वर्णन करते थे । चकवों की निन्दा करते थे, स्त्रीकथा करते थे, सरोवर दिखलाते थे, जलक्रीड़ाएँ कराते थे, उद्यानों में डेरा डालते थे, सुन्दर प्रसाधन करते थे, झूला झूलते थे, फूलों के बिस्तर बनाते थे और कामदेव की स्तुति करते थे । पुनः कुमार बढ़ी हुई विरक्तिवाला होकर —'ओह इनकी मूढ़ता, इन्हें पुनः कैसे प्रतिबोधित करें—इस उपाय की चिन्ता में रत रहते हुए अनुग्रह स्वभाव-वाले होने के कारण प्रतिकूल न कहते हुए स्थित रहते थे । इस प्रकार कुछ समय बीत गया । उनको प्रतिबोधित करने के लिए कुमार ने नाटक, प्रेक्षण आदि स्वीकार किये, प्रीति बढ़ी और अत्यधिक विश्वस्त हो गये ।

एक बार 'यह यहाँ विषयों में प्रवृत्ति का बहुत बड़ा उपाय है' ऐसी मन्त्रणा कर अशोक ने परस्पर काम का प्रसंग छेड़ दिया । उसने कहा—'हे (मित्रो !) यह कामशास्त्र क्या है ?' कामांकुर ने कहा—'अरे इसमें क्या पूछना, अविकल रूप से धर्म, अर्थ और काम का साधन करनेवाला कामशास्त्र है । कामशास्त्र में कहे हुए प्रयोग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संरक्खणेण सुद्धसुयभावओ विसुद्धदाणाइकिरियापसिद्धीए य महंतो धम्मो। अणुरत्तदारासुद्धसुएहिंतो य तयाणुबंधफलसारा संपज्जंति अत्थकामा; विवज्जए उण तिण्हं पि विवज्जओ। जओ अणाराहणेण दारचित्तस्स न परमत्थओ संरक्खणं, असंरक्खणे य तस्स असुद्धसुयभावओ तेसिं निरयाइजोयणाए विसुद्धदाणाइकिरियाभावओ महंतो अहम्मो, अणणुरत्तदाराविसुद्धसुएहिंतो य पणस्संति अत्थकामा, न य कामसत्थभणियपओयपरिन्नाणरहिओ नियमेण सदारचित्तं आराहेइ त्ति। एएण कारणेणं तिवग्गसाहणपरं कामसत्थं ति। ललियंगएण भणियं—सोहणमिणं, न एत्थ कोइ दोसो। एयं तु सोहणयरं, धम्मत्थाण साफल्लयानिदरिसणपरं ति; न जओ कामाभावे धम्मत्थाणमन्नं फलं, न य निप्फलत्ते तेसिं पुरिसत्थया। न य मोक्खफलसाहगत्तणेणं सफला इमे, जओ अलोइओ मोक्खो समाहिभावणाझाणपगरिसफलो य। तम्हा धम्मत्थाण साफल्लयानिदरिसणपरमेयं ति। एवं चेव सोहणयरं। असोएण भणियं—कुमारो एत्थ पमाणं ति। कामंकुरेण भणियं—सुट्ठु पमाणं।

धनसंरक्षणेन शुद्धसुतभावतो विशुद्धदानादिक्रियाप्रसिद्धया च महान् धर्मः। अनुरक्तदारशुद्धसुताभ्यां च तदनुबन्धफलसारौ सम्पद्येतेऽर्थकामौ, विपर्यये पुनस्त्रयाणामपि विपर्ययः। यतोऽनाराधनेन दारचित्तस्य न परमार्थतः संरक्षणम्, असंरक्षणे च तस्याशुद्धसुतभावतस्तेषां निरयादियोजनया विशुद्धदानादिक्रियाऽभावतो महान् अधर्मः, अननुरक्तदाराविशुद्धसुताभ्यां च प्रणश्यतोऽर्थकामौ, न च कामशास्त्रभणितप्रयोगपरिज्ञानरहितो नियमेन स्वदारचित्तमाराधयतीति। एतेन कारणेन त्रिवर्गसाधनपरं कामशास्त्रमिति। ललिताङ्गेन भणितम्—शोभनमिदम्, नात्र कोऽपि दोषः। एतत्तु शोभनतरम्, धर्मार्थयोः साफल्यतानिदर्शनपरमिति, न यतः कामाभावे धर्मार्थयोरन्यत् फलम्, न च निष्फलत्वे तयोः पुरुषार्थता। न च मोक्षफलसाधकत्वेन सफलाविमौ, यतोऽलौकिको मोक्षः समाधिभावनाध्यानप्रकर्षफलश्च। तस्माद् धर्मार्थयोः साफल्यतानिदर्शनपरमेतदिति। एवमेव शोभनतरमिति। अशोकेन भणितम्—कुमारोऽत्र प्रमाणमिति। कामाङ्कुरेण भणितम्—सुष्ठु प्रमाणम्। ललिताङ्गकेन भणितम्—यद्यत्र ततः करोतु प्रसादं कुमारः, कथयतु किमत्र शोभनतरमिति। कुमारेण भणितम्—

को जाननेवाले पुरुष के अपनी स्त्री के चित्त की आराधना और उसके संरक्षण से शुद्ध पुत्र की भावना करने और विशुद्ध दानादि क्रियाओं की प्रसिद्धि से महान् धर्म होता है। स्त्री और शुद्ध (सुसंस्कृत) पुत्र में अनुरक्त होने से तत्सम्बन्धी अनुबंध ही है फल और सार जिनमें ऐसे अर्थ और काम दोनों को ही सम्पादित करते हैं। विपरीत स्थिति में धर्म, अर्थ और काम तीनों की विपरीतता होती है; क्योंकि स्त्री के चित्त की आराधना न करने से परमार्थ रूप से उसका संरक्षण नहीं होता। परमार्थतः (स्त्री के चित्त का) संरक्षण न होने पर अशुद्ध सुतभाव से उनके नरकादि का संसर्ग होता है और उससे विशुद्ध दानादि क्रियाओं का अभाव होने से महान् अधर्म होता है। विशुद्ध रूप से स्त्री और पुत्र में अनुरक्त न होनेवाले के अर्थ और काम दोनों ही नष्ट हो जाते हैं, कामशास्त्र में कथित प्रयोग के ज्ञान से रहित व्यक्ति नियम से अपनी स्त्री के चित्त की आराधना नहीं करता है। इस तरह कामशास्त्र धर्म, अर्थ और काम का साधन करने में सक्षम है।' ललितांग ने कहा—'यह ठीक है, यहाँ कोई दोष नहीं है। यह तो बहुत अच्छा है, धर्म और अर्थ की सफलता का द्योतन करने में समर्थ है, क्योंकि काम के अभाव में धर्म और अर्थ का अन्य कोई फल नहीं है। धर्म और अर्थ के निष्फल होने पर पुरुषार्थ भी नहीं रहता। मोक्षफल के साधक होने से धर्म और अर्थ सफल हैं, ऐसा भी नहीं है; क्योंकि मोक्ष अलौकिक है और समाधि-भावना तथा ध्यान की चरम सीमा का फल है। अतः धर्म और अर्थ की सफलता का यह निदर्शन (दृष्टान्त) है। यही शोभनतर है। अशोक ने कहा—'इस विषय में कुमार प्रमाण हैं।' कामांकुर ने कहा—'भलीभाँति प्रमाण हैं।' ललितांग ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ललियंगएण भणियं—जइ एवं, ता करेउ पसायं कुमारो; साहेउ, किमेत्थ सोहणयरं ति। कुमारेण भणियं—भो, न तुब्भेहिं कुप्पियव्वं, भणामि अहमेत्थ परमत्थं। सव्वेहिं भणियं—कुमार, अन्नाणनासणे को कोवो। ता करेउ पसायं कुमारो, भणाउ परमत्थं ति। कुमारेण भणियं—भो सुणह। कामसत्थं खु परमत्थओ करेंतसुणेंतयाणमन्नाणपयासणपरं, जओ कामा असुंदरा पयईए विडंबणा जणाणं विसोवमा परिभोए वच्छला कुचेट्ठियस्स। एएहिं अहिहूया पाणिणो महामोहदोसेण न पेच्छंति परमत्थं, न मुणंति हियाहियाइं, न वियारेंति कज्जं, न चिंतंति आयइं। जेण कामिणो सयाऽसुइएसु असुइनिबंधणेसु कलमलभरिएसु महिलायणंगेसु चंदकुंदेंदीवरेहिंतो वि अहिययररम्मबुद्धीए अहिलासाइरेगेण असुइए विय गड्डसूयरा धणियं पयट्टंति; अओ न पेच्छंति परमत्थं। जओ य दुल्लहे मणुयजम्मे लद्धे कम्मपरिणईए साहए सुद्धधम्मस्स चंचले पयईए संसारवद्धणेसु निव्वाणवेरिएसु बालबहुमएसु बुहयणगरहिएसु सज्जंति कामेसु; अओ न मुणंति हियाहियाइं। जओ य असंतेसु वि इमेसु कामसंपाडणनिमित्तं निप्फलं उभयलोएसु कुणंति चित्तचेट्ठियं, खमंति अक्खमाए, किलिस्संति

भो न युष्माभिः कुपितव्यम्, भणामि अहमत्र परमार्थम्—सर्वैर्भणितम्। अज्ञाननाशने कः कोपः। ततः करोतु प्रसादं कुमारः, भणतु परमार्थमिति। कुमारेण भणितम्—भोः शृणुत। कामशास्त्रं खलु परमार्थतः कुर्वच्छृण्वतामज्ञानप्रकाशनपरम्, यतः कामा असुन्दराः प्रकृत्या, विडम्बना जनानां विषोपमाः परिभोगे, वत्सलाः कुचेष्टितस्य। एतैरभिभूताः प्राणिनो महामोहदोषेण न पश्यन्ति परमार्थम्, न जानन्ति हिताहिते, न विचारयन्ति कार्यम्, न चिन्तयन्त्यायतिम्। येन कामिनः सदाऽशुचिकेष्वशुचिनिबन्धनेषु कलमलभृतेषु महिलाजनाङ्गेषु चन्द्रकुन्देन्दीवरेभ्योऽपि अधिकतररम्यबुद्धयाऽभिलाषातिरेकेणाशुचाविव गर्तासूकरा गाढं प्रवर्तन्ते, अतो न प्रेक्षन्ते परमार्थम्। यतश्च दुर्लभे मनुजजन्मनि लब्धे कर्मपरिणत्या साधके शुद्धधर्मस्य चञ्चले प्रकृत्या संसारवर्धनेषु निर्वाणवैरिकेषु बालबहुमतेषु बुधजनगर्हितेषु सज्जन्ति कामेषु, अतो न जानन्ति हिताहिते। यतश्चासत्स्वपि एषु कामसम्पादननिमित्तं निष्फलमुभयलोकेषु कुर्वन्ति चित्रचेष्टितम्, क्षमन्ते

कहा—'यदि ऐसा है तो कुमार कृपा करें, कहिए, यहाँ क्या शोभनतर है?' कुमार ने कहा—'हे मित्रो! आप सभी कुपित मत होना, मैं इस विषय में यथार्थ बात कहता हूँ।' सभी मित्रों ने कहा—'अज्ञान का नाश करने में कैसा कोप! अतः कुमार कृपा कीजिए, सही बात कहिए।' कुमार ने कहा—'हे मित्रो! सुनो। निश्चित रूप से कामशास्त्र को परमार्थ बतलाना या सुनना अज्ञान का प्रकाशन है; क्योंकि काम स्वभाव से असुन्दर है, भोग करने में विष के समान काम मनुष्यों का उपहास रूप है। कुचेष्टाओं का प्रिय है। इससे अभिभूत प्राणी महामोह के दोष से परमार्थ को नहीं देखते हैं, हित और अहित को नहीं जानते हैं। कार्य का विचार नहीं करते हैं, भावी फल को नहीं सोचते हैं, जिससे कामी सदा अपवित्र, अपवित्रता के सम्बन्ध से युक्त, कीचड़ और मल से भरे हुए महिलाओं के अंगों में चन्द्रमा, कुन्द पुष्प और नीलकमल से अधिक रमणीय बुद्धि से अभिलाषा की अधिकता के कारण उसी प्रकार प्रवृत्त होते हैं, जिस प्रकार से अपवित्र गड्ढे में सुअर गाढ़ रूप से प्रवृत्त होते हैं। इसीलिए वे परमार्थ को नहीं देखते हैं। चूँकि कामी पुरुष कर्मों की परिणति से दुर्लभ मनुष्यजन्म प्राप्त होने पर तथा शुद्ध धर्म का साधक होने पर (भी) स्वभाव से चंचल, संसार को बढ़ानेवाले, निर्वाण के वैरी, अज्ञानियों द्वारा आदर पाये हुए, विद्वानों द्वारा गर्हित कामों में लग जाते हैं। इसी से वे हित और अहित को नहीं जानते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकिलिसियव्वं, थुणंति अथोयव्वाइं, झायंति अज्झाइयव्वाइं; अओ न वियारेंति कज्जं। अओ य उवहसंति सच्चं, कुणंति कंदप्पं, निंदंति गुरुयणं, चयंति कुसलमग्गं, हवंति ओहसणिज्जा, पावंति उम्मायं, निंदिज्जंति लोएणं, गच्छंति नरएसु; अओ न पेच्छंति आयइं। अन्नं च। इहलोए चेव कामा कारणं वहबंधणाण, कुलहरं इस्साए, निवासो अणुवसमस्स, खेत्तं विसायभयाण, अओ चेव निंदिया धम्मसत्थेसु। एववट्ठिए समाणे निरूवेह मज्झत्थभावेण, कह णु कामसत्थं अविगलतिवग्गसाहणपरं ति। जं च भणियं 'कामसत्थभणियपओयन्नुणो हि पुरिसस्स सदारचित्ताराहणसंरक्खणेण सुद्धसुयभावओ विसुद्धदाणाइकिरियापसिद्धीए य महंतो धम्मो त्ति, एयं पि न जुत्तिसंगयं। जओ न कामसत्थभणियपओयन्नू वि पुरिसो नियमेण सदारचित्ताराहणं करेति। दीसंति खलु इमेसिं पि वहिचरंता दारा। नयासम्मपओयजणिओ तओ वहिचारो त्ति जुत्तमासंकिउं, न जओ एत्थ निच्छए पमाणं। दीसइ य तप्पओयन्नू एगदारचित्ताराहणपरो वि अन्नस्स तमणाराहयंतो, अपओयन्नू वि धाराहयंतो

अक्षमया, क्लिश्यन्त्यक्लेशितव्यम्, स्तुवन्त्यस्तोतव्यानि, ध्यायन्त्यध्यातव्यानि, अतो न विचारयन्ति कार्यम्। यतश्चोपहसन्ति सत्यम्, कुर्वन्ति कन्दर्पम्, निन्दन्ति गुरुजनम्, त्यजन्ति कुशलमार्गम्, भवन्त्युपहसनीयाः, प्राप्नुवन्त्युन्मादम्, निन्द्यन्ते लोकेन, गच्छन्ति नरकेषु, अतो न प्रेक्षन्ते आयतिम्। अन्यच्च, इहलोके एव कामाः कारणं वधबन्धनानाम्, कुलगृहमीर्ष्यायाः, निवासोऽनुपशमस्य, क्षेत्रं विषादभयानाम्; अत एव निन्दिता धर्मशास्त्रेषु। एवमवस्थिते सति निरूपयत मध्यस्थभावेन, कथं नु कामशास्त्रमविकलत्रिवर्गसाधनपरमिति। यच्च भणितं 'कामशास्त्रभणितप्रयोगज्ञस्य हि पुरुषस्य स्वदारचित्ताराधनसंरक्षणेन शुद्धसुतभावतो विशुद्धदानादिक्रियाप्रसिद्ध्या च महान् धर्म' इति। एतदपि न युक्तिसंगतम्। यतो न कामशास्त्रभणितप्रयोगज्ञोऽपि पुरुषो नियमेन स्वदारचित्ताराधनं करोति। दृश्यन्ते खल्वेषामपि व्यभिचरन्तो दाराः। न चासम्यक्प्रयोगजनितस्ततो व्यभिचार इति युक्तमाशङ्कितुम्, न यतोऽत्र निश्चये प्रमाणम्। दृश्यते च तत्प्रयोगज्ञ एकदारचित्ताराधनपरोऽपि अन्यः स तमनाराधयन्, अप्रयोगज्ञोऽपि चाराध-

---

हिताहित का विवेक न होने पर काम के सम्पादन के लिए इहलोक और परलोक दोनों में नाना प्रकार की चेष्टाएँ करते हैं, अक्षमा के द्वारा क्षमा किये जाते हैं, क्लेश को न पहुँचाने योग्य को दुःख पहुँचाते हैं, स्तुति न करने योग्यों की स्तुतियाँ करते हैं, ध्यान न करने योग्यों का ध्यान करते हैं, अतः कार्य का भी विचार नहीं करते हैं। चूंकि सत्य का उपहास करते हैं, काम (सेवन) करते हैं गुरुओं की निन्दा करते हैं, शुभमार्ग छोड़ देते हैं, उपहास के योग्य होते हैं, उन्माद को प्राप्त करते हैं, लोक-निन्दित होते हैं, नरकों में गमन करते हैं, अतः भावी फल का भी विचार नहीं करते हैं। इस लोक में ही काम बन्ध और बन्धन का कारण है, ईर्ष्या का कुलगृह (पितृ गृह) है, अशान्ति का निवास है, विषाद और भयों का क्षेत्र है, अतएव धर्मशास्त्रों में (भी) इसकी निन्दा की गयी है। ऐसी स्थिति में माध्यस्थ्य भाव से देखो। कामशास्त्र अविकल रूप से धर्म, अर्थ और कामरूप त्रिवर्ग का साधन करने में कैसे समर्थ है? जो कहा गया है कि कामशास्त्र में कथित प्रयोग को जाननेवाले पुरुष का निश्चित रूप से अपनी स्त्री के चित्त की आराधना और संरक्षण से शुद्ध भाव से और विशुद्ध दानादि क्रियाओं की प्रसिद्धि से महान् धर्म होता है--यह भी युक्तिसंगत नहीं हैं, क्योंकि कामशास्त्र में कथित प्रयोग को जानने वाला भी पुरुष नियम से अपनी स्त्री के चित्त की सेवा नहीं करता है। इनकी स्त्रियाँ भी व्यभिचार करती हुई देखी जाती हैं। 'ठीक प्रयोग से जनित नहीं है, अतः व्यभिचार है'—ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि इस विषय का निश्चय करने में प्रमाण नहीं है। और ऐसा भी देखा जाता है कि कामशास्त्र में कथित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्ति। तम्हा जं किंचि एयं। जं पि वेज्जगोदाहरणेण एत्थ जाइजुत्ति भणंति, सा वि य पयइनिग्गुणत्तणेण कामाण जीवियत्थिणो खग्गसिरच्छेयकिरियाविहाणजुत्तितुल्ल त्ति न बहुमया बुहाणं। एवं सुद्धसुयभावो विसुद्धदाणाइकिरियापसिद्धी य वभिचारिणो दीसंति। कामसत्थपराणं पि सुया अकुलउत्तया पयईए भुयंगपाया चेट्ठिएण। अणुरत्तदाराइं पि य निरवेक्खाणि दाणाइकिरियासु, तुच्छयाणि पयईए, अहियं विवज्जयकारीणि। अओ जं पि जंपियं 'अणुरत्तदारासुद्धसुएहिंतो य तयणुबद्धफलसारा संपज्जंति अत्थकाम' त्ति, तं पि य असमंजसमेव। एवं च ठिए समाणे जं पि भणियं 'विवज्जए उण तिण्हं पि विवज्जओ' त्ति इच्चेवमाइ, तं पि परिहरियमेव, वभिचारदोसेण समाणो खु एसो। इहइं न हि न कामसत्थभणियपओयन्नुणो वि एसो न होइ। अओ न तव्विवज्जयनिमित्तो खलु एसो, अवि य अकुसलाणुबंधिकम्मोदयनिमित्तो, विवज्जओ वि अकुसलाणुबंधिकम्मोदयनिमित्तो त्ति निरत्थयं कामसत्थं। तहा जं च भणियं 'एयं तु सोहणयरं, धम्मत्थाण साफल्लयानिदरिसणपरं काम-

---

यन्निति। तस्माद् यत्किञ्चिदेतत्। यदपि वैद्यकोदाहरणेनात्र जातियुक्ति भणन्ति, साऽपि च प्रकृतिनिर्गुणत्वेन कामानां जीवितार्थिनः खड्गशिरश्छेदक्रियाविधानयुक्तितुल्येति न बहुमता बुधानाम्। एवं शुद्धसुतभावो विशुद्धदानादिक्रियाप्रसिद्धिश्च व्यभिचारिणो दृश्येते। कामशास्त्रपराणामपि सुता अकुलपुत्रकाः प्रकृत्या भुजङ्गप्रायाश्चेष्टितेन। अनुरक्तदारा अपि च निरपेक्षा दानादिक्रियासु तुच्छाः प्रकृत्या, अधिक विपर्ययकारीणः। अतो यदपि जल्पितम् 'अनुरक्तदारशुद्धसुताभ्यां च तदनुबद्धफलसारौ सम्पद्येतेऽर्थकामौ' इति, तदपि चासमञ्जसमेव। एवं च स्थिते सति यदपि भणितं 'विपर्यये पुनस्त्रयाणामपि विपर्यय इति' इत्येवमादि, तदपि परिहृतमेव, व्यभिचारदोषेण समानः खल्वेषः। इह नहि न कामशास्त्रभणितप्रयोगज्ञस्यापि एष न भवति। अतो न तद्विपर्ययनिमित्तः खल्वेषः, अपि चाकुशलानुबन्धिकर्मोदयनिमित्तः, विपर्ययोऽपि अकुशलानुबन्धिकर्मोदयनिमित्त इति निरर्थकं कामशास्त्रम्। तथा यच्च भणितम् 'एतत्तु शोभनतरम्, धर्मार्थयोः साफल्यतानिदर्शनपरं

प्रयोग का ज्ञाता एक स्त्री के चित्त की सेवा करने में तत्पर होने पर भी दूसरा उसकी सेवा नहीं करता है और जो कामशास्त्र में कथित प्रयोग का ज्ञाता नहीं है, वह सेवा (भक्ति) करता है। अतः यह यत्किंचित् है। यद्यपि वैद्यक के उदाहरण से यहाँ जातियुक्त कहते हैं, वह जातियुक्त भी कामों के स्वभावतः निर्गुण होने से, जीवन चाहनेवालों के लिए तलवार से सिर काटने की क्रिया का विधान करने की युक्ति के समान है, अतः विद्वानों को यह मान्य नहीं है। इस प्रकार शुद्ध पुत्रभाव और विशुद्ध दानादि क्रियाओं की प्रसिद्धि व्यभिचारिणी दिखाई देती है। कामशास्त्रपरों के भी पुत्र व्यभिचारियों सदृश आचरण करने से स्वभावतः अकुलपुत्र ही हैं। पत्नी में अनुरक्त होकर भी व्यक्ति दानादि क्रियाओं से निरपेक्ष, प्रकृति से तुच्छ और अधिक विपरीत कार्यों को करनेवाले होते हैं। अतः जो कहा गया कि 'शुद्ध सुत और स्त्री में आसक्त उस सम्बन्धी फल और साररूप अर्थ और काम को प्राप्त करते हैं'—वह भी ठीक नहीं है। ऐसी स्थिति में यह जो कहा गया है : 'विपरीत स्थिति में धर्म, अर्थ और काम तीनों की विपरीतता होती है'— इत्यादि, वह भी निरस्त हो गया। इस संसार में ऐसा नहीं है कि कामशास्त्र में कथित प्रयोग को न जाननेवालों को यह न होता हो। अतः प्रयोग को न जानना यह निश्चित रूप से धर्म, अर्थ और काम की विपरीतता का कारण नहीं है, अपितु बँधे हुए अशुभ कर्मों का उदय ही इसका कारण है। विपरीत होने पर भी अशुभ कर्मों का उदय ही कारण होने से कामशास्त्र निरर्थक है तथा जो कहा गया है—धर्म और अर्थ की सफलता का निदर्शनपरक होने से यह कामशास्त्र शोभनतर है; क्योंकि काम के अभाव में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्थं ति, न जओ कामाभावे धम्मत्थाणमन्नं फलं, न य निष्फलत्ते तेसिं पुरिसत्थया, न य मोक्खफल-साहगत्तेण सफला इमे, जओ अलोइओ मोक्खो समाहिभावणाझाणपगरिसफलो य' त्ति, एयं पुण असोहणयरं। जओ पामागहियकंडुयणपाया कामा विरसयरा अवसाणे भावंधयारकारिणो असुह-कम्मफलभूया कहं धम्मत्थाण फलं ति, कहं वा तहाविहाणं धम्मत्थाण पुरिसत्थया, जे जणेंति कामं नासेंति उवसमं कुणंति अमित्तसंगमाणि अवणेंति सव्ववसायं संपाडयंति अणायइं अवपूरेंति सोयं विहेंति लाघवाइं ठावेंति अप्पच्चयं हरंति अप्पमायपाणे कारेंति अणुवाएयं ति। जं पि य 'सरीर-ट्ठिइहेउभावेण आहारसधम्माणो कामा परिहरियव्वा य एत्थ दोस' त्ति मोहदोसेण भणंति मंदबुद्धिणो, तं पि न हु बुहजणमणोहरं। जओ विणा वि एएहिं मुणियतत्ताणं पेच्छमाणाण जहाभावमेव बोंदि-विरत्ताण तोए सुद्धज्झाणाण रिसीण दीसइ सरीरठिई; सेवमाणाण वि य ते तज्जणियपावमोहेण अच्चंतसेवणपराणं खयाविरोगभावओ विणासो त्ति। ता कहं ते सरीरट्ठिइहेयवो, कहं वा आहार-सधम्माणो त्ति। न य एयसंगया दोसा अपरिच्चत्तेहिं एएहिं अभिन्ननिबंधणत्तेण तीरंति परिहरिउं।

कामशास्त्रमिति, न यतः कामाभावे धर्मार्थयोरन्यत् फलम्, न च निष्फलत्वे तयोः पुरुषार्थता, न च मोक्षफलसाधकत्वेन सफलाविमौ, यतोऽलौकिको मोक्षः समाधिभावनाध्यानप्रकर्षफलश्च' इति, एतत् पुनरशोभनतरम्। यतः पामागृहीतकण्डुयनप्रायाः कामा विरसतरा अवसाने भावान्धकार-कारिणोऽशुभकर्मफलभूताः कथं धर्मार्थयोः फलमिति, कथं वा तथाविधयोः धर्मार्थयोः पुरुषार्थता, यौ जनयतः कामान्, नाशयत उपशमम्, कुरुतोऽमित्रसंगमान्, अपनयतः सद्व्यवसायम्, सम्पाद-यतोऽनायतिम्, अवपूरयतः शोकम्, विधत्तो लाघवानि, स्थापयतोऽप्रत्ययम्, हरतोऽप्रमादप्राणान्, कारयतोऽनुपादेयमिति। यदपि च 'शरीरस्थितिहेतुभावेनाहारसधर्माणः कामाः परिहर्तव्याश्चात्र दोषः' इति मोहदोषेण भणन्ति मन्दबुद्धयः, तदपि न खलु बुधजनमनोहरम। यतो विनाप्येतैर्ज्ञात-तत्त्वानां पश्यतां यथाभावमेव बोन्दिविरक्तानां, तया शुद्धध्यानानामृषीणां दृश्यते शरीरस्थितिः, सेवमानानामपि च तान् तज्जनितपापमोहेनात्यन्तसेवनपराणां क्षयादिरोगभावतो विनाश इति। ततः कथं ते शरीरस्थितिहेतवः, कथं वाऽऽहारसधर्माण इति। न चैतत्संगता दोषा अपरित्यक्तैरेतैर-

---

धर्म और अर्थ का अन्य फल नहीं है और धर्म और अर्थ के निष्फल होने पर पुरुषार्थ नहीं रहता है, मोक्षफल का साधक होने से धर्म और अर्थ सफल हैं, ऐसा भी नहीं है; क्योंकि मोक्ष अलौकिक है। और समाधि-भावना तथा ध्यान की चरमसीमा का यह फल है—यह भी ठीक नहीं है; क्योंकि खुजली के हो जाने पर खुजलाने के समान काम अन्त में नीरस होते हैं, भावनान्धकार को करनेवाले तथा अशुभ कर्म के फलभूत हैं अतः धर्म और अर्थ का फल काम कैसे हो सकते हैं? उस प्रकार के धर्म और अर्थ में पुरुषार्थ कैसे हो सकता है जो काम को उत्पन्न करते हैं, शान्ति का नाश करते हैं, शत्रुओं का मेल कराते हैं, अच्छे कार्यों को दूर करते हैं, भावी फल की प्राप्ति होने का सम्पादन करते हैं, शोक की पूर्ति करते हैं, लघुता को धारण करते हैं, अविश्वास की स्थापना करते हैं, अप्रमादी प्राणों का हरण करते हैं, और ग्रहण न करने योग्य को कराते हैं (ऐसे उस तरह के धर्म और अर्थ में पुरुषार्थता कैसे सम्भव है ?)। शरीर की स्थिति के कारण आहार के तुल्य काम का परिहार करने में दोष होता है—ऐसा मोह के दोष से जो मन्दबुद्धि वाले लोग कहते हैं वह (कथन) भी विद्वानों के लिए मनोहर नहीं है; क्योंकि इनके बिना भी तत्त्वों को जाननेवाले, सही रूप से देखनेवाले, शरीर से विरक्त रहनेवाले तथा शुद्ध ध्यान करनेवाले ऋषियों के शरीर की स्थिति दिखाई देती है और उनका सेवन करने पर भी उससे उत्पन्न पाप के कारण मोह से अत्यन्त सेवन करने में रत रहनेवालों का, क्षय आदि रोग के होने से, विनाश होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न खलु मोत्तूण मोहं कामाणमणुवसमाईण य अन्नं निमित्तं ति चिंतेह चित्तेण। एवंवट्ठिए समाणे 'न हि हरिणा विज्जंति त्ति जवा न पइरिज्जंति' एवमादि पहसणप्पायं कामसत्थवयणं। तम्हा न कामफलाण धम्मत्थाण पुरिसत्थया, अवि य मोक्खफलाणमेव। न य अलोइओ मोक्खो; जओ विसिट्ठमुणिलोयलोइओ, रहिओ जम्माइएहिं, वज्जिओ आवाहाए, समत्ती सव्वकज्जाणं, पगरिसो सुहस्स। समाहिभावणाझाणादओ वि न हि न धम्मसरूवा, अवि य ते चेव भावधम्मो। इयरो वि निरीहस्स तप्फलो चेव हवइ, अन्नहा 'गरहियाणि इट्ठापूयाणि' त्ति भावियव्वं सत्थवयणं। न य कामा अणिंदिया, पयट्टंति पयईए पसिद्धा तिरियाणं पि मंगुला सरूवेणं। ता किमेएसिं सत्थेण। जं पि भणियं 'बालासंपओओ पराहीणो त्ति उवायं अवेक्खइ,उवायपडिवत्ती य कामसत्थाओ,तिरियाणं तु अणावरिया इत्थिजाई रिउकाले य नियमिया पवित्ती अबुद्धिपुव्वा या त्ति, एयं पि मोहपिसुणयं; जओ उवाएया चेव न हवंति कामा असुंदरा पयईए विडंबणा जणाण विसोवमा परिभोए वच्छला कुचेट्ठियस्स त्ति दंसियं मए। अओ अदत्तादाणगहणविसयसत्थकप्पं खु एयं ति। करेंतसुणेंतयाणमन्नाणपयासणपरं कामसत्थं।

भिन्ननिबन्धनत्वेन शक्यन्ते परिहर्तुम्। न खलु मुक्त्वा मोहं कामानामनुपशमादीनां चान्यन्निमित्तमिति चिन्तयत चित्तेन। एवमवस्थिते सति 'नहि हरिणा विद्यन्ते इति यवा न प्रतिरियन्ते' एवमादि प्रहसनप्रायं कामशास्त्रवचनम्। तस्मान्न कामफलयोर्धर्मार्थयोः पुरुषार्थता, अपि च मोक्षफलयोरेव। न चालौकिको मोक्षः, यतो विशिष्टमुनिलोकलोकितो रहितो जन्मादिभिः, वर्जित आबाधया, समाप्तिः सर्वकार्याणाम्, प्रकर्षः सुखस्य। समाधिभावनाध्यानादयोऽपि न हि न धर्मस्वरूपाः, अपि च त एव भावधर्मः। इतरोऽपि निरीहस्य तत्फल एव भवति, अन्यथा 'गर्हिते इष्टापूर्ते' इति भावयितव्यं शास्त्रवचनम्। न च कामा अनिन्दिताः, प्रवर्तन्ते प्रकृत्या प्रसिद्धाः तिरश्चामपि मङ्गलाः (अशुभाः) स्वरूपेण। ततः किमेतेषां शास्त्रेण। यदपि भणितं 'बालासम्प्रयोगः पराधीन इत्युपायमपेक्षते उपायप्रतिपत्तिश्च कामशास्त्राद्, तिरश्चां तु अनावृता स्त्रीजाति ऋतुकाले च नियमिता प्रवृत्तिरबुद्धिपूर्वा च' इति, एतदपि मोहपिशुनकम्, यत उपादेया एव न भवन्ति कामा असुन्दराः प्रकृत्या विडम्बना जनानां विषोपमाः परिभोगे वत्सलाः कुचेष्टितस्येति दर्शितं मया। अतोऽदत्तादानग्रहणविषयशास्त्रकल्पं खल्वेतदिति। कुर्वच्छृण्वतामज्ञानप्रकाशनपरं कामशास्त्रम्। भणितं च

अतः काम देह की स्थिति के कारण कैसे हो सकते हैं और कैसे वे (काम) आहार के समान धर्मवाले हो सकते हैं? कामी व्यक्तियों द्वारा कामसंगत दोष अभेद सम्बन्ध होने से नहीं छोड़े जा सकते हैं। मोह को छोड़कर काम के शान्त न होने का अन्य कोई कारण नहीं है—ऐसा चित्त से विचार करो। ऐसा निश्चय हो जाने पर 'हरिणों के होने की वजह से जो न बोये जायँ' ऐसा नहीं होता है। इस प्रकार के कामशास्त्र के वचन उपहास प्राय हैं। अतः धर्म और अर्थ की पुरुषार्थता कामरूप फल में नहीं; अपितु मोक्षफल में ही है। मोक्ष अलौकिक नहीं है; क्योंकि विशिष्ट मुनिजन ने उसका दर्शन किया है, जन्मादि से रहित है, आबाधा से रहित है, समस्त कार्यों की समाप्ति है और सुख की चरमसीमा है। समाधि, भावना और ध्यान आदि धर्म के स्वरूप न हों—ऐसा नहीं है; अपितु वे ही भावधर्म हैं। फिर यह बात भी है कि इच्छारहित के वही फल होता है, अन्यथा इष्ट के अपूरक और निन्दित हैं'— इस प्रकार की भावना करना चाहिए। काम अनिन्दित हों ऐसा नहीं है। प्रकृति से प्रसिद्ध ये काम तिर्यंचों के भी स्वरूप से अशुभरूप प्रवृत्ति करते हैं। अतः इन तिर्यंचों के लिए शास्त्र से क्या। यह जो कहा गया है कि 'मूर्खों का प्रयोग पराधीन है, अतः उपाय की अपेक्षा है और उपाय का ज्ञान कामशास्त्र से होता है, तिर्यंचों के तो स्त्रीजाति नग्न है और ऋतुकाल में नियमित रूप से अबुद्धिपूर्वक प्रवृत्ति होती है'—यह कहना भी मोह का सूचक है, क्योंकि काम ग्रहण करने योग्य नहीं ठहरते हैं, काम स्वभावतः असुन्दर हैं, भोग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भणियं च सुद्धचित्तेहिं—

नं नाम होइ सत्थं जं हियमत्थं जणस्स दंसेइ।
जं पुण अहियं ति सया तं नणु कत्तोच्चयं सत्थं॥ ९९२॥
अहिया तओ पवित्ती होइ अकज्जम्मि मंदबुद्धीणं।
असुहोवएसरूवं जत्तेण तयं पयहियव्वं॥ ९९३॥
इहरा पज्जलइ च्चिय वम्महजलणो जणस्स हिययम्मि।
किं पुण अणत्थपंडियकुकव्वहविहोमिओ संतो॥ ९९४॥
ता ज कामुद्दीरणसमत्थमेत्थं न तं बुहजणेण।
सुमिणे वि जंपियव्वं पसंसियव्वं च दुव्वयणं॥ ९९५॥
पसमाइभावजणयं हियमेगंतेण सव्वसत्ताण।
निउणेण जंपियव्वं पसंसियव्वं च सुविसुद्धं॥ ९९६॥

एवं च ठिए समाणे अलं दुव्वयणसंगयाए कामसत्थचिंताए त्ति।

शुद्धचित्तैः—

तन्नाम भवति शास्त्रं यद् हितमर्थं जनस्य दर्शयति।
यत् पुनरहितमिति सदा तन्ननु कुतस्त्यं शास्त्रम्॥९९२॥
अहिता ततः प्रवृत्तिर्भवत्यकार्ये मन्दबुद्धीनाम्।
अशुभोपदेशरूपं यत्नेन तत् प्रहातव्यम्॥९९३॥
इतरथा प्रज्वलत्येव मन्मथज्वलनो जनस्य हृदये।
किं पुनरनर्थपण्डितकुकाव्यहविर्हुतः सन्॥९९४॥
ततो यत् कामोदीरणसमर्थमत्र न तद् बुधजनेन।
स्वप्नेऽपि जल्पितव्यं प्रशंसितव्यं च दुर्वचनम्॥ ९९५॥
प्रशमादिभावजनकं हितमेकान्तेन सर्वसत्त्वानाम्।
निपुणेन जल्पितव्यं प्रशंसितव्यं च सुविशुद्धम्॥९९६॥

एवं च स्थिते सत्यलं दुर्वचनसङ्गतया कामशास्त्रचिन्तयेति।

में विष के समान होने के कारण मनुष्यों का उपहास करते हैं, कुचेष्टा करनेवालों के प्रिय हैं—ऐसा मैंने दर्शाया ही है। अतः यह बिना दिये ग्रहण करने रूप विषयवाले शास्त्र (चौर्यशास्त्र) के समान है। कामशास्त्र की रचना करना, सुनना अज्ञान-प्रकाशनपरक है। शुद्धचित्तवालों ने कहा है –

शास्त्र वह होता है जो लोगों को हितकारी प्रयोजन दिखलाता हो। जो अहित प्रयोजन को दिखलाये वह निश्चय से शास्त्र कैसे हो सकता है? अहितकारी प्रयोजन दिखलाने से मन्दबुद्धिवालों की प्रवृत्ति अकार्य में होती है अतः उस अशुभोपदेशरूप अहितकारी प्रयोजन का यत्न से नाश करना चाहिए। दूसरे प्रकार से, लोगों के हृदय में कामाग्नि प्रज्वलित होती ही है। कुकाव्यरूपी हवि का होम कर अनर्थकारी पण्डित होने से क्या लाभ? अतः जो कुवचन काम को उत्पन्न करने में समर्थ हो उसे विद्वानों को स्वप्न में भी नहीं बोलना चाहिए और न ही उसकी प्रशंसा करनी चाहिए। प्रशम आदि भावों का जनक एकान्त रूप से सभी प्राणियों का हितकारी तथा सुविशुद्ध वचन ही निपुण व्यक्ति को कहना चाहिए और उसीकी प्रशंसा करनी चाहिए॥९९२—९९६॥

ऐसा स्थित होने पर दुर्वचन से युक्त कामशास्त्र का चिन्तन करना व्यर्थ है।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एयं सोऊण विम्हिया असोयादी। चिंतियं च णेहि—अहो विवेगो कुमारस्स, अहो भावणा, अहो भवविराओ, अहो कयन्नुया। सव्वहा न ईइसो मुणिजणस्स वि परिणामो होइ, किं तु फुडं पि जंपमाणो दूमेइ एस अम्हे त्ति। चिंतिऊण जंपियं असोएण—कुमार, एवमेयं, किं तु सव्वमेव लोयमग्गाईयं जंपियं कुमारेण। ता अलमिमीए अइपरमत्थचिंताए। न अणासेविए लोयमग्गे इमीए वि अहिगारो त्ति। ता लोयमग्गं पडुच्च किंपरं पुण कामसत्थं ति साहेउ कुमारो। कामंकुरेण भणियं—सोहणं भणियं असोएण। ललियंगएण भणियं—न असोओ असोहणं भणिउं जाणइ। कुमारेण भणियं—भद्द, अपरमत्थपिच्छो पाएण लोओ भिन्नरुई य। ता न तंमग्गेण इमस्स अहं किंचि परयं अवेमि। सव्वहा कंदप्पियाण बालाणमविणोयविणोयपायं एयं, जओ कामसुहाइं पि कम्मपरिणामनिबंधणाइं जीवाणं, वउणे य तम्मि न परमत्थेण इमिणा पओयणं ति। उत्तरपयाणासामत्थेण 'एवमेयं' ति अब्भुवगयं असोआईहिं।

अइक्कंता कइइ दियहा। आलोचियमणेहिं। तवस्सिप्पाओ कुमारो, कहं अम्हारिसेहिं विसएसु

एतत् श्रुत्वा विस्मिता अशोकादयः। चिन्तितं च तैः—अहो विवेकः कुमारस्य, अहो भावना, अहो भवविरागः, अहो कृतज्ञता। सर्वथा नेदृशो मुनिजनस्यापि परिणामो भवति, किन्तु स्पष्टमपि जल्पन् दुनोत्येषोऽस्मानिति। चिन्तयित्वा जल्पितमशोकेन—कुमार! एवमेतद्, किन्तु सर्वमेव लोकमार्गातीतं जल्पितं कुमारेण। ततोऽलमनयाऽतिपरमार्थचिन्तया। नानासेविते लोकमार्गे अस्या अप्यधिकार इति। ततो लोकमार्गं प्रतीत्य किंपरं पुनः कामशास्त्रमिति कथयतु कुमारः। कामाङ्कुरेण भणितम् शोभनं भणितमशोकेन। ललिताङ्गेन भणितम्—नाशोकोऽशोभनं भणितुं जानाति। कुमारेण भणितम् भद्र! अपरमार्थप्रेक्षः प्रायेण लोको भिन्नरुचिश्च। ततो न तन्मार्गेण स्यास्य किमपि परतां (तात्पर्यम्) अवैमि। सर्वथा कान्दर्पिकानां बालानामविनोदविनोदप्रायमेतद्, यतः कामसुखान्यपि कर्मपरिणामनिबन्धनानि जीवानाम्, विगुणे च तस्मिन् न परमार्थेनानेन प्रयोजनमिति। उत्तरप्रदानासामर्थ्येन 'एवमेतद्' इत्यभ्युपगतमशोकादिभिः।

अतिक्रान्ताः कतिचिद् दिवसाः। आलोचितमेभिः। तपस्विप्रायः कुमारः, कथमस्मादृशै-

---

यह सुनकर अशोक आदि विस्मित हुए और उन्होंने सोचा—कुमार का विवेक, भावना, संसार के प्रति विराग (और) कृतज्ञता आश्चर्ययुक्त है। इस प्रकार का परिणाम सर्वथा मुनिजनों का भी नहीं होता है; किन्तु स्पष्ट कहते हुए भी यह हमारे लिए दुःखी करता है, ऐसा सोचकर अशोक ने कहा—'कुमार! यह सही है; किन्तु कुमार ने सभी संसारमार्ग से अतीत कहा है अतः इस परमार्थ के अतिचिन्तन से बस। अनेक प्रकार से सेवित लोकमार्ग में इसका भी अधिकार है। अतः लोकमार्ग की अपेक्षा कामशास्त्र क्या है, इस विषय में कुमार कहें। कामांकुर ने कहा—'अशोक ने ठीक कहा।' ललितांग ने कहा—'अशोक ऐसा कथन तो जानता ही नहीं है जो ठीक न हो।' कुमार ने कहा—'भद्र! सामान्यतः लोक परमार्थ का न देखनेवाला और भिन्न रुचिवाला होता है। अतः उस मार्ग से मैं इसका कुछ भी तात्पर्य नहीं जानता हूँ। कामियों का यह विनोद सर्वथा बच्चों के विनोद के समान है; क्योंकि काम से सुखी भी जीव कर्म के परिणाम से बँधे हुए हैं। काम में कोई गुण न होने से परमार्थ से इसका कोई प्रयोजन नहीं है। उत्तर प्रदान करने की सामर्थ्य न होने से 'यह ठीक है'—इस प्रकार अशोक आदि ने स्वीकार कर लिया।

कुछ दिन बीत गये। इन लोगों ने विचार-विमर्श किया। कुमार तपस्वी जैसे हैं, हम जैसे लोग विषयों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पयट्टाविउं तीरइ। तहावि अत्थि एक्को उवाओ। उवरोहसीलो खु एसो, पडिवन्ना य अम्हे इमेण मित्ता। ता अब्भत्थेम्ह एयं कलत्तसंगहमंतरेण, कयाइ संपाडेइ अम्हाणं समीहियं ति। ठाविऊण सिद्धंतं समागए अवसरे भणियं असोएण—भो कुमार, पुच्छामि अहं भवंतं, किमेत्थ जीवलोए सुपुरिसेण मित्तवच्छलेण होयव्वं किं वा नहि। कुमारेण भणियं—भो साहु पुच्छियं, साहेमि भवओ। एत्थ खलु तिविहो मित्तो हवइ। तं जहा। अहमो मज्झिमो उत्तिमो त्ति। जो खलु संजोइओ अप्पणा दिस्समाणो अत्ताहियं अणुयत्तिज्जमाणो पयईए सेविज्जमाणो पइदिणं लालिज्जमाणो जत्तेण विलोट्टए विहुरम्मि, नावेक्खइ सुकयाइं, न रक्खइ वयणिज्जं, परिच्चयइ खणेण; एस एयारिसो अणुसमयसेवियपरिच्चाई नाम जहन्नमित्तो। जो उण जहाकहंचि संगओ दिस्समाणो अत्तबुद्धीए अणुयत्तिज्जमाणो अजत्तेण सेविज्जमाणो विभाए लालिज्जमाणो ऊसवाइएसु तक्खणं न विसंवयइ, विहुरे अवेक्खइ ईसि सुकयाइं, रक्खइ मणागं वयणिज्जं, परिच्चयइ विलावपुव्वयं विलंबेण; एस एयारिसो छणसेवियपरिच्चाई नाम मज्झिममित्तो। जो उण अजत्तेण दिट्ठाभट्ठो बहु मन्नए सुकयं,

---

विषयेषु प्रवर्तयितुं शक्यते। तथाऽप्यस्त्येक उपायः। उपरोधशीलः खल्वेषः, प्रतिपन्नानि च वयमनेन मित्राणि। ततोऽभ्यर्थयामहे एतं कलत्रसंग्रहमन्तरेण, कदाचित् सम्पादयत्यस्माकं समीहितमिति। स्थापयित्वा सिद्धान्तं समागतेऽवसरे भणितमशोकेन—भोः कुमार! पृच्छाम्यहं भवन्तम्, किमत्र जीवलोके सुपुरुषेण मित्रवत्सलेन भवितव्यं किं वा नहि। कुमारेण भणितम्—भोः साधु पृष्टम्, कथयामि भवतः। अत्र खलु त्रिविधं मित्रं भवति तद्यथा, अधमं मध्यमं उत्तममिति। यः खलु संयोजित आत्मना दृश्यमान आत्माधिकमनुवृत्यमानः प्रकृत्या सेव्यमानः प्रतिदिवसं लाल्यमानो यत्नेन विलुट्यति (परावर्तते) विधुरे, नापेक्षते सुकृतानि, न रक्षति वचनीयम्, परित्यजति क्षणेन, एष एतादृशोऽनुसमयसेवितपरित्यागी नाम जघन्यमित्रम्। यः पुनर्यथाकथंचित् संगतो दृश्यमान आत्मबुद्ध्याऽनुवृत्यमानोऽयत्नेन सेव्यमानो विभागे लाल्यमान उत्सवादिषु तत्क्षणं न विसंवदति, विधुरे अपेक्षते ईषत् सुकृतानि, रक्षति मनाग् वचनीयम्, परित्यजति विलापपूर्वकं विलम्बेन; एष एतादृशः क्षणसेवितपरित्यागी नाम मध्यममित्रम्। यः पुनरयत्नेन दृष्टापृष्टो बहु मन्यते सुकृतम्, उपागच्छति,

---

में कैसे प्रवृत्त करा सकते हैं? तथापि एक उपाय है। यह अनुग्रह करने के स्वभाववाले हैं और उन्होंने हम लोगों को मित्र बनाया है। अतः विवाह करने के लिए इनसे प्रार्थना करते हैं, कदाचित् हमारे इच्छित कार्य को पूर्ण कर दें। इस प्रकार सिद्धान्त स्थापित कर अवसर आने पर अशोक ने कहा—'हे कुमार! मैं आपसे पूछता हूँ, इस संसार में अच्छे आदमी के लिए मित्र प्रेमी होना चाहिए अथवा नहीं?' कुमार ने कहा—'हे मित्र! ठीक पूछा, आपसे कहता हूँ। इस संसार में तीन प्रकार के मित्र होते हैं। वे इस प्रकार हैं—अधम, मध्यम, उत्तम। जो निश्चित रूप से अपने से मिला हुआ होता है, अपने से अधिक दिखाई देता है, स्वभाव से अनुसरण करनेवाला होता है, प्रतिदिन सेवा किया जाता है, यत्न से लालन किया जाता है, दुःख के समय में पलट जाता है, सुकृतों की अपेक्षा नहीं करता है, निन्दा से नहीं बचता है और क्षण भर में त्याग देता है—यह इस प्रकार से प्रति समय सेवित हो कर परित्याग करनेवाला जघन्य मित्र है। जो जिस किसी प्रकार सम्बन्धित दिखाई देता है, अपनी बुद्धि से अनुसरण करता है, अयत्नपूर्वक सेवा किया जाता है, अलगाव होने पर लालित किया जाता है, उत्सवादि में उसी क्षण विसंवाद नहीं करता है, दुःख के समय में कुछ अच्छा कार्य करने की अपेक्षा करता है, कुछ निन्दा से बचाता है तथा विलापपूर्वक विलम्ब से छोड़ता है—यह इस प्रकार क्षणसेवितपरित्यागी नाम का मध्यममित्र है। जो बिना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उवागच्छए मेत्ति, पयट्टए उवयारे, मोयावए दुहाओ, जणेइ गोरवं, वड्ढेइ माणं, करेइ संपयं, विहेइ सोक्खं, न परिच्चयइ आवयाए; एस एयारिसो जोक्कारमेत्तेण सेवियापरिच्चाई नाम उत्तिममित्तो त्ति। एवंवट्ठिए समाणे सुपुरिसेणालोचिऊण नियमईए सव्वहा उत्तिममित्तवच्छलेण होयव्वं ति। कामंकुरेण भणियं— भो को उण इहाहिप्पाओ। पसिद्धमेवेयं, जं जहन्नमज्झिमे चइऊण उत्तिमो सेविज्जइ। कुमारेण भणियं—नणु एवमेव एत्थाहिप्पाओ, जं जहन्नमज्झिमे चइऊण उत्तिमो सेविज्जइ त्ति। ललियंगएण भणियं—भो न एयमुज्जुयं, गंभीरं खु एयं न विसेसओ अविवरियं जाणीयइ। ता विवरेहि संपयं, के उण इमे तिण्णि मित्ता। कुमारेण भणियं—भो जइ नावगयं तुम्हाणं, ता सुणह संपयं। एत्थ खलु परमत्थमित्ते पडुच्च पसिणो उत्तरं च जुज्जइ त्ति जंपियं मए। पसिद्धं तु लोइयं, को वा सचेयणो तयत्थं न याणइ। ता इमे मित्ता देहसयणधम्मा। तत्थ जहन्नमित्तो देहो, मज्झिमो सयणो, उत्तमो धम्मो त्ति। जेण देहो तहा तहोवचरिज्जमाणो वि अणुसमयमेव दंसेइ वियारे, अहियपक्खसंगयं अणुयत्तइ जरं, चरिमावयाए य उज्झइ निरालंबं ति; एस जहन्नमित्तो।

मैत्रीम्, प्रवर्तते उपकारे, मोचयति दुःखात्, जनयति गौरवम्, वर्धयति मानम्, करोति सम्पदम्, विदधाति सौख्यम्, न परित्यजत्यापदि, एष एतादृशो जयकारमात्रेण सेवितापरित्यागी नामोत्तममित्रमिति। एवमवस्थिते सति सुपुरुषेणालोच्य निजमत्या सर्वथोत्तममित्रवत्सलेन भवितव्यमिति। कामाङ्कुरेण भणितम्—भो कः पुनरिहाभिप्रायः। प्रसिद्धमेवैतत्, यद् जघन्यमध्यमौ त्यक्त्वोत्तमः सेव्यते। कुमारेण भणितम्—नन्वेवमेवात्राभिप्रायः, यद् जघन्यमध्यमौ त्यक्त्वोत्तमः सेव्यते इति। ललिताङ्गेन भणितम्—भो! नैतद् ऋजुकम्, गम्भीरं खल्वेतद्, न विशेषतोऽविवृतं ज्ञायते। ततो विवृणु साम्प्रतम्, कानि पुनरिमानि त्रीणि मित्राणि। कुमारेण भणितम्—भो! यदि नावगतं युष्माकम्, ततः शृणुत साम्प्रतम्। अत्र खलु परमार्थमित्राणि प्रतीत्य प्रश्न उत्तरं च युज्यते इति जल्पितं मया। प्रसिद्धं तु लौकिकम्, को वा सचेतनस्तदर्थं न जानाति। तत इमानि मित्राणि देहस्वजनधर्माः। तत्र जघन्यमित्रं देहः, मध्यमं स्वजनः, उत्तमं (मित्रं) धर्म इति। येन देहस्तथा तथोपचर्यमाणोऽपि अनुसमयमेव दर्शयति विकारान्, अधिकपक्षसङ्गतमनुवर्तते जराम्, चरमापदि

प्रयत्न के ही दिखाई देता है, बिना पूछे ही अच्छे कार्यों का आदर करता है, मैत्री के समीप आता है, उपकार में प्रवृत्ति लगाता है, दुःख से छुड़ाता है, गौरव को उत्पन्न करता है, मान को बढ़ाता है, सम्पदा को करता है, सुख को प्रदान करता और आपत्ति में त्यागता नहीं है—यह इस प्रकार का जयकार मात्र से सेवित त्याग न करनेवाला उत्तम मित्र है। ऐसा स्थित होने पर सुपुरुष को अपनी बुद्धि से विचार कर सर्वथा उत्तममित्र से प्रेम करनेवाला होना चाहिए। कामांकुर ने कहा—'हे मित्र! यहाँ क्या अभिप्राय है, यह प्रसिद्ध ही है कि जघन्य और मध्यम को छोड़कर उत्तम का सेवन किया जाता है।' कुमार ने कहा 'निश्चित रूप से यही यहाँ अभिप्राय है कि जघन्य और मध्यम को छोड़कर उत्तम का सेवन किया जाता है।' ललितांग ने कहा—'अरे यह सरल नहीं है, यह गम्भीर है, विशेषरूप से ढँका हुआ नहीं जाना जाता है। अतः इस समय वर्णन करें, स्पष्ट करें, ये कौन तीन मित्र हैं?' कुमार ने कहा—'हे मित्रो! यदि तुम लोगों ने नहीं जाना तो अब सुनो। यहाँ परमार्थ मित्र की अपेक्षा प्रश्न करना और उत्तर देना ठीक है, ऐसा मैंने कहा था। लौकिक तो प्रसिद्ध है। कौन सचेतन व्यक्ति उस अर्थ को नहीं जानता है? तो ये मित्र देह, स्वजन और धर्म हैं। उनमें जघन्यमित्र देह है, मध्यममित्र स्वजन है, उत्तममित्र धर्म है; क्योंकि देह इस प्रकार सेवा किये जाने पर भी प्रति समय विकारों को दर्शाता है, अधिक पक्षों से युक्त होने पर बुढ़ापे का अनुसरण करता है, चरम आपत्ति में बिना सहारे के छोड़ जाता है, (अतः) यह जघन्यमित्र है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयणो उण ममत्ताणुरूवं करेइ पडिममत्तं, किलिस्सइ गिलाणाइकज्जे, परिच्चयइ गयजीयसारं, सुमरइ य पत्थावेसु, एस मज्झिममित्तो त्ति। धम्मो उण संगओ जहाकहंचि वच्छलो एगंतेण अविसाई भएसु निव्वाहए मित्तयं ति; एस उत्तमो। एवं च नाऊण अधुवे विसयसोक्खे असारे पयईए मोहणे परमत्थस्स दारुणे विवाए अवहीरिए धीरेहिं, पाविए माणुसत्ते उत्तमे भवाण दुल्लहे भवाड-वीए सुखेत्ते गुणधणाण साहए निव्वाणस्स उज्झिऊण मोहं चिंतिऊणायइं अचिंतचिंतामणिसन्निहे वीयरायप्पणीए उवादेए नियमेण होइ वच्छला सप्पुरिससेविए उत्तममित्ते धम्मे त्ति। एयं सुणमाणाण तहाभव्वयाए असोयाईण विचित्तया ए कम्मपरिणामस्स कुमारसन्निहाणसामत्थेण विसुद्धयाए जोयाण उक्कडयाए वीरियस्स वियंभिओ कुसलपरिणामो, वियलिओ किलिट्ठकम्मरासी, अवगया मोह-वासणा, तुट्टा असुहाणुबंधा, जाओ कम्मगंठिभेओ, खओवसममुवगयं मिच्छत्तं, आविहूओ सम्मत्त-परिणामो। तओ समुप्पन्नसंवेगेण जंपियं असोएण— कुमार, एवमेयं, न एत्थ संदेहो, सोहणं समाइट्ठं कुमारेणं। कामंकुरेण भणियं— सोहणाओ वि सोहणं। अहवा इयमेव एक्कं सोहणं, नत्थि अन्नं

चोज्झति निरालम्बमिति, एतद् जघन्यमित्रम्। स्वजनः पुनर्ममत्वानुरूपं करोति प्रतिममत्वम्, क्लिश्यति ग्लानादिकार्ये, परित्यजति गतजीवितसारम्, स्मरति च प्रस्तावेषु, एतद् मध्यममित्र-मिति। धर्मः पुनः सङ्गतो यथाकथंचिद् वत्सल एकान्तेनाविषादी भयेषु निर्वाहयति मित्रतामिति, एतद् उत्तमम्। एवं च ज्ञात्वाऽध्रुवाणि विषयसौख्यान्यसाराणि प्रकृत्या मोहनानि परमार्थस्य दारुणानि विपाकेऽवधीरितानि धीरैः, प्राप्ते मानुषत्वे उत्तमे भवानां दुर्लभे भवाटव्यां सुक्षेत्रे गुण-धान्यानां साधके निर्वाणस्य उज्झित्वा मोहं चिन्तयित्वाऽऽयतिमचिन्त्यचिन्तामणिसन्निभे वीतराग-प्रणीते उपादेये नियमेन भवत वत्सलाः सत्पुरुषसेविते उत्तममित्रे धर्म इति। एतच्छृण्वतां तथाभव्य-तयाऽशोकादीनां विचित्रतया कर्मपरिणामस्य कुमारसन्निधानसामर्थ्येन विशुद्धतया योगानामुत्कट-तया वीर्यस्य विजृम्भितः कुशलपरिणामः, विचलितः क्लिष्टकर्मराशिः, अपगता मोहवासना त्रुटिता अशुभानुबन्धाः, जातः कर्मग्रन्थिभेदः क्षयोपशममुपगतं मिथ्यात्वम्, आविर्भूतः सम्य-क्त्वपरिणामः। ततः समुत्पन्नसंवेगेन जल्पितमशोकेन—कुमार! एतमेतद्, नात्र सन्देहः, शोभनं समादिष्टं कुमारेण। कामाङ्कुरेण भणितम्—शोभनादपि शोभनम्। अथवेदमेवैकं शोभनम्

स्वजन ममत्व के अनुरूप प्रतिममत्व को करता है, बीमारी आदि के कार्य में दुःखी होता है, प्राणों के चले जाने पर छोड़ देता है, प्रस्तावों (प्रसंगों) में स्मरण करता है (अतः) यह मध्यममित्र है। जिस किसी प्रकार मिला हुआ धर्म एकान्त रूप से प्रेमी, भयों में विषाद न करनेवाला परममित्रता का निर्वाह करता है (अतः) यह उत्तममित्र है। इस प्रकार स्वभावतः विषयसुखों को अनित्य, असार, मोहित करनेवाले, परिणाम में दारुण, और धीरों के द्वारा तिरस्कृत जानकर उत्तम भवों में संसाररूपी वन में दुर्लभ, गुणरूप धान्यों के लिए सुक्षेत्र, निर्वाण के साधक मनुष्य-भव के प्राप्त होने पर मोह को छोड़कर, भावी फल का विचार कर, अचिन्तनीय चिन्तामणि के समान, वीतराग के द्वारा प्रणीत, नियमपूर्वक उपादेय, और सत्पुरुषों से सेवित उत्तममित्ररूप धर्म में आप लोगों को प्रेमयुक्त होना चाहिए।' यह सुनकर अशोक आदि की वैसी भव्यता, कर्मों के परिणाम की विचित्रता, कुमार के समीप होने की सामर्थ्य, योगों की विशुद्धता और शक्ति की उत्कटता से शुभ परिणाम बढ़ा, दुःख देनेवाले कर्मों की राशि विचलित हुई, मोह का संस्कार नष्ट हुआ, अशुभ से सम्बन्ध छूटे। कर्म की गाँठ खुल गयी, मिथ्यात्व का क्षयोपशम हुआ और सम्यक्त्व का परिणाम प्रकट हुआ। अनन्तर जिसे वैराग्य उत्पन्न हुआ है ऐसे अशोक ने कहा—'कुमार, यह सही है, इसमें सन्देह नहीं है, कुमार ने ठीक ही कहा।' कामांकुर बोला—'शोभन से भी अधिक शोभन है, अथवा एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोहणं ति। ललियंगएण भणियं—किं बहुणा, अन्नाणनिद्दापसुत्ता पडिबोहिया अम्हे कुमारेण, दंसियाइं हेओवादेयाइं। ता पयट्टम्ह सहिए, संपाडेमो कुमारसासणं। असोएण भणियं—कुमार, साहु जंपियं ललियंगएण; ता समाइसउ कुमारो, जमम्हेहि कायव्वं ति। कुमारेण भणियं—भो संखेवओ ताव एयं। उज्झियव्वो विसयराओ, चिंतियव्वं भवसरूवं, वज्जियव्वा कुसंसग्गी, सेवियव्वा साहुणो; तओ जहासतीए दाणसीलतवभावणापहाणेहिं होयव्वं ति। असोयाईहिं भणियं—साहु कुमार साहु, पडिवन्नमिणमम्हेहिं। कुमारेण भणियं—भो धन्ना खु तुब्भे; पावियं तुम्हेहिं फलं मणुयजम्मस्स। तेहिं भणियं—कुमार साहु, एवमेयं; धन्ना खु अम्हे, न खलु अहन्नाण कुमारदंसणं संपज्जइ। एवं चाहिणंदिऊण कुमारं संपूइया विसेसेण कुमारेण उचियाए वेलाए गया सट्ठाणाइं असोयाई। पारद्धं जहोचियमणुट्ठाणमेएहिं। अइक्कंता कइइ दियहा।

एत्थंतरम्मि समागओ महुसमओ, वियंभिया वणसिरी, मंजरिओ चूयनियरो, कुसुमिया तिलयाई, उल्लसिया अइमुत्तया, पवत्तो मलयाणिलो, मुइयं भमरजालं, पसरिओ परहुयारवो; जहिं

नास्त्यन्यत् शोभनमिति। ललिताङ्गेन भणितम्—किं बहुना, अज्ञाननिद्राप्रसुप्ताः प्रतिबोधिता वयं कुमारेण दर्शितानि हेयोपादेयानि। ततः प्रवर्तामहे स्वहिते, सम्पादयामः कुमारशासनम्। अशोकेन भणितम्—कुमार! साधु जल्पितं ललिताङ्गेन, ततः समादिशतु कुमारो यदस्माभिः कर्तव्यमिति। कुमारेण भणितम्—भोः संक्षेपतस्तावदेतद्। उज्झितव्यो विषयरागः, चिन्तयितव्यं भवस्वरूपम्, वर्जयितव्यः कुसंसर्गः, सेवितव्याः साधवः, ततो यथाशक्ति दानशीलतपोभावनाप्रधानैर्भवितव्यमिति। अशोकादिभिर्भणितम्—साधु कुमार! साधु, प्रतिपन्नमिदमस्माभिः। कुमारेण भणितम्—भो धन्या खलु यूयम्, प्राप्तं युष्माभिः फलं मनुजजन्मनः। तैर्भणितम्—कुमार! साधु, एवमेतद्, धन्याः खलु वयम्, न खल्वधन्यानां कुमारदर्शनं सम्पद्यते। एवं चाभिनन्द्य कुमारं सम्पूजिता विशेषेणोचितायां वेलायां गताः स्वस्थानान्यशोकादयः। प्रारब्धं यथोचितमनुष्ठानमेतैः। अतिक्रान्ताः कतिचिद् दिवसाः।

अत्रान्तरे समागतः मधुसमयः, विजृम्भिता वनश्रीः, मञ्जरितश्चूतनिकरः, कुसुमिताः तिलकादयः, उल्लसिता अतिमुक्तकाः, प्रवृत्तो मलयानिलः, मुदितं भ्रमरजालम्, प्रसृतः परभृतारवः,

---

यही सही है, अन्य नहीं है।' ललितांग ने कहा—'अधिक क्या कहें, अज्ञान की नींद में सोये हुए हम लोगों को कुमार ने जगाया। छोड़ने योग्य और ग्रहण करने योग्य पदार्थ दिखलाये। अतः अपने हित में प्रवृत्त होते हैं, कुमार की आज्ञा का पालन करते हैं।' अशोक ने कहा—'कुमार! ललितांग ने ठीक कहा, अतः जो हमारा कर्तव्य हो, उसकी कुमार आज्ञा दें।' कुमार ने कहा—'संक्षेप यह है—विषयों के प्रति राग छोड़ना चाहिए, संसार के स्वरूप का विचार करना चाहिए, बुरे संसर्ग का त्याग करना चाहिए, साधुओं की सेवा करना चाहिए। अनन्तर यथाशक्ति, दान, शील, तप और भावनाप्रधान होना चाहिए।' अशोक आदि ने कहा—'ठीक है कुमार! ठीक है, हम लोगों ने स्वीकार किया।' कुमार ने कहा—हे मित्रो! तुम सब धन्य हो, तुम लोगों ने मनुष्यजन्म का फल पा लिया।' उन्होंने कहा—'कुमार! ठीक है, यह ऐसा ही है, हम सभी लोग धन्य हैं। अधन्यों को कुमार का दर्शन प्राप्त नहीं होता।' इस प्रकार कुमार का अभिनन्दन कर विशेषणोचित बेला में पूजा कर अशोक आदि (मित्र) अपने-अपने स्थान पर चले गये। इन लोगों ने यथायोग्य अनुष्ठान प्रारम्भ किया। कुछ दिन बीत गये।

इसी बीच वसन्त का समय आया, वन की शोभा बढ़ी, आम्रसमूह मंजरित हुआ, तिलक आदि पुष्पित हुए, अतिमुक्ता विकसित हुई, मलयवायु चलने लगा, भ्रमरों का समूह प्रसन्न हुआ, कोयलों का शब्द फैला, यह वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च मम मित्तरज्जमिमं ति उत्तुणो कयत्थेइ बालवुड्ढं पि मयणो, सिसिरसत्तुविगमेण विय वियसिय-कमलवयणा कमलिणी, महुसमागमसुहेण विय पणट्ठतमाओ जंति जामिणीओ, उउलच्छिदंसणपसत्ता, विय तहा परिमंथरगमणा वासरा; जहिं च अग्घए नवरंगयं, बहुमया पसन्ना, वहंति डोलाओ, सेविज्जंति काणणाइं, मणहरो चंदो, अहिमओ गेयविही, वट्टंति पेरणाइं, पियाओ कामिणीओ; जहिं च विसेसुज्जलनेवच्छाइं कीलंति तरुणवंद्राइं, भमंति महाविभूईए देवयाणं पि रहवरा, मयण-वाहभएण विय सरणाइं अल्लियंति पिययमेसु पियाओ।

एवंविहे य महुसमए राइणो पुरिससीहस्स नयरिच्छणदंसणनिमित्तं समागया नयरिमहंतया। विन्नत्तो णेहिं राया—देव, देवे नरवइम्मि निच्चच्छणो नयरीए; तहावि समागओ महुसमओ त्ति विविहचच्चरीदंसणेण देवपसायलालियाणं पयाणं छणाओ वि गरुयं छणंतरं करेउ देवो नायरयाणं ति। राइणा चिंतियं—अहो सोहणमुवत्थियं, मयणमित्तो खु महुसमओ। ता कुमारं एत्थ निउंजामि, जेण तहा विचित्तसंसारवियारदंसणेण संजायरसंतरो संपाडेइ मे परियणस्स य समीहियाहियं सोक्खं ति। चिंतिऊण भणिया महंतया—

यत्र च मम मित्रराज्यमिदमिति दृप्तः कदर्थयति बालवृद्धमपि मदनः, शिशिरशत्रुविगमेनेव विकसितकमलवदना कमलिनी, मधुसमागमसुखेनेव प्रनष्टतमसो यान्ति यामिन्यः, ऋतुलक्ष्मीदर्शन-प्रसक्ता इव तथा परिमन्थरगमना वासराः, यत्र च राजते नवरङ्गकम्, बहुमता प्रसन्ना, वहन्ति दोलाः, सेव्यन्ते काननानि, मनोहरश्चन्द्रः, अभिमतो गेयविधिः, वर्तन्ते प्रेक्षणकानि, प्रियाः कामिन्यः यत्र च विशेषोज्ज्वलनेपथ्यानि क्रीडन्ति तरुणवन्द्राणि, भ्रमन्ति महाविभूत्या देवतानामपि रथवराः मदनव्याधभयेनेव शरणान्यालीयन्ते प्रियतमेषु प्रियाः।

एवंविधे च मधुसमये राज्ञः पुरुषसिंहस्य नगरीक्षणदर्शननिमित्तं समागता नगरीमहान्तः। विज्ञप्तस्तै राजा—देव! देवे नरपतौ नित्यक्षणो नगर्याः, तथापि समागतो मधुसमय इति विविध-चर्चरीदर्शनेन देवप्रसादलालितानां प्रजानां क्षणादपि गुरुकं क्षणान्तरं करोतु देवो नागरकानामिति। राज्ञा चिन्तितम्—अहो शोभनमुपस्थितम्, मदनमित्रः खलु मधुसमयः। ततः कुमारमत्र नियुञ्जे, येन तथा विचित्रसंसारविकारदर्शनेन सञ्जातरसान्तरः सम्पादयति मे परिजनस्य च समीहिताधिकं

स्थान है जहाँ पर मेरे मित्र का राज्य है—सोचकर अभिमानी काम बाल-वृद्धों का भी तिरस्कार करने लगा, शिशिररूपी शत्रु से अलग होते ही मानो कमलिनी विकसित कमल के समान मुखवाली हो गयी। वसन्त के समागम के सुख से ही रात्रियाँ नष्टान्धकार होकर व्यतीत होने लगीं। ऋतुलक्ष्मी के दर्शन में लगे हुए के समान दिन गमन में मन्दगतिवाले हो गये; वहाँ नयी रंगभूमि सुशोभित होने लगी, प्रसन्नों का सम्मान होने लगा, झूला झुलाए जाने लगे, उद्यानों का सेवन होने लगा, चन्द्रमा मनोहर हो गया, गाने की विधि इष्ट हो गयी, नाटक होने लगे, कामिनियाँ प्रिय हो गयीं; तरुण विशेष उज्ज्वल परिधान पहिन क्रीडा करने लगे, देवताओं के भी श्रेष्ठरथ महान् विभूति के साथ घूमने लगे। मदनरूपी बहेलिये से भयभीत हो मानो प्रियाएँ प्रियतमों की शरण में लीन होने लगीं।

ऐसे वसन्त समय में राजा पुरुषसिंह की नगरी का उत्सव देखने के लिए नगर के बड़े लोग आये। उन लोगों ने राजा से निवेदन किया—'महाराज! महाराज के राजा होने पर नगरी का उत्सव नित्य होता रहता है, तथापि वसन्त समय आया है अतः अनेक प्रकार की नृत्य-मण्डलियाँ देखकर महाराज की कृपा से लालित प्रजा के महोत्सव से भी अधिक महाराज! नागरिकों का महोत्सव करें।' राजा ने सोचा—ओह! कामदेव का मित्र वसन्त ठीक उपस्थित हुआ। अतः इसमें कुमार को नियुक्त करता हूँ, जिससे उस प्रकार के विचित्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भो संपाडिया मम तुब्भेहिं बहुसो नियविभूइदंसणेण निव्वुई, अहं पुण तुम्हाण कुमारदंसणेण अहियं संपाडेमि। अन्नं च, संपयं कुमारो एत्थ कारणपुरिसो; ता तम्मि चेव बहुमाणो कायव्वो त्ति। महंतएहिं भणियं—जं देवो आणवेइ। अन्नं च, देवपसायाओ वि एस महापसाओ जहिं कुमारदंसणं ति। निग्गया महंतया। राइणा वि सद्दाविओ कुमारो, भणिओ य सबहुमाणं—वच्छ, ठिई एसा इमीए नयरीए, जं मयणमहूसवे दट्ठव्वाओ नयरिचच्चरीओ राइणा, दिट्ठाओ य मए अणेगसो। संपयं पुण अणुगंतव्वो गुरुसमणुगओ मग्गो त्ति तेणेव विहिणा तुमं पि पेच्छाहि। एवं च कए समाणे मम परियणस्स नायरयाण य महंतो पमोओ हवइ। कुमारेण भणियं—जं ताओ आणवेइ। तओ हरिसिओ राया, दिन्ना समाणत्ती पडिहाराणं। हरे भणह मम वयणाओ नाणगब्भपमुहे पहाणसचिवे, जहा 'नयरिच्छणचच्चरीदंसणसुहं संजत्तेह रहवराइयं कुमारस्स, मम वयणाओ नायरयाइपरिओसनिमित्तं रायपयवत्तिणा गंतव्वमज्ज णेण छणचच्चरीदंसणनिमित्तं' ति। 'ज देवो आणवेइ' ति भणिऊण 'कुमारो अज्ज छणचच्चरीओ पेक्खिस्सइ, भवियव्वमम्हाणं पि कल्लाणेणं' ति हरि-

सौख्यमिति। चिन्तयित्वा भणिता महान्तः—भोः सम्पादिता मम युष्माभिर्बहुशो निजविभूतिदर्शनेन निर्वृतिः, अहं पुनर्युष्माकं कुमारदर्शनेनाधिकं सम्पादयामि। अन्यच्च, साम्प्रतं कुमारोऽत्र कारणपुरुषः, ततस्तस्मिन्नेव बहुमानः कर्तव्य इति। महद्भिर्भणितम्—यद्देव आज्ञापयति। अन्यच्च, देवप्रसादादप्येष महाप्रसादो, यत्र कुमारदर्शनमिति। निर्गता महान्तः। राज्ञाऽपि शब्दायितः कुमारः, भणितश्च सबहुमानम्—वत्स! स्थितिरेषा अस्या नगर्याः, यद् मदनमहोत्सवे द्रष्टव्या नगरचर्चर्यो राज्ञा, दृष्टाश्च मयाऽनेकशः। साम्प्रतं पुनरनुगन्तव्यो गुरुसमनुगतो मार्ग इति तेनैव विधिना त्वमपि प्रेक्षस्व। एवं च कृते सति मम परिजनस्य नागरकानां च महान् प्रमोदो भवति। कुमारेण भणितम्—यत् तात आज्ञापयति। ततो हर्षितो राजा, दत्ता समाज्ञप्तिः प्रतीहाराणाम्। अरे भणत मम वचनाद् ज्ञानगर्भप्रमुखान्, प्रधानसचिवान्, यथा 'नगरीक्षणचर्चरीदर्शनसुखं संयात्रयत रथवरादिकं कुमारस्य, मम वचनाद् नागरिकादिपरितोषनिमित्तं राजपदवर्तिना गन्तव्यमद्यानेन क्षणचर्चरीदर्शननिमित्तम्' इति। 'यद् देव आज्ञापयति' इति भणित्वा 'कुमारोऽद्य क्षणचर्चरीः

संसार के विकार के दर्शन से दूसरा ही रस उत्पन्न होकर मेरे परिजनों को इच्छा से भी अधिक सुख की प्राप्ति हो—ऐसा सोचकर बड़े लोगों से कहा—'आप लोगों ने अनेक प्रकार की विभूति का दर्शन कराकर मुझे शान्ति पहुँचायी, पुनः मैं आप लोगों को कुमार का दर्शन कराकर अधिक सम्पादित करता हूँ। दूसरी बात यह है, इस समय कुमार यहाँ कारणपुरुष हैं, अतः उनका ही सम्मान करना चाहिए।' बड़े लोगों ने कहा—'जो महाराज आज्ञा दें। दूसरी बात यह है कि महाराज की कृपा से भी अधिक यह कृपा है कि कुमार यहाँ के दर्शन करेंगे। बड़े लोग चले गये (निकल गये)। राजा ने भी कुमार को बुलाया और आदरपूर्वक कहा—'पुत्र! इस नगर की यह मर्यादा है कि मदन-महोत्सव में नगर की नृत्य-मण्डलियों को राजा देखे। मैं अनेक बार देख चुका हूँ। इस समय बड़े लोगों से अनुगत मार्ग का अनुसरण करना चाहिए, अतः उसी विधि से तुम भी देखो। ऐसा करने पर मेरे परिजनों और नागरिकों को महान् प्रमोद होगा।' कुमार ने कहा—'पिताजी की जो आज्ञा।' अनन्तर राजा हर्षित हुआ, प्रतीहारों को आज्ञा दी—'अरे! मेरे वचनों के अनुसार ज्ञानगर्भप्रमुख प्रधान सचिवों से कहो कि नगर के महोत्सव में नृत्यमण्डली देखने के सुख के लिए कुमार का श्रेष्ठ रथ आदि ले जाओ, मेरे कथनानुसार नागरिक आदि के सन्तोष के लिए राज्याधिकारियों को इस महोत्सव की नृत्यमण्डलियाँ देखने के लिए जाना चाहिए।' 'महाराज जैसी आज्ञा दें' ऐसा कहकर 'कुमार आज महोत्सव की नृत्यमण्डलियाँ देखेंगे (अतः)

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

सियमणेहिं तुरियतुरियं निवेइया समाणत्ती पडिहारेहिं। 'अहो भवियव्वमेत्थ परमाणदेणं' ति आणंदिया सचिवा। भणियं च णेहिं—जं देवो आणवेइ। तयणंतरं च सज्जिओ रहवरो, कया जंत-जोया, निवेसियं आयवत्तं, दिन्नाओ वेजयंतीओ, निबद्धं किंकिणीजालं, निविट्ठाइं रयणदामाइं, ओलंबिया मुत्ताहारा, विरइयाओ मणितारयाओ, उवगप्पियं आसणं, लंबिया चामरोऊला। एत्थं-तरम्मि इमं वइयरमवगच्छिऊण विसेसुज्जलनेवच्छाइं सहरिसं समागयाइं पायमूलाइं, कुंकुमखोय-भरिएहिं कच्चोलेहिं वसंतनेवच्छधारी मंडयंतो विय छणं मिलिओ भुयंगलोओ, विचित्तजाणारूढा संगएणं परियणेण पमोयवियसंतलोयणं कुमारदंसणूसुयत्तेण उवट्ठिया रायउत्ता, धवलहरनिज्जूहएहिं छणाइसयदंसणत्थं ओहसियथलनलिणिसोहाइं विणिग्गयवयणकमलं ठियाइं अंतेउराइं। एत्थंतरम्मि पवत्तो नयरीए ऊसवो। निवेइयं राइणो सचिवेहिं—देव, संपाडियं कुमारमंतरेण देवसासणं; संपयं, देवो पमाणं ति। हरिसिओ राया। भणिओ य णेण कुमारो—वच्छ, करेहि महापुरिसकरणिज्जं वड्ढेहि ऊसवं नायरयाणं। कुमारेण भणियं—जं ताओ आणवेइ। पणमिऊण सह असोयाइएहिं

प्रेक्षिष्यते, भवितव्यमस्माकमपि कल्याणेन' इति हर्षितमनोभिः त्वरितत्वरितं निवेदिता समाज्ञप्तिः प्रतीहारैः। 'अहो भवितव्यमत्र परमानन्देन' इत्यानन्दिताः सचिवाः। भणितं च तैः—यद् देव आज्ञापयति। तदनन्तरं च सज्जितो रथवरः, कृता यन्त्रयोगाः, निवेशितमातपत्रम्, दत्ता वैजयन्त्यः, निबद्धं किङ्किणीजालम्, निविष्टानि रत्नदामानि, अवलम्बिता मुक्ताहाराः, विरचिता मणितारकाः, उपकल्पितमासनम्, लम्बिताश्चामरावचूलाः। अत्रान्तरे इमं व्यतिकरमवगम्य विशेषोज्ज्वल-नेपथ्यानि सहर्षं समागतानि पात्रमूलानि कुङ्कुमक्षोदभृतैः कच्चोलैर्वसन्तनेपथ्यधारी मण्डयन्निव क्षणं मिलितो भुजङ्गलोकः, विचित्रयानारूढाः सङ्गतेन परिजनेन प्रमोदविकसद्लोचनं कुमार-दर्शनोत्सुकत्वेनोपस्थिता राजपुत्राः, धवलगृहनिर्यूहकेषु क्षणातिशयदर्शनार्थमुपहसितस्थलनलिनी-शोभानि विनिर्गतवदनकमलं स्थितान्यन्तःपुराणि। अत्रान्तरे प्रवृत्तो नगर्यामुत्सवः। निवेदितं राज्ञः सचिवैः—देव ! सम्पादितं कुमारमन्तरेण देवशासनम्, साम्प्रतं देवः प्रमाणमिति। हर्षितो राजा। भणितश्च तेन कुमारः—वत्स ! कुरु महापुरुषकरणीयम्, वर्धस्वोत्सवं नागरकानाम्। कुमारेण

हम लोगों का भी कल्याण होना चाहिए' इस प्रकार हर्षित मनों से शीघ्रतातिशीघ्र प्रतीहारों ने आज्ञा निवेदन की। 'ओह ! आज परम आनन्द होगा'—इस प्रकार सचिव हर्षित हुए। उन्होंने कहा—'जो महाराज आज्ञा दें।' तदनन्तर श्रेष्ठ रथ तैयार किया गया, यन्त्र लगाये गये, छत्र स्थापित किया गया, पताकाएँ फहरायी गयीं, छोटी-छोटी घण्टियाँ बाँधी गयीं, रत्नों की मालाएँ लटकायी गयीं, आसन की रचना की गयी और चँवर तथा चोटीनुमा गुच्छे लटकाए गये। इसी बीच इस घटना को सुनकर विशेष उज्ज्वल वेष धारण किये हुए अभिनेता हर्षपूर्वक आये। वे प्यालों में केसर का चूर्ण भरे हुए थे, वसन्त के वेष को धारण किये हुए थे, मानो महोत्सव का मण्डन करते हुए विट पुरुष मिल गये। विचित्र सवारियों पर आरूढ़ परिजनों के साथ प्रमोद से जिनके नेत्र खिल रहे थे ऐसे राजपुत्र कुमार के दर्शन की उत्सुकता से उपस्थित हुए। धवलगृह के दरवाजों में महोत्सव की की अतिशयता देखने के लिए स्थल-कमलिनी की शोभा का उपहास करनेवाली, मुखकमलों को निकाले हुए अन्तः-पुरिकाएँ खड़ी हो गयीं। इसी बीच नगर में उत्सव आरम्भ हुआ। राजा से सचिवों ने निवेदन किया—'महाराज ! कुमार के अतिरिक्त, महाराज की आज्ञा पूरी कर दी, अब महाराज प्रमाण हैं।' राजा हर्षित हुआ और उसने कुमार से कहा—'वत्स ! महापुरुषों के योग्य कार्य करो, नागरिकों के उत्सव को बढ़ाओ।' कुमार ने कहा—'जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पयट्टो रहाहिमुहं अहिणंदिज्जमाणो अंतेउरेहिं पणमिज्जमाणो रायउत्तेहिं थुव्वमाणो भुयंगलोएण पुलइज्जमाणो पायमूलेहिं पत्तो रहसमीवं, आरूढो रहवरे, उवविट्ठो पहाणासणम्मि। निवेसिया असोयाई जहाजोग्गजाणेसु। भणियं च णेण—अज्ज सारहि, चोएहि अहिमयदेसगमणं पइ तुरंगमे। 'जं देवो आणवेइ' त्ति भणिऊण चोइया तुरंगमा। एत्थंतरम्मि समुद्धाइओ जयजयारवो, पहयं गमणतूरं, चलिया रायउत्ता, पणच्चियाइं पायमूलाइं, उल्लसिया भुयंगा, खुहिओ पेच्छयजणो, पवत्ता केली, वियंभिओ कुंकुमरओ। एवं च महया विमद्देण पेच्छमाणो सव्वमेयं संवेगभावियमई समोइण्णो रायमग्गं कुमारो। पवत्तो पेच्छिउं चच्चरीओ नाणाविहाओ रिद्धिविसेससोहियाओ जुत्ता वियड्ढविब्भमेहिं तियसचच्चरीसमाओ संगयाओ हरिसेण वज्जंतेहिं विविहतूरेहिं मणहराओ लोयस्स संवेगजणणीओ बुहाण। पेच्छमाणो 'अहो मोहसामत्थं, अहो अकज्जधीरया, अहो पमायचेट्ठियं, अहो अदीहदरिसिया, अहो अणालोयगत्तं, अहो असुहभावणा, अहो अमित्तजोओ, अहो संसारविलसियं' ति चिंतयंतो पवड्ढमाणेण संवेएण वियारयंतो कम्माइं, भावयंतो कुसलजोए

भणितम्—यत् तात आज्ञापयति। प्रणम्य सहाशोकादिभिः प्रवृत्तो रथाभिमुखमभिनन्द्यमानोऽन्तःपुरैः प्रणम्यमानो राजपुत्रैः स्तूयमानो भुजङ्गलोकेन प्रलोक्यमानः पात्रमूलैः प्राप्तो रथसमीपम्, आरूढो रथवरम्, उपविष्टः प्रधानासने। निवेशिता अशोकादयो यथायोग्ययानेषु। भणितं च तेन—आर्य सारथे! चोदयाभिमतदेशगमनं प्रति तुरङ्गमान्। 'यद् देव आज्ञापयति' इति भणित्वा चोदितास्तुरङ्गमाः। अत्रान्तरे समुद्धावितो जयजयारवः, प्रहतं गमनतूर्यम्, चलिता राजपुत्राः, प्रनर्तितानि पात्रमूलानि, उल्लसिता भुजङ्गाः, क्षुब्धः प्रेक्षकजनः, प्रवृत्ता केलिः, विजृम्भितं कुङ्कुमरजः। एवं च महता विमर्देन प्रेक्षमाणः सर्वमेतत् संवेगभावितमतिः समवतीर्णो राजमार्गं कुमारः। प्रवृत्तः प्रेक्षितुं चर्चरीर्नानाविधा ऋद्धिविशेषशोभिता युक्ता विदग्धविभ्रमैस्त्रिदशचर्चरीसमाः सङ्गता हर्षेण वाद्यमानैर्विविधतूर्यैर्मनोहरा लोकस्य संवेगजननीर्बुधानाम्। पश्यन् 'अहो मोहसामर्थ्यम्, अहो अकार्यधीरता, अहो प्रमादचेष्टितम्, अहो अदीर्घदर्शिता, अहो अनालोचकत्वम्, अहो अशुभभावनाः, अहो अमित्रयोगः, अहो संसारविलसितम्' इति चिन्तयन् प्रवर्धमानेन संवेगेन विचारयन्

आज्ञा पिताजी।' प्रणाम कर अशोकादि के साथ रथ की ओर चला। अन्तःपुर से अभिनन्दन किया जाता हुआ, राजपुत्रों के द्वारा नमस्कृत, विट पुरुषों के द्वारा स्तुति किया जाता हुआ, अभिनेताओं से देखा जाता हुआ रथ के समीप आया। श्रेष्ठ रथ पर चढ़ा। प्रधान आसन पर बैठ गया। अशोक आदि (मित्रों) को यथायोग्य आसनों पर बैठाया। उसने (कुमार ने) कहा—'आर्य सारथी! इष्ट स्थान पर जाने के लिए घोड़ों को प्रेरित करो।' 'जो महाराज आज्ञा दें'—ऐसा कहकर घोड़ों को हांका। तभी जय-जय का शब्द उठा, प्रयाणकालीन बाजे बजे, राजपुत्र चले, अभिनेताओं ने नृत्य किया, विट पुरुष खिल गये, देखनेवाले लोग विचलित हो गये, क्रीड़ा आरम्भ हुई, केसर की धूलि फैल गयी। इस प्रकार बड़ी भीड़ से देखा जाता हुआ इन सबके प्रति वैराग्य बुद्धिवाला कुमार राजमार्ग पर उतरा। नृत्यमण्डलियाँ देखने लगा। वे नाना प्रकार की थीं, ऋद्धि विशेष से शोभित थीं, विदग्ध पुरुषों के विभ्रम से युक्त थीं। देवताओं की नृत्यमण्डलियों के समान हर्ष से युक्त थीं। अनेक प्रकार के बाजे बजाए जा रहे थे। संसारी प्राणियों के लिए मनोहर थीं और विद्वानों को वैराग्य उत्पन्न कर रही थीं। उन्हें देखकर 'ओह मोह की सामर्थ्य, ओह अकार्य की धीरता, ओह प्रमाद की चेष्टा, ओह अदीर्घदर्शिता, ओह अनालोचकता, ओह अशुभ भावना, ओह अमित्र का योग, ओह संसार का विलास—ऐसा सोचता हुआ बढ़ी हुई विरक्ति से कर्मों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विसुज्झमाणेण नाणेण पुलइज्जमाणो चच्चरीहिं जणितो तासिं तोसं निरूवयंतो पेरणाइं 'देव पेच्छ एयं' ति भणिज्जमाणो सारहिणा अइगओ कंचि भूमिभागं।

दिट्ठो य णेण देवउलपीढियाए अइबीहच्छदंसणो असुइणा देहेण गलंतभासुरवयणो संकुचिएहिं हत्थेहिं ऊसूणचलणजुयलो पणट्ठाए नासियाए विणिग्गयतंबनयणो परिगओ मच्छियाहिं महावाहिगहिओ कोइ पुरिसो त्ति। तं च दट्ठूण 'अहो कम्मपरिणइ'त्ति करुणापवन्नहियएण पडिबोहणनिमित्तं जणसमूहस्स भणिओ सारही - अज्ज सारहि, अह किं पुण इमं पेरणं ति। तेण भणियं—देव, न खलु एयं पेरणं, एसो खु वाहिगहिओ पुरिसो त्ति। कुमारेण भणियं—अज्ज, अह को उण इमो वाही। सारहिणा भणियं - देव, जो सुन्दरं पि सरीरं अयालेण एवं विणासेइ। कुमारेण भणियं—अज्ज, दुट्ठो खु एसो अहिओ लोयस्स; ता कीस ताओ एयं विसहइ। सारहिणा भणियं—कुमार, अवज्झो एस तायस्स। कुमारेण भणियं—आ कहमवज्झो नाम। लोयपडिबोहणत्थं च मग्गियं खग्गं। 'अरे रे दुट्ठवाहि, मुंच मुंच एयं, ठाहि वा जुज्झसज्जो' त्ति भणमाणो उट्ठिओ रहवराओ, पयट्टो तस्स संमुहं।

कर्माणि, भावयन् कुशलयोगान् विशुद्ध्यमानेन ज्ञानेन दृश्यमानश्चर्चरीभिर्जनयन् तासां तोषं निरूपयन् प्रेरणानि (प्रेक्षणकानि) 'देव ! पश्यैतत्' इति भण्यमानः सारथिनाऽतिगतः कञ्चिद् भूमिभागम्।

दृष्टश्च तेन देवकुलपीठिकायामतिबीभत्सदर्शनोऽशुचिना देहेन गलद्भासुरवदनः संकुचिताभ्यां हस्ताभ्यामुच्छूनचरणयुगलः प्रनष्टया नासिकया विनिर्गतताम्रनयनः परिगतो मक्षिकाभिर्महाव्याधिगृहीतः कोऽपि पुरुष इति। तं च दृष्ट्वा 'अहो कर्मपरिणतिः' इति करुणाप्रपन्नहृदयेन प्रतिबोधननिमित्तं जनसमूहस्य भणितः सारथिः - आर्य सारथे ! अथ किं पुनरिदं प्रेक्षणकमिति। तेन भणितम् - देव ! न खल्वेतत् प्रेक्षणकम्, एष खलु व्याधिगृहीतः पुरुष इति। कुमारेण भणितम्—आर्य ! अथ कः पुनरयं व्याधिः। सारथिना भणितम्- देव ! यः सुन्दरमपि शरीरमकालेनैवं विनाशयति। कुमारेण भणितम्—आर्य ! दुष्टः खल्वेषोऽहितो लोकस्य, ततः कस्मात् तात एतं विसहते। सारथिना भणितम्—कुमार ! अवध्य एष तातस्य। कुमारेण भणितम्—आः कथमवध्यो नाम। लोकप्रतिबोधनार्थं च मार्गितं खड्गम्। 'अरेरे दुष्टव्याधे ! मुञ्च मुञ्चैतम्, तिष्ठ वा युद्ध-

---

का विचार करता हुआ, विशुद्ध ज्ञान से शुभयोगों की भावना करता हुआ, नृत्यमण्डलियों के द्वारा देखा जाता हुआ, उनको सन्तोष उत्पन्न करता हुआ, नाटकों को देखता हुआ, 'महाराज ! इसे देखो' इस प्रकार सारथी के द्वारा कहा जाता हुआ वह कुछ दूर आगे निकल गया।

उसने देवमन्दिर के चबूतरे पर अत्यन्त बीभत्स दर्शनवाला, अपवित्र देह से म्लान मुखवाला, संकुचित हाथोंवाला, दोनों पैर जिसके सूजे हुए थे, नाक जिसकी नष्ट हो गयी थी, जिसकी आँखें लाल-लाल निकल आयीं थीं और जिससे मक्खियाँ लिपटी हुई थीं ऐसा बहुत बड़े रोग से ग्रस्त कोई पुरुष देखा। उसे देखकर 'ओह कर्म का फल !' इस प्रकार करुणाशील हृदयवाले कुमार ने जनसमूह को जाग्रत् करने के लिए सारथी से कहा—'आर्य सारथी ! क्या यह नाटक है ?' उसने कहा – 'महाराज ! यह नाटक नहीं है, इस आदमी को रोग ने घेर लिया है।' कुमार ने कहा—'आर्य ! यह रोग कौन-सा है ?' सारथी ने कहा—'महाराज ! जो सुन्दर शरीर को भी असमय में इस प्रकार विनष्ट कर देता है।' कुमार ने कहा – 'आर्य ! यह दुष्ट है और संसार का अहितकर है अतः पिताजी इसे कैसे सहते हैं ?' सारथी ने कहा—'कुमार ! इसे पिता जी नहीं मार सकते हैं।' कुमार ने कहा—'ओह, कैसे नहीं मारा जा सकता ?' लोगों के प्रतिबोधन के लिए तलवार ली। 'अरे रे दुष्ट रोग ! इसे

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

'हा किमेयं' ति उवसंताओ चच्चरीओ, मिलिया नायरया। पयंपिओ सारही—देव, न खलु वाही नाम कोइ दुट्ठपुरिसो निग्गहारिहो नरवईण, अवि य जीवाणमेव सकम्मपरिणामजणिओ संकिलेस-विसेसो। ता अप्पहू एयस्स राइणो, साहारणो खु एसो सव्वजीवाण। कुमारेण भणियं—भो नायरया, किमेवमेयं। नायरएहिं भणियं—देव, एवमेयं। कुमारेण भणियं—अज्ज सारहि, एएण गहिओ वि एसो चइऊण नियबलं असणोरमाए एयमवत्थाए कीस एवं चिट्ठइ। सारहिणा भणियं—देव, ईइसो चेव एसो वाही; जेण एएण गहियस्स पणस्सइ बलं, असोहणा अवत्था, दुक्खफलं चेट्ठियं ति। कुमारेण भणियं—अज्ज सारहि, कस्स उण एसो न पहवइ। सारहिणा भणियं—देव, परमत्थेण धम्मपच्छसेविणो अहम्मापच्छविरयस्स कस्सइ महाभागस्स। कुमारेण भणियं—अज्ज सारहि, जइ एवं, ता को उण इह उवाओ। सारहिणा भणियं—देव, खेत्तं वाहिणो पाणिणो, परमत्थेण नत्थि उवाओ मोत्तूणं धम्मतिगिच्छं। कुमारेण भणियं—भो नायरया, किमेवमेयं। नायरएहिं भणियं—देव, एवमेयं। कुमारेण भणियं—भो जइ एवं, ता सव्वसाहारणे एयम्मि असोहणे पयईए अवयारए

सज्जः' इति भणन् उत्थितो रथवरात्, प्रवृत्तस्तस्य सम्मुखम्। 'हा किमेतद्' इति उपशान्ताश्चर्चर्यः, मिलिता नागरकाः। प्रजल्पितः सारथिः–देव ! न खलु व्याधिर्नाम कोऽपि दुष्टपुरुषो निग्रहार्हो नरपतीनाम्, अपि च जीवानामेव स्वकर्मपरिणामजनितः संक्लेशविशेषः। ततोऽप्रभव एतस्य राजानः, साधारणः खल्वेष सर्वजीवानाम्। कुमारेण भणितम्–भो नागरकाः ! किमेवमेतत्। नागरकैर्भणितम्—देव ! एवमेतत्। कुमारेण भणितम्—आर्य सारथे ! एतेन गृहीतोऽपि एष त्यक्त्वा निजबलमनोरमायामेतदवस्थायां कस्मादेवं तिष्ठति। सारथिना भणितम्—देव ! ईदृश एवैष व्याधिः, येनैतेन गृहीतस्य प्रणश्यति बलम्, अशोभनाऽवस्था, दुःखफलं चेष्टितमिति। कुमारेण भणितम्–आर्य सारथे ! कस्य पुनरेष न प्रभवति। सारथिना भणितम्–देव ! परमार्थेन धर्म-पथ्यसेविनोऽधर्मापथ्यविरतस्य कस्यचिद् महाभागस्य। कुमारेण भणितम्–सारथे ! यद्येवं ततः कः पुनरिहोपायः। सारथिना भणितम्–देव ! क्षेत्रं व्याधेः प्राणिनः, परमार्थेन नास्त्युपायो मुक्त्वा

छोड़ दे अथवा युद्ध के लिए तैयार हो जा', ऐसा कहता हुआ उत्तम रथ से उठा, उक्त व्यक्ति के सामने चला 'हाय, यह क्या !' इस प्रकार नृत्यमण्डलियाँ शान्त हो गयीं, नागरिक इकट्ठे हो गये। सारथी ने कहा—'महाराज ! रोग नाम का कोई दुष्ट पुरुष नहीं है, जिसको राजा वश में कर सकता हो, अपितु जीवों के ही अपने कर्मफल से उत्पन्न दुःख विशेष का नाम ही रोग है। अतः इस पर राजाओं की सामर्थ्य नहीं है, यह सभी प्राणियों के लिए सामान्य है।' कुमार ने कहा—'हे नागरिको ! क्या यह ऐसा ही है ?' नागरिकों ने कहा—'महाराज ! यह ऐसा ही है।' कुमार ने कहा—'आर्य सारथी ! इस व्याधि से गृहीत भी यह (व्यक्ति) अपनी शक्ति को छोड़कर कैसे इस असुन्दर अवस्था में ठहर रहा है ?' सारथी ने कहा—'महाराज ! यह रोग ऐसा ही है कि इसके जकड़ लेने पर शक्ति नष्ट हो जाती है, हालत बुरी हो जाती है और चेष्टाएँ दुःखफलवाली हो जाती हैं।' कुमार ने कहा—'यह किस पर सामर्थ्य नहीं दिखलाता है अर्थात् यह रोग किसे नहीं होता है ?' सारथी ने कहा—'परमार्थ से धर्मरूपी पथ्य का सेवन करनेवाले और अधर्मरूपी अपथ्य से विरत किसी महा-भाग्यशाली पर यह सामर्थ्य नहीं दिखलाता है।' कुमार ने कहा—'आर्य सारथी ! यदि ऐसा है तो यहाँ कौन-सा उपाय है ?' सारथी ने कहा—'रोग के स्थान कर लेने पर प्राणी का वास्तव में धर्मचिकित्सा को छोड़कर (अन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एगंतेण विज्जमाणोवाए अचिंतिऊण एवं अलमिमिणा नच्चिएण. उवाए चेव खलु जुत्तो जत्तो त्ति। नायरएहिं भणियं—देव, एवमेयं, तहावि लोयट्ठिई एसा; ता न जुत्तं देवस्स सयलनायरयाण पवत्ते महूसवे अत्थाणे रसभंगकरणं। सारहिणा भणियं —देव, जुत्तं भणियमेएहिं; ता विविहपेरणाइं ताव पेक्खउ देवो त्ति। कुमारेण भणियं —अज्ज, एवं। तओ पवत्ताओ चच्चरीओ, पेच्छमाणो य कुमारो गओ कंचि भूमिभागं।

दिट्ठं च णेण नियघरोवरिट्ठियं निसण्णं सव्वंगएसु अच्चंतसिढिलगत्तं पणट्ठेहिं सिरोरुहेहिं पगलंतलोयणं कंपमाणेण देहेण वज्जियं दसणावलीए संगयं काससासेहिं परिहूयं परियणेण जरा-परिणयं सेट्ठिमिहुणयं ति। तं च दट्ठूण 'अहो असारया संसारस्स' त्ति पवड्ढमाणसंवेएण पडिबो-हणनिमित्तमेव भणिओ सारही —अज्ज सारहि, अह किं पुण इमं पेरणं ति। तेण भणियं—देव, न खलु एयं पेरणं, एयं खु जरापीडियं सेट्ठिमिहुणयं ति। कुमारेण भणियं— अज्ज, अह का उण एसा जरा भण्णइ। सारहिणा भणियं - देव, जा अजिण्णं पि सरीरं कालेण एयं करेइ। कुमारेण भणियं—

धर्मचिकित्साम्। कुमारेण भणितम्—भो नागरकाः! किमेवमेतद्। नागरकैर्भणितम्—देव! एव-मेतद्। कुमारेण भणितम्—भो यद्येवं ततः सर्वसाधारणे एतस्मिन् अशोभने प्रकृत्याऽपकारके एकान्तेन विद्यमानोपाये अचिन्तयित्वा एतमलमनेन नर्तितेन, उपाये एव खलु युक्तो यत्न इति। नागरकैर्भणितम्—देव! एवमेतद्, तथापि लोकस्थितिरेषा, ततो न युक्तं देवस्य सकलनागरकाणां प्रवृत्ते महोत्सवेऽस्थाने रसभङ्गकरणम्। सारथिना भणितम्—देव! युक्तं भणितमेतैः, ततो विविध-प्रेक्षणानि तावत् पश्यतु देव इति। कुमारेण भणितम्—आर्य! एवम्। ततः प्रवृत्ताश्चर्चर्यः। प्रेक्षमाणश्च कुमारो गतो कञ्चिद् भूमिभागम्।

दृष्टं च तेन निजगृहोपरिस्थितं निसन्नं (क्लान्तं) सर्वाङ्गकेषु अत्यन्तशिथिलगात्रं प्रनष्टैः शिरोरुहैः प्रगलल्लोचनं कम्पमानेन देहेन, वर्जितं दशनावल्या, संगतं कासश्वासैः, परिभूतं परिजनेन, जरापरिणतं श्रेष्ठिमिथुनकमिति। तच्च दृष्ट्वा 'अहो असारता संसारस्य' इति प्रवर्धमानसंवेगेन प्रतिबोधननिमित्तमेव भणितः सारथिः—आर्य सारथे! अथ किं पुनरिदं प्रेक्षणकमिति। तेन भणितम्—देव! न खल्वेतत् प्रेक्षणकम्, एतत् खलु जरापीडितं श्रेष्ठिमिथुनकमिति। कुमारेण

कोई) उपाय नहीं है।' कुमार ने कहा—'हे नागरिको! क्या यह ठीक (सच) है?' नागरिकों ने कहा—'यह ठीक (सच) है। कुमार ने कहा—'अरे, ऐसा है तो इस अशोभन का सभी के लिए सामान्य होने तथा स्वभाव से अपकारक होने पर एकान्त से उपाय विद्यमान होने पर इसे न सोचकर नाचना व्यर्थ है, उपाय में ही यत्न करना निश्चित रूप से ठीक है।' नागरिकों ने कहा—'यही ठीक है, तथापि यह संसार की मर्यादा है, अतः महाराज का समस्त नागरिकों के महोत्सव में प्रवृत्त होने पर रसभंग करना उचित नहीं है।' सारथी ने कहा—'महाराज! इन लोगों ने ठीक कहा है अतः महाराज अनेक प्रकार के दृश्य देखें।' कुमार ने कहा—'आर्य! ठीक है।' अनन्तर नृत्य-मण्डलियाँ चलीं। कुमार देखता हुआ कुछ दूर और चला।

उसने एक बूढ़े सेठ के जोड़े को देखा। वह अपने घर के ऊपर बैठा हुआ था। उसके सभी अंग क्लान्त थे, शरीर अत्यन्त ढीला था, बाल खतम हो गये थे, नेत्र नष्ट हो गये थे, शरीर काँप रहा था, दन्तपंक्ति से रहित था, खाँसी-श्वासों से युक्त और परिजनों से तिरस्कृत था। उसे देखकर 'ओह, संसार की असारता!' इस प्रकार बढ़ी हुई विरक्तिवाला कुमार प्रतिबोधन के लिए ही सारथी से बोला—'आर्य सारथी! क्या यह नाटक है?' उसने कहा—'महाराज! निश्चित रूप से यह नाटक नहीं है। यह बुढ़ापे से पीड़ित सेठ-दम्पती हैं।' कुमार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अज्ज, दुट्ठा खु एसा अहिया लोयस्स; ता कीस ताओ एयं उवेक्खइ। सारहिणा भणियं—कुमार, अणायत्ता खु एसा तायस्स। कुमारेण भणियं—आ कहमणायत्ता नाम। जणपडिबोहणत्थं च मग्गिऊण खग्गं 'आ पावे दुट्ठजरे, मुंच मुंच एयं सेट्ठिमिहुणयं, इत्थिया तुमं, किमवरं भणियसि' त्ति भणमाणो समुट्ठिओ रहवराओ, पयट्टो तयभिमुहं। 'हा किमेयमवरं' ति उवसंताओ चच्चरीओ, मिलिया पुणो जणा। पभणिओ सारहिणा—देव, न हि जरा नाम काइ विग्गहवई इत्थिया, जा एवमुवलंभारिहा देवस्स, किं तु सत्ताणमेवोरालियसरीरिणं कालवसेण परिणई एसा। अओ न उवलंभारिहा देवस्स, साहारणा य एसा एएसिं देहीणं। कुमारेण भणियं—भो भो नयरिजणा, किमेवमेयं ति। तेहिं भणियं—देव, न संदेहो। कुमारेण भणियं—अज्ज सारहि, अओ परं अवगओ मए इमीए भावत्थो अभवणविही य, ता भणामि अज्जं नयरिजणं च। न कायव्वो खेओ, किं जुत्तमेयाए पणासणीए पोरुसस्स अवयारिणीए धम्मत्थकामाण जणणीए परिहवस्स संबद्धणीए ओहसणिज्ज-

---

भणितम्—आर्य ! अथ का पुनरेषा जरा भण्यते। सारथिना भणितम्—देव ! याऽजीर्णमपि शरीरं कालेनैवं करोति। कुमारेण भणितम्—आर्य ! दुष्टा खल्वेषाऽहिता लोकस्य, ततः कस्मात् तात एतामुपेक्षते। सारथिना भणितम्—कुमार ! अनायत्ता खल्वेषा तातस्य। कुमारेण भणितम्—आः कथमनायत्ता नाम। जनप्रतिबोधनार्थं च मार्गयित्वा खड्गं 'आ पापे दुष्टजरे ! मुञ्च मुञ्चैतत् श्रेष्ठिमिथुनकम्, स्त्री त्वम्, किमपरं भण्यसे' इति भणन् समुत्थितो रथवरात्, प्रवृत्तस्तदभिमुखम्। 'हा किमेतदपरम्' इत्युपशान्ताश्चर्चर्यः, मिलिताः पुनर्जनाः। प्रभणितः सारथिना—देव ! नहि जरा नाम काऽपि विग्रहवती स्त्री, या एवमुपलम्भार्हा देवस्य, किन्तु सत्त्वानामेवौदारिकशरीरिणां कालवशेन परिणतिरेषा, अतो नोपलम्भार्हा देवस्य, साधारणा चैषा एतेषां देहिनाम्। कुमारेण भणितम्—भो भो नगरीजनाः ! किमेवमेतदिति। तैर्भणितम्—देव ! न सन्देहः। कुमारेण भणितम्—आर्य सारथे ! अतः परमवगतो मयाऽस्या भावार्थोऽभवनविधिश्च। ततो भणाम्यार्यं नगरीजनं च। न कर्तव्यः खेदः, किं युक्तमेतस्यां प्रणाशन्यां पौरुषस्य अपकारिण्यां धर्मार्थकामानां जनन्यां परिभवस्य

ने कहा—'बुढ़ापा किसे कहा जाता है ?' सारथी ने कहा—'महाराज ! जो न जीर्ण हुए भी शरीर को समय पर ऐसा कर देता है।' कुमार ने कहा—'आर्य ! यह बुढ़ापा संसार के लिए अहितकर है अतः पिताजी क्यों इसकी उपेक्षा करते हैं ?' सारथी ने कहा—'कुमार ! यह पिताजी के आधीन नहीं है।' कुमार ने कहा—'अरे कैसे आधीन नहीं है ?' लोगों के प्रतिबोधन के लिए तलवार लेकर—अरे पापी दुष्ट बुढ़ापे ! इस सेठ दम्पती को छोड़, (जरा नाम होने कारण) तू स्त्री है, अधिक क्या कहा जाय !' ऐसा कहकर श्रेष्ठ रथ से वह उठा और उसकी ओर बढ़ा। 'हाय ! यह अब और क्या हो गया !' इस प्रकार नृत्यमण्डलियाँ शान्त हो गयीं। लोग पुनः इकट्ठे हो गये। सारथी ने कहा—'महाराज ! जरा (बुढ़ापा) नाम की कोई शरीरधारिणी स्त्री नहीं है जो महाराज के इस प्रकार के उलाहने के योग्य हो, किन्तु औदारिक शरीरवाले प्राणियों की काल के आधीन यह परिणति होती है, अतः महाराज के उलाहने के योग्य नहीं है। इन शरीरधारियों के लिए यह साधारण है।' कुमार ने कहा—'हे हे नागरिको ! क्या यह ठीक (सच) है ?' उन्होंने कहा—'महाराज ! निस्सन्देह ठीक (सच) है।' कुमार ने कहा 'आर्य सारथी ! मैंने इसका भावार्थ जान लिया और न होने की विधि भी जान ली। अतः आर्य से, नगरी के लोगों से कहता हूँ। खेद न करें। पौरुष की नाशिनी, धर्म-अर्थ-काम की अपकारिणी, निरादर को उत्पन्न करने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावाण पहवंतीए वि मोत्तूण धम्मरसायणं इयमेवंविहं असमंजसं चेट्ठियं ति। एयं च सोऊण 'अहो कुमारस्स विवेओ; अहो परमत्थदरिसिया; न एत्थ किंचि अन्नारिसं, केवलं पहवइ महामोहो'त्ति चिंतिऊण समं नयरिजणवएण संविग्गो सारही। भणियं च णेण—देव, साहु जंपियं देवेण। तहावि अणादिभवब्भत्था मोहवासणा न तीरए चइउं ति। कुमारेण भणियं—अज्ज, एवं ववत्थिए अलं मोहवासणाए। दारुणविवाओ वाही रोद्दा य पावा जरा हवंति किलेसायाओ नियमेण पाणिणो; भणियमज्जेण, 'अत्थि य पडिवक्खो एयासि धम्मचरणं' ति। तो दिट्ठविवायाण वि न तम्मि जत्तो त्ति अउव्वा मोहवासणा।

एत्थंतरम्मि दिट्ठो कुमारेण नाइदूरेण नीयमाणो समारोविओ जरखट्टाए समोत्थओ जुण्णवत्थेण उक्खित्तो दीणपुरिसेहिं सदुक्खकइवयबंधुसंगओ रुयमाणेण इत्थियाजणेण अक्कंदमाणाए पत्तीए पुलोइज्जमाणो जणेण पंचत्तमुवगओ दरिद्दपुरिसो त्ति। तं च दट्ठूण जंपियमणेण – अज्ज सारहि, अलं ताव मोहवासणाचिंताए; साहेहि मज्झ, किं पुण इमं पेरणं ति। सारहिणा चिंतियं—अहो

संवर्धिन्यामुपहसनीयभावानां प्रभवन्त्यामपि मुक्त्वा धर्मरसायनमिदमेवंविधमसमञ्जसं चेष्टितमिति। एतच्च श्रुत्वा 'अहो कुमारस्य विवेकः, अहो परमार्थदर्शिता, नात्र किञ्चिदन्यादृशम्, केवलं प्रभवति महामोहः' इति चिन्तयित्वा समं नगरीजनव्रजेन संविग्नः सारथिः। भणितं च तेन – देव ! साधु जल्पितं देवेन। तथाप्यनादिभवाभ्यस्ता मोहवासना न शक्यते त्यक्तुमिति। कुमारेण भणितम्—आर्य ! एवं व्यवस्थितेऽलं मोहवासनया। दारुणविपाको व्याधिः, रौद्रा च पापा जरा भवन्ति क्लेशायाया नियमेन प्राणिनः; भणितमार्येण—'अस्ति च प्रतिपक्ष एतासां धर्मचरणम्' इति। ततो दृष्टविपाकानामपि न तस्मिन् यत्न इत्यपूर्वा मोहवासना।

अत्रान्तरे दृष्टः कुमारेण नातिदूरेण नीयमानः समारोपितो जरत्खट्वायां समवस्तृतो जीर्णवस्त्रेणोत्क्षिप्तो दीनपुरुषैः सदुःखकतिपयबन्धुसङ्गतो रुदता स्त्रीजनेन आक्रन्दन्त्या पत्न्या प्रलोक्यमानो जनेन पञ्चत्वमुपगतो दरिद्रपुरुष इति। तं च दृष्ट्वा जल्पितमनेन—आर्य सारथे; अलं तावन्मोहवासनाचिन्तया, कथय मह्यं, किं पुनरिदं प्रेक्षणकमिति। सारथिना चिन्तितम्—

वाली, उपहास के योग्य अवस्था को बढ़ानेवाली इसके समर्थ होने पर भी धर्मरूपी रसायन को छोड़कर इस प्रकार का असंगत कार्य करना क्या ठीक है ?' यह सुनकर—ओह कुमार का विवेक, ओह परमार्थदर्शिता ! यहाँ पर कोई और नहीं, केवल महामोह प्रभाव दिखा रहा है। ऐसा सोचकर नागरिकों के समूह के साथ सारथी उद्विग्न हुआ। उसने कहा – 'महाराज ! आपने सही कहा तो भी अनादि भवों से अभ्यस्त मोह के संस्कार नहीं छोड़े जा सकते।' कुमार ने कहा—'ऐसी स्थिति में मोह का संस्कार व्यर्थ है, रोग का फल भयंकर होता है, जरा (बुढ़ापा) रौद्र और पापी होता है, इनसे प्राणी सदा दुःखी होते हैं।' आर्य ने कहा—'इनका प्रतिपक्ष धर्म का आचरण है।' किन्तु फल देखते हुए भी उसके विषय में यत्न नहीं करते – यह मोह का अपूर्व संस्कार है।'

इसी बीच कुमार ने समीप में ही पुरानी खाट पर रखकर ले जाते हुए मृत्यु को प्राप्त निर्धन पुरुष को देखा। वह पुराने वस्त्रों से ढका था, दीन मनुष्य उसे उठाए हुए थे। वह कुछ दुःखी बन्धुओं से युक्त था। (उसके पास) स्त्रियाँ रो रही थीं, पत्नी चीख रही थी, लोग देख रहे थे। उसे देखकर इसने कहा – 'आर्य सारथी ! मोह के संस्कार के विषय में सोचने से बस करो, मुझे बताओ, क्या यह नाटक है ?' सारथी ने सोचा—ओह वैराग्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निव्वेयकारणपरंपरा, अहो असारया संसारस्स। ता किमेत्थ साहेमि। न य न याणइ इमं पवंचमेसो। अणभिन्नस्स कहमीइसी वाणी। अम्हारिसजणविबोहणत्थं तु तक्केमि एस एवं चेट्ठइ। ता इमं एत्थ पत्तयालं, साहेमि एयं जहट्ठियं ति। चिंतिऊण जंपियं सारहिणा—देव, न खलु एयं पेरणं, एसो खु मच्चुघत्थो पुरिसो त्ति। कुमारेण भणियं—अज्ज, अह को उण इमो मच्चू। सारहिणा भणियं—देव, जेण घत्थो पुरिसो बंधवेहिं पि एवं परिच्चइयइ। कुमारेण भणियं—अज्ज, दुट्ठो खु एसो अहिओ लोयस्स; ता कीस ताओ एयं न वहेइ। सारहिणा भणियं—कुमार, अवज्झो एस तायस्स। कुमारेण भणियं—आ कहमवज्झो नाम तायस्स। लोयपडिबोहणत्थं च मग्गियं खग्गं। 'अरे रे दुट्ठमच्चु, मुंच मुंच एयं, ठाहि वा जुज्झसज्जो' त्ति भणमाणो उट्ठिओ रहवराओ, पयट्टो तस्स संमुहं। भणिओ य सारहिणा—देव, न खलु मच्चू नाम कोइ दुट्ठपुरिसो निग्गहारिहो राईण, अवि य जीवाणमेव सकम्मपरिणामजणिओ देहपरिच्चायधम्मो। ता अप्पहू एयस्स रायाणो, साहारणो खु एसो सव्वजीवाण। कुमारेण भणियं—भो नायरया, किमेवमेयं। नायरएहिं भणियं—देव, एवं। कुमारेण

अहो निर्वेदकारणपरम्परा, अहो असारता संसारस्य। ततः किमत्र कथयामि। न च न जानातीमं प्रपञ्चमेषः। अनभिज्ञस्य कथमीदृशी वाणी। अस्मादृशजनविबोधनार्थं तु तर्कये एष एवं चेष्टते। तत इदमत्र प्राप्तकालम्, कथयाम्येतद् यथास्थितमिति। चिन्तयित्वा जल्पितं सारथिना—देव! न खल्वेतत् प्रेक्षणकम्, एष खलु मृत्युग्रस्तः पुरुष इति। कुमारेण भणितम्—आर्य! अथ कः पुनरयं मृत्युः। सारथिना भणितम्—देव! येन ग्रस्तः पुरुषो बान्धवैरप्येवं परित्यज्यते। कुमारेण भणितम्—आर्य! दुष्टः खल्वेषोऽहितो लोकस्य, ततः कस्मात् तात एतं न घातयति। सारथिना भणितम्—कुमार! अवध्य एष तातस्य। कुमारेण भणितम्—आः कथमवध्यो नाम तातस्य। लोकप्रतिबोधनार्थं च मार्गितं खड्गम्। 'अरेरे दुष्टमृत्यो! मुञ्च मुञ्चैतम्, तिष्ठ वा युद्धसज्जः' इति भणन् उत्थितो रथवरात्, प्रवृत्तस्तस्य सम्मुखम्। भणितश्च सारथिना—देव! न खलु मृत्युर्नाम कोऽपि दुष्टपुरुषो निग्रहार्हो राज्ञाम्, अपि च जीवानामेव स्वकर्मपरिणामजनितो देहपरित्यागधर्मः। ततोऽप्रभव एतस्य राजानः, साधारणः खल्वेष सर्वजीवानाम्। कुमारेण भणितम्—भो नागरकाः!

के कारण की परम्परा, ओह संसार की असारता! अतः यहाँ क्या कहूँ? ऐसी बात नहीं है कि यह इस जंजाल को न जानते हों। अनभिज्ञ व्यक्ति की ऐसी वाणी कैसे हो सकती है? मैं अनुमान करता हूँ कि हम जैसे लोगों को जागृत करने के लिए यह इस प्रकार की चेष्टा कर रहे हैं। अतः अब समय आ गया है, इनसे सही बात कहता हूँ—ऐसा सोचकर सारथी ने कहा—'महाराज, यह नाटक नहीं है, यह मृत्यु से ग्रस्त पुरुष है।' कुमार ने कहा—'आर्य! यह मृत्यु क्या है?' सारथी ने कहा—महाराज, इससे ग्रस्त हुए पुरुष को बान्धव भी छोड़ देते हैं। कुमार ने कहा—'आर्य! यह तो दुष्ट है, लोक के लिए अहितकारी है। तब पिताजी किस कारण से इसका घात नहीं करते हैं?' सारथी ने कहा—'कुमार! यह तात (महाराज) द्वारा अवध्य है।' कुमार ने कहा—'आह, पिताजी क्यों नहीं मार सकते?' और लोगों के प्रतिबोधन के लिए लिए खड्ग मँगाई। 'अरे दुष्ट मृत्यु! छोड़ दे, छोड़ दे इसे, अथवा युद्ध को तैयार हो जा।' कहते हुए रथ से उठे और उसके सामने बढ़े। सारथी ने कहा—'महाराज मृत्यु नाम राजा के द्वारा दण्ड देने योग्य कोई दुष्ट पुरुष नहीं, अपितु जीवों का ही अपने कर्म के परिणाम से उत्पन्न शरीरपरित्यागरूप धर्म है। अतः इस पर राजा का पराक्रम नहीं चलता। यह सभी जीवों के लिए साधारण है।' कुमार ने कहा—'हे नागरिको! क्या यह ऐसा ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भणियं—अज्ज सारहि, एएण घत्थं पि कीस एए बंधवा एयं परिच्चयंति। सारहिणा भणियं—देव, किमेइणा संपयं, गओ खु एसो एत्थ कारणभूओ। कलेवरमिणं केवलं चिट्ठमाणमवगाराए। कुमारेण भणियं—अज्ज सारहि जइ एवं, ता कीस एए बंधवा विलवंति। सारहिणा भणियं—कुमार, पिओ खु एसो एएसि गओ दीहजत्ताए, अदंसणमियाणिं। एएण सरिऊण सुकयाइं सोयभरपीडिया असयंता निरंभिउं अविज्जमाणोवायंतरा य एवं विलवंति। कुमारेण भणियं—अज्ज सारहि, जइ पिओ, कीस इमं नाणुगच्छंति। सारहिणा भणियं—देव, असक्कमेयं; न कहेइ गच्छंतो, नावेक्खए सिणेहं, न दीसइ अप्पणा, न नज्जए थामं, विचित्ता कम्मपरिणई, अणवट्ठिया संजोया, न ईइसो अणुबंधो; अओ नाणुगच्छंति। कुमारेण भणियं—अज्ज सारहि, जइ एवं, ता निरत्थया तम्मि पिई। सारहिणा भणियं देव, परमत्थओ एवं। कुमारेण भणियं—अज्ज सारहि, जइ एवं, ता को उण इहोवाओ। सारहिणा भणियं—देव, जोगिगम्मो उवाओ, न अम्हारिसेहिं नज्जइ। कुमारेण भणियं—भो नायरया, किमेवमेयं। नायरएहिं भणियं—देव, एवं। कुमारेण भणियं—भो जइ एवं, ता सव्वसा-

किमेवमेतद्। नागरकैर्भणितम् देव! एवम्। कुमारेण भणितम्—आर्य सारथे! एतेन ग्रस्तमपि कस्माद् एते बान्धवा एतं परित्यजन्ति। सारथिना भणितम्—देव! किमेतेन साम्प्रतम्, गत खल्वेषोऽत्र कारणभूतः। कलेवरमिदं केवलं तिष्ठदपकाराय। कुमारेण भणितम्—आर्य सारथे! यद्येवं ततः कस्मादेते बान्धवा विलपन्ति। सारथिना भणितम्—कुमार! प्रियः खल्वेष एतेषां गतो दीर्घयात्रया, अदर्शनमिदानीम्। एतेन स्मृत्वा सुकृतानि शोकभरपीडिता अशक्नुवन्तो निरोद्धुम् अविद्यमानोपायान्तराश्चैवं विलपन्ति। कुमारेण भणितम्—आर्य सारथे! यदि प्रियः, कस्मादिमं नानुगच्छन्ति। सारथिना भणितम्—देव! अशक्यमेतद्, न कथयति गच्छन्, नापेक्षते स्नेहम्, न दृश्यते आत्मना, न ज्ञायते स्थानम्, विचित्रा कर्मपरिणतिः, अनवस्थिताः संयोगाः, नेदृशोऽनुबन्धः, अतो नानुगच्छन्ति। कुमारेण भणितम्—आर्य सारथे! यद्येवं ततो निरर्थका तस्मिन् प्रीतिः। सारथिना भणितम्—देव, परमार्थत एवम्। कुमारेण भणितम्—आर्य सारथे! यद्येवं ततः किं पुनरिहोपायः। सारथिना भणितम्—देव! योगिगम्य उपायः, नास्मादृशैर्ज्ञायते। कुमारेण भणितम्—भो नागरकाः! किमेवमेतद्। नागरकैर्भणितम्—देव! एवम्। कुमारेण भणितम्—भो यद्येवम्,

है?' नागरिकों ने कहा—'महाराज! ऐसा ही है।' कुमार ने कहा—'आर्य सारथी! इससे ग्रस्त होते हुए भी इसे बान्धव कैसे छोड़ देते हैं?' सारथी ने कहा—'महाराज! अब इससे क्या, यहाँ इसका कारणभूत चला गया। केवल यह शरीर अपकार के लिए विद्यमान है।' कुमार ने कहा—'आर्य सारथी! यदि ऐसा है तो ये बान्धव क्यों विलाप कर रहे हैं?' सारथी ने कहा—'कुमार! यह इनका प्रिय था, दीर्घयात्रा के लिए जाने के कारण अब इसका दर्शन नहीं हो सकेगा। इसके अच्छे कार्यों का स्मरण कर, शोक के भार से पीड़ित होकर उस शोक को रोक न पाने से, और कोई दूसरा उपाय विद्यमान न होने से ये विलाप कर रहे हैं।' कुमार ने कहा—'आर्य सारथी! यदि प्रिय है तो ये लोग इसका अनुसरण क्यों नहीं करते हैं?' सारथी ने कहा—'यह अशक्य है, जाते हुए नहीं कहता है, स्नेह की अपेक्षा नहीं रखता है, अपने आपके द्वारा नहीं दिखाई देता है, स्थान नहीं जाना जाता है। कर्म की परिणति विचित्र है, संयोग अस्थिर हैं, इस प्रकार का सम्बन्ध नहीं है, अतः अनुसरण नहीं करते हैं।' कुमार ने कहा—'आर्य सारथी! यदि ऐसा है तो फिर यहाँ क्या उपाय है?' सारथी ने कहा—'महाराज! उपाय योगियों के द्वारा जानने योग्य है; हम जैसे लोगों द्वारा नहीं जाना जाता है।' कुमार ने कहा—'हे नागरिको! क्या यह सही है?' नागरिकों ने कहा—'महाराज! ऐसा ही है।' कुमार ने कहा—'अरे, ऐसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हारणे एयम्मि असोहणे पयईए अवयारए एगंतेण विज्जमाणोवाए अचिंतिऊण एयं अलमिमिणा नच्चिएण, एओवाए चेव खलु एस जुत्तो जत्तो त्ति। एयमायण्णिऊण संविग्गा नायरया, पवन्ना केइ मग्गं, निबद्धाइं बोहिबीयाइं। अवेक्खिऊण कुमारस्स महाणुभावयं विम्हिया चित्तेण पडिबद्धा कुमारे, उवरया नच्चियव्वाओ, वावडा साहुवाए, पयट्टा जहोचियं करणिज्जं।

एत्थंतरम्मि देवसेणमाहणाओ इमं वइयरमायण्णिऊण अहिययरभीएण राइणा कुमाराहवण-निमित्तं पेसिओ पडिहारो। समागओ एसो, भणियं च णेण—कुमार, महाराओ आणवेइ, जहा कुमारेण सिग्घमागंतव्वं ति। कुमारेण भणियं—जं गुरू आणवेइ। भणिओ य सारही—अज्ज सारहि, नियत्तेहि रहवरं। 'जं कुमारो आणवेइ' त्ति नियत्तिओ सारहिणा रहवरो। गओ नरवइ-समीवं। पणमिओ णेण राया। उवविट्ठो तयंतिए, भणिओ य णेण—कुमार, भणिस्सामि किंचि अहं कुमारं; ता अवस्समेव तं कायव्वं कुमारेण। कुमारेण भणियं—ताय, अलंघणीयवयणा गुरवो, न एवं संततभारारोवणे कारणमवगच्छामि। अहवा किं ममेइणा, अमीमंसा गुरू; सव्वहा जं

ततः सर्वसाधारणे एतस्मिन्नशोभने प्रकृत्याऽपकारके एकान्तेन विद्यमानोपायेऽचिन्तयित्वैतमलमनेन नर्तितेन, एतदुपाये एव खल्वेष युक्तो यत्न इति। एवमाकर्ण्य संविग्ना नागरकाः, प्रपन्नाः केऽपि मार्गम्, निबद्धानि बोधिबीजानि। अवेक्ष्य कुमारस्य महानुभावतां विस्मिताश्चित्तेन प्रतिबद्धाः कुमारे, उपरता नर्तितव्याद्, व्यापृताः साधुवादे, प्रवृत्ता यथोचितं करणीयम्।

अत्रान्तरे देवसेनब्राह्मणादिमं व्यतिकरमाकर्ण्याधिकतरभीतेन राज्ञा कुमाराह्वाननिमित्तं प्रेषितः प्रतीहारः। समागत एषः, भणितं च तेन—कुमार! महाराज आज्ञापयति, यथा कुमारेण शीघ्रमागन्तव्यमिति। कुमारेण भणितम्—यद् गुरुराज्ञापयति। भणितश्च सारथिः—आर्य सारथे! निवर्तय रथवरम्। 'यत् कुमार आज्ञापयति' इति निवर्तितः सारथिना रथवरः। गतो नरपति-समीपम्। प्रणतस्तेन राजा। उपविष्टस्तदन्तिके, भणितश्च तेन—कुमार! भणिष्यामि किञ्चिदहं कुमारम्, ततोऽवश्यमेव तत् कर्तव्यमेव कुमारेण। कुमारेण भणितम्—तात! अलङ्घनीयवचना गुरवः, न एवं सन्ततभारारोपणे कारणमवगच्छामि। अथवा किं ममैतेन, अमीमांस्या गुरवः, सर्वथा

है तो सर्वसाधरण के लिए यह अशोभन होने, स्वभाव से अपकारी होने तथा एकान्त से उपाय विद्यमान होने पर ऐसे न सोचकर, इस नाचने से बस अर्थात् यह नाचना व्यर्थ है, इस उपाय में ही यह यत्न ठीक है।' यह सुनकर कुछ नागरिक उद्विग्न हुए, कुछ लोग मार्ग को प्राप्त हुए, ज्ञान के बीज बाँधे, कुमार को महानुभावता, देख कर चित्त से विस्मित हुए, कुमार से बँध गये, नृत्य से विरत हो गये, 'सच है सच है'—ऐसा कहने लग गये, यथा-योग्य कार्यों में लग गये।

इसी बीच देवसेन ब्राह्मण से इस घटना को सुनकर अत्यधिक भयभीत राजा ने कुमार को बुलाने के लिए प्रतीहार भेजा। वह आया और इसने कहा—'कुमार! महाराज आज्ञा देते हैं कि कुमार शीघ्र आयें।' कुमार ने कहा—'पिताजी की जैसी आज्ञा।' सारथी से कहा—'आर्य सारथी! रथ को लौटाओ।' 'कुमार की जो आज्ञा' ऐसा कहकर सारथी ने रथ लौटाया। कुमार राजा के पास गया। उसने राजा को प्रणाम किया, उनके पास बैठा। राजा ने कहा—'कुमार! मैं कुमार से कुछ कहूँगा अतः कुमार को उसे अवश्य करना चाहिए।' कुमार ने कहा—'पिताजी! माता-पिता के वचन न लंघन करने योग्य होते हैं, इस प्रकार के निरन्तर भार के आरोपण का कारण नहीं जानता हूँ अथवा मुझे इससे क्या, बड़ों की आज्ञा के विषय में कुछ वितर्क नहीं करना चाहिए, जो आप

तुब्भे आणवेह। राइणा भणियं—वच्छ, एरिसो चेव तुमं ति, केवलं मम नेहो अवरज्झइ। ता भणिस्सं अवसरेण; संपयं करेहि उचियं करणिज्जं। कुमारेण भणियं—जं गुरू आणवेइ त्ति। पणमिऊण सविणयं निग्गओ कुमारो, गओ निययगेहं, कयं उचियकरणिज्जं। अइक्कंता कइइ दियहा।

अन्नया समं असोयाईहिं धम्मकहावावडस्स नियभवणसेविणो विसुद्धभावस्स समागओ पडिहारो। भणियं च णेण—कुमार, महाराओ आणवेइ, जहा 'आगया एत्थ तुह माउलसयासाओ केणावि पओयणेण अब्भहिया महंतया; ता कुमारेण सिग्घमागतव्वं'ति। 'जं गुरू आणवेइ' त्ति भणिऊण उट्ठिओ कुमारो, गओ सह असोयाईहिं रायसमीवं। दिट्ठो राया। पणमिऊण उवविट्ठो तयंतिए। भणिओ य राइणा -वच्छ, पेसियाओ तुह मामएणं महारायखग्गसेणेणं सबहुमाणं आसत्तवेणि (य) विसुद्धाओ नियसुयाओ विब्भमवइकामलयाहिहाणाओ जीवियाओ वि इट्ठयराओ सयंवराओ दुवे कन्नयाओ। एयाओ य बहुमाणेण तस्स राइणो अणुवत्तमाणेण विसिट्ठलोयमग्गं अणुराएण

यद् यूयमाज्ञापयत। राज्ञा भणितम्—वत्स! ईदृश एव त्वमिति, केवलं मम स्नेहोऽपराध्यति। ततो भणिष्याम्यवसरेण, साम्प्रतं कुरूचितं करणीयम्। कुमारेण भणितम्—यद् गुरुराज्ञापयतीति। प्रणम्य सविनयं निर्गतः कुमारः, गतो निजगेहम्, कृतमुचितकरणीयम्। अतिक्रान्ताः कतिचिद् दिवसाः।

अन्यदा सममशोकादिभिर्धर्मकथाव्यापृतस्य निजभवनसेविनो विशुद्धभावस्य समागतः प्रतिहारः। भणितं च तेन—कुमार! महाराज आज्ञापयति, यथा 'आगता अत्र तव मातुलसकाशात् केनापि प्रयोजनेनाभ्यधिका महान्तः, ततः कुमारेण शीघ्रमागन्तव्यम्' इति। 'यद् गुरुराज्ञापयति' इति भणित्वोत्थितः कुमारः। गतः सहाशोकादिभी राजसमीपम्। दृष्टो राजा। प्रणम्योपविष्टस्तदन्तिके। भणितश्च राज्ञा—वत्स! प्रेषिते तव मामकेन महाराजखड्गसेनेन सबहुमानमासक्तवचनीयविशुद्धे निजसुते विभ्रमवतीकामलताभिधाने जीवितादपीष्टतरे स्वयंवरे द्वे कन्यके। एते च बहुमानेन तस्य राज्ञोऽनुवर्तमानेन विशिष्टलोकमार्गमनुरागेण कन्ययोराज्ञया गुरुजनस्यावश्यं

सब आज्ञा देंगे सर्वथा वही होगा।' राजा ने कहा—'वत्स! तुम ऐसे ही हो, (अर्थात् तुमसे यही अपेक्षा थी) केवल मेरा स्नेह ही यहाँ अपराध कर रहा है। अतः अवसर पाकर कहूँगा। अब योग्य कार्यों को करो।' कुमार ने कहा—'पिताजी की जो आज्ञा।' विनयपूर्वक प्रणाम कर कुमार निकल गया। अपने निवास गया, योग्य कार्यों को किया। कुछ दिन बीत गये।

एक बार जब कुमार अपने घर पर अशोक आदि (मित्रों) के साथ धर्मकथा में विशुद्ध भावों से लगा हुआ था तब प्रतीहार आया और उसने कहा—'कुमार! महाराज आज्ञा देते हैं कि तुम्हारे मामा के साथ किसी प्रयोजन से विशिष्ट लोग आये हैं, अतः कुमार शीघ्र आवें।' 'पिताजी की जो आज्ञा'—ऐसा कहकर कुमार उठा और अशोक आदि के साथ राजा के पास गया। राजा को देखा। (कुमार) प्रणाम कर उनके पास बैठ गया। राजा ने कहा—'कुमार! तुम्हारे मामा महाराज खड्गसेन ने आदरपूर्वक लोकापवाद से रहित विभ्रमवती और कामलता नामक, प्राणों से भी अधिक प्यारी, दो कन्याएँ स्वयंवर में भेजी हैं। उन महाराज के प्रति आदर (एवं) दोनों कन्याओं के विशिष्ट सांसारिक मार्ग में अनुवर्तित अनुराग से तथा बड़ों की आज्ञा से कुमार अवश्य ही इष्ट

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

कन्नयाणं आणाए गुरुयणस्स अवस्सं कुमारेण इट्ठत्थसंपत्तीए आणंदियव्वाओ। एवं च कए समाणे तस्स राइणो विसिट्ठलोयस्स कन्नयाणं गुरुसयणस्स य नियमेण निव्वुई संजायइ। एयमायण्णिऊण चिंतियं कुमारेण—अहो न सोहणमिणं। दुक्खहेयवो संजोया, निओयवयणं च एयं, अब्भत्थिओ य पुव्विं, तं पि मन्ने इमं चेव। अलंघणीया गुरवो, 'इट्ठत्थसंपत्तीए नियमेण निव्वुइ' त्ति सोहणा य वाणी, न यावि भावओ गुरुआणापराण संजायए असोहणं। एवमभिचिंतयंतो सासंकेण विय भणिओ महाराएण - वच्छ, अलमेत्थ चिंताए, सुमरेहि मम पत्थणं। ता सा चेव एसा। न एत्थ भवओ कल्लाणपरंपरं मोत्तूण अन्नारिसो परिणामो। अओ अवस्समेव कायव्वं एयं कुमारेण। तओ एयमायण्णिय 'अहो सोहणयरा वाणि' त्ति हरिसियमणेण जंपियं कुमारेण - ताय, जं तुब्भे आणवेह। एयं सोऊण हरिसिओ राया। भणियं च णेण—साहु वच्छ साहु, उचिओ ते विवेओ, सोहणा गुरुभत्ती, भायणं तुमं कल्लाणाणं। अन्नं च, जाणामि अहं भवओ विसुद्धधम्मपक्खवायं, जुत्तो य एसो सयाण। असारो संसारो, नियाणं निव्वेयस्स; तहावि कुसलेण अणुयत्तियव्वो

कुमारेणेष्टार्थसम्पत्त्याऽऽनन्दयितव्ये। एवं च कृते सति तस्य राज्ञो विशिष्टलोकस्य कन्ययोर्गुरुजनस्य च नियमेन निर्वृतिः सञ्जायते। एवमाकर्ण्य चिन्तितं कुमारेण—अहो न शोभनमिदम्। दुःखहेतवः संयोगाः, नियोगवचनं चैतद्, अभ्यर्थितश्च पूर्वम्, तदपि मन्ये इदमेव। अलङ्घनीया गुरवः, इष्टार्थसम्पत्त्या नियमेन निर्वृतिः' इति शोभना च वाणी, न चापि भावतो गुर्वाज्ञापराणां सञ्जायतेऽशोभनम्। एवमभिचिन्तयन् साशङ्केनेव भणितो महाराजेन—वत्स! अलमत्र चिन्तया, स्मर मम प्रार्थनाम्। ततः सैवैषा। नात्र भवतः कल्याणपरम्परां मुक्त्वाऽन्यादृशः परिणामः। अतोऽवश्यमेव कर्तव्यमेतत् कुमारेण। तत एतदाकर्ण्य 'अहो शोभनतरा वाणी' इति हर्षितमनसा जल्पितं कुमारेण—तात! यद् यूयमाज्ञापयत। एवं श्रुत्वा हर्षितो राजा। भणितं च तेन—साधु, उचितस्ते विवेकः, शोभना गुरुभक्तिः, भाजनं त्वं कल्याणानाम्। अन्यच्च, जानाम्यहं भवतो विशुद्धधर्मपक्षपातम् युक्तश्चैष सताम्। असारः संसारः, निदानं निर्वेदस्य, तथापि कुशलेनानुवर्तितव्यो

पदार्थों की प्राप्ति से इन दोनों को अवश्य ही आनन्दित करें। ऐसा करने पर उन राजा को, विशिष्ट लोगों को तथा कन्या के माता-पिता को अवश्य ही शान्ति उत्पन्न होगी।' यह सुनकर कुमार ने सोचा—ओह! यह ठीक नहीं है। संयोग दुःख के कारण हैं और यह बन्धन का वचन है। पहले प्रार्थना की गयी थी, फिर भी इसे ही मानता हूँ। बड़ों के वचन अलंघनीय होते हैं, 'इष्ट की प्राप्ति से निश्चित रूप से शान्ति होती है', यह वाणी ठीक है। भावपूर्वक बड़ों की आज्ञा में तत्पर लोगों का बुरा नहीं होता है, ऐसा सोचते समय मानो आशंका से मुक्त होकर महाराज ने कहा—'वत्स। चिन्ता मत करो, मेरी प्रार्थना का स्मरण करो। अतः यह वही है। यहाँ तुम्हारे कल्याण की परम्परा को छोड़कर अन्य प्रकार का परिणाम नहीं है, अतः कुमार को इसे अवश्य करना चाहिए। अनन्तर इसे सुनकर—'ओह वाणी अधिक सुन्दर है' इस प्रकार हर्षित मन से कुमार ने कहा—'पिताजी! जो आप आज्ञा दें।' यह सुनकर राजा हर्षित हुआ और उसने कहा—'ठीक है, ठीक है, तुम्हारा विवेक उचित है, बड़ों के प्रति भक्ति अच्छी है, तुम कल्याणों के पात्र हो। दूसरी बात यह है कि मैं धर्म के प्रति तुम्हारा पक्षपात जानता हूँ। यह सज्जनों के लिए उचित है। संसार असार है, वैराग्य का कारण है, तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोयधम्मो, कायव्वा कुसलसंतती, जइयव्वं परोवयारे, अणुयत्तियव्वो कुलक्कमो। एवं च अब्भत्थे लोयधम्मे परिणए एगंतेण निप्फन्ने पोरुसे पइट्ठिए वंसम्मि जाणिए लोयसारे परिणए वयम्मि अवगएहिं उवद्दवेहिं गुणभायणीकए अप्पाणे जुत्तं विसुद्धधम्मासेवणं। ता सोहणमणुचिट्ठियं कुमारेण। एवमेव भवओ परिणामसुंदरं भविस्सइ। एत्थंतरम्मि कच्छंतरगएण हरिसविसेसओ महया सद्देण जंपियं सिद्धत्थपुरोहिएण—भो अलं संदेहेण, अवस्समेव भविस्सइ। अणंतरं च वियंभिओ मंगलतूरसद्दो, गुलुगुलियं मत्तहत्थिणा, उग्घुट्ठो जयजयारवो बंदिलोएण। 'अणुगूलो सउणसंघाओ' त्ति हरिसिओ राया। भणियं च णेण—कुमार, अवस्समेव एयं एवं हविस्सइ, अणुगूलो सउणसंघाओ। अन्नं च, विसुद्धधम्मो विय कारणं चेव तुमं परमसुंदराण। गहियसउणत्थो हरिसिओ कुमारो। भणियं च णेण—नत्थि तायासीसाणमसज्झं। एत्थंतरम्मि पढियं कालनिवेयएण—

निण्णासिऊण तिमिरं मोहं च जणस्स संपयं सूरो।
नहमज्झत्थो चेट्ठाए धम्मकिरियं पवत्तेइ ॥६६७॥

लोकधर्मः, कर्तव्या कुशलसन्ततिः, यतितव्यं परोपकारे अनुवर्तितव्यः कुलक्रमः। एवं चाभ्यस्ते लोकधर्मे परिणते एकान्तेन निष्पन्ने पौरुषे प्रतिष्ठिते वंशे ज्ञाते लोकसारे परिणते वयसि अपगतैरुपद्रवैर्गुणभाजनीकृते आत्मनि युक्तं विशुद्धधर्मासेवनम्। ततः शोभनमनुष्ठितं कुमारेण। एवमेव भवतः परिणामसुन्दरं भविष्यति। अत्रान्तरे कक्षान्तरगतेन हर्षविशेषतो महता शब्देन जल्पितं सिद्धार्थपुरोहितेन – भो अलं सन्देहेन, अवश्यमेव भविष्यति। अनन्तरं च विजृम्भितो मङ्गलतूर्यशब्दः, गुलुगुलितं मत्तहस्तिना, उद्घुष्टो जयजयारवो बन्दिलोकेन। 'अनुकूलः शकुनसंघातः' इति हर्षितो राजा। भणितं च तेन—कुमार! अवश्यमेवैतद् एव भविष्यति, अनुकूलः शकुनसंघातः। अन्यच्च, विशुद्धधर्म इव कारणमेव त्वं परमसुन्दराणाम्। गृहीतशकुनार्थो हर्षितः कुमारः। भणितं च तेन—नास्ति ताताशिषामसाध्यम्। अत्रान्तरे पठितं कालनिवेदकेन –

निर्नाश्य तिमिरं मोहं च जनस्य साम्प्रतं सूरः।
नभोमध्यस्थश्चेष्टया धर्मक्रियां प्रवर्तयति ॥६६७॥

भी कुशल व्यक्ति को लोकधर्म का अनुसरण करना चाहिए, कुशल सन्तान उत्पन्न करना चाहिए, परोपकार में यत्न करना चाहिए, कुल परम्परा का अनुसरण करना चाहिए। इस प्रकार अभ्यस्त लोकधर्म के परिणत होने, अत्यन्त रूप से पौरुष की निवृत्ति होने, वंश की प्रतिष्ठा होने और संसार का सार जानने पर वृद्धावस्था में उपद्रवों से रहित होने तथा गुणों को आत्मा में पात्र बनाने पर विशुद्ध धर्म का सेवन करना ही युक्त है। अतः कुमार ने ठीक किया। इस तरह तुम्हारा परिणाम सुन्दर होगा।' इसी बीच दूसरे कमरे में गये हुए सिद्धार्थ पुरोहित ने विशेष हर्ष से जोर की आवाज में कहा –'अरे! सन्देह करना व्यर्थ है, अवश्य ही होगा।' अनन्तर मंगल बाजों का शब्द बढ़ा, मतवाले हाथी ने दहाड़ा, बन्दीजनों ने 'जय-जय' शब्द की घोषणा की। शकुनों का समूह अनुकूल है—इस प्रकार राजा हर्षित हुआ और उसने कहा – 'कुमार! अवश्य ही यह इस प्रकार होगा, शकुन अनुकूल हैं। दूसरी बात यह है कि विशुद्ध धर्म के समान अत्यधिक कल्याणों के कारण तुम ही हो।' शकुन के अर्थ को ग्रहण कर कुमार हर्षित हुआ और उसने कहा –'पिताजी के आशीर्वादों से कुछ भी असाध्य नहीं है। इसी बीच कालनिवेदक ने पढ़ा –

लोगों के अन्धकार और मोह को नाश कर अब सूर्य आकाश के मध्य में स्थित होकर चेष्टा द्वारा धर्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मज्जंति जणा केई देवाण करेंति केइ पूयाओ।
दाणाइ देंति केई गुरुसुस्सूसापरा केई ॥९९८॥
मोत्तूण झाणजोयं मुणओ वि जणस्सऽणुग्गहट्ठाए।
पिंडग्गहणत्थमन्नं जोयंतरमो पवज्जंति ॥९९९॥
इय नयरीए नराहिव जणसमुदाओ विसुद्धकिरियाए।
तुह मणुयजम्मसारं परमं सूएइ कल्लाणं ॥१०००॥

तओ एयमायण्णिय 'अए कहं मज्झण्हसमओ' त्ति जंपियं राइणा—कुमार, संपाडेहि उचियकरणिज्जं। 'जं ताओ आणवेइ' त्ति पणमिऊण निग्गओ कुमारो। भणियं च राइणा—भो भो अमच्चा, करावेह तुब्भे समंतओ कुमारविद्धिसरिसं वद्धावणाइ। अमच्चेहिं भणियं - जं देवो आणवेइ। पारद्धं च णेहिं, दवावियं महादाणं, कराविया नयरिसोहा, पूइयाओ देवयाओ, निवेइयं पउराण, सद्दावियाइं पायमूलाइं, दवाविया आणंदभेरी, पूराविया हरिससंखा, विन्नत्तमंतेउराण, समाहूया राइणो, निउत्ताइं पेच्छणयाइं। तओ थेववेलाए चेव पहट्ठपउरकलयलरवं पणच्चंतेहिं

मज्जन्ति जनाः केऽपि देवानां कुर्वन्ति केऽपि पूजाः।
दानादि ददति केऽपि गुरुशुश्रूषापराः केऽपि ॥९९८॥
मुक्त्वा ध्यानयोगं मुनयोऽपि जनस्यानुग्रहार्थम्।
पिण्डग्रहणार्थमन्यद् योगान्तर प्रपद्यन्ते ॥९९९॥
इति नगर्यां नराधिप! जनसमुदायो विशुद्धक्रियया।
तव मनुजजन्मसार परमं सूचयति कल्याणम् ॥१०००॥

तत एवमाकर्ण्य 'अरे कथं मध्याह्नसमयः' इति जल्पितं राज्ञा—कुमार, सम्पादय उचितकरणीयम्। 'यत् तात आज्ञापयति' इति प्रणम्य निर्गतः कुमारः। भणितं च राज्ञा—भो भो अमात्याः! कारयत यूयं समन्ततः कुमारवृद्धिसदृशं वर्द्धापनादि। अमात्यैर्भणितम्—यद् देव आज्ञापयति। प्रारब्धं च तैः, दापितं महादानम्, कारिता नगरीशोभा, पूजिता देवताः, निवेदितं पौराणाम्, शब्दायितानि पात्रमूलानि, दापिताऽऽनन्दभेरी, पूरिता हर्षशङ्खाः, विज्ञप्तमन्तःपुराणाम्। समाहूता राजानः, नियुक्तानि प्रेक्षणकानि। ततः स्तोकवेलायामेव प्रहृष्टपौरकलकलरवं प्रनृत्य-

---

क्रिया के प्रति प्रवृत्ति कर रहा है। कुछ लोग स्नान कर रहे हैं, कुछ देवों की पूजा कर रहे हैं, कुछ लोग दान दे रहे हैं, कुछ लोग गुरु की सेवा में रत हैं। ध्यानयोग को छोड़कर मुनि भी लोगों पर अनुग्रह करने के लिए भोजन ग्रहण करने हेतु दूसरे योग को प्राप्त हो रहे हैं। इस प्रकार हे राजन्! नगरी में विशुद्ध क्रिया के द्वारा जनसमुदाय आपके उत्कृष्ट मनुष्यजन्म के साररूप कल्याण को सूचित कर रहा है ॥९९७-१०००॥

अनन्तर यह सुनकर—'ओह, क्या मध्याह्न समय हो गया है?' राजा ने कहा—'कुमार! योग्य कार्यों को करो।' जो आज्ञा पिताजी—ऐसा कहकर, प्रणाम कर, कुमार निकल गया। राजा ने कहा—'हे हे मन्त्रियो! आप सभी लोग चारों ओर कुमार की बुद्धि के अनुरूप महोत्सवादि कराओ।' मन्त्रियों ने कहा—'महाराज की जो आज्ञा।' उन्होंने प्रारम्भ कर दिया, अत्यधिक दान दिलाया गया, नगरी की शोभा करायी गयी, देवताओं की पूजा की गयी। नगरवासियों से निवेदन किया गया, पात्रमूल (नर्तकों की एक जाति) बुलायी गयी। आनन्द की भेरी बजवायी गयी। हर्ष के शंख बजाये गये, अन्तःपुरिकाओं से निवेदन किया गया। राजाओं को बुलाया गया, खेल-तमाशे कराये गये। अनन्तर थोड़ी ही देर में, जबकि नगरवासी हर्षित होकर कोलाहल की ध्वनि कर रहे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पायमूलेहिं वज्जंतपुण्णाहतूरं गंभीरबंदिमंगलरवेण पवत्तपिट्ठाययरयं सोहियं सिंदूरधूलीए आउलं अंतेउरेहिं मिलंतरायलोयं महया विमद्देण विसेसियतियसलोयं जायं महावद्धावणयं। परिउट्ठो राया। गणाविओ वारेज्जदियहो। साहिओ जोइसिएहिं— देव, अज्जेव पंचमीए सोहणो त्ति। राइणा भणियं— सुट्ठु सोहणो। समाइट्ठा अमच्चा। करेह विवाहसंजत्तिं कुमारस्स। तेहिं भणियं— देव, धन्नो कुमारो, कया चेव संजत्ती। किमेत्थमवरं कायव्वं। तहावि जं देवो आणवेइ। आइट्ठो णेहिं भंडारिओ। भद्द, रयणायर, निरूवेहि पहाणमुहपंतीओ, समप्पेहि देवीण, नीणेहि नाणाहरणं, निउंजेहि दायए। तेण भणियं— जं अमच्चा आणवेंति, न एत्थ मे विलंबो। भणिओ चेलभंडारिओ— भद्द देवंगनिहि, पयडेहि देवंगाइं, संपाडेहि परियणस्स, संजत्तेहि रायदेवीण जोग्गाइं, कारावेहि उल्लोयं। तेण भणियं —जं अमच्चा आणवेंति, सव्वं सज्जमेयं। भणिओ महाउहवई— भद्द महामायलि, निरूवेहि महापहाणाउहाइं, समप्पेहि नरकेसरीणं, नीणेहि रहवरे, निउंजेहि विविहसोहाए। तेण भणियं— जं

द्भिः पात्रमूलैर्वाद्यमानपुण्याहतूर्यं गम्भीरबन्दिमङ्गलरवेण प्रवृत्तपिष्टातकरजः शोभितं सिन्दूरधूल्याऽऽकुलमन्तःपुरैर्मिलद्राजलोकं महता विमर्देन विशेषितत्रिदशलोकं जातं महावर्धापनकम्। परितुष्टो राजा। गणितो विवाहदिवसः। कथितो ज्योतिषिकैः— देव, अद्यैव पञ्चम्यां शोभन इति। राज्ञा भणितम्— सुष्ठु शोभनः। समादिष्टा अमात्याः। कुरुत विवाहसंयात्रां कुमारस्य। तैर्भणितम्— देव ! धन्यः कुमारः, कृतैव संयात्रा। किमत्रापरं कर्तव्यम्। तथापि यद् देव आज्ञापयति। आदिष्टस्तैर्भाण्डागारिकः— भद्र रत्नाकर ! निरूपय प्रधानमुखपंक्तीः (प्रधानशुभसामग्रीः ?), समर्पय देवीनाम्, नय (निष्कासय) नानाभरणम्, नियुङ्क्ष्व दायकान्। तेन भणितम्— यदमात्या आज्ञापयन्ति, नात्र मे विलम्बः। भणितश्चेलभाण्डागारिकः— भद्र ! देवाङ्गनिधे ! प्रकटय देवदूष्यानि, सम्पादय परिजनस्य, संयात्रय राजदेवीनां योग्यानि, कारयोल्लोचम्। तेन भणितम्— यदमात्या आज्ञापयन्ति; सर्वं सज्जमेतत्। भणितो महायुधपतिः- भद्र महामातले ! निरूपय महाप्रधानायुधानि, समर्पय नरकेसरिणाम्, नय (निष्कासय) रथवरान्, नियुङ्क्ष्व ! विविधशोभया (सुभटानाम् ?)। तेन भणितम् - यदमात्या आज्ञापयन्ति, सम्पन्नमेवैतद्। भणितो

थे, नर्तक नाच रहे थे, पुण्याह नामक बाजा बजाया जा रहा था, बन्दियों का गम्भीर मंगल शब्द हो रहा था, चूर्ण की धूलि उड़ रही थी, सिन्दूर की धूलि शोभित हो रही थी, अन्तःपुर आकुल हो रहा था, राजा लोग मिल रहे थे तथा अत्यधिक भीड़ के कारण स्वर्गलोक की विशेषता को जो उत्पन्न कर रहा था— ऐसा बहुत बड़ा उत्सव हुआ। राजा सन्तुष्ट हुआ। विवाह के दिन की गणना करायी। ज्योतिषियों ने कहा— 'महाराज ! आज पंचमी ही शुभ है।' राजा ने कहा— 'ठीक है, शुभ है।' मन्त्रियों को आज्ञा दी— 'कुमार की विवाहयात्रा कराओ।' उन्होंने कहा— 'महाराज ! कुमार धन्य हैं। विवाहयात्रा की ही जा चुकी और क्या करना है तथापि जो महाराज की आज्ञा।' उन्होंने (अमात्यों ने) भण्डारी को आज्ञा दी— 'भद्र रत्नाकर ! प्रधान शुभ सामग्री को दिखाओ, महारानियों को समर्पित करो, अनेक आभरणों को निकालो, देनेवालों को नियुक्त करो।' उसने कहा— 'जो आमात्य आज्ञा दें, इसमें मुझे विलम्ब नहीं है।' वस्त्रों के भण्डारी से कहा— 'भद्र देवांगनिधि ! वस्त्रों को निकालो, परिजनों को दो, महारानियों के योग्य वस्त्र भिजवाओ, चाँदनी लगवाओ।' उसने कहा— 'जो मन्त्री आज्ञा दें। ये सब तैयार हैं।' महायुधपति से कहा— 'भद्र महामातलि ! प्रमुख बड़े आयुधों को दिखलाओ,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमच्चा आणवेंति, संपन्नमेवेयं। भणिओ महापीलुवई—भद्द गयचिंतामणि, पयडेहि वेयंडे, संपाडेहि परियणस्स, संजत्तेहि वारुयाओ, करावेहि सव्वमुचियं। तेण भणियं—जं अमच्चा आणवेंति, न एत्थ विक्खेवो। भणिओ महासवई—भद्द केकाणधूलि, गच्छ निरूवेहि वंदुराओ, भूसेहि तुरए, पेसेहि उचियाण, ठावेहि नरिंदगोयरे। तेण भणियं—जं अमच्चा आणवेंति, सिद्धमेवेयं। एयं च आएस-समणंतरं जाव एयं संपज्जइ, ताव अवरेहि महया रिद्धिसमुदएण वहुयाजन्नावासे संपाडियं उचिय-करणिज्जं, निव्वत्तिओ महाउल्लोवो, ऊसियाइं मणितोरणाइं, निबद्धा कंचणधया, ठविया कणयवेई, कया कंचणमंगलकलसा, संजोइयं ण्हवणयं, पउत्तो कुलविही, ण्हावियाओ वहुयाओ, पूयावियाओ मयणं, कराविआओ रतिं, भूसावियाओ मणहरं। एत्थंतरम्मि 'आसन्नं पसत्थं लग्गं'सि पहाणजोइ-सियवयणाओ संपाडियसयलकुलविही पूजिऊण कुलदेवयाओ वंदिऊण गुरुयणं संमाणिऊण मित्ते पेच्छिऊण मंगलाणि विवाहगमणनिमित्तं समं असोयाईहिं समारूढो रहवरं कुमारो। उट्ठिओ आणंद-कलयलो, पहयाइं मंगलतूराइं, पणच्चियाओ वारविलासिणीओ, पगाइयाइं मंगलमंतेउराइं, चलिया

महापिलुपतिः (महाहस्तिपकः)—भद्र गजचिन्तामणे! प्रकटय गजान्, सम्पादय परिजनस्य, संयात्रय वारुकाः (हस्तीनीः), कारय सर्वमुचितम्। तेन भणितम्—यदमात्या आज्ञापयन्ति, नात्र विक्षेपः (विलम्बः)। भणितो महाश्वपतिः—भद्र केकाणधूले! (अश्वचूडामणे?) गच्छ, निरूपय मन्दुराः (वाजिशालाः), भूषय तुरगान्, प्रेषयोचितानाम्, स्थापय नरेन्द्रगोचरान्। तेन भणितम्—यदमात्या आज्ञापयन्ति, सिद्धमेवैतद्। एवं चादेशसमनन्तरं यावदेतत् सम्पद्यते, तावदपरैर्महता ऋद्धिसमुदयेन वधुकाजन्यावासे सम्पादितमुचितकरणीयम्। निर्वर्तितो महोल्लोचः, उत्सृतानि (बद्धानि) मणि-तोरणानि, निबद्धाः काञ्चनध्वजाः, स्थापिता कनकवेदिः, कृताः काञ्चनमङ्गलकलशाः, संयोजितं स्नपनकम्, प्रयुक्तः कुलविधिः, स्नपिते बधुके, पूजिते मदनम् कारिते रतिम् भूषिते मनोहरम्। अत्रान्तरे 'आसन्नं प्रशस्तं लग्नम्' इति प्रधानज्योतिषिकवचनाद् सम्पादितसकलकुलविधिः पूजयित्वा कुलदेवता वन्दित्वा गुरुजनं सम्मान्य मित्राणि प्रेक्ष्य मङ्गलानि विवाहगमननिमित्तं सममशोका-दिभिः समारूढो रथवरं कुमारः। उत्थित आनन्दकलकलः, प्रहतानि मङ्गलतूर्याणि, प्रनर्तिता

प्रधानपुरुषों को दो, श्रेष्ठ रथों को निकालो, अनेक प्रकार की शोभा से युक्त योद्धाओं को नियुक्त करो।' उसने कहा—'जो मन्त्रिगण आज्ञा दें। ये सब किया ही जा चुका है।' प्रधान महावत (महापिलुपति) से कहा—'भद्र गजचिन्तामणि! हाथियों को निकालो, परिजनों को दिखाओ, हथनियों को तैयार करो, सब ठीक करो।' उसने कहा—'जो मन्त्रिगण आज्ञा दें। देर नहीं है।' महाश्वपति (प्रधान घुड़सवार) से कहा—'भद्र अश्वचूडामणि (केकाणधूलि), जाओ, घुड़शालाओं को देखो, घोड़ों को विभूषित करो, योग्य घोड़ों को भेजो, राजमार्ग पर खड़ा करो।' उसने कहा—'जो आमात्य आज्ञा दें। यह किया ही जा चुका।' इस प्रकार के आदेश के बाद जब यह कार्य पूरा किया जाने लगा तब दूसरे लोगों ने बड़ी विभूति के साथ वधू के जनवास में योग्य कार्यों को कराया। बहुत बड़ी चाँदनी लगायी, मणिनिर्मित तोरण बाँधे गये, सोने की ध्वजाएँ बांधी गयीं, स्वर्णवेदी रखी गयीं, सोने के मंगलकलश स्थापित किये गये, स्नान का जल लाया गया, कुलविधि की गयी, दोनों वधुओं ने स्नान किया, कामदेव की पूजा की, रति की पूजा की, मनोहर आभूषण पहिने। इसी बीच शुभ लग्न (घड़ी) आ गयी—इस प्रकार प्रधान ज्योतिषी के कथनानुसार समस्त कुलाचार को कर, कुलदेवियों की पूजा कर, गुरुजनों की वन्दना कर, मित्रों का सम्मान कर, मांगलिक वस्तुओं को देखकर, विवाह के निमित्त जाने के लिए अशोक आदि के साथ कुमार श्रेष्ठ रथ पर आरूढ़ हुआ। आनन्द की ध्वनि उठी, मंगल बाजे बजाये गये, वेश्याओं ने नृत्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महारायाणो, पवियंभिओ भुयंगलोओ, आणंदिया नयरी, हरिसिओ राया। तओ महया विमद्देण संवेगभावियमई चिंतयंतो भवसरूवं थुव्वमाणो बंदीहिं पसंसिज्जमाणो लोएण पत्तो विवाहभवणं, ओइण्णो रहवराओ, संपाडिओ से विही, कयमणेणोचियं। दिट्ठाओ वहूओ अइसुंदराओ रूवेण। तत्थ विब्भमवई कणयावदाया, कामलया उण सामला, सिणिद्धदंसणाओ य दो वि नियवण्णेहिं। विब्भमवई गयदंतमई विय धीउल्लिया कुंकुमकयंगराया अच्चंतं विरायए, कामलया उण धोइंदणीलमणिमई विय सरसहरियंदणविलेवण त्ति। ताओ य दट्ठूण चिंतियं कुमारेण—अहो एयासिं कल्लाणा आगिई, पसत्थाइं अंगाइं, निक्कलंकं लायण्णं, विसुद्धो आभोओ, उवसंता मुत्ती, सुंदराइं लक्खणाइं, अणहा धीरया, उचिओ विणयमग्गो; अओ भवियव्वमेयाहिं पत्तभूयाहिं। एत्थंतरम्मि वत्तो हत्थग्गहो, जालिओ अग्गी, कयं जहोचियं, भमियाइं मंडलाइं, संपाडिया जणोवयारा, दिन्नं महादाणं, घोसिया वरवरिया, वत्तो विवाहजन्नो, संपाडिया सरीरट्ठिई। परिणओ वासरो, सीयलीहूयं रविबिंबं, संहरिओ किरणनियरो, समागया संझा, कणयरसरज्जिय पिव जायं नहंगणं, वियंभिया पुव्व-

---

वारविलासिन्यः, प्रगीतानि मङ्गलमन्तःपुराणि, चलिता महाराजाः, प्रविजृम्भितो भुजङ्गलोकः, आनन्दिता नगरी, हर्षितो राजा। ततो महता विमर्देन संवेगभावितमतिश्चिन्तयन् भवस्वरूपं स्तूयमानो बन्दिभिः प्रशस्यमानो लोकेन प्राप्तो विवाहभवनम्, अवतीर्णो रथवरात् सम्पादितस्तस्य विधिः, कृतमनेनोचितम्। दृष्टे वध्वौ अतिसुन्दरे रूपेण। तत्र विभ्रमवती कनकावदाता, कामलता पुनः श्यामला, स्निग्धदर्शने च द्वे अपि निजवर्णैः। विभ्रमवती गजदन्तमयीव पुत्रिका कुङ्कुमकृताङ्गरागाऽत्यन्तं विराजते, कामलता पुनर्धौतेन्द्रनीलमणिमयीव सरसहरिचन्दनविलेपनेति। ते च दृष्ट्वा चिन्तितं कुमारेण—अहो एतयोः कल्याणाऽऽकृतिः, प्रशस्तान्यङ्गानि, निष्कलङ्कं लावण्यम्, विशुद्ध आभोगः, उपशान्ता मूर्तिः, सुन्दराणि लक्षणानि, अनघा धीरता, उचितो विनतमार्गः, अतो भवितव्यमेताभ्यां पात्रभूताभ्याम्। अत्रान्तरे वृत्तो हस्तग्रहः, ज्वालितोऽग्निः, कृतं यथोचितम्, भ्रान्तानि मण्डलानि, सम्पादिता जनोपचाराः, दत्तं महादानम्, घोषिता वरवरिका, वृत्तो विवाहयज्ञः, सम्पादिता शरीरस्थितिः। परिणतो वासरः, शीतलीभूतं रविबिम्बम्, संहृतः किरणनिकरः, समागता सन्ध्या, कनकरसरञ्जितमिव जातं नभोङ्गणम्, विजृम्भिता पूर्वदिक्, समुद्गतश्चन्द्रः,

---

किया, अन्तःपुरिकाओं ने मंगल गीत गाये, महाराजा चले, विटों का समूह बढ़ा, नगरी आनन्दित हुई, राजा हर्षित हुआ। अनन्तर अत्यधिक भीड़ के साथ वैराग्य बुद्धि से संसार के स्वरूप का विचार करता हुआ, बन्दियों से स्तुति किया जाता हुआ, लोगों द्वारा प्रशंसा किया जाता कुमार विवाहभवन में आया, श्रेष्ठ रथ से उतरा, उसकी विधि का सम्पादन किया गया, इसने योग्य विधि पूरी की। अत्यन्त सुन्दर रूप में दोनों वधुएँ दिखाई दीं। उनमें विभ्रमवती स्वर्ण के समान स्वच्छ थी और कामलता श्यामवर्ण वाली थी, किन्तु अपने-अपने रंगों से दोनों मनोहरदर्शन वाली थीं। कुंकुम का अंगराग लगाये हुए विभ्रमवती हाथी-दाँत से बनी हुई गुड़िया के समान शोभित हो रही थी। सरस हरिचन्दन के विलेपन से युक्त कामलता स्वच्छ इन्द्रमनीलमणि से निर्मित गुड़िया के समान शोभित हो रही थी। उन दोनों को देखकर कुमार ने सोचा ओह! इनकी आकृति कल्याणमय है, अंग प्रशस्त हैं, सौन्दर्य निष्कलंक है, छवि विशुद्ध है, मूर्ति शान्त है, लक्षण सुन्दर हैं, निष्पाप धैर्य है, विनय का मार्ग योग्य है अतः इन दोनों को पात्र होना चाहिए। इसी बीच पाणिग्रहण हुआ, अग्नि जलाई गयी, यथायोग्य कार्य किये गये, मण्डल घुमाये गये (फेरे हुए), लोगों का आदर किया गया, महादान दिया गया, ईप्सित वस्तु के दान की घोषणा की गयी, विवाह-यज्ञ पूरा हुआ, शारीरिक क्रियाएँ कीं। दिन ढल गया, सूर्य ठण्डा पड़ गया। किरणें लुप्त हुईं, सन्ध्या आयी, आकाश का आँगन स्वर्णरस से रंजित हो गया,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिसा; समुग्गओ चंदो, उल्लसिया नहसिरी, उवारूढो पओसो।

एत्थंतरम्मि समं असोयाईहिं विरायंतमणिपईवं संगयं कुसुमोवयारेण सेवियं भमरावलीए पलंबमाणचंपयदामं वासियं पडवासेहिं संगयं पवरसयणीएण वियंभमाणसुरहिधूवं विहूसियं सपरिवाराहिं वहूहिं वासभवणमइयओ कुमारो। ससंभमाहिं अब्भुट्ठिओ वहूहिं। निसण्णो सयणीए। जहारुहं च निसण्णा असोयाई वयंसया। उवविट्ठा ससयपोट्टसन्निहे चित्तावडिमसूरयम्मि विब्भमवई कामलया य। कुंदलयामाणिणीपमुहो तेसिं सहियणो जहारुहं। नवरं विब्भमवईए कुंदलया कामलयाए य माणिणी सन्निहाणे उवविट्ठाओ। इंगियागारकुसलाहिं मुणियकालकायव्वयाहिं उवणीयमेयाहिं कुमारस्स तंबोलं, समप्पिया य कुंदलयाए वउलकुसुममाला। भणियं च णाए—कुमार, अच्चंताणुरायओ सहत्थगुत्था खु एसा तुह पिययमाए त्ति। भणिऊण समप्पिया कुमारस्स। पडिच्छिया य तेणं। माणिणीए वि उवणीयं माहवीकुसुमदामं। भणियं च णाए—कुमार, एयं पि एवं चेव; ता निहेउ एयाइं जहाजोयं कुमारो, करेउ एयासिं सफलमणुरायं ति। कुमारेण भणियं—

उल्लसिता नभःश्रीः, उपारूढः प्रदोषः।

अत्रान्तरे सममशोकादिभिर्विराजद्मणिप्रदीपं संगतं कुसुमोपचारेण सेवितं भ्रमरावल्या, प्रलम्बमानचम्पकदाम वासितं पटवासैः संगतं प्रवरशयनीयेन विजृम्भमाणसुरभिधूपं विभूषितं सपरिवाराभ्यां वधूभ्यां वासभवनं गतः कुमारः। ससम्भ्रमाभ्यामभ्युत्थितो वधूभ्याम्। निषण्णः शयनीये। यथार्हं च निषण्णा अशोकादयो वयस्याः। उपविष्टा शशकोदरसन्निभे चित्रपटीमसूरके विभ्रमवती कामलता च। कुन्दलतामानिनीप्रमुखस्तयोः सखीजनो यथार्हम्। नवरं विभ्रमवत्याः कुन्दलता कामलतायाश्च मानिनी सन्निधाने उपविष्टे। इङ्गिताकारकुशलाभ्यां ज्ञातकालकर्तव्याभ्यामुपनीतमेताभ्यां कुमारस्य ताम्बूलम्, समर्पिता च कुन्दलतया बकुलकुसुममाला। भणितं च तया—कुमार! अत्यन्तानुरागतः स्वहस्तग्रथिता खल्वेषा तव प्रियतमयेति। भणित्वा समर्पिता कुमारस्य। प्रतीप्सिता च तेन। मानिन्याऽपि उपनीतं माधवीकुसुमदाम। भणितं च तया—कुमार! एतदप्येवमेव, ततो निदधातु एते यथायोगं कुमारः, करोत्वेतयोः सफलमनुराग-

पूर्व दिशा खुली, चन्द्रमा उदित हुआ, आकाशरूपी लक्ष्मी शोभायमान हुई, रात्रि का प्रथम प्रहर उत्पन्न हुआ।

इसी बीच अशोकादि (मित्रों) के साथ कुमार शयनगृह गया। वह शयनगृह मणियों के दीपकों से सुशोभित हो रहा था, फूलों की सजावट से युक्त था, भ्रमरों की पंक्ति से सेवित था। वहाँ चम्पे की मालाएँ लटक रही थीं। वह सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित था। उत्कृष्ट शय्या से युक्त था। सुगन्धित धूप वहाँ बढ़ रही थी तथा सपरिवार दोनों वधुओं से विभूषित था। शीघ्र ही दोनों वधुएँ उठ गयीं। कुमार शय्या पर बैठा। यथायोग्य स्थान पर अशोकादि मित्र बैठे। चन्द्रमा के समान चित्रपट वाले गद्दे पर विभ्रमवती और कामलता बैठीं। कुन्दलता और मानिनी प्रमुख उन दोनों की सखियाँ यथायोग्य स्थानों पर बैठीं। विभ्रमवती के पास केवल कुन्दलता और कामलता के पास मानिनी बैठीं। इशारे और संकेत में कुशल ये दोनों कर्तव्य का समय जानकर कुमार को पान लायीं और कुन्दलता ने बकुल के फूलों की माला समर्पित की और उसने कहा—'कुमार! अत्यन्त अनुराग से आपकी प्रियतमा ने इसे अपने हाथ से गूँथा है'—कहकर कुमार को समर्पित की। कुमार ने स्वीकार कर ली। मानिनी भी माधवी पुष्पों की माला लायी और उसने कहा—'कुमार! यह भी इसी प्रकार की है। अतः कुमार इन दोनों को यथायोग्य धारण करें। इन दोनों के अनुराग को सफल करें।' कुमार ने कहा—'इन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भोईओ, ममोवरि एयासिमणराओ त्ति चिंतियव्वं। कुंदलयाए भणियं—चिंतियमिणं ति। सुणेउ कुमारो। जयप्पभीइमेव बंदिणा समुग्घोसिज्जमाणं सुयं कुमारनामयं रायधूयाहिं, तयप्पभीइमेव गहियाओ पमोएण विसाएण य थुणंति रायकन्नयाजम्मं निंदंति य, अब्भसंति कलाकलावं चयंति य, कुणंति कुमारसंकहं न कुणंति य, भिज्जंति देहेण, वड्ढंति विब्भमेहिं, मुच्चंति लज्जाए, घेप्पंति उव्वेवएण। एयं च पेच्छिऊण 'किमेयं' ति विसण्णो राया। निउणसहियायणाओ य निसुओ एस वइयरो। तओ 'थाणे अहिलासो' त्ति हरिसनिब्भरेण पेसियाओ इहं। आगच्छमाणीओ य 'संपन्नमम्हाण समीहियब्भहियं' ति मयणगोयराईयवियारसुहसमेयाओ पवड्ढमाणेण सुहाइसएण इह संपत्ताओ त्ति। चिंतियं च एयासिमणुरायमंतरेण। कुमारेण चिंतियं—हंत अत्थि एयासि ममोवरि अणुराओ, अणुरत्ता य पाणिणो आयइं न गणेंति, आयण्णंति वयणं, गेण्हंति निव्वियप्पं, पयट्टंति भावेण, संपाडेंति किरियाए। ता इमं एत्थ पत्तयालं। करेमि एयासि धम्मदेसणं ति। चिंतिऊण जंपियं कुमारेण—भोईओ, किमेवमेयं, अत्थि तुम्हाण ममोवरि अणुराओ त्ति।

मिति। कुमारेण भणितम्—भवत्यौ! ममोपर्येतयोरनुराग इति चिन्तयितव्यम्। कुन्दलतया भणितम्—चिन्तितमिदमिति। शृणोतु कुमारः। यत्प्रभृत्येव बन्दिना समुद्घोष्यमाणं श्रुतं कुमारनामकं राजदुहितृभ्यां तत्प्रभृत्येव गृहीते प्रमोदेन विषादेन च स्तुतो राजकन्यकाजन्म निन्दतश्च, अभ्यस्यतः कलाकलापं त्यजतश्च, कुरुतः कुमारसंकथां न कुरुतश्च, क्षीयेते देहेन, वर्धेते विभ्रमैः मुच्येते लज्जया, गृह्येते उद्वेगेन। एतच्च प्रेक्ष्य 'किमेतद्' इति विषण्णो राजा। निपुणसखीजनाच्च निश्रुत एष व्यतिकरः। ततः 'स्थानेऽभिलाषः' इति हर्षनिर्भरेण प्रेषिते इह। आगच्छन्त्यौ च 'सम्पन्नमावयोः समीहिताभ्यधिकम्' इति मदनगोचरादिकविकारसुखसमेते प्रवर्धमानेन सुखातिशयेनेह सम्प्राप्ते इति। चिन्तितं चैतयोरनुरागस्यान्तरेण। कुमारेण चिन्तितम्—हन्त अस्त्येतयोर्ममोपर्यनुरागः, अनुरक्ताश्च प्राणिन आयतिं न गणयन्ति, आकर्णयन्ति वचनम्, गृह्णन्ति निर्विकल्पम्, प्रवर्तन्ते भावेन, सम्पादयन्ति क्रियया—तत इदमत्र प्राप्तकालम्। करोम्येतयोर्धर्मदेशनामिति। चिन्तयित्वा जल्पितं कुमारेण—भवत्यौ! किमेवमेतद्, अस्ति युवयोर्ममोपर्यनुराग इति। एतदाकर्ण्य

दोनों का मेरे ऊपर अनुराग है ऐसा आप दोनों को सोचना चाहिए।' कुन्दलता ने कहा—'यही सोचा है। कुमार सुनिए! जब से बन्दी के द्वारा घोषित किये जाते हुए कुमार के नाम को दोनों राजपुत्रियों ने सुना उसी समय से ही प्रमुदित होकर स्तुति की और विषादयुक्त होकर राजकन्या के रूप में जन्म लेने की निन्दा की। कलाओं का अभ्यास करना छोड़ दिया, (बस) कुमार की कथा करती रहीं, और कुछ नहीं। दोनों की देह क्षीण होती गयी, विभ्रम बढ़ता गया, लज्जा छूटती गयी और उद्वेग ने ग्रहण कर लिया। यह देखकर 'यह क्या!' इस प्रकार महाराज खिन्न हुए। निपुण सखीजनों से यह घटना सुनी। अनन्तर 'उचित स्थान पर अभिलाषा की' इस प्रकार हर्ष से भरकर इन दोनों को यहाँ भेज दिया। आकर 'हम दोनों का मनोरथ अत्यधिक रूप से पूर्ण हो गया' इस प्रकार काम के मार्ग आदि विकाररूप सुखों से युक्त होकर बड़े हुए सुख की अधिकता से दोनों यहाँ आयी हैं। इन दोनों के अनुराग के विषय में जान लिया।' कुमार ने सोचा—हाय! इन दोनों का मेरे ऊपर अनुराग है और अनुरक्त प्राणी फल को नहीं मानते हैं, वचनों को सुनते हैं, निर्विकल्प को ग्रहण करते हैं, भाव से प्रवृत्त होते हैं, क्रिया से सम्पादन करते हैं। तो यहाँ समय आ गया है। इन दोनों को धर्मोपदेश देता हूँ—ऐसा सोचकर कुमार ने कहा—'क्या यह ठीक है कि आप दोनों का मेरे ऊपर अनुराग है?' यह सुनकर हर्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एयमायण्णिऊण हरिसविसायसारं 'हंत किमेयमतिगंभीरं मंतियं'ति चिंतिऊण वामचलणंगुट्ठयालिहियमणिकोट्टिमं सविसेसबंधुराहिं न जंपियमिमीहिं। कुंदलयाए भणियं—कुमार, अभणमाणीहिं पि वायाए साहियमिमीहिं कुमारस्स अहिप्पेयमिमिणा संभमेण; दिव्वबुद्धीए अवहारेउ कुमारो। कुमारेण भणियं—भोईओ, जइ एवं, ता सुणेह। जस्स जं पइ अहियपवत्तणिच्छा, तस्स तं पइ कोइसो अणुराओ त्ति। माणिणीए भणियं—कुमार, कहमियमहियं ति नावगच्छामि। कुमारेण भणियं—भोइ, सुण एत्थ नायं।

अत्थि कामरूवविसए मयणउरं नाम नयरं। तत्थ पज्जुन्नाहिहाणो राया। रई नाम से भारिया। ताणं च विसयसुहमणुहवंताण अइक्कंतो कोइ कालो। अन्नया य गओ राया आसवाहणियाए। रईए य विइत्तनिज्जूहट्ठियाए दिसावलोयणसमयम्मि दिट्ठो रायमग्गवत्ती देवयाययणपत्थिओ विमलमइसत्थवाहपुत्तो सुहंकरो नाम सेट्ठी जुवाणओ त्ति। तं च दट्ठूण अविवेयसामत्थओ अब्भत्थयाए गामधम्माण समुप्पन्नो तीए तस्सोवरि अहिलासो। पुलइओ सविब्भमं। एसा वि य समागया

हर्षविषादसारं 'हन्त किमेतदतिगम्भीरं मन्त्रितम्' इति चिन्तयित्वा वामचरणाङ्गुष्ठलिखितमणिकुट्टिमं सविशेषबन्धुराभ्यां न जल्पितमाभ्याम्। कुन्दलतया भणितम्- कुमार! अभणन्तीभ्यामपि वाचा कथितमाभ्यां कुमारस्याभिप्रेतमनेन सम्भ्रमेण, दिव्यबुद्ध्याऽवधारयतु कुमारः। कुमारेण भणितम्—भवत्यौ! यद्येवं ततः शृणुतम्। यस्यायं प्रत्यहितप्रवर्तनेच्छा तस्य तं प्रति कीदृशोऽनुराग इति। मानिन्या भणितम्—कुमार! कथमिदमहितमिति नावगच्छामि। कुमारेण भणितम्—भवति! शृण्वत्र ज्ञातम्।

अस्ति कामरूपविषये मदनपुरं नाम नगरम्। तत्र प्रद्युम्नाभिधानो राजा—रतिर्नाम तस्य भार्या। तयोश्च विषयसुखमनुभवतोरतिक्रान्तः कोऽपि कालः। अन्यदा च गतो राजाऽश्ववाहनिकया। रत्या च विचित्रनिर्यूहस्थितया दिगवलोकनसमये दृष्टो राजमार्गवर्ती देवतायतनप्रस्थितो विमलमतिसार्थवाहपुत्रः शुभङ्करो नाम श्रेष्ठी युवेति। तं च दृष्ट्वाऽविवेकसामर्थ्यतोऽभ्यस्ततया ग्राम्यधर्माणां समुत्पन्नस्तस्यास्तस्योपर्यभिलाषः। दृष्टः सविभ्रमम्। एषाऽपि च समागता तस्य दृष्टि-

---

और विषाद से युक्त होकर 'हाय, यह क्या गम्भीर बात पूछी'—ऐसा सोचकर बायें चरण के अँगूठे से मणिजटित फर्श को कुरेदते हुए विशेष रूप से झुकी हुई ये दोनों नहीं बोलीं। कुन्दलता ने कहा—'कुमार! वाणी से न कहती हुई भी इन दोनों ने कुमार के अभिप्रेत को घबड़ाहट से कह दिया है। दिव्यबुद्धि से कुमार जान लें।' कुमार ने कहा—'यदि ऐसा है तो आप दोनों सुनिए। जिसकी जिसको अहित में प्रवृत्त कराने की इच्छा हो उसका उसके प्रति अनुराग कैसा?' मानिनी ने कहा—'कुमार! यहाँ अहित कैसा? मैं नहीं समझी।' कुमार ने कहा—'आप इस विषय में जानी हुई बात सुनिए।

कामरूप देश में मदनपुर नाम का नगर था। वहाँ पर प्रद्युम्न नाम का राजा था। उसकी रति नाम की पत्नी थी। उन दोनों का विषय-सुख का अनुभव करते हुए कुछ समय बीत गया। एक बार राजा अश्ववाहनिका (इक्के) से गया। विचित्र दरवाजे में खड़ी हुई रति ने दिशाओं को देखते हुए सड़क पर चलकर देवमन्दिर की ओर प्रस्थान करते हुए विमलमति सार्थवाह (व्यापारी) के पुत्र शुभंकर नामक युवा सेठ को देखा। उसे देखकर अविवेक की सामर्थ्य तथा विषयाभिलाओं के अभ्यास से उसकी उस पर अभिलाषा हो गयी। सविलास देखा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्स दिट्ठिगोयरं, मोहदोसेण निरूविया, अज्झोववन्नो तीए। अहो चित्तन्नुओ त्ति परितुट्ठा रई। ठिओ सो एगदेसे मोहदोसेण, दुन्निवारणीओ मयणपसरो त्ति। 'हला, आणेहि एयं जुवइजणमणसुहं जुवाणयं'ति भणिऊण पेसिया रईए अभिन्नरहस्सा जालिणी नाम चेडी। 'सुबुज्झाव(वि)याणि एत्थ वइयरे कामिहिययाइं' ति पयारिऊणमाणिओ य णाए, पेसिओ वासहरे, उवविट्ठो पल्लंके। पणामियं से रईए तंबोलं, अद्धगहियमणेण। एत्थंतरम्मि सुओ बंदिकलयलो। 'समागओ राय' त्ति भीया रई। 'न एत्थ अन्नो उवाओ' त्ति पेसिओ वच्चहरए। पविट्ठो राया, उवविट्ठो पल्लंके, ठिओ कंचि वेलं। भणियं च णेण—अरे सद्दावेह वारियं, पविसामो पावक्खालयं ति। सद्दिओ वारिओ। सुयमिणं सुहंकरेण। 'नियमओ वावाइज्जामि' त्ति अच्चंतभीएण जीवियाभिलासिणा अगाहे वच्चकूवे निच्चंधयारम्मि अच्चंतदुरहिगंधे निवासे किमिउलाण पवाहिओ अप्पा। निवडिओ वच्चहरयाओ कंठए, भरिओ असुइएण, विंधिओ किमीहिं, निरुद्धो दिट्ठिपसरो, संकोडियं अंगं, उइण्णा वेयणा, आउलीहूओ दढं, गहिओ संमोहेण। इओ य सो राया पच्चुवेक्खियं अंगरक्खेहिं पविट्ठो वच्चहरयं।

गोचरम्। मोहदोषेण निरूपिता, अध्युपपन्नस्तस्याम्। 'अहो चित्तज्ञ' इति परितुष्टा रतिः। स्थितः स एकदेशे मोहदोषेण, दुर्निवारणीयो मदनप्रसर इति 'हला (सखि), आनयैतं युवतिजनमनःसुखं युवानम्' इति भणित्वा प्रेषिता रत्याऽभिन्नरहस्या जालिनी नाम चेटी। 'सुबोधितानि अत्र व्यतिकरे कामिहृदयानि' इति प्रतार्यानीतश्चानया, प्रेषितो वासगृहे, उपविष्टः पल्यङ्के। अर्पितं तस्य रत्या ताम्बूलम्, अर्धगृहीतमनेन। अत्रान्तरे श्रुतो बन्दिकलकलः। 'समागतो राजा' इति भीता रतिः। 'नात्रान्य उपायः' इति प्रेषितो वर्चोगृहे। प्रविष्टो राजा, उपविष्टः पल्यङ्के, स्थितः काञ्चिद् वेलाम्। भणितं चानेन—अरे शब्दाययत नापितम्। प्रविशामः पायुक्षालकमिति। शब्दायितो नापितः। श्रुतमिदं शुभङ्करेण। 'नियमतो व्यापाद्ये' इति अत्यन्तभीतेन जीविताभिलाषिणा अगाधे वर्चःकूपे नित्यान्धकारेऽत्यन्तदुरभिगन्धे निवासे कृमिकुलानां प्रवाहित आत्मा। निपतितो वर्चोगृहात् कण्ठके, भृतोऽशुचिना, विद्धः कृमिभिः; निरुद्धो दृष्टिप्रसरः, संकोटितमङ्गम्, उदीर्णा वेदना, आकुलीभूतो दृढम्, गृहीतः सम्मोहेन। इतश्च स राजा प्रत्युपेक्षितं (शोधितं) अङ्गरक्षकैः प्रविष्टो वर्चोगृहम्।

यह भी उसके दृष्टिगोचर हुई। मोह के दोष से देखा, उसके प्रति आसक्त हो गया। 'ओह चित्त को जानने वाला है'—इस प्रकार रति सन्तुष्ट हुई। वह मोह के दोष से एक ओर खड़ा हो गया। काम का विस्तार कठिनाई से रोका जाने योग्य होता है। 'सखी! युवतियों के मन को सुख देनेवाले इस युवक को लाओ'—ऐसा कहकर रति ने रहस्य का भेदन न करनेवाली जालिनी नामक दासी को भेजा। 'इस अवसर पर कामियों के हृदय जागृत हैं' अतः छलपूर्वक यह ले आयी, शयनगृह में भेज दिया, पलग पर बैठ गया। रति ने उसे पान दिया। इसने आधा (पान) लिया। इसी बीच बन्दियों का कोलाहल सुनाई दिया। 'राजा आ गये हैं'—इस प्रकार रति भयभीत हुई। यहाँ अन्य कोई उपाय नहीं है अतः शौचालय में भेज दिया। राजा प्रविष्ट हुआ, पलग पर बैठा, कुछ समय बैठा रहा। इसने कहा—'अरे! नाई को बुलाओ। शौचालय में प्रवेश करें।' नाई को बुलाया। यह शुभंकर ने सुना। 'निश्चित रूप से मारा जाऊँगा'—अत्यन्त भयभीत होकर जीने की अभिलाषा से अगाध वर्चकूप (शौचालय का गड्ढा, मोरी) में जहाँ पर कि सदैव अन्धकार रहता था, कीड़ों के समूह का निवास था अपने आपको डाल दिया। शौचालय से कण्ठक (मोरी) में गिर गया, अपवित्र पदार्थ से भर गया, कीड़ों से बिंध गया, नेत्रों का विस्तार रुक गया, देह सिकुड़ गयी, वेदना उत्पन्न हुई, अत्यधिक आकुल हो गया, मूच्छित हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कया सरीरट्ठिई। निग्गओ वच्चहराओ, ठिओ रईए सह चित्तविणोएण। अइक्कंतो वासरो। ठिओ अत्थाइयाए। एत्थंतरम्मि निरूवाविओ सुहंकरो रईए। न दिट्ठो य तहियं भणियं च णाए—हला जालिणि, कहं पुण सो भविस्सइ। तीए भणियं—देवि, भयाहिहूओ नूणं पवाहिऊण अप्पाणयं वच्चकूवे मओ भविस्सइ। रईए भणियं—एवमेयं, कहमन्नहा अदंसणं ति। अवगया तच्चिता। इओ य सो सुहंकरो तम्मि वच्चकूवे तहादुक्खपीडिओ भवियव्वयानिओएण विइत्तकम्मवसवत्ती असुचिरसपाणभोयणो गमिऊण कंचि कालं विसोहणनिमित्तं फोडिए वच्चहरए असुइनिग्गमणमग्गेण वावन्नदेहच्छवी पणट्ठनहरोमो निग्गओ रयणीए। पक्खालिओ कहंचि अप्पा। महया परिकिलेसेण गओ निययं वणं। 'को एसो अमाणुसो' त्ति भीओ से परियणो। भणियं सुहंकरेण—मा बीहेह, सुहंकरो अहं। विमलमइणा भणियं—पुत्त, किं तए कयं, जेण ईइसो जाओ; किं वा तुज्झ विमोक्खणं कीरउ। सुहंकरेण भणियं—ताय, अलं मज्झ मरणासंकाए। सो च्चेव अहं। तं च कयं, जेण ईइसो जाओ म्हि; तं साहेमि मंदभग्गो तायस्स। किं तु विवित्तमाइसउ ताओ। अवगओ परियणो। 'न

कृता शरीरस्थितिः। निर्गतो वर्चोगृहात्, स्थितो रत्या सह चित्रविनोदेन। अतिक्रान्तो वासरः स्थित आस्थानिकायाम्। अत्रान्तरे निरूपितः शुभङ्करो रत्या। न दृष्टश्च तत्र। भणितं च तया—हला जालिनि! कथं पुनः स भविष्यति। तया भणितम्—देवि! भयाभिभूतो नूनं प्रवाह्यात्मानं वर्चःकूपे मृतो भविष्यति। रत्या भणितम्—एवमेतत्, कथमन्यथाऽदर्शनमिति। अपगता तच्चिन्ता। इतश्च स शुभङ्करस्तस्मिन् वर्चःकूपे तथादुःखपीडितो भवितव्यतानियोगेन विचित्रकर्मवशवर्ती अशुचिरसपानभोजनो गमयित्वा कञ्चित् कालं विशोधननिमित्तं स्फोटिते वर्चोगृहेऽशुचिनिर्गमनमार्गेण व्यापन्नदेहच्छविः प्रनष्टनखरोमा निर्गतो रजन्याम्। प्रक्षालितः कथंचिदात्मा। महता परिक्लेशेन गतो निजभवनम्। 'क एषोऽमानुषः' इति भीतस्तस्य परिजनः। भणितं शुभङ्करेण—मा बिभीत, शुभङ्करोऽहम्। विमलमतिना भणितम्—पुत्र! किं त्वया कृतम्, येनेदृशो जातः, किं वा तव विमोक्षणं क्रियताम्। शुभङ्करेण भणितम्—तात! अलं मम मरणाशङ्कया। स एवाहम्। तच्च कृतं येनेदृशो जातोऽस्मि, तत् कथयामि मन्दभाग्यस्तातस्य, किन्तु विविक्तमादिशतु तातः।

गया। इधर वह राजा अंगरक्षकों से शोधित शौचालय में प्रविष्ट हुआ। शारीरिक क्रिया की। शौचालय से निकल आया, रति के साथ अनेक प्रकार के विनोद करता हुआ बैठा। दिन बीत गया। राजा राजसभा में बैठा। इसी बीच रति ने शुभंकर को देखा। वहाँ दिखाई नहीं दिया। उसने कहा—'सखी जालिनी! उसका क्या हुआ होगा?' उसने कहा—'महारानी! भय से अभिभूत होकर निश्चित रूप से अपने को मोरी में गिराकर मर गया होगा।' रति ने कहा—'यही बात है, नहीं तो दिखाई क्यों नहीं दिया?' उसकी चिन्ता दूर हुई। इधर वह शुभंकर उस शौचालय के गड्ढे में उस प्रकार के दुःख से पीड़ित होकर होनहार के कारण विचित्र कर्मों के वश होकर, अपवित्र का रसपान कर कुछ समय बिताकर धोने के लिए शौचालय के खुलने पर अशुचि के निकलने के मार्ग से रात्रि में निकल गया। उसके शरीर की प्रभा मारी गयी (नष्ट हो गयी), नाखून और रोम नष्ट हो गये। किसी प्रकार अपने को धोया। बड़े क्लेश से अपने भवन गया। 'यह कौन अमानुष है'—इस प्रकार उसके परिजन भयभीत हुए। शुभंकर ने कहा—'मत डरो, मैं शुभंकर हूँ।' विमलमति ने कहा—'पुत्र! तुमने क्या किया जिससे ऐसे हो गए? अथवा तुम्हें छोड़ दें?' शुभंकर ने कहा—'पिता जी! मेरे मरण की शंका मत करो। मैं वही हूँ। वह किया, जिससे ऐसा हो गया हूँ, मन्दभाग्य मैं वह सब पिताजी से कहता हूँ, किन्तु पिताजी! एकान्त में मिलने की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एत्थ अन्नो उवाओ, जहट्ठियमेव साहेमि'त्ति चिंतिऊण साहियमणेण (पवेसाइनिग्गमणपज्जवसाणं निययवुत्तंतं)। 'अहो अकज्जासेवणसंकप्पफलं' ति संविग्गो से पिया। पेसिओ णेण गेहं। कओ निवायथामे, संतप्पिओ सहस्सपागाईहिं, कालपरियाएण समागओ पुव्वावत्थं। उचियसमएण पयट्टो देवयाययणं, ओइण्णो रायमग्गे, दिट्ठो रईए। तहेव सामपुव्वयं पेसिया से जालिणी। मोहदोसेण समागओ सुहंकरो। आगयमेत्ते य समागओ राया। तहेव जायाइं वच्चकूवे पडणनिग्गमणाइं। पुणो पउणो पुणो दिट्ठो, पुणो पेसिया पुणो वि हम्मिओ। एवं पुणो बहुसो त्ति।

तओ पुच्छामि तुब्भे, किं तीए रईए तम्मि सुहंकरे अणुराओ अत्थि किं वा नत्थि त्ति। माणिणीए भणियं—कुमार, परमत्थओ नत्थि। बुद्धिरहिया य सा रई; जेण न निरूवेइ वत्थु, न निहालए नियभावं, न पेच्छए सपरतंतयं, न चिंतेइ तस्सायइं ति। कुमारेण भणियं—भोइ, जइ एवं. ता ममम्मि वि नत्थि एयासिमणुराओ, बुद्धिरहियाओ य एयाओ। जेण असुंदरे पयईए निबंधणे इस्साईणं चंचले सरूवेण इच्छंति तुच्छभोए त्ति; अओ न निरूवेंति वत्थुं। तहा सव्वुत्तमं माणुसत्तं

अपगतः परिजनः। 'नात्रान्य उपायः, यथास्थितमेव कथयामि' इति चिन्तयित्वा कथितोऽनेन (प्रवेशादिनिर्गमनपर्यवसानो निजवृत्तान्तः)। 'अहो अकार्यासेवनसंकल्पफलम्' इति संविग्नस्तस्य पिता। प्रेषितस्तेन गेहम्। कृतो निवातस्थाने, सन्तर्पितः सहस्रपाकादिभिः, कालपर्यायेण समागतः पूर्वावस्थाम्। उचितसमयेन प्रवृत्तो देवतायतनम्, अवतीर्णो राजमार्गे, दृष्टो रत्या। तथैव सामपूर्वकं प्रेषिता तस्य जालिनी। मोहदोषेण समागतः शुभङ्करः। आगतमात्रे च समागतो राजा। तथैव जातानि वर्चःकूपे पतननिर्गमनानि। पुनः प्रगुणः पुनः दृष्टः, पुनः प्रेषिता, पुनरपि गतः। एवं पुनर्बहुश इति।

ततः पृच्छामि युवाम्, किं तस्या रत्यास्तस्मिन् शुभङ्करेऽनुरागोऽस्ति किं वा नास्तीति। मानिन्या भणितम्—कुमार! परमार्थतो नास्ति। बुद्धिरहिता च सा रतिः, येन न निरूपयति वस्तु, न निभालयति निजभावम्, न प्रेक्षते स्वपरतन्त्रताम्, न चिन्तयति तस्यायतिमिति। कुमारेण भणितम्—भवति! यद्येवम्, ततो मय्यपि नास्त्येतयोरनुरागः, बुद्धिरहिते चैते। येनासुन्दरान् प्रकृत्या निबन्धनानीर्ष्यादीनां चञ्चलान् स्वरूपेणेच्छतस्तुच्छभोगानिति, अतो न निरूपयतो वस्तु।

आज्ञा दीजिए। परिजन चले गये। 'यहाँ पर अन्य कोई उपाय नहीं है अतः ठीक ठीक कहता हूँ'—ऐसा सोचकर इसने प्रवेश से लेकर निकलने तक का वृत्तान्त कहा। 'ओह! अकार्य के सेवन करने के संकल्प का फल'—इस प्रकार उसके पिता घबराये। उन्होंने घर भेजा। शान्त स्थान में रखा, सहस्रपाक (हजार औषधियों से बनाया हुआ एक प्रकार का तेल) आदि से सेंक किया। समय पाकर पहली अवस्था में आ गया। योग्य समय पर देवमन्दिर गया, राजमार्ग (सड़क) पर उतरा, रति ने देखा। उसी प्रकार समझाकर उसने जालिनी को भेजा। मोह के दोष से शुभंकर आया। आते ही राजा आ गया। उसी प्रकार मलाशय में गिरना और निकलना। फिर से ठीक हुआ। रति ने पुनः देखा, फिर से जालिनी को भेजा, फिर से गया। इस प्रकार पुनः अनेक बार हुआ।

अतः आप दोनों से पूछता हूँ, उस रति का शुभंकर में अनुराग है अथवा नहीं? वह रति बुद्धिहीन है, जिस कारण वस्तु को नहीं देखती है, अपने भावों को नहीं पहचानती है, अपनी परतन्त्रता को नहीं देखती है, उसका भावीफल नहीं देखती है। कुमार ने कहा—'भवती! यदि ऐसा है तो मेरे प्रति भी इन दोनों का अनुराग नहीं है और ये दोनों बुद्धिरहित हैं, जिससे स्वभाव मे असुन्दर बन्धनों को ईर्ष्यादि के चंचल स्वरूप से तुच्छ भोगों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुल्लहं भवसमुद्दे पसाहणं नेव्वाणस्स न निउंजेंति धम्मे त्ति; अओ न निहालेंति नियभावं। तहा भुवणडामरो मच्चू अइकूरो पयईए, गोयरे तस्स एयाओ न चितयंति अत्तयं ति; अओ न पेच्छंति सपरतंतयं। तहाऽसुंदरं विसयविसं अइमोहणं जीवाणं हेऊ गब्भनिरयस्स, निउंजंति मं तत्थ त्ति; अओ न चितेंति मज्झायइं। ता एवं ववत्थिए अहियपवत्तणेण भण कहं एयासि परमत्थओ ममोवरि अणुराओ त्ति। एयमायण्णिऊण संविग्गाओ वहूओ, जाया विसुद्धभावणा, खविओ कम्मरासी पावियं देसचरणं। तओ सद्धाइसएण सबहुमाणं पणमिऊण कुमारचलणजुयलं जंपियमिमीहिं। उज्जउत्त, एवमेयं, न एत्थ किंचि अन्नारिसं। विब्भमवईए भणियं—अज्जउत्त, मम उण इमं सोऊण अवगओ विय मोहो, समुप्पन्नमिव सम्मं नाणं, नियत्तो विय विसयराओ, संजायमिव भवभयं ति। कामलयाए भणियं—अज्जउत्त, ममावि सव्वमेयं तुल्लं। ता एवं ववत्थिए अंगीकयजणोचियं सरिसं नियाणुरायस्स आणवेउ अज्जउत्तो, जमम्हेहिं कायव्वं ति। कुमारेण भणियं—साहु भोईओ साहु, उचिओ विवेओ, सुलद्धं तुम्हाण मणुयत्तं, जेण ईइसी कुसलबुद्धि त्ति। ता इमं एत्थ जुत्तं। एए खु

तथा सर्वोत्तमं मानुषत्वं दुर्लभं भवसमुद्रे प्रसाधनं निर्वाणस्य न नियोजयतो धर्मे इति, अतो न निभालयतो निजभावम्। तथा भुवनडमरो (—भयङ्करो) मृत्युरतिक्रूरः प्रकृत्या, गोचरे तस्यैते न चिन्तयत आत्मानमिति, अतो न पश्यति स्वपरतन्त्रताम्। तथाऽसुन्दरं विषयविषमतिमोहनं जीवानां हेतुर्गर्भनिरयस्य, नियोजयतो मां तत्रेति, अतो न चिन्तयतो ममायतिम्। तत एवं व्यवस्थिते अहित-प्रवर्तनेन भण कथमेतयोः परमार्थतो ममोपर्यनुराग इति। एतदाकर्ण्य संविग्ने वध्वौ, जाता विशुद्ध-भावना, क्षपितः कर्मराशिः, प्राप्तं देशचरणम्। ततः श्रद्धातिशयेन सबहुमानं प्रणम्य कुमारचरण-युगलं जल्पितमाभ्याम्—आर्यपुत्र! एवमेतद्, नात्र किञ्चिदन्यादृशम्। विभ्रमवत्या भणितम्—आर्यपुत्र! मम पुनरिदं श्रुत्वाऽपगत इव मोहः, समुत्पन्नमिव सम्यग् ज्ञानम्, निवृत्त इव विषयरागः, सञ्जातमिव भवभयमिति। कामलतया भणितम्—आर्यपुत्र! ममापि सर्वमेतत् तुल्यम्। तत एवं व्यवस्थितेऽङ्गीकृतजनोचितं सदृशं निजानुरागस्याज्ञापयत्वार्यपुत्रः, यदावाभ्यां कर्तव्यमिति। कुमारेण भणितम्—साधु भवत्यौ! साधु, उचितो विवेकः, सुलब्धं युवयोर्मनुजत्वम्, येनेदृशी कुशल-

---

को चाहती हैं, अतः वस्तु को नहीं देखती हैं तथा संसार-समुद्र में दुर्लभ सर्वोत्तम मनुष्यत्व को निर्वाण के प्रसाधन के लिए धर्म में नहीं लगाती हैं, अतः अपने भावों को नहीं पहचानती हैं। मृत्यु भयंकर है, स्वभाव से अतिक्रूर है, उसके मार्ग में ये दोनों अपने आपका विचार नहीं करती हैं। अतः अपनी परतन्त्रता को नहीं देखती हैं। विषय-रूपी विष असुन्दर हैं, जीवों को अत्यन्त मोहित करनेवाले हैं, गर्भरूप नरक के कारण हैं। मुझे चूँकि वहाँ नियुक्त करती हैं, अतः मेरे भावी परिणाम की चिन्ता नहीं करती हैं। अतः ऐसी स्थिति में अहित में ही प्रवृत्ति कराने के कारण कहो कैसे यथार्थ रूप से इन दोनों का मेरे प्रति अनुराग है? यह सुनकर दोनों बधुएँ उद्विग्न हुईं, विशुद्ध भावना उत्पन्न हुई, कर्मराशि नष्ट हो गयी, एकदेश चारित्र प्राप्त किया। अतः श्रद्धा की अधिकता से आदरपूर्वक कुमार के चरणों को प्रणाम कर इन दोनों ने कहा—'आर्यपुत्र! यह ऐसा ही है, किसी अन्य प्रकार का नहीं है।' विभ्रमवती ने कहा—'आर्यपुत्र! यह सुनकर मानो मेरा मोह नष्ट हो गया, सम्यग्ज्ञान उत्पन्न हो गया, विषयों के प्रति राग की निवृत्ति हो गयी। संसार से भय उत्पन्न हो गया।' कामलता ने कहा—'आर्यपुत्र! मेरे लिए भी ये सब वैसे ही हैं, अतः ऐसी स्थिति में लोगों के योग्य स्वीकार्य अपने अनुराग के सदृश आर्यपुत्र आज्ञा दें कि हम लोगों का क्या कर्तव्य है?' कुमार ने कहा—'आप दोनों अच्छी हैं, ठीक हैं, विवेक उचित है, आप दोनों ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विसया मोहजणिया मोहहेयवो मोहसरूवा मोहाणुबंधा; संकिलेसजणिया संकिलेसहेयवो संकिलेसरूवा संकिलेसाणुबंध त्ति परिच्चयह जावज्जीव, छड्डेह मोहचेट्ठियाइं, अंगीकरेह पसमं, भावेह कुसलबुद्धि, निरूवेह भववियारे, आलोचेह चित्तेण, संतप्पेह गुरुणं, उज्जमेह धम्मे त्ति। एयमायण्णिऊण विसुद्धयरपरिणामाहिं निव्वडियभावसारं जंपियमिमीहिं—जं अज्जउत्तो आणवेइ। परिच्चत्ता जावज्जीव-मेव अम्हेहिं अज्जउत्त तुम्हाणुमईए विसया, सेसे उ सत्ती पमाणं। एयमायण्णिऊण हरिसिओ कुमारो। चिंतियं च णेण—अहो एयासिं धन्नया, अहो सुधीरत्तणं, अहो निरवेक्खया इहलोयं पइ, अहो समुयायारो, अहो हलुयकम्मया, अहो उवसमो, अहो परमत्थन्नुया, अहो वयणविन्नासो, अहो महत्थत्तणं अहो गंभीरय त्ति। चिंतिऊण जंपियमणेण—साहु भोईओ साहु, कयत्था खु तुब्भे अणुमयं ममेयं तुब्भ कुसलाणुट्ठाणं। परिचत्ता मए वि जावज्जीवं विसया, अंगीकयं बम्भचेरं। 'अहो सोहणं अहो सोहणं' ति जंपियं असोयाईहिं। वड्ढिओ कुसलपरिणामो। अहासन्निहिय देवयाए निओएण निवडिया कुसुमवुट्ठी। आणंदिया सव्वे। एत्थंतरम्मि 'अहो धन्नया एयासिं,

---

बुद्धिरिति। तत इदमत्र युक्तम्। एते खलु विषया मोहजनिता मोहहेतवो मोहस्वरूपा मोहानुबन्धाः संक्लेशजनिताः संक्लेशहेतवः संक्लेशस्वरूपाः संक्लेशानुबन्धा इति परित्यजतं यावज्जीवम्, मुञ्चतं मोहचेष्टितानि, अङ्गीकुरुतं प्रशमम्, भावयतं कुशलबुद्धिम्, निरूपयतं भवविकारान्, आलोचयतं चित्तेन, सन्तर्पयतं गुरून्, उद्यच्छतं धर्मे इति। एतदाकर्ण्य विशुद्धतरपरिणामाभ्यां निर्वृत्तभावसार जल्पितमाभ्याम्—यदार्यपुत्र आज्ञापयति। परित्यक्ता यावज्जीवमेवावाभ्यां आर्यपुत्र! युष्माकमनुमत्या विषयाः, शेषे तु शक्तिः प्रमाणम्। एतदाकर्ण्य हर्षितः कुमारः। चिन्तितं च तेन—अहो एतयोर्धन्यता, अहो सुधीरत्वम्, अहो निरपेक्षतेहलोकं प्रति, अहो समुदाचारः, अहो लघुकर्मता, अहो उपशमः, अहो परमार्थज्ञता, अहो वचनविन्यासः, अहो महार्थत्वम्, अहो गम्भीरतेति चिन्तयित्वा जल्पितमनेन—साधु भवत्यौ! साधु, कृतार्थे खलु युवाम्, अनुमतं ममैतद् युवयोः कुशलानुष्ठानम्। परित्यक्ता मयाऽपि यावज्जीवं विषयाः, अङ्गीकृतं ब्रह्मचर्यम्। अहो 'शोभनमहो शोभनम्' इति जल्पितमशोकादिभिः। वर्धितः कुशलपरिणामः। यथासन्निहितदेवताया नियोगेन निपतिता कुसुमवृष्टिः। आनन्दिताः सर्वे। अत्रान्तरे 'अहो धन्यतैतयोः, अहो ममोपरि सुहृत्त्वम्'

श्रेष्ठ मनुष्यत्व प्राप्त किया, जिससे इस प्रकार की शुभ बुद्धि है। तो यहाँ यह युक्त है—ये विषय निश्चित रूप से मोह से उत्पन्न हैं, मोह के कारण हैं, मोह स्वरूपी हैं, मोह के परिणाम हैं, संक्लेश से उत्पन्न हैं, संक्लेश के कारण हैं, संक्लेश स्वरूप हैं, संक्लेश के परिणाम हैं, अतः जीवन भर के लिए छोड़ो, मोह की चेष्टा छोड़ो, शान्ति अंगीकार करो, शुभ बुद्धि की भावना करो, भवविकारों को देखो, मन में विचार करो। गुरुओं को सन्तृप्त करो, धर्म में प्रयत्न करो।' यह सुनकर विशुद्ध परिणामवाली, जिनका पदार्थों के विषय में रस छूट गया है, ऐसी उन दोनों ने कहा—'जो आर्यपुत्र आज्ञा दें। आपकी अनुमति से हम ने जीवन भर के लिए विषय छोड़ दिये, शेष को शक्ति प्रमाण छोड़ेंगे।' यह सुनकर कुमार हर्षित हुआ, उसने सोचा—'ओह इन दोनों की धन्यता, सुधीरता, इस लोक के प्रति निरपेक्षता, ओह उचित व्यवहार, ओह लघुकर्मता, ओह उपशम, ओह परमार्थ का ज्ञानपना, ओह वचन-विन्यास, ओह महार्थता, ओह गम्भीरता' ऐसा सोचकर इसने कहा—'तुम दोनों अच्छी हो, ठीक हो, निश्चित रूप से कृतार्थ हो। तुम दोनों के लिए शुभ कार्य की मैंने अनुमति दी। मैंने भी जीवनभर के लिए विषय छोड़ दिया, ब्रह्मचर्य अंगीकार कर लिया। 'ओह ठीक है, ठीक है' ऐसा अशोक आदि (मित्रों) ने कहा। शुभ परिणाम बढ़ा। समीप में विद्यमान देवी के कारण फूलों की वर्षा हुई, सभी लोग आनन्दित हुए। तभी 'ओह इन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहो ममोवरि सुहित्तणं' ति पवड्ढमाणसुहपरिणामस्स तयावरणकम्मखओवसमओ वड्ढमाणयं समुप्पन्नमोहिनाणं कुमारस्स। पविक्खिओ तीयाइभावो। संविग्गो अइसएण। सुओ एस वइयरो आणंदपडिहाराओ राइणा देवीए य। विसण्णो राया। भणियं च णेण—हा हा अजुत्तमणुचिट्ठियं कुमारेण। देवीए भणियं—हा जाय, परिचत्तं भवसुहं।

एत्थंतरम्मि गहियखग्गरयणा दिप्पमाणेण मउडेणं कुंडलालयविहूसियमुही एक्कावलीविराइयसिरोहरा हारलयासंगएणं थणजुएणं मणिकडयजुत्तबाहुलया रोमावलीसणाहेणं मज्झेण रसणादामसंगयनियंबा परिहिएणं देवदूसेणं मणिनेउरसणाहचलया चच्चिया हरियंदणेण सुरतरुकुसुमधारिणी महया आभोएण परिहवंती मणिपदीवे अच्चंतसोमदंसणा समागया तत्थ देवया। 'अहो किमेयमच्छरीयं' ति विम्हियमणेहिं हरिसविसायगब्भिणं पणमिया एएहिं। भणियं च णाए—महाराय, अलमलं विसाएण। जुत्तमणुचिट्ठियं कुमारेण। परिचत्तं विसं, गहियममयं; उज्झिया किलीवया, पयडियं पोरुसं; अवहत्थिया खुद्दया, अंगीकयमुयारत्तं; छिन्नो भवो, संधिओ मोक्खो त्ति। ता कयत्थो

इति प्रवर्धमानशुभपरिणामस्य तदावरणकर्मक्षयोपशमतो वर्धमानकं समुत्पन्नमवधिज्ञानं कुमारस्य। प्रवीक्षितोऽतीतादिभावः। संविग्नोऽतिशयेन। श्रुत एष व्यतिकर आनन्दप्रतीहाराद् राज्ञा देव्या च। विषण्णो राजा। भणितं च तेन—हा हा अयुक्तमनुष्ठितं कुमारेण। देव्या भणितम्—हा जात! परित्यक्तं भवसुखम्।

अत्रान्तरे गृहीतखड्गरत्ना दीप्यमानेन मुकुटेन कुण्डलालकविभूषितमुखी एकावलीविराजितशिरोधरा हारलतासङ्गतेन स्तनयुगेन मणिकटकयुक्तबाहुलता रोमावलिसनाथेन मध्येन रसनादामसंगतनितम्बा परिहितेन देवदूष्येन मणिनुपुरसनाथचरणा चर्चिता हरिचन्दनेन सुरतरुकुसुमधारिणी महताऽऽभोगेन परिभवन्ती मणिप्रदीपान् अत्यन्तसौम्यदर्शना समागता तत्र देवता। 'अहो किमेतदाश्चर्यम्' इति विस्मितमनोभ्यां हर्षविषादगर्भितं प्रणता एताभ्याम्। भणितं च तया—महाराज! अलमलं विषादेन। युक्तमनुष्ठितं कुमारेण। परित्यक्तं विषम्, गृहीतममृतम्, उज्झिता क्लीवता, प्रकटितं पौरुषम्, अपहस्तिता क्षुद्रता, अङ्गीकृतमुदारत्वम्, छिन्नो भवः, सन्धितो मोक्ष

दोनों की धन्यता, ओह मेरे ऊपर 'सुहृद्भाव' इस प्रकार बढ़े हुए शुभ परिणामों वाले कुमार के अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से निरन्तर बढ़नेवाला अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया। अतीतादि भावों को देखा। अत्यधिक उद्विग्न हुआ। यह घटना आनन्द प्रतीहार से राजा और महारानी ने सुनी। राजा खिन्न हुआ, उसने कहा—'हाय! कुमार ने अयुक्त कार्य किया।' महारानी ने कहा—'हाय पुत्र! सांसारिक सुख त्याग दिया!'

इसी बीच वहाँ देवी आयी। वह हाथ में खड्गरत्न लिये हुए थी। उसका मुकुट चमक रहा था। कुण्डल और केशों से उसका मुख विभूषित था। उसकी गर्दन में एक लड़ीवाला हार शोभित हो रहा था। उसके दोनों स्तन हाररूप लता से युक्त थे। उसकी भुजारूपी लताएँ मणिनिर्मित या मणिखचित कड़े से युक्त थीं। (उसका) मध्यभाग (कमर का भाग) रोमों की पंक्ति से युक्त था। (उसके) नितम्ब करधनी से युक्त थे। देववस्त्र को वह पहिने हुए थी। उसके दोनों चरण मणियुक्त (मणिनिर्मित) नूपुरों से युक्त थे। हरिचन्दन का शरीर में लेप किये हुए थी। कल्पवृक्ष का फूल धारण किये हुए थी। बड़े आकार से मणिनिर्मित दीपकों को तिरस्कृत कर रही थी (तथा) देखने में अत्यन्त सौम्य थी। 'ओह यह क्या आश्चर्य है'—इस प्रकार विस्मित मनवाले, हर्ष और विषाद से भरे हुए इन दोनों ने प्रणाम किया। उस देवी ने कहा—'महाराज! विषाद मत करो, कुमार ने ठीक किया, विष का त्याग कर दिया, अमृत को ग्रहण कर लिया, नपुंसकता छोड़ दी, पुरुषार्थ प्रकट कर दिया, क्षुद्रता को गले में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुमारो। देवि ! तुमं पि छड्डेहि सोयं, असोयणिज्जो कुमारो, परिच्चत्तमणेण भवदुक्खं, अंगीकयं सासयसुहं। तुमं पि धन्ना, जीए ईइसो सुओ समुप्पन्नो। निबंधणं एस बहूयाण निव्वुईए। ता परिच्चय विसायं, आलोचेहि कज्जं ति। राइणा भणियं—भयवइ, का तुमं। देवयाए भणियं—महाराय, खग्गपहरणोवलक्खिया सुदरिसणा नाम देवया अहं, तुह पुत्तगुणाणुराइणी इहं भवणे परिवसामि। राइणा चिंतियं - अहो पुत्तस्स गुणा, जेण देवयाओ वि अणुरायं करेंति। हरिसिया देवी। भणियं च णाए- महाराय, ईइसो कुमारस्स पहावो, जेण देवयाओ वि एवं मंतेंति। ता एहि, गच्छम्ह तस्स अंतियं, पेच्छामो धम्मपिंडं, करेमो तयणुचिट्ठियं, सव्वहा जुत्तमेयं ति। राइणा भणियं—एहि, एवं करेम्ह। तओ पणमिऊण देवयं विसुज्झमाणपरिणामाइं गयाइं कुमारसमीवं। मुणियं कुमारेण, अब्भुट्ठियाइं सहरिसं, पणमियाइं विणएण, निविट्ठाइं कओ आसणपरिग्गहो। पणमिऊण जंपियं कुमारेण—ताय, किमेयमणुचियमिवाणुचिट्ठियं, अंबाए वि, कीस न सद्दाविओ अहं। राइणा भणियं—कुमार, नेयमणुचियं। साहिओ देवयावुत्तंतो। देवीए भणियं—कुमार, गुणपगरिसो तुमं,

---

इति। ततः कृतार्थः कुमारः। देवि ! त्वमपि मुञ्च शोकम्, अशोचनीयः कुमारः, परित्यक्तमनेन भवदुःखम्, अङ्गीकृतं शाश्वतसुखम्। त्वमपि धन्या, यस्या ईदृशः सुतः समुत्पन्नः। निबन्धनमेष बहूनां निवृतेः। ततः परित्यज विषादम्, आलोचय कार्यमिति। राज्ञा भणितम्—भगवति ! का त्वम्। देवतया भणितम्—महाराज ! खड्गप्रहरणोपलक्षिता सुदर्शना नाम देवताऽहम्, तव पुत्रगुणानुरागिणीह भवने परिवसामि। राज्ञा चिन्तितम् अहो पुत्रस्य गुणाः, येन देवता अप्यनुरागं कुर्वन्ति। हर्षिता देवी। भणितं च तया—महाराज ! ईदृशः कुमारस्य प्रभावः, येन देवता अप्येवं मन्त्रयन्ति। तत एहि, गच्छावस्तस्यान्तिकम्, पश्यावो धर्मपिण्डम्, कुर्वस्तदनुष्ठितम्, सर्वथा युक्तमेतदिति। राज्ञा भणितम्—एहि, एवं कुर्वः। ततः प्रणम्य देवतां विशुध्यमानपरिणामौ गतौ कुमारसमीपम्। ज्ञातं कुमारेण, अभ्युत्थितौ सहर्षम्। प्रणतौ विनयेन, निविष्टे आसने कृत आसनपरिग्रहः। प्रणम्य जल्पितं कुमारेण—तात ! किमेतदनुचितमिवानुष्ठितम्, अम्बयाऽपि कस्मान्न शब्दायितोऽहम्। राज्ञा भणितम्—कुमार ! नेदमनुचितम्। कथितो देवतावृत्तान्तः। देव्या

हाथ देकर हटा दिया, उदारता अंगीकार कर ली, संसार का छेद कर दिया, मोक्ष से मिलन कर लिया। अतः कुमार कृतार्थ हुए। महारानी ! तुम भी विषाद छोड़ो, कुमार शोक के योग्य नहीं हैं। इन्होंने सांसारिक सुख का त्याग कर दिया, शाश्वत सुख अंगीकार कर लिया। तुम भी धन्य हो, जिसके ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ। यह बहुत से लोगों की मुक्ति का कारण है। अतः विषाद का त्याग करो, कार्य का विचार करो।' राजा ने कहा—'भगवति, तुम कौन हो?' देवी ने कहा—'महाराज ! तलवार के प्रहार से पहचानी जानेवाली मैं सुदर्शना नामक देवी हूँ, तुम्हारे पुत्र के गुणों की अनुरागिनी हो यहाँ निवास करती हूँ। राजा ने सोचा—ओह पुत्र के गुण, जिससे देवता भी अनुराग करते हैं। महरानी (देवी) हर्षित हुई और उसने कहा—'महाराज ! कुमार का ऐसा ही प्रभाव है, जिससे देव भी इस प्रकार सलाह देते हैं। तो आओ, कुमार के पास चलें, उसका धर्म-शरीर देखें, उसके धार्मिक कार्य को करें, यह सर्वथा उचित है।' राजा ने कहा—'आओ, यही करें।' अनन्तर देवी को प्रणाम कर विशुद्ध होते हुए परिणामोंवाले वे दोनों कुमार के पास गये। कुमार को ज्ञात हुआ, हर्षपूर्वक उठा, दोनों को विनयपूर्वक प्रणाम किया, दोनों को आसन दिये, आसनों को ग्रहण किया गया। प्रणाम कर कुमार ने कहा—'पिता जी ! यह क्या अनुचित सा कार्य किया, माता जी ने मुझे क्यों नहीं बुला लिया ?' राजा ने कहा—'कुमार ! यह अनुचित नहीं है।' देवी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणरुहो आएसस्स। कुमारेण भणियं—अंब, मा एवं भण। गुरवो खु तुब्भ, गुरआएससंपाडणमेव कारणं गुणपगरिसस्स। राइणा भणियं—कुमार, अइदुक्करं कय तए। कुमारेण भणियं—ताय, किमिह दुक्करं। सुणाउ ताओ।

अत्थि खलु केइ चत्तारि पुरिसा। ताणं दुवे अच्चंतमत्थगिद्धा अवरे विसयलोलुया। पवन्ना एगमद्धाणं। दिट्ठा य णेहिं कहिंचि उद्देसे मणिरयणसुवण्णपुण्णा दुवे महानिहो तियससुंदरिसमाओ य दो चेव इत्थियाओ। पावियं जं पावियव्वं ति पहट्ठा चित्तेण, धाविया अहिमुहं। सुओ य णेहिं कुओइ सद्दो। भो भो पुरिसा, मा साहसं मा साहसं ति। निरूवेह उवरिहुत्तं, निवडइ तुम्हाण उवरि महापव्वओ, एयगोयरगयाणं च अलमेइणा चेट्ठिएण। तओ निरूवियमणेहिं। दिट्ठो य नाइदूरे समद्धासियनहंगणो रोद्दो दंसणेण अक्कमंतो जहासन्नजीवे अणिवारणिज्जो सुराण पि सामत्थेण दुयं निवडमाणो पव्वओ त्ति। तओ जंपियमणेहिं—भो एव ववत्थिए को उण इह उवाओ। आयण्णियं कुओइ। न खलु संपयं उवाओ। किं तु इच्छंति जे अत्थविसए, ते संपत्तेहिं असंपत्तेहिं वा जहासन्नयाए अवट्ठभंति एएण; तहा अवट्ठद्धा य पावेंति पुणो पुणो एवमेवावट्ठहणं ति। जे उण निरोहा अत्थविसएसु

भणितम्—कुमार! गुणप्रकर्षस्त्वमनर्ह आदेशस्य। कुमारेण भणितम्—अम्ब! मैवं भण। गुरवः खलु यूयम्, गुर्वादेशसम्पादनमेव कारणं गुणप्रकर्षस्य। राज्ञा भणितम्—कुमार! अतिदुष्कर कृतं त्वया। कुमारेण भणितम्—तात! किमिह दुष्करम्। शृणोतु तातः—

सन्ति खलु केऽपि चत्वारः पुरुषाः। तेषां द्वावत्यन्तमर्थगृद्धौ अपरौ विषयलोलुपौ। प्रपन्ना एकमध्वानम्। दृष्टाश्च तैः कथञ्चिदुद्देशे मणिरत्नस्वर्णपूर्णौ द्वौ महानिधी त्रिदशसुन्दरीसमे च द्वे एव स्त्रियौ। प्राप्तं यत् प्राप्तव्यमिति प्रहृषिताश्चित्तेन धाविता अभिमुखम्। श्रुतश्च तैः कुतश्चित् शब्दः। भो भोः पुरुषा! मा साहसं मा साहसमिति। निरूपयतोपरिसम्मुखम्, निपतति युष्माकमुपरि महापर्वतः, एतद्गोचरगतानां चालमेतेन चेष्टितेन। ततो निरूपितमेभिः। दृष्टश्च नातिदूरे समध्यासितनभोङ्गणो रौद्रो दर्शनेनाक्रामन् यथाऽऽसन्नजीवान् अनिवारणीयः सुराणामपि सामर्थ्येन द्रुतं निपतन् पर्वत इति। ततो जल्पितमेभिः—भो! एवं व्यवस्थिते कः पुनरिहोपायः। आकर्णितं कुतश्चित्—न खलु साम्प्रतमुपायः। किन्तु इच्छन्ति येऽर्थविषयेषु ते सम्प्राप्तैरसम्प्राप्तैर्वा यथासन्नतयाऽवष्टभ्यन्ते एतेन, तथाऽवष्टब्धाश्च प्राप्नुवन्ति पुनः पुनरेवमेवावष्टम्भनमिति। ये पुनर्निरीहा

का वृत्तान्त कहा। महारानी ने कहा—'कुमार! गुणों की चरमसीमा वाले तुम आदेश के योग्य नहीं हो।' कुमार ने कहा—'माता! ऐसा मत कहो। आप माता-पिता हो, माता-पिता के आदेश का पालन करना ही गुणों के प्रकर्ष का कारण है।' राजा ने कहा—'कुमार! तुमने अत्यधिक कठिन कार्य किया है।' कुमार ने कहा—'पिता जी! कठिन कार्य कैसा! पिता जी सुनिए—

कोई चार पुरुष थे। उनमें से दो अत्यन्त धन के लालची थे, दूसरे दो विषयलोलुपी थे। मार्ग में जा रहे थे। उन्होंने किसी स्थान पर मणि, रत्न और स्वर्ण से पूर्ण दो महानिधि और देवांगनाओं के समान दो स्त्रियाँ देखीं। जो प्राप्त करने योग्य वस्तु थी वह प्राप्त कर ली, इस प्रकार चित्त में हर्षित हुए। सामने दौड़े। उन्होंने कहीं से शब्द सुना—हे हे पुरुषो! साहस मत करो, साहस मत करो। ऊपर की ओर देखो, तुम्हारे ऊपर महापर्वत गिर रहा है। इसके मार्ग में आए लोगों को इन चेष्टाओं में नहीं पड़ना चाहिए। समीप में ही आकाश रूपी आँगन में अधिष्ठित, देखने में विकराल, समीपवर्ती जीवों पर आक्रमण करता हुआ, देवताओं से भी न रोके जाने योग्य शीघ्र ही गिरते हुए पर्वत को देखा। अनन्तर इन लोगों ने कहा—अरे! ऐसी स्थिति में क्या उपाय है? कहीं से सुना—अब उपाय नहीं है, किन्तु जो पदार्थों के विषयों की इच्छा करते हैं वे प्राप्त होने अथवा न होने पर समीपवर्ती होने से इसके द्वारा आक्रान्त हो जाते हैं, उस प्रकार से आक्रान्त हुए वे पुनः पुनः आक्रान्तपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावेंति तयसारयं, ते वि जहासन्नयाए अवट्ठब्भंति एएण; तहा अवट्ठद्धा य न पावेंति पुणो पुणो एवमेवावट्ठहणं ति, अवि य मुच्चंति कालेण इमाओ उवद्दवाओ। तओ एगेहिं चिंतियं—किमम्हाणमिमीए दीहचिंताए। सव्वहा पयट्टम्ह अत्थविसएसु, जं होउ तं होउ त्ति। संपहारिऊण पयट्टा सहरिसं। अन्ने 'उ हा हा एवं परिपंथिए एयम्मि नियमनस्सरेहिं असुंदरेहिं विवाए किमेत्थ अत्थविसएहिं'ति चिंतिऊण नियत्ता अत्थविसयाहिं, भावेंति तयसारयं, जुज्जंति नियनियफलेहिं।

ता एवं ववत्थिए निरूवेउ ताओ, के एत्थ दुक्करकारया के वा नहि। राइणा चिंतियं—जे पयट्टंति अत्थविसएसु,ते दुक्करकारया;जओ तहा परिपंथिए पव्वए नियमणस्सरेहिं असुंदरेहिं विवाए किमत्थविसएहिं; कीइसी वा तहाभए पवत्ती ? अणालोचयत्तमेगंतेण; किं वा तीए तहादिट्ठपज्जंताए उवहासट्ठाणयाए अत्थविसयपत्थणाए ? परमत्थेण निव्वेयकारणमेयं सयाणं ति। चिंतिऊण जंपियं राइणा—कुमार, जे पयट्टंति, ते दुक्करकारया; अपवत्तणं तु जुत्तिजुत्तमेव, किमेत्थ दुक्करं ति। कुमारेण भणियं—ताय, जइ एवं, ता पडंते मच्चुपव्वए वावायए तिहुयणस्स अइभीसणे पयईए दुज्जए

अर्थविषयेषु भावयन्ति तदसारताम्, तेऽपि यथासन्नतयाऽवष्टभ्यन्ते एतेन, तथाऽवष्टब्धाश्च न प्राप्नुवन्ति पुनः पुनरेवमेवावष्टम्भनमिति, अपि च मुच्यन्ते कालेनास्मादुपद्रवात्। तत एकैश्चिन्तितम्—किमस्माकमनया दीर्घचिन्तया। सर्वथा प्रवर्तामहेऽर्थविषयेषु, यद् भवतु तद् भवत्विति। सम्प्रधार्य प्रवृत्ताः सहर्षम्। अन्ये तु 'हा हा एवं परिपन्थिनि एतस्मिन् नियमनश्वरैरसुन्दरैर्विपाके किमत्र अर्थविषयैः' इति चिन्तयित्वा निवृत्ता अर्थविषयाभ्याम्, भावयन्ति तदसारताम्, युज्यन्ते निजनिजफलैः।

तत एवं व्यवस्थिते निरूपयतु तातः, केऽत्र दुष्करकारकाः के वा नहि। राज्ञा चिन्तितम्—ये प्रवर्तन्तेऽर्थविषयेषु ते दुष्करकारकाः, यतस्तथा परिपन्थिनि पर्वते नियमनश्वरैरसुन्दरैर्विपाके किमर्थविषयैः, कीदृशी वा तथाभये प्रवृत्तिः। अनालोचकत्वमेकान्तेन, किं वा तया तथादृष्टपर्यन्तया उपहासस्थानयाऽर्थविषयप्रार्थनया, परमार्थेन निर्वेदकारणमेतत् सतामिति। चिन्तयित्वा जल्पितं राज्ञा—कुमार ! ये प्रवर्तन्ते ते दुष्करकारकाः, अप्रवर्तनं तु युक्तियुक्तमेव, किमत्र दुष्करमिति। कुमारेण भणितम्—तात ! यद्येवं ततः पतति मृत्युपर्वते व्यापादके त्रिभुवन-

को प्राप्त करते हैं। जो पदार्थ और विषयों के इच्छुक नहीं हैं और उसकी असारता की भावना करते हैं वे भी समीपवर्ती होने से इससे आक्रान्त हो जाते हैं, उस तरह मूर्च्छित हुए वे पुनः इस प्रकार आक्रान्तपने को नहीं प्राप्त होते हैं, अपितु समय पाकर इस उपद्रव से छूट जाते हैं। अनन्तर कुछ लोगों ने सोचा—हम लोगों को इस दीर्घ चिन्ता से क्या, (हम तो) सर्वथा पदार्थ और विषयों में प्रवृत्ति करते हैं, जो हो सो हो—ऐसा निश्चय कर हर्षपूर्वक प्रवृत्त हो गये। दूसरे जन—हा हा, निश्चय से नाश होनेवाले, असुन्दर फलवाले तथा विरोधी इन पदार्थों के विषयों से क्या, ऐसा सोचकर पदार्थों के विषयों से निवृत्त हो गये, असारता की भावना करने लगे। अपने-अपने फलों को प्राप्त किया। तो ऐसी स्थिति में पिताजी देखिए, कौन यहाँ कठिन कार्य करनेवाले हैं और कौन नहीं हैं ?' राजा ने सोचा—जो पदार्थ और विषयों में प्रवृत्ति करते है वे कठिन कार्य करनेवाले हैं; क्योंकि उस विरोधी पर्वत के होने पर निश्चित रूप से नाश होनेवाले पदार्थ और विषयों से क्या, उस प्रकार का भय होने पर प्रवृत्ति कैसी ? अत्यन्तरूप से निर्विचारणा है अथवा उस प्रकार की अदृष्ट पर्यन्त उपहास के स्थानवाली पदार्थों और विषयों की प्रार्थना से क्या लाभ, जो कि सज्जनों के लिए यथार्थरूप से वैराग्य का कारण है—ऐसा सोचकर राजा ने कहा—'कुमार ! जो प्रवृत्त होते हैं वे कठिन कार्य करनेवाले हैं, और जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पयारंतरेण अविभाविज्जमाणसरूवे विओजए इट्ठभावाण सयापडणसंगए कारए असमंजसाण किलेसायासकारगा अत्थविसया विसविवायसरिसा य; विसयचाओ य अव्वाबाहो पयईए कारणं अमयभावस्स सलाहणिज्जो सयाण अकिलेससेवणिज्जो सेविज्जइ त्ति किमेत्थ दुक्करं। कहं वा एवंविहे जीवलोए न दुक्करं अत्थविसयाणुवत्तणं ति। राइणा भणियं—वच्छ, एवमेयं, जया सम्मालोइज्जइ। कुमारेण भणियं—ताय, असम्मालोचणं पुण न होइ आलोचणं। राइणा भणियं—वच्छ, एवमेयं, किंतु दुरंतो महामोहो त्ति। कुमारेण भणियं—ताय, ईइसो एस दुरंतो, जेण एयसामत्थेण पाणिणो एवंविहे जीवलोए पहवंते वि उद्दाममच्चुंमि पेच्छमाणा वि एयसामत्थं गोयरगया वि एयस्स घेप्पमाणा वि जराए विउज्जमाणा वि इट्ठेहिं परिगलंते वि वीरिए चोइज्जमाणा वि धीरेहिं 'न अम्हाण वि एवमेयं परिणमइ, अन्नो व अम्ह चिंतओ, जं किंचि वा एयं, अचिंतणीयं च धीराणं, अत्थि वा आयत्तमुवायंतरं, मोहववसायसज्झं वा इमं, अवहीरणा वा उवाओ, अच्चंतिया वा अत्थविसय' त्ति अगणिऊण जराइदोसजालं सव्वावत्थासु बाला काऊण नयनिमीलियं परिचइय सव्वमन्नं कुसलपक्ख

स्यातिभीषणे प्रकृत्या दुर्जये प्रकारान्तरेणाविभाव्यमानस्वरूपे वियोजके इष्टभावानां सदापतनसङ्गते कारकेऽसमञ्जसानां क्लेशायासकारकौ अर्थविषयौ विषविपाकसदृशौ च, विषयत्यागश्चाव्याबाधः प्रकृत्या कारणममृतभावस्य श्लाघनीयः सतामक्लेशसेवनीयः सेव्यते इति किमत्र दुष्करम्। कथं वैवंविधे जीवलोके न दुष्करमर्थविषयानुवर्तनमिति। राज्ञा भणितम्—वत्स! एवमेतद्, यदा सम्यगालोच्यते। कुमारेण भणितम्—तात! असम्यगालोचनं पुनर्न भवत्यालोचनम्। राज्ञा भणितम्—वत्स! एवमेतत्, किन्तु दुरन्तो महामोह इति। कुमारेण भणितम्—तात! ईदृश एष दुरन्तः, येनैतत्सामर्थ्येन प्राणिन एवंविधे जीवलोके प्रभवत्यपि उद्दाममृत्यौ प्रेक्षमाणा अपि एतत्सामर्थ्यं गोचरगता अप्येतस्य गृह्यमाणा अपि जरया वियुज्यमाना अपीष्टैः परिगलत्यपि वीर्ये चोद्यमाना अपि धीरैः 'नास्माकमप्येवमेतत् परिणमति, अन्यो वाऽस्माकं चिन्तकः, यत् किंचिद् वैतद्, अचिन्तनीयं च धीराणाम्, अस्ति वाऽऽयत्तमुपायान्तरम्, मोहव्यवसायसाध्यं वेदम्, अवधीरणा वोपायः, आत्यन्तिका वाऽर्थविषयाः' इत्यगणयित्वा जरादिदोषजालं सर्वावस्थासु बालाः

प्रवृत्त नहीं होते हैं वे ही ठीक हैं, यहाँ कठिन कार्य ही क्या है ' कुमार ने कहा—'पिताजी ! यदि ऐसा है तो तीनों लोकों के लिए अत्यन्त भयंकर, मारक मृत्युरूपी पर्वत के गिरने पर स्वभाव से दुर्जेय, दूसरे प्रकार से जिनके स्वरूप प्रकट होते हैं, जो इष्ट भावों के वियोजक हैं, सदा पतन से युक्त हैं, असंगत कार्यों के करनेवाले हैं, क्लेश और थकावट को उत्पन्न करते हैं ऐसे पदार्थ और विषय विषफल के समान हैं और विषयों का त्याग रुकावट न डालनेवाला, स्वभाव से अमृतत्व का कारण, सज्जनों की प्रशंसा के योग्य है और बिना क्लेश के सेवन किया जाता है अतः यहाँ कठिन कार्य क्या है ? अथवा संसार में पदार्थ और विषयों का अनुसरण दुष्कर कैसे नहीं है ? राजा ने कहा—'वत्स ! यह सच है, जब भलीभाँति विचार किया जाता है।' कुमार ने कहा—'पिताजी ! भलीप्रकार विचार न करना विचार नहीं होता है।' राजा ने कहा—'यह ठीक है; किन्तु महामोह का अन्त कठिनाई से होता है।' कुमार ने कहा—'पिताजी ! यह दुरन्त ऐसा है कि इसके सामर्थ्य से प्राणी इस प्रकार के संसार में उत्कट मृत्यु के सामर्थ्ययुक्त होने पर भी, इसकी सामर्थ्य को देखते हुए भी, इसके मार्ग पर जाते हुए भी, बुढ़ापे से जकड़ जाने, इष्टों से वियोग होने, शक्ति के नष्ट होने, धीर व्यक्तियों के द्वारा प्रेरित होने पर भी 'हमारी यह इस प्रकार की परिणति नहीं है, अथवा हम लोगों की चिन्ता करनेवाला अन्य है, यह जो कुछ भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चेट्ठियं महया पयत्तेण निव्वडियभावसारं पयट्टंति अत्थविसएसु, न पयट्टंति जराइदोसनिग्घायण-समत्थे हिए सव्वजीवाण अचितचिंतामणिसन्निहे साहए नेव्वाणस्स वीयरागदेसिए धम्मे त्ति। एय मायण्णिऊण संजायसुहयरपरिणामेण जंपियं राइणा—वच्छ, एवमेयं, न एत्थ किंचि अन्नह त्ति। देवीए भणियं—वच्छ, सव्वमेवमयं मोहनिद्दाविगमेण परिणयप्पायमम्हाणं। किं तु न संपन्नं बालाण अहिलसियं ति उव्विग्गा विय म्हि। कुमारेण भणियं—अंब, अलमुव्वेएण; संपन्नपायमेयासि अहिल-सियं। धन्नाओ इमाओ, सफलं माणुसत्तणमेयाणं, संगयाओ मोक्खबीएण। तओ देवीए पुलोइयं तासि वयणं। पणमिऊण गुरुयणं जंपियमिमीहिं—अंब, नेहमेत्तनिमित्तो खु उव्वेवो अंबाए। अन्नहा जहा उवइट्ठमज्जउत्तेण, तहेव एयं; सफलं माणुसत्तमम्हाण, पाविओ अज्जउत्तघरिणिसद्दो गुरुयणाणु-हावेण तयणुरूवं च सेसं पि। ता संपन्नमम्हाण अहिलसियाहियं ति, परिच्चयउ उव्वेवमंबा। तओ देवीए चितियं—अहो एयासि रूवं, अहो उवसमो, अहो परमत्थन्नुया, अहो वयणविन्नासो, अहो गुरुभत्ती, अहो महत्थत्तणं, अहो गंभीरया, अहो समुयायारो त्ति। चिंतिऊण जंपियमिमीए—उचिय-

---

कृत्वा गजनिमीलिकां परित्यज्य सर्वमन्यत् कुशलपक्षचेष्टितं महता प्रयत्नेन निष्पन्नभावसारं प्रवर्तन्तेऽर्थविषयेषु, न प्रवर्तन्ते जरादिदोषनिर्घातनसमर्थे हिते सर्वजीवानां अचिन्त्यचिन्तामणि-सन्निभे साधके निर्वाणस्य वीतरागदेशिते धर्मे इति। एतदाकर्ण्य सञ्जातशुभतरपरिणामेन जल्पितं राज्ञा—वत्स! एवमेतद्, नात्र किञ्चिदन्यथेति। देव्या भणितम्—वत्स! सर्वमेवमेतद् मोहनिद्रा-विगमेन परिणतप्रायमस्माकम्। किन्तु न सम्पन्नं बालयोरभिलषितमित्युद्विग्नेवास्मि। कुमारेण भणितम्—अम्ब! अलमुद्वेगेन, सम्पन्नप्रायमेतयोरभिलषितम्। धन्ये इमे, सफलं मानुषत्वमेतयोः, सङ्गते मोक्षबीजेन। ततो देव्या प्रलोकितं तयोर्वदनम्। प्रणम्य गुरुजनं जल्पितमाभ्याम्—अम्ब! स्नेहमात्रनिमित्तः खलूद्वेगोऽम्बायाः। अन्यथा यथोपदिष्टमार्यपुत्रेण, तथैवैतत्, सफलं मानुषत्व-मावयोः, प्राप्त आर्यपुत्रगृहिणीशब्दो गुरुजनानुभावेन तदनुरूपं च शेषमपि। ततः सम्पन्नमावयोर-भिलषिताधिकमिति, परित्यजतूद्वेगमम्बा। ततो देव्या चिन्तितम्—अहो एतयो रूपम्, अहो उपशमः, अहो परमार्थज्ञता, अहो वचनविन्यासः, अहो गुरुभक्तिः, अहो महार्थत्वम्, अहो गम्भीरता,

---

है, धीरों के द्वारा अचिन्तनीय है, भावी फल का दूसरा उपाय है अथवा यह मोह के निश्चय द्वारा साध्य है, अथवा तिरस्कार का उपाय है, अथवा पदार्थ तथा विषय अविनाशी हैं'—इस प्रकार बुढ़ापे आदि दोषों को न मानकर सभी अवस्थाओं में मूर्ख व्यक्ति गजनिमीलन कर (आँखें मूँदकर), अन्य सब शुभपक्ष वाली चेष्टाओं का त्याग कर, अत्यधिक प्रयत्न से जिन्हें पदार्थों में रस उत्पन्न हुआ है ऐसे होकर वे पदार्थ और विषयों में प्रवृत्त होते हैं। बुढ़ापा आदि दोषों के नाश करने में समर्थ, समस्त जीवों के लिए हितकर, अचिन्त्य चिन्तामणि के समान वीतराग प्रणीत मोक्ष के धर्म में प्रवृत्त नहीं होते हैं।' यह सुनकर जिसके अत्यधिक शुभ परिणाम उत्पन्न हुए हैं ऐसे राजा ने कहा—'पुत्र! यह इसी प्रकार है, अन्य किसी प्रकार नहीं।' महारानी ने कहा—'यह सब ऐसा ही है, मोहरूपी निद्रा के नष्ट हो जाने के कारण हम लोग बदल गये (जाग्रत् हो गये)। किन्तु बालिकाओं की अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई, अतः मैं उद्विग्न ही हूँ।' कुमार ने कहा—'माताजी! उद्वेग मत कीजिए, इन दोनों की अभिलाषा सम्पन्न प्राय है। ये दोनों धन्य हैं, इन दोनों का मनुष्यभव सफल है, ये दोनों मोक्ष के बीज से युक्त हैं।' अनन्तर महारानी ने उनका मुख देखा। माता-पिता (सास, श्वसुर) को प्रणाम कर इन दोनों ने कहा—'माता! निश्चित रूप से माता का उद्वेग मात्र स्नेह से निर्मित है, अन्यथा फिर आर्यपुत्र ने जो उपदेश दिया वह वैसा ही है। हम दोनों का मनुष्यभव सफल हुआ, गुरुजनों की कृपा से आर्यपुत्र की गृहिणी शब्द को प्राप्त किया और उसके अनुरूप शेष को भी प्राप्त किया। अतः हम लोगों की अभिलाषा से अधिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेयं खग्गसेणधूयाण, जमेवं गुरुयणो अणुवत्तीयइ।

एत्थंतरम्मि नाइदूरे पुरंदरभट्टगेहम्मि समुद्धाइओ अवकंदो पवित्थरिओ भरेण। 'हा किमेयं ति' संभंतो राया। भणियं च णेण अरे वियाणह, किमेयं ति। कुमारेण भणियं—ताय, अलं कस्सइ गमणखेएण, वियाणियमिणं। राइणा भणियं—वच्छ,, किमेयं ति। कुमारेण भणियं - ताय, संसार-विलसियं। राइणा भणियं—वच्छ, न विसेसओऽवगच्छामि। कुमारेण भणियं—सुणाउ ताओ। अद्धउवरओ पुरंदरभट्टो त्ति तन्निमित्तं पवत्तो तस्स गेहे अक्कंदो। राइणा भणियं—वच्छ, सो अज्जेव दिट्ठो मए। कुमारेण भणियं—ताय, अकारणमिणं मरणधम्मीणं। राइणा भणियं—वच्छ, न कोइ एयस्स वाही अहेसि; ता कहं पुण एस उवरओ। कुमारेण भणियं—ताय, अवत्तव्वो एस वइयरो गरहिओ एगंतेण। राइणा भणियं—वच्छ, ईइसो एस संसारो, किमेत्थ अगरहियं नाम। महंतं च मे कोउयं ति साहेउ वच्छो। न य एत्थ कोइ असज्जणो। सज्जणकहियं च गरहियं न वित्थरइ पाएण; संपयं वच्छो पमाणं ति। कुमारेण भणियं—ताय, मा एवमाणवेह; जइ एवं निब्बंधो, ता सुणाउ

अहो समुदाचार इति। चिन्तयित्वा जल्पितमनया—उचितमेतत् खड्गसेनदुहित्रोः, यदेवं गुरुजनोऽनुवर्त्यते।

अत्रान्तरे नातिदूरे पुरन्दरभट्टगेहे समुद्धावित आक्रन्दः प्रविस्तृतो भरेण। 'हा किमेतद्' इति सम्भ्रान्तो राजा। भणितं च तेन -अरे विजानीत, किमेतदिति। कुमारेण भणितम्—तात ! अलं कस्यचिद् गमनखेदेन, विज्ञातमिदम्। राज्ञा भणितम्—वत्स ! किमेतदिति। कुमारेण भणितम्—तात ! संसारविलसितम्। राज्ञा भणितम्—वत्स ! न विशेषतोऽवगच्छामि। कुमारेण भणितम्—शृणोतु तातः। अर्द्धोपरतः पुरन्दरभट्ट इति तन्निमित्तं प्रवृत्तस्तस्य गेहे आक्रन्दः। राज्ञा भणितम्—वत्स ! सोऽद्यैव दृष्टो मया। कुमारेण भणितम्—तात ! अकारणमिदं मरणधर्मिणाम्। राज्ञा भणितम्—वत्स ! न कोऽप्येतस्य व्याधिरासीत्, ततः कथं पुनरेष उपरतः। कुमारेण भणितम्—तात ! अवक्तव्य एष व्यतिकरो गर्हित एकान्तेन। राज्ञा भणितम्—वत्स ! ईदृश एष संसारः, किमत्रागर्हितं नाम। महच्च मे कौतुकमिति कथयतु वत्सः। न चात्र कोऽप्यसज्जनः। सज्जनकथितं च गर्हितं न विस्तीर्यते प्रायेण, साम्प्रतं वत्सः प्रमाणमिति। कुमारेण भणितम्—तात ! मैवमाज्ञा-

---

सम्पन्न हो गया। माताजी ! उद्वेग छोड़िए।' अनन्तर महारानी ने सोचा—ओह, इन दोनों का रूप, ओह उपशम, ओह यथार्थ वस्तु का जानना, ओह वचनों की रचना, ओह बड़ों के प्रति भक्ति, ओह महार्घता, ओह गम्भीरता, ओह उचित व्यवहार—ऐसा सोचकर इसने (महारानी ने) कहा—खड्गसेन की पुत्रियों के यह योग्य है जो कि इस प्रकार बड़ों का अनुसरण करती हैं।

तभी समीप में ही पुरन्दर भट्ट के घर से रोने की आवाज आयी, भीड़ इकट्ठी हो गयी। 'हाय यह क्या !' राजा घबराया और उसने कहा—'अरे ज्ञात करो क्या हुआ ?' कुमार ने कहा—'कोई ज्ञात करने का कष्ट मत करो, इसे ज्ञात कर लिया।' राजा ने कहा—'वत्स ! यह (सब) क्या है ?' कुमार ने कहा—'पिता जी ! संसार का खेल है यह।' राजा ने कहा—'वत्स ! ठीक से नहीं समझा।' कुमार ने कहा—'पिताजी सुनिए, पुरन्दर भट्ट मरणासन्न है अतः उसके लिए उसके घर में रुदन हो रहा है।' राजा ने कहा—'वत्स ! उसे आज ही मैंने देखा था।' कुमार ने कहा—'मरण स्वभाववालों के लिए यह कोई कारण नहीं है।' राजा ने कहा—'वत्स ! इसे कोई रोग भी नहीं था, अतः यह कैसे मरणासन्न हो गया !' कुमार ने कहा—'पिता जी ! यह घटना अत्यन्त निन्दित होने के कारण न कहने योग्य है।' राजा ने कहा—'पुत्र ! यह संसार ऐसा ही है, यहाँ पर अनिन्दित क्या है। मुझे बड़ा कौतूहल है, अतः पुत्र कहो। यहाँ कोई असज्जन नहीं है और सज्जनों के द्वारा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ताओ। अद्धवाबाइओ एस नियमहिलियाए नम्मयाभिहाणाए विसप्पओएण। ता पेसेहि ताव तत्थ विसनिग्घायणसमत्थे वेज्जे, जीवइ तओ ओसहप्पओएण। अन्नं च। तग्गेहपओलिदक्खिणावरदिसाभाए इमिणा चेव विसप्पओएण तीए दरघाइओ कुक्कुरो। तस्स वि इमो चेव ओसहविही पउंजियव्वो; जीविस्सइ सो वि इमिणा। राइणा चिंतियं— अहो नाणाइसओ कुमारस्स। जहाभणियमाइसिऊण पेसिया वेज्जा, भणियं च राइणा— कुमार, किं पुण तीए इमस्स असव्ववसायस्स निमित्तं। कुमारेण भणियं—ताय, अविवेओ निमित्तं; तहवि पुण विसेसओ इमं।

वल्लहा सा पुंदरस्स मोहदोसेण पसत्ता अज्जुणाभिहाणे नियदासे। सुयमणेण सवणपरंपराए, न सद्दहियं सिणेहओ। अइक्कंतो कोइ कालो। अन्नया य 'मा संताणविणासो हवउ' त्ति साहियं से जणणीए। पुत्त, न सुंदरा ते महिलिया; ता मा उवेक्खसु त्ति। चिंतियं पुरंदरेण— न खलु एयमेवं भवइ। अभिन्नचित्ता मे पिययमा, अंबा य एवं वाहरइ। निबद्धवेराओ य पायं सासुयावहूओ। अमच्छरिणी य अंबा, पिययमा उण पगरिसो गुणाण। चवलाओ य इत्थियाओ त्ति रिसिवयणं, न य

पयत; यद्येवं निर्बन्धः, ततः शृणोतु तातः। अर्धव्यापादित एष निजमहिलया नर्मदाभिधानया विषप्रयोगेण। ततः प्रेषय तावत् तत्र विषनिर्घातनसमर्थान् वैद्यान्, जीवति तत औषधप्रयोगेण। अन्यच्च, तद्गेहप्रतोलिदक्षिणापरदिग्भागेऽनेनैव विषप्रयोगेण तया दरघातित कर्कुरः। तस्याप्ययमेवौषधविधिः प्रयोक्तव्यः, जीविष्यति सोऽप्यनेन। राज्ञा चिन्तितम्—अहो ज्ञानातिशयः कुमारस्य। यथा भणितमादिश्य प्रेषिता वैद्याः, भणितं च राज्ञा—कुमार! किं पुनस्तस्या अस्यासद्व्यवसायस्य निमित्तम्। कुमारेण भणितम्—तात! अविवेको निमित्तम्; तथापि पुनर्विशेषत इदम्।

वल्लभा सा पुरन्दरस्य मोहदोषेण प्रसक्ताऽर्जुनाभिधाने निजदासे। श्रुतमनेन श्रवणपरम्परया, न श्रद्धितं स्नेहतः। अतिक्रान्तः कोऽपि कालः। अन्यदा च 'मा सन्तानविनाशो भवतु' इति कथितं तस्य जनन्या। पुत्र! न सुन्दरा ते महिला, ततो मोपेक्षस्वेति। चिन्तितं पुरन्दरेण— खल्वेतदेवं भवति। अभिन्नचित्ता मे प्रियतमा, अम्बा चैवं व्याहरति। निबद्धवैरे च प्रायः श्वश्रूवध्वौ। अमत्सरिणी चाम्बा, प्रियतमा पुनः प्रकर्षो गुणानाम्, चपलाश्च स्त्रिय इति ऋषिवचनम्, न चान्यथा

कहा हुआ निन्दित प्रायः नहीं फैलता है, अब पुत्र प्रमाण हैं।' कुमार ने कहा—'पिता जी, ऐसी आज्ञा मत दो, यदि आग्रह है तो पिताजी सुनिए—अपनी नर्मदा नामक पत्नी के द्वारा विष के प्रयोग से यह अधमरा हुआ है, अतः वहाँ विष को नष्ट करने में समर्थ वैद्यों को भेजिए, औषधि के प्रयोग से यह जीवित हो जायेगा। दूसरी बात यह है कि उसी घर की गली के दक्षिण-पश्चिम भाग में इसी विष के प्रयोग से उस कुत्ते को भी अधमरा कर दिया है उसके लिए भी यही औषधि के नियम का प्रयोग करना चाहिए, वह भी इससे जीवित हो जायेगा। राजा ने सोचा—ओह कुमार के ज्ञान की अधिकता! कहने के अनुसार आदेश देकर वैद्य भेजे। राजा ने कहा—'कुमार! उसके असत्कार्य का क्या कारण है?' कुमार ने कहा—'पिताजी! अविवेक कारण है तथापि विशेषरूप से यह बात है—

पुरन्दर की प्रिया मोह के दोष से अपने अर्जुन नामक दास के प्रति आसक्त हो गयी। इसने कानों-कान सुना, स्नेहवश विश्वास नहीं किया। कुछ समय बीत गया। एक बार 'सन्तान का विनाश न हो' अतः उसकी माँ ने कहा—'पुत्र! तुम्हारी स्त्री ठीक नहीं है अतः उसकी उपेक्षा मत करो।' पुरन्दर ने सोचा—'निश्चय से यह ऐसी नहीं होगी। मेरी प्रियतमा अभिन्न हृदयवाली है और माता ऐसा कहती है! सास-बहू का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्नहा हवइ। विसमा य मयणबाणा। ता परिक्खामि ताव एयं ति। चिंतिऊण पइरिक्कम्मि भणिया नम्मया—सुंदरि, रायाएसेणं गंतव्वं मए माहेसरं, आगंतव्वं च सिग्घमेव। ता सुंदरीए कइवि दियहे सम्ममासियव्वं ति। नम्मयाए भणियं—अज्जउत्त, अहं पि गच्छामि; कीइसं मम तए विणा सम्मं ति भणमाणी परुइया एसा। भणिया य पुरंदरेण—सुंदरि, अलं सिणेहकायरयाए, न मम तत्थ खेवो त्ति। नम्मयाए भणियं—अज्जउत्तो पमाणं ति। बिइयदियहे य निग्गओ पुरंदरो, गओ मायापओएण। अइवाहिऊण कहिंचि वासरं पविट्ठो रयणीए। गओ अद्धरत्तसमए नियभवणं, पविट्ठो वासगेहं। दिट्ठा य णेण सुरयायासखेयसुहपसुत्ता समं अज्जुणएण नम्मया। कुविओ खु एसो, पणट्ठा विवेयवासणा। चिंतियं च णेण—सुहाहारतुल्लाओ इत्थियाओ; जत्तेण एतासिं भोओ पालणं च। दुट्ठो य दुरायारो अज्जुणओ, जो मे कलत्तं अहिलसइ; ता एयं वावाएमि त्ति। चिंतिऊण सुहपसुत्तो वावाइओ णेण अज्जुणओ। वावाइऊण य निग्गओ वासगेहाओ। चिंतियं च णेण—पेच्छामि, किं मे पिययमा करेइ त्ति। ठिओ एगदेसे। तहाविहरुहिरफंसेण विउद्धा नम्मया। दिट्ठो य णाए दीहनिद्दापसुत्तो अज्जुणओ। चिंतियं

भवति। विषमाश्च मदनबाणाः। ततः परीक्षे तावदेतामिति। चिन्तयित्वा प्रतिरिक्ते भणिता नर्मदा—सुन्दरि! राजादेशेन गन्तव्यं मया माहेश्वरम्, आगन्तव्यं च शीघ्रमेव। ततः सुन्दर्या कत्यपि दिवसान् सम्यगासितव्यमिति। नर्मदया भणितम्—आर्यपुत्र! अहमपि गच्छामि, कीदृशं मम त्वया विना सम्यगिति भणन्ती प्ररुदितैषा। भणिता च पुन्दरेण—सुन्दरि! अलं स्नेहकातरतया, न मम तत्र क्षेप (बिलम्ब) इति। नर्मदया भणितम्—आर्यपुत्रः प्रमाणमिति। द्वितीयदिवसे च निर्गतः पुरन्दरः, गतो मायाप्रयोगेण। अतिबाह्य कुत्रचिद् वासरं प्रविष्टो रजन्याम्। गतोऽर्धरात्रसमये निजभवनम्, प्रविष्टो वासगेहम्। दृष्टा च तेन सुरतायासखेदसुखप्रसुप्ता सममर्जुनेन नर्मदा। कुपितः खल्वेषः, प्रनष्टा विवेकवासना। चिन्तितं च तेन—सुधाहारतुल्याः स्त्रियः, यत्नेनैतासां भोगः पालनं च। दुष्टश्च दुराचारोऽर्जुनः, यो मे कलत्रमभिलषति, तत एतं व्यापादयामीति। चिन्तयित्वा सुखप्रसुप्तो व्यापादितस्तेनार्जुनः। व्यापाद्य च निर्गतो वासगेहात्। चिन्तितं च तेन—पश्यामि, किं मे प्रियतमा करोतीति। स्थित एकदेशे। तथाविधरुधिरस्पर्शेन विबुद्धा नर्मदा। दृष्टश्च

प्रायः वैर बँधा रहता है। मेरी माता ईर्ष्यालु नहीं है, पुनः प्रियतमा में गुणों की अधिकता है, 'स्त्रियाँ चंचल होती हैं' ऐसा ऋषि का वचन है अतः अन्यथा नहीं होगा। काम के बाण विषम होते हैं। अतः इसकी परीक्षा करता हूँ—ऐसा सोचकर एकान्त में नर्मदा से कहा—'सुन्दरी! राजाज्ञा से मुझे माहेश्वर को जाना है और शीघ्र ही आ जाऊँगा। अतः सुन्दरी, कुछ दिन तक भली प्रकार रहना।' नर्मदा ने कहा—'आर्यपुत्र! मैं भी चलूँगी, तुम्हारे बिना भलीप्रकार कैसे रहूँगी?'—ऐसा कहती हुई यह रो पड़ी। पुरन्दर ने कहा—'सुन्दरी! स्नेह से दुःखी मत होओ, वहाँ पर मैं देर नहीं करूँगा।' नर्मदा ने कहा—'आर्यपुत्र प्रमाण हैं।' दूसरे दिन पुरन्दर निकल गया, छल से गया। कुछ दिन बिताकर रात्रि में प्रविष्ट हुआ। आधी रात के समय अपने घर में गया, शयनगृह में प्रवेश किया। उसने सम्भोग के परिश्रम की थकावट से सुखपूर्वक अर्जुन के साथ सोई हुई नर्मदा को देखा। वह कुपित हुआ, विवेक का संस्कार नष्ट हो गया। उसने सोचा—स्त्रियाँ अमृत के तुल्य होती हैं, इनका यत्न से भोग और पालना करना चाहिए। अर्जुन दुराचारी और दुष्ट है जो कि मेरी प्रिया की अभिलाषा करता है, अतः इसे मारता हूँ—ऐसा सोचकर सुख से सोये हुए अर्जुन को उसने मार दिया। मारकर शयनगृह से निकल गया। उसने सोचा—देखूँ मेरी प्रिया क्या करती है। एक स्थान पर खड़ा रहा। उस प्रकार के खून के स्पर्श से नर्मदा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च णाए—हा हा विवन्नो मे पिययमो, हा हय म्हि मंदभाइणी। अह केण उण एवं ववसियं; कूरो खु सो पावो। कीस वा अहं न वावाइया, किं वा ममं जीवइ (जीविएण) अवणीयं हिययबंधणं। नियत्ता इइसुहकहा। सव्वहा इइसो एस संसारो त्ति। चिंतिऊण वासगेहभित्तिमूले खया दीहखड्डा, निहओ तहिं अज्जुणओ। एयमवलोइऊण अवक्कंतो पुरंदरो, गओ अहिमयपएसं। कया य णाए तहिं पएसे थलहिया, कप्पिया तस्स बोंदी, पूएइ पइदिणं, करेइ बलिविहिं, निहेइ नेहदीवं, आलिंगइ सिणेहमोहेण। उचियसमएणं च आगओ पुरंदरो। न दंसिओ तेण वियारो, न लक्खिओ नम्मयाए। अइक्कंता कइइ दियहा। दिट्ठा पुरंदरेग थलहियासुस्सूसा। चिंतियं च णेण—अहो से मूढया, अहो अणुराओ। अहवा अणहीयसत्थो ईइसो चेव इत्थियायणो होइ। किं ममेइणा। सुहाहारतुल्लाओ इत्थियाओ त्ति रिसिवयणं। ता करेउ एसा जं से पडिहायइ। पुव्वि व तीए सह विसयसुहमणुहवंतस्स अइक्कंता दुवालससंवच्छरा। इओ य अईयपंचमदिणे पत्थुयाए पक्खाइयाए उवकप्पिए विविहदियभोयणे अभुत्तेसु दिएसु समासन्नाए भोयणवेलाए दिट्ठा पुरंदरेण तीए थलहियाए पिंडविहाणमुवकप्पयंती

तया दीर्घनिद्राप्रसुप्तोऽर्जुनः। चिन्तितं च तया – हा हा विपन्नो मे प्रियतमः, हा हतास्मि मन्दभागिनी। अथ केन पुनरेवं व्यवसितम्, क्रूरः खलु स पापः। कस्माद् वाऽहं न व्यापादिता, किं वा मम जीवितेन,अपनीतं हृदयबन्धम्। निवृत्ता रतिसुखकथा। सर्वथेदृश एष संसार इति। चिन्तयित्वा वासगेहभित्तिमूले खाता दीर्घगर्ता, निखातस्तत्रार्जुनः। एवमवलोक्यापक्रान्तः पुरन्दरः, गतोऽभिमतप्रदेशम्। कृता च तया तत्र प्रदेशे स्थलिका, कल्पिता च तस्य बोन्दिः, पूजयति प्रतिदिनम्, करोति बलिविधिम्, निदधाति स्नेहदीपम्, आलिङ्गति स्नेहमोहेन। उचितसमयेन चागतः पुरन्दरः, न दर्शितस्तेन विकारः, न लक्षितो नर्मदया। अतिक्रान्ताः कत्यपि दिवसाः। दृष्टः पुरन्दरेण स्थलकाशुश्रूषा। चिन्तितं च तेन—अहो तस्या मूढता, अहो अनुरागः। अथवाऽनधीतशास्त्र ईदृश एव स्त्रीजनो भवति। किं ममैतेन। सुधाहारतुल्याः स्त्रिय इति ऋषिवचनम्। ततः करोत्वेषा, यत् तस्याः प्रतिभाति। पूर्वमिव तया सह विषयसुखमनुभवतोऽतिक्रान्ता द्वादश संवत्सराः। इतश्चातीतपञ्चमदिने प्रस्तुतायां पक्षादिकायामुपकल्पिते विविधद्विजभोजनेऽभुक्तेषु द्विजेषु समासन्नायां

जाग गयी। उसने दीर्घनिद्रा में सोये हुए अर्जुन को देखा और (उसने) सोचा—हाय हाय, मेरा प्रियतम मर गया, हाय मैं मन्दभागिनी मारी गयी। किसने ऐसा किया होगा? निश्चित रूप से वह पापी क्रूर है। अथवा मुझे क्यों नहीं मारा? मेरे जीने से क्या (अर्थात् मेरा जीना व्यर्थ है)। हृदय के बन्धन दूर हो गये। सम्भोगसुख की कथा निवृत्त हो गयी। यह संसार ऐसा ही है - ऐसा सोचकर शयनगृह की दीवार के नीचे बड़ा गड्ढा खोदा, उसमें अर्जुन को गाड़ दिया। यह देखकर पुरन्दर चला गया। इष्ट स्थान पर गया। उस स्थान पर उस स्त्री ने छोटा चबूतरा बनवाया और उसकी मूर्ति बनवायी, प्रतिदिन पूजा करने लगी, बलि की विधि करने लगी, स्नेह का दीप रखने लगी, स्नेह के मोह से आलिंगन करने लगी। उचित समय पर पुरन्दर आया। उसने विकार नहीं दिखलाया, नर्मदा ने लक्षित नहीं किया। कुछ दिन बीत गये। पुरन्दर ने चबूतरे की सेवा देखी। उसने सोचा—ओह उसकी (पत्नी की) मूढ़ता, ओह अनुराग! अथवा शास्त्र न पढ़ी हुई स्त्रियाँ ऐसी ही होती हैं। मुझे इससे क्या। स्त्रियाँ अमृत के आहार के तुल्य होती हैं – ऐसा ऋषिवचन है, अतः उसे जो दिखाई दे वह करे। पहले जैसा विषयसुख अनुभव करते हुए बारह वर्ष बीत गये। इधर पिछले पाँचवें दिन पक्षादि के आने पर अनेक प्रकार के भोजन ब्राह्मणों के लिए बनाने तथा ब्राह्मणों के भोजन करने पर जब भोजन का समय आया तो पुरन्दर ने उसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नम्मया । तओ ईसि विहसिऊण जंपियमणेण—हला, किमणेण अज्जावि । एयमायण्णिय भिन्नमिमीए हिययं । चिंतियं च णाए—हंत एएण मे पिययमो वावाइओ, अन्नहा कहं एस एवं जंपइ । अहो से कूरहिययया । ता इमं एत्थ पत्तयालं; वावाएमि एयं हिययनंदणसत्तुं, करेमि वेरनिज्जायणं । एसो य एत्थुवाओ, देमि से विसभोयणं ति । चिंतिऊण आणावियं विसं । अवसरो त्ति कयमज्ज विसभोयणं पउत्तं च णाए । एस एत्थ वइयरो । राइणा भणियं—वच्छ, कुक्कुरवइयरो कहं ति । कुमारेण भणियं—ताय, तस्स वि इमीए चेव थलहियासंणिविट्ठपिययमोवद्दवगारी इमो त्ति तं चेव विसभोयणं पउत्तं । अवि य—

तन्नेहमोहियाए तस्सोवद्दवनिमित्तमेयाए ।
सो चेव सत्त वारे एस हओ अज्जुणो ताय ॥१००१॥

जं सो मरिऊण तहा अचिंतसामत्थकम्मदोसेण ।
एत्थेव सत्त वारे उववन्नो हीणजम्मेसु ॥१००२॥

भोजनवेलायां दृष्टा पुरन्दरेण तस्यां स्थलिकायां पिण्डविधानमुपकल्पयन्ती नर्मदा । तत ईषद् विहस्य जल्पितमनेन—हला! किमनेनाद्यापि । एतदाकर्ण्य भिन्नमस्या हृदयम् । चिन्तितं च तया—हन्त एतेन मे प्रियतमो व्यापादितः, अन्यथा कथमेष एवं जल्पति । अहो तस्य क्रूरहृदयता । तत इदमत्र प्राप्तकालम्, व्यापादयाम्येतं हृदयनन्दनशत्रुम्, करोमि वैरनिर्यातनम् । एष चात्रोपायः। ददामि तस्य विषभोजनमिति । चिन्तयित्वाऽऽनायितं विषम् । अवसर इति कृतमद्य विषभोजनम्। प्रयुक्तं च तया । एषोऽत्र व्यतिकरः । राज्ञा भणितम्—वत्स ! कुर्कुरव्यतिकरः कथमिति । कुमारेण भणितम्—तात ! तस्याप्यनयैव स्थलिकासन्निविष्टप्रियतमोद्रवकारी अयमिति तदेव विषभोजनं प्रयुक्तम । अपि च,

तत्स्नेहमोहितया तस्योपद्रवनिमित्तमेतया ।
स एव सप्त वारान् एष हतोऽर्जुनस्तात ॥१००१॥

यत् स मृत्वा तथाऽचिन्त्यसामर्थ्यकर्मदोषेण ।
अत्रैव सप्त वारान् उपपन्नो हीनजन्मसु ॥१००२॥

चबूतरे पर पिण्डविधान करती हुई नर्मदा को देखा । अनन्तर कुछ हँसकर इसने कहा—'सखी ! अब इससे क्या (लाभ है) ?' यह सुनकर इसका हृदय भिद गया । इसने सोचा—हाय, इसी ने मेरे प्रियतम को मारा है नहीं तो यह ऐसा कैसे कहता ? इसकी (पति की) क्रूर हृदयता ! तो अब समय आ गया है, हृदय को आनन्द देनेवाले के शत्रु इसको (पति को) मारती हूँ, वैर का बदला चुकाती हूँ । यहाँ यह उपाय है, उसे विष का भोजन देती हूँ—ऐसा सोचकर विष मँगवाया । 'अवसर है'—यह सोचकर उसने आज विष का भोजन बनाया, उसे दे दिया । यहाँ यह घटना हुई ।' राजा ने कहा—'पुत्र ! कुत्ते की घटना कैसी है ?' कुमार ने कहा—'पिता जी ! उसको भी इसने 'चबूतरे पर विद्यमान प्रियतम पर यह उपद्रव करता है' सोचकर वही विष का भोजन दे दिया । कहा भी है—

वही अर्जुन उसके प्रति स्नेह से मोहित होकर उस उपद्रव के कारण मात्र से इसी के द्वारा सात बार मारा गया । वह मरकर कर्म के दोषों की अचिन्त्य सामर्थ्य से यहीं सात बार हीन जन्मों में पैदा हुआ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किमिगिहकोइलमूसयभेगालससप्पसाणभावेण ।
नियमरणथामपडिबंधदोसओ पाविओ मरणं ॥१००३॥
धी संसारो जहियं जुवाणओ परमरूवगव्वियओ ।
मरिऊण जायइ किमी तत्थेव कलेवरे नियए ॥१००४॥
घाइज्जइ मूढेणं मूढो तन्नेहमोहियमणेण ।
जहियं तहिं चेव रई एयं पि हु मोहसामत्थं ॥१००५॥

ता एस कुक्कुरवइयरो त्ति । एयमायण्णिऊण संविग्गो राया । चिंतियं च णेण—अहो दारुणयत्त संसारस्स, अहो विचित्तया कम्मपरिणईए, अहो विसयलोलुयत्तं जीवाणं, अहो अपरमत्थन्नुया; सव्वहा महागहणमेयं त्ति ।

एत्थंतरम्मि समागया वेज्जा । भणियं च णेहिं—देव, देवपसाएण जीवाविओ पुरंदरभट्टो कुक्कुरो य । एयमायण्णिय हरिसिओ राया । भणियं च णेण—कहं जीवाविओ त्ति । वेज्जेहि भणियं—देव, दाऊण छड्डावणाइं छड्डाविओ विसं, तओ जीवाविओ त्ति ।

कृमिगृहकोकिलमूषकभेकालससर्पश्वानभावेन ।
निजमरणस्थानप्रतिबन्धदोषतः प्राप्तो मरणम् ॥१००३॥
धिक् संसारं यत्र युवा परमरूपगर्वितः ।
मृत्वा जायते कृमिस्तत्रैव कलेवरे निजके ॥१००४॥
घात्यते मूढेन मूढस्तत्स्नेहमोहितमनसा ।
यत्र तत्रैव रतिरेतदपि खलु मोहसामर्थ्यम् ॥१००५॥

तत एष कुर्कुरव्यतिकर इति । एतदाकर्ण्य संविग्नो राजा । चिन्तितं च तेन—अहो दारुणता संसारस्य, अहो विचित्रता कर्मपरिणतेः, अहो विषयलोलुपत्वं जीवानाम्, अहो अपरमार्थज्ञता, सर्वथा महागहनमेतदिति ।

अत्रान्तरे समागता वैद्याः, भणितं च तैः—देव ! देवप्रसादेन जीवितः पुरन्दरभट्टः कुर्कुरश्च । एतदाकर्ण्य हर्षितो राजा । भणितं च तेन—कथं जीवित इति । वैद्यैर्भणितम्—देव ! दत्त्वा छर्दनानि छर्दितो विषं ततो जीवित इति ।

कीड़ा, पालतू कोयल, चूहा, मेंढक, हंसपदी लता, सर्प और कुत्ते के रूप में अपने मरणस्थान के संसर्ग के दोष से मृत्यु को प्राप्त हुआ। संसार को धिक्कार कि जहाँ पर परमरूप से गर्वित युवक मरकर उसी अपने शरीर में कीड़ा होता है। मूढ़ता के कारण मूढ़ जिसका घात करता है, स्नेह से मोहित बुद्धिवाला उसी में रति करता है, यह भी मोह की सामर्थ्य है ॥१००१-१००५॥

तो यह कुत्ते का वृत्तान्त है।' यह सुनकर राजा उद्विग्न हुआ और उसने सोचा—ओह संसार की भयंकरता, ओह कर्मों के फल की विचित्रता, ओह जीवों की विषयों के प्रति लोलुपता, ओह परमार्थ का ज्ञान न होना, ये सर्वथा अत्यधिक गहन है।

इसी बीच वैद्य आये और उन्होंने कहा—'महाराज की कृपा से पुरन्दर और कुत्ता जीवित है। यह सुनकर राजा हर्षित हुआ और उसने कहा—कैसे जीवित रहे ?' वैद्यों ने कहा—'महाराज ! कै करानेवाली दवाइयाँ देने के बाद विष कै कर दिया, उससे जीवित रहे आये।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एत्थंतरम्मि बालायवसरिसो पयासयंतो नयरिं वियंभिओ उज्जोओ, पवज्जियाओ देवदुंदुहीओ, पसरिओ पारियायामोओ, सुव्वए दिव्वगेयं, वड्ढिओ हरिसविसेसो। राइणा भणियं– वच्छ, किमेयं ति। कुमारेण भणियं—ताय, देवुप्पाओ। राइणा भणियं—वच्छ, को उण एस देवो, किं निमित्तं वा अयंडे उप्पाओ। कुमारेण भणियं—ताय, एस खलु गुणधम्मसेट्ठिपुत्तो जिणधम्मो नाम सेट्ठिकुमारो अज्जेव देवत्तमणुपत्तो। मित्तभारियाविबोहणत्थं च आगओ इहासि। पडिबोहियाणि य ताणि। तओ देवलोयगमणनिमित्तं 'दंसेमि एयासिं नियमिद्धिं' ति उप्पइओ इयाणि। राइणा भणियं— वच्छ, कहं पुण एस अज्जेव देवत्तमणुप्पत्तो, कहं वा विबोहिओ णेण मित्तो भारिया य। कुमारेण भणियं—ताय, एसो वि वइयरो कम्मपरतंतसत्तचेट्ठाणुरूवो; तहावि ताएण पुच्छिओ त्ति साहीयइ। अन्नहा कहं ईइसमेव इहलोयपरलोयविरुद्धं साहिउं पारीयइ। राइणा भणियं—वच्छ, ईइसो एस संसारो, किमेत्थ नोवखयं ति। कुमारेण भणियं—ताय, जइ एवं, ता सुण।

एस खलु जिणधम्मो जिणवयणभावियमई विरत्तो संसारवासाओ निरीहो विसएसु भावए

अत्रान्तरे बालातपसदृशः प्रकाशयन् नगरीं विजृम्भित उद्द्योतः, प्रवादिता देवदुन्दुभयः, प्रसृतः पारिजातामोदः, श्रूयते दिव्यगेयम्, वर्धितो हर्षविशेषः। राज्ञा भणितम्–वत्स ! किमेतदिति। कुमारेण भणितम्—तात ! देवोत्पातः। राज्ञा भणितम्—वत्स ! कः पुनरेष देवः, किंनिमित्तं वाऽकाण्डे उत्पातः। कुमारेण भणितम्—तात ! एष खलु गुणधर्मश्रेष्ठिपुत्रो जिनधर्मो नाम श्रेष्ठिकुमारोऽद्यैव देवत्वमनुप्राप्तः। मित्रभार्याविबोधनार्थं चागत इहासीत्। प्रतिबोधिते च ते। ततो देवलोकगमननिमित्तं 'दर्शयाम्येतयोर्निजऋद्धिम्' इति उत्पतित इदानीम्। राज्ञा भणितम्—वत्स ! कथं पुनरेषोऽद्यैव देवत्वमनुप्राप्तः, कथं वा विबोधितं तेन मित्रं भार्या च। कुमारेण भणितम्—तात ! एषोऽपि व्यतिकरः कर्मपरतन्त्रसत्त्वचेष्टानुरूपः, तथापि तातेन पृष्ट इति कथ्यते। अन्यथा कथमिदृशमेव इहलोकपरलोकविरुद्धं कथयितुं पार्यते। राज्ञा भणितम्—वत्स ! ईदृश एष संसारः, किमत्र अपूर्वमिति। कुमारेण भणितम्–तात ! यद्येवम्, ततः शृणु—

एष खलु जिनधर्मो जिनवचनभावितमतिर्विरक्तो संसारवासाद् निरीहो विषयेष भावयति

इसी बीच प्रातःकालीन सूर्य के समान नगरी को प्रकाशित करता हुआ प्रकाश फैला, देवों के नगाड़े बजे, कल्पवृक्षों की सुगन्धि फैली, दिव्य गीत सुनाई पड़े, हर्षविशेष बढ़ा। राजा ने कहा—'वत्स ! यह सब क्या है ?' कुमार ने कहा –'पिताजी ! देव का ऊपर की ओर गमन है।' राजा ने कहा—'यह देव कौन है ? अथवा असमय में कैसे ऊपर गया ?' कुमार ने कहा—'पिता जी ! यह गुणधर्म सेठ का पुत्र जिनधर्म नामक श्रेष्ठिकुमार आज ही देवत्व को प्राप्त हुआ है। मित्र और पत्नी को जाग्रत् करने के लिए यहाँ आया था। उन सभी को प्रतिबोधित किया। अनन्तर स्वर्ग को गमन करने के लिए 'इनको ऋद्धियाँ दिखलाऊँगा' ऐसा सोचकर इस समय ऊपर गया है। राजा ने कहा—'यह कैसे आज ही देवत्व को प्राप्त हुआ है, कैसे उसने मित्र और पत्नी को सबोधित किया ?' कुमार ने कहा—'पिता जी ! यह घटना भी कर्म से परतन्त्र प्राणी की चेष्टा के अनुरूप है, फिर भी पिता जी ने पूछा है अतः कहता हूँ अन्यथा कैसे इस लोक और परलोक के विरुद्ध कहने में समर्थ होता ?' राजा ने कहा— 'पुत्र ! यह संसार ऐसा ही है, यहाँ अपूर्व क्या है।' कुमार ने कहा -'पिताजी ! यदि ऐसा है तो सुनो—

यह जिनधर्म जिनेन्द्र भगवान के वचनों के अनुसार भावनावाली बुद्धि का होकर संसारवास से विरक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुसलपक्खं। मित्तो य से धणयत्तो नाम, भारिया बंधला। सा उण अविवेयसामत्थओ संगया धणयत्तेण। अइक्कंतो कोइ कालो। अज्ज उण जिणधम्मो निरवेक्खयाए इहलोयं पइ असाहिऊणं परियणस्स नियगेहासन्नसुन्नगेहे ठिओ सव्वराइयं पडिमं। न याणिओ बंधुलाए। एसा वि विइण्णधणयत्तसंकेया घेत्तूण लोहखीलयसणाहपायं पल्लंकं गया त सुन्नगेहं। अंधयारदोसेण जिणधम्मपाओवरि ठाविओ पल्लंको। बिद्धो तओ खीलएण। समागओ धणदत्तो; निवन्नो पल्लंके, निसण्णा बंधुला. आलिंगिया धणयत्तेण, पवत्तं मोहणं। भारायासेण पीलिओ खीलिओ ताव जाव पायतलं विभिंदिऊण निमिओ धराए। वेयणाइसएण मुच्छिओ जिणधम्मो. ओयल्लो भित्तिकोणे, न लक्खिओ इयरेहिं। समागया चेयणा, आभोइओ वइयरो, वड्ढिया कुसलबुद्धी। चिंतियं च णेण– अहो खलु ईइसा इमे विसया मोहेंति कुसलबुद्धि, नासेंति सीलरयणं. पाडेंति दुग्गईए, सव्वहा दुच्चिगिच्छा एए जीवाण भाववाहिणो। ता धन्ना महामुणी तहोवसमलद्धिजुत्ता तिहुयणेक्कगुरवो भयवंतो तित्थणाहा, जेसिं सन्निहाणओ वि जोग्गदेहावत्थियाणं अविसेसेण पायं न होइ पावबुद्धी पाणिणं ति। अहं पुण अधन्नो अच्चंतसंगयाण

कुशलपक्षम्। मित्रं च तस्य धनदत्तो नाम, भार्या बन्धुला (लता)। सा पुनरविवेकसामर्थ्यतः सङ्गता धनदत्तेन। अतिक्रान्तः कोऽपि कालः। अद्य पुनर्जिनधर्मो निरपेक्षतयेहलोक प्रत्यकथयित्वा परिजनस्य निजगेहासन्नशून्यगेहे स्थितः सर्वरात्रिकीं प्रतिमाम्। न ज्ञातो बन्धुल(त)या। एषाऽपि वितीर्णधनदत्तसंकेता गृहीत्वा लोहकीलकसनाथपादं पल्यङ्कं गता तत् शून्यगेहम्। अन्धकारदोषेण जिनधर्मपादोपरि स्थापितः पल्यङ्कः। विद्धस्ततः कीलकेन। समागतो धनदत्तः, निपन्नः पल्यङ्के, निषण्णा बन्धुला(लता), आलिङ्गिता धनदत्तेन, प्रवृत्त मोहनम्। भारायासेन पीडितः कीलकस्तावत् यावत् पादतलं विभिद्य न्यस्तो (प्रविष्टः) धरायाम्। वेदनातिशयेन मूर्च्छितो जिनधर्मः, पर्यस्तो भित्तिकोणे, न लक्षित इतराभ्याम्। समागता चेतना, आभोगितो व्यतिकरः, वर्द्धिता कुशलबुद्धिः। चिन्तितं च तेन—अहो खलु ईदृशा इमे विषया मोहयन्ति कुशलबुद्धिम्, नाशयन्ति शीलरत्नम्, पातयन्ति दुर्गतौ, सर्वथा दुश्चिकित्स्या एते जीवानां भावव्याधयः। ततो धन्या महामुनयस्तथोपशमलब्धियुक्तास्त्रिभुवनैकगुरवो भगवन्तस्तीर्थनाथाः, येषां सान्निधानतोऽपि योग्यदेशाव-

---

हो गया, विषयों के प्रति अभिलाषा रहित हो गया और शुभपक्ष की भावना करने लगा। उसका मित्र धनदत्त और पत्नी बन्धुला नाम की थी। वह अविवेक की सामर्थ्य से धनदत्त के साथ हो गयी। कुछ समय बीत गया। पुनः आज जिनधर्म इस लोक की निरपेक्षता से परिजनों से न कहकर अपने घर के पास सूने घर में सम्पूर्ण रात्रि के लिए प्रतिमायोग में स्थित हो गया। बन्धुला ने नहीं जाना। यह भी धनदत्त के द्वारा दिये हुए सकेत के अनुसार लोहे की कीलोंवाले पलंग को लेकर उस सूने घर में गयी। अन्धकार के दोष से जिनधर्म के पैर पर पलँग रख दिया। उस कील से वह बिंध गया। धनदत्त आया, पलँग पर पड़ गया, बन्धुला बैठ गयी। धनदत्त ने उसका आलिंगन किया, मोह से युक्त हो गये। भार के उद्योग से कील ने तब तक पीड़ा दी जब तक पैर के तलुए को भेदकर पृथ्वी में प्रविष्ट (न) हो गयी। वेदना की अधिकता से जिनधर्म मूच्छित हो गया। दीवार के कोने में गिर पड़ा। दोनों ने नहीं देखा। होश आया, घटना ज्ञात हुई, शुभबुद्धि बढ़ी और उसने सोचा - ओह! निश्चित रूप से ये विषय शुभबुद्धि को मोहित करते हैं, शीलरूपी रत्न का नाश करते हैं, दुर्गति में गिराते हैं। इन भवव्याधियों की जीवों के द्वारा चिकित्सा होना कठिन है। अतः महामुनि तथा उपशमलब्धि से युक्त तीनों भुवनों के अद्वितीय गुरु भगवान् तीर्थंकर धन्य हैं, जिनके समीप रहने पर भी योग्य स्थान में अवस्थित प्राणियों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पयत्तेण वि सव्वहा न चएमि भावोवयारं काउं मित्तभारियाणं पि, किमंग पुण अन्नेसिं। अहो मे अप्पंभरित्तणं, अहो दुक्खहेउया, अहो अकयत्थत्तणं, अहो कम्मपरिणई; जेण मए वि संगयाणं एएसि ईइसं किलिट्ठचेट्ठियं उवहासपायं लोए निबंधणं कुगइवासस्स। सव्वहा विराहियं मए सुहासियरयणं, जमेवं सुणीयइ, 'न खलु निप्फलो कल्लाणमित्तजोओ' त्ति। कीइसी वा मम कल्लाणया, जेण एवमेयं हवइ। अत्थि एयाणमुवरि मम पक्खवाओ। इमं पुण भयवंतो केवली वियाणंति। सव्वहा परममन्त-सुमरणे करेमि पयत्तं ति। तमेव चिंतिउमाढत्तो। नमो वीयरायाणं नमो गुरुयणस्स त्ति। एवं भाव-सारं चितयंतो विमुक्को जीविएण, उप्पन्नो बम्भलोए। दिन्नो अणेणोवओओ।

कोऽहमिमो किं दाणं का दिक्खा को व मे तवो चिण्णो।
जेण अहं कयपुण्णो उप्पन्नो देवलोगम्मि ॥१००६॥

एव चिंतयंतेण ओहिणा आभोइयं सव्वं। अकाऊण देवकिच्चं पहाणकरुणासंगओ विबोहण-निमित्तं मित्तभारियाण सयराहमेव समागओ इहइं। न एवंविहाण अईवरायपडिबद्धाणं विणिवाय-

---

स्थितानामविशेषेण प्रायो न भवति पापबुद्धिः प्राणिनामिति। अहं पुनरधन्योऽत्यन्तसङ्गतयोः प्रयत्नेनापि सर्वथा न शक्नोमि भावोपकारं कर्तुं मित्रभार्ययोरपि, किमङ्ग पुनरन्येषाम्। अहो मे आत्मभरित्वम्, अहो दुःखहेतुता, अहो अकृतार्थत्वम्, अहो कर्मपरिणतिः, येन मयाऽपि सङ्गतयोरेतयोरीदृशं क्लिष्टचेष्टितमुपहासप्रायं लोके निबन्धनं कुगतिवासस्य। सर्वथा विराधितं मया सुभाषितरत्नम्, यदेवं श्रूयते 'न खलु निष्फलः कल्याणमित्रयोगः' इति। कीदृशी वा मम कल्याणता, येनैवमेतद् भवति। अस्त्येतयोरुपरि मम पक्षपातः। इदं पुनर्भगवन्तः केवलिनो विजानन्ति। सर्वथा परममन्त्रस्मरणे करोमि प्रयत्नमिति। तदेव चिन्तयितुमारब्धः। नमो वीतरागेभ्यः, नमो गुरुजनायेति। एवं भावसारं चिन्तयन् विमुक्तो जीवितेन, उत्पन्नो ब्रह्मलोके। दत्तोऽनेनोपयोगः।

कोऽहमयं किं दानं का दीक्षा किं वा मया तपश्चीर्णम्।
येनाहं कृतपुण्य उत्पन्नो देवलोके ॥१००६॥

एवं चिन्तयताऽवधिनाऽऽभोगितं सर्वम्। अकृत्वा देवकृत्यं प्रधानकरुणासङ्गतो विबोधननिमित्तं मित्रभार्ययोः शीघ्रमेव समागत इह। नैवंविधानामतीवरागप्रतिबद्धानां विनिपातदर्शन-

---

की सामान्यतः पापबुद्धि नहीं होती है। मैं अधन्य हूँ जो कि प्रयत्न से अत्यधिक मिले हुए मित्र और भार्या का भावों से उपकार नहीं कर सकता हूँ, दूसरों की तो बात ही क्या। ओह मेरा अपने आपका भरणपोषण करने वाला होना, ओह दुःख का कारणपना, ओह अकृतार्थता, ओह कर्मों का फल; जिससे मैं भी इन दोनों के साथ इस प्रकार दुःखी चेष्टावाला उपहासप्राय और लोक में कुगतिवास का कारण होऊँगा। सर्वथा मैंने सुभाषितरूपी रत्न का विराधन कर दिया जो कि इस प्रकार सुना जाता है कि कल्याण (करने वाले) मित्र का मिलना निश्चित रूप से निष्फल नहीं होता है। मेरी कैसी कल्याणता जो कि यह इस प्रकार हो रहा है। मेरा इन दोनों पर पक्षपात है। इसे भगवान् केवली जानते हैं। सर्वथा परममन्त्र (णमोकार मंत्र) का स्मरण करने का प्रयत्न करता हूँ। उसी का स्मरण करना आरम्भ किया। वीतरागों को नमस्कार हो, गुरुजनों को नमस्कार हो। इस प्रकार साररूप भावों का चिन्तन करते हुए जीवन छोड़ा, ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ। इसने ध्यान लगाया।

यह मैं कौन हूँ? मैंने क्या दान, दीक्षा अथवा तपश्चरण किया, जिससे मैं पुण्य कर स्वर्गलोक में उत्पन्न हुआ? ॥१००६॥

इस प्रकार सोचते हुए अवधिज्ञान से सब जान लिया। देवों के करने योग्य कार्यों को न कर प्रधानकरुणा से युक्त हो मित्र और पत्नी को संबोधित करने के लिए शीघ्र यहाँ आया। इस प्रकार के तीव्रराग में बँधे हुए

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

दंसणमंतरेण संभवइ बोहो त्ति पउत्ता देवमाया, कया बंधुलाए विसूइया। गहिया महावेयणाए, वेउव्वियं असुइजंबालं अइचिक्कणं फासेण पगिट्ठदुरहिगंधं अमणोरमं असुइभक्खणरयाणं पि। सव्वहा तेण एवंविहेण भिन्ना उभयपासओ। हा हा मरामि त्ति अवलंबए धणयत्तं। भिज्जए पुणो पुणो धणयत्तो वि तेण पावेण विय लिप्पमाणो जंबालेण। गहिओ सोयवेयणाहिं; जाया महाअरई। चिंतियं च णेण—अहो कीइसं जायं ति। उव्विग्गो मणागं ओसरइ बंधुलाओ। तीए चिंतियं—अहो एयस्स नेहो, संपयं चेव उव्वियइ। भणियं च णाए—हा हा मरामि त्ति, महई मे वेयणा, भज्जंति अंगाइं। तेण भणियं—किमहमेत्थ करेमि, असज्झं खु एयं। तीए भणियं—संवाहेहि मे अंगं। लग्गो संवाहिउं उवरोहमेत्तेण। लेसिया हत्था, न चएइ वावारिउं। तओ चिंतियमणेण –अहो किंपि एयं अइट्ठपुव्वमम्हेहिं मुत्तिमंतं विय पावं, पगरिसो असुंदराणं। भणियं च सकरुणं—पिए, किमहमेत्थ करेमि, न वहंति मे हत्था। गहिओ य अरईए, सव्वहा पावविलसियमिणं। बंधुलयाए चिंतियं–एवमेयं न अन्नहा। महंतमेवेयं पावं, जं परमदेवयाकप्पो सिणेहालू वंचिओ भत्तारो, कयमिणं उभयलोय-

---

मन्तरेण सम्भवति बोध इति प्रयुक्ता देवमाया, कृता बन्धुलाया(लतायाः) विसूचिका। गृहीता महावेदनया, विकुर्वितमशुचिजम्बालमतिचिक्कणं स्पर्शेन प्रकृष्टदुरभिगन्धममनोरममशुचिभक्षणरतानामपि। सर्वथा तेनैवंविधेन भिन्ना उभयपार्श्वतः। हा हा म्रिये इत्यवलम्बते धनदत्तम्। भिद्यते पुनर्धनदत्तोऽपि तेन पापेनेव लिप्यमानो जम्बालेन। गृहीतः शोकवेदनाभिः, जाता महाऽरतिः। चिन्तितं च तेन–अहो कीदृशं जातमिति। उद्विग्नो मनागपसरति बन्धुलायाः (लतायाः)। तया चिन्तितम्—अहो एतस्य स्नेहः, साम्प्रतमेव उद्वेवेजित। भणितं च तया—हा हा म्रिये इति, महती मे वेदना, भज्यन्तेऽङ्गानि। तेन भणितम्–किमहमत्र करोमि, असाध्यं खल्वेतत्। तया भणितम्—संवाहय मेऽङ्गम्। लग्नः संवाहयितुमुपरोधमात्रेण। श्लेषितौ हस्तौ, न शक्नोति व्यापारयितुम्। ततश्चिन्तितमनेन—अहो किमप्येतददृष्टपूर्वमावाभ्यां मूर्तिमदिव पापं, प्रकर्षोऽसुन्दराणाम्। भणितं च सकरुणम् –प्रिये! किमहमत्र करोमि, न वहतो मे हस्तौ। गृहीतश्चारत्या, सर्वथा पापविलसितमिदम्। बन्धुल(ल)या चिन्तितम्–एवमेतद् नान्यथा। महदेवैतत् पापम्, यत् परमदेवताकल्पः

लोगों को अधःपतन दिखाये बिना बोध सम्भव नहीं है—ऐसा विचारकर देवमाया का प्रयोग किया। बन्धुला को हैजा कर दिया। उसे अत्यधिक वेदना ने जकड़ लिया, स्पर्श की अपेक्षा अत्यन्त चिकना विष्टा का कीचड़ कर दिया जो कि अपवित्र पदार्थों के भक्षण में रत रहने वालों की विष्टा से भी अत्यधिक दुर्गन्धित और बुरा था। उसने इस प्रकार दोनों पार्श्वभाग तोड़ दिये। 'हाय हाय, मर गयी' इस प्रकार धनदत्त का सहारा लिया। धनदत्त भी उसी पाप से कीचड़ (विष्टा) से लिप्त हुआ बार बार भिद गया। शोक और वेदना ने घेर लिया, अत्यधिक अरति उत्पन्न हुई और उसने सोचा—ओह! कैसा हो गया? इस प्रकार उद्विग्न होकर थोड़ा बन्धुला के पास सरका। उसने सोचा—ओह इसका स्नेह, इस समय भी उद्विग्न हो रहा है। उसने कहा–'हाय मैं मर गयी, मुझे बहुत वेदना हो रही है, अंग-अंग टूट रहे हैं।' उसने कहा—'मैं यहाँ क्या करूँ, यह असाध्य है।' उसने कहा—'मेरे अंगों को दबाओ।' अनुग्रह मात्र से दबाने में लग गया। हाथ चिपक गये, चलाने में समर्थ नहीं हुआ। अनन्तर इसने सोचा—ओह! यह पहले न देखा गया हम दोनों का कोई मानो शरीरधारी पाप है, अशोभन की चरमसीमा है। करुणायुक्त होकर कहा—'प्रिये! मैं यहाँ क्या करूँ? मेरे हाथ नहीं चलते हैं। अरति ने ग्रहण कर लिया, सर्वथा यह पाप की क्रीड़ा है।' बन्धुला ने सोचा— ऐसा ही है, अन्यथा नहीं है। यही

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

विरुद्धं । समागया संवेयं, 'हा अज्जउत्त' त्ति रोविउं पयत्ता । धणदत्तेण चिंतियं—हा अणज्ज धणयत्त, एवंविहे जीवलोए एद्दहमेत्ते असारे सरीरम्मि सोऊण पियवयंसवयणं उवजीविऊण तप्पसाए किमिय-मुचियं ति । एवंविहाण चेट्ठियाण ईइसा चेव परिणइ त्ति । हा पियवयंस, दूढो मए तुमं ति । चिंतिऊण संवेगसारमुवगओ मोहं । एत्थंतरम्मि एस एत्थ पडिबोहणसमओ त्ति जाणिऊण ओहिणा तेसिं विप्प-लोहणेण दिव्वरूवधारिणा संवेगवुड्ढिनिमित्तं सवपूयणाववएसेण दिन्नं दरिसणं । निव्वत्तिया सव-पूया । अवहरिया तीसे वेयणा इयरस्स य सोयाणलो । दिट्ठो तेहिं देवो । वंदिओ भावेण । चिंतियं च णेहिं—अहो णे एयपहावेण अवगया वेयणा, अहो से सत्ती, अहो रूवं, अहो दित्ती, अहो कंती । विम्हिएहिं पणमिओ सविणयं । भणियं च णेहिं—भयवं, को तुमं; किं निमित्तं वा इहागओ सि । तेण भणियं—देवो अहं जिणधम्मपडिमापूयणत्थं समागओ म्हि । तेहिं भणियं—कहिं जिणधम्म-पडिमा । दंसिया देवेण 'एसा पडिम'त्ति । दिट्ठा य णेहिं । हा जिणधम्मविवन्नपडिमा विय दीसइ त्ति

स्नेहालुर्वञ्चितो भर्ता, कृतमिदमुभयलोकविरुद्धम् । समागता संवेगम् 'हा आर्यपुत्र' इति रोदितुं प्रवृत्ता । धनदत्तेन चिन्तितम्—हा अनार्य धनदत्त ! एवंविध जीवलोके एतावन्मात्रेऽसारे शरीरे श्रुत्वा प्रियवयस्यवचनमुपजीव्य तत्प्रसादात् किमिदमुचितमिति । एवंविधानां चेष्टितानामीदृश्येव परिणतिरिति । हा प्रियवयस्य ! द्रूढो मया त्वमिति । चिन्तयित्वा संवेगसारमुपगतो मोहम् । अत्रान्तरे एषोऽत्र प्रतिबोधनसमय इति ज्ञात्वाऽवधिना तयोर्विप्रलोभनेन दिव्यरूपधारिणा संवेगवृद्धिनिमित्तं शवपूजनव्यपदेशेन दत्तं दर्शनम् । निर्वर्तिता शवपूजा । अपहृता तस्या वेदना इतरस्य च शोकानलः । दृष्टस्ताभ्यां देवः । वन्दितो भावेन । चिन्तितं ताभ्याम्—अहो आवयोरेतत्प्रभावेणापगता वेदना; अहो तस्य शक्तिः, अहो रूपम्, अहो दीप्तिः, अहो कान्तिः । विस्मिताभ्यां प्रणतः सविनयम् । भणितं च ताभ्याम्—भगवन् ! कस्त्वम्, किं निमित्तं वेहागतोऽसि । तेन भणितम्—देवोऽहं जिनधर्मप्रतिमा-पूजनार्थं समागतोऽस्मि । ताभ्यां भणितम्—कुत्र जिनधर्मप्रतिमा । दर्शिता देवेन, 'एषा प्रतिमा' इति । दृष्टा च ताभ्याम् । हा जिनधर्मविपन्नप्रतिमेव दृश्यते इति संक्षुब्धौ हृदयेन । भणितं च

बहुत बड़ा पाप है कि परमदेवता के समान स्नेह करनेवाले पति को धोखा दिया, यह इस लोक और परलोक दोनों लोकों के विरुद्ध किया । विरक्ति आ गयी । हाय आर्यपुत्र ! इस प्रकार (कहकर) रोने लगी । धनदत्त ने सोचा—हाय अनार्य धनदत्त ! इस प्रकार के संसार में इतना असार शरीर होने पर प्रियमित्र के वचन सुनकर उनकी कृपा से जीकर क्या यह (करना) उचित था ? इस प्रकार के कार्य करनेवालों का फल ऐसा ही होता है । हाय प्रियमित्र ! मैंने तुम्हारे साथ द्रोह किया—ऐसा विरक्ति के सार का विचार कर मूर्च्छित हो गया । इसी बीच—'यह यहाँ सम्बोधित करने का समय है', इस प्रकार अवधिज्ञान से विचारकर, उन्हें छलकर विरक्ति की बुद्धि के लिए दिव्यरूप धारण कर (देव ने) शव की पूजा करने के छल से दर्शन दिया । शवपूजा पूर्ण की उसकी (बन्धुला की) वेदना हर ली, 'ओह उसकी शक्ति, ओह रूप, ओह दीप्ति, ओह कान्ति'—इस प्रकार विस्मित हुए इन दोनों ने विनयपूर्वक प्रणाम किया । दोनों ने कहा—'भगवन् ! तुम कौन हो ? अथवा किस कारण यहाँ आये हो ?' उसने कहा—'मैं देव हूँ, जिनधर्म की प्रतिमा का पूजन करने के लिए आया हूँ ।' उन दोनों ने कहा—'जिनधर्म की प्रतिमा कहाँ है ?' देव ने दिखा दी—'यह है प्रतिमा ।' उन दोनों ने देखा—मरा हुआ जिनधर्म प्रतिमा के समान दिखाई देता है, अतः हृदय से क्षुब्ध हुए । उन दोनों ने कहा—'भगवन् ! यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संखुद्धाणि हियएण। भणियं च णेहिं --भयवं, विगयजीवा विय एसा लक्खीयइ, ता को एत्थ परमत्थो. साहेउ भयवं ति। भणमाणाइं निवडियाइं चलणेसु। भणियं च णेहिं- कहिं जिणधम्मो। देवेण भणियं --देवत्तीहूओ। तओ निरूवमाणेहिं दिट्ठो मंचखीलवेहो। 'हा कयमकज्जमम्हेहिं' भणमाणाणि उवगयाणि मोहं। समासासियाणि देवेण। लज्जाइसएण समारद्धाणि अत्ताणयं वावाइउं। निवारियाणि देवेण। भणियं च णेण --भो भो किं निमित्तं तुब्भे अत्ताणयं वावाएह। तेहिं भणियं --भयवं, अलमम्हाण निमित्तसवणेण, दिव्वनाणनयणो भयवं किं वा न याणइ। ता इमं चेव अम्हाण पत्तयालं। देवेण भणियं --अलं मरणमेत्तेण, तदुवएसपालणं तुम्ह पत्तयालं। तेहिं भणियं-- भयवं, अजोग्गाणि अम्हे तदुवएसस्स, गओ य सो भयवं अम्हाणमदंसणीयमवत्थं ति। देवेण भणियं--- ता जोग्गाणि तुम्हे, जेणेवं परितप्पह। न खलु किलिट्ठकम्माण आसेविए वि अकज्जे कयाइ पच्छायावो होइ, सुंदरो य एसो, पक्खालणं पावमलस्स। न यावि सो गओ तुम्हाणमदंसणीयमवत्थं ति, जओ सो चेव अहयं ति। न खिज्जियव्वं च तुब्भेहिं। ईइसी एसा कम्मपरिणई, दारुणं मोहचेट्ठियं,

---

ताभ्याम्--भगवन् ! विगतजीवेव एषा लक्ष्यते, ततः कोऽत्र परमार्थः, कथयतु भगवानिति भणन्तौ निपतितौ चरणयोः। भणितं च ताभ्याम् - कुत्र जिनधर्मः। देवेन भणितम्— देवत्वीभूतः। ततो निरूपयद्भ्यां दृष्टो मञ्चकीलकवेधः। 'हा कृतमकार्यमावाभ्याम्' भणन्तावुपगतौ मोहम्। समाश्वासितौ देवेन। लज्जातिशयेन समारब्धावात्मानं व्यापादयितुम्। निवारितौ देवेन। भणितं च तेन—भो भोः किं निमित्तं युवामात्मानं व्यापादयथः। ताभ्यां भणितम्— भगवन् ! अलमावयोर्निमित्तश्रवणेन। दिव्यज्ञाननयनो भगवान् किं वा न जानाति। ततः इदमेवावयोः प्राप्तकालम्। देवेन भणितम् अलं मरणमात्रेण; तदुपदेशपालनं युवयोः प्राप्तकालम्। ताभ्यां भणितम्— भगवन् ! अयोग्यौ आवां तदुपदेशस्य, गतश्च स भगवान् आवयोरदर्शनीयामवस्थामिति। देवेन भणितम्— ततो योग्यौ युवाम्, येनैवं परितप्येथे। न खलु क्लिष्टकर्मणामासेवितेऽपि अकार्ये कदाचित् पश्चात्तापो भवति, सुन्दरश्चैषः, प्रक्षालनं पापमलस्य। न चापि स गतो युवयोरदर्शनीयामवस्थामिति, यतः स एवाहमिति। न खेत्तव्यं च युवाभ्याम्। ईदृशी एषा कर्मपरिणतिः, दारुणं मोहचेष्टितम्,

प्रतिमा प्राणरहित-सी दिखाई देती है। अतः यहाँ वास्तविकता क्या है ? भगवन् कहिए'—ऐसा कहते हुए दोनों चरणों में गिर गये। उन दोनों ने कहा --'जिनधर्म कहाँ है ?' देव ने कहा---'देवत्व को प्राप्त हो गया।' अनन्तर देखते हुए पाये की कील बिंधी हुई दिखाई दी। 'हाय, हम दोनों ने अकार्य किया'—ऐसा कहते हुए मूर्च्छित हो गये। देव ने होश में लाया। लज्जा की अधिकता से अपने आपको मारना प्रारम्भ किया। देव ने दोनों को रोका। उसने कहा--'अरे अरे, आप दोनों अपने आपको क्यों मारते हैं ?' उन दोनों ने कहा -'भगवन् ! हम दोनों का कारण मत सुनिए। भगवान् दिव्यज्ञानरूपी नेत्रवाले हैं, क्या नहीं जानते हैं। अतः हम लोगों की यही मृत्यु आ गई है। देव ने कहा --मरण मात्र व्यर्थ है, उसके उपदेश के पालन करने का आप दोनों का समय आ गया है।' उन दोनों ने कहा --'हम दोनों उस उपदेश के योग्य नहीं हैं, वह भगवान् हम दोनों के द्वारा न देखी जाने योग्य अवस्था को चले गये हैं।' देव ने कहा—'अतः तुम दोनों योग्य हो; जो कि इस प्रकार सन्ताप कर रहे हो। जिनका कर्म दुःख देनेवाला है उन्हें अकार्य का सेवन करने पर भी पश्चात्ताप नहीं होता है, पापरूपी मल को धोने के लिए यह (इस प्रकार का सन्ताप) सुन्दर है। वह आप लोगों के द्वारा न दिखाई देने योग्य अवस्था को भी नहीं गया है; क्योंकि वह मैं ही हूँ। आप दोनों को खिन्न नहीं होना चाहिए। यह कर्म की परिणति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोद्दा विसयवत्तणी सव्वहा, किमेइणा। संपयं पि धम्ममेत्तसरणाइं होइ, परिच्चयह सव्वमन्नं। तेहि भणियं—जं भयवं आइसइ। किं तु अवस्समेव उज्झियव्वा अम्हेहि पाणा, न सकुणेमो अकज्जायरणकलंकदूसियं बोंदिं तुह वयणाओ जणियपच्छायावाइं संपयं खणमवि धारेउं। एवं ववत्थिए समाइसउ भयवं ति। साहिओ देवेण धम्मो, परिणओ भावेण। कया सव्वविरई, पच्चक्खायमणसणं, जाओ विसुद्धपरिणामो, निंदियाइं पुव्वदुक्कडाइं, परिणओ संवेओ, भावियं भवसरूवं, पडिबुद्धाणि त्ति। कयकिच्चभावेण पक्खिविय नियकडेवरं उप्पइओ देवो त्ति।

एयमायण्णिऊण संविग्गो राया। भणियं च णेण—अहो न किंचि एयं, माइंदजालसरिसं भवचेट्ठियं। दुल्लहो खलु इहं कल्लाणमित्तजोओ, हिओ एगंतेण; न इओ किंचि हिययरं, जेण एयाण वि एवं पहाणगुणलाहो त्ति। सव्वेहिं भणियं—महाराय, एवमेयं। संविग्गाणि सव्वाणि, विरत्ताणि भवाओ। राइणा भणियं—वच्छ, कहिं पुण एयाण उववाओ भविस्सइ। कुमारेण भणियं—ताय, सोहम्मे। राइणा भणियं—विरुद्धयारीणि एयाणि। कुमारेण भणियं—ताय, सच्चमेयं; विरुद्धयारीणि,

---

रौद्रा विषयवर्तनी सर्वथा, किमेतेन। साम्प्रतमपि धर्ममात्रशरणौ भवतम्, परित्यजतं सर्वमन्यत्। ताभ्यां भणितम्—यद् भगवान् आदिशति। किन्त्ववश्यमेव उज्झितव्या आवाभ्यां प्राणाः, न शक्नुवोऽकार्याचरणकलङ्कदूषितां बोन्दिं (शरीरं) तव वचनाद् जनितपश्चात्तापौ साम्प्रतं क्षणमपि धारयितुम्। एवं व्यवस्थिते समादिशतु भगवानिति। कथितो देवेन धर्मः, परिणतो भावेन। कृता सर्वविरतिः, प्रत्याख्यातमनशनम्, जातो विशुद्धपरिणामः, निन्दितानि पूर्वदुष्कृतानि, परिणतः संवेगः, भावितं भवस्वरूपम्, प्रतिबुद्धाविति। कृत्यकृत्यभावेन प्रक्षिप्य निजकलेवरमुत्पतितो देव इति।

एतदाकर्ण्य संविग्नो राजा। भणितं च तेन—अहो न किञ्चिदेतद्, मायेन्द्रजालसदृशं भवचेष्टितम्। दुर्लभः खलु इह कल्याणमित्रयोगः, हित एकान्तेन; न इतः किञ्चिद् हिततरम्, येन एतयोरपि एवं प्रधानगुणलाभ इति। सर्वैर्भणितम्—महाराज! एवमेतत्। संविग्नाः सर्वे, विरक्ता भवात्। राज्ञा भणितम्—वत्स! कुत्र पुनरेतयोरुपपातो भविष्यति। कुमारेण भणितम्—तात! सौधर्मे। राज्ञा भणितम्—विरुद्धकारिणौ एतौ। कुमारेण भणितम्—तात! सत्यमेतद्,

---

ऐसी ही है, मोह की चेष्टा भयंकर है, विषयों का रास्ता भयंकर है। इससे क्या, इस समय भी आप दोनों अन्य सब छोड़कर मात्र धर्म की शरण में होइए। उन दोनों ने कहा—'जो भगवान् आदेश दें। किन्तु हम दोनों अवश्य ही प्राण छोड़ देंगे, अकार्य का आचरण करनेरूपी कलंक से युक्त शरीर को आपके वचनों से उत्पन्न पश्चात्ताप वाले हम दोनों अब क्षण भर भी धारण करने में समर्थ नहीं हैं। ऐसी स्थिति में आप आदेश दें।' देव ने धर्म कहा, भावपूर्वक परिणत हो गया। समस्त परिग्रहों को छोड़ दिया, अनशन धारण किया, विशुद्ध परिणाम उत्पन्न हुआ, पहले के खोटे कार्यों की निन्दा की, संवेग वृद्धिगत हुआ, संसार के स्वरूप का विचार किया, दोनों जागृत हो गये। कृतकृत्य होकर अपने शरीर को फेंक कर देव ऊपर चला गया।

यह सुनकर राजा भयभीत हुआ और उसने कहा—'ओह यह कुछ नहीं है, सांसारिक कार्य मायामयी इन्द्रजाल के सदृश हैं, यहाँ पर निश्चय से कल्याणमित्र का मिलना दुर्लभ है, एकान्तरूप से (कल्याणमित्र का मिलना) हितकर है, इससे अधिक कोई हितकर नहीं है जिससे इन दोनों को भी इस प्रकार प्रधान गुणों का लाभ हुआ।' सबने कहा—'यह ठीक है।' सभी उद्विग्न हुए, संसार से विरक्त हो गये। राजा ने कहा—'पुत्र! ये दोनों कहाँ उत्पन्न होंगे?' कुमार ने कहा—'पिता जी! सौधर्म स्वर्ग में।' राजा ने कहा—'ये दोनों विरुद्ध कार्य करने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किंतु पडिवन्नमेएहिं पच्छायावओ धम्मचरण, जाया भावओ विरइपरिणई। तीए य एवंविहं चेव सामत्थं, जमविराहियाए पडिवत्तिकालओ न दोग्गई पाविज्जइ। राइणा भणियं—तहावि विरुद्धयारीणि एयाणि, कहं देवलोयसंपत्ती एयाण जुज्जई त्ति। कुमारेण भणियं—ताय, सुंदरा विरइपरिणई संगया अप्पमाएण छेदणी दुक्खाण जणणी सुहपरंपराए। इमीए संगया पाणिणो नत्थि तं कल्लाणं जं न पाउणंति। राइणा भणियं-वच्छ, इयमेव कहमेयारिसाणं संजायइ, कहं वा इमीए पडिवत्तिजोग्गा एवंविहेसु अकुसलेसु पयट्टंति। कुमारेण भणियं—ताय, विचित्ता कम्मपरिणई। किं तु न एएसिं अइसंकिलेससारा अकुसलपवित्ती तहाविहकम्मपरिणामओ पवित्तिमेत्तं रहिया अणुबंधेण, कुसलपक्खे उ अच्चंतभावसारा रहिया अइयारेहिं संगया आगमेण निरवेक्खा भवपवंचे त्ति। राइणा भणियं—वच्छ, एवमेयं, कहमन्नहा ईइसी पवित्ती भवं छिंदइ। कुमारेण भणियं—ताय, एवमेयं, सम्ममवहारियं ताएण। अन्नं च। विन्नवेमि तायं। न खलु मे रई एयम्मि नडपेडओवमे

विरुद्धकारिणौ, किन्तु प्रतिपन्नमेताभ्यां पश्चात्तापतो धर्मचरणम, जाता भावतो विरतिपरिणतिः। तस्याश्चैवंविधमेव सामर्थ्यम्, यदविराधितया प्रतिपत्तिकालतो न दुर्गतिः प्राप्यते। राज्ञा भणितम्—तथापि विरुद्धकारिणावेतौ, कथं देवलोकसम्प्राप्तिरेतयोर्युज्यते इति। कुमारेण भणितम्-तात! सुन्दरा विरतिपरिणतिः सङ्गताऽप्रमादेन छेदनी दुःखानां जननी सुख(शुभ)परम्परायाः। अनया सङ्गताः प्राणिनो नास्ति तत् कल्याणं यन्न प्राप्नुवन्ति। राज्ञा भणितम्-वत्स! इयमेव कथमेतादृशयोः सञ्जायते, कथं वाऽस्याः प्रतिपत्तियोग्या एवंविधेष्वकुशलेषु प्रवर्तन्ते। कुमारेण भणितम्—तात! विचित्रा कर्मपरिणतिः, किन्तु नैतयोरतिसंक्लेशसारा अकुशलप्रवृत्तिस्तथाविधकर्मपरिणामतः प्रवृत्तिमात्रं रहिताऽनुबन्धेन, कुशलपक्षे त्वत्यन्तभावसारा रहिताऽतिचारैः सङ्गता आगमेन निरपेक्षा भवप्रपञ्चे इति। राज्ञा भणितम्—वत्स! एवमेतत्, कथमन्यथा ईदृशी प्रवृत्तिर्भवं छिनत्ति। कुमारेण भणितम्-तात! एवमेतत्, सम्यगवधारितं तातेन। अन्यच्च, विज्ञपयामि तातम्। न खलु मे रति-

---

वाले हैं।' कुमार ने कहा—'पिता जी! ठीक है कि ये दोनों विरुद्ध कार्य करनेवाले हैं; किन्तु इन दोनों ने पश्चात्ताप से धर्माचरण प्राप्त किया, भावपूर्वक विरतिमात्र उत्पन्न हुआ। उस विरति परिणति की ऐसी सामर्थ्य है कि इस विरतिपरिणति की प्राप्ति के समय से ही इसकी विराधना न करने से दुर्गति की प्राप्ति नहीं होती है। राजा ने कहा—'तो भी ये दोनों विरोधी कार्य करनेवाले हैं। इन दोनों को स्वर्गलोक की प्राप्ति कैसे ठीक है?' कुमार ने कहा—'पिता जी! विरतिरूप परिणाम सुन्दर है, अप्रमाद से युक्त है, दुःखों का छेद करनेवाला है और सुख की परम्परा को उत्पन्न करने वाला है। इससे युक्त प्राणी ऐसा कोई कल्याण नहीं, जिसे न पाते हों।' राजा ने कहा—'पुत्र! ऐसे लोगों के यही (विरतिरूप परिणाम) कैसे उत्पन्न हो जाते हैं? इसके पाने के योग्य प्राणी कैसे अशुभों में प्रवृत्त हो जाते हैं?' कुमार ने कहा—'पिताजी! कर्म की परिणति विचित्र है, किन्तु इन दोनों की अत्यन्त दुःखरूप सारवाली अशुभपरिणति नहीं है, उस प्रकार के कर्म के परिणाम से प्रवृत्ति मात्र करने से ये बन्धरहित हैं, शुभपक्ष में यह अत्यन्त भावरूप सारवाली, अतिचारों से रहित, आगम से युक्त और संसार के जंजाल से रहित है।' राजा ने कहा—'वत्स! ठीक है, नहीं तो ऐसी प्रवृत्ति संसार का छेद कैसे करती।' कुमार ने कहा—'पिताजी! यही है, पिता जी ने ठीक समझा। दूसरी बात पिताजी से यह निवेदन करता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असुंदरे पयईए अणवट्ठियसिणेहविब्भमे निहाणभूए सव्वावयाणं महाघोरसंसारम्मि। ता इच्छामि तायाणुन्नाओ एयमन्तरेण जइउं। संसिज्झंति नियमेण पाणिणो गुरुसमाइट्ठाइं विहिणा पवत्तमाणस्स कुसलसमीहियाइं। ता करेउ ताओ पसायं, अणुजाणउ मं एयवइयरम्मि। भणमाणो निवडिओ चलणेसु। राइणा भणियं—वच्छ, नणु सव्वेसिमेव अम्हाणमयं निच्छओ, ता अणुजाणिओ मए। अहवा तुमं चेव अम्हाण विमलनाणभावओ भावोवयारसंपायणेण कारणपुरिसयाए गुरू, किमेवं पुच्छसि। ता करेहि कारवेहि य जं एत्थ उचियं ति। कुमारेण भणियं—ताय, महापसाओ; उचियं च ववसियं ताएण।

एत्थंतरम्मि गलियपाया रयणी, पहयाइं पाहाउयाइं तूराइं, वियंभिओ बंदिसद्दो, पवाइया पच्चूसपवणा, उल्लसिओ अरुणो, पणट्ठमंधयारं, समागया दिवसलच्छी, विउद्धं नलिणिसंडं, मिलियाइं चक्कवायाइं। पविट्ठा अमच्चा। साहियं तेसिं कुमारचरियं, जाणाविओ नियथाहिप्पाओ। बहुमओ अमच्चाण। भणियं च तेहिं—देव, जुत्तमेयं, सिज्झइ य एयं देवस्स। अचिन्तचिंतामणिभूओ कुमारो

रेतस्मिन् नटपेटकोपमेऽसुन्दरे प्रकृत्या अनवस्थितस्नेहविभ्रमे निधानभूते सर्वापदां महाघोरसंसारे। तत इच्छामि तातानुज्ञात एतत्सम्बन्धेन यतितुम्। संसिध्यन्ति नियमेन प्राणिनो गुरुसमादिष्टानि विधिना प्रवर्तमानस्य कुशलसमीहितानि। ततः करोतु तातः प्रसादम्, अनुजानातु मामेतद्व्यतिकरे। भणन् निपतितश्चरणयोः। राज्ञा भणितम्—वत्स! ननु सर्वेषामेवास्माकमयं निश्चयः, ततोऽनुज्ञातो मया। अथवा त्वमेवास्माकं विमलज्ञानभावतो भावोपकारसम्पादनेन कारणपुरुषतया गुरुः, किमेवं पृच्छसि। ततः कुरु कारय च यदत्रोचितमिति। कुमारेण भणितम्—तात! महाप्रसादः, उचितं च व्यवसितं तातेन।

अत्रान्तरे गलितप्राया रजनी, प्रहतानि प्राभातिकानि तूर्याणि, विजृम्भितो बन्दिशब्दः, प्रवाताः प्रत्यूषपवनाः, उल्लसितोऽरुणः, प्रनष्टमन्धकारम्, समागता दिवसलक्ष्मीः, विबुद्धं नलिनीषण्डम्, मिलिताश्चक्रवाकाः। प्रविष्टा अमात्याः। कथितं तेषां कुमारचरितम्, ज्ञापितो निजाभिप्रायः। बहुमतोऽमात्यानाम्, भणितं च तैः—देव! युक्तमेतद्, सिध्यति चैतद् देवस्य। अचिन्त्यचिन्तामणि-

---

हूँ कि नट के पिटारे के समान असुन्दर, प्रकृति से चंचल, अस्थिर स्नेहरूपी भ्रमवाले, समस्त आपत्तियों के स्थानस्वरूप इस महाभयंकर संसार में निश्चितरूप से मेरी रति नहीं है, अतः पिताजी से आज्ञा पाकर इस सम्बन्ध में प्रयत्न करना चाहता हूँ। गुरु के द्वारा उपदेशित विधि से शुभ मनोरथों में प्रवृत्त हुए प्राणी नियम से सिद्धि प्राप्त करते हैं। अतः पिताजी कृपा कीजिए, इस अवसर पर मुझे आज्ञा दीजिए' ऐसा कहकर चरणों में गिर गया। राजा ने कहा—'निश्चित रूप से हम सभी लोगों का यह निश्चय है, अतः मैंने अनुमति दी, अतः तुम ही इस निर्मल ज्ञान से भावोपकार करने के कारण-पुरुष होने से हमारे गुरु हो, इस प्रकार क्यों पूछते हो? अतः यहाँ पर जो योग्य हो, उसे करो और कराओ।' कुमार ने कहा—'पिताजी! बड़ी कृपा की और पिताजी ने सही निश्चय किया।'

इसी बीच रात्रि क्षीणप्राय हो गयी, प्रातःकालीन वाद्य बजे, बन्दियों का शब्द बढ़ा, प्रातःकालीन वायु चली, अरुणोदय हुआ, अन्धकार नष्ट हो गया, दिवसलक्ष्मी आयी, कमलिनियों का समूह खिल गया, चकवे मिल गये। मन्त्रियों ने प्रवेश किया। उनसे कुमार का चरित कहा, अपना अभिप्राय प्रकट किया। अमात्यों ने माना और उन्होंने कहा 'महाराज! यह ठीक है, यह महाराज को सिद्ध होगा। अचिन्त्यचिन्तामणि के समान कुमार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एत्थ मंगलं। राइणा भणियं—अज्जा, एवमेयं; ता करेह उचियकरणिज्जं, अलं विलंबेण। अमच्चेहिं भणियं—ज[1] देवो आणवेइ। घोसाविया वरवरिया, पयट्टियं महादाणं, कराविया सव्वाययणपूया, संमाणिओ पउरजणवओ, पूजिया बंदिमाई, संमाणिया सामंता, पूजिया गुरवो, ठाविओ रज्जम्मि निययभाइणेओ पसत्थजोएण उचिओ खत्तियवंसस्स मुणिचंदकुमारो त्ति। तओ य पसत्थे तिहिकरण-मुहुत्तजोए समं गुरुयणेण मित्तवंद्रेण धम्मपत्तीहिं अमच्चलोएण पहाणसामंतेहिं पुरंदरेण उयत्तसेट्ठीहिं उचियनायरेहिं महया रिद्धिसमुदएण समारूढो दिव्वसिवियं; वज्जंतेहिं मंगलतूरेहिं नच्चंतेहिं पाय-मूलेहिं थुव्वमाणो बंदीहिं पूरंतो य पणइमणोरहे संगओ रायलोएण अणुहवंतो कुसलकम्मं पुलइज्ज-माणो नायरएहिं जणेंतो तेसिं विम्हयं वड्ढयंतो संवेगं विहिंतो बोहिबीयाइं विसुज्झमाणपरिणामो खवेंतो कम्मजालं महया विमद्देण निग्गओ नयरीओ गओ पुप्फकरण्डयं उज्जाणं। एत्थंतरम्मि समा-गया देवा, पत्थुयं पूयाकम्मं, जाओ महब्भुयओ, आणंदिया नयरी। गओ य भयवओ सीलंगरयणाय-

भूतः कुमारोऽत्र मङ्गलम्। राज्ञा भणितम—आर्या! एमेवतद, ततः कुरुतोचितकरणीयम, अलं विलम्बेन। अमात्यैर्भणितम्—यद् देव आज्ञापयति। घोषिता वरवरिका, प्रवर्तितं महादानम् कारिता सर्वायतनपूजा, सम्मानितः पौरजनव्रजः, पूजिता वन्द्यादयः, सम्मानिताः सामन्ताः, पूजिता गुरवः, स्थापितो राज्ये निजभागिनेयः प्रशस्तयोगेन उचितः क्षत्रियवंशस्य मुनिचन्द्रकुमार इति। ततश्च प्रशस्ते तिथिकरणमुहूर्तयोगे समं गुरुजनेन मित्रवन्द्रेण धर्मपत्नीभ्याममात्यलोकेन प्रधानसामन्तैः पुरन्दरेण उदात्तश्रेष्ठिभिरुचितनागरैर्महता ऋद्धिसमुदायेन समारूढो दिव्यशिबिकाम्, वाद्यमानै मंङ्गलतूर्यैर्नृत्यदभिः पात्रमूत्रैः स्तूयमानो बन्दिभिः पूरयंश्च प्रणयिमनोरथान् सङ्गतो राजलोकेनानु-भवन् कुशलकर्म दृश्यमानो नागरकैर्जनयन् तेषां विस्मयं वर्धयन् संवेगं विदधद् बोधिबीजानि विशुध्यमानपरिणामः क्षपयन् कर्मजालं महता विमर्देण निर्गतो नगर्या, गतः पुष्पकरण्डकमुद्यानम्। अत्रान्तरे समागता देवाः, प्रस्तुतं पूजाकर्म, जातो महाभ्युदयः, आनन्दिता नगरी। गतश्च भगवतः

यहाँ मंगलरूप हैं।' राजा ने कहा—'आर्य! यह ठीक है, अतः योग्य कार्यों को कराओ, विलम्ब मत करो।' अमात्यों ने कहा—'जो महाराज की आज्ञा।' ईप्सित वस्तु के दान देने की घोषणा की, बहुत अधिक दान दिया, सभी मन्दिरों में पूजा करायी, नगरवासियों का सम्मान किया, बन्दियों आदि का सत्कार किया, सामन्तों का सम्मान किया, गुरुओं की पूजा की, क्षत्रियवंश के योग्य कुमार मुनिचन्द्र को राज्य पर बैठाया। अनन्तर उत्तम तिथि, करण और मुहूर्त के योग में गुरुजन, मित्रसमूह, दोनों धर्मपत्नियों, अमात्यजन, प्रधान सामन्तों, नागरिकों, बड़े सेठों और योग्य नगरवासियों के साथ बड़ी ऋद्धि से युक्त हो दिव्य पालकी पर (कुमार) सवार हुआ। उस समय मंगल वाद्य बजाये जा रहे थे, अभिनेता नृत्य कर रहे थे, बन्दीजन स्तुति कर रहे थे, याचकों का मनोरथ पूर्ण किया जा रहा था, नृपजन साथ थे, शुभकर्मों का अनुभव किया जा रहा था, नागरिक देख रहे थे, उनको विस्मय हो रहा था, उनकी विरक्ति बढ़ रही थी, वे बोधिबीज धारण कर रहे थे—इस प्रकार विशुद्ध परिणामों से कर्मसमूह को नष्ट करते हुए बड़ी भीड़ के साथ निकलकर राजा पुष्पकरण्डक उद्यान में गया। इसी बीच देव आये, पूजा कार्य प्रस्तुत किया, बहुत बड़ा अभ्युदय हुआ, नगरी आनन्दित हुई। शील के भेदों के समुद्र,

१. कयं चेव देवस्स कुमारस्स य नियपुण्णपब्भारेण के अम्हे कायव्वस्स। तहा वि जं देवो—पा. ज्ञा.।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रस्स चउनाणधारिणो पहासायरियस्स पायमूले, जहुत्तसिद्धंतविहिणा पवन्नो पव्वज्जं ति। वंदिओ देवराईहिं, पूजिओ मुणिचंदेण। कराविया णेण नयरीए जिणाययणेसु अट्ठाहिया, घोसाविया अमारी हरिसिया जणवया, पयट्टा धम्ममग्गे।

इमिणा वइयरेण दूमिओ गिरिसेणो, गहिओ कसाएहिं। चिंतियं च णेण—अहो मूढया जणस्स, जमेयंसि अपंडियरायउत्ते एवंविहो बहुमाणो। अवणेमि एएसि बहुमाणभायणं, वावाएमि एयं दुरायारं। समागओ इयाणिं एस अम्हारिसाणं पि दंसणगोयरं। ता निव्ववेमि चिरयालपलित्तं एय-मंतरेण हिययं। पयट्टो छिद्दन्नेसणे।

भयवं च समराइच्चो जहुत्तसंजमपरिवालणरई भयवओ पहासायरियस्स पायमूले परिवसइ। अइक्कंतो कोइ कालो। पुव्वभवब्भासजोएण विसिट्ठखओवसमभावओ थेवयालेणेवाहिज्जियं दुवाल-संगं, आसेविओ किरियाकलावो, ठाविओ वायगपए।

अन्नया य सीसगणसंपरिवुडो विहरमाणो अहाकप्पेण विबोहयंतो भवियारविंदे गओ

शीलाङ्गरत्नाकरस्य चतुर्ज्ञानधारिणः प्रभासाचार्यस्य पादमूले, यथोक्तसिद्धान्तविधिना प्रपन्नः प्रव्रज्यामिति। वन्दितो देवराजभिः, पूजितो मुनिचन्द्रेण। कारिता तेन नगर्यां जिनायतनेषु अष्टा-ह्निका, घोषिताऽमारी, हर्षिता जनव्रजाः, प्रवृत्ता धर्ममार्गे।

अनेन व्यतिकरेण दूनो गिरिषेणः, गृहीतः कषायैः। चिन्तितं च तेन—अहो मूढता जनस्य, यदेतस्मिन् अपण्डितराजपुत्रे एवंविधो बहुमानः। अपनयाम्येतेषां बहुमानभाजनम, व्यापादयाम्येतं दुराचारम्। समागत इदानीमेषोऽस्मादृशानामपि दर्शनगोचरम्। ततो निर्वापयामि चिरकाल-प्रदीप्तमेतद्विषये हृदयम्। प्रवृत्तश्छिद्रान्वेषणे।

भगवांश्च समरादित्यो यथोक्तसंयमपरिपालनरतिर्भगवतः प्रभासाचार्यस्य पादमले परि-वसति। अतिक्रान्तः कोऽपि कालः। पूर्वभवाभ्यासयोगेन विशिष्टक्षयोपशमभावतः स्तोककालेनै-वाधीतं द्वादशाङ्गम्, आसेवितः क्रियाकलापः, स्थापितो वाचकपदे।

अन्यदा च शिष्यगणसम्परिवृतो विहरन् यथाकल्पं विबोधयन् भविकारविन्दानि गतोऽयोध्या-

---

चार ज्ञान के धारी प्रभासाचार्य के पादमूल में गये, यथोक्त सिद्धान्तविधि से दीक्षा प्राप्त की। देवों और राजाओं ने वन्दना की, मुनिचन्द्र ने पूजा की। उसने नगर के जिनायतनों से अष्टाह्निका करायी, अमारी घोषित की, जन-समूह हर्षित हुआ, धर्ममार्ग में प्रवृत्त हुआ।

इस घटना से गिरिषेण दुःखी हुआ। (उसे) कषायों ने जकड़ लिया। उसने सोचा—ओह लोगों की मूढ़ता, जो इस मूर्ख राजपुत्र का इस प्रकार सम्मान कर रहे हैं। इनके सम्मान के पात्र को दूर करता हूँ, इस दुराचारी को मारता हूँ। यह इस समय हम जैसे लोगों के भी दृष्टिपथ में आ गया, अतः इसके विषय में चिरकाल से जलते हुए हृदय को शान्त करता हूँ। वह छिद्रान्वेषण में लग गया।

भगवान् समरादित्य यथोक्त संयम के पालन में रत होकर भगवान् प्रभासाचार्य के चरणमूल में रहने लगे। कुछ समय बीत गया। पूर्वभवों के अभ्यास के योग से विशिष्ट क्षयोपशम भाव के कारण थोड़े से ही समय में द्वादशांग पढ़ लिया। क्रियाओं का पालन किया। वाचक पद पर स्थापित हो गये।

एक बार शिष्यगण के साथ नियमानुसार विहार करते हुए, भव्यकमलों को सम्बोधित करते हुए (वह)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अओज्झाउरि, तत्थ वि य वंदणनिमित्तं साहुसावगसमेओ रिसभदेवसंगयं महाविभूईए सक्कावयारं नाम चेइयं ।

दिट्ठं च तेण तहियं वियडं उज्जाणमज्झभायम्मि ।
आहरणं नयरीए आययणं भवणनाहस्स ॥ १००७॥
सियसंखकुमुयगोखीरहारसरयब्भकुंदचंदनिहं ।
कप्पतरुनियरपरियमुब्भेडझयवडाइण्णं ॥१००८॥
मरगयमयरमुह(म्मउ)ब्भडमऊहलसिरोरुतोरणसणाहं ।
उत्तुंगं सुरलोए तियसाहिववरविमाणं व ॥१००९॥
वित्थिण्णमरगयसिलासंचयसंजणियवियडदढपीढं ।
रयणसयलोहविरइयनिम्मलमणिकोट्टिमाभोयं ॥१०१०॥
विलसंतसालिहंजियमणिमयथम्भालिनिमियसोहिल्लं ।
कच्छंतरोरुमणहरपरिलंबियमोत्तिओऊलं ॥१०११॥

पुरीम्, तत्रापि च वन्दननिमित्तं साधुश्रावकसमेत ऋषभदेवसंगतं महाविभूत्या शक्रावतारं नाम चैत्यम् ।

दृष्टं च तेन तत्र विकटमुद्यानमध्यभागे ।
आभरणं नगर्या आयतनं भुवननाथस्य ॥१००७॥
सितशङ्खकुमुदगोक्षीरहारशरदभ्रकुन्दचन्द्रनिभम् ।
कल्पतरुनिकरपरिगतमुद्भटध्वजपटाकीर्णम् ॥१००८॥
मरकतमयरम्योद्भटमयूखलसदुरुतोरणसनाथम् ।
उत्तुङ्गं सुरलोके त्रिदशाधिपवरविमानमिव ॥१००९॥
विस्तीर्णमरकतशिलासञ्चयसञ्जनितविकटदृढपीठम् ।
रत्नसकलौघविरचितनिर्मलमणिकुट्टिमाभोगम् ॥१०१०॥
विलसच्छालभञ्जिकामणिमयस्तम्भालिनिर्मितशोभावद् ।
कक्षान्तरोरुमनोहरपरिलम्बितमौक्तिकावचूलम् ।१०११॥

अयोध्यापुरी पहुँचे। वहाँ भी साधु और श्रावकों के साथ ऋषभदेव की प्रतिमा से युक्त बड़ी विभूतिवाले शक्रावतार नामक चैत्य पर गये।

उन्होंने (समरादित्य ने) वहाँ विशाल उद्यान के बीच मुनिपति ऋषभनाथ की प्रतिमा से विभूषित नगरी के आभरणस्वरूप त्रिलोकीनाथ का आयतन (मन्दिर) देखा। उसका रंग सफेद शंख, कुमुद, गाय के दूध, हार, शरत्कालीन मेघ, कुन्दपुष्प और चन्द्रमा के समान था। वह कल्पवृक्षों से घिरा हुआ था, उत्तुंग ध्वजावस्त्रों से व्याप्त था, मरकतमणि से युक्त रमणीय प्रचण्ड किरणों से शोभायमान विस्तीर्ण तोरणों से युक्त था, ऊँचाई के कारण वह स्वर्गलोक के दूसरे विमान के समान मालूम पड़ रहा था। मरकतमणि की बड़ी-बड़ी शिलाओं के समूह से उसकी मजबूत विकट पीठिका बनाई गयी थी। समस्त रत्नों के समूह से उसका निर्मल मणिनिर्मित फर्श बनाया गया था। मणिमय खम्भों के समूह से निर्मित शोभावाली शालभंजिकाएँ (पुतलियाँ) वहाँ शोभित हो रही थीं। कक्षाओं के अन्दर विस्तीर्ण, मनोहर, मोतियों के चौरीनुमा गुच्छे लटक रहे थे।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

गब्भहरभित्तिविरइयजलंतरयणोहदीवयसणाहं ।
तियसतरुकुसुमजलरुहनियरच्चियमणियडुच्छंगं ॥१०१२॥
सेवागयसुरचारणवरविलयारद्धमहुरसंगीयं ।
डज्झंतागरुपरिमलघणवासियदिसिवहाभोयं ॥१०१३॥
विविहतवतेयदिप्पंतमुणियपरमत्थसुद्धभावाणं ।
चारणमुणीण थुइरवनिसुणणसंमुइयसिद्धयणं ॥१०१४॥
धम्मवरचक्कट्टिस्स भयवओ तियसनाहनमियस्स ।
मुणिवइणो पडिमाए विहूसियं उसहसामिस्स ॥१०१५॥
तं पेच्छिऊण सम्मं मणिमयसोवाणविमलपंतीए ।
आरुहिऊण सतोसं भुवणगुरू वंदिओ तेण ॥१०१६॥

वंदिऊण य निसण्णो एगदेसे। समागया तत्थ चारणमुणी विज्जाहरा सिद्धा य। वंदिओ णेहिं

गर्भगृहभित्तिविरचितज्वलद्रत्नौघदीपकसनाथम् ।
त्रिदशतरुकुसुमजलरुहप्रकरार्चित मणितटोत्सङ्गम् ॥१०१२॥
सेवागतसुरचारणवरवनितारब्धमधुरसंगीतम् ।
दह्यमानागुरुपरिमलघनवासितदिक्पथाभोगम् ॥१०१३॥
विविधतपःतेजोदीप्यमानज्ञातपरमार्थशुद्धभावानाम् ।
चारणमुनीनां स्तुतिरवनिःश्रवणसम्मुदितसिद्धजनम् ॥१०१४॥
धर्मवरचक्रवर्तिनो भगवतस्त्रिदशनाथनतस्य ।
मुनिपतेः प्रतिमया विभूषितं ऋषभस्वामिनः ॥१०१५॥
तद् दृष्ट्वा सम्यग् मणिमयसोपानविमलपङ्क्त्या ।
आरुह्य सतोषं भुवनगुरुर्वन्दितस्तेन ॥१०१६॥

वन्दित्वा च निषण्ण एकदेशे। समागतास्तत्र चारणमुनयो विद्याधराः सिद्धाश्च। वन्दि-

---

देदीप्यमान रत्नों से निर्मित दीपकों से युक्त गर्भगृह की दीवार बनाई गयी थी। पारिजात पुष्प और कमलों के समूह से मणिनिर्मित तट की गोद सजी हुई थी। सेवा के लिए आये हुए देव, चारण तथा सुन्दर स्त्रियों के द्वारा मधुर संगीत आरम्भ किया जा रहा था। जलाये हुए अगुरु की सुगन्ध से विस्तृत आकाश सुवासित हो रहा था। अनेक प्रकार के तपों के तेज से देदीप्यमान यथार्थरूप से शुद्ध भावों के जाननेवाले चारणमुनियों की उत्तम स्तुतियों के सुनने से सिद्ध जन आनन्दित हो रहे थे। मणिनिर्मित सीढ़ियों की विमलपंक्ति से चढ़कर उस प्रतिमा के भलीभाँति दर्शन कर समरादित्य ने तीनों लोकों के गुरु की वन्दना की ॥१००७-१०१६॥

वन्दना कर एक स्थान पर बैठ गये। वहाँ पर चारणमुनि, विद्याधर और सिद्ध आये। उन्होंने भगवान्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भयवं। एत्थंतरम्मि मुणियसमराइच्चागमणो समं परियणेण पमोयविलसंतलोयणो भयवओ वंदणनिमित्तं अओज्झानयरिसामी समागओ पसन्नचंदो। कया भयवओ पूया। तओ वंदिऊण चेइए समराइच्चवायगं च उवविट्ठो तस्स पुरओ। भणियं च णेण—भयवं, एस एत्थ नाहिनंदणो पढमधम्मचक्कवट्टी सुणीयइ। ता किं परेण नासि धम्मो; अह आसि, कहमेस पढमधम्मचक्कवट्टि त्ति। भयवया भणियं—सोम्म, सुण। इह भरहवासे इमीए ओसप्पिणीए एस भयवं पढमधम्मचक्कवट्टी। न उण परेण नासि धम्मो, किं तु अणाइमंता तित्थयरा, तप्परूविओ य धम्मो अणाइमं चेव। राइणा भणियं—भयवं, किमेसा ओसप्पिणी सव्वत्थ हवइ, भयवया भणियं—सोम्म, नहि; अवि य पंचसु भरहेसु पंचसु य एरवएसु, विदेहेसु पुण अवट्ठिओ कालो। तेसु सव्वकालमेव हवंति धम्मनायगा तित्थयरा चक्कवट्टिणो वासुदेवा बलदेवा य, तहा सिज्झंति पाणिणो। भरहेरवएसु अणवट्ठिओ कालो; न सव्वकालमेव एयमेवं हवइ, किंतु पवत्तए कालचक्कं। तं पुण पमाणओ वीससागरोवमकोडाकोडिमाणं। एत्थ ओसप्पिणी उस्सप्पिणी य। एक्केक्काए छव्विहा कालपरूवणा। तं जहा। सुसमसुसमा सुसमा सुसम-

---

ततो भगवान्। अत्रान्तरे ज्ञातसमरादित्यागमनः समं परिजनेन प्रमोदविलसद्लोचनो भगवतो वन्दननिमित्तमयोध्यानगरीस्वामी समागतः प्रसन्नचन्द्रः। कृता भगवतः पूजा। ततो वन्दित्वा चैत्यानि समरादित्यवाचकं चोपविष्टस्तस्य पुरतः। भणितं च तेन—भगवन्! एषोऽत्र नाभिनन्दनः प्रथमधर्मचक्रवर्ती श्रूयते. ततः किं परेण नासीद् धर्मः, अथासीद्, कथमेष प्रथमधर्मचक्रवर्तीति। भगवता भणितम्—सौम्य! शृणु। इह भरतवर्षेऽस्यामवसर्पिण्यामेष भगवान् प्रथमधर्मचक्रवर्ती। न पुनः परेण नासीद् धर्मः, किन्तु अनादिमन्तस्तीर्थकराः, तत्प्ररूपितश्च धर्मोऽनादिमानेव। राज्ञा भणितम्—भगवन्! किमेषाऽवसर्पिणी सर्वत्र भवति। भगवता भणितम्—सौम्य! नहि; अपि च पञ्चसु भरतेषु पञ्चसु चैरवतेषु, विदेहेषु पुनरवस्थितः कालः। तेषु सर्वकालमेव भवन्ति धर्मनायकास्तीर्थकराश्चक्रवर्तिनो वासुदेवा बलदेवाश्च, तथा सिध्यन्ति प्राणिनः। भरतैरवतेषु अनवस्थितः कालः, न सर्वकालमेव एतदेवं भवति, किन्तु प्रवर्तते कालचक्रम्। तत् पुनः प्रमाणतो विंशतिसागरोपमकोटाकोटीमानम्। अत्रावसर्पिणी उत्सर्पिणी च। एकैकस्याः षड्विधा काल-

---

की वन्दना की। इसी बीच समरादित्य का आगमन जानकर आनन्द से विकसित नेत्रोंवाला अयोध्या नगरी का स्वामी प्रसन्नचन्द्र परिजनों के साथ भगवान् की वन्दना के लिए आया। भगवान् की पूजा की। अनन्तर चैत्यों तथा समरादित्य वाचक की वन्दना कर उनके सामने बैठ गया और उसने कहा—'भगवन्! यह यहाँ नाभि के पुत्र ऋषभदेव प्रथम धर्मचक्रवर्ती सुने जाते हैं, उनसे पहले क्या धर्म नहीं था? यदि था तो ये प्रथम धर्मचक्रवर्ती कैसे हुए?' भगवान् ने कहा—'सौम्य! सुनो। इस भारतवर्ष में इस अवसर्पिणी के यह प्रथम धर्मचक्रवर्ती हैं। ऐसी बात नहीं है कि उनसे पहले धर्म नहीं था, किन्तु तीर्थंकर अनादि हैं और उनके द्वारा प्ररूपित धर्म भी अनादि है।' राजा ने कहा—'भगवन्! क्या यह अवसर्पिणी सब जगह होती है?' भगवान् ने कहा—'सौम्य! नहीं, अपितु पाँच भरत, पाँच ऐरावत और विदेहों में काल अवस्थित है। उनमें सब कालों में धर्मनायक तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव होते हैं और प्राणी मोक्ष जाते हैं। भरत और ऐरावत क्षेत्रों में काल अनवस्थित है, सब समयों में यह इस प्रकार नहीं रहता है, किन्तु कालचक्र प्रवर्तित होता है। उसका प्रमाण बीस कोड़ाकोड़ि सागर है। यहाँ अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी होती है। प्रत्येक की छह प्रकार की कालप्ररूपणा होती है। वह यह है—सुखम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुस्समा दुस्समसुसमा दुस्समा दुस्समदुस्सम त्ति। एयाओ य एयपमाणाओ हवंति। सुसमसुसमा पवाह-रूवेण चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ, सुसमा तिण्णि, सुसमदुस्समा दोन्नि, दुस्समसुसमा एगा सागरोवमकोडाकोडी ऊणा बायालीसेहिं वरिससहस्सेहिं। इगवीसवरिससहस्समाणा दुस्समा, इगवीसवरिससहस्समाणा चेव दुस्समदुस्सम त्ति। तत्थ सुसमसुसमाए पारंभसमयम्मि तिपलिओवमाउया लोया, पमाणेण तिण्णि गव्वूयाणि।

उवभोगपरीभोगा जम्मंतरसुकयबीयजायाओ।
कप्पतरुसमूहाओ होंति किलेसं विणा तेसिं ॥१०१७॥
ते पुण दसप्पगारा कप्पतरू समणसमयकेऊहिं।
धीरेहि विणिद्दिट्ठा मणोरहापूरगा एए ॥१०१८॥
मत्तंगया य भिंगा तुडियंगा दीवजोइचित्तंगा।
चित्तरसा मणियंगा गेहागारा अणियणा य ॥१०१९॥

प्ररूपणा। तद् यथा—सुषमसुषमा, सुषमा, सुषमदुःषमा, दुःषमसुषमा, दुःषमा, दुःषमदुःषमेति। एताश्चैतत्प्रमाणा भवन्ति। सुषमसुषमा प्रवाहरूपेण चतस्रः सागरोपमकोटाकोटचः, सुषमा तिस्रः, सुषमदुःषमा द्वे, दुःषमसुषमा एका सागरोपमकोटाकोटी ऊना द्विचत्वारिंशद्भिर्वर्षसहस्रैः। एकविंशतिवर्षसहस्रमाना दुःषमा, एकविंशतिवर्षसहस्रमानैव दुःषमदुःषमेति। तत्र सुषमसुषमायाः प्रारम्भसमये त्रिपल्योपमायुष्का लोकाः, प्रमाणेन त्रीणि गव्यूतानि।

उपभोगपरिभोगा जन्मान्तरसुकृतबीजजातात्।
कल्पतरुसमूहाद् भवन्ति क्लेशं विना तेषाम् ॥१०१७॥
ते पुनर्दशप्रकाराः कल्पतरवः श्रमणसमकेतुभिः।
धीरैर्विनिर्दिष्टा मनोरथापूरका एते ॥१०१८॥
मत्तङ्गकाश्च भृङ्गाः तूर्याङ्गा दीपज्योतिश्चित्राङ्गाः।
चित्ररसा मणिताङ्गा गेहाकारा अनग्नाश्च ॥१०१९॥

सुखमा, सुखमा, सुखम-दुःखमा, दुःखम-सुखमा, दुःखमा, दुःखम-दुःखमा। ये इस प्रमाणवाले होते हैं—सुखम-सुखमा प्रवाहरूप से चार कोड़ाकोड़ी सागर का, सुखमा तीन कोड़ाकोड़ी सागर का, सुखम-दुःखमा दो कोड़ाकोड़ी सागर का, दुःखम-सुखमा बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर का, दुःखमा इक्कीस हजार वर्ष का और दुःखमा-दुःखमा भी इक्कीस हजार वर्ष का होता है। उनमें से सुखमा-सुखमा के प्रारम्भ समय में तीन पल्य की आयुवाले लोग होते हैं, उनका प्रमाण तीन गव्यूति (कोश) का होता है।

उन लोगों के उपभोग परिभोग के लिए बिना क्लेश के दूसरे जन्मों के पुण्यरूपी बीज से उत्पन्न कल्पवृक्षों के समूह होते हैं। वे कल्पवृक्ष दश प्रकार के होते हैं। श्रमणों के सिद्धान्तों के लिए पताका के तुल्य धीरपुरुषों ने इन्हें मनोरथ को पूर्ण करने वाला बतलाया है। उनके नाम ये हैं—मतंगक, भृंग, तूर्यांग, दीपशिखा, ज्योति, चित्रांग,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मत्तंगएसु मज्जं सुहपेज्जं भायणाणि भिंगेसु ।
तुडियंगेसु य संगयतुडियाणि बहुप्पगाराणि ॥१०२०॥
दीवसिहा जोइसनामया य निच्चं करेंति उज्जोयं ।
चित्तंगेसु य मल्लं चित्तरसा भोयणट्ठाए ॥१०२१॥
मणियंगेसु य भूसणवराणि भवणाणि भवणरुक्खेसु ।
आइण्णेसु य पत्थिव वत्थाणि बहुप्पगाराणि ॥१०२२॥
एएसु य अन्नेसु य नरनारिगणाण ताणमुवभोगो ।
भविया पुणब्भवरहिया इय सव्वन्नू जिणा बेंति ॥१०२३॥

न खलु एयाण विसिट्ठा धम्माधम्मसन्ना । खीयमाणाणि य आउयपमाणाणि हवंति जाव सुसमारंभकालो । सुसमारंभकाले उण दुपलिओवमाउया, पमाणेण दोन्नि गाउयाणि । उवभोगपरिभोगा वि जणा(काला)णुहावेण ऊणाणुहावा । न खलु एयाण वि विसिट्ठा धम्माधम्मसन्ना । खीय-

---

मत्तङ्गकेषु मद्यं सुखपेयं भाजनानि भृङ्गेषु ।
तूर्याङ्गेषु च संगततूर्याणि बहुप्रकाराणि ॥१०२०॥
दीपशिखा ज्योतिर्नामकाश्च नित्यं कुर्वन्ति उद्योतम् ।
चित्राङ्गेषु च माल्यं चित्ररसा भोजनार्थम् ॥१०२१॥
मणिताङ्गेषु च भूषणवराणि भवनानि भवनवृक्षेषु ।
आकीर्णेषु च पार्थिव ! वस्त्राणि बहुप्रकाराणि ॥१०२२॥
एतेषु चान्येषु च नरनारीगणानां तेषामुपभोगः ।
भविकाः ! पुनर्भवरहिता इति सर्वज्ञा जिना ब्रुवन्ति ॥१०२३॥

न खल्वेतेषां विशिष्टा धर्माधर्मसंज्ञा । क्षीयमाणानि चायुःप्रमाणानि भवन्ति यावत् सुषमारम्भकालः । सुषमारम्भकाले पुनर्द्विपल्योपमायुष्काः, प्रमाणेन द्वे गव्यूते । उपभोगपरिभोगा अपि जना(काला)नुभावेन ऊनानुभावाः । न खल्वेतेषामपि विशिष्टा धर्माधर्मसंज्ञा । क्षीयमाणानि

चित्ररस, मणितांग, गेहाकार और अनग्न । मतंगकों में सुख से पीने योग्य मद्य होता है, भृंगों में पात्र होते हैं, तूर्यांग अनेक प्रकार के वाद्यों से युक्त होते हैं, दीपशिखा और ज्योति नाम के कल्पवृक्ष नित्य उद्योत (प्रकाश) करते है, चित्रांगों में मालाएँ होती हैं, चित्ररस भोजन के लिए होते है, मणितांगों में श्रेष्ठ आभूषण होते हैं, भवनवृक्षों (गेहाकारों) में भवन और आकीर्णों (अनग्नों) में अनेक प्रकार के वस्त्र होते हैं। उस समय के नरनारी इनका और अन्य कल्पवृक्षों का उपभोग करते हैं, भव्य होते हैं, पुनर्भव से रहित होते हैं, ऐसा सर्वज्ञ जिन कहते हैं ॥१०१७-१०२३॥

ये धर्म और अधर्म की संज्ञा से विशिष्ट नहीं होते हैं। सुखमा के आरम्भ समय के ये क्षीयमाण (निरन्तर कम होते गये) आयुप्रमाण वाले होते हैं। सुषमा के आरम्भ काल में लोग दो पल्य की आयुवाले होते हैं और इनकी लम्बाई दो गव्यूति (कोश) की होती है। लोगों के उपभोग-परिभोग भी काल के प्रभाव से कम-कम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माणाणि य आउयपमाणाणि हवंति जाव सुसमदुस्समारंभकालो। सुसमदुस्समारंभकाले उण एगपलिओवमाउया, पमाणेण एगं गव्वूयं हवइ। उवभोगपरिभोगा वि जणा(काला)णुभावेण ऊणाणुभावा। न खलु एयाण वि विसिट्ठा धम्माधम्मसन्ना हवइ। खीणपायाए य इमीए ओयरइ एत्थ भयवं पढमपुहइवई सयलकलासिप्पदेसओ वंदणिज्जो सुरासुराण जयद्गुरू तेलोक्कबंधू अन्नाणतिमिरनासणो भवियकुमुयायरससी पढमधम्मचक्कवट्टी आदितित्थगरो त्ति। तओ पवत्तए वारेज्जाइकिरिया दाणसीलतवभावणामओ य विसिट्ठधम्मो। खीयमाणाणि य आउयपमाणाणि हवंति जाव दुस्समसुसमारंभकालो। दुस्समसुसमारंभकाले उण चउरासीपुव्वलक्खाउया, पमाणेण पंचधणुसयाणि। उवभोगपरिभोगा उण जणा(काला)णुहावेण ऊणाणुहावा। अइक्कमइ कप्पतरुकप्पो, अवि य पवरोसहिमाइएहिंतो हवंति ऊणाणुहावा य हवइ। य विसिट्ठा धम्माधम्मसन्ना जओ इमीए हवंति तित्थयरा चक्कवट्टिणो वासुदेवा बलदेवा य। खीयमाणाणि य आउयपमाणाणि हवंति जाव दुस्समारंभकालो। दुस्समारंभकाले य पायं वाससयाउया, पमाणेण सत्तहत्था। उवभोग-

---

चायुःप्रमाणानि भवन्ति यावद् सुषमदुःषमारम्भकालः। सुषमदुःषमारम्भकाले पुनरेकपल्योपमायुष्काः, प्रमाणेन एकं गव्यूतं भवति। उपभोगपरिभोगा अपि जना(काला)नुभावेन ऊनानुभावाः। न खल्वेतेषामपि विशिष्टा धर्माधर्मसंज्ञा भवति। क्षीणप्रायायां चास्यामवतरत्यत्र भगवान् प्रथमपृथिवीपतिः सकलकलाशिल्पदेशको वन्दनीयः सुरासुराणां जगद्गुरुस्त्रैलोक्यबन्धुरज्ञानतिमिरनाशनो भविककुमुदाकरशशी प्रथमधर्मचक्रवर्ती आदितीर्थंकर इति। ततः प्रवर्तते विवाहादिक्रिया दानशीलतपोभावनामयश्च विशिष्टधर्मः। क्षीयमाणानि चायुःप्रमाणानि भवन्ति यावद् दुःषमसुषमारम्भकालः। दुःषमसुषमारम्भकाले पुनश्चतुरशीतिपूर्वलक्षायुष्काः, प्रमाणेन पञ्च धनुःशतानि। उपभोगपरिभोगाः पुनर्जना(काला)नुभावेन ऊनानुभावाः। अतिक्रामति कल्पतरुकल्पः, अपि च प्रवरौषध्यादिकेभ्यो भवन्ति ऊनानुभावाश्च। भवति च विशिष्टा धर्माधर्मसंज्ञा, यतोऽस्यां भवन्ति तीर्थंकराश्चक्रवर्तिनो वासुदेवा बलदेवाश्च। क्षीयमाणानि चायुःप्रमाणानि भवन्ति यावद् दुःषमारम्भकालः। दुःषमारम्भकाले च प्रायो वर्षशतायुष्काः प्रमाणेन

प्रभाव वाले होते हैं। इनमें भी धर्माधर्म संज्ञा का भेद नहीं रहता है। सुखम-दुखमा काल के आरम्भ में लोग एक पल्य की आयुवाले होते हैं, लम्बाई एक गव्यूति होती है। लोगों का उपभोग-परिभोग भी काल के प्रभाव से कम-कम होता जाता है। इनमें भी धर्माधर्म संज्ञा का भेद नहीं रहता है। इस काल के क्षीणप्राय होने पर भगवान् आदि तीर्थंकर का अवतार हुआ। वे प्रथम राजा थे, समस्त कला और शिल्पों का उपदेश देनेवाले थे, सुर और असुरों के द्वारा वन्दनीय थे, संसार के गुरु थे, तीनों लोकों के बन्धु थे, अज्ञानान्धकार का नाश करनेवाले थे, भव्यजनों रूपी कुमुदों के समूह के लिए चन्द्रमा थे और प्रथम धर्मचक्रवर्ती थे। उनसे विवाहादि क्रिया, दान, शील, तप और भावनामय विशिष्ट धर्म का प्रवर्तन हुआ। सुखम-दुःखमा काल के लोगों की आयु में दुःखम-सुखमा काल के आरम्भ तक ह्रास होता रहता है। दुःखम-सुखमा काल के आरम्भ में अस्सी लाख पूर्व की आयु होती है लम्बाई पाँच सौ धनुष होती है, लोगों का उपभोग-परिभोग भी काल के प्रभाव से कम-कम होता जाता है। कल्पवृक्षों के होने के नियम का अतिक्रमण होता है और श्रेष्ठ औषधियाँ आदि होती हैं जो कि न्यून-न्यून प्रभाव वाली होती हैं। धर्म और अधर्म संज्ञा का भेद होता है; क्योंकि इसमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव और बलदेव होते हैं। दुःखमा काल के आरम्भ तक आयु का ह्रास होता रहता है। दुःखमा काल के आरम्भ में प्रायः सौवर्ष की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिभोगा य ओसहिमाइएहिंतो हवंति ऊणाणुहावा य। हवइ तहा य हीयमाणा विसिट्ठा धम्माधम्म-सन्ना, जओ इमीए वि अणुवत्तए तित्थं, पहवंति य मिच्छत्तकोहमाणमायालोहा। खीयमाणाणि य आउपमाणाणि हवंति जाव दुस्समदुस्समारंभकालो। दुस्समदुस्समारंभकाले वीसवरिसाउया पाएण दुहत्थपमाणेण पज्जंते य सोलसवरिसाउया पमाणेणं एगहत्था। उवभोगपरिभोगा उ अमणोरमेहिं मंसमाईहिंतो हवंति ऊणाणुहावा य, धणियं न हवइ य विसिट्ठा धम्माधम्मसन्ना। एवमेसा ओसप्पिणी। उस्सप्पिणी वि पच्छाणुपुव्वीए एवंविहा चेव हवइ। एवमेयं पवत्तए कालचक्कं। एवं च इह भरहवासे इमीए ओसप्पिणीए एस भयवं पढमधम्मचक्कवट्टी, न उण परेण नासि धम्मो त्ति। राइणा भणियं—भयवं एवमेयं, अवणीओ अम्हाण मोहो; भयवया अणुग्गिहीओ अहं इच्छामि अणुसट्ठिं।

एत्थंतरम्मि समागओ तत्थ अच्चंतमज्झत्थो संगओ बुद्धीए परलोयभीरू परिणओ वओवत्थाए इंदसम्माहिहाणो माहणो त्ति। वंदिऊण भयवंतं गुरुं च उवविट्ठो गुरुसमीवे। भणियं च णेण—भयवं,

---

सप्तहस्ताः। उपभोगपरिभोगाश्च ओषध्यादिकेभ्यो भवन्ति ऊनानुभावाश्च। भवति तथा च हीयमाना विशिष्टा धर्माधर्मसंज्ञा, यतोऽस्यामप्यनुवर्तते तीर्थम्, प्रभवन्ति च मिथ्यात्वक्रोधमान-मायालोभाः। क्षीयमाणानि चायुःप्रमाणानि भवन्ति यावद् दुःषमदुःषमारम्भकालः। दुःषमदुःषमा-रम्भकाले विंशतिवर्षायुष्काः प्रायेण द्विहस्तप्रमाणेन पर्यन्ते च षोडशवर्षायुष्काः प्रमाणेनैकहस्ताः। उपभोगपरिभोगास्तु अमनोरमैर्मांसादिभिर्भवन्ति ऊनानुभावाश्च, गाढं न भवति च विशिष्टा धर्माधर्मसंज्ञा। एवमेषाऽवसर्पिणी। उत्सर्पिण्यपि पश्चानुपूर्व्या एवंविधैव भवति। एवमेतत् प्रवर्तते कालचक्रम्। एवं चेह भरतवर्षेऽस्यामवसर्पिण्यामेष भगवान् प्रथमधर्मचक्रवर्ती, न पुनः परेण नासीद् धर्म इति। राज्ञा भणितम्—भगवन्! एवमेतद्, अपनीतोऽस्माकं मोहः, भगवताऽनुगृहीतोऽहमिच्छाम्यनुशास्तिम्।

अत्रान्तरे समागतस्तत्रात्यन्तमध्यस्थः संगतो बुद्ध्या परलोकभीरुः परिणतो वयोऽवस्थया इन्द्रशर्माभिधानो ब्राह्मण इति। वन्दित्वा भगवन्तं गुरुं चोपविष्टो गुरुसमीपे। भणितं च तेन—

आयु होती है, लम्बाई सात हाथ होती है। उपभोग और परिभोग औषधि आदि से होते हैं और प्रभाव न्यून-न्यून होते जाते हैं तथा धर्माधर्म संज्ञा हीयमान (निरन्तर कम होनेवाली) विशिष्ट होती है; क्योंकि इसमें भी तीर्थ का अनुसरण होता है और मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया और लोभ की उत्पत्ति होती है। दुःखम-दुखमा काल के आरम्भ तक (प्राणियों की) आयु का ह्रास होता रहता है। दुःखम-दुखमा काल के आरम्भ में बीस वर्ष की आयु होती है, लम्बाई दो हाथ होती है, अन्त में सोलह वर्ष की आयु होती है, लम्बाई एक हाथ होती है। उपभोग-परिभोग अमनोरम मांसादि से होते हैं, न्यून प्रभाव होते हैं, अत्यन्त रूप से धर्माधर्म संज्ञा का भेद नहीं होता है। इस प्रकार यह अवसर्पिणी होती है। उत्सर्पिणी भी पश्चात् क्रम से इसी प्रकार होती है। इस प्रकार यह कालचक्र प्रवर्तित होता है। इस प्रकार इस भरतवर्ष की इस अवसर्पिणी में यह भगवान् प्रथम धर्मचक्रवर्ती थे। पहले धर्म नहीं था, ऐसा नहीं है।' राजा ने कहा—'भगवन्! ठीक है, हमारा मोह दूर हो गया। भगवान् से अनुगृहीत हुआ मैं आदेश की इच्छा करता हूँ।'

इसी बीच वहाँ अत्यन्त मध्यस्थ बुद्धि से युक्त परलोक से डरनेवाला, वृद्धावस्था वाला इन्द्रशर्मा नामक ब्राह्मण आया। भगवान् और गुरु की वन्दना कर गुरु के पास बैठ गया। उसने कहा—'भगवन्! जो ये आपके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जमेयं तुम्ह समए नाणावरणिज्जाइलक्खणं अट्ठप्पगारं कम्ममुत्तं, एयं विसेसओ कहमेस जीवो बंधति। भयवया भणियं—सोम, सुण। एवं समए पढिज्जइ। नाणपडिणीययाए नाणनिण्हवणयाए नाणंतराएणं नाणपओसेणं नाणच्चासायणाए नाणविसंवायणजोएणं नाणावरणिज्जं कम्मं बंधइ। एवं दंसणपडिणीययाए जाव दंसणविसंवायणजोएणं दंसणावरणिज्जं कम्मं बंधइ। पाणाणुकंपणयाए भूयाणुकंपणयाए जीवाणुकंपणयाए सत्ताणुकंपणयाए बहूणं पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं अदुक्खणयाए असोयणयाए अजूरणयाए अपरियावणयाए सायावेयणिज्जं कम्मं बंधइ। परदुक्खणयाए जाव परियावणयाए असायावेयणिज्जं कम्मं बंधइ। तिव्वकोहयाए तिव्वमाणयाए तिव्वमाययाए तिव्वलोहयाए तिव्वदंसणमोहणिज्जयाए तिव्वचरित्तमोहणिज्जयाए मोहणिज्जं कम्मं बंधइ। महारंभयाए महापरिग्गहयाए पंचेंदियवहेणं कुणिमाहारेणं जीवो निरयाउयं कम्मं, बंधइ। माइल्लयाए अलियवयणेणं कूडतुलकूडमाणेणं तिरिक्खजोणियाउयं कम्मं बंधइ। पगइविणीययाए साणुक्कोसयाए अमच्छरिययाए मणुस्साउयं कम्मं बंधइ। सरागसंजमेणं संजमासंजमेणं बालतवोकम्मेणं अकामनिज्जराए देवाउयं

भगवन्! यदेतद् युष्माकं समये ज्ञानावरणीयादिलक्षणमष्टप्रकारं कर्मोक्तम्, एतद् विशेषतः कथमेष जीवो बध्नाति। भगवता भणितम्—सौम्य! शृणु। एवं समये पठ्यते। ज्ञानप्रत्यनीकतया, ज्ञाननिह्नवतया, ज्ञानान्तरायेण, ज्ञानप्रद्वेषेण ज्ञानात्याशातनया ज्ञानविसंवादनयोगेन ज्ञानावरणीयं कर्म बध्नाति। एवं दर्शनप्रत्यनीकतया, यावद् दर्शनविसंवादनयोगेन दर्शनावरणीयं कर्म बध्नाति। प्राणानुकम्पनतया, भूतानुकम्पनतया, जीवानुकम्पनतया, सत्त्वानुकम्पनतया बहूनां प्राणानां भूतानां जीवानां सत्त्वानामदुःखनतयाऽखेदनतयाऽशोचनतयाऽपरितापनतया सातवेदनीयं कर्म बध्नाति। परदुःखनतया यावत् परितापनतयाऽसातवेदनीय कर्म बध्नाति। तीव्रक्रोधतया तीव्रमानतया तीव्रमायतया तीव्रलोभतया तीव्रदर्शनमोहनीयतया तीव्रचारित्रमोहनीयतया मोहनीयं कर्म बध्नाति। महारम्भतया महापरिग्रहतया पञ्चेन्द्रियवधेन मांसाहारेण जीवो निरयायुःकर्म बध्नाति। मायिकतया अलीकवचनेन कूटतुलाकूटमानेन तिर्यग्योनिकायुःकर्म बध्नाति। प्रकृतिविनीततया सानुक्रोशतयाऽमत्सरिकतया मनुष्यायुःकर्म बध्नाति। सरागसंयमेन संयमासंयमेन

आगम में ज्ञानावरणीय आदि लक्षणवाला आठ प्रकार का कर्म कहा गया है, इसे यह जीव विशेषरूप से कैसे बाँधता है?' भगवान् ने कहा—'सौम्य! सुनो—आगम में इस प्रकार पढ़ा जाता है (कहा गया है)। ज्ञान का विरोध रखने से, ज्ञान को छिपाने से, ज्ञान में विघ्न करने से, ज्ञान के प्रति द्वेष करने से, ज्ञान को नष्ट करने से, ज्ञान का खण्डन करने से ज्ञानावरणीय कर्म बाँधता है। इसी प्रकार दर्शन का विरोध करने से, दर्शन का खण्डन करने तक के योग से दर्शनावरणीय कर्म बाँधता है। प्राणियों, भूतों, जीवों (तथा) सत्त्वों पर अनुकम्पा (दया) करने से बहुत से प्राणी, भूत, जीव, सत्त्वों को दुःख न देने, शोक न पहुँचाने, खेद न पहुँचाने और कष्ट न पहुँचाने से सातवेदनीय कर्म बाँधता है। दूसरे को दुःख देने से लेकर (दूसरे को) कष्ट देने तक असात वेदनीय कर्म बाँधता है। तीव्र क्रोध, तीव्र मान, तीव्र माया, तीव्र लोभ, तीव्र दर्शनमोहनीय, तीव्र चारित्रमोहनीय से मोहनीय कर्म बाँधता है। महान् आरम्भ, महान् परिग्रह, पंचेन्द्रियों का वध (तथा) मांसाहार से जीव नरकायुकर्म बाँधता है। माया करने, झूठ बोलने, कम-बढ़ तोलने, कम-बढ़ बाँट रखने से तिर्यंचयोनि सम्बन्धी आयुकर्म बाँधता है। प्रकृति से विनीत होने, दयायुक्त होने और द्वेषरहित होने से मनुष्यायु कर्म बाँधता है। सराग संयम, संयमा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम्मं बंधइ। कायउज्जुययाए भावुज्जुययाए भासुज्जुययाए अविसंवायणजोएणं सुहनामं कम्मं बंधइ। कायअणुज्जुययाए जाव विसंवायणजोएणं असुहनाम ति। जाइकुलरूवतवसुयबललाभइस्सरियामएणं उच्चागोयं कम्मं बंधइ। जाइमएणं जाव इस्सरियमएणं नीयागोयं कम्मं बंधइ। दाणलाभभोगउवभोगवीरियंतराएणं अंतरायं कम्मं बंधइ। एवं भो देवाणुप्पिया, एयं विसेसओ एस जीवो अट्ठप्पगारं कम्मं बंधइ। इंदसम्मेण भणियं—भयवं, एवमेयं। अह एवं ववत्थिए किं पुण मोक्खबीयं, कहं वा तयं पाविज्जइ। भयवया भणियं—सोम, सुण। मोक्खबीयं ताव एयं। पारंभो सुहस्स पसमसंवेगाइलिंगं उच्छायणं कम्मपरिणईए पावणं एगंतेणं कम्मिंधणस्स सुहायपरिणामलक्खणं अचिंतचिंतामणिसन्निहं सम्मत्तं। एयं च एवं पाविज्जइ वीयरागाइदंसणेण विसुद्धधम्मसवणाए गुणाहियसंगमेणं पक्खवाएणं गुणेसु तहाभव्वयानिओएण अणुगंपाइभावणाए विसिट्ठकम्मखओवसमेणं ति। इंदसम्मेण भणियं—भयवं, एवमेयं। अह एवं ववत्थिए एगंतसुहसरूवो मोक्खो कहं दुक्खसेवणारूवाओ संजमाणुट्ठाणाओ त्ति।

बालतपःकर्मणाऽकामनिर्जरया देवायुःकर्म बध्नाति। कायऋजुकतया भावऋजुकतया भाषऋजुकतयाऽविसंवादनयोगेन शुभनामकर्म बध्नाति। कायानृजुकतया यावद् विसंवादनयोगेनाशुभनामेति। जातिकुलरूपतपःश्रुतबललाभैश्वर्यामदेनोच्चगोत्रं कर्म बध्नाति। जातिमदेन यावद् ऐश्वर्यमदेन नीचगोत्रं कर्म बध्नाति। दानलाभभोगवीर्यान्तरायेणान्तरायकर्म बध्नाति। एवं भो देवानुप्रिय! एतद् विशेषत एष जीवोऽष्टप्रकारं कर्म बध्नाति। इन्द्रशर्मणा भणितम्—भगवन्! एवमेतत्। अथैवं व्यवस्थिते किं पुनर्मोक्षबीजं, कथं वा तत् प्राप्यते। भगवता भणितम्—सौम्य श्रृणु। मोक्षबीजं तावदेतत्। प्रारम्भः सुखस्य प्रशमसंवेगादिलिङ्गमुच्छादनं कर्मपरिणतेः पावनमेकान्तेन कर्मेन्धनस्य शुभात्मपरिणामलक्षणमचिन्त्यचिन्तामणिसन्निभं सम्यक्त्वं। एतच्चैव प्राप्यते वीतरागादिदर्शनेन विशुद्धधर्मश्रवणेन गुणाधिकसङ्गमेन पक्षपातेन गुणेषु तथाभव्यतानियोगेनानुकम्पादिभावनया विशिष्टकर्मक्षयोपशमेनेति। इन्द्रशर्मणा भणितम्—भगवन्! एवमेतत्। अथैवं व्यवस्थिते एकान्तसुखस्वरूपो मोक्षः कथं दुःखासेवनरूपात् संयमानुष्ठानादिति। भगवता

संयम, बालतप करने और अकामनिर्जरा से देवायुकर्म बाँधता है। शरीर की सरलता, भाव की सरलता, वचन की सरलता और विरोध न करने के योग से शुभ नामकर्म बाँधता है। शरीर की सरलता न रखने से लेकर विरोध रखने तक के योग से अशुभनामकर्म बाँधता है। जाति, कुल, रूप, तप, शास्त्र, बल, लाभ, ऐश्वर्य का मद न करने से उच्चगोत्र कर्म बाँधता है। जातिमद से लेकर ऐश्वर्य के मद तक के योग से नीचगोत्र कर्म बाँधता है। दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य के अन्तराय से अन्तराय कर्म बाँधता है। इस प्रकार हे देवानुप्रिय! इस तरह विशेष रूप से यह जीव आठ प्रकार का कर्म बाँधता है।' इन्द्रशर्मा ने कहा—'भगवन्! यह ठीक है। ऐसा निर्धारित होने पर पुनः मोक्ष का बीज क्या है, वह कैसे प्राप्त होता है?' भगवान् ने कहा—'सौम्य! सुनो। मोक्ष का बीज इस प्रकार है—सुख का आरम्भ, प्रशम, संवेग आदि लक्षणोंवाला, कर्म की परिणति का नाश करनेवाला, कर्मरूपी ईंधन के लिए जल, शुभ आत्मपरिणाम रूप लक्षणवाला और अचिन्त्य चिन्तामणि के समान सम्यक्त्व (मोक्ष का बीज) है। यह इस प्रकार प्राप्त होता है—वीतरागादि के दर्शन, विशुद्ध धर्मश्रवण, जो गुणों में अधिक हो उसका साथ करने, गुणों में पक्षपात करने तथा भव्यता का नियोग, अनुकम्पा (दया) आदि भावना (तथा) विशिष्ट कर्मों के क्षयोपशम से (प्राप्त होता है)।' इन्द्रशर्मा ने कहा—'भगवन्! यह ठीक है। ऐसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भयवया भणियं—सोम, सुण। जहा चिगिच्छासेवणाओ सुहसरूवा आरोग्गया, तहा संजमाणुट्ठाणाओ एगंसुहसरूवो मोक्खो त्ति। न यावि परमत्थओ दुक्खसेवणारूवं संजमाणुट्ठाणं परमसुहपरिणामजोगओ विसुद्धलेसाणुभावओ य। एवं च समए पढिज्जइ। अवि य—

न वि अत्थि रायरायस्स तं सुहं नेय देवरायस्स।
जं सुहमिहेव साहो(हुस्स) लोयव्वावाररहियस्स ॥१०२४॥

अन्नं च। जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा, एए णं कस्स तेउलेसं वीइवयंति। मासपरियाए समणे निग्गंथे वाणमंतराण देवाणं तेउलेसं वीइवयइ, एवं दुमासपरियाए समणे निग्गंथे असुरिंदवज्जियाणं भवणवासीणं देवाणं तेउलेसं वीइवयइ, तिमासपरियाए समणे निग्गंथे असुर(रिंद)-कुमाराणं देवाणं तेउलेसं वीइवयइ, चउमासपरियाए समणे निग्गंथे गहगणनक्खत्ततारारूवाणं जोइसियाणं तेउलेसं वीइवयइ, पंचमासपरियाए समणे निग्गंथे चंदिमसूरियाणं जोइसिंदाणं जोइसरातीणं तेउलेसं वीइवयइ, छम्मासपरियाए समणे निग्गंथे सोहम्मीसाणाणं देवाणं तेओलेसं

भणितम्—सौम्य! शृणु। यथा चिकित्सासेवनात् सुखस्वरूपाऽरोगता, तथा संयमानुष्ठानाद् एकान्तसुखस्वरूपो मोक्ष इति। न चापि परमार्थतो दुःखसेवनारूपं संयमानुष्ठानं परमशुभ-परिणामयोगतो विशुद्धलेश्यानुभावतश्च। एवं च समये पठ्यते। अपि च,

नाप्यस्ति राजराजस्य तत् सुखं नैव देवराजस्य।
यत् सुखमिहैव साधोर्लोकव्यापाररहितस्य ॥१०२४॥

अन्यच्च, ये इमेऽद्यतया श्रमणा निर्ग्रन्थाः, एते कस्य तेजोलेश्यां व्यतिव्रजन्ति। मासपर्यायः श्रमणो निर्ग्रन्थो वानमन्तराणां देवानां तेजोलेश्यां व्यतिव्रजति। एवं द्विमासपर्यायः श्रमणो निर्ग्रन्थोऽसुरेन्द्रवर्जितानां भवनवासिनां देवानां तेजोलेश्यां व्यतिव्रजति। त्रिमासपर्यायः श्रमणो निर्ग्रन्थोऽसुरेन्द्रकुमाराणां देवानां तेजोलेश्यां व्यतिव्रजति। चतुर्मासपर्यायः श्रमणो निर्ग्रन्थो ग्रहगणनक्षत्रतारारूपाणां ज्योतिष्कानां तेजोलेश्यां व्यतिव्रजति। पञ्चमासपर्यायः श्रमणो निर्ग्रन्थश्चन्द्रसूर्याणां ज्योतिष्केन्द्राणां ज्योतिष्कराजानां तेजोलेश्यां व्यतिव्रजति। षण्मासपर्यायः श्रमणो

निर्धारित होने पर एकान्त सुखस्वरूपवाला मोक्ष दुःखसेवनरूप संयम का पालन करने से कैसे होता है? भगवान् ने कहा—'सौम्य! सुनो। जैसे चिकित्सा का सेवन करने सुखस्वरूप वाली अरोगता होती है उसी प्रकार संयम का पालन करने से एकान्त सुखस्वरूप मोक्ष होता है। संयम का पालन करना परमार्थ से दुःख का सेवन करने रूप नहीं है; क्योंकि परम शुभपरिणामों का योग रहता है और विशुद्ध लेश्या का प्रभाव रहता है। आगम में इस प्रकार पढ़ा जाता है। कहा भी है—

इस संसार के व्यापार से रहित साधु का जो सुख है वह सुख न तो राजाओं के चक्रवर्ती का है, न देवराज इन्द्र का है ॥१०२४॥

दूसरी बात, आज जो ये श्रमण निर्ग्रन्थ हैं ये किसकी तेजोलेश्या का उल्लंघन करते हैं? एक मास की अवस्था वाला (जिसे श्रमण हुए एक मास हुआ है) श्रमण निर्ग्रन्थ वानमन्तर देवों की तेजोलेश्या का अतिक्रमण करता है। इसी प्रकार जिसे श्रमण निर्ग्रन्थ हुए दो माह हुए हैं वह असुरेन्द्र को छोड़कर भवनवासी देवों की तेजोलेश्या का अतिक्रमण करता है। जिसे श्रमण निर्ग्रन्थ हुए तीन माह हो गया है वह असुरेन्द्रकुमार देवों की तेजोलेश्या का उल्लंघन करता है। जिसे श्रमण निर्ग्रन्थ हुए चार माह हो गये हैं वह ग्रहगण, नक्षत्र, तारारूप ज्योतिषी देवों की तेजोलेश्या का उल्लंघन करता है। जिसे श्रमण निर्ग्रन्थ हुए पाँच माह हो गये हैं वह चन्द्रमा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीइवयइ, सत्तमासपरियाए समणे निग्गंथे सणंकुमारमाहिंदाणं देवाणं तेउलेसं वीइवयइ, अट्ठमास-परियाए समणे निग्गंथे बंभलोगलंतगाणं देवाणं तेओलेसं वीइवयइ, नवमासपरियाए समणे निग्गंथे महासुक्कसहस्साराणं देवाणं तेउलेसं वीइवयइ, दसमासपरियाए समणे निग्गंथे आरणच्चुयाणं देवाणं तेउलेसं वीइवयइ, एक्कारसमासपरियाए समणे निग्गंथे गेवेज्जाणं देवाणं तेउलेसं वीइवयइ, बारस-मासपरियाए समणे निग्गंथे अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं तेउलेसं वीइवयइ; तेणं परं सुक्के सुक्काभिजाई भवित्ता सिज्झइ बुज्झई मुच्चइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ। एवं भो देवाणुप्पिया, य यावि परमत्थओ दुक्खसेवणाणुरूवं संजमाणुट्ठाणं ति। इंदसम्मेण भणियं—भयवं, एवमेयं, इच्छामि अणुसट्ठिं।

एत्थंतरम्मि पुव्वागएणेव पणामपुव्वयं भणियं चित्तंगएण भयवं, के पुण पाणिणो किं कइप्प-गारं किंठिइयं वा कम्मं बंधंति। भयवया भणियं – सोम, सुण।

निर्ग्रन्थः सौधर्मेशानानां देवानां तेजोलेश्यां व्यतिव्रजति। सप्तमासपर्यायः श्रमणो निर्ग्रन्थः सनत्कुमारमाहेन्द्राणां देवानां तेजोलेश्यां व्यतिव्रजति। अष्टमासपर्यायः श्रमणो निर्ग्रन्थो ब्रह्म-लोकलान्तकानां देवानां तेजोलेश्यां व्यतिव्रजति। नवमासपर्यायः श्रमणो निर्ग्रन्थो महाशुक्रसह-स्राराणां देवानां तेजोलेश्यां व्यतिव्रजति। दशमासपर्यायः श्रमणो निर्ग्रन्थ आरणाच्युतानां देवानां तेजोलेश्यां व्यतिव्रजति। एकादशमासपर्यायः श्रमणो निर्ग्रन्थो ग्रैवेयकानां देवानां तेजोलेश्यां व्यतिव्रजति। द्वादशमासपर्यायः श्रमणो निर्ग्रन्थोऽनुत्तरोपपातिकानां देवानां तेजोलेश्यां व्यतिव्रजति। ततः परं शुक्लः शुक्लाभिजातिर्भूत्वा सिध्यति बुध्यते मुच्यते सर्वदुःखानामन्तं करोति। एवं भो देवानुप्रिय! न चापि परमार्थतो दुःखसेवनानुरूपं संयमानुष्ठानमिति। इन्द्रशर्मणा भणितम्—भगवन्! एवमेतद्, इच्छाम्यनुशास्तिम्।

अत्रान्तरे पूर्वागतेनेव प्रणामपूर्वकं भणितं चित्राङ्गदेन— भगवन्! के पुनः प्राणिनः किं कतिप्रकारं किंस्थितिकं वा कर्म बध्नन्ति। भगवता भणितम्—सौम्य! शृणु।

सूर्य, ज्योतिषी देवों के इन्द्रों की, तथा ज्योतिष्क राजा की तेजोलेश्या का उल्लंघन करता है। जिसे श्रमण निर्ग्रन्थ हुए छह माह हो गये हैं वह सौधर्म और ईशान देवों की तेजोलेश्या का उल्लंघन करता है। जिसे श्रमण निर्ग्रन्थ हुए सात माह हो गये हैं वह सनत्कुमार माहेन्द्र स्वर्ग के देवों की तेजोलेश्या का उल्लंघन करता है। जिसे श्रमण निर्ग्रन्थ हुए आठ माह हो गये हैं वह ब्रह्म और लान्तव स्वर्ग के देवों की तेजोलेश्या का उल्लंघन करता है। जिसे श्रमणनिर्ग्रन्थ हुए नव मास हो गये हैं वह महाशुक्र और सहस्रार स्वर्ग के देवों की तेजोलेश्या का उल्लंघन करता है। जिसे श्रमण निर्ग्रन्थ हुए दस माह हो गये हैं वह आरण और अच्युत स्वर्ग के देवों की तेजोलेश्या का उल्लंघन करता है। जिसे श्रमण निर्ग्रन्थ हुए ग्यारह माह हो गये हैं वह ग्रैवेयक देवों की तेजोलेश्या का उल्लंघन करता है। जिसे श्रमण निर्ग्रन्थ हुए बारह मास हुए हैं वह अनुत्तर और औपपातिक देवों की तेजोलेश्या का उल्लंघन करता है। उसके बाद वाला श्रमणनिर्ग्रन्थ निर्मल शुक्ललेश्या वाला होकर सिद्धि को प्राप्त करता है, बोध को प्राप्त हो जाता है, मुक्त हो जाता है, समस्त दुःखों का अन्त करता है। इस प्रकार हे देवानुप्रिय! संयम का पालन करना परमार्थ से दुःखसेवन करने के अनुरूप नहीं है।' इन्द्रशर्मा ने कहा—'भगवन्! यह सच है, आदेश की इच्छा करता हूँ।'

इसी बीच मानो पहले से आये हुए चित्रांगद ने प्रणामपूर्वक कहा—'भगवन्! कौन प्राणी किस स्थिति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तविहबंधगा होंति पाणिणो आउवज्जगाणं तु।
तह सुहुमसंपराया छव्विहबंधा मुणेयव्वा ॥१०२५॥
मोहाउयवज्जाणं पगडीणं ते उ बंधगा भणिया।
उवसंतखीणमोहा केवलिणो एगविहबंधा ॥१०२६॥
ते उण दुसमयठिइयस्स बंधया न उण संपरायस्स।
सेलेसीपडिवन्ना अबंधया होंति विन्नेया ॥१०२७॥
अपमत्तसंजयाणं बंधठिई होइ अट्ठ उ मुहुत्ता।
उक्कोसेण जहन्ना भिन्नमुहुत्तं तु विन्नेया ॥१०२८॥
जे वि पमत्ताऽणाउट्टियाए बंधंति तेसिं बंधठिई।
संवच्छराइं अट्ठ उ उक्कोसियरा मुहुत्तंतो ॥१०२९॥
सम्मद्दिट्ठीणं पि हु गंठिं न कयाइ वोलए बंधो।
मिच्छद्दिट्ठीणं पुण उक्कोसो सुत्तभणिओ उ ॥१०३०॥

सप्तविधबन्धका भवन्ति प्राणिन आयुर्वर्जानां तु।
तथा सूक्ष्मसम्परायाः षड्विधबन्धा ज्ञातव्याः ॥१०२५॥
मोहायुर्वर्जानां प्रकृतीनां ते तु बन्धका भणिताः।
उपशान्तक्षीणमोहाः केवलिन एकविधबन्धाः ॥१०२६॥
ते पुनर्द्विसमयस्थितिकस्य बन्धका न पुनः सम्परायस्य।
शंलेशीप्रतिपन्ना अबन्धका भवन्ति विज्ञयाः ॥॥१०२७॥
अप्रमत्तसंयतानां बन्धस्थितिर्भवत्यष्ट तु मुहूर्ताः।
उत्कर्षेण जघन्या भिन्नमुहूर्तं तु विज्ञेया ॥१०२८॥
येऽपि प्रमत्ता अनाकुट्टचा बध्नन्ति तेषां बन्धस्थितिः।
संवत्सराण्यष्ट तु उत्कृष्टा इतरा मुहूर्तान्तः ॥१०२९॥
सम्यग्दृष्टीनामपि खलु ग्रन्थिं न कदाचिद् व्यतिक्रामति बन्धः।
मिथ्यादृष्टिनां पुनरुत्कृष्टः सूत्रभणितस्तु ॥१०३०॥

वाले कर्म को बाँधते हैं ?' भगवान् ने कहा—'सौम्य ! सुनो—

आयु को छोड़े हुए जीव के बन्ध सात होते हैं तथा सूक्ष्मसाम्परायों के छह प्रकार का बन्ध जानना चाहिए। आयुकर्म से रहित मोह प्रकृतियों का बन्ध कहा गया है—उपशान्तमोह, क्षीणमोह और सयोगकेवली का एक प्रकार का बन्ध होता है। पुनः वे बन्ध दो समय की स्थितिवाले होते हैं, किन्तु साम्पराय के ऐसा नहीं होता है। शील के स्वामीपने को प्राप्त हुए अबन्धक होते हैं—ऐसा जानना चाहिए। अप्रमत्तसंयतों का बन्ध और स्थिति उत्कृष्ट रूप से आठ मुहूर्त की होती है। जघन्य स्थिति भिन्न मुहूर्त जानना चाहिए। जो प्रमत्त गुणस्थान में बिना काटे हुए बन्ध करते हैं उनकी बन्धन की स्थिति उत्कृष्ट आठ वर्ष और जघन्य मुहूर्त भर की होती है। सम्यग्दृष्टियों की भी ग्रन्थि कदाचित् बन्ध का अतिक्रमण नहीं करती है। मिथ्यादृष्टियों की उत्कृष्ट स्थिति सूत्र में कही गयी है ॥१०२५-१०३०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्तंगएण भणियं – भयवं, एवमेयं; अवणीओ अम्हाण मोहो; भयवया अणुग्गिहीओ दढं इच्छामि अणुसट्ठिं।

एत्थंतरम्मि समागया कालवेला, अवगया नरिंदाई, कयं भयवया उचियकरणिज्जं। बिइय-दियहे य तम्मि चेव चेइए अवट्ठियस्स भयवओ समागओ अग्गिभूई नाम माहणो। वंदिऊण भयवंत-माइदेवं समराइच्चवायगं च उवविट्ठो तयंतिए। सविणयं जंपियमणेण—भयवं, साहेहि मज्झ देवया-विसेसं तदुवासणाविहिं उवासणाफलं च। भयवया भणियं—सोम, सुण। देवयाविसेसो ताव सो वीयरागो वज्जिओ दोसेण परमनाणी पूजिओ सुरासुरेहिं परमत्थदेसगो हिओ सव्वजीवाण अचित-माहप्पो रहिओ जम्ममरणेहिं कयकिच्चो परमप्प त्ति। तदुवासणाविही उण जहासत्तीए निरीहेण चित्तेण अच्चंतभावसारं उचिएणं कमेणं रहियमइयारेहिं तदुवएससारं अणुट्ठाणं दाणस्स पालणं विरईए आसेवणं तवस्स भावणं भावणाणं ति। उवासणाफलं पुण सुंदरं देवत्तं महाविमाणाइं अच्छरसाओ दिव्वा कामभोया सुकुलपच्चाइयाई सुंदरं रूवं विसिट्ठा भोया वियक्खणत्तं धम्मपडिवत्ती परमपय-

---

चित्राङ्गदेन भणितम्—भगवन्! एवमेतद्, अपनीतोऽस्माकं मोहः, भगवताऽनुगृहीतो दृढमिच्छाम्यनुशास्तिम्।

अत्रान्तरे समागता कालवेला, अपगता नरेन्द्रादयः, कृतं भगवतोचितकरणीयम्। द्वितीय-दिवसे च तस्मिन्नेव चैत्येऽवस्थितस्य भगवतः समागतोऽग्निभूतिर्नाम ब्राह्मणः। वन्दित्वा भगवन्त-मादिदेवं समरादित्यवाचकं चोपविष्टस्तदन्तिके। सविनयं जल्पितमनेन—भगवन्! कथय मम देवताविशेषं तदुपासनाविधिमुपासनाफलं च। भगवता भणितम्—सौम्य! शृणु। देवताविशेष-स्तावत् स वीतरागो वर्जितो दोषेण परमज्ञानी पूजितः सुरासुरैः परमार्थदेशको हितः सर्वजीवानाम-चिन्त्यमाहात्म्यो रहितो जन्ममरणाभ्यां कृतकृत्यः परमात्मेति। तदुपासनाविधिः पुनर्यथाशक्ति निरीहेण चित्तेनात्यन्तभावसारमुचितेन क्रमेण रहितमतिचारैस्तदुपदेशसारमनुष्ठानं दानस्य पालनं विरत्या आसेवनं तपसो भावनं भावनानामिति। उपासनाफलं पुनः सुन्दरं देवत्वं महाविमानानि अप्सरसो दिव्याः कामभोगाः सुकुलप्रत्यागतादिः सुन्दरं रूपं विशिष्टा भोगा विचक्षणत्वं धर्मप्रति-

---

चित्रांगद ने कहा—'भगवन्! यह ऐसा ही है, हमारा मोह दूर हो गया, भगवान् से अनुगृहीत होकर आदेश की इच्छा करता हूँ।'

इसी बीच समय हो गया, राजा आदि चले गये। भगवान् ने योग्य कार्यों को किया। दूसरे दिन जब भगवान् उसी चैत्य में ठहरे हुए थे तब अग्निभूति नाम का ब्राह्मण आया। भगवान् आदिदेव और समरादित्य वाचक को नमस्कार कर उनके समीप बैठ गया। विनयपूर्वक इसने कहा—'भगवन्! मुझसे देवताविशेष और उसकी उपासना की विधि तथा उपासना का फल कहिए।' भगवान् ने कहा—'सौम्य! सुनो। जो वीतरागी, दोषरहित, परमज्ञानी, सुर और असुरों से पूजित, परमार्थ का उपदेश देनेवाला, समस्त जीवों का हितकारी, अचिन्त्य माहात्म्यवाला, जन्म और मरण से रहित, कृतकृत्य और परमात्मा हो वह 'देवता विशेष' है। यथाशक्ति निरभिलाष चित्त से अत्यन्त भावरूप सारवाला होकर उचित क्रम से, अतिचारों से रहित, उनके साररूप उपदेशों का पालन करना, दान देना, विरति का पालन करना, तप का सेवन करना, भावनाओं का चिन्तन करना, उस देवताविशेष की उपासना विधि है। उपासना का फल स्वर्ग में सुन्दर देवपना, देवांगनाओं के साथ दिव्य काम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गमणं ति। एयमायण्णिऊण हरिसिओ अग्गिभूई। भणियं च णेण—भयवं, जो वीयरागो, सो परम-मज्झत्थयाए न कस्सइ उवयारं करेइ 'मा अन्नेसिं पीडा भविस्सइ' त्ति; अकरेंतो य त 'हिओ सव्वजीवाणं'ति को एत्थ हेऊ। भयवया भणियं—सोम, सुण। न खलु परमत्थदेसणाओ महामोह-नासणेण अन्नो कोइ उवयारो। करेइ य तं भयवं अन्नपीडाचाएणं ति। एसेव एत्थ हेऊ। अग्गिभूइणा भणियं—भयवं एवमुवासणाए को तस्स उवयारो, अविज्जमाणे य तम्मि कहं भणियफलसिद्धी, कहं वा सा तओ त्ति। भयवया भणियं—सोम, सुण। न खलु तदुवगाराओ एत्थ फलसिद्धी, किं तु तदुवासणाओ। दिट्ठा य एसा तदुवगाराभावे वि विहिओवासणाओ चिंतामणिमंतजलणेहिं; न य ते तेहिं तिप्पंति, किं तु तदणुसरणजवणासेवणेण अहिप्पेयत्थस्स होइ संपत्ती, न य सा न तेहिंतो त्ति। एयमायण्णिऊण पडिबुद्धो अग्गिभूई। भणियं च णेण—अहो भयवया सम्ममावेइयं, अवगओ मोहो, इच्छामि अणुसासणं ति।

एत्थंतरम्मि अहिणवसावगो संगएणं वेसेणं सपरियणो समागओ धणरिद्धिसेट्ठी। कया भयवओ

पत्तिः परमपदगमनमिति। एतदाकर्ण्य हर्षितोऽग्निभूतिः। भणितं चानेन—भगवन्! यो वीतरागः स परममध्यस्थतया न कस्यचिदुपकारं करोति 'माऽन्येषां पीडा भविष्यति' इति, अकुर्वंश्च तं 'हितः सर्वजीवानाम्' इति कोऽत्र हेतुः। भगवता भणितम्—सौम्य! शृणु। न खलु परमार्थदेशनाया महामोहनाशनेनान्यः कोऽप्युपकारः। करोति च तं भगवान् अन्यपीडात्यागेनेति। एष एवात्र हेतुः। अग्निभूतिना भणितम्—भगवन्! एवमुपासनया कस्तस्योपकारः, अविद्यमाने च तस्मिन् कथं भणितफलसिद्धिः, कथं वा सा तत इति। भगवता भणितम्—सौम्य! शृणु। न खलु तदुपकारादत्र फलसिद्धिः, किन्तु तदुपासनया। दृष्टा चैषा तदुपकाराभावेऽपि विहितोपासनाया चिन्तामणिमन्त्र-ज्वलनैः, न च ते तैः तृप्यन्ति, किन्तु तदनुसरणजपनासेवनेनाभिप्रेतार्थस्य भवति सम्प्राप्तिः, न च सा न तेभ्य इति। एतदाकर्ण्य प्रतिबुद्धोऽग्निभूतिः। भणितं च तेन—अहो भगवता सम्यगावेदितम्, अपगतो मोहः, इच्छाम्यनुशासनमिति।

अत्रान्तरेऽभिनवश्रावकः संगतेन वेषेण सपरिजनः समागतो धनऋद्धिश्रेष्ठी। कृता भगवतः

भोग, अच्छे कुल में आना, सुन्दर रूप, विशिष्ट भोग, प्रवीणपना, धर्म की प्राप्ति और मोक्षगमन—ये उपासना के फल हैं।' यह सुनकर अग्निभूति हर्षित हुआ और इसने कहा—'भगवन्! जो वीतराग होता है वह परमध्यस्थ होने से न किसी का उपकार करता है, न दूसरों को पीड़ा पहुँचाता है। इस प्रकार न करता हुआ वह सब जीवों का हितकारी है—इसमें क्या हेतु है?' भगवान् ने कहा—'सौम्य! सुनो। परमार्थ उपदेश (देशना) का महामोह के नाश करने के अतिरिक्त कोई उपकार नहीं है। उसे भगवान् दूसरों को पीड़ा न पहुँचाकर करते हैं, यही यहाँ कारण है।' अग्निभूति ने कहा—'भगवन्! इसी प्रकार उनकी उपासना से क्या उपकार होता है और उनके विद्यमान न होने पर कैसे कथित फल की सिद्धि होती है अथवा वह कैसे होती है?' भगवान् ने कहा—'सौम्य! सुनो। निश्चय से उनके उपकार से यहाँ फल की सिद्धि नहीं होती है, अपितु उपासना से होती है। यह देखा जाता है कि चिन्तामणि मन्त्र के द्वारा उपकार का अभाव होने पर भी उपासना करने से चिन्तामणि मन्त्र की चमक से वे तृप्त नहीं होते हैं; किन्तु उसका अनुसरण, जाप, सेवन से इष्ट पदार्थ की प्राप्ति होती है, अतः नहीं कहा जा सकता है कि वह प्राप्ति उस मन्त्र से नहीं हुई। यह सुनकर अग्निभूति जाग्रत् हो गया और उसने कहा—'ओह! भगवान् ने ठीक बतलाया, मोह दूर हो गया। आदेश चाहता हूँ।'

तभी नवीन श्रावक के वेष से युक्त परिजनों के साथ धनऋद्धि सेठ आया। भगवान् की पूजा की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूया। तओ वंदिऊण भयवंतं वायगं च उवविट्ठो तदंतिए। भणियं च णेण—भयवं, साहूण कयकारणाणुमईभेयभिन्ना सावज्जजोयविरई; ता कहमेतेसिं सावयाण थूलगपाणाइवायादिरूवाणुव्वयप्पयाणे इयरम्मि अणुमई न होइ। भयवया भणियं—सोम, अविहिणा होइ न उ विहिप्पयाणेण। सेट्ठिणा भणियं—भयवं, केरिसं विहिप्पयाणं। भयवया भणियं—सोम, सुण। संसिऊण संवेगसारं जहाविहिणा भवसरूवं अणवट्ठियं एगंतेण कारणं दुक्खपरंपराए, तन्निग्घायणसमत्थं च अच्चंतियरसायणं जीवलोए अक्खेवेण साहगं मोक्खस्स जहट्ठियं साहुधम्मं, जणिऊण सुद्धभावपरिणइं वड्ढिऊण संवेगं तहाविहकम्मोदएण अपडिवज्जमाणेसु तं सावएसु उज्जएसु अणुव्वयगहणम्मि मज्झत्थस्स मुणिणो पसत्थखेत्ताइम्मि आगाराइपरिसुद्धं पयच्छंतस्स विहिप्पयाणं ति। सेट्ठिणा भणियं—भयवं एवं पि कहं तस्स इयरम्मि अणुमई न होइ। भयवया भणियं—सोम, सुण। गाहावइचोर(पुत्त)ग्गहणविमोक्खणयाए एत्थ दिट्ठंतो। अत्थि इह वसंतउरं नयरं, जियसत्तू राया, धारिणी देवी। नट्टाइसएण परिउट्ठो से भत्ता। भणिया य णेण—भण, किं ते पियं करीयउ। तीए भणियं—अज्जउत्त, कोमुईए

पूजा। ततो वन्दित्वा भगवन्तं वाचकं चोपविष्टस्तदन्तिके। भणितं च तेन—भगवन्! साधूनां कृतकारणानुमतिभेदभिन्ना सावद्ययोगविरतिः, ततः कथमेतेषां श्रावकाणां स्थूलप्राणातिपातादिरूपाणुव्रतप्रदाने इतरस्मिन् अनुमतिर्न भवति! भगवता भणितम्—सौम्य! अविधिना भवति, न तु विधिप्रदानेन। श्रेष्ठिना भणितम्—भगवन्! कीदृशं विधिप्रदानम्। भगवता भणितम्—सौम्य! शृणु। शंसित्वा संवेगसारं यथाविधि भवस्वरूपमनवस्थितमेकान्तेन कारणं दुःखपरम्परायाः, तन्निर्घातनसमर्थं चात्यन्तिकरसायनं जीवलोकेऽक्षेपेण साधकं मोक्षस्य यथास्थितं साधुधर्मम्; जनित्वा शुद्धभावपरिणतिं वर्धित्वा संवेगं तथाविधकर्मोदयेनाप्रतिपद्यमानेषु तं श्रावकेषूद्यतेषु अणुव्रतग्रहणे मध्यस्थस्य मुनेः प्रशस्तक्षेत्रादिके आकारादिपरिशुद्धं प्रयच्छतो विधिप्रदानमिति। श्रेष्ठिना भणितम्—भगवन्! एवमपि कथं तस्येतरस्मिन् अनुमतिर्न भवति। भगवता भणितम्—सौम्य! शृणु। गृहपतिचोर(पुत्र)ग्रहणविमोक्षणतया अत्र दृष्टान्तः। अस्ति इह वसन्तपुरं नगरम्, जितशत्रु राजा, धारिणी देवी। नाट्यातिशयेन परितुष्टस्तस्या भर्ता। भणिता च तेन—

अनन्तर भगवान् वाचक की वन्दना कर उनके पास बैठा और उसने कहा—'भगवन्! साधुओं की सावद्ययोगविरति कृत-कारित-अनुमोदना भेद से भिन्न है अतः इन श्रावकों के स्थूल हिंसा के त्यागादिरूप अणुव्रतों के प्रदान करते समय दूसरे सावद्ययोगविरति में अनुमति क्यों नहीं है?' भगवान् ने कहा—'सौम्य! विधिरहित होती है, विधिपूर्वक प्रदान करने से नहीं होती है।' सेठ ने कहा—'भगवन्! विधिपूर्वक प्रदान करना कैसा होता है?' भगवान् ने कहा—'सौम्य! सुनो—विधिपूर्वक विरक्ति के सार की प्रशंसा करके अस्थिर संसार के स्वरूप को जो अत्यन्त रूप से दुःख की परम्परा का कारण है, उसे नष्ट करने में समर्थ और जो संसार में अविनाशी रसायन है तथा मोक्ष का साधक है ऐसे यथास्थित साधुधर्म को शुद्ध भावों की परिणति उत्पन्न कर, वैराग्य बढ़ाकर उस प्रकार के कर्मों के उदय से उस प्रकार के कर्मों को अंगीकार न करने से उन श्रावकों के अणुव्रत ग्रहण में उद्यत होने पर मध्यस्थ मुनि के प्रशस्त क्षेत्रादि में आकर आदि से शुद्ध विधि प्रदान की जाती है।' सेठ ने कहा—'भगवन्! इस प्रकार कैसे उसकी दूसरे में अनुमति नहीं होती है?' भगवान् ने कहा—'सौम्य! सुनो। गृहपति के चोरपुत्र के पकड़ने और छोड़ने का दृष्टान्त है। यहाँ वसन्तपुर नामक नगर है। वहाँ का राजा जितशत्रु था और धारणी महारानी थी। नाट्य के अतिशय से उसके ऊपर पति सन्तुष्ट हुआ और उसने कहा कहो,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतेउराण जहिच्छापयारेण ऊसवपसाओ त्ति। पडिस्सुयमणेण। समागओ सो दियहो। कराविथं राइणा घोसणं, जहा 'जो अज्ज एत्थ पुरिसो वसिहिइ, तस्स मए सारीरो निग्गहो कायव्वो'। उग्गदंडो राय त्ति निग्गया सव्वपुरिसा, नवरं एगस्स सेट्ठिणो छस्सुया संववहारवावडयाए लहु न निग्गया। ढक्कियाओ पओलीओ। भएण तत्थेव निलुक्का। वत्तो रयणीए ऊसवो। बिइयदियहे राइणा पउत्ता चारिगा। हरे गवेसह; को एत्थ न निग्गओ त्ति। तेहिं निउणबुद्धीए गवेसिऊण साहियं रन्नो। महाराय, अमुगसेट्ठिस्स छस्सुया न निग्गय त्ति। कुविओ राया। भणियं च णेण—वावएह ते दुरायारे। गहिया रायपुरिसेहिं, उवणीया वज्झथामं। एयमायण्णिऊण भीओ तेसिं पिया। समागओ नरवइसमीवं। विन्नत्तो राया। देव, खमसु ममेक्कमवराहं मुयह एक्कवारमेए। 'मा अन्ने वि एवं करेस्संति' त्ति न मेल्लेइ राया। पुणो पुणो भण्णमाणेण 'मा कुलखओ भवउ' त्ति मुक्को से जेट्ठपुत्तो। बहुमन्निओ सेट्ठिणा। वावाइया इयरे। न य समभावस्स सव्वेसु एगबहुमन्नणे अणुमई सेसेसु त्ति। एस दिट्ठंतो, इमो इमस्स उवणओ। रायतुल्लो सावओ, वावाइज्जमाणवाणियगसुयतुल्ला जीवनिकाया,

भण, किं ते प्रियं क्रियताम्। तया भणितम्—आर्यपुत्र! कौमुद्यामन्तःपुराणां यथेच्छाप्रकारेणोत्सवप्रसाद इति। प्रतिश्रुतमनेन। समागतः स दिवसः। कारितं राज्ञा घोषणम्, यथा 'योऽद्यात्र पुरुषो वत्स्यति तस्य मया शारीरो निग्रहः कर्तव्यः'। उग्रदण्डो राजेति निर्गताः सर्वपुरुषाः, नवरमेकस्य श्रेष्ठिनः षट् सुताः संव्यवहारव्यापृततया लघु न निर्गताः। स्थगिताः प्रतोल्यः। भयेन तत्रैव गुप्ताः। वृत्तो रजन्यामुत्सवः। द्वितीयदिवसे राज्ञा प्रयुक्ताश्चारिकाः—अरे गवेषयत, कोऽत्र न निर्गत इति। तैर्निपुणबुद्ध्या गवेषयित्वा कथितं राज्ञः—महाराज! अमुकश्रेष्ठिनः षट् सुता न निर्गता इति। कुपितो राजा। भणितं च तेन—व्यापादयत तान् दुराचारान्। गृहीता राजपुरुषैः, उपनीता वध्यस्थानम्। एतदाकर्ण्य भीतस्तेषां पिता। समागतो नरपतिसमीपम्। विज्ञप्तो राजा—देव! क्षमस्व ममैकमपराधम्, मुञ्चतैकवारमेतान्। 'माऽन्येऽप्येवं करिष्यन्ति' इति न मुञ्चति राजा। पुनः पुनर्भण्यमानेन 'मा कुलक्षयो भवतु' इति मुक्तस्तस्य ज्येष्ठपुत्रः। बहुमानितः श्रेष्ठिना। व्यापादिता इतरे। न च समभावस्य सर्वेष्वेकबहुमाननेऽनुमतिः शेषेष्विति। एष दृष्टान्तः। अयमस्योपनयः।

तेरा क्या प्रिय करूँ? उसने कहा—आर्यपुत्र! कौमुदी महोत्सव पर अन्तःपुरवासियों की इच्छानुसार उत्सव करें, ऐसा अनुग्रह कीजिए। इसने स्वीकार किया। वह दिन आया। राजा ने घोषणा करायी कि 'यहाँ आज जो पुरुष निवास करेगा, उसे मैं शारीरिक दण्ड दूँगा।' 'राजा कठोर दण्ड देने वाला है' ऐसा सोचकर सभी पुरुष निकल गये। केवल एक सेठ के छह पुत्र व्यापार में लगे रहने से शीघ्र नहीं निकले। गलियाँ रोक दी गयी थीं। भय से वे वहीं छिप गये। रात्रि में उत्सव हुआ। दूसरे दिन राजा ने दूत भेजे। अरे खोजो, यहाँ कौन नहीं निकला? उन्होंने चतुर बुद्धि से खोजकर राजा से कहा—महाराज! अमुक सेठ के छह पुत्र नहीं निकले। राजा कुपित हुआ और उसने कहा—उन दुराचारियों को मार डालो। राजपुरुषों ने पकड़ लिया, वध करने योग्य स्थान पर ले गये। यह सुनकर उनका पिता डर गया, राजा के पास आया। राजा से निवेदन किया—महाराज! मेरा अपराध क्षमा करो, इन्हें एक बार छोड़ दो। नहीं, अन्य भी ऐसा करेंगे'—इस प्रकार राजा ने नहीं छोड़ा। बार-बार कहे जाने पर 'कुल का विनाश न हो' अतः उसका बड़ा लड़का छोड़ दिया। सेठ ने आदर किया। दूसरे मार डाले गये। सभी के प्रति समभाव होने पर एक को न मारने की आज्ञा का आदर करने में शेष को मार डालने की अनुमति नहीं है—यह दृष्टान्त है। इसकी उपलब्धि यह है। श्रावक राजा के तुल्य है। मारे जानेवाले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाणियगतुल्लो साहू, बिन्नवणतुल्ला अणुव्वयगहणकाले साहुधम्मदेसणा। एवं च सुहुमजीवनिकाय-अमुयणे वि सावयस्स न तेसु साहुणो अणुमई, इयरहा होइ अविहिनिप्फन्न । एवं सव्वत्थ अविहिनिप्फन्नो दोसो। अओ चेव भयवया भणियं—पढम नाण तओ दय त्ति। नाणपुव्वयं सव्वमेव सम्माणुट्ठाणं ति। एयमायण्णिऊण हरिसिओ धणरिद्धो। भणियं च णेण—भयवं, एवमयं, अहो सुदिट्ठो भयवं तेहिं धम्मो।

एत्थतरम्मि पुव्वागएणेव पणमिऊण भयवंतं भणियं असोयचंदेण। भयवं, जे खलु इह थेवस्स वि पमायचेट्ठियस्स दारुणविवागा सुणीयंति, ते किं तहेव उदाहु अन्नहा। भयवया भणियं- सोम, सुण। जे आगमभणिया ते तहेव; जओ न अन्नहावाइणो जिणा। जं उण आगमबाहिरा, तेसु जइच्छ त्ति। असोयचंदेण भणियं—भयवं, जइ एवं, ता कीस केसिंचि पाणवहाइकिरियापवत्ताण अच्चंत-विरुद्धकारीण वि इट्ठत्थसंपत्ती विउला भोगा दीहमाउयं अतुट्टो य तयणुबंधो; अन्नेसि च थेवे वि अवराहे सव्वविवज्जओ त्ति। भयवया भणियं—सोम, सुण। विचित्ता कम्मपरिणई। जे खलु

राजतुल्यः श्रावकः, व्यापाद्यमानवाणिजकसुततुल्या जीवनिकायाः, वाणिजकतुल्यः साधुः विज्ञापन-तुल्या अणुव्रतग्रहणकाले साधुधर्मदेशना। एवं च सूक्ष्मजीवनिकायामोचनेऽपि श्रावकस्य न तेषु साधोरनुमतिः, इतरथा भवत्यविधिनिष्पन्ना। एवं सर्वत्राविधिनिष्पन्नो दोषः। अत एव भगवता भणितम्—प्रथमं ज्ञानं ततो दयेति। ज्ञानपूर्वकं सर्वमेव सम्यगनुष्ठानमिति। एतदाकर्ण्य हर्षितो धनऋद्धिः। भणितं च तेन—भगवन्! एवमेतद्, अहो सुदृष्टो भगवद्भिर्धर्मः।

अत्रान्तरे पूर्वागतेनैव प्रणम्य भगवन्तं भणितमशोकचन्द्रेण—भगवन्! ये खल्विह स्तोकस्यापि प्रमादचेष्टितस्य दारुणविपाकाः श्रूयन्ते, ते किं तथैव उताहो अन्यथा। भगवता भणितम्—सौम्य! शृणु। ये आगमभणितास्ते तथैव, यतो नान्यथावादिनो जिनाः। ये पुनरागमबाह्यास्तेषु यदृच्छेति। अशोकचन्द्रेण भणितम्—भगवन्! यद्येवम्, ततः कस्मात् केषांचित् प्राणवधादिक्रियाप्रवृत्तानामत्यन्त-विरुद्धकारिणामपि इष्टार्थसम्प्राप्तिर्विपुला भोगा दीर्घमायुरत्रुटिश्च तदनुबन्धः, अन्येषां च स्तोकेऽप्यपराधे सर्वविपर्यय इति। भगवता भणितम्—सौम्य! शृणु। विचित्रा कर्मपरिणतिः। ये खल्व-

वणिक्पुत्रों के समान जीवसमूह है, साधु वणिक् के समान है। अणुव्रत ग्रहण करते समय साधु का धर्मोपदेश निवेदन के तुल्य है। इस प्रकार सूक्ष्म जीवों का समूह न छोड़ने पर भी श्रावक के लिए उनके विषय में साधु की अनुमति नहीं है। दूसरे प्रकार से अविधि की निष्पत्ति होती है। इस प्रकार सब जगह अविधि की निष्पत्ति का दोष है। अत एव भगवान् ने कहा है—पहले ज्ञान हो तब दया। ज्ञानपूर्वक सभी धार्मिक विधि-विधान ठीक होते हैं। यह सुनकर धनऋद्धि हर्षित हुआ और उसने कहा—'भगवन्! यह ठीक है, ओह! भगवान् ने धर्म भली-भाँति देखा (जाना) है।

इसी बीच मानो पहले आये हुए होने से अशोकचन्द्र ने भगवान् को प्रणाम कर कहा—'भगवन्! जो कि यहाँ थोड़े से भी प्रमाद करने के भयंकर फल सुने जाते हैं, क्या वे वैसे ही हैं अथवा दूसरे प्रकार से हैं?' भगवान् ने कहा—'सौम्य! सुनो। जो आगम में कहे गये हैं, वैसे ही हैं; क्योंकि जिन अन्यथा कहनेवाले नहीं होते हैं। जो आगमबाह्य हैं उनमें इच्छानुसार नियम है।' अशोकचन्द्र ने कहा – 'भगवन्! यदि ऐसा है तो कैसे किन्हीं प्राणि-वध आदि क्रियाओं में लगे हुए अत्यन्त विरुद्ध कार्य करनेवालों के इष्ट पदार्थों की प्राप्ति होती है और वह सिल-सिला नष्ट नहीं होता है; और दूसरे व्यक्तियों के थोड़े से अपराध पर सब विपरीत हो जाता है?' भगवान् ने कहा—'सौम्य! सुनो। कर्म की परिणति विचित्र है। जो अशुभबन्ध वाले कर्मों से युक्त, संसार का अभिनन्दन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकुसलाणुबंधिकम्मजुत्ता संसाराहिणंदिणो खुद्दसत्ता दोग्गइगामिणो कल्लाणपरंमुहा भायणं अणत्थाणं, तेसिं खलु अकुसलपवत्तीए पावभरसंपूरणत्थं इट्ठत्थसंपत्ताइ संजायए, विवरीयाणं तु भणियभावविवरीयभावओ सव्वविवज्जओ त्ति। असोयचंदेण भणियं—भयवं, एवमेयं। अहो मे अवणीओ मोहो भयवया।

एत्यंतरम्मि पुव्वागएणेव पणमिऊण भयवंतं भणियं तिलोयणेण—भयवं अभयदाणोवट्ठंभदाणाण ओघओ किं पहाणयरं ति। भयवया भणियं—सोम, सुण। अभयदाणं। रायपत्तिचोरग्गहणविमोक्खणयाए एत्थ दिट्ठंतो। अत्थि इहेव बम्भउरं नयरं, कुसद्धओ राया, कमलुया महादेवी, ताराबलिप्पमुहाओ अन्नदेवीओ। अन्नया य राया वायायणोवविट्ठो समं कमलुयापमुहाहिं चउहिं अग्गमहिसीहिं अक्खजूयविणोएण चिट्ठइ, जाव अणेयकसाघायदूमियदेहो बद्धो पयंडरज्जूए दंडवासिएण आणीओ तक्करो। भणियं च णेण—देव, कयमणेण परदव्वावहरणं ति। राइणा भणियं—वावाएहि एयं। पयट्टाविओ दंडवासिएण वज्झभूमिं। तओ पाणवल्लहयाए अवलोइऊण दीणवयणेण दिसाओ

कुशलानुबन्धिकर्मयुक्ताः संसाराभिनन्दिनः क्षुद्रसत्त्वा दुर्गतिगामिनः कल्याणपराङ्मुखा भाजनमनर्थानाम्, तेषां खल्वकुशलप्रवृत्त्या पापभरसम्पूरणार्थमिष्टार्थसम्प्राप्त्यादि संजायते, विपरीतानां तु भणितभावविपरीतभावतः सर्वविपर्यय इति। अशोकचन्द्रेण भणितम्—भगवन्! एवमेतद्। अहो मेऽपनीतो मोहो भगवता।

अत्रान्तरे पूर्वागतेनैव प्रणम्य भगवन्तं भणितं त्रिलोचनेन—भगवन्! अभयदानोपष्टम्भदानयोरोघतः किं प्रधानतरमिति। भगवता भणितम्—सौम्य! शृणु। अभयदानम्। राजपत्नीचोरग्रहणविमोक्षणतयाऽत्र दृष्टान्तः। अस्तीहैव ब्रह्मपुरं नगरम्, कुशध्वजो राजा, कमलुका महादेवी, तारावलीप्रमुखा अन्यदेव्यः। अन्यदा च राजा वातायनोपविष्टः समं कमलुकाप्रमुखाभिश्चतसृभिरग्रमहिषीभिरक्षद्यूतविनोदेन तिष्ठति, यावदनेककशाघातदूनदेहो बद्धः प्रचण्डरज्ज्वा दण्डपाशिकेनानीतस्तस्करः। भणितं च तेन—देव! कृतमनेन परद्रव्यापहरणमिति। राज्ञा भणितम्—व्यापादयैतम्। प्रवर्तितो दण्डपाशिकेन वध्यभूमिम्। ततः प्राणवल्लभतयाऽवलोक्य दीनवदनेन दिश

करनेवाले, दुर्गति में जानेवाले, कल्याण से पराङ्मुख और अनर्थों के पात्र क्षुद्र प्राणी हैं, निश्चित रूप से उन्हें पाप के समूह की पूर्ति के लिए इष्ट पदार्थों की प्राप्ति आदि हो जाती है और जो विपरीत होते हैं उनके कथित भावों से विपरीत भाव होने के कारण सब विपरीत होता है।' अशोकचन्द्र ने कहा—'भगवन्! यह ऐसा ही है। ओह! मेरा मोह भगवान् ने दूर कर दिया।'

इसी बीच मानो पहले से आये हुए त्रिलोचन ने प्रणाम कर भगवान् से कहा—'भगवन्! अभयदान और वस्तुदान में सम्पूर्ण रूप से कौन अधिक प्रधान है?' भगवान् ने कहा—'सौम्य! अभयदान प्रधान है। राजपत्नी के चोरी में पकड़ने और छोड़ने का यहाँ दृष्टान्त है—यहीं ब्रह्मपुर नगर है। वहाँ कुशध्वज राजा और कमलुका महारानी थी, तारावली प्रमुख अन्य महारानियाँ थीं। एक बार राजा खिड़की में कमलुका प्रमुख चार पटरानियों के साथ द्यूतक्रीड़ा करता हुआ बैठा था। तभी अनेक कोड़ों के मारने से दुःखी शरीरवाले, बड़ी रस्सी से बँधे एक चोर को कोतवाल लाया और उसने (कोतवाल ने) कहा—महाराज! इसने दूसरे के धन का अपहरण किया है। राजा ने कहा—इसे मार डालो। कोतवाल उसे बाह्यभूमि में ले गया। अनन्तर प्राण प्यारे होने के कारण दीनमुख हो दिशाओं की ओर देखकर वह चिल्लाया—ओह! पहले पहल चोरी करनेवाला, मनोरथ को प्राप्त न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अक्कंदियमणेण । अहो पढमचोरकारी असंपत्तमणोरहो वावाइज्जामि अहन्नो त्ति । एयमायण्णिऊण सोगियाओ देवीओ। विन्नत्तो ताहिं राया। अज्जउत, मा असंपत्तमणोरहो वावाइज्जउ, अज्ज-उत्तपसाएण करेमो किंपि एयस्स । अणुमयं राइणा, भणियं 'करेह'। तओ एगाए मोयाविऊण अब्भंगाविओ सहस्सपागेण, मद्दाविओ सप्पओयं, ण्हाविओ गंधोयगाईहि, दिन्नं खोमजुयलं। लग्गा दस सहस्सा। भणिओ य तीए—एत्तियगो मे विहवो त्ति। अन्नाए कराविओ आसवपाणं, भक्खाविओ विलंके, विलिपाविओ जक्खकद्दमेणं, दिन्नं कडिसुत्तयं। परिच्चाओ वीसं सहस्साइं। भणिओ य तीए—एत्तियगो मे विहवो त्ति। अन्नाए भुंजाविओ कामियं, पायाविओ दक्खापाणगाइं, भूसाविओ दिव्वाहरणेहिं, दिन्नं तंबोलं। लग्गो एत्थ लक्खो। भणिओ य तीए—एत्तियगो मे विहवो त्ति। मउलिया कमलुया, भणिया नरिंदेण—न देसि तुमं किंचि। तीए भणियं—अज्जउत्त, नत्थि मे विहवो एयस्स सुंदरयरदाणे। राइणा भणियं—जीवलोयसारभूया मे तुमं, पहवसि मम पाणाणं पि; ता कहं नत्थि। तीए भणियं—अज्जउत्त, महापसाओ; जइ एवं, ता देमि किंचि

आक्रन्दितमनेन। अहो प्रथमचौर्यकारी असम्प्राप्तमनोरथो व्यापाद्येऽधन्य इति। एतदाकर्ण्य शोकिता देव्यः। विज्ञप्तस्ताभी राजा—आर्यपुत्र! मा असम्प्राप्तमनोरथो व्यापाद्यताम्, आर्यपुत्रप्रसादेन कुर्मः किमप्येतस्य। अनुमतं राज्ञा, भणितं 'कुरुत'। तत एकया मोचयित्वाऽभ्यङ्क्तिः सहस्रपाकेन, मर्दितः सप्रयोगम्, स्नपितो गन्धोदकादिभिः, दत्तं क्षौमयुगलम्। लग्नानि दश सहस्राणि। भणितश्च तया—एतावान् मे विभव इति। अन्यया कारित आसवपानम्, भक्षितो विलकान् (भोजनानि ?), विलेपितो यक्षकर्दमेन, दत्तं कटिसूत्रकम्। परित्यागो विंशतिः सहस्राणि। भणितश्च तया—एतावान् मे विभव इति। अन्यया भोजितः कामितम्, पायितो द्राक्षापानकानि, भूषितो दिव्याभरणैः, दत्तं ताम्बूलम्। लग्नोऽत्र लक्षः। भणितश्च तया—एतावान् मे विभव इति। मुकुलिता कमलुका, भणिता नरेन्द्रेण—न ददासि त्वं किञ्चित्। तया भणितम्—आर्यपुत्र! नास्ति मे विभव एतस्य सुन्दरतरदाने। राज्ञा भणितम्—जीवलोकसारभूता मे त्वम्, प्रभवसि मम प्राणानापि, ततः कथं नास्ति। तया भणितम्—आर्यपुत्र! महाप्रसादः, यद्येव ततो ददामि किञ्चिदहमार्यपुत्रानुमत्या।

करनेवाला अधन्य (मैं) मारा जाऊँगा। यह सुनकर देवियों को शोक हुआ। उन्होंने राजा से निवेदन किया—आर्यपुत्र! मनोरथ को न प्राप्त करनेवाले को मत मारो, आर्यपुत्र! इस पर कृपा करो। राजा ने अनुमति दे दी, कहा—करो। तब एक ने छुड़ाकर सहस्रपाक का लेप किया, भली-भाँति मर्दन किया, गन्धोदक आदि से नहलाया, रेशमी वस्त्र का जोड़ा दिया। दस हजार (मुद्राएँ) दीं। उसने (रानी ने) कहा—मेरा वैभव इतना है। दूसरी ने मद्यपान कराया, भोजन खिलाया, यक्षकर्दम (केसर, अगर, कपूर और कस्तूरी का समभाग मिश्रण) का विलेपन कराया, कटिसूत्र (करधनी) दी। बीस हजार स्वर्ण मुद्राओं का त्याग किया और उसने कहा—मेरा वैभव इतना है। (एक) दूसरी ने इष्ट भोजन कराया, अंगूर का रस पिलाया, दिव्य आभरणों से विभूषित किया, पान दिया। यहाँ उस चोर के एक लाख दीनारें हाथ लगीं। उस रानी ने कहा—मेरा वैभव इतना ही है। कमलुका फीकी पड़ गयी। राजा ने कहा—तुम कुछ नहीं देती हो। उसने कहा—इसके लिए अत्यधिक सुन्दर दान करने का वैभव मेरे पास नहीं है। राजा ने कहा—तुम मेरे लिए संसार की सारभूत वस्तु हो, मेरे प्राणों से भी अधिक प्यारी हो, अतः कैसे तुम्हारे पास वैभव नहीं है? उसने कहा—आर्यपुत्र! बड़ी कृपा की। यदि ऐसा है तो मैं आर्यपुत्र की अनुमति से कुछ देती हूँ। राजा ने कहा—ऐसा ही करो। उसने (कमलुका ने) चोर से कहा—भद्र!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहं अज्जउत्ताणुमईए। राइणा भणियं—एवं करेहि। भणिओ य तीए चोरो। भद्द, दिट्ठो तए अकज्जबीयतरुकुसुमुग्गमो। तेण भणियं—सामिणि, सुट्ठु दिट्ठो, अओ चेव संजायपच्छायावो विरओ अहं जावज्जीवमेवाकज्जायरणस्स। देवीए भणियं—जइ एवं, ता दिन्नं मए इमस्स अभयं। राइणा भणियं—सुदिन्नं ति। हरिसिओ चोरो, मोइयं सुंदरयरं ति। परितुट्ठा कमलुया। हसियं सेसदेवीहिं। महादेवीए भणियं—किमिमिणा हसिएण; एयं चेव पुच्छह, किमेत्थ सुंदरयरं ति। पुच्छिओ चोरो। भणियं च णेण—मरणभयाहिभूएण न नायं मए सेस ति न याणामि विसेसं। संपयं पुण सुहिओ म्हि। एवमेयं ति पडिवन्नं सेसदेवीहिं। एसेव एत्थुवणओ त्ति। हरिसिओ तिलोयणो, भणियं च णेण—भयवं, एवमेयं।

एत्थंतरम्मि समागया कालवेला, गओ सावयजणो, पारद्धं भयवया उचियकरणिज्जं। एवं च नाणादेसेसु सफलं विहरमाणस्स अईओ कोइ कालो। अन्नया य समागओ अवंतिजणवयं। जाया सिस्सनिप्फत्ति त्ति विसिट्ठजोयाराहणत्थं भावणाविहाणम्मि रफवाहसन्निवेसाओ नाइदूरम्मि चेव विवित्ते असोयउज्जाणे ठिओ समराइच्चवायगो पडिमं ति। दिट्ठो य किलिट्ठकम्मसंगएण गिरिसेणेण,

---

राज्ञा भणितम्—एवं कुरु। भणितश्च तया चौरः—भद्र! दृष्टस्त्वयाऽकार्यबीजतरुकुसुमोद्गमः। तेन भणितम्—स्वामिनि! सुष्ठु दृष्टः, अत एव सञ्जातपश्चात्तापो विरतोऽहं यावज्जीवमेवाकार्याचरणात्। देव्या भणितम्—यद्येवं ततो दत्तं मयाऽस्याभयम्। राज्ञा भणितम्—सुदत्तमिति। हर्षितश्चौरः, मोदितं सुन्दरतरमिति। परितुष्टा कमलुका। हसितं शेषदेवीभिः। महादेव्या भणितम्—किमनेन हसितेन, एतमेव पृच्छत, किमत्र सुन्दरतरमिति। पृष्टश्चौरः। भणितं च तेन—मरणभयाभिभूतेन न ज्ञातं मया शेषमिति न जानामि विशेषम्। साम्प्रतं पुनः सुखितोऽस्मि। एवमेतदिति प्रतिपन्नं शेषदेवीभिः। एष एवात्रोपनय इति। हर्षितस्त्रिलोचनः, भणितं च तेन—भगवन्! एवमेतद्।

अत्रान्तरे समागता कालवेला, गतः श्रावकजनः, प्रारब्धं भगवतोचितकरणीयम्। एवं च नानादेशेषु सफलं विहरतोऽतीतः कोऽपि कालः। अन्यदा च समागतोऽवन्तीजनपदम्। जाता शिष्यनिष्पत्तिरिति विशिष्टयोगाराधनार्थं भावनाविधाने रफवाहसन्निवेशाद् नातिदूरे एव विविक्तेऽशोकोद्याने स्थितः समरादित्यवाचकः प्रतिमायामिति। दृष्टश्च क्लिष्टकर्मसंगतेन गिरिषेणेन, 'प्रभूतं

तुमने अकार्यरूपी बीज का वृक्ष और फूलों का निकलना देख लिया। उसने कहा—स्वामिनी! भली-भाँति देख लिया अतएव उत्पन्न हुए पश्चात्ताप वाला मैं जीवन-भर के लिए अकार्य का आचरण करने से विरत होता हूँ। महारानी ने कहा—यदि ऐसा है तो मैं इसे अभय देती हूँ। राजा ने कहा—ठीक किया। चोर हर्षित हुआ, अनुमोदन किया—अत्यधिक सुन्दर है। कमलुका सन्तुष्ट हुई। शेष महारानियाँ हँसीं। महादेवी ने कहा—इस हँसने से क्या, इसी से पूछो—यहाँ अत्यधिक सुन्दर क्या है? चोर से पूछा तो उसने कहा—मरण के भय से अभिभूत होकर मैंने शेष नहीं जाना, अतः विशेष नहीं जानता हूँ। इस समय पुनः सुखी हूँ। यह ठीक है, इस प्रकार शेष महारानियों ने स्वीकार किया। यही यहाँ उपलब्धि है। त्रिलोचन हर्षित हुआ और उसने कहा—'भगवन्! यह ठीक है।'

इसी बीच समय हो गया, श्रावकजन चले गये, भगवान् ने योग्य कार्यों को प्रारम्भ किया। इस प्रकार अनेक देशों में सफल विहार करते हुए कुछ समय बीत गया। एक बार अवन्ती जनपद में आये। शिष्य परिपक्व हुए अतः विशिष्ट योग की आराधना के लिए रफवाह सन्निवेश के समीप शून्य अशोक उद्यान में समरादित्य वाचक प्रतिमायोग से चिन्तन में तल्लीन होकर स्थित हो गये। बुरे कर्मों से युक्त गिरिषेण ने देखा। 'बहुत काल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'पहूयं कालं हिंडाविओ' त्ति अच्चंतकुविएण रोद्दज्झाणवत्तिणा चिंतियं च णेण—एस एत्थ पत्थावो, न पुण एयारिसो संजायइ; ता वावाएमि एयं दुरायारं, पूरेमि अत्तणो मणोरहे; तहा य वावाएमि, जहा महंतं दुक्खमणुहवइ पावो त्ति। तओ सिग्घमेव कुओइ आणिऊण वेढिओ जरचीरेहिं, सित्तो अयसितेल्लेण, लाइओ अग्गी। भयवया पवड्ढमाणजोयाइसएण न वेइयं सव्वमेयं। पयत्ते य दाहे जाओ झाणसंकमो। चिंतियं च णेण – हंत किमेयं ति। अहो दारुणो भावो। पडिवन्नो कस्सइ अहं अणत्थहेउभावं। अहवा अलमिमिणा चिंतिएणं। सामाइयं एत्थ पवरं। नियत्तिया चिंता, ठिओ विसुद्धज्झाणे, परिणओ जोओ, जायं महासामाइअं, पवत्तमउव्वकरणं, उल्लसिया खवगसेढी, वियंभियं जीववीरियं, निहया कम्मसत्ती, वड्ढिओ झाणाणलो, दड्ढं मोहिंधणं, पावियाओ लद्धीओ, जायं जोगमाहप्पं; विसोहिओ अप्पा, ठाविओ परमजोए, खवियं घाइकम्मं, उप्पाडियं केवलणाणं ति।

एत्थंतरम्मि भयवओ पहावेण अहासन्नखेत्तवत्ती चलियासणो समाणो आहोइऊण ओहिणा घेत्तूण कुसुमनियरं जइणयरीए गईए अणेगदेवयापरियरिओ महया पमोएण आगओ वेलंधरो।

कालं हिण्डितः' इत्यत्यन्तकुपितेन रौद्रध्यानवर्तिना चिन्तितं च तेन—एषोऽत्र प्रस्तावो (अवसरः) न पुनरेतादृशः संजायते, ततो व्यापादयाम्येतं दुराचारम्, पूरयाम्यात्मनो मनोरथान्, तथा च व्यापादयामि यथा महद् दुःखमनुभवति पाप इति। ततः शीघ्रमेव कुतश्चिदानीय वेष्टितो जरच्चीवरैः, सिक्तोऽतसीतैलेन, लगितोऽग्निः। भगवता प्रवर्धमानयोगातिशयेन न वेदितं सर्वमेतद्। प्रवृत्ते च दाहे जातो ध्यानसंक्रमः। चिन्तितं च तेन—हन्त किमेतदिति। अहो दारुणो भावः। प्रतिपन्नः कस्यचिदनर्थहेतुभावम्। अथवा अलमनेन चिन्तितेन। सामायिकमत्र प्रवरम्। निवर्तिता चिन्ता, स्थितो विशुद्धध्याने, परिणतो योगः, जातं महासामायिकम्, प्रवृत्तमपूर्वकरणम्, उल्लसिता क्षपकश्रेणिः, विजृम्भितं जीववीर्यम्, निहता कर्मशक्तिः, वर्धितो ध्यानानलः, दग्धं मोहेन्धनम्, प्राप्ता लब्धयः, जातं योगमाहात्म्यम्, विशोधित आत्मा, स्थापितः परमयोगे, क्षपितं घातिकर्म, उत्पादितं केवलज्ञानमिति।

अत्रान्तरे भगवतः प्रभावेण यथासन्नक्षेत्रवर्ती चलितासनः सन् आभोग्यावधिना गृहीत्वा कुसुमनिकरं जवनतर्या गत्याऽनेकदेवता परिवृतो महता प्रमोदेनागतो वेलन्धरः। प्रणतो भगवान्,

घूमा' इस प्रकार अत्यन्त कुपित होकर रौद्र ध्यान से युक्त हो उसने सोचा – यह यहाँ अवसर है। बाद में ऐसा नहीं मिल सकता अतः इस दुराचारी को मारता हूँ, अपना मनोरथ पूर्ण करता हूँ, उस प्रकार मारूँगा जिसमें पापी बहुत अधिक दुःख का अनुभव करे। अतः शीघ्र ही कहीं से पुराने कपड़े लाकर लपेट दिये, अलसी का तेल सींचा, आग लगा दी। बढ़ते हुए योग की अतिशयता वाले भगवान् ने यह सब नहीं जाना। अग्नि जलने पर ध्यान में परिवर्तन हुआ। उन्होंने सोचा – खेद है, यह क्या ? ओह भाव दारुण है। कोई मेरे अनर्थ के कारण रूप भावों में लग गया अथवा ऐसा विचार करने से बस अर्थात् यह सोचना व्यर्थ है। यहाँ पर सामायिक उत्कृष्ट है। चिन्ता दूर हुई, विशुद्ध ध्यान में स्थित हुए, योग परिणत हुआ, महासामायिक उत्पन्न हुआ, अपूर्वकरण प्रवृत्त हुआ, क्षपकश्रेणि सुशोभित हुई, आत्मशक्ति बढ़ी, कर्म की शक्ति मारी गयी, ध्यानरूपी अग्नि बढ़ी, लब्धियाँ प्राप्त कीं, योग का माहात्म्य उत्पन्न हुआ, आत्मा की शुद्धि की, परमयोग में स्थापित किया, घातिया कर्मों का नाश किया, केवलज्ञान उत्पन्न किया।

इसी बीच भगवान् के प्रभाव से समीप स्थानवर्ती आसन हिलने पर अवधिज्ञान से जानकर, फूलों का समूह लेकर अत्यधिक तेज गति से अनेक देवताओं के साथ अत्यधिक प्रसन्न होकर वेलन्धर आया। भगवान् को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पणमिओ भयवं, पाडिया कुसुमवुट्ठी, विज्झविओ हुयासणो, अवणीयाइं चीराइं। हंत किमेयं ति संखुद्धो गिरिसेणो। भणिओ वेलंधरेण -अरे रे दुरायार महापावकम्म अणज्ज पुरिसाहम अदट्ठव्व सोयणिज्ज, किं तए इमं ववसियं। एत्थंतरम्मि य तओ नाइदूरदेसवत्ती समागओ मुणिचंदराया नम्मयापमुहाओ देवीओ महासामंता य। दिट्ठो य णेहिं भयवं, वंदिओ परमभत्तीए। पुच्छिओ वेलंधरो। अज्ज, किमेयं ति। वेलंधरेण भणियं—महाराय, अप्पणो ऽवगाराय इमिणा अणज्जेण अजायसत्तुणो अमयभूयस्स भयवओ एवं जलणदाणपओएण पाणंतियं अज्झवसियं। राइणा भणियं—अहह अहो मोहसामत्थं, अज्ज, अइदारुणमज्झवसियं। अह किं पुण इमस्स अज्झवसायस्स कारणं। चंदसोमलेसो भयवं वच्छलो सव्वजीवाण निबंधणं पमोयस्स अणुप्पायओ पीडाए त्ति। वेलंधरेण भणियं—महाराय, न खलु अहमेत्थ कारणमवगच्छामि, एत्तियं पुण तक्केमि। असुहकम्मोदयओ अणेयदुक्खहेऊ कुगइनिवाससबंधवो अणंतसंसारकारणं एयस्स। अन्नहा कहमीइसमज्झवस्सइ। राइणा भणियं—अज्ज, एवमेयं; तहावि भयवंतं पुच्छम्ह। वेलंधरेण भणियं— महाराय, एवं।

पातिता कुसुमवृष्टिः, विध्यापितो हुताशनः, अपनीतानि चीवराणि। हन्त किमेतदिति संक्षुब्धो गिरिषेणः। भणितो वेलन्धरेण—अरेरे दुराचार ! महापापकर्मन् ! अनार्य ! पुरुषाधम ! अद्रष्टव्य ! शोचनीय ! किं त्वयेदं व्यवसितम्। अत्रान्तरे च ततो नातिदूरदेशवर्ती समागतो मुनिचन्द्रराजो नर्मदाप्रमुखा देव्यो महासामन्ताश्च। दृष्टश्च तैर्भगवान्, वन्दितः परमभक्त्या। पृष्टो वेलन्धरः—आर्य ! किमेतदिति। वेलन्धरेण भणितम्—महाराज ! आत्मनोऽपकारायानेनानार्येण अजातशत्रोरमृतभूतस्य भगवत एवं ज्वलनदानप्रयोगेण प्राणान्तिकमध्यवसितम्। राज्ञा भणितम्—अहह अहो मोहसामर्थ्यम्, आर्य ! अतिदारुणमध्यवसितम्। अथ किं पुनरस्याध्यवसायस्य कारणम्। चन्द्रसौम्यलेश्यो भगवान् वत्सलः सर्वजीवानां निबन्धनं प्रमोदस्यानुत्पादकः पीडाया इति। वेलन्धरेण भणितम्—महाराज ! न खलु अहमत्र कारणमवगच्छामि, एतावत् पुनः तर्कये। अशुभकर्मोदयोऽनेकदुःखहेतुः कुगतिनिवासबान्धवोऽनन्तसंसारकारणमेतस्य। अन्यथा कथमीदृशमध्यवस्यति। राज्ञा भणितम्—आर्य ! एवमेतद्, तथापि भगवन्तं पृच्छामः। वेलन्धरेण भणितम्—महाराज ! एवम्।

प्रणाम किया, फूलों की वर्षा की, आग बुझायी, वस्त्र हटाये। हाय यह क्या, इस प्रकार गिरिषेण क्षुब्ध हुआ। वेलन्धर ने कहा—'अरे रे दुराचारी ! महापापी ! अनार्य ! अधम पुरुष ! न देखने योग्य ! शोक करने योग्य ! तूने यह क्या किया ?' इसी बीच समीपस्थानवर्ती मुनिचन्द्र राजा, नर्मदा प्रमुख महारानियाँ और महासामन्त आये। उन्होंने भगवान् के दर्शन किये और अत्यधिक भक्ति से युक्त हो वन्दना की। वेलन्धर से पूछा 'आर्य ! यह क्या ?' वेलन्धर ने कहा—'महाराज ! अपने अपकार के लिए इस अनार्य ने अजातशत्रु, अमृततुल्य भगवान् को आग लगाकर उनके प्राणों का अन्त करने का प्रयास किया।' राजा ने कहा—'हा हा, ओह मोह का सामर्थ्य, आर्य ! अत्यन्त भयंकर कार्य किया। इसके इस प्रयास का क्या कारण है ? भगवान् चन्द्रमा के समान शुभलेश्या वाले, सभी प्राणियों से प्रेम करनेवाले, आनन्द के कारण और पीड़ा को न उत्पन्न करनेवाले हैं।' वेलन्धर ने कहा—'महाराज ! मैं यहाँ कारण नहीं जानता हूँ, किन्तु इतना अनुमान करता हूँ कि अशुभ कर्मों का उदय अनेक दुःखों का कारण, कुगति में निवास करने का बान्धव और इस संसार का करण है, नहीं तो ऐसा प्रयास कैसे करता ?' राजा ने कहा—'आर्य ! यह सच है, फिर भी भगवान् से पूछ रहा हूँ।' वेलन्धर ने कहा—'महाराज ! ऐसा ही है।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एत्थंतरम्मि भयवओ केवलमहिमानिमित्तं महया देववंद्रेण एरावणारूढो वज्जंतेणं दिव्व-तूरेणं गायंतेहिं किन्नरेहिं नच्चंतेणं अच्छरालोएणं महापमोयसंगओ आगओ देवराया। सोहियं धरणि-पीढं, संपाडिया समया, सित्तं गंधोदएण, कओ कुसुमोवयारो, निविट्ठं कणयपउमं, आणंदिया देवा, हरिसियाओ देवीओ। उवविट्ठो भयवं। वंदिओ देवराइणा। भणियं च— कयत्थो सि भयवं, ववगओ ते मोहो, नियत्ता संकिलेसा, विणिज्जिओ कम्मसत्तू, पाविया केवलसिरी, उवगियं भवियाण, तोडिया भववल्ली, पावियं सिवपयं ति। एवं संथुओ भावसारं। एयमायण्णिय 'अहो भगवओ सिद्धमहिल-सियं' ति आणंदिओ मुणिचंदो देवीओ सामंता य। वंदिओ य णेहिं पुणो पुणो भत्तिबहुमाणसारं। एत्थंतरम्मि पगाइया किन्नरा, पनच्चियाओ अच्छराओ, पवत्ता केवलमहिमा, जाओ महापमोओ, समागया जणवया।

एत्थंतरम्मि 'अहो महाणुभावया एयस्स, असोहणं च मए कयं' ति चिंतिऊण अविखविय कुसलपक्खबीयं अवगओ गिरिसेणपाणो। एस समओ त्ति पत्थुया धम्मदेसणा। भणियं च भयवया—

अत्रान्तरे भगवतः केवलमहिमानिमित्तं महता देववन्द्रेण ऐरावणारूढो वाद्यमानेन दिव्य-तूर्येण गायद्भिः किन्नरैर्नृत्यताऽप्सरोलोकेन महाप्रमोदसङ्गतो देवराजः। शोधितं धरणीपीठम्, सम्पादिता समता, सिक्तं गन्धोदकेन, कृतः कुसुमोपचारः, निविष्टं कनकपद्मम्, आनन्दिता देवाः, हर्षिता देव्यः। उपविष्टो भगवान्। वन्दितो देवराजेन, भणितं च—कृतार्थोऽसि भगवन्!, व्यपगतस्ते मोहः, निवृत्ताः संक्लेशाः, विनिर्जितः कर्मशत्रुः, प्राप्ता केवलश्रीः, उपकृतं भविकानाम्, त्रोटिता भववल्ली, प्राप्तं शिवपदमिति। एवं संस्तुतो भावसारम्। एतदाकर्ण्य 'अहो भगवतः सिद्धमभिल-षितम्' इत्यानन्दितो मुनिचन्द्रो देव्यः सामन्ताश्च। वन्दितश्च तैः पुनः पुनर्भक्तिबहुमानसारम्। अत्रान्तरे प्रगीताः किन्नराः, प्रनर्तिताः अप्सरसः, प्रवृत्ता केवलमहिमा, जातो महाप्रमोदः, समागता जनव्रजाः।

अत्रान्तरे 'अहो महानुभावता एतस्य, अशोभनं च मया कृतम्' इति चिन्तयित्वा आक्षिप्य कुशलपक्षबीजमपगतो गिरिषेणप्राणः। एष समय इति प्रस्तुता धर्मदेशना। भणितं च भगवता—भो

इसी बीच भगवान् के केवलज्ञान महोत्सव के लिए बड़े देवसमूह के साथ, ऐरावत हाथी पर सवार हो अत्यधिक आनन्द से युक्त होकर इन्द्र आया। उस समय दिव्य बाजे बज रहे थे, किन्नर गा रहे थे (तथा) अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं। पृथ्वी का पृष्ठ भाग शोधा, भूमि एक-सी कर दी, गन्धोदक से सींचा, फूलों को सजाया, स्वर्णकमल स्थापित किये, देव आनन्दित हुए, देवियाँ हर्षित हुईं। भगवान् विराजमान हुए। इन्द्र ने वन्दना की और कहा—'भगवन्! आप कृतार्थ हैं, आपका मोह नष्ट हो गया, दुःख दूर हो गये, कर्मरूपी शत्रु को जीत लिया, केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी प्राप्त कर ली, भव्यों का उपकार किया, संसाररूपी लता तोड़ दी, मोक्ष पद प्राप्त किया।' इस प्रकार भावनाओं के साररूप स्तवन किया। यह सुनकर 'ओह भगवान् की अभिलाषा सिद्ध हो गई'—इस प्रकार मुनिचन्द्र, महारानियाँ और सामन्त आनन्दित हुए। उन्होंने बार-बार भक्ति और आदर के साथ वन्दना की। इसी बीच किन्नरों ने गान किया, अप्सराओं ने नृत्य किया, केवलज्ञान महोत्सव हुआ बहुत आनन्द हुआ, जनसमूह उमड़ पड़ा।

तभी 'ओह, इसकी महानुभावता, मैंने बुरा किया'—ऐसा सोचकर कुशल (शुभ) पक्ष का बीज फेंक-कर गिरिषेण चाण्डाल निकल गया। यह समय है इस प्रकार धर्मोपदेश प्रस्तुत किया और भगवान् ने कहा— 'हे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भो भो देवाणुप्पिया, अणाइमं एस जीवो कंचणोवलो व्व संगओ कम्ममलेण, तद्दोसओ पावेइ चित्त-वियारे, उप्पज्जइ बहुजोणीसु, कयत्थिज्जइ जरामरणेहिं, वेएइ असुहवेदणं, दूमिज्जए संजोयविओएहिं, बाहिज्जए मोहेण, सन्निवाइओ विय न याणइ हियाहियं, बहु मन्नए अपच्छं, परिहरइ हियाइं, पावइ महावयाओ। ता एवं ववत्थिए परिच्चयह मूढयं, निरूवेह तत्तं, पूएह गुरुदेवए, देह विहिदाणं, उज्झेह किच्छाइं, अंगीकरेह मेत्ति, पवज्जह सीलं, अब्भसह तवजोए, भावेह भावणाओ, छड्डेह अग्गहं, झाएह सुहज्झाणाइं, अवणेह कम्ममलं ति। एवं, भो देवाणुप्पिया, अवणीए कम्ममलम्मि कल्लाणीहूए जीवे विसुद्धे एगंतेण न होंति केइ दुक्कयजणिया वियारा, होइ अच्चंतियं परमसोक्खं ति। ता जहासत्तीए करेह उज्जमं उवइट्ठगुणेसु। एयमायण्णिय संविग्गा परिसा। भणियं च णाए—भयवं, एवमेयं ति। पडिवन्ना गुणंतरं। पूजिऊण भयवंतं गओ देवराया।

जपियं मुणिचंदेण— भयवं, किं पुण तस्स पुरिसाहमस्स भयवओ वि उवसग्गकरणे निमित्तं। भयवया भणियं—सोम, सुण। गुरुओ अकुसलाणुबंधो, सो य एवं संजाओ त्ति। साहियं गणसेणग्गि-

---

भो देवानुप्रियाः! अनादिमानेष जीवः काञ्चनोपल इव संगतः कर्ममलेन, तद्दोषतः प्राप्नोति चित्र-विकारान्, उत्पद्यते बहुयोनिषु, कदर्थ्यते जरामरणाभ्याम्, वेदयत्यशुभवेदनम् दूयते संयोगवियोगाभ्याम्, बाध्यते मोहेन, सान्निपातिक इव न जानाति हिताहितम्, बहु मन्यतेऽपथ्यम्, परिहरति हितानि, प्राप्नोति महापदः। तत एवं व्यवस्थिते परित्यजत मूढताम्, निरूपयत तत्त्वम्, पूजयत गुरुदेवते, दत्त विधिदानम्, उज्झत कृच्छ्राणि, अङ्गीकुरुत मैत्रीम्, प्रपद्यध्वं शीलम्, अभ्यस्यत तपोयोगान्, भावयत भावनाः, मुञ्चताग्रहम्, ध्यायत शुभध्यानानि, अपनयत कर्ममलमिति। एवं भो देवानुप्रिया! अपनीते कर्ममले कल्याणीभूते जीवे विशुद्धे एकान्तेन न भवन्ति केऽपि दुष्कृत-जनिता विकाराः, भवति आत्यन्तिकं परमसौख्यमिति। ततो यथाशक्ति कुरुतोद्यममुपदिष्टगुणेषु। एवमाकर्ण्य संविग्ना परिषद्। भणितं च तया— भगवन्! एवमेतदिति। प्रतिपन्ना गुणान्तरम्। पूजयित्वा भगवन्तं गतो देवराजः।

जल्पितं मुनिचन्द्रेण—भगवन्! किं पुनस्तस्य पुरुषाधमस्य भगवतोऽप्युपसर्गकरणे निमित्तम्। भगवता भणितम्—सौम्य शृणु। गुरुकोऽकुशलानुबन्धः स च एवं संजात इति। कथितं गुणसेनाग्नि-

---

हे देवानुप्रिय! यह जीव अनादि है, स्वर्णयुक्त पत्थर के समान कर्ममल से युक्त है, कर्ममल के दोष से अनेक प्रकार के विकारों को प्राप्त करता है, अनेक योनियों में उत्पन्न होता है, जरा और मरण से तिरस्कृत होता है, अशुभ वेदना का अनुभव करता है, संयोग और वियोग से दुःखी होता है, मोह से बाध्य होता है, सन्निपात के रोगी के समान हित और अहित को नहीं जानता है, अपथ्य का आदर करता है, हितों का निवारण करता है, महान् आपत्ति को प्राप्त करता है — ऐसा निर्धारित होने पर मूढ़ता को छोड़ो, तत्त्व को देखो, गुरु और देवताओं की पूजा करो, विधिपूर्वक दान दो, कठिन कार्य छोड़ो, मैत्री अंगीकार करो, शील को प्राप्त करो, तप और योगों का अभ्यास करो, भावनाओं का चिन्तन करो, आग्रहों को छोड़ो, शुभ ध्यानों को ध्याओ, कर्ममलों को हटाओ। इस प्रकार हे देवानुप्रिय! कर्ममल के दूर हो जाने पर कल्याणीभूत विशुद्ध जीव में एकान्त से कोई बुरे कर्म-जन्य विकार नहीं होते हैं, अविनाशी परमसुख होता है। अतः उपदिष्ट गुणों में यथाशक्ति उद्यम करो।' यह सुनकर सभा विरक्त हो गयी और उसने कहा—'भगवन्! यह उचित है।' दूसरे गुणों को प्राप्त हुए भगवान् की पूजा कर इन्द्र चला गया।

मुनिचन्द्र ने कहा—'भगवन्! अधम पुरुष का भगवान् के ऊपर उपसर्ग करने का क्या कारण था?' भगवान् ने कहा—'सौम्य! सुनो—बहुत बड़ा अशुभ सम्बन्ध था, वह इस प्रकार (प्रकट) हुआ। इस तरह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्माइकहाणयं। एयं च सोऊण संविग्गो राया देवीओ वेलंधरो सामंता य। चिंतियं च णेहिं—अहो न किंचि एयं, सव्वहा दारुणं अन्नाणं ति। वेलंधरेण भणियं—भयवं, कीइसो इमस्स परिणामो भविस्सइ। भयवया भणियं—अनंतरं निरयगमणं तिव्वाओ वेदणाओ, परंपरेण उ अणंतो संसारो त्ति।

नम्मयाए भणियं—भयवं; केरिसा उण नरया हवंति, केरिसा नारया कोइसीओ वा तत्थ वेयणाओ हवंति। भयवया भणियं—धम्मसीले, सुण। ते णं नरया अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरुप्पसंठाणसंठिया निच्चंधयारतमसा ववगयगहचंदसूरनक्खत्तजोइसपहा मेयवसारुहिरपूयपडल-चिक्खल्ललित्ताणुलेवणतला असुई विस्सा परमदुरभिगंधा काउअगणिवण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा नरया। अवि य थिमिथिमेंतखारोदया चलचलेंतहिमसक्करा घरघरेंतवसकद्दमा फिणिफिणेंतपूयाउला घोग्घएंतरुहिरोज्झरा सिमिसिमितकिमिवित्थरा जलजलेंतउक्काउला कणकणेंत-असिपायवा फुफुएंतभीमोरगा सुंसुएंतखरमारुया धगधगेंतदित्ताणला करकरेंतजंताउला। अवि य—

शर्मादिकथानकम्। एतच्च श्रुत्वा संविग्नो राजा देव्यो वेलन्धरः सामान्ताश्च। चिन्तितं च तैः—अहो न किञ्चिदेतत्, सर्वथा दारुणमज्ञानमिति। वेलन्धरेण भणितम्—भगवन्! कीदृशोऽस्य परिणामो भविष्यति। भगवता भणितम्—अनन्तरं निरयगमनं तीव्रा वेदनाः, परम्परेण त्वनन्तः संसार इति।

नर्मदया भणितम्—भगवन्! कीदृशाः पुनर्नरका भवन्ति, कीदृशा नारकाः कीदृश्यो वा तत्र वेदना भवन्ति। भगवता भणितम्—धर्मशीले! शृणु। ते नरका अन्तो वृत्ता बहिश्चतुरस्रा अधः-क्षुरप्रसंस्थानसंस्थिता नित्यान्धकारतमसो व्यपगतग्रहचन्द्रसूर्यनक्षत्रज्योतिःप्रभा मेदवसारुधिरपूय-पटलकर्दमानुलेपनलिप्ततला अशुचयो विस्राः परमदुरभिगन्धाः कापोताग्निवर्णाभाः कर्कशस्पर्शा दुरध्यासा (दुःसहाः) अशुभा नरकाः। अपि च—थिमिथिमत्क्षारोदकाः चलचलद्हिमशर्कराः घरघरद्वसाकर्दमाः फिणिफिणत्पूयाकुला घोग्घद्रुधिरनिर्झराः सिमिसिमत्कृमिविस्तरा जलजलदुल्काकुलाः कणकणदसिपादपाः पुप्फुयद्भीमोरगाः सुंसुयत्खरमारुता धगधगद्दीप्तानलाः, करकरद्यन्त्राकुलाः। अपि च—

गुणसेन से अग्निशर्मा सम्बन्धी कथानक कह दिया। यह सुनकर राजा, महारानियाँ, वेलन्धर और सामन्त विरक्त हो गये। उन्होंने विचार किया—अहो! यह और कुछ नहीं, सर्वथा दारुण अज्ञान है। वेलन्धर ने कहा—'भगवन्! इसका परिणाम कैसा होगा?' भगवान् ने कहा—'अनन्तर (गिरिषेण का) नरक में गमन होगा, तीव्र वेदना होगी, परम्परा से अनन्त संसार होगा।

नर्मदा ने कहा—'भगवन्! नरक कैसे होते हैं? नारकी कैसे होते हैं? वहाँ पर वेदना कैसी होती है?' भगवान् ने कहा—'धर्मशीले! सुनो—वे नरक अन्त में गोल, बाहर चौकोर, नीचे छुरे के आकार के रूप में स्थित हैं। नित्य गहन अन्धकार वहाँ रहता है; ग्रह, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्रों की ज्योति से वे रहित होते हैं, मज्जा, चर्बी, खून तथा पीव के समूह की कीचड़ से उनके तल लिप्त रहते हैं तथा वे अपवित्र मुर्दा जलने की अथवा कच्चे मांस की गन्ध से युक्त, अत्यधिक दुर्गन्धवाले, धूसर अग्नि के वर्ण के समान आभावाले, कठोर स्पर्श वाले, दुःसह और अशुभ होते हैं। थिम-थिम करते हुए लवण जलों, चल-चल करते हुए हिमकणों, घर-घर करती हुई चर्बी की कीचड़, फिण्-फिण् करती हुई पीव, घद्-घद् करते हुए खून के झरनों, सिम-सिम करते हुए कीड़ों के समूह, जल-जल करती हुए उल्काओं, कण-कण करते हुए असिवृक्षों, फुफकारते हुए भयंकर सर्पों, धग्-धग् करके जलती हुई अग्नियों और कर्र-कर्र करते हुए यन्त्रों से (वे नरक) व्याप्त हैं। कहा भी है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयससुतिक्खगोक्खुरयकंटयाइण्णविसमपहमग्गा।
असिसत्तिचक्ककप्पणिकुंततिसूलाइदुप्पेच्छा ॥१०३१॥
दुव्वण्णा दुग्गंधा दुरसा दुप्फासदुट्ठसद्दजुया।
घोरा नरयावासा जत्थुप्पज्जंति नेरइया ॥१०३२॥

नेरइया उण काला कालोहासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणया परमकिण्हा वण्णेण। ते णं तत्थ निच्चं भीया निच्चं तत्था निच्चं तसिया निच्चं उव्विग्गा निच्चं परमासुहसंबद्धा निरयभवं पच्चणुहवमाणा चिट्ठंति। वेयणाओ उ इह विचित्तकम्मजणियाओ विचित्ता हवंति दारुणा उत्तिमंगच्छेया करवत्तदारणं सूलवेहणाणि विसमजीहारोगा असंधिच्छेयणाणि तत्ततंबाइपाणं भक्खणं वज्जतुंडेहि अंगबलिकरणाणि दरियसावयभयं अत्थिउद्धरणाणि घोरनिक्खुडपवेसा पलित्तलोहित्थियालिंगणाणि सव्वओ सत्थजोगो जलंतसिलापडणाणि मोहपरायत्तय त्ति एवमाइयाओ महंतीओ वेयणाओ। निरुवमा य साहाविगी उण्हसीयवेयण त्ति।

आयससुतीक्ष्णगोक्षुरककण्टकाकीर्णविषमपथमार्गाः।
असिशक्तिचक्रकल्पनीकुन्तत्रिशूलादिदुष्पेक्षाः ॥१०३१॥
दुर्वर्णा दुर्गन्धा दूरसा दुःस्पर्शदुष्टशब्दयुताः।
घोरा नरकावासा यत्रोत्पद्यन्ते नैरयिकाः ॥१०३२॥

नैरयिकाः पुनः कालाः कालावभासा गम्भीरलोमहर्षा भीमा उत्त्रासनकाः परमकृष्णा वर्णेन। ते तत्र नित्यं भीता नित्यं त्रस्ता नित्यं त्रासिता नित्यमुद्विग्ना नित्यं परमाशुभसम्बद्धा निरभयं प्रत्यनुभवन्तस्तिष्ठन्ति। वेदनास्तु इह विचित्रकर्मजनिता विचित्रा भवन्ति दारुणा उत्तमाङ्गच्छेदाः करपत्रदारणं शूलवेधनानि विषमजिह्वारोगा असन्धिच्छेदनानि तप्तताम्रादिपानं भक्षणं वज्रतुण्डैरङ्गबलिकरणानि दृप्तश्वापदभयमस्थ्युद्धरणानि घोरनिष्कुटप्रवेशाः प्रदीप्तलोहस्त्र्यालिङ्गनानि सर्वतः शस्त्रयोगो ज्वलच्छिलापतनानि मोहपरायत्ततेति एवमादिका महत्यो वेदनाः। निरुपमा च स्वाभाविकी उष्णसितवेदनेति।

गाय के खुर के समान पैने लोहे के नुकीले काँटों से व्याप्त विषम पथोंवाले वहाँ के मार्ग हैं। तलवार, शक्ति, चक्र, कैंची, भाले और त्रिशूल आदि से कठिनाईपूर्वक देखे जाने योग्य हैं। नरक का आवास बुरे वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और दुष्ट शब्दों से युक्त तथा भयंकर है, जहाँ नारकी उत्पन्न होते हैं ॥१०३१-१०३२॥

नारकी गहरे नीले रंग के, लोहे के समान चमकवाले, गहरे रोमकूपों वाले, भयंकर, डरावने और अत्यधिक काले वर्ण के होते हैं। वे वहाँ पर नित्य भयभीत, नित्य त्रस्त, नित्य त्रासित, नित्य उद्विग्न, नित्य अत्यधिक अशुभ से युक्त नरक के भय का अनुभव करते हुए विद्यमान रहते हैं। यहाँ पर नाना प्रकार के कर्मों से उत्पन्न अनेक प्रकार की भयंकर वेदनाएँ होती हैं – सिर काटना, करौंत से चीरना, शूल से वेधना, विषम जीभ के रोग, जोड़ों से रहित स्थानों को काटना, तपाए हुए तांबे आदि का पान करना, भक्षण करना, वज्र की नोकों से (काटकर) अंगों की बलि देना, गर्वीले हिंसक जन्तुओं का भय, हड्डियों का उखाड़ा जाना, भयंकर बगीचे में प्रवेश, तपाए हुए लोहे के अस्त्रों से आलिंगन, सभी ओर से शस्त्रों का योग, जलती हुई शिलाओं का गिरना, मोह का पराधीनपना आदि ऐसी तीव्र वेदनाएँ होती हैं। गर्मी और सर्दी की वेदनाएँ अनुपम और स्वाभाविक रूप से होती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुलसमंजरीए भणियं—भयवं, केरिसाणि सुरविमाणाणि, केरिसा देवा, कोइसी वा तत्थ सायावेयणाओ। भयवया भणियं—धम्मसीले, सुण। ते णं विमाणा विचित्तसंठाणा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा वट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पहा समिरीया सउज्जोवा पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा खेमा सिवा किंकरअमरदंडोवरक्खिया लाउल्लोवि(इ)यमहिया गोसीससरस(रत्त)चंदणदद्दरदिन्नपंचंगुलितला उवचियचंदणकलसा चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागा आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा पंचवण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिया कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामा सुगंधवरगंधगंधिया गंधवट्टिभूया अच्छरगणसंघसं(वि)किण्णा दिव्वतुडियसद्दसंपन्न(ण्इय)त्ति। देवा उण मणहरविचित्तचिंधा सुरूवा महिड्ढिया महज्जुइया महायसा महब्बला महाणुभावा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडयतुडियथंभियभुया अंगयकुंडलमट्ठगंडयलकण्णपीढधारी विइत्तहत्थाहरणा विचित्तमालामउली

सुलसमञ्जर्या भणितम्—भगवन्! कीदृशानि सुरविमानानि, कीदृशा देवाः, कीदृशी वा तत्र सातवेदना। भगवता भणितम्—धर्मशीले! शृणु। तानि विमानानि विचित्रसंस्थानानि सर्वरत्नमयानि अच्छानि श्लक्ष्णानि (मसृणानि) घृष्टानि मृष्टानि नीरजांसि निर्मलानि निष्पङ्कानि निष्कङ्कटच्छायानि सप्रभाणि, समरीचीनि सोद्योतानि प्रासादीयानि दर्शनीयानि, अभिरूपाणि प्रतिरूपाणि क्षेमाणि शिवानि किंकरामरदण्डोपरक्षितानि लेपितधवलितमहितानि गोशीर्षसरसरक्तचन्दनदर्दरदत्तपञ्चाङ्गुलितलानि उपचितचन्दनकलशानि चन्दनघटसुकृततोरणप्रतिद्वारदेशभागानि आसक्तोत्सक्तविपुलवृत्तप्रलम्बितमाल्यदामकलापानि पञ्चवर्णसरससुरभिमुक्तपुष्पपुञ्जोपचारकलितानि कालागुरुप्रवरकुन्दरुष्कतुरुष्कधूपमघायमानगन्धोद्धूताभिरामाणि सुगन्धवरगन्धगन्धितानि गन्धवर्तिभूतानि अप्सरोगणसंघसं(वि)कीर्णानि दिव्यत्रुटितशब्दसम्पन्ना(प्रणदिता)नीति। देवाः पुनर्मनोहरविचित्रचिह्नाः सुरूपा महर्द्धिका महाद्युतिका महायशसो महाबला

सुलसमंजरी ने कहा—'भगवन्! देवविमान (स्वर्ग) कैसे होते हैं, देव कैसे होते हैं अथवा वहाँ पर सातवेदना (सुखरूप अनुभूति) कैसी होती है?' भगवान् ने कहा—'धर्मशीले! सुनो। वे विमान विचित्र आकार वाले, समस्त रत्नों से युक्त, स्वच्छ, चिकने, माँजे हुए, साफ किये हुए, धूलिरहित, निर्मल, कीचड़रहित, काँटों से रहित और छाया से युक्त स्थानवाले, प्रभायुक्त किरणों से युक्त, प्रकाशयुक्त, प्रसन्न, दर्शनीय, योग, सुन्दर, कल्याणमय, शिव, किंकर देवताओं के दण्ड से रक्षित (तथा) सफेद लेपन से महत्त्वपूर्ण होते हैं। गोरोचन और सरस लाल चंदन के घने हथेलियों के निशान बने होते हैं, चन्दन के कलश इकट्ठे रहते हैं, मेहराबदार द्वारों तथा (अन्य) प्रत्येक द्वार पर भलीभाँति चन्दन के घड़े बने होते हैं, अत्यधिक गोल लम्बी मालाओं के समूह गुँथे रहते हैं, पाँच रंगों के सरस सुगंधित छोड़े हुए फूलों के समूह की सेवा से युक्त होते हैं, काला अगरु, श्रेष्ठ कुन्द, रुष्क और तुरुष्क की धूप से भरी हुई गन्ध के बढ़ने से सुन्दर लगते हैं, अच्छी और उत्तम गन्ध से सुवासित अगरबत्तियों से युक्त होते हैं, अप्सराओं के समूह से व्याप्त रहते हैं, दिव्य वाद्यों के शब्दों से युक्त होते हैं। देव मनोहर, विचित्र चिह्नोंवाले, सुन्दर रूपवाले, महान् ऋद्धियोंवाले, महाद्युतिवाले, महान् यश, महान् बल, महान्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्लाणगपवरवत्थपरिहिया कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणधरा भासुरबोंदी पलंबवणमालाधरा दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघयणेणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जुईए दिव्वाए पहाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पहासेमाणा महयाऽहयनट्टगीयवाइयतंतीतलतालतुडियघणमुइंगपडुपडह(प)वाइयरवेण दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति। अवि य,

सुरही पवणो विमलं नहंगणं निच्चकालमुज्जोओ।
अविरहियपंकयाइं जलाइं सइ पुप्फिया वप्पा(च्छा) ॥१०३३॥
अव्वाहयवव्वीवंसकंसतालयविवंचिकंचीणं(?)।
वरमुरवाणं च रवो नेव य गेव य गेयस्स वोच्छित्ती ॥१०३४॥

महानुभावा महासौख्या हारविराजितवक्षसः कटकत्रुटितस्तम्भितभुजा अङ्गदकुण्डलमृष्टगण्डतलकर्णपीठधारिणो विचित्रहस्ताभरणा विचित्रमालामौलयः कल्याणकप्रवरवस्त्रपरिहिताः कल्याणकप्रवरमाल्यानुलेपनधरा भासुरशरीराः प्रलम्बवनमालाधरा दिव्येन वर्णेन दिव्येन गन्धेन दिव्येन स्पर्शेण दिव्येन संहननेन दिव्येन संस्थानेन दिव्यया ऋद्धया दिव्यया द्युत्या दिव्यया प्रभया दिव्यया छायया दिव्यया अर्चिषा दिव्येन तेजसा दिव्यया लेश्यया दश दिश उद्द्योतयन्तः प्रभासयन्तो महताऽहतनाट्यगीतवादित्रतन्त्रीतलतालत्रुटितघनमृदङ्गपटुपटह(प्र)वादितरवेण दिव्यान् भोग्यभोगान् भुञ्जाना विरहन्ति। अपि च—

सुरभिः पवनो विमलं नभोऽङ्गणं नित्यकालमुद्द्योतः।
अविरहितपङ्कजानि जलानि सदा पुष्पिता वृक्षाः ॥१०३३॥
अव्याहतविविधवंशकांस्यतालकविपञ्चिकाञ्चीनाम् (?)।
वरमुरजानां च रवो नैव व गेयस्य व्युच्छित्तिः ॥१०३४॥

प्रभाव और महान् सुखवाले होते हैं तथा हार से उनका वक्षःस्थल शोभित होता है। मुड़े हुए कड़ों से भुजाएँ दृढ़ रहती हैं। बाजूबन्द, कुण्डल, चिकने गाल, कान और ठोड़ी को धारण करनेवाले, हाथ के विचित्र आभूषणों से युक्त, विचित्र मालाओं और मुकुटोंवाले, सुन्दर और उत्तम वस्त्रों को धारण किये हुए, सुन्दर उत्तम माला और लेपन धारण किये हुए, देदीप्यमान शरीरवाले, बड़ी फूलमाला धारण किये हुए, दिव्य वर्ण, दिव्य गन्ध, दिव्य स्पर्श, दिव्य शारीरिक दृढ़ता (संहनन), दिव्य आकार (संस्थान), दिव्य ऋद्धि, दिव्य द्युति, दिव्य प्रभा, दिव्य कान्ति, दिव्य किरण, दिव्य तेज, दिव्य लेश्या से दशों दिशाओं को उद्योतित करते हुए, प्रभायमान करते हुए बड़े जोर से उच्चारित नाट्य, गीत, वादित्र, तन्त्री, ताली, मँजीरे (अथवा संगीत में नियत मात्राओं पर ताली बजाना), घंटा, मृदंग, तथा निपुणता से बजाए हुए ढोलों की ध्वनि से युक्त हो दिव्य भोगों को भोगते हुए विहार करते हैं। कहा भी है—

(वे देव) सुगन्धित वायु, स्वच्छ आकाशरूपी आँगन, नित्य समय रहनेवाला उद्योत, कमलों से रहित न होनेवाले जल, सदा खिले हुए फूलों से सदैव युक्त रहते हैं, विशेष रूप से न बजाए गये अनेक प्रकार की बाँसुरी, मँजीरे, वीणा (तथा) श्रेष्ठ की ध्वनि से गीत निरन्तर चलते रहते हैं। इन्द्रियों के इष्ट विषय शब्द,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इट्ठा इंदियविसया सद्दफरिसरसरूवगंधड्ढा ।
संधियधणू अणंगो सुसंगयाओ य देवीओ ॥१०३५॥
निच्चं च ताहि सहिया सिंगारागारचारुरूवाहिं ।
नट्टगुणगीयवाइयनिउणाहि मणाहिरामाहिं ॥१०३६॥
कीलंता सविलासं रइरसचउराहि जणियपरिओसं ।
रइसागरावगाढा गयं पि कालं न याणंति ॥१०३७॥

सुलोयणाए भणियं—भयवं, देवा देवसुहं च एयं भयवया सुंदरमावेइयं; ता किं इओ वि सुंदरयरा सिद्धा सिद्धसुहं च । भयवया भणियं—धम्मसीले, अइमहंतं खु एत्थ अंतरं । किं देवाण सुदरत्तं, जाणं जोओ अधुवसरीरेण, दारुणं कम्मबंधपारतंतं, उक्कडा कसाया, पहवइ महामोहो, अवसाणिंदियाणि, गरुई विसयतण्हा, विचित्ता उक्करिसावगरिसा, उद्दामं माणसं, अनिवारिओ मच्चू, विरसमवसाणं ति । कोइसं वा एवंविहाणं सुहं । गंधव्वाइजोगो वि परमत्थओ दुक्खमेव । जओ—

इष्टा इन्द्रियविषयाः शब्दस्पर्शरसरूपगन्धाढ्याः ।
संहितधनूरनङ्गः सुसङ्गताश्च देव्यः ॥१०३५॥
नित्यं च ताभिः सहिताः शृङ्गाराकारचारुरूपाभिः ।
नाट्यगुणगीतवादित्रनिपुणाभिर्मनोऽभिरामाभिः ॥१०३६॥
क्रीडन्तः सविलासं रतिरसचतुराभिर्जनितपरितोषम् ।
रतिसागरावगाढा गतमपि कालं न जानन्ति ॥१०३७॥

सुलोचनया भणितम्—भगवन् ! देवा देवसुखं चैतद् भगवता सुन्दरमावेदितम्, ततः किमितोऽपि सुन्दरतराः सिद्धाः सिद्धसुखं च । भगवता भणितम्—धर्मशीले ! अतिमहत् खल्वत्रान्तरम् । किं देवानां सुन्दरत्वम्, येषां योगोऽध्रुवशरीरेण, दारुणं कर्मबन्धपारतन्त्र्यम्, उत्कटाः कषायाः, प्रभवति महामोहः, अवशानीन्द्रियाणि, गुर्वी विषयतृष्णा, विचित्रा उत्कर्षापकर्षाः; उद्दामं मानसम्, अनिवारितो मृत्युः, विरसमवसानमिति । कीदृशं वैवंविधानां सुखम् । गान्धर्वादियोगोऽपि परमार्थतो दुःखमेव । यतः—

स्पर्श, रस, रूप और गन्ध से व्याप्त रहते हैं, कामदेव के धनुष तथा देवियों से युक्त रहते हैं। शृंगार और आकार से सुन्दर रूपवाली, नाट्य, गीत और वादित्र में निपुण तथा मन को सुन्दर लगनेवाली, रति के रस में चतुर होने के कारण सन्तोष उत्पन्न करनेवाली उन देवियों के साथ रतिसागर में डूबकर नित्य विलासपूर्वक क्रीड़ा करते हुए बीते हुए भी समय को नहीं जानते हैं।' १०३३-१०३७॥

सुलोचना ने कहा—'भगवन् ! देव और देवों का सुख भगवान् ने अच्छी तरह बतला दिया तो क्या सिद्ध और सिद्धों का सुख इससे भी अधिक सुन्दर है?' भगवान् ने कहा—'धर्मशीले ! इसमें बहुत बड़ा अन्तर है। देवों की सुन्दरता क्या है, जिनका अनित्य शरीर के साथ संयोग है, दारुण कर्मों के बन्धन की परतन्त्रता है, उत्कट कषायें हैं, बलवान् महामोह है, अवश इन्द्रियाँ हैं, विषयों के प्रति भारी तृष्णा है, नाना प्रकार के उत्कर्ष अपकर्ष हैं, उत्कट मन है, जिसका निवारण नहीं किया जा सकता ऐसा मरण है तथा जिनका अवसान नीरस होता है इस प्रकार के अंगों को सुख कैसा ? गीत आदि का योग भी यथार्थरूप से दुःख ही है; क्योंकि—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"सव्वं गीयं विलवियं, सव्वं नट्टं विडंबियं ।
सव्वे आहरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा ॥"

सुंदरा, धम्मसीले, परमत्थओ सिद्धा, सुहं पि तेसिमेव; जेण ते ठिया णियसरूवे मुक्का कम्मबंधणेण परिणिट्ठियपओयणा वज्जिया मणोरहेहिं खीणभवसत्ती जाणंति सव्वभावे पेच्छंति परमत्थेण अपरोवयाविणो नेव्वाणकारणं बुहाणं विरहिया जम्ममरणेहिं ति । किं वा न ईइसाणं सुहं, जओ नियत्ता सव्वाबाहाओ परमाणंदजोएण । अवि य—

सिद्धस्स सुहोरासी सव्वद्धापिंडिओ जइ हवेज्जा ।
सोऽणंतवग्गभइओ सव्वागासे न माएज्जा ॥१०३८॥

न वि अत्थि माणुसाणं तं सोक्खं न वि य सव्वदेवाणं ।
जं सिद्धाणं सोक्खं अव्वाबाहं उवगयाणं ॥१०३९॥

अन्नं पि । अत्थि नायं, तं सुणउ धम्मसीला । सुलोयणाए भणियं—ता अणुग्गहेउ भयवं अम्हे । भयवया भणियं—अत्थि खिइपइट्ठियं नाम नयरं, जं उत्तुंगेहिं भवणदेउलेहिं पायाल-

---

"सर्वं गीतं विलपितं सर्वं नाट्यं विडम्बितम् ।
सर्वे आभरणा भाराः सर्वे कामा दुःखावहाः ॥"

सुन्दरा धर्मशीले ! परमार्थतः सिद्धाः, सुखमपि तेषामेव; येन ते स्थिता निजस्वरूपे मुक्ताः कर्मबन्धनेन परिनिष्ठितप्रयोजना वर्जिता मनोरथैः क्षीणभवशक्तयो जानन्ति सर्वभावान् पश्यन्ति परमार्थेन अरोपतापिनो निर्वाणकारणं बुधानां विरहिता जन्ममरणाभ्यामिति । किं वा नेदृशानां सुखम्, यतो निवृत्ताः सर्वाबाधातः परमानन्दयोगेन । अपि च—

सिद्धस्य सुखराशिः सर्वाद्धापिण्डितो यदि भवेत् ।
सोऽनन्तवर्गभक्ताः सर्वाकाशे न मायात् ॥१०३८॥

नाप्यस्ति मानुषाणां तत् सौख्यं नापि च सर्वदेवानाम् ।
यत् सिद्धानां सौख्यमव्याबाधामुपगतानाम् ॥१०३९॥

अन्यदपि । अस्ति ज्ञातम्, तच्छृणोतु धर्मशीला । सुलोचनया भणितम्—ततोऽनुगृह्णातु भगवान् अस्मान् । भगवता भणितम्—अस्ति क्षितिप्रतिष्ठितं नाम नगरम्, यद् उत्तुङ्गैर्भवनदेव-

---

"समस्त गीत विलाप है, समस्त नाट्य विडम्बना है, समस्त आभूषण भार हैं, समस्त काम दुःख लानेवाले हैं ।"

धर्मशीले ! परमार्थरूप से सिद्ध और उनका सुख सुन्दर है जिससे वे अपने स्वरूप में स्थित हैं, कर्मों के बन्धन से मुक्त हैं, पूर्ण हुए प्रयोजनोंवाले हैं, मनोरथों से रहित हैं, संसार की शक्ति को क्षीण कर चुके हैं, समस्त पदार्थों को यथार्थरूप से जानते देखते हैं, दूसरों को क्लेश नहीं पहुँचाते हैं, विद्वानों के निर्वाण के कारण हैं (तथा) जन्म और मरण से रहित हैं । अथवा ऐसे सिद्धों को क्या सुख नहीं है; वे तो समस्त पीड़ाओं अथवा मानसिक क्लेशों से रहित हैं और परम आनन्द से युक्त हैं । कहा भी है—

सिद्धों का सुख यदि समस्त रूप में प्रत्यक्ष रूप से एकत्रित हो जाय तो वह समस्त आकाश के अनन्त वर्गों में भी नहीं समा सकता । अव्याबाधपने को प्राप्त हुए सिद्धों का जो सुख है वह सुख न तो मनुष्यों का है और न समस्त देवों का ॥१०३८-१०३९॥

दूसरी बात भी जानने योग्य है उसे धर्मशीले सुनें ।' सुलोचना ने कहा—भगवान् हम लोगों पर अनुग्रह करें ।' भगवान् ने कहा—'क्षितिप्रतिष्ठित नाम का नगर था जो ऊँचे-ऊँचे भवनों, मन्दिरों, पाताल को प्राप्त हुई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुवगएणं फरिहाबंधेणं गयणयलविलग्गेणं पायारेणं विसेसिया धणयपुरिं इड्ढीए भवणेहि य सुरिंदभवणाइं। तम्मि य जियसत्तू नाम नरवई होत्था।

अंतेउरप्पहाणा देवी नामेण जयसिरी अत्थि।
सो तीए समं राया भोए भुंजेइ सुरतुल्ले ॥१०४०॥
अह अन्नया कयाई पारद्धिनिमित्तनिग्गओ राया।
चडिओ पवरतुरंगे जाए वल्हीयदेसम्मि ॥१०४१॥
वत्ते वि य जीववहे अवहरिओ तेण वाउवेगेण।
छूढो य महागहणे विंझगिरिक्कंदरे राया ॥१०४२॥
तो तम्मि विसमदेसे खलिओ आसस्स अइवेगो।

एत्थंतरम्मि सन्नद्धबद्धकवएण दिट्ठो सबरेण सो राया। तेण य 'महाणुभावो कोइ एस पुरिसो पडिओ भीममहाडवीए, ता करेमि सम्ममुचिओवयारं' ति चिंतिऊण काऊण तस्स पणामं गहिओ आसो खलीणम्मि, नीओ जलसमीवं। उत्तिण्णो नरवई, उप्पल्लाणिओ तुरओ, मज्जिओ राया,

---

कलैः पातालमुपगतेन परिखाबन्धेन गगनतलविलग्नेन प्राकारेण विशिष्य धनदपुरीं ऋद्धया भवनैश्च सुरेन्द्रभवनानि। तस्मिंश्च जितशत्रुर्नाम नरपतिरभवत्।

अन्तःपुरप्रधाना देवी नाम्ना जयश्रीरस्ति।
स तया समं राजा भोगान् भुङ्क्ते सुरतुल्यान् ॥१०४०॥
अथान्यदा कदाचित् पापर्द्धिनिमित्तं निर्गतो राजा।
आरूढः प्रवरतुरंगे जाते वाह्लिकदेशे ॥१०४१॥
वृत्तेऽपि च जीववधे अपहृतस्तेन वायुवेगेन।
क्षिप्तश्च महागहने विन्ध्यगिरिकन्दरे राजा ॥१०४२॥
ततस्तस्मिन् विषमदेशे स्खलितोऽश्वस्यातिवेगः।

अत्रान्तरे सन्नद्धबद्धकवचेन दृष्टः शबरेण स राजा। तेन च 'महानुभावः कोऽप्येष पुरुषः पतितो भीममहाटव्याम्, ततः करोमि सम्यगुचितोपचारम्' इति चिन्तयित्वा कृत्वा तस्य प्रणामं गृहीतोऽश्वः खलीने, नीतो जलसमीपम्। उत्तीर्णो नरपतिः, उत्पल्याणितस्तुरगः, मज्जितो राजा, स्नपितः

खाई, आकाश को छूनेवाले प्राकार, ऋद्धि में कुबेर की नगरी से विशिष्ट तथा इन्द्र के भवनों के समान भवनों से युक्त था। वहाँ पर जितशत्रु नाम का राजा हुआ।

उसकी समस्त अन्तःपुर में प्रधान जयश्री नाम की महारानी थी। वह राजा उसके साथ देवताओं के समान भोगों को भोगता था। एक बार राजा बाह्लीक देश में उत्पन्न हुए उत्कृष्ट घोड़े पर सवार होकर कदाचित् शिकार के लिए निकला। जीववध में लग जाने पर उस राजा को उस घोड़े ने वेग से अपहरण कर विन्ध्याचल की अत्यधिक भयंकर घाटी में छोड़ दिया। अनन्तर उस ऊँची-नीची भूमि में घोड़े का तीव्र वेग स्खलित हो गया ॥१०४०-१०४२॥

इसी बीच कवच को बाँध कर तैयार हुए शबर द्वारा वह राजा दिखाई दिया। उसने 'यह कोई महान् प्रभाववाला पुरुष जंगल में भटक गया है अतः उचित सेवा करता हूँ'—ऐसा सोचकर प्रणाम कर घोड़े की लगाम पकड़ कर उसे जल के पास ले गया। राजा उतरा, घोड़े की जीन उतारी, राजा ने स्नान किया, शबर ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ण्हविओ सबरेण आसो दावि(मि)ऊण मुक्को पउरदु(दुरु)व्वापएसे। तओ सुगंधीणि सुसायाणि कयलयजंबीरफणसाईणि उवणेऊण फलाणि निवडिओ चलणेसु। भणियं च णेण—करेउ पसायं देवो ममाणुग्गहट्ठाए आहारगहणेणं। राइणा चिंतियं—अहो एयस्स अकारणवच्छलया, अहो विणओ, अहो वयणविन्नासो, अहो ममोवरि भत्तिबहुमाणो, अहो महापुरिसचेट्ठियकायव्वुज्जुत्तया, अहो सज्जणपगरिसो त्ति। ता करेमि एयस्स अहं आहारगहणेण धिइं। मा से वइमणस्सं संभाविस्सइ त्ति। पडिस्सुयं राइणा। महापसाओ त्ति काऊण पुणो वि पडिओ पाएसु सबरो। उवभुत्ताइं फलाइं राइणा। एत्थंतरम्मि परिणओ वासरो, अत्थमुवगओ सूरो, जाओ संझाकालो, कयं उचियकरणिज्जं राइणा। संपाडिओ से सबरेण वरतूलिं अइसयंतो कुसुमसत्थरो। संजमिऊण तूणीरयं कोदंडवग्गहत्थो समागओ नरवइसमीवं। 'देव सुवसु वीसत्थो' त्ति भणिऊण पारद्धं पासेसु भमिउं। काऊण गुरुदेवयानमोक्कारं पसुत्तो राया चिंतयंतो सबरमहानुभावयं। तओ परिणया सव्वरी, उइओ अंसुमालो।

एत्थंतरम्मि तुरयपयमग्गेणं समागयं रायसेन्नं। विउद्धो राया बंदिबोलेण। तओ ढोइओ

शबरेणाश्वो दामयित्वा मुक्तः प्रचुरदूर्वाप्रदेशे। ततः सुगन्धीनि सुस्वादानि कदलजम्बीरपनसादीन्युपनीय फलानि निपतितश्चरणयोः। भणितं च तेन—करोतु प्रसादं देवो ममानुग्रहार्थमाहारग्रहणेन। राज्ञा चिन्तितम्—अहो एतस्याकारणवत्सलता, अहो विनयः, अहो वचनविन्यासः, अहो ममोपरि भक्तिबहुमानः, अहो महापुरुषचेष्टितकर्तव्योद्युक्तता, अहो सज्जनप्रकर्ष इति। ततः करोम्येतस्याहमाहारग्रहणेन धृतिम्। मा अस्य वैमनस्यं सम्भावयिष्यति इति। प्रतिश्रुतं राज्ञा। महाप्रसाद इति कृत्वा पुनरपि पतितः पादयोः शबरः। उपभुक्तानि फलानि राज्ञा। अत्रान्तरे परिणतो वासरः, अस्तमुपगतः सूर्यः, जातः सन्ध्याकालः, कृतमुचितं करणीयं राज्ञा। सम्पादितस्तस्य शबरेण वरतूलिकामतिशयानः कुसुमस्रस्तरः। संयम्य तूणीरकं कोदण्डव्यग्रहस्तः समागतो नरपतिसमीपम्। 'देव! स्वपिहि विश्वस्तः' इति भणित्वा प्रारब्धं पार्श्वयोर्भ्रमितुम्। कृत्वा गुरुदेवतानमस्कारं प्रसुप्तो राजा चिन्तयन् शबरमहानुभावताम्। ततः परिणता शर्वरी, उद्गतोऽशुमाली।

अत्रान्तरे तुरगपदमार्गेण समागतं राजसैन्यम्। विबुद्धो राजा बन्दिशब्देन। ततो ढौकितो

घोड़े को स्नान कराया, रस्सी बाँधकर हरियाली वाले स्थान में छोड़ दिया। अनन्तर सुगन्धित, अच्छे स्वादवाले केले, जँमीरी, कटहल आदि फल लाकर चरणों में रख दिये और कहा—'महाराज! मुझ पर अनुग्रह करने के लिए आहार ग्रहण करने की कृपा कीजिए।' राजा ने सोचा—ओह इसका अकारण प्रेम, ओह विनय, ओह बातचीत करने की शैली, ओह मुझ पर भक्ति और सम्मान, ओह महापुरुष की चेष्टा तथा कर्त्तव्य के प्रति उद्यत होना, ओह सज्जनता की चरम सीमा। अतः आहार ग्रहण कर इसे धैर्य बँधाऊँगा। इसे वैमनस्य उत्पन्न न हो। राजा ने स्वीकार किया। बहुत बड़ी कृपा मानकर शबर पुनः पैरों में गिर गया। राजा ने फल खाये। इसी बीच दिन ढल गया, सूर्य अस्त हो गया, सन्ध्याकाल हो गया। राजा ने योग्य कार्य किया। उस शबर ने श्रेष्ठ रुई के गद्दे को भी मात करनेवाला फूलों का बिस्तर बिछाया। तरकश उतारकर हाथ में धनुष लेकर राजा के पास आया—'महाराज! विश्वस्त होकर सोइए' ऐसा कहकर अगल-बगल भ्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। गुरु और देवताओं को नमस्कार कर राजा शबर की महानुभावता का विचार करता हुआ सो गया। अनन्तर रात ढल गयी, सूर्य उदित हुआ।

इसी बीच घोड़े के पदचिह्नों के रास्ते से राजा की सेना आ गयी। बन्दियों के शब्द से राजा जाग गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महासवइणा पंचवल्लहाण पहाणो तुरुक्कतुरओ। आरूढो तम्मि राया। चडाविऊण वल्हीए सबरनाथं गओ सनयरं। पविट्ठो महावद्धावणएहिं। मज्जिओ नरवई सह पल्लिनाहेण। कयं गुरुदेवयाणं उचियकरणिज्जं। तओ अग्गासणे निवेसिऊण पल्लिनाहं भुत्तं राइणा। भुत्तुत्तरवेलाए सहत्थेण विलिंपिऊण सबरनाहं परिहाविऊण देवंयजुगलं दिन्नं से अणग्घेयं समत्थं नियमाहरणं। एत्थंतरम्मि समागया अत्थावेला। सूइयं कालनिवेयएण राइणो। उवविट्ठो अत्थाइयामंडवे सह सबरनाहेण। तओ पुच्छिओ अमच्चसामंतेहिं—देव साहेहि, को एस पुरिसो, जो एवं देवेण संपूइओ त्ति। तओ साहिओ राइणा आसावहाराइओ पसुत्तदरिसणपज्जवसाणो पल्लिणाहचेट्ठियवुत्तंतो। तओ अत्थाइयपुरिसेहिं परसिओ एस बहुपगारं। ठिया कंचि कालं नाडयपेवळणयविणोएणं। समप्पिओ राइणा रायसुंदरीए पहाणलक्खियाए। तज्जिया(भणिया) य णेण—अहो रायसुंदरि, उवचरियव्वो तए एस सब्भावसारं मम पाणदायगो। तीए भणियं—जं देवो आणवेइ। गहेऊण य तं पल्लिणाहं करम्मि गया नियभवणं एसा। आरूढा सत्तमवा(चा)उक्खंभम्मि रइहरे। तं च सोउल्लोइयं

महाश्वपतिना पञ्चवल्लभानां प्रधानस्तुरुष्कतुरगः। आरूढस्तस्मिन् राजा। आरोप्य बाह्लीके शबरनाथं गतः स्वनगरम्। प्रविष्टो महावर्धापनकैः। मज्जितो नरपतिः सह पल्लिनाथेन। कृतं गुरुदेवतानामुचितकरणीयम्। ततोऽग्रासने निवेश्य पल्लिनाथं भुक्तं राज्ञा। भुक्तोत्तरवेलायां स्वहस्तेन विलिप्य शबरनाथं परिधाप्य देवदूष्ययुगलं दत्तं तस्यानर्घ्यं समस्तं निजमाभरणम्। अत्रान्तरे समागता आस्थानिकावेला। सूचितं कालनिवेदकेन राज्ञः। उपविष्ट आस्थानिकामण्डपे सह शबरनाथेन। ततः पृष्टोऽमात्यसामन्तैः—देव! कथय, क एष पुरुषः, य एवं देवेन सम्पूजित इति। ततः कथितो राज्ञा अश्वापहारादिकः प्रसुप्तदर्शनपर्यवसानः पल्लिनाथचेष्टितवृत्तान्तः। तत आस्थानिकापुरुषैः प्रशंसित एष बहुप्रकारम्। स्थितौ कंचित् कालं नाटकप्रेक्षणकविनोदन। समर्पितो राज्ञा राजसुन्दर्याः प्रधानलक्षितायाः। तर्जिता(भणिता)च तेन—अहो राजसुन्दरि! उपचरितव्यस्त्वया एष सद्भावसारं मम प्राणदायकः। तया भणितम्—यद् देव आज्ञापयति। गृहीत्वा च पल्लीनाथं करे गता निजभवनमेषा। आरूढौ सप्तमवायु(चतुः)स्तम्भे रतिगृहे। तच्च(तस्मिश्च) लेपित-

अनन्तर महान् अश्वपति, पाँच प्रिय घोड़ों में प्रधान तुरुष्क घोड़े को लाया गया। उस पर राजा सवार हुआ। वाह्लीक देश के घोड़े पर शबरराज को बैठाकर अपने नगर को गया। बड़े उत्सवों के साथ प्रविष्ट हुआ। राजा ने शबरनाथ के साथ नहाया। गुरु और देवताओं के योग्य कार्यों को किया। अनन्तर अग्रासन पर शबरनाथ को बैठाकर राजा ने भोजन किया। भोजन के बाद अपने हाथ से शबरनाथ का विलेपन कर, दिव्यवस्त्र पहिना कर उसे अपने समस्त आभूषण दिये। तभी राजसभा का समय हो गया। समय का निवेदन करनेवाले ने सूचित किया। राजसभा में शबरनाथ के साथ बैठा। अनन्तर अमात्य और सामन्तों ने पूछा—'महाराज, कहिए, यह पुरुष कौन है जो इस प्रकार महाराज के द्वारा सम्मानित किया गया है?' अनन्तर राजा ने घोड़े द्वारा अपहरण से लेकर सोते हुए दिखलाई देने तक का वृत्तान्त शबरनाथ की चेष्टाओं सहित सुनाया। सभा के पुरुषों ने इसकी अनेक प्रकार से प्रशंसा की। कुछ समय तक नाटक तथा प्रेक्षणक से विनोद करते हुए दोनों कुछ समय ठहरे। राजसुन्दरी को प्रधानरूप से लक्षित कर राजा ने समर्पित कर दिया और उससे कहा—'हे राजसुन्दरी! यह सद्भाव के सार और मेरे प्राणदायक हैं। अतः योग्य सेवा करना।' उसने कहा—'जो महाराज की आज्ञा।' शबरनाथ का हाथ पकड़कर वह अपने भवन में गयी। सात खण्डोंवाले चौकोर रतिगृह पर दोनों आरूढ़ हुए। वह दिव्य अंगराग (चूर्ण) और वस्त्र लपेटकर धवल बनाया गया था, श्रेष्ठ चित्रों पर उदित हुए चन्द्रमा की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवंगाइवत्थपूयाए सचित्तकम्मुज्जलं बद्धेण वरचित्ताडियचंदोदएणं ओलंबिएहिं पंचवण्णियसुरहि-कुसुमदामेहिं पज्जलियाहिं मणिप्पदोवियाहिं धुव्वंतीहिं अणवरयधुव्वमाणकालागरुकप्पूरपउराहिं धूवघडियाहिं गंडोवहाणयालिगणिसमेयाए तूलियाए सोविओ दंतमयपल्लंके। कओ उचिओवयारो। पाइओ महुमाहवाइपवरासवाइं। एवं च पंचविहं विसयसुहमणुहवंतस्स अइक्कंतो कोइ कालो। अन्नया च विन्नत्तो अणेण राया - देव, गच्छामि। राइणा भणियं—जं रोयइ देवाणुप्पियस्स। तओ दाऊणमणग्घेयं दविणजायं चेलाइयं च महग्घमुल्लं दिन्ना से सहाया पच्चइयपुरिसा। भणिया ते राइणा—हरे पल्लिवइं पल्लिपएसे मोत्तूणागच्छह त्ति। तेहिं भणियं—जं देवो आणवेइ। तओ पणमिऊण नरवइं गओ सबरणाहो पत्तो कइवयदियहेहिं नियपल्लिं। विसज्जिया रायपुरिसा। पविट्ठो नियगेहे। समागओ तस्स समीवं सबरलोओ। पुच्छिओ णेहिं—कत्थ तुम गओ सि, कहिं वा ठिओ सि एत्तियं कालं, किं वा तए लद्धं। तओ साहिओ तेण रायदरिसणाइओ पल्लिपवेसपज्जवसाणो नियवुत्तंतो। तओ अहिययरं सकोउहल्लो पुच्छइ तं जणसमूहो।

धवलितं(ते) देवाङ्गादिवस्त्रपूजया सचित्रकर्म(णि) उज्ज्वलं(ले) वरचित्रापतितचन्द्रोदयेन अवलम्बितैः पञ्चवर्णिकसुरभिकुसुमदामभिः प्रज्वलिताभिर्मणिप्रदीपिकाभिर्धूप्यमानाभिरनवरतधूप्यमानकालागुरुकर्पूरप्रचुराभिर्धूपघटिकाभिर्गण्डोपधानालिङ्गनीसमेतायां तूलिकायां स्वापितो दन्तमयपल्यङ्के। कृत उचितोपचारः। पायितो मधुमाधवादिप्रवरासवानि। एवं च पञ्चविधं विषयसुखमनुभवतोऽतिक्रान्तः कोऽपि कालः। अन्यदा विज्ञप्तोऽनेन राजा। देव ! गच्छामि। राज्ञा भणितम्—यद् रोचते देवानुप्रियाय। ततो दत्त्वाऽनर्घ्यं द्रविणजातं चेलादिकं च महार्घमूल्यं दत्तास्तस्य सहायाः प्रत्ययितपुरुषाः भणितास्ते राज्ञा - अरे पल्लीपतिं पल्लीप्रदेशे मुक्त्वाऽऽगच्छतेति। तैर्भणितम्—यद् देव आज्ञापयति। ततः प्रणम्य नरपतिं गतः शबरनाथः प्राप्तः कतिपयदिवसैर्निजपल्लीम्। विसर्जिता राजपुरुषाः। प्रविष्टो निजगेहे। समागतस्तस्य समीपं शबरलोकः। पृष्टस्तैः - कुत्र त्वं गतोऽसि, कुत्र वा स्थितोऽसि एतावन्तं कालम्, किं वा त्वया लब्धम्। ततः कथितस्तेन राजदर्शनादिकः पल्लीप्रवेशपर्यवसानो निजवृत्तान्तः। ततोऽधिकतरं सकुतूहलः पृच्छति तं जनसमूहः—

किरणें पड़ने से उज्ज्वल लग रहा था, पाँच रंग की सुगन्धित फूलमालाएँ वहाँ लटकाई गयी थीं, मणिनिर्मित दीपक जलाए गये थे, निरन्तर धुआँ छोड़नेवाले काले अगरु, कपूर और प्रचुर धूप के छोटे-छोटे मिट्टी के घड़ों से युक्त था। हाथीदाँत से बने हुए रूई भरे विस्तर गण्डोपधान (गाल के नीचे का तकिया) और आलिंगनी (घुटनों आदि के नीचे रखने का तकिया) से युक्त पलँग पर उसे सुलाया। योग्य सेवा की। मधु, मद्य आदि श्रेष्ठ रस पिलाये। इस तरह पाँच प्रकार के विषयों के सुख का अनुभव करते हुए, समय बीत गया। एक बार इसने राजा से निवेदन किया—'महाराज ! जा रहा हूँ।' राजा ने कहा—'जो देवानुप्रिय को अच्छा लगे।' अनन्तर बहुमूल्य धन, सोना, वस्त्रादिक देकर उसके साथ विश्वस्त पुरुष भेज दिये। उनसे राजा ने कहा—'अरे शबरस्वामी को शबरस्थान में पहुँचाकर आओ।' उन्होंने कहा—'जो महाराज की आज्ञा।' अनन्तर राजा को प्रणाम कर शबरनाथ चला गया। कुछ दिन में अपनी बस्ती में पहुँच गया। राजपुरुषों को वापस भेज दिया। अपने घर में प्रवेश किया। उसके पास शबर लोग आये। उन्होंने पूछा—'आप कहाँ चले गये थे ? इतने समय तक कहाँ रहे अथवा आपने क्या प्राप्त किया ?' अनन्तर उसने राजा के दर्शन से लेकर शबर बस्ती में प्रवेश करने तक का अपना वृत्तान्त कहा। तब अत्यधिक कौतूहल से युक्त होकर लोगों के समूह ने उससे पूछा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केरिसओ सो राया कोइसरूवं च होइ तन्नयरं ।
केरिसओ तत्थ जणो किंविसिट्ठो य परिभोगो ॥१०४४॥

सो साहिउं न सक्कइ उवमारहियम्मि तत्थ रण्णम्मि ।
ते विंति तत्थ उवमा पत्थरगुहरुक्खमालेसु ॥१०४५॥

भक्खाणं च फलाइ जुवईसु पुलिंदयाण जुवईओ ।
आभरणेसु य गुंजा विलेवणं गेरुयाईसु ॥१०४६॥

सो साहेउं वंछइ नयरस्स गुणे जहट्ठिए तेसिं ।
निव्वाएऊण मुहं पुणो वि तुण्हिक्कओ ठाइ ॥१०४७॥

एवं उवमारहिओ न तीरए एत्थ साहिउं मोक्खो ।
नवरं सद्दहियव्वो न अन्नहा भणइ सव्वन्नू ॥१०४८॥

न वि अत्थि माणुसाणं तं सोक्खं न वि य सव्वदेवाणं ।
जं सिद्धाणं सोक्खं अव्वाबाहं उवगयाणं ॥१०४९॥

कीदृशः स राजा कीदृशरूपं च भवति तन्नगरम् ।
कीदृशस्तत्र जनः किंविशिष्टश्च परिभोगः ॥१०४४॥

स कथयितुं न शक्नोति उपमारहिते तत्रारण्ये ।
तान् ददाति तत्रोपमाः प्रस्तरगुहावृक्षमालेषु ॥१०४५॥

भक्ष्याणां च फलानि युवतिषु पुलिन्द्राणां युवतयः ।
आभरणेषु गुञ्जा विलेपनं गैरुकादिषु ॥१०४६॥

स कथयितुं काङ्क्षति नगरस्य गुणान् यथास्थितान् तेषाम् ।
निर्वाच्य मुखं पुनरपि तूष्णीकस्तिष्ठति ॥१०४७॥

एवमुपमारहितो न शक्यतेऽत्र कथयितुं मोक्षः ।
नवरं श्रद्धातव्यो नान्यथा भणति सर्वज्ञः ॥१०४८॥

नाप्यस्ति मानुषाणां तत् सौख्यं नापि च सर्वदेवानाम् ।
यत् सिद्धानां सौख्यमव्याबाधामुपगतानाम् ॥ १०४९ ।

'वह राजा कैसा है ? उस नगर का रूप कैसा है ? वहाँ पर लोग कैसे हैं और परिभोग कैसा है ? उस उपमारहित जंगल में वह शबर बता नहीं पाता है। उन लोगों को वहाँ पत्थर, गुफा, वृक्ष, माला, खाने योग्य वस्तुओं, फल, युवतियों में शबर युवतियों, आभूषणों में गुंजा तथा गैरुक आदि के विलेपन की उपमा देता है। वह उन लोगों से नगर के यथार्थ गुण कहना चाहता है, किन्तु मुख से न कह पाने के कारण चुपचाप रहता है। इसी प्रकार यहाँ उपमारहित मोक्ष का कथन नहीं किया जा सकता, केवल ऐसी श्रद्धा करना चाहिए, क्योंकि सर्वज्ञ झूठ नहीं बोलते हैं। अव्याबाध को प्राप्त हुए सिद्धों का जो सुख है वह मनुष्यों और समस्त देवों का भी नहीं है।' १०४४-१०४९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एयं आयण्णिऊण 'एवमेयं' ति संविग्गा सव्वे। वेलन्धरेण भणियं—भयवं, कीइसं पुण सरूवं सिद्धस्स। भयवया भणियं—सोम, सुण। से न दीहे न रह(ह)स्से न वट्टे न तंसे न चउरंसे न परिमंडले; वण्णेण न किण्हे न नोले न लोहिए न हालिद्दे न सुक्किले; गंधेणं न सुरहिगंधे न दुरहिगंन्धे; रसेणं न तित्ते न कडुए न कसाए न अंबिले न लवणे न महुरे; फंसेण न कक्खडे न मउए न गरुए न लहुए न सीए न उण्हे न निद्धे न लुक्खे; न संगे न रुहे न काउ न इत्थी न पुरिसे न अन्नहा। परिन्ना सन्ना उवमा चेव न विज्जइ। अरूवी सत्ता अपयस्स पयं नत्थि। से न सद्दे नासद्दे, से न रूवे नारूवे, से न गन्धे नागन्धे, से न फासे नाफासे, से न रसे नारसे। इमेयं सिद्धसरूवं ति। अवि य सयलपवंचरहियं सत्तामत्तसरूवं अणन्ताणंदं परमपयं ति। एयमायण्णिऊण खओवसममुवगयं चारित्तमोहणीयं मुणिचंदस्स देवीणं सामंताण य। भणियं च णेहिं—भयवं, अणुग्गहीयाणि अम्हे भयवया इमिणा धम्मदेसणेण। समुप्पन्नो य अम्हाणं भयवओ चरियसवणेण संसारचारयाओ निव्वेओ। ता आइसउ भयवं, किमम्हेहिं कायव्वं ति। भयवया भणियं—धन्नाणि तुब्भे। पावियं

एतदाकर्ण्य 'एवमेतद्' इति संविग्नाः सर्वे। वेलन्धरेण भणितम्- भगवन्! कीदृश पुनः स्वरूप सिद्धस्य। भगवता भणितम्—सौम्य! शृणु। स न दीर्घो न ह्रस्वो न वृत्तो न त्र्यस्रो न चतुरस्रो न परिमण्डलः; वर्णेन न कृष्णो न नीलो न लोहितो न हारिद्रो न शुक्लः; गन्धेन न सुरभिगन्धो न दुरभिगन्धः; रसेन न तिक्तो न कटुको न कषायो नाम्लो न लवणो न मधुरः; स्पर्शेन न कर्कशो न मृदुर्न गुरुको न लघुको न शीतो न उष्णो न स्निग्धो न रूक्षः, न सङ्गो न रुहो न क्लीबो न स्त्री न पुरुषो नान्यथा। परिज्ञा संज्ञा उपमा चैव न विद्यते। अरूपी सत्ता, अपदस्य पदं नास्ति। स न शब्दो नाशब्दः, न रूपो नारूपः, स न गन्धो नागन्धः, स न स्पर्शो नास्पर्शः, स न रसो नारसः। इदमेतत् सिद्धस्वरूपमिति। अपि च सकलप्रपञ्चरहितं सत्तामात्रस्वरूपमनन्तानन्दं च परमपदमिति। एतदाकर्ण्य क्षयोपशममुपगतं चारित्रमोहनीयं मुनिचन्द्रस्य देवीनां सामन्तानां च। भणितं च तैः—भगवन्! अनुगृहीता वयं भगवताऽनेन धर्मदेशनेन। समुत्पन्नश्चास्माकं भगवतश्चरित्रश्रवणेन संसारचारकाद् निर्वेदः। तत आदिशतु भगवान्, किमस्माभिः कर्तव्यमिति। भगवता भणितम्—

यह सुनकर—'यह ऐसा ही है' इस प्रकार सभी लोगों ने अनुभव किया। वेलन्धर ने कहा—'भगवन्! सिद्ध का स्वरूप कैसा है?' भगवान् ने कहा—'सौम्य! सुनो। वे सिद्ध न दीर्घ, न ह्रस्व, न गोल, न तिकोने, न चौकोर और न घेरेवाले हैं। वर्ण से न कृष्ण, न नील, न लाल, न पीले, न शुक्ल हैं। गन्ध से न सुगन्धित हैं, न दुर्गन्धित हैं। रस में न तीखे हैं, न कड़ुए हैं, न कषायले हैं, न अम्ल हैं, न लवण हैं, न मधुर हैं। स्पर्श में न कर्कश हैं, न मृदु हैं, न भारी हैं, न लघु है, न शीत हैं, न उष्ण हैं, न चिकने हैं, न रूखे हैं, न आसक्त हैं, न उत्पन्न होते हैं, न नपुंसक हैं, न स्त्री हैं, न पुरुष हैं, न अन्य प्रकार के हैं। पहचान, संकेत (तथा) उपमा ही नहीं है। अरूपी सत्ता है, अपद का पद नहीं होता है। वे न तो शब्दवाले हैं, न शब्दरहित हैं, न रूपी हैं, न अरूपी है, न न गन्धयुक्त हैं, न गन्धरहित हैं। वे न स्पर्शवाले हैं, न स्पर्शरहित हैं। वे न रसवाले हैं और न रसरहित हैं। यह सिद्ध का स्वरूप है। वे सिद्ध परमात्मा समस्त जंजालों से रहित, सत्ता मात्र स्वरूपवाले, अनन्त आनन्द से युक्त और परमानन्दवाले हैं।' यह सुनकर मुनिचन्द्र, महारानियों तथा सामन्तों के चारित्रमोह का क्षयोपशम हो गया और उन्होंने कहा—'भगवन्! भगवान् के इस धर्मोपदेश से हम अनुगृहीत हैं। हम लोगों को भगवान् के चरित्र के सुनने से संसाररूपी कारागार से वैराग्य उत्पन्न हो गया है। अतः भगवान् आदेश दें कि हम लोगों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुब्भेहिं संसारचारयविमोयणसमत्थं छेयणं नेहनियलाणं पक्खालणं मोहधूलीए परमनेव्वाणकारणं अंगं नाणपगरिसस्स पल्हायणं भावेण संकिलेसाइयारविरहियं भावओ सुद्धचरणं ति। तम्हा कयं कायव्वं, नवरं दव्वओ वि एयं पडिवज्जसु त्ति। तेहिं भणियं—जं भयवं आणवेइ। वेलन्धरेण चिंतियं—अहो एएसिं धन्नया, पत्तं मणुयलोयसारं भावचरणं ति। वंदिऊण सहरिसं कयं उचिय-करणिज्जं भयवओ। पविट्ठो नर्यारं राया मुणिचंदो। दवावियं आघोसणापुव्वयं महादाणं, काराविया सव्वाययणेसु पूया, पइट्ठाविओ जेट्ठपुत्तो चंदजसो नाम रज्जे। निग्गओ महाविभूईए नयराओ पहाणसामंतामच्चसेट्ठिलोयपरियओ नम्मयापमुहंतेउरेण सह। पव्वइयाणि एयाणि भयवओ पहाण-सीसस्स सीलदेवस्स समीवे।

कोउगाणुकंपाहिं पुच्छियं वेलंधरेण—भयवं, किं सो पुरिसाहमो भयवंतमुद्दिस्स अत्तणोव-सग्गकारी भविओ अभविओ त्ति। भयवया भणियं—भविओ। वेलंधरेण भणियं—पत्तबीओ अपत्तबीओ त्ति। भयवया भणियं—अपत्तबीओ। वेलंधरेण भणियं—पाविस्सइ नहि। भयवया

धन्या यूयम्। प्राप्तं युष्माभिः संसारचारकविमोचनसमर्थं छेदनं स्नेहनिगडानां प्रक्षालनं मोहधूल्याः परमनिर्वाणकारणमङ्गं ज्ञानप्रकर्षस्य प्रह्लादनं भावेन संक्लेशातिचारविरहितं भावतः शुद्धचरण-मिति। तस्मात् कृतं कर्तव्यम्, नवरं द्रव्यतोऽप्येतत् प्रतिपद्यस्वेति। तैर्भणितम्—यद् भगवान् आज्ञा-पयति। वेलन्धरेण चिन्तितम्—अहो एतेषां धन्यता, प्राप्तं मनुजलोकसारं भावचरणमिति। वन्दित्वा सहर्षं कृतमुचितकरणीयं भगवतः। प्रविष्टो नगरीं राजा मुनिचन्द्रः। दापितमाघोषणापूर्वकं महा-दानम्, कारिता सर्वायतनेषु पूजा, प्रतिष्ठापितो ज्येष्ठपुत्रश्चन्द्रयशा नाम राज्ये। निर्गतो महा-विभूत्या नगरात् प्रधानसामन्तामात्यश्रेष्ठिलोकपरिवृतो नर्मदाप्रमुखान्तःपुरेण सह। प्रव्रजिता एते भगवतः प्रधानशिष्यस्य शीलदेवस्य समीपे।

कौतुकानुकम्पाभ्यां पृष्टं वेलन्धरेण—भगवन्! किं स पुरुषाधमो भगवन्तमुद्दिश्य आत्मन उपसर्गकारी भविकोऽभविको (वा) इति। भगवता भणितम्—भविकः। वेलन्धरेण भणितम्—प्राप्त-बीजोऽप्राप्तबीज इति। भगवता भणितम्—अप्राप्तबीजः। वेलन्धरेण भणितम्—प्राप्स्यति नहि।

को क्या करना चाहिए।' भगवान् ने कहा—'तुम सब धन्य हो। तुम लोगों ने संसाररूपी कारागार छुड़ाने में समर्थ, स्नेहरूपी बेड़ी को तोड़नेवाले, मोहरूपी धूलि को पोंछनेवाले, परम निर्वाण के कारण, ज्ञान की चरम सीमा के अंग भाव से आह्लादक, दुःख और अतिचार से रहित शुद्ध चारित्र को भाव से प्राप्त कर लिया। अतः करने योग्य कार्य कर लिया, अब द्रव्य मात्र से भी इसे प्राप्त करो।' उन्होंने कहा—'जो भगवान् की आज्ञा।' वेलन्धर ने सोचा—ओह इनकी धन्यता, इन्होंने मनुष्यलोक के सार भावचारित्र को प्राप्त कर लिया है। इस प्रकार हर्षपूर्वक भगवान् की वन्दना कर योग्य कार्यों को किया। राजा मुनिचन्द्र नगरी में प्रविष्ट हुआ। घोषणापूर्वक महादान दिलाया, समस्त आयतनों में पूजा करायी। चन्द्रयश नामक बड़े पुत्र को राज्य पर बैठाया। प्रधान सामन्त, अमात्य, सेठ लोगों से घिरा हुआ तथा नर्मदा प्रमुख अन्तःपुर के साथ वह नगर से बड़ी विभूति के साथ निकला। ये लोग भगवान् के प्रधान शिष्य शीलदेव के समीप प्रव्रजित हुए।

कौतुक और अनुकम्पा (दया) से युक्त हो वेलन्धर ने पूछा—'भगवन्! वह अधम पुरुष भगवान् को लक्ष्य करके अपने ऊपर उपद्रव करनेवाला क्या भव्य है अथवा अभव्य?'' भगवान् ने कहा—'भव्य है। वेलन्धर ने कहा—'प्राप्तबीज है अथवा अप्राप्त बीज?' भगवान् ने कहा—'अप्राप्त बीज।' वेलन्धर ने कहा—'प्राप्त करेगा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भणियं—असंखेज्जेसु पोग्गलपरियट्टेसु समइक्किएसु तिरियगईए सद्दूलसेणराइणो पहाणतुरंगमो होऊण पाविस्सइ, जओ 'अहो महाणुभावो' त्ति मं उद्दिसिय चिंतियमणेण। एएणं च परमत्थविसयचिंतणेण आसगलियं गुणपक्खवायबीयं; कारणं च तं परंपरयाए सम्मत्तस्स। अईएसु य असंखेज्जभवेसु संखनामबाहणो होऊण सिज्झिस्सइ त्ति। एयं सोऊण हरिसिओ वेलंधरो। वंदिऊण भयवंतं गओ नियवथामं। भयवं पि विहरिओ केवलिविहारेण।

अइक्कंतो कोइ कालो। अन्नया य चोरवइयरेण उज्जेणीए चेव गहिओ गिरिसेणपाणो, वावाइओ कुंभिपाएण। तहाविहभयवंतपओसदोसओ समुप्पन्नो सत्तममहीए। भयवं पि विहरमाणो कालक्कमेण गओ उसहतित्थं। नाऊण कम्मपरिणइं कओ केवलिसमुग्घाओ, पडिवन्नो सेलेसिं, खवियाइं भवोवग्गाहिकम्माइं। तओ सव्वप्पगारेण चइऊण देहपंजरं अफुसमाणगईए गओ एक्कसमएण तेलोक्कचूडामणिभूयं अप्पत्तपुव्वं तहाभावेण परमबंभालयं उत्तमं सव्वथामाण सिवं एगंतेण अचलमरुजं साहयं परमाणंदसुहस्स जम्मजरामरणविरहियं परमं सिद्धिपयं ति। कया तियसेहिं

भगवता भणितम्—असंख्येयेषु पुद्गलपरिवर्तेषु समतिक्रान्तेषु तिर्यग्गतौ शार्दूलसेनराजस्य प्रधानतुरङ्गमो भूत्वा प्राप्स्यति, यतो 'अहो महानुभावः' इति मामुद्दिश्य चिन्तितमनेन। एतेन च परमार्थविषयचिन्तनेन प्रादुर्भूतं गुणपक्षपातबीजम्, कारणं च तत् परम्परया सम्यक्त्वस्य। अतीतेषु चासंख्येयभवेषु शङ्खनाम ब्राह्मणो भूत्वा सेत्स्यतीति। एतच्छ्रुत्वा हर्षितो वेलन्धरः। वन्दित्वा भगवन्तं गतो निजस्थानम्। भगवानपि विहृतः केवलिविहारेण।

अतिक्रान्तः कोऽपि कालः। अन्यदा च चौरव्यतिकरेण उज्जयिन्यामेव गृहीतो गिरिषेणप्राणः, व्यापादितः कुम्भिपाकेन। तथाविधभगवत्प्रद्वेषदोषतः समुत्पन्नः सप्तममह्याम्। भगवानपि विहरन् कालक्रमेण गत ऋषभतीर्थम्। ज्ञात्वा कर्मपरिणतिं कृतः केवलिसमुद्घातः, प्रतिपन्नः शैलेशीम्, क्षपितानि भवोपग्राहिकर्माणि। ततः सर्वप्रकारेण त्यक्त्वा देहपञ्जरमस्पृशद्गत्या गत एकसमयेन त्रैलोक्यचूडामणिभूतमप्राप्तपूर्वं तथाभावेन परमब्रह्मालयमुत्तमं सर्वस्थानानां शिवमेकान्तेनाचल-

---

या नहीं ?' भगवान् ने कहा—'असंख्य पुद्गल परावर्त बीत जाने पर तिर्यंचगति में शार्दूलसेन राजा का प्रधान घोड़ा होकर प्राप्त करेगा; क्योंकि 'ओह ! महान् प्रभाववाला है'—इस प्रकार इसने सोचा। इस परमार्थ विषय का चिन्तन करने से गुणों के प्रति पक्षपात का बीज उत्पन्न हुआ और वह परम्परा से सम्यक्त्व का कारण है। असंख्य भवों के बीत जाने पर शंख नामक ब्राह्मण होकर प्राप्त करेगा।' यह सुनकर वेलन्धर हर्षित हुआ।' भगवान् की वन्दना कर अपने स्थान पर चला गया। भगवान् भी केवलीगमन से विहार कर गये।

कुछ समय बीत गया। एक बार चोरी की घटना से उज्जयिनी में गिरिसेन नामक चाण्डाल पकड़ा गया। कुम्हार के आँवे में डालकर मार दिया गया। उस प्रकार के भगवान् के प्रति द्वेष के कारण सातवें नरक में उत्पन्न हुआ। भगवान् भी विहार करते हुए कालक्रम से ऋषभतीर्थ गये। कर्म की परिणति को जानकर केवलिसमुद्घात किया, शैलेशी स्थिति (मेरु की तरह निश्चल साम्यावस्था अथवा योगी की सर्वोत्कृष्ट अवस्था) को प्राप्त किया। संसार का योग करानेवाले कर्मों का नाश कर दिया। उन्होंने सब प्रकार से शरीररूपी पिंजड़े को छोड़कर अस्पर्शी गति से एक साथ तीनों लोकों के चूड़ामणिभूत, जिसे पहले नहीं पाया है ऐसे परम ब्रह्मालय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महिमा, पूजिया बोंदी, गहियाइं पहाणंगाइं, नीयाणि सुरलोयं, ठवियाणि विवित्तदेसे, साहियाणि देवाण, समागया देवा, दिट्ठाणि तेहिं, पूजियाणि भत्तीए, पणमियाणि सहरिसं, अविरहियं च तेसिं पडिवत्तीए करेंति आयाणुग्गहं ति।

वक्खायं जं भणियं समराइच्चगिरिसेणपाणे उ।
एगस्स तओ मोक्खो ऽणंतो बीयस्स संसारो॥१०५०॥

गुरुवयणपंकयाओ सोऊण कहाणयाणुराएण।
अनिउणमइणा वि दढं बालाइअणुग्गहट्ठाए॥१०५१॥

अविरहियनाणदंसणचरियगुणधरस्स विरइयं एयं।
जिणदत्तायरियस्स उ सीसावयवेण चरियं ति॥१०५२॥

जं विरइऊण पुण्णं महाणुभावचरियं मए पत्तं।
तेण इहं भवविरहो होउ सया भवियलोयस्स॥१०५३॥

मरुजं साधकं परमानन्दसुखस्य जन्मजरामरणविरहितं परमं सिद्धिपदमिति। कृता त्रिदशैर्महिमा, पूजिता वोन्दिः, गृहीतानि प्रधानाङ्गानि, नीतानि सुरलोकम्, स्थापितानि विविक्तदेशे, कथितानि देवानाम्, समागता देवाः, दृष्टानि तैः, पूजितानि भक्त्या, प्रणतानि सहर्षम्, अविरहितं च तेषां प्रतिपत्त्या कुर्वन्त्यात्मानुग्रहमिति।

व्याख्यातं यद् भणितं समरादित्यगिरिषेणप्राणौ तु।
एकस्य ततो मोक्षोऽनन्तो द्वितीयस्य संसारः॥१०५०॥

गुरुवदनपङ्कजात् श्रुत्वा कथानकानुरागेण।
अनिपुणमतिनाऽपि दृढं बालाद्यनुग्रहार्थम्॥१०५१॥

अविरहितज्ञानदर्शनचारित्रगुणधरस्य विरचितमेतत्।
जिनदत्ताचार्यस्य तु शिष्यावयवेन चरितमिति॥१०५२॥

यद् विरचय्य पुण्यं महानुभावचरितं मया प्राप्तम्।
तेनेह भवविरहो भवतु सदा भविकलोकस्य॥१०५३॥

में उत्तम, कल्याणकारक, एकान्त से अचल, रोगरहित, परमानन्द, जन्म, जरा और मरण से रहित परमसिद्धपद (मोक्ष) को प्राप्त हुए। देवों ने उत्सव किया। शरीर की पूजा की। प्रधान अंगों को लिया, स्वर्ग में ले गये एकान्त स्थान पर रख दिया, देवों से कहा। देव आये, उन्होंने देखा, भक्ति से पूजा की, हर्षपूर्वक प्रणाम किया। उनके प्रति सतत श्रद्धा से अपना अनुग्रह किया।

समरादित्य और गिरिसेन चाण्डाल के विषय में जो कहा गया उसकी व्याख्या हो चुकी। उनमें से एक का मोक्ष हुआ, दूसरे का संसार हुआ। गुरु के मुखकमल से सुनकर कथानक के प्रति अनुराग से, निपुणता से रहित बुद्धिवाला होने पर भी अल्पज्ञ जनों पर अत्यधिक अनुग्रह करने के लिए सतत ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूप गुणों के धारी जिनदत्ताचार्य के शिष्यावयव ने इस चरित की रचना की। जिस महानुभाव के चरित की रचनाकर मैंने पुण्य प्राप्त किया उसी के द्वारा सदा भव्यजनों की संसार से मुक्ति हो॥१०५०-१०५३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गंथग्गमिमीए इमं छंदेणाणुट्ठुहेण गणिऊण।
पाएण वससहस्सा हंदि सिलोयाण संठवियं ॥१०५४॥

समत्तो नवमो भवो।

समराइच्चकहा समत्ता ॥

ग्रन्थाग्रमस्या इदं छन्दसाऽनुष्टुभा गणयित्वा।
प्रायेण दश सहस्राणि हन्दि श्लोकानां संस्थापितम् ॥१०५४॥

इत्याचार्यश्रीयाकिनीमहत्तरासूनुपरमसत्यप्रियहरिभद्राचार्यविरचितायाः प्राकृतबन्धगुम्फितायाः
समरादित्यकथायाः सौराष्ट्रदेशान्तर्गतवलभीवास्तव्येन श्रावकहर्षचन्द्रात्मजेन
पण्डितभगवानदासेन कृते संस्कृतच्छायानुवादे
नवमं भवग्रहणं समाप्तम् ॥

इस ग्रन्थ को अनुष्टुप् छन्द के अनुसार गिनकर लगभग दश हजार श्लोकों वाला निर्धारित किया ॥१०५४॥

नवम भव समाप्त।

समरादित्य-कथा समाप्त ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डॉ. रमेशचन्द्र जैन

जन्म : 1946 में, मड़ावरा ग्राम (ज़िला ललितपुर, उत्तरप्रदेश) में ।

शिक्षा : आरम्भिक शिक्षा जन्मस्थान में प्राप्त करने के पश्चात्, श्री स्याद्वाद महाविद्यालय एवं काशी हिन्दू व्रिश्वविद्यालय, वाराणसी में अध्ययन । विक्रम विश्व-विद्यालय, उज्जैन से पी-एच. डी. तथा रुहेलखण्ड विश्व-विद्यालय से डी. लिट्. ।

कार्यक्षेत्र : 1969 से वर्द्धमान (स्नातकोत्तर) महाविद्यालय बिजनौर के संस्कृत विभाग में अध्यापन । सम्प्रति विभागाध्यक्ष ।

प्रकाशित रचनाएँ : 'पद्मचरित में प्रतिपादित भारतीय संस्कृति', 'अहिच्छत्र की पुरा सम्पदा', 'पावन तीर्थ हस्तिनापुर' आदि ।

'समराइच्चकहा' के अतिरिक्त 'समाधितन्त्र' तथा 'इष्टोपदेश' का सम्पादन एवं 'आराधना-कथाप्रबन्ध', 'भावसंग्रह', 'सुदर्शनचरित' और 'पार्श्वाभ्युदय' का अनुवाद । अब तक एक दर्जन से अधिक छात्र-छात्राओं का पी-एच. डी. के लिए शोध-निर्देशन । लगभग सात वर्ष से 'पार्श्व-ज्योति' पाक्षिक का सम्पादन ।

भारतवर्षीय दिग. जैन शास्त्रीय परिषद्, स्याद्वाद शिक्षण परिषद् से सम्मानित एवं पुरस्कृत । प्राकृत शोध संस्थान वैशाली की अधिष्ठात्री समिति एवं नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ प्राकृत स्टडीज एण्ड रिसर्च, श्रवणबेलगोला के डाइरेक्टर्स बोर्ड के सदस्य तथा अन्य अनेक संस्थाओं से सम्बद्ध ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय ज्ञानपीठ

स्थापना : सन् 1944

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री का अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोकहितकारी मौलिक साहित्य का निर्माण

संस्थापक

स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन

स्व. श्रीमती रमा जैन

अध्यक्ष

श्री अशोक कुमार जैन

कार्यालय : 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org